

कृष्णायन

द्वारकाप्रसाद मिश्र



हिन्दी विश्व-भारती कार्यालय
चारबाग, लखनऊ

प्रकाशक
हिन्दी विश्व-भारती कार्यालय
चारबाग, लखनऊ

मूल्य १२)

मुद्रक
पं० भृगुराज भार्गव
भार्गव-प्रिंटिंग-वर्क्स, लखनऊ

कृष्णायन



विषय-सूची

प्राक्कथन	१-३
भूमिका	१-२०
अवतरण काण्ड	१
मथुरा काण्ड	१११
द्वारका काण्ड	२३३
पूजा काण्ड	३६६
गीता काण्ड	४६७
जय काण्ड	६१७
आरोहण काण्ड	७८१

दिव्य जन्म कर्महु मम होई ,
जानत तत्त्व रूप जो कोई ,
तजि तनु बहुरि जन्म नहिं पावत ,
नहि मोरिहि गतिं मम ढिग आवत ।

गीता, अ० ४ श्लो० ६

फक्कथन

[लेखक—देशरत्न श्री डा० राजेन्द्रप्रसाद, एम० ए०, एम० एल०, डी-लिट०]

आर्य साहित्य में, चाहे वह संस्कृत साहित्य हो अथवा प्रान्तीय भाषाओं का, जितनी चर्चा भगवान् रामचन्द्र और भगवान् कृष्णचन्द्र की मिलती है उतनी और किसी की नहीं - और न अन्य किसी विषय की। धार्मिक दृष्टि से भी अनेक अवतार माने गये हैं, पर किसी दूसरे अवतार को न तो वह महत्व मिला और न साहित्य में वह स्थान। भगवान् रामचन्द्र को पुरुषोत्तम के नाम से व्यक्त किया गया है, क्योंकि जन-साधारण के लिए उनका जीवन गृहस्थ जीवन का आदर्श रूप है। पिता का पुत्र के प्रति, पुत्र का माता और पिता के प्रति, भाई का भाई के प्रति, पति का पत्नी के प्रति आदर्श प्रेम, सत्य-निष्ठा, शौर्य, सौहार्द इत्यादि सभी गुण रामचन्द्र में मिलते हैं, और मनुष्य उस जीवन के ढाँचे में अपने जीवन को ढाल सकता है। भारतवर्ष की असंख्य पीढ़ियों ने उसी ढाँचे में अपने जीवन को ढालने का प्रयत्न भी किया है। श्रीकृष्णचन्द्र को पूर्णवतार कहा गया है जिनमें सभी कलाओं का पूर्णरूपेण विकास हुआ है। यदि बचपन में ही उन्होंने गोपियों के प्रति अलौकिक, असाधारण प्रेम का परिचय दिया है तो उसी अवस्था में दूसरी ओर कंस के भेजे हुए अनेकानेक असुरों का वध करके अलौकिक शक्ति और शौर्य का भी दृष्टान्त उपस्थित किया है। यदि गीता का ज्ञान रण-स्थल में उन्होंने अर्जुन को दिया है तो समय-समय पर अपनी चातुरी और सांसारिक बुद्धिमत्ता से पाण्डवों को अर्थ-संकट और धर्म-संकट से भी बचाया है। यदि वह अनेक रानियों और पटरानियों के पति हुए हैं तो साथ ही स्थिरप्रज्ञ योगी भी रहे हैं। श्रीकृष्ण शास्त्र-शास्त्रविद् हैं, कला-कोविद हैं, राजनीति-विशारद हैं, योगी हैं, दार्शनिक हैं—सभी एक साथ हैं और सबमें महान् हैं।

संस्कृत और हिन्दी साहित्य में श्रीरामचन्द्र का पूर्ण चरित एकत्र मिलता है। आदि कवि वाल्मीकि ने उस चरित्र का चित्रण रामायण महाकाव्य में आदि में ही कर दिया, और तत्पश्चात् अनेकानेक कवियों ने पूर्ण अथवा आंशिक रूप से उनका अनुसरण करके पूर्ण जीवन की कथा कह डाली। हिन्दी साहित्य में भी तुलसीदास ने वही किया और आज 'रामचरित मानस' घर-घर की संपत्ति, जीवन का मार्ग-दर्शक, शोक और वियोग में शांति-दायक और सर्वोपरि भक्ति-रस-वारिद बन रहा है। श्रीकृष्णचन्द्र की जीवन-कथा इस प्रकार एकत्र कहीं नहीं मिलती। वह आंशिक रूप में संस्कृत साहित्य में बिखरी पड़ी है। महाभारत और श्रीमद्भागवत दो मुख्य ग्रंथ हैं जिनमें कृष्ण-चरित का अधिक से अधिक मसाला मिलता है। पर इन दोनों में भी उसके हर पहलू पर न तो समान प्रकाश ही डाला गया है और न दोनों एक उद्देश्य अथवा दृष्टि से लिखे ही गये हैं। जब संस्कृत साहित्य में ही इस पूर्णावतार की पूर्ण कथा एकत्र नहीं मिलती तो हिन्दी साहित्य में उसका अभाव आश्चर्य-जनक नहीं है। प्रस्तुत ग्रंथ में श्री द्वारकाप्रसाद मिश्रजी ने हिन्दी साहित्य की इस कमी को दूर करने का अत्यन्त विशद और सफल प्रयत्न किया है। कृष्णायन में जन्म से स्वर्गारोहण तक की सभी घटनाओं को क्रम-बद्ध करके दर्शाया गया है। यह स्तुत्य प्रयत्न प्रबन्धकाव्य द्वारा ही सफल हो सकता था, और मिश्रजी ने शील, सौन्दर्य और शक्ति तत्त्वों के चित्रण में असाधारण प्रतिभा प्रदर्शित की है। यदि बच्चे के प्रति माता और मातृ-सदृश गोपियों के मृदुल प्रेम के स्निग्ध स्पर्श का हम एक स्थान पर अनुभव कर सकते हैं तो दूसरे स्थान पर विकट, विकराल युद्ध का भयावह प्रदर्शन भी देखने को मिलता है। यदि वसंत का सुन्दर, सुखद और मनोरंजक वर्णन हमें मिलता है तो अत्यन्त भयानक जंगल से होकर भी हमें गुजरना पड़ता है। गीता के ज्ञान के साथ-साथ चार्वाक की चटपटी फ़िलासफ़ी और उस मिस से आधुनिक प्रचलित भौतिकवाद का भी दिग्दर्शन हो जाता है। पर सर्वोपरि कृष्णायन कृष्ण-चरित को आज के जीवन और आज की समस्याओं को सामने रखकर चित्रित करता है। उसमें हमें पीड़ित प्रजा-द्वारा विप्लव का चित्र मिलता है। युद्ध से बचने के असफल प्रयत्न और बाध्य होकर धर्म संस्थापन के लिए उसमें प्रवृत्त होने की मजबूरी और उसके अन्त में जीवन की समस्याओं के हल करने में युद्ध की असफलता और असमर्थता का प्रमाण मिलता है। भगवद्भक्तों को श्रीकृष्णचन्द्र की अनेक भाँकियाँ मिलती हैं और देशभक्तों को अखण्ड भारत का दर्शन मिलता है। हमारी सभ्यता और संस्कृति में आस्था रखनेवालों को प्रोत्साहन मिलता है और कविता-

प्रेमियों को रसास्वादन । यह ग्रंथ युग-प्रवर्त्तक होने और 'रामचरित मानस' की भाँति घर-घर में प्रवेश करने की शक्ति रखता है ।

भाषा अवधी है और इसलिए 'मानस' की भाँति मीठी । संस्कृत का प्रयोग 'मानस' से अधिक मात्रा में है और यदि प्रचार में कमी होगी तो इसी कारण से । पर यदि विषय और काव्य-कला की अनिवार्य आवश्यकताओं पर विचार किया जाय तो शायद मानना पड़ेगा कि यह अनिवार्य था । सारे ग्रंथ में चौपाई, दोहा और सोरठा का ही प्रयोग किया गया है । तुलसीदास ने जहाँ-तहाँ अन्य छन्दों का भी प्रयोग किया है, और कहीं-कहीं दो दोहों के बीच में चौपाइयों की संख्या आठ से अधिक कर दी है । प्रस्तुत ग्रंथ में 'मानस' की भाँति सात काण्ड हैं, पर दोहों के बीच में आठ चौपाइयों से अधिक का शायद कहीं भी समावेश नहीं किया गया है । 'मानस' की भाँति ही यह ग्रंथ भी गाया जा सकता है, और मुझे आशा है कि गाँवों के चौपालों में शिक्षित और निरक्षर एक साथ मिलकर 'मानस' की तरह इसे भी गायेंगे । मिश्रजी की यह कृति अमर हो यही मेरी ईश्वर से प्रार्थना है ।

जीरादेई, (सारन, विहार प्रान्त)

विजयादशमी, २००२ वि०

भूमिका

लेखक—श्री डॉक्टर धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए०, डी-लिट० (पेरिस)
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, प्रयाग विश्व-विद्यालय, (प्रयाग)

तथा

श्री डॉक्टर बाबुराम सक्सेना एम० ए०, डी-लिट० (प्रयाग)
रीडर, संस्कृत-विभाग, प्रयाग विश्व-विद्यालय, (प्रयाग)

(१)

प्रस्तुत बृहद् ग्रंथ कृष्णायन में श्रीकृष्ण भगवान् के संपूर्ण चरित्र का चित्रण है। भारतीय गणना के अनुसार कृष्ण द्वापर युग में हुए। इनके ही समान पराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी त्रेता युग में हुए थे। पर श्रीरामचन्द्रजी के अस्तित्व के बारे में कुछ मान्य मनीषियों को संदेह है और उनकी दृष्टि में रामायण आदि ग्रन्थों में वर्णित उनका चरित्र कवि-कल्पना मात्र की उपज है। श्रीकृष्णजी के विषय में ऐसी कोई बात किसी विद्वान् ने उठायी नहीं और अब भविष्य में भी उठने की आशंका नहीं। हर देश और हर युग में महापुरुषों का जन्म होता है। ये अपने अदम्य उत्साह और आदर्श चरित्र के द्वारा अत्याचार-पीड़ित प्रजा का उद्धार करके चले जाते हैं और कृतज्ञ प्रजाजन इनकी स्मृति को युग-युगान्तर तक अंतस्तल में रखकर स्वयं कृतकृत्य होते हैं तथा कविवृन्द उसे शब्दों में अंकित कर आगे की पीढ़ियों को आदर्श मार्ग का दर्शन कराया करते हैं। यह भगवती सरस्वती की कृपा से ही संभव होता है। आचार्य दण्डी ने कहा है—

इदमन्धं तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम् ।

यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारान्न दीप्यते ॥

आदिराजयशोविम्बमादर्शं प्राप्य बाह्म्यम् ।

तेषामसन्निधानेऽपि न स्वयं पश्य नश्यति ॥

—काव्यादर्श प्र० ४-५

इस प्रकार ये वीर महापुरुष चिरकाल तक जीवित रहते हैं । इनका भौतिक शरीर नष्ट हो जाता है पर यशःशरीर भक्त जनता के हृदय में सर्वदा विद्यमान रहता है । अपने देश में आदि काल से ही वीरों के चरित्र का चित्रण होता आया है । कालातिपात से ये ही देव या अवतार की पदवी प्राप्त कर लेते हैं । वैदिक ऋषि-कवियों के स्तोत्रों में देवत्व की प्रशंसा भरी पड़ी है । इन्द्र ने वृत्र का वध करके जन का त्रास और भय दूर किया । फल-स्वरूप वह अमानुष देव हो गये और वृत्र भी अमानुषिक शक्तिवाला असुर बन गया । आज हम उनके चरित्र का चित्रण ऋग्वेद के सूक्तों में देखते हैं तो उनके ऐहिक अस्तित्व की कल्पना भी नहीं कर पाते । कवि की कल्पना और अपने वीर पुरुष में अलौकिक चमत्कार के आरोप करने की भक्त प्रजाजन की शक्ति, वस्तुस्थिति से इतना भिन्न चित्र स्थापित कर देती हैं कि उस चित्र में अतिरागरंजन देखनेवाला अन्वेषक जनता द्वारा नास्तिक समझा जाता है और दूसरी ओर उस चित्र के विवरण पर ही दृष्टि रखनेवाला विद्वान् उस चित्र के मूलरूप में ही अविश्वास कर बैठता है ।

वैदिक सूक्तों के उपरान्त भारतीय बाह्म्य में इस विषय का चित्रण नारायण गीता के रूप में मिलता है । इन गीताओं में नरों के चरित्र का वर्णन है । अनुमान है कि इनके और महाभारत और रामायण नाम के आख्यान काव्यों के बीच में वीरों के यशःशरीरों के बहुतेरे चित्र अपने देश में कवि-चित्रकारों ने खींचे होंगे जो अब मिलते नहीं । इनके न मिलने का एक कारण यह भी है कि इनमें से जो महत्वपूर्ण थे उनका महाभारत में समावेश हो गया और उनके पृथक् अस्तित्व की ज़रूरत न रही । महाभारत में इधर उधर की बहुत-सी सामग्री भरी पड़ी है । तभी तो अंतिम संकलयिता ने अधिकारपूर्वक घोषित कर दिया कि

यदिहास्ति तदन्यत्र यद्येहास्ति न तत्कचिद् ।

इसीलिए उसमें नलोपाख्यान आदि कितनी ही बाहरी सामग्री दिखायी पड़ती है । पर ऐसा जान पड़ता है कि जिन विवरणों का समावेश महाभारत आदि बृहद् ग्रन्थों में भी न हो सका वे जैनभूति में सम्प्रदाय रूप से चलते रहे और उनकी भूलक बाद को बने हुए पुराणों में दिखायी जा सकी । रामायण

महाभारत से कई बातों में भिन्न है। उसमें अधिक एकसूत्रत्व है। रामायण में महाभारत की अपेक्षा कवि-प्रतिभा की उपज काव्य-चमत्कार भी कहीं अधिक है। इसीलिए जहाँ महाभारत आख्यान-मात्र रह गया, रामायण अपने देश का आदिकाव्य है और उसके रचयिता महर्षि वाल्मीकि आदिकवि समझे जाते हैं। रामायण का विस्तार महाभारत से कम है, उसकी श्लोक संख्या २५००० के करीब है, महाभारत के वर्तमान संस्करण की १००००० के ऊपर। महाभारत में स्वयं उल्लेख मिलता है कि उसका पहला रूप २४००० श्लोकों का था। रामायण में भी भरती की गयी है, पर महाभारत की अपेक्षा बहुत कम। परवर्ती कवियों ने रामायण को ही सामने रखकर अपनी कवित्व-शक्ति का प्रदर्शन किया है।

वाल्मीकीय रामायण को आदर्श मानकर रचे गये ग्रंथों को दो भागों में बाँट सकते हैं, एक चरित-काव्य, दूसरे महाकाव्य। प्रथम में चरित-चित्रण पर अधिक जोर मिलता है, दूसरे में कवित्व पर। कुमारसंभव, रघुवंश, किराता-जुनीय, शिशुपालवध, नैषध-चरित बहुमूल्य महत्वपूर्ण महाकाव्य हैं। पदिये और कविता समुद्र की हिलोरो में डूबिये और उतराइये। इनमें कथानक का उपयोग केवल साधन के रूप में ही किया गया है। चरित-काव्यों में कथानक ही प्रमुख चीज़ है, काव्य गौण। चरित प्रचारार्थ लिखे गये, महाकाव्य केवल रसास्वादन के लिए। संस्कृत भाषा में अश्वघोष-कृत बुद्ध-चरित आदि चरित काव्य समझा जाता है, कुमारसंभव आदि महाकाव्य। रघुवंश में समस्त सूर्य-वंश के विस्तृत कथानक को उठाकर कालिदास ने सुरिलष्ट सुन्दर चरित-काव्य रचने का उपक्रम किया। उनको कार्यगुरुता देखकर संदेह था—

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चारुपविषया मतिः ।

तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥

कि वह भार सँभाल भी सकेंगे कि नहीं और चरितशैली को ऊपर उठा सकेंगे या नहीं। पर महाकवि की इस चरित-रचना में कथानक का भाग गौण रह गया और कवित्व का प्रमुख हो गया। वह अपनी कवित्व-शक्ति को दबाकर कथानक को प्रमुख नहीं कर पाये। फलस्वरूप रघुवंश की गणना महाकाव्यों में करनी पड़ी, न कि चरितों में और इसी कारण महाकाव्य के प्रमुख लक्षण, एकनायकत्व, में भी उत्तरकालीन साहित्य-शास्त्री विश्वनाथ को इस ग्रन्थ का समावेश करने के लिए महाकाव्य के नायक के बारे में इतना और जोड़ना पड़ा—

एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ॥

संस्कृत भाषा में महाकाव्य के आगे चरित-शैली नहीं ठहर सकी। इसने आश्रय पाया प्राकृत और अपभ्रंश में। अर्धमागधी प्राकृत का विमलसूरिकृत पउमचरित (पद्मचरित) प्राकृत भाषा का आदि चरितकाव्य समझा जाता है। इसमें राम के ही चरित्र का वर्णन जैन धर्म की दृष्टि से किया गया है। इस ग्रन्थ में रविसेन को इतना कम कवित्व दिखायी पड़ा कि उन्होंने इसी के आधार पर संस्कृत में पद्मचरित की रचना कर डाली। पर यह संस्कृत रचना भी महाकाव्य की पदवी को न पहुँच पायी। इसकी गणना पुराणच्छाया के कारण (जैन) पुराणों में की जाती है और इसका नाम पद्मपुराण भी पड़ गया है। इसके बाद बहुतेरे चरित बने। इनमें से कुमारपालचरित भविष्यदत्त-कथा, यशोधरचरित, नागकुमारचरित, करकण्डुचरित प्रमुख हैं और प्रकाशित हो चुके हैं। प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में चरित लिखने की प्रथा वर्तमान आर्य भाषाओं (हिन्दी आदि) तथा द्राविड भाषाओं (तामिल आदि) के साहित्यिक रूप धारण कर लेने के उपरान्त भी जारी रही। आज से प्रायः ढाई सौ वर्ष पूर्व शौरि नामक ग्रन्थ की रचना हुई। इसकी हस्तलिखित प्रति मद्रास की गवर्नमेण्ट ओरियण्टल लाइब्रेरी में मौजूद है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने जब रामचरितमानस की रचना की उस समय उनके ध्यान में यह संपूर्ण पूर्वकालीन चरित साहित्य रहा होगा। उन्होंने विषय की सामग्री “नानापुराणनिगमागम” से ली, विभागों के नाम रामायण से लिये और एक दोहा कहकर सात-आठ चौपाई और फिर एक दोहा और सात-आठ चौपाई यह क्रम अपभ्रंश के चरितकाव्यों से ग्रहण किया। मलिक मुहम्मद जायसी की पद्मावत में भी कुछ ऐसा ही क्रम है और वह भी चरित काव्य से ही लिया हुआ ज्ञान पड़ता है। फारसी में भी चरितकाव्य के ढंग की मसनवी नाम की रचनाएँ हैं पर उनमें यह क्रम नहीं दिखायी देता। जो कार्यभार महाकवि कालिदास ने रघुवंश का उपक्रम करते हुए उठाया था और जिसमें कथानक और काव्य को बराबरी न दे सके वही गोस्वामीजी ने सफलतापूर्वक निभा दिया है। मानस में कथानक और काव्य-रस समकक्ष दिखायी पड़ते हैं। वह उत्तम महाकाव्य भी है और उसमें श्री रामचन्द्रजी के संपूर्ण चरित्र का विशद चित्रण भी मौजूद है।

इस दो ढाई हजार साल से भारतीय साहित्य को दो महापुरुषों, राम और कृष्ण, के चरित बराबर सामग्री देते रहे हैं। दृश्य काव्य और अव्य काव्य दोनों का विषय इन्हीं दो के चरित का कोई न कोई अंश बना है। पतंजलि के महाभाष्य में कंसवध और बलिबंध इन दो दृश्य काव्यों का उल्लेख मिलता

है। प्रथम का संबंध कृष्ण के चरित्र से है। माघ का शिशुपालवध नाम का महाकाव्य भी कृष्णचरित्र का ही एक अंश है। इसी प्रकार अन्य उदाहरण दिये जा सकते हैं।

(२)

आलोचनात्मक दृष्टि से विश्लेषण करने से कृष्ण-चरित्र के हमें तीन मुख्य रूप दिखलायी पड़ते हैं—

१. धर्म-संस्थापक कर्मयोगी कृष्ण,
२. गोपीजनवल्लभ और राधाकृष्ण तथा
३. बालगोपाल

ऐतिहासिक दृष्टि से कृष्णचरित्र का प्रथम रूप सबसे अधिक प्राचीन तथा कम से कम काल्पनिक है। यह रूप हमें महाभारत में सुरक्षित मिलता है। इन कृष्ण को हम आजकल के शब्दों में राजनीतिज्ञ तथा दार्शनिक कह सकते हैं—आसुरी प्रवृत्तियों के प्रतीक कंस, जरासंध, जयद्रथ, दुर्योधन आदि का नाश करानेवाले तथा आर्य-धर्म के प्रतिनिधि पाण्डवों के पक्ष के समर्थक। धर्म-संस्थापन में अपने-पराये का भेद व्यर्थ है, यह तो आदर्श की रक्षा का प्रश्न है; फलतः अर्जुन के मोह को दूर करने के लिये इन्होंने धर्मक्षेत्र-स्वरूप कुरुक्षेत्र में महाभारत के युद्ध के अवसर पर गीता का उपदेश दिया तथा अधर्म-पक्ष के समर्थक भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य जैसे गुरुजनों का वध कराने में भी इन्हें लेशमात्र संकोच नहीं हुआ। आसुरी प्रवृत्तियों को कुचलने के लिये आसुरी उपायों का अवलंबन भी अनुचित नहीं बल्कि आवश्यक हो सकता है—आर्य-धर्म तो आर्यों के आपस के व्यवहार के लिए है—यह भी एक अत्यंत महत्वपूर्ण संदेश इनके अनेक व्यवहारों और उपदेशों से स्पष्ट है। भविष्य के संबंध में भी आशा का संदेश यह सदा के लिये छोड़ गये हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

अर्थात् अधर्म के बहुत अधिक बढ़ जाने पर यह असंभव है कि किसी न किसी असाधारण आत्मा का अवतार उसे नष्ट करने के लिये न हो।

किन्तु इन कृष्ण को और इनके सच्चे संदेश को भारतवासियों ने भुला दिया। फलतः आसुरी शक्तियों को कुचलने और आर्यधर्म की रक्षा करने की शक्ति देश ने खो दी। पर श्रीकृष्णजी को जनता कैसे भुला सकती थी? उनके चरित्र का एक नया पहलू धीरे-धीरे कवियों, दार्शनिक पण्डितों और धर्माचार्यों ने विकसित किया। यह थे गोपीजन-वल्लभ कृष्ण। अंत में इन्होंने ही राधाकृष्ण

का रूप धारण कर लिया। कृष्णचरित का यह रूप हमें महाभारत में विशेष नहीं मिलता, परंतु हरिवंशपुराण, श्रीमद्भागवत, गीतगोविन्द, विद्यापति पदावली और गोडीय वैष्णवों द्वारा प्रभावित साहित्य में निरंतर विकसित होता हुआ दिखलायी पड़ता है। हिन्दी का भक्ति तथा रीतिकाल का ब्रजभाषा साहित्य इस प्रवाह में पड़कर ऐसा बहा कि उसके पाँव ही पृथ्वीतल से उखड़ गये। गोपीकृष्ण और राधाकृष्ण की संयोग-वियोग-लीलाओं के सामने महाभारत के राजनीतिज्ञ श्रीकृष्ण के चरित्रों और उपदेशों की जनता को बिलकुल सुघ न रही। यह अवश्य है कि कृष्णचरित्र के इस नये रूप ने कवियों के हृदयों में अनगिनती कोमल कल्पनाओं का सृजन किया, रसराज शृङ्गार की अन्तर्तम अनुभूतियों का चित्रण करने के लिए उन्हें प्रेरित किया तथा भाषा के परिमार्जन और अलंकार विधान द्वारा काव्य को भूषित करने में उन्होंने अपनी ओर से कुछ उठा न रक्खा। धर्माचार्यों ने गोपीकृष्ण और राधाकृष्ण की भावना को लेकर एक नया दर्शनशास्त्र हो बना डाला जो अनेक सम्प्रदायों में उपनिषदों के समान गंभीर और रहस्यमय माना जाने लगा और जिसकी ध्वनि को लेकर कवियों ने अपनी कल्पनाओं के लिए नये-नये मार्ग ढूँढ़ निकाले।

कृष्ण-चरित्र का चरम विकास हम बल्लभाचार्य के पुष्टि मार्ग में बालगोपाल के रूप में पाते हैं। इस भावना को काव्यमय रूप महाकवि सुरदास ने अपने बाललीला-सम्बन्धी पदों में दिया है। यद्यपि इन चरित्रनायक के चरित्र का यह एक अति सीमित अंग था तथापि साथ में ही इसमें एक व्यापक नित्य आकर्षण भी संनिहित था। इष्टदेव के सम्बन्ध में बालगोपाल की भावना माझकता की दृष्टि से मनुष्य को ममता की साकार मूर्ति माता के कोमल हृदय के निकटतम पहुँचा देती है। असुर-संहारक कृष्ण राष्ट्र की कल्पना में एक बार फिर बालक हो गये और उनके साथ-साथ जनता का हृदय भी इस कल्पना के लालन-पालन में व्यस्त हो गया। सुरसागर का बाललीला-सम्बन्धी अंश अपने सीमित क्षेत्र में बहुत ही ऊँचा और साथ ही बहुत ही गहरा है, किन्तु यह भी कहना पड़ेगा कि कृष्ण चरित का यह एक ऐसा रूप है जो ऐतिहासिकता से और वास्तविकता से हमें इतनी दूर ले जाता है कि हम एक प्रकार से नये काव्यमय काल्पनिक जगत में विचरण करने लगते हैं।

कृष्णायन में श्रीकृष्णचन्द्रजी का संपूर्ण चरित्र हिन्दी जनता के सामने पद्यबद्ध, काव्य के रूप में आ रहा है और फलस्वरूप इस महान् चरित्रनायक के आदर्श तथा संदेश का सच्चा स्वरूप सर्वसाधारण को सुलभ हो सकेगा। “जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूर्ति देखी तिन तैसी”—यद्यपि यह पंक्ति श्रीराम-

चन्द्रजी के विषय में कही गयी है तथापि वास्तव में यह श्रीकृष्णजी के चरित्र पर अधिक उपयुक्त है और अक्षरशः घटित होती है। अपने देश में किसी अन्य महापुरुष के चरित्र में इतने भिन्न (और परस्पर विरोधी से) रूप नहीं मिलते जितने इस चरित्र के। सैकड़ों वर्षों की बहुमुखी भावनाओं के विकास के फलस्वरूप कृष्णचरित्र राष्ट्र की बहुमूल्य रहस्यमयी संपत्ति हो गया है जो लाखों और करोड़ों व्यक्तियों के हृदयों को सैकड़ों और सहस्रों वर्षों से आनन्द-मग्न करती रही है तथा नयी-नयी स्फूर्ति देती रही है। ईश्वर की कृपा से आज भी यह ज्यों की त्यों अद्भुत है। प्रस्तुत महाकाव्य के रचयिता ने कृष्णचरित्र के उपर्युक्त तीनों विकसित रूपों को संपूर्ण रूप से उपस्थित किया है। बाल-गोपाल और गोपीजनवल्लभ तथा राधाकृष्ण का स्वरूप सजीव भाषा में फिर हमारे सामने आ गया है। यह उचित ही है। राष्ट्र की सैकड़ों वर्षों की साधनाओं और प्रवृत्तियों को सहसा ठुकरा नहीं सकते, यह संभव ही नहीं। पर उसके साथ सुयोग्य ग्रन्थकार ने महाभारत तथा भगवद्गीता के धर्म-संस्थापक और कर्मयोग-प्रवर्तक कृष्ण को सच्चे वास्तविक रूप में हिन्दी भाषाभाषी जनता के सामने प्रथम बार उपस्थित किया है, और आर्य संस्कृति तथा धर्म की ओर प्रेरित किया है। वर्षों से कृष्णचरित्र के चारों ओर जो कुहरा सा एकत्रित हो गया था उसे दूर करके इस महान् चरित्रनायक के उज्ज्वल स्वरूप और तेज को अपने असली रूप में बीसवीं शताब्दी के इस महाकवि ने सफलतापूर्वक चित्रित किया है। यह इस युग और स्वदेश की वर्तमान परिस्थिति में आवश्यक था। इस कृति द्वारा ग्रन्थकार ने एक राष्ट्रीय आवश्यकता की पूर्ति की है।

(३)

प्रस्तुत ग्रन्थ गोस्वामीजी के मानस को आदर्श मानकर लिखा गया है। यह भी सात काण्डों में विभाजित है, इसमें भी दोहा चौपाई का वही क्रम है, इसकी भी भाषा अवधी है। सामग्री के चयन, संनिवेश, विभिन्न काण्डों के भीतर का कथाभाग इत्यादि कई बातों से पाठक को तुरन्त मानस और उसके रचयिता की याद आ जाती है। भाषा आदि के बारे में विचार करने के पूर्व इन सात काण्डों के विषय पर एक दृष्टि डाल लेनी आवश्यक है।

प्रथम (अवतरण) काण्ड में श्रीकृष्णजी के पूर्व की मथुरा की परिस्थिति, असुरों के अत्याचारों तथा उनके निवारण के लिए कृष्णजी के जन्म और उनकी बाल-लीलाओं तथा अलौकिक वीर कर्मों का प्रधान रूप से वर्णन है। ग्रन्थकार ने बाललीला संबंधी अंशों में सूरदास की तत्सम्बन्धी ललित भावनाओं और शब्दावली का जान-बूझ कर गुंफन किया है। आरम्भ का अंश पढ़ते ही

पाठक को यह विश्वास हो जाता है कि चरितनायक उनके सुपरिचित भगवान् कृष्ण हैं, कोई भिन्न व्यक्ति नहीं। सूरदास का वर्णन एक ही वस्तु को बार-बार तरह-तरह से चित्रित करने के कारण कुछ पुनरावृत्ति-युक्त और बिखरा-सा है, कृष्णायन में प्रबन्धकाव्य के अनुरूप वह संगठित मिलता है। कंस के भेजे हुए अनेक असुरों का वध कवि ने विस्तार से दिखाया है। उसे कृष्ण के चरित्र के इस पहलू को आगे चलकर विशेष रूप से विकसित करना है, इसलिए स्वाभाविक ही था कि इस पहलू पर जोर दिया जाता। गोपी और कृष्ण के प्रेम को अलुण्ण रखकर भी उसकी क्लृप्तता दूर कर दी है। गोपी-चीरहरण में समाजसुधारक कृष्ण का चित्र है, न कि व्यसनी विषयासक्त कृष्ण का, यह भी लेखक ने स्पष्ट कर दिया है। राधा को अवश्य ही लेखक ने कृष्ण की कान्ता कामिनी माना है और भक्ति का अवतार। राधा को प्रथम बार देखने पर कवि ने यह कहकर—

जनु कछु चीर-सिन्धु सुधि आयी,
औचक मोहित भये कन्हाई।

श्रीकृष्ण के मन में क्षीरसागर की यह पूर्व स्मृति जाग्रत कर राधा को परकीया होने से बचाया है। उनका विवाह कहीं नहीं हुआ (राधा का किसी से भी परिणय नहीं हुआ) तब भी दोनों की रासलीला और प्रेमलीला प्रति रात्रि वृन्दावन और गोकुल में होती है, ऐसा भान कवि की प्रतिभा को हुआ है। मथुराकाण्ड में जब ब्रज से लौटकर उद्धव कृष्ण के पास पहुँचते हैं तब भी भगवान् कहते हैं—

एकहि मैं अरु राधिका, द्वैत भाव भव-भ्रांति,
ब्रजजन समुक्ति रहस्य यह, लहिहैं पुनि सुख-शान्ति।

प्रथम काण्ड को छोड़कर गोपीजनवल्लभ के रूप में और राधा के प्रेमी के रूप में कृष्ण के चरित्र की झलक केवल एकवार फिर आगे चलकर गीताकाण्ड में कुरुक्षेत्र के मेले में मिलती है। इस प्रकार इस अंश को अनावश्यक और काल्पनिक विस्तार से दूर रखने की इस ग्रन्थ में चेष्टा की गयी है।

द्वितीय (मथुरा) काण्ड का मुख्य विषय कंस-वध और वसुदेव-देवकी तथा अन्य यदुवंशियों का कंस आदि असुरों से उद्धार है। परम्परागत कथानक तथा वातावरण में लेखक ने जहाँ-तहाँ छोटे-मोटे ऐसे परिवर्तन किए हैं जिन्हें जनता अनजाने ही ग्रहण कर सके और जो आधुनिक परिस्थितियाँ और आवश्यकताओं के अनुरूप हैं। श्रीकृष्ण के मथुरा में प्रवेश करते समय मथुरावासी जनता के हार्दिक भावों और व्यक्त तथा अव्यक्त कार्यों के वर्णन से आधुनिक राजनीतिक आन्दोलनों के समय की अपने नगरों की जनता की मनोवृत्ति

की सहज ही याद आ जाती है। और अत्याचार-पीड़ित निरस्त्र निःशस्त्र प्रजा-जन ऐसे अवसरों पर किस प्रकार आत्मपरित्राण और अत्याचार-निवारण में सहायक हो सकते हैं तथा कैसे बल प्राप्त कर सकते हैं, इस सबका भी यथेष्ट निर्देश कवि ने कर दिया है। कंस के वध के पश्चात् ही बंदीगृह टूटने की घटना फ्रान्स की क्रान्ति के समय 'बासील' के पतन से मिलती-जुलती है। कवि के ये शब्द मार्मिक हैं—

धरि पद राजद्रोह-पथ माहीं ,

सकत लौटि पाछे कोउ नाहीं ।

भारत में चक्रवर्ती राज्य स्थापित करने के लिए सुदृढ़ केन्द्रीय शासन की आवश्यकता है, इस भावना को भी यथेष्ट रूप में कवि ने सामने खड़ा किया है। कृष्ण की अवन्ति-यात्रा के जनपदों के स्थलों, वनों और पर्वतों के बहुतेरे सुन्दर चित्र उपस्थित किये गये हैं जो पढ़ते ही बनते हैं। उज्जैन में सान्दीपनि गुरु के पास गुरुकुल में कृष्ण और बलराम के अध्ययन के वर्णन के सिलसिले में प्राचीन गुरु-शिष्य-सम्बन्ध और ब्रह्मचर्य के आदर्शों का अच्छा वर्णन है। राजनीतिक सिद्धान्तों की चर्चा तो बराबर मिलती है। गुरु-दक्षिणा रूप कृष्ण ने गुरुपत्नी की इस इच्छा की पूर्ति, कि उसका एकलौता पुत्र जो कि कभी समुद्र-स्नान के समय लुप्त हो गया था लौटा लाया जाय, अपने अलौकिक चमत्कार से की है। इसी प्रकार का एक चमत्कार आगे चलकर आरोहणकाण्ड में मृत शिशु परीक्षित को फिर योग द्वारा जिला कर किया है।

तृतीय (द्वारका) काण्ड में कृष्ण और यदुवंशियों का मथुरा छोड़कर द्वारका चले जाने और वहाँ असुरों के त्रास से बचकर धन, जन, शक्ति इकट्ठी करके भारतवर्ष से असुरों के आतंक को हटाकर फिर आर्य-धर्म, संस्कृति और साम्राज्य के स्थापित करने के उद्योग का विशद वर्णन है। बम्बई को आधुनिक 'भारत का द्वार' समझे जाने की भावना को कवि ने द्वारका पर घटित किया है और द्वारका को भारत का द्वार मानकर उसकी अत्यावश्यक रक्षा पर जोर दिया है। करौंची और बम्बई की भाँति द्वारका को विदेशी यातायात का केन्द्र भी बताकर कवि ने द्वारका को वैभवशाली नगरी माना है। चारों ओर समुद्र से घिरी हुई द्वारका की प्राकृतिक और कृत्रिम सुन्दरता का वर्णन बढ़ा सजीव है। समुद्र के विविध दृश्यों का वर्णन कवि उसी आत्म-विश्वास से करता है जिससे कि स्थल का। समुद्र के अन्दर के दृश्यों की अत्यंत सुन्दर और वैज्ञानिक कल्पना का समावेश लेखक ने कौशल से पिछले काण्ड में ही कर दिया है। युवा कृष्ण के रुक्मिणी-परिणय, जाम्बवन्त कन्या का परिणय,

स्यमंतक मणि की कथा, कालिन्दी-कृष्ण-विवाह, सुभद्रा-हरण आदि कितने ही कथानक इस काण्ड में माला में मोतियों की भाँति पिरोये मिलते हैं। क्षत्रियों के विवाह में कन्या की योग्यता का एक मुख्य अंश सहाय-प्राप्ति और अरि-मर्दन भी होता है, यह भी कवि ने कई स्थलों पर स्पष्ट किया है। आगे चलकर महाभारत के दृश्य दिखाने हैं, इसलिए कौरव वंश में पाण्डु-पुत्रों की स्थिति आदि का भी आवश्यक कथानक द्वारकाकाण्ड से ही कवि ने आरंभ कर दिया है।

चतुर्थ (पूजा) काण्ड का कथानक विशेष रूप से पाण्डवों के सम्बन्ध का है। युधिष्ठिर नायक हैं, पर कृष्णायन के रचयिता ने अपने प्रबन्धकाव्य के अनुकूल महानायक कृष्ण का कथानक इस काण्ड में तथा आगे के काण्डों में भी अल्प होने पर भी सर्वोपरि रक्खा है। इस विषय में कवि की सफलता देखकर साधुवाद किये बिना पाठक नहीं रह सकता। चतुर्थ काण्ड का नाम पूजाकाण्ड इस कारण रक्खा गया है कि राजसूय यज्ञ में सर्व-पूज्य होने के कारण श्रीकृष्ण की प्रथम पूजा की गयी है। चेदिराज शिशुपाल के आपत्ति करने पर कृष्ण ने उसका वध करके असुर-संघ के एक प्रबल समर्थक को मिटा दिया। जिस कौशल से जरासंध-वध किया गया वह भी प्रशंसनीय है। राजसूय यज्ञ कराकर कृष्ण भगवान् के द्वारका लौट आने पर दुर्योधन के कुटिल परामर्श से प्रेरित होकर धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को द्यूत-क्रीड़ा के लिए बुलाया, उन्होंने पितृव्य की आज्ञा शिरोधार्य कर इस व्यसन में भाग लिया और शकुनि की कुटिलता से सर्वस्व गँवाकर वन की ओर प्रस्थान किया—यह सब कथानक भी इसी काण्ड में आ गया है। द्रौपदी-चौर-हरण और उसकी लाज की रक्षा का वर्णन बहुत चित्ताकर्षक है।

पंचम (गीता) काण्ड का आरंभ दुर्योधन और अर्जुन दोनों के द्वारा भगवान् कृष्ण से युद्ध में मदद करने की प्रार्थना से होता है। कृष्ण दूत बनकर हस्तिनापुर जाते हैं और उनकी इस अभिलाषा और उद्योग पर कि यह युद्ध यथासंभव न हो बार-बार जोर दिया गया है। इस सम्बन्ध में वर्तमान भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में गाँधीजी के नेतृत्व और तत्कालीन कृष्ण के नेतृत्व में विशेष समता दिखायी पड़ती है। दुर्योधन के हठ के कारण समझौता नहीं हो पाता और दोनों पक्ष युद्ध करके ही निर्णय करने का निश्चय करते हैं। इस बीच में कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण का मेला होने का समय आ जाता है और कृष्ण की अनुमति से दोनों पक्ष ऋषि-मुनियों के इस कथन का आदर करते हैं कि मेला होने के उपरान्त युद्ध छिड़े। इसके द्वारा कृष्णायन के रचयिता ने एक उच्च आदर्श को कार्यरूप में परिणत करने का मार्ग सुझाया है और

इशारे से अभी कुछ साल पूर्व की उस जघन्य स्थिति की ओर हमारा ध्यान खींचा है जिसमें क्रिसमस ऐसे सर्वमान्य त्योहार पर भी जर्मनी और इंग्लैण्ड अपनी लड़ाई न रोक सके थे। कुरुक्षेत्र के मेले के बाद ही युद्ध करने की चुनौती दुर्योधन की ओर से आती है और दोनों पक्ष युद्ध-क्षेत्र में आ डटते हैं। अर्जुन को मोह हो जाता है और भगवान् कृष्ण गीता का उपदेश करते हैं। गीताकाण्ड का अधिकांश उत्तर भाग भगवद्गीता के सरल, सुबोध तथा संपूर्ण अनुवाद के रूप में है। अनुवाद दोहा नंबर १०७ से प्रारंभ होता है, और गीता के प्रत्येक अध्याय के अंत का संकेत सोरटे के प्रयोग से किया गया है। इस अमूल्य ग्रन्थरत्न के सैकड़ों भाष्यों में से लोकमान्य तिलक के भाष्य की छाया लेखक के अनुवाद में स्पष्ट है।

17802

षष्ठ (जय) काण्ड में महाभारत के संपूर्ण युद्ध का वर्णन है। आरंभ के पूर्व युधिष्ठिर का भीष्म के पास जाकर आशीर्वाद पाने का वर्णन अद्भुत और हृदयद्रावक है। कर्ण के जन्म के सम्बन्ध में लेखक ने अंत तक रहस्य को कहीं प्रकट नहीं किया, पर साथ-ही-साथ उनको पांडु का ही कुन्ती से उत्पन्न कानीन पुत्र माना है। कुन्ती की लजा का कारण कर्ण का कानीन होना था, न कि सूर्य का पुत्र होना। द्रौपदी के पंचपतित्व को लेखक ने पूर्व जन्म की घटना का प्रभाव माना है। इस प्रकार महाभारत में सदाचार के विरुद्ध जो कुछ जुड़ा मिलता है, उसका निराकरण करने का प्रयत्न ग्रन्थकार ने किया है। नायकों के चरित्र पर जो धब्बे थे उनको भी यथासंभव लेखक ने या तो अन्यथा रूप दे दिया है, या बिल्कुल उड़ा दिया है। इस प्रकार अश्व-स्थामा (हाथी) के मरण की सूचना विषयक युधिष्ठिर की सत्यवादिता के विरुद्ध जो आरोप किया जाता है उसका कृष्णायन में कहीं उल्लेख नहीं है। जय-काण्ड का सारा कथानक कौरवों के सम्बन्ध का है, पर इस ग्रन्थ के रचयिता ने उसको ऐसा रूप दिया है कि महानायक कृष्ण का ही प्रभुत्व और प्रमुखत्व सब कहीं स्पष्ट हो रहता है। यह प्रबन्ध काव्य की रचना के सर्वथा अनुकूल है।

सप्तम (आरोहण) काण्ड का आरम्भ युधिष्ठिर के विजयी होकर पुरी में प्रवेश करने से होता है। चार्वाक युधिष्ठिर के मन में आत्मग्लानि और वैराग्य पैदा कर देता है और कृष्ण भगवान् को उनके मन को स्थिर और दृढ़ करने का श्रम करना पड़ता है। पर विजय में हर्ष और उल्लास नहीं आया और उदासीनता सभी ओर जड़ पकड़ती जाती है। इसी काण्ड में भीष्म का युधिष्ठिर को राजनीति का उपदेश है जो महाभारत से लिया गया है। पर दोनों में महत्वपूर्ण अन्तर यह है कि जहाँ महाभारत में पुरानी वर्णन-पद्धति के अनु-

सार एक प्रकरण में उच्च कोटि की राजनीति है तो दूसरे में गोदान प्रशंसा आदि, वहाँ कृष्णायन में केवल राजनीति से सम्बन्ध रखनेवाले बिखरे हुए अंशों को क्रम देकर वर्णन किया गया है। यह सामयिक आवश्यकताओं के सर्वथा अनुकूल हुआ है। कृष्णजी हस्तिनापुर से द्वारका पहुँचते हैं और वहाँ की विलासप्रियता और गृहकलह देखकर स्वर्गारोहण का निश्चय करते हैं। अंत में युधिष्ठिर के अश्वमेध का वर्णन भी आता है और इससे लौटकर कृष्ण, नारद की इच्छा के अनुकूल भौतिक शरीर के बारे में दुर्वासा के आशीर्वाद को सच्चा करने के लिए वन में जाकर विश्राम करते हैं और वहीं एक व्याध के तीर से उनके पाँव में चोट लगती है। इसी समय मैत्रेय ऋषि उपस्थित होते हैं। भागवत पुराण में भी मैत्रेय की उपस्थिति का उल्लेख है, पर कृष्णायन में कृष्ण के मुख से ऋषि को उपदेश कराया गया है। इस उपदेश में भारतीय दार्शनिक तत्वों का सार ललित सुबोध भाषा और समयानुकूल भावों में मिलता है। यह भाग कृष्णायन में बड़े महत्व का है। मैत्रेय को उपदेश करते करते कृष्ण योग द्वारा सदा के लिए आँखें मूंद लेते हैं।

(४)

कृष्णायन की भाषा अवधी है। इधर प्रायः सौ वर्ष से खड़ी बोली ने पूर्वकालीन साहित्यिक ब्रज और अवधी को विस्मृति और अवहेलना के गर्त में डाल रक्खा है। अवधी का साहित्यिक क्षेत्र में जीता-जागता रहना केवल रामचरित मानस के कारण संभव रहा है। यह नहीं कि अन्य रचनाएँ इस भाषा में उपलब्ध नहीं। मलिक मुहम्मद जायसी की पद्मावत मानस से भी तीस साल पहले (१५४० ई० में) लिखी गई थी। नूर मुहम्मद की इंद्रावती पद्मावत से प्रायः दो सौ साल पीछे (१७५७ ई० में) लिखी गयी और प्रकाशित है। जायसी के ग्रन्थ के प्रायः सौ साल बाद लालदास गुप्त ने (१६४३ ई० में) अवध-विलास लिखी। कुतबन की मृगावती और शेर निसार की यूसुफ-जुलैखा अवधी में हैं। यह सभी ग्रन्थ दोहा चौपाई में हैं। इनके अतिरिक्त धरणीदास का प्रेम प्रगास और शिवनारायण का गुर अन्यास भी पुराने अवधी ग्रन्थ, दोहा चौपाई में, विद्यमान हैं। अवधी के और भी छोटे-मोटे ग्रन्थ विकीर्ण इधर-उधर पड़े हैं। इस प्रकार यह सिद्ध है कि किसी समय अवधी एक सजीव साहित्यिक भाषा थी और यद्यपि संभवतः वह साहित्य में इतना महत्व और विस्तार न पा सकी जितना ब्रज भाषा को मिला, तब भी वास्तव में अवधी कम महत्व की नहीं है। प्रबन्धकाव्य की रचना के लिए ब्रज की अपेक्षा अवधी की प्रकृति अधिक अनुकूल जान पड़ती है। उचित होगा कि हिन्दी की

बोलियों में ब्रज गीतिकाव्य की भाषा है और अवधी प्रबन्ध काव्य की। अवधी की रचनाओं में कृष्णायन का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होगा, ऐसी हमारी धारणा है।

कृष्णायन की भाषा आधुनिक बोलचाल की अवधी नहीं है, वह है तुलसीदास के मानस की अवधी। उदाहरणार्थ, आज की अवधी में परसगों का काफी प्रयोग अन्य वर्तमान आर्य भाषाओं की तरह है। कृष्णायन के रचयिता ने तुलसीदास की भाषा अपनायी है। यह निश्चय है कि तुलसीदास की भाषा से समस्त हिन्दी संसार परिचित है और उसे मानस की परम्परा के कृष्णायन के पढ़ने में वर्तमान अवधी की रचना की अपेक्षा अधिक सुविधा होगी। कृष्णायन की भाषा संस्कृत-प्रचुर है, तुलसीदास की भाषा से कहीं अधिक। तुलसीदास ने बराबर तद्भव रूपों का अधिक प्रयोग किया है, द्वारकाप्रसाद मिश्र ने तत्सम शब्दों का। वर्तमान भाषा में तत्सम शब्द-प्रचुरता गुण है या दोष इस पर हिन्दी संसार में थोड़ा-बहुत मतभेद है, पर अधिकांश जन और साहित्य-सेवी तद्भव रूपों को त्याग कर तत्सम की ही ओर झुक रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में यदि कृष्णायन के रचयिता बहुमत के पोषक हों तो कोई आश्चर्य नहीं।

आरम्भिक प्रतिज्ञा में ही ग्रन्थकार ने स्पष्ट कर दिया है कि वह पूर्ण ब्रह्म हरि के विमल यश का वर्णन करने जा रहा है और सूर और तुलसी का आभार उसने इन शब्दों में माना है—

तुलसी-शैलिहि मोहि प्रिय लागी ,
भाषहु बिनु विवाद रस-पागी ।
सूरदास-पद-ज्योति सहारे ,
बरने बाल चरित मैं सारे ।

महर्षि वेदव्यास को बार-बार कवि ने आर्य संस्कृति और धर्म का संस्थापक और रक्षक बताया है और कृष्ण भगवान के मुँह से भी उनकी अत्यधिक प्रशंसा करवायी है। इस तरह कृष्णायन में प्रायः सर्वत्र इन तीन महाकवियों के ग्रंथों का प्रभाव मिलता है, क्या विषय-सामग्री और क्या भाव की अभिव्यक्ति में। महाभारत के कई अंशों का यहाँ भावानुवाद मिलता है। इनके अतिरिक्त कालिदास, भारवि, भवभूति, माघ आदि की भी छाया कवि के भावों में जहाँ-तहाँ मिलती है। इसको लेखक ने छिपाया नहीं, प्रारम्भिक प्रतिज्ञा में ही स्पष्ट कर दिया है—

अदपि ध्येय निज करहुँ न त्यागा ,
मधुप-स्वभाव मोहि प्रिय लागी ।

छूमहिं अकिंचन जानि सुजाना,
रंचहु उर न काव्य अभिमाना ।
मधुप-स्वभाव द्वारा पूर्ववर्ती कवियों के भावों के ग्रहण के कुछ उदाहरण
नीचे लिखे हैं—

- (१) तजि सुमेह प्राची दिशि आयी
उदित दिनेश भुवन - सुखदायी ।
तमस-असुर हति, हरि शशि-शासन
बसेउ भानु उदयाद्रि-सिंहासन ।
उडुगण चीण, कुमुद श्री-हीना ;
अंध - उलूक तेज-हत, दीना ।

—मथुराकाण्ड, दोहा ४८ के अन्तर्गत

कुमुदवनमपश्चि श्रीमदम्भोजवृन्दं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः ।
उदयमहिमरिमर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः ॥

—माघ

- (२) धन, यौवन, प्रभुता, अविवेक,
जुरे सकल, नहीं अंकुश एक ।

—द्वारकाकाण्ड, दोहा १७ के अन्तर्गत

यौवनं धनसंपत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥

—कालिदास

- (३) चारिद बसत दूरि नभ माहीं,
मृगपति पहुँच तहाँ लगि नाहीं ।
तबहुँ सुनत धन गर्जन घोरा,
करत कटाक्ष गरजि तेहि ओरा ।
तेजस्विन उर सहज अमर्षा,
सहत न कबहुँ शत्रु - उत्कर्षा ।

—पूजाकाण्ड, दोहा ११८ के अन्तर्गत

किमपेक्ष्य फलं पयोधरान्
ध्वनतः प्रार्थयते मृगाधिपः ।

प्रकृतिः खलु सा महीयसः
सहते नान्यसमुन्नति यया ॥

—भारवि

(४) मृत्यु अवार्य मर्त्य हित तैसे ।
चय परिणाम चयहि जग माहीं ,
कहँ प्रक ई अवनति जहँ नाहीं ?

—जयकाण्ड, दोहा २६२ के अन्तर्गत

सर्वे ज्ञयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।

संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तञ्च जीवितम् ॥

—योगवासिष्ठ

(५) रवि-सम कर्षि स्वरूप धन वारी ,
बरसि सहस गुण करत सुखारी ।

—आरोहणकाण्ड, दोहा १२७ के अन्तर्गत

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत् ।

सहस्रगुणमुत्सृष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥

—कालिदास (रघुवंश)

(६) मृगहु शृंग-सोहराय मृगि, रहेउ पुलक उपजाय ,
कुसुम-चपक मधु प्रेयसिहिँ, मधुपहु रहेउ पियाय ।

—द्वारकाकाण्ड, दोहा ३७

मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे
पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः ।
शृंगेण च स्पर्शनिमीलिताक्षीं
मृगीमकण्डूयत कृष्णसारः ॥

—कालिदास (कुमारसम्भव)

मानस में भी इसी प्रकार, इससे भी अधिक, भाव पूर्ववर्ती ग्रन्थों, अध्यात्म रामायण, हनुमन्नाटक आदि के मिलते हैं, पर उनसे गोस्वामी जी के गौरव में कोई क्षति नहीं होती ।

जिस प्रकार ऊपर उल्लिखित भाव कवि ने ग्रहण किये हैं उसी प्रकार कथानक का क्रम भी कहीं-कहीं अन्य ग्रन्थों से लिया है । पूजाकाण्ड का अंतिम भाग महा-भारत और किरातार्जुनीय में आये हुए भीम-द्रौपदी के संवादों की याद दिलाता है ।

कवि ने जायसी का अनुसरण करते हुए अपने सारे ग्रन्थ में केवल तीन छंदों (दोहा, सोरठा, चौपाई) का प्रयोग किया है । तुलसीदास ने अवसर के

अनुकूल अन्य कई छंदों का आश्रय लिया है। मानस से भी वृहत् आकार के ग्रन्थ में यदि कुछ और छंदों का समावेश होता तो अच्छा था। भाषा-सम्बन्धी एक त्रुटि देख पड़ती है। आर्य भाषाओं में जो समास का क्रम है उसका उल्टा क्रम कवि ने जगह-जगह अपनाया है। यह उचित नहीं है। उदाहरणार्थ—दिन-प्रति, द्रुम संदेह, जाया वीर, रथ प्रति, प्रान्त प्रति, सर्वस्व-दृत, पालककर्ण की जगह होना चाहिए—प्रति दिन, संदेह द्रुम, वीर जाया, प्रति रथ, प्रति प्रान्त, दृत सर्वस्व, कर्णपालक।

(५)

कृष्णायन पदने का अधिकारी कौन है ? इसके लिखने का प्रयोजन क्या है ? इत्यादि प्रश्नों का भी समाधान इस भूमिका में संक्षेप में होना चाहिए। कवि के हृदय में एक गहरी अनुभूति है कि अपने पददलित राष्ट्र का त्राण कृष्ण सरीखा ही कोई नेता कर सकता है, जिसके हृदय में आर्यधर्म और संस्कृति का गौरव हो, जो एकछत्र राष्ट्र का अनन्य भक्त हो और जो कृष्ण की भाँति नितान्त निःस्पृह हो। वह अनार्य संस्कृति से दूर रहना चाहता है और देश से आसुरी संस्कृति को निकाल फेंकना चाहता है। आर्य और अनार्य संस्कृति के परस्पर भेद की ओर बार-बार तरह-तरह से कवि ने संकेत किया है। आर्य संस्कृति में मनुष्येतर जीवों, यहाँ तक कि वृक्षों, पर भी दया की भावना है, अनार्य संस्कृति में मनुष्य के प्रति मनुष्य का बन्धु-प्रेम नहीं। दोनों में जन्म-सिद्ध कोई भेद नहीं इसकी ओर इन जोरदार शब्दों में संकेत है—

शृंग अनार्य-ललाट न जामा,
आर्य-भाल नहि विधु अभिरामा।

अनार्य संस्कृति का तत्त्व आरोहणकाण्ड में चार्वाक की वक्तृता में और आर्य का उद्धव, व्यास, भीष्म, कृष्ण के उद्धारों में तथा युधिष्ठिर के आचरण में मिलता है। अवांछनीय विदेशी प्रभाव का कवि घोर विरोधी है। आरम्भ में कृष्णायन के पदने का कौन अधिकारी है इसका विवरण देते हुए कवि कहता है—

जिनहि न धर्म, न संस्कृति ज्ञाना,
जिनहि गरल सम शास्त्र पुराणा,
जीवन-तर्हि समूल विनाशी,
जे नव बीज वपन अभिलाषी,
उदधि पार के नित नव वादा,
घरत शीश जे मानि प्रसादा,

पर-वश तन सँग मनहू आपन ,
कीन्हेउ जिन पर-चरण समर्पण ,
नात पुरातन जिन सब तोरा ,
तिन हित यह प्रयास नहि मोरा ।

प्रचलित प्रगतिवादों के प्रति कैसी घृणा है और स्वदेशी का कैसा निरछल प्रेम ! आगे चलकर जयकाण्ड में कवि फिर कहता है—

गहत त्यागि निज जे पर धर्मा ,
निर्मर्याद सदा तिन कर्मा ।

महाकाव्य में खल निन्दा रूपी अंग की पूर्ति इन अंशों से होती है ।

पाठकों को ध्यान रखना चाहिए कि इस महाकाव्य का प्रणयन कृष्ण-मंदिर (जेल) में हुआ है । आरम्भ ही कितना हृदय-द्रावक है—

जन्मेउ बंदी-धाम, जो जन जननी मुक्ति हित ,
बंदहुँ सोह धनश्याम, मैं बंदी, बंदिनि-तनय ।

कवि ने जगह-जगह राष्ट्र के पददलित होने पर और मातृभूमि के बंदिनी होने पर क्षोभ, दुःख और रोष प्रकट किया है और तरह-तरह से संकेतों द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने की ओर प्रेरित किया है । आसुरी गणों के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए, इस विषय में अक्रूर की उक्ति है—

छलिन संग जे छल नहि करहीं ,
दलित परास्त मूढ़ ते मरहीं ।

मथुरा काण्ड में उदधि के ये वचन—

दैत्य, यवन, मुर नाना जाती ,
आसत भारतमहि दिन राती ।

आज की लूट-खसोट की ओर संकेत करते हैं ।

कवि को हृदयहीन बुद्धि-साम्राज्य नापसन्द है । इसका सुन्दर चित्रण उसने कितने सुन्दर शब्दों में किया है—

बुद्धि-भावना संतुलन, आर्य धर्म आधार ,
नष्ट भावना आजु प्रभु ! शेष बुद्धि-व्यभिचार ।

चंचल मानस, थिर न विचारा ,
मन क्षण कछु, क्षण अन्य प्रकारा ।
आत्मघात - पथ जनु बौरायी ,
ध्येय-विहीन रहे नर धायी ।

अनुचित ज्ञानोपासन नहीं,
 श्रद्धा बिनु न सार तेहि माहीं।
 भक्ति सहाय लहत जब ज्ञाना,
 सकत तबहि करि नर-कल्याणा।
 सृजन शक्ति ताही महँ होई,
 प्रकटत प्रतिपन्न जीवन सोई।
 बुद्धि-जीवि हम मुनि जग माहीं,
 सकत ज्ञान दै श्रद्धा नाहीं।
 तेहि हित प्रभु ! अवतार तुम्हारा,
 तुम कृति, भक्ति, ज्ञान साकारा।

— द्वारकाकाण्ड, दोहा १४६

श्रीकृष्ण के चरित पर जितने लांछन लगाने संभव थे, उनको कवि ने पूजा-काण्ड में शिशुपाल के मुँह से कहलाया है। उनमें एक यह भी है—

वत्सर्हि जदपि अश्वम संहारा

—दोहा, ५२

यही लांछन महात्मा गाँधी पर कुछ लोग लगाते हैं ! पर श्रीकृष्ण वंध्या आसक्ति तथा वंधा आसक्ति का भेद भली प्रकार जानते थे। यह भेद आरोहणकाण्ड में (दोहा ३३ और ३४ के अन्तर्गत) स्पष्ट किया गया है। इसलिए वत्सवध आदि कर्म भी उन्हें संसृति में नहीं बाँध सके। श्रीकृष्ण ने पूर्व दिशा में दैत्य का संहार करके सोलह हजार एक सौ गलित-सतीत्य कुमारियों को दुष्ट के चंगुल से मुक्ति दी। अपनी दशा पर वे रोयीं-बिलखीं और कहने लगीं कि उनको कौन स्वजन आश्रय देगा। कृष्ण भगवान् ने उनको पत्नी रूप से स्वीकार कर सत्यभामा आदि के समकक्ष पदवी दी। आततायियों द्वारा भगायी हुई स्त्रियों के कल्याण का यह ऊँचा मार्ग प्रदर्शित है।

इस प्रकार कितनी ही उपयोगी सामग्री कृष्णायन में सुधार के पोषण और कुरीतियों के निवारण के लिए सर्वत्र फैली मिलेगी। भूमिका में उसकी ओर केवल संकेत किया जा रहा है। इस ग्रन्थरत्न में केवल कृष्ण-चरित या महा-भारत की कथा नहीं है। इसमें देश की धार्मिक तथा सांस्कृतिक विचारधारा का वर्तमान युग की आवश्यकताओं के अनुरूप, पुनर्निर्माण किया गया है। प्राचीन तत्त्वों और आदर्शों का चित्रण नये और सुबोध रूप में मिलता है। उद्योग यह है कि जो भेद जनता की विचारधारा और साहित्य के बीच किन्हीं कारणों से आ गया है वह मिट जाय और साहित्य का जो कर्तव्य 'कान्ता सम्मित' उपदेश देने का है वह निभ जाय।

काव्य-परम्परा में यह ग्रन्थ रीतिकालीन काव्य ग्रन्थों से सर्वथा भिन्न है। यहाँ न तो है बुद्धि को परास्त कर देनेवाला चित्रकाव्य, न-दुर्गम श्लेष, न यमकों का वैचित्र्य। इसमें मिलता है उच्चकोटि का काव्य। प्रायः सभी रसों का समावेश इस ग्रन्थ में मिलता है, पर अधिकांश में अद्भुत, करुण, रौद्र, वीर और भयानक का चित्रण है। शृङ्गार कम है पर जो है वह उच्चकोटि का, निर्दोष, पवित्र, उल्लासवर्धक। हास्य का पुट बहुत कम है, जो है वह सुन्दर बन पड़ा है। वीभत्स भी नगण्य है। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, विरोधाभास, परिसंख्या आदि श्रेष्ठ अलंकार मानस की भाँति यहाँ भी यथेष्ट हैं। समुद्र, ऋतु, प्रातःकाल, सन्ध्या, विवाह, अभिषेक आदि सभी आवश्यक वस्तुओं के वर्णन यहाँ भी मौजूद हैं जिनमें से बहुत से सजीव हैं और अच्छे बन पड़े हैं। वर्णन सभी भारतीय जनता की चिर-परिचित परम्परागत शैली में हैं। रोचकता में कमी नहीं आने पायी है और साथ ही काव्य सुबोध हो गया है। कुछ वर्णनों को पढ़कर तो लेखक की निरीक्षण शक्ति की प्रशंसा किये बिना पाठक नहीं रह सकता। भाव-शबलता आदि के भी अच्छे उदाहरण इस ग्रन्थ में मिलते हैं।

कृष्णायन प्रबन्ध काव्य है। हिन्दी के वर्तमान युग में मुक्तक काव्य (गीत आदि) का अधिक चलन है और प्रबन्ध काव्य थोड़े ही लिखे गये हैं। दूसरी ओर सभी आधुनिक कवि गीत लिखते हैं। मुक्तक की अपेक्षा प्रबन्ध काव्य की रचना अधिक कठिन और परिश्रम-साध्य है। कृष्णायन बृहत् प्रबन्ध है। आजकल छायावाद और रहस्यवाद की धारा अधिक प्रचलित है। कृष्णायन के रचयिता ने इनको न उठाकर इतिवृत्त का आश्रय लिया है। वर्तमान भारत में अंग्रेज़ी पढ़ी लिखी जनता के बीच ईश्वर की भावना या तो लुप्त हो गयी है या है तो बहुत निर्बल। कृष्णायन के कवि का प्रतिपादन ईश्वर का ही नहीं, सगुण ईश्वर का है और वह उसी की स्तुति और प्रशंसा करता है। उसने बुद्धिवाद के युग में परम्परावाद का प्रचार करना चाहा है। वर्णन-शैली सर्वथा सुगम और स्वदेशी होते हुए भी वर्तमान हिन्दी काव्य-धारा की शैली से भिन्न है। इन बातों से लगता है कि वह कोई विचित्र बात करने जा रहा है। परन्तु इस विचित्रता का समाधान कवि के व्यक्तित्व से होता है। ग्रन्थकार राजनीतिक कार्यकर्ता ही नहीं, उसकी गणना देश के प्रमुख नेताओं में है। वह महात्मा गांधी का अनुयायी है। उसका लक्ष्य कुछ लाख की संख्यावाली पढ़ी-लिखी जनता नहीं, बल्कि भारतवर्ष के गाँवों में फैले हुए, रूढ़ियों में श्रद्धा और विश्वास रखनेवाले जन-समुदाय हैं। महात्मा गांधी की तरह उसकी दृष्टि उन करोड़ों मनुष्यों की ओर है। वह उनके अंतस्तल में आधुनिक आवश्यकताओं के अनुकूल थोड़े-बहुत

नवीन विचारों को भरकर उनको साहसी स्वावलम्बी मनुष्य बनाना चाहता है। महात्माजी के विरुद्ध घड़ी की सुइयों की पीछे हटाने का उद्योग करने का जो लाल्छन लगाया जाता है, वही द्वारकाप्रसाद मिश्र के विरुद्ध लगाया जा सकता है। मिश्रजी इसे इष्टापत्ति समझते हैं—

परम्परा - प्रिय मति मैं पायी ,
पैतृक संपत्ति तजि नहिं जायी ।
करि तप ऋषिन लहेउ जो ज्ञाना ,
भयेउ न आजहु सो निष्प्राणा ।
बीज रूप सब निज ठर भारी ,
माँगति कर्मभूमि नव वारी ।

बाजी जो ब्रज बाँसुरी, अजर, अदपि प्राचीन ,
भक्त-श्रवण आजहु सुनत, युग संगीत नवीन ।

वह प्राचीनता को कायम रखकर नवीनता लाना चाहते हैं। संपूर्ण भारत राष्ट्र की जनता का कल्याण उनका ध्येय है। उसके संस्कारों को नवीन साहस देकर उसमें वे जान फूँक देना चाहते हैं। ईश्वर उनके प्रयत्न को सफल करे। साहित्यिक क्षेत्र में भी पण्डित द्वारकाप्रसाद मिश्र अपरिचित नहीं हैं। हिन्दी-संसार उन्हें जबलपुर की श्रीशारदा, लोकमत, सारथी के सम्पादक के रूप में जानता है। आज वे उसके सामने कवि रूप में उपस्थित होते हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी जनता उनके इस रूप का भी आदर और स्नेह से स्वागत करेगी। दशरूपकार धनञ्जय ने कहा है—

कस्यचिदेव कदाचिदयया विषयं सरस्वती विदुषः ।

घटयति कमपि तदन्यो व्रजति जनो येन वैदग्ध्यम् ॥

मिश्रजी ने एक आवश्यक अंग की पूर्ति की है। यह ग्रन्थ सब वर्गों और श्रेणियों के आबाल-वृद्ध-जनों के काम का सिद्ध होगा। रामचरित पर अद्वितीय प्रबन्ध काव्य मानस के रूप में भाषा में था ही। आज कृष्णचरित पर भी उसी टकर का अमूल्य ग्रन्थरत्न हिन्दी भाषा पा गयी जिससे उसका भण्डार और भरा-पूरा हो गया।

हम गर्व और उल्लास के साथ अपने चिरपरिचित स्नेही मित्र की इस अमर कृति को हिन्दी संसार के सामने उपस्थित करते हैं। हमें पूरा विश्वास है कि हिन्दी भाषा-भाषी इसे पदकर कृतार्थ होंगे।



अवतरण काण्ड



सोरठा:—जन्मेउ बंदी-धाम, जो जन जननी मुक्ति हित ,
 बंदहुँ सोइ घनश्याम, मैं बंदी, बंदिनि-तनय ।
 जेहि संसृति विस्तार, की-हेउ कीड़ा हेतु निज ,
 बंदहुँ रस-आगार, कलाकार सोइ प्रथम हरि ।
 रच्छे श्रुति इतिहास, कलि-वारिधि बूझत निरखि ,
 बंदहुँ वेदव्यास, ज्ञान-मूर्ति कृष्णहि स्वयम् ।
 बंदहुँ तुलसीदास, मत-रवि-भासित-ज्ञान-धन ,
 सतत अनंत निचाम, नत वरसत महि काव्य-जल ।
 युग युग हरि पद चूमि, भुक्ति, मुक्ति, जय जेहि लही ,
 बंदहुँ भारत भूमि, हरि-जननी, हरि-यश-मयी ।

बोहा :—सुरसरि-हत-पद-पद्म रज, पुण्य भूमि निर्माण ,
 संचित चरणोदक उदधि, लहरत करि यश गान । १

मनुजहु तेहि रज वारि प्रजाता,
 दृढ़वत रहत सहज हरि-नाता।
 तजि भव भोग धरत हरि-ध्याना,
 पावत परब्रह्म भगवाना।
 सौपि प्रभुहिं कर्मज फल सारे,
 पाप पुण्य गत होत सुखारे।
 ताते भोग-भूमि महि सारी,
 कर्म-भूमि इक जननि हमारी।
 संचित पुण्य न जब लगि होई,
 पावत जन्म न यहि महि कोई।
 भोगत देव जदपि सुख नाना,
 स्वर्ग न मिलत मोक्ष निर्वाणा।
 क्षीण पुण्य सुख विभव विनाशा,
 बाँधत तिनहि बहुरि भव-पाशा।
 ताते जब तब हरिहिं रिभायी,
 जन्मत सुर भारत महि आयी।

दोहा :— जानि आत्मजा, लखि चरण, अर्पित तन, मन, प्राण,
 होत सगुण निर्गुण हरिहु, लखति भूमि भगवान ! २

जन्म हेतु कबहुँक जन-त्राणा,
 कबहुँ युगोचित ज्ञान-प्रदाना।
 जो कछु धर्म कर्म यहि देशा,
 सो सब आपु दीन्ह विश्वेशा।
 जबहिं म्लेच्छ भारत चढ़ि आवहिं,
 संस्कृति, धर्म, सुनीति नशावहिं,
 हरिहिं पुकारति भारत माता,
 तब तब जन्म लेत जन-त्राता।
 ये अंशान अवतार कहावत,
 कछुक ईशता प्रभु दरसावत।
 भयेउ पूर्ण एकहि अवतारा,
 जब हरि कृष्ण रूप ब्रज धारा।

प्रकटे भुवन-विमोहन वेषा ,
 विश्वहिं दीन्ह अभय संदेशा ।
 खल-शिक्षण जन-रक्षण कीन्हा ,
 धरणिहिं धर्मराज प्रभु दीन्हा ।

दोहा :— भयेउ कला षोडश सहित, कृष्णचंद्र अवतार ,
 पूर्ण ब्रह्म हरि यश विमल, बरनहुँ मति अनुसार । ३

ज्ञान ध्यान नहिं कछु मम पासा ,
 भक्ति न अचल, न बल विश्वासा ।
 मूल भाव, कछु कवितहु नाहीं ,
 चलन चहहुँ गहि कवि परिछाहीं ।
 तुलसी-शैलिहि मोहिं प्रिय लागी ,
 भाषहु विनु विवाद, रस-पागी ।
 सूरदास-पद-ज्योति सहारे ,
 बरने बाल चरित मैं सारे ।
 जदपि ध्येय निज कतहुँ न त्यागा ,
 मधुप-स्वभाव मोहिं प्रिय लागा ।
 छमहिं अकिंचन जानि सुजाना ,
 रंचहु उर न काव्य अभिमाना ।
 एक यहहि अभिलाषा मोरी ,
 सुनहिं कृष्ण-यश लाख-करोरी ।
 मोहिं भरोस पढ़ि-गुनि आद्यंता ,
 छमिहैं सकल दोष मम संता ।

दोहा :— दण्डनीय अपराध यदि, बंदनीय हरि नाम ,
 रुचत जिनहि नहिं हरिचरित, मोहि न तिन सन काम । ४

जिनहिं न धर्म, न संस्कृति ज्ञाना ,
 जिनहिं गरल सम शास्त्र पुराणा ,
 जीवन-तरुहिं समूल विनाशी ,
 जे नव बीज वपन अभिलाषी ,

उदधि-पार के नित नव वादा ,
 धरत शीश जे मानि प्रसादा ,
 पर-वश तन सँग मनहू आपन ,
 कीन्हैउ जिन पर-चरण समर्पण ,
 नात पुरातन जिन सब तोरा ,
 तिन हित यह प्रयास नहिं मोरा ।
 परंपरा-प्रिय मति मै पायी ,
 पैटक संपत्ति तजि नहिं जायी ।
 करि तप ऋषिन लहेउ जो ज्ञाना ,
 भयेउ न आजहु सो निष्प्राणा ।
 बीज रूप सब निज उर धारी ,
 माँगति कर्मभूमि नव वारी ।

बोहा :— बाजी जो ब्रज बाँसुरी, अजर, जदपि प्राचीन ,
 भक्त-श्रवण आजहु सुनत, युग संगीत नवीन । ५

सकत जो स्वल्प-मतिहु यश गायी ,
 सो केवल हरि-चरित बड़ाई ।
 प्राची दिशा निरखि रवि-रोली ,
 देत कमल विह्वल मुख खोली ।
 भरत भुवन जब तंत्री-नादा ,
 प्रकटत फणिहु सलय आह्लादा ।
 बौरत विपिन विलोकि रसाला ,
 गावत कोकिल विवश विहाला ।
 व्योम विलोकि घटा घन घोरा ,
 उठत नाचि आपुहि वन मोरा ।
 उपवन निरखि यूथिका फूली ,
 गुंजत भृंग रंग निजै भूली ।
 गगन विलोकि उदित रजनीशा ,
 गावत लहरि आपु वारीशा ।
 चंद्रकांत मणि उरहु पसीजी ,
 आपुहि आपु जात रस भीजी ।

बोद्धा :— हरि-चरितहि विरचत कविन, रचत चरित कवि नाहि ,
अस गुनि गावहुँ हरि-सुयश, सुनि भ्रम भीति नसाहि । ६

भारत-हृदय आर्यजन-धामा ,
जनपद शूरसेन अभिरामा ।
जहँ गोवर्धन सोह पहारा ,
तरुवर सघन कंदरा सारा ।
चूमि तमाल-द्रुमन आनंदिनि ,
बहति निकुंजन जहँ रवि-नंदिनि ।
जहाँ रम्य वृन्दावन, मधुवन ,
महि अवतीर्ण मनहुँ वन नंदन ।
ताल-फलन जहँ वन-श्री श्यामा ,
दाड़िम-फूलन-फलन ललामा ।
हरि जहँ अनिल बकुल-आमोदा ,
श्रान्त पान्थ मन भरत प्रमोदा ।
विपिन विपिन जहँ नयन-रसायन ,
पुलिन पुलिन मंजुल कामायन ।
जहँ तरु तरु अलि-रव वाचाला ,
कुंज कुंज पिक-गायन-शाला ।

बोद्धा :— शोभित दिशि दिशि ब्रज जहाँ, रम्य गोपजन-ग्राम ,
ताते ब्रज, ब्रजमण्डलहु, अन्य पुराय महि नाम । ७

तृण सुकुमार चरत जहँ कानन ,
विचरत तृप्त, निरामय गोधन ।
रंभा-रव जहँ श्रुति-सुखदाई ,
प्रीवा-धंटी ध्वनि वन छाथी ।
जहँ स्वच्छंद चरावत धेनू ,
वादत गोप मधुर ध्वनि वेणू ।
जहँ रसाल वन, वंजुल-पाली ,
गावति प्रीति गीत गोपाली ।
सुनि काकली मुरलि मधु संग ,
भूलत जहँ तृण चरन कुरंगा ।

धवलित महि जहँ फेन-उद्गिरण ,
 पूरित धृत-आमोद समीरण ।
 जहँ मंथन-ध्वनि घन-गंभीरा ,
 सुनि चातक आनंद अधीरा ।
 अहोरात्र शुचि क्षीरस्नाता ,
 महि क्षीरोद जहाँ साक्षाता ।

दोहा :—भोगत जहँ द्वापर युगहु, कृत युग गोप अशोक ,
 सुकृतिन हित महि अवतरित, ब्रज मिस जुन गोलोक । ८

सोरठा :—पावन प्रांत विशाल, ब्रजमण्डल सुषमा-सदन ,
 शोभित जुन वर माल, भारत वक्षस्थल विशद ।

शासक यदुवंशिन रजधानी ,
 मथुरापुरी धान्य धन खानी ।
 क्रीडति पुर सँग जमुन-तरंगा ,
 जुन सुरपुर सँग व्योमग गंगा ।
 राजभवन जुन दुर्ग महाना ,
 यंत्र, शतघ्नी आयुध नाना ।
 सुधा-धवल अट्टालक धामा ,
 जुन शशिलोक नगर अभिरामा ।
 विपणि धनेश-धाम प्रतिरूपा ,
 हेम रत्न मणि विविध अनूपा ।
 गुरुकुल, शिल्प-कला-गृह नाना ,
 धारागृह, उपवन, उद्याना ।
 बहु आमोद-प्रमोद-निकेतन ,
 सुन्दर गायन, वादन, नर्तन ।
 हय, गय, रथ, जन-रथ पथ माहीं ,
 महापुरी मथुरा सम नाहीं ।

दोहा :—नगर नारि नर शुचि सुभग, वीर धीर मतिमान ,
 उग्रसेन यादव-पतिहु, महि अमरेश समान । ९

बरनहुँ किमि यदुकुल-विस्तारा ,
 जहँ हरि आपु लीन्ह अवतारा ।
 भोज, वृष्णि, अंधक बहु शाखा ,
 भाँति अनेक पुराणन भाखा ।
 पृथक-पृथक नायक प्रति वंशा ,
 उग्रसेन अंधक अवतंसा ।
 कृतवर्मा, शतधन्वा भ्राता ,
 भोज वंश भूषण विख्याता ।
 वृष्णि वंश वसुदेव सुजाना ,
 अक्रूरहु, सात्यकि युयुधाना ।
 सकल प्रतिस्पर्धी कुल-नायक ,
 उग्रसेन यादव-अधिनायक ।
 प्रजा, वंश-हित नित उर धारे ,
 बैठत राज-सभा मिलि सारे ।
 प्रमुख सचिव उद्धव-मत पायी ,
 प्रकटत स्वमत सर्व-सुखदाई ।

दोहा :— धारत निर्णय शीश निज, उग्रसेन नरनाथ ,
 राजतंत्र गणतंत्र-सुख, लहति प्रजा इक साथ । १०

सुखी नरेश, सुखी सब देशा ,
 कहहुँ विपति जस कीन्ह प्रवेशा ।
 रही पवनरेखा पटरानी ,
 सती, सुशील, रूप-गुण-खानी ।
 दिवस एक वन-क्रीड़ा हेतू ,
 गवनी सहचरि सखिन समेतू ।
 लखि प्रमोद वन उर अनुरागा ,
 रवितनया-तट स्यंदन त्यागा ।
 वोचि-विलास मंजु मन भावा ,
 रेणु मनहुँ मणि-चूर्ण बिछावा ।
 विहरत केलि-शैल, वन, बेली ,
 रानिहि छूटेउ संग सहेली ।

वाम नियति गति, तहँ तेहि काला ,
 निकसेउ यातुधान विकराला ।
 द्रुमिल रक्षपति विश्रुत वीरा ,
 निरखि इन्दुमुखि मदन-अधीरा ।

बोद्धा :— उग्रसेन नृप रूप धरि, गवनेउ रानी पास ,
 समुझि ताहि निज पति सती, पूजी मन अभिलाष । ११

धरि तनु निज भाषेउ जब नामा ,
 वपु विलोकि व्याकुल वर वामा ।
 सजल विलोचन कम्पित देही ,
 दग्ध-हृदय, नहिँ सुधि बुधि तेही ।
 दशा विलोकि द्रुमिल समुभावा ,
 निज बल वीर्य प्रताप बतावा ।
 भयेउ विलीन त्यागि वन रानी ,
 हिम-हत मनहुँ नलिनि कुँभिलानी ।
 मिलीं बहुरि सब सखी सहेली ,
 रानी बिलखत लखी अकेली ।
 वसन विश्रुंखल, नष्ट सिंगारा ,
 अविरल बहति विलोचन धारा ।
 गयीं लिवाय सखी पुर माहीं ,
 वन-रहस्य जानेउ कोउ नाहीं ।
 रहेउ गर्भ, पूजे दश मासा ,
 उपजत वंस जगत संत्रासा ।

बोद्धा :— महि काँपी, वासर भये, सर्व निशा-व्यापार ,
 टूटे तारागण गगन, छायेउ घन अँधियार । १२

देखे उग्रसेन उत्पाता ,
 व्यापी हृदय भीति अज्ञाता ।
 राज-ज्योतिषी नृपति हँकारे ,
 करि गणना तिन वचन उचारे—

“जन्मेउ तनय विवेक-विहीना ,
 राक्षस-वृत्ति, कुपंथ-प्रवीणा ।
 कुल-कलंक, खल, कामी, कोही ,
 पितु-त्रासक, गो-द्विज-हरि-द्रोही ।”
 मृत्यु लिखी सुनि श्रीहरि-हाथा ,
 व्यथा-विकल हत-मति नरनाथा ।
 सहज सनेह त्यागि नहिं जायी ,
 पालेउ बाल भुआल लोभायी ।
 शैशव ते सत संगति राखा ,
 नहिं सद्वाक्य जो गुरु नहिं भाखा ।
 विफल प्रयास भये सब तैसे ,
 शंख-निनाद बधिर ढिग जैसे ।

बोद्धा :— बाढ़ेउ जस जस कंस खल, भयेउ वीर बलवान ,
 बाढ़ी राक्षस-वृत्ति तस, असत, अनय, अज्ञान । १३

पुरजन-शिशु दुर्मति जहँ पावहि ,
 गिरि-गह्वरन माहिं धरि आवहि ।
 शिला खंड पुनि रोपि दुआरे ,
 बाल असंख्य कंस संहारे ।
 अग्नि कांड रचि अन्य नसाये ,
 खेलत जमुना विपुल बहाये ।
 पुरजन लखि लखि करहिं विलापा ,
 कंस-त्रास दिन प्रति पुर व्यापा ।
 जाहिं जनेश-भवन जन धायी ,
 “पाहि! पाहि!”—कहि करहिं दोहाई ।
 भूपति सकत सुतहिं नहिं रोकी ,
 सकत न प्रजा विलाप विलोकी ।
 उद्धव, यादव-नायक सारे ,
 नृप सम अन्तर्दग्ध दुखारे ।
 त्रस्त दिवस निशि करत विचारा ,
 केहि विधि होय प्रजा उद्धारा ।

दोहा :— यहि विधि इत मथुरा पुरी, व्याप्त कंस-कृत भीति,
जरासंध मगधेश उत, चहत लेहुँ ब्रज जीति । १४

मगध-नाथ भारत सम्राटा,
आयुध अगणित, सैन्य विराटा ।
सेवत अमित शूर सामंता,
विभव असीम, प्रभाव अनंता ।
कीन्हे विजित चतुर्दिक देशा,
भयेउ चक्रवर्ती मगधेशा ।
धर्म मोक्ष हित ज्ञान विहीना,
काम अर्थ महुँ परम प्रवीणा ।
चारुवाकहि निज गुरु करि मानत,
वेद-विरोधिनि नृप सन्मानत ।
असुर नीति, असुरन व्यवहारा,
प्रिय तेहि सकल असुर आचारा ।
जहुँ जहुँ विजय लहत मगनाथा,
गवनति आसुरि संस्कृति साथ ।
सुनतहि ब्रज-अशांति-संदेशू,
पठयेउ राजदूत मगधेशू ।

दोहा :— गुप्तचरहु पठये विपुल, पहुँचे मधुपुर माहिं,
छद्म वेष विचरत फिरत, बचेउ गेह कोउ नाहिं । १५

दूत प्रकट कीन्हेउ निज काजा,
मिलेउ सभा यदुजन यदुराजा ।
लाहि अनुमति, करि विनय अशेषू,
कहेउ दूत निज नाथ सैंदेशू—
“भरतखंड यह भूमि विशाला,
अगणित राज्य, अनेक भुआला ।
युद्धत नित महि-शांति नसावत,
लेश अशेष प्रजाजन पावत ।
करन हेतु सुख शांति प्रसारा,
हरन हेतु जन-कष्ट अपारा,

प्रथम हेतु विच्छिन्न समाज ,
 इच्छत एकलत्र मैं राजू ।
 कीन्हेउँ राज-चक्र निर्माणा ,
 तासु सदस्य आजु नृप नाना ।
 जे निर्बुद्धि, युद्ध-अभिलाषी ,
 हत रण अथवा कारावासी ।

दोहा :— यदुवंशी नृप-वृंद महँ, अग्रगण्य तुम राव ,
 राज-चक्र स्वीकारि मम, प्रकटहु निज सद्भाव ।” १६

मधु-मिश्रित विष असुर-सँदेशा ,
 सुनि यदुवंशिन रोष अशेषा ।
 समिति-नृपति-मत उद्धव चीन्हा ,
 उत्तर समुचित दूतहिं दीन्हा—
 “प्रेषेउ मगध नरेश सँदेशू ,
 रहित रहस्य, प्रकट उद्देशू ।
 वाक्य-जाल-निर्मित नृप-वाणी ,
 अर्थ-हीन परमार्थ-कहानी ।
 व्यर्थ सर्व यह वाक्य-विलासा ,
 बसी हृदय ब्रज-जय-अभिलाषा ।
 जरासंध सँग सहज न रारी ,
 जानत हम, जानति महि सारी ।
 यह यदुकुलहु निबल पै नाहीं ,
 जानहु उत्तर इतनेहि माहीं ।”
 समुझेउ मर्म दूत मतिमाना ,
 लखि रण-वृत्ति कीन्ह प्रस्थाना ।

दोहा :— रण-वार्ता परिव्याप्त पुर, कहँ भय कतहुँ उमंग ,
 कंस-हृदय उल्लास बहु, सुनि सुनि समर-प्रसंग । १७

पितु समीप गवनेउ अभिमानी ,
 सेनापति पद हित हठ ठानी ।

उग्र नृपहि अंगज-मत भावा ,
 सोचत मन अस मंत्र दृढ़ावा—
 सकहि जो यह मगपतिहि हरायी ,
 वृद्धि वंश-यश, फल सुखदाई ।
 मरहि जो रण महि प्रजा उवारा ,
 उभय भाँति कल्याण हमारा
 सके न उद्धव नृप-मत मानी ,
 समुभायेउ नय नीति बखानी—
 “मगध-विजय जो नृप ! मन माहीं ,
 सेनप-योग्य कंस यह नाहीं ।
 कंस-नारा जो उर उद्देशा ,
 पठवव उचित न यहि अरि-देशा ।
 साधन-साध्य-विवेक विहायी ,
 किये कार्य नहि भूप भलाई ।”

बोहा :—भावी भूपति मन बसी, कीन्हें वचन न कान ,
 पितु-निदेश लहि, सैन्य सजि, कीन्ह कंस प्रस्थान । १८

चली वाहिनी जस चतुरंगा ,
 गुप्तचरहु गवने तेहि संग्गा ।
 कंस-स्वभाव, शौर्य, गुण-दोषा ,
 तेहि प्रति वंश-प्रजाजन-रोषा ।
 सब सुत-पितु-विरोध, कटुताई ,
 चरन मगेशहि जाय सुनायी ।
 इत वाहिनि गिरिब्रज नियरानी ,
 उत मन युक्ति मगधपति ठानी ।
 कंस पास निज दूत पठावा ,
 कहि मधु बैन भवन लै आवा ।
 कीन्हेंउ अवनिनाथ सत्कारा ,
 कहि—“रण वृथा सैन्य संहारा ।”
 कंस-शौर्य, साहस, यश गावा ,
 कीन्हेंउ गदा-युद्ध प्रस्तावा ।

स्वीकारेउ कंसहु दुर्धर्षा,
भयेउ घरिक भीषण संघर्षा।

बोद्धा :— चीन्ह तरुण-कौशल बलहिं, नीति निपुण मगधेश,
ब्याही तेहि निज द्रय सुता, कहि कहि नृप ! मथुरेश ! १६

शोधी लग्न, विपुल उत्साहा,
गवने गिरिव्रज बहु नरनाहा—
भौमासुर सुर-नर-भयकारी,
कन्या-हरण-व्यसन जेहि भारी।
म्लेच्छ, विदेशी, सीमा-वासी,
काल यवन नित भारत-त्रासी।
शाल्व विमान-बली, छलकारी,
बाण असुर अविजित, अविचारी।
चेदि-नरेन्द्र कुटिल शिशुपाला,
दंतवक्र कारुष-भुआला।
आर्य अनार्य अन्य बहु राजा,
जुरेउ पुरी जनु पाप-समाजा।
मिलि सब खलन कंस सन्माना,
सिखये अघ-शीलहिं अघ नाना।
जब लगि रहेउ विवाह-उछाहा,
कंस कलुष-अंनुधि अवगाहा।

बोद्धा :— दुहितन सँग दीन्ही बिदा, कंसहि मुदित मगेश,
दीन्हें प्रचुर दहेज सँग, पाप-पूरा उपदेश। २०

पहुँचेउ मथुरा कंस बहोरी,
राज्य-लालसा उर नहिं थोरी।
रचि कुचक्र पितु बंदी कीन्हा,
शासन-सूत्र हाथ निज लीन्हा।
सेनप, सचिव, राज जन जेते,
यदुवंशी निर्वासे तेते।

दानव असुर यवन अपनाये ,
 प्रमुख राज-पद तिन सब पाये ।
 वाहिनि म्लेच्छ नियोजि बढ़ायी ,
 प्रलय पयोनिधि जनु भयदाई ।
 राज-भवन नित बढ़ेउ विलासा ,
 चढ़ेउ राज-कर प्रजा हताशा ।
 लखहि राजजन जहँ धनवाना ,
 हरहि धान्य धन करि छल नाना ।
 निर्धन हित न्यायालय नाहीं ,
 न्यायहु पण्य मधुपुरी माहीं ।

दोहा :— कंस धनी, अनुचर धनी, भोगहि भोग विशाल ,
 क्षुधित, अकिंचन ग्राम जन, विचरत जनु कंकाल । २१

शेष स्वार्थ, परमार्थ विनाशा ,
 धर्म रहेउ केवल उपहासा ।
 राज-पुरुष विग्रहि कहँ पारवाह ,
 व्यंग करहि बहु त्रास दिखावाह ।
 नासहि विष्णु भक्त नर पायी ,
 भय वश हरिजन बसहि दुरायी ।
 शास्त्र-चितवन कहँ नहि होई ,
 वेद पढ़हि ऐसहु नहि कोई ।
 गुरुकुल जहाँ वेद ध्वनि छाया ,
 ध्वंस मात्र अब परत लखाया ।
 पहिले रही जहाँ मख-शाला ,
 करहि तहाँ अब शब्द शृगाला ।
 जहँ हरिमंदिर प्रथम सोहाये ,
 तहाँ उलूकन वास बनाये ।
 बाढ़ेउ निशिदिन पाप कलापा ,
 भयेउ मनुज जीवन अभिशापा ।

दोहा :— राज-भक्ति हरि-भक्ति भइ, राजेच्छा जन-धर्म ,
 राज-वचन श्रुति-ऋषि-गिरा, राजाज्ञा जन-कर्म । २२

सोरठाः—गुरु जेहि कर यवनेश, असुर ससुर, राक्षस पिता ,
बरनि को सकहि अशेष, पाप-कथा तेहि कंस कै ।

सहि न सकी जब भारत माता ,
सुमिरे श्रीहरि चिर जन-त्राता ।
भयेउ पयोनिधि शब्द सोहावा ,
काँपे असुर, सुरन सुख पावा—
“अवगत मोहिं महि-क्लेश अनंता ,
खल-पद-दलित धर्म श्रुति संता ।
बंदी-भवन मनुजता आजू ,
जल थल व्योम व्याप्त पशु-राजू ।
हरिहौ वेगि धर्म-महि-भारा ,
लेहौ पूर्ण कला अवतारा ।
तजहु न धर्म, आत्म-सन्माना ,
बिनु घन तिमिर न स्वर्ण बिहाना !”
मुदित मातु सुनि स्वर वरदानी ,
जनु सरसिज अरुणागम जानी ।
उत हरि प्रथमहि अमर पठाये ,
यादव गोप देह धरि आये ।

दोहा :— धरि गोपिन वपु श्रुति-श्रुचा, भयीं सर्व साकार ,
लीन्ह रोहिणी-गर्भ पुनि, शेष आपु अवतार । २३

सोरठाः—निज निज थलन विराजि, सकल प्रतीक्षत पंथ प्रभु ,
निवसति तारक-राजि, शशधर-श्री हित जिमि दिवस ।

जन्मे जेहि विधि हरि ब्रज आयी ,
सो प्रसंग सब कहहुँ सुनायी ।
अग्रज उग्रसेन कर देवक ,
धर्म निरत, हरि भक्तन सेवक ।
गयेउ स्वर्ग निज सुता विहायी ,
नाम देवकी दिव्य लुनाई ।

शील सनेह धाम अभिरामा ,
 भयी विवाह योग्य वर वामा ।
 लखि कीन्हेउ मन कंस विचारा—
 मम प्रतिपत्नी यदुकुल सारा ।
 उचित विरोध न बहुजन संग्गा ,
 लघु पिपीलिकहु बधहिं भुजंगा ।
 व्याहि स्वकुल यह भगिनि किशोरी ,
 यदुजन कळुक सकत मैं फोरी ।
 सात्यकि, कृतवर्मा अरु उद्धव ,
 अरि कटि-वद्ध प्रीति नहिं संभव ।

दोहा :— पै वसुदेव उदार-मति, रूढ़ न उर प्रतिशोध ,
 भगिनि नेह-बंधन बँधत, तजिहैं वैर विरोध । २४

अस गुनि पूर्व वैर बिसरावा ,
 अक्रूरहिं खल भवन बोलावा ।
 मिलेउ मनहुँ खोयी निधि पायी ,
 बोलेउ कुटिल पूछि कुशलाई—
 “वंश समस्त तजी नय नीती ,
 तुमहि एक प्रतिपालत प्रीती ।
 मोरेहु हृदय प्रतीति पुरानी ,
 लेत बोलाय हितू निज जानी ।”
 यहि विधि करि अक्रूर प्रशंसा ,
 कहि वसुदेवहिं कुल अवतंसा ,
 निज मंतव्य नरेश जनावा ,
 प्रमुदित वभ्रु पुलक तन छावा ।
 क्षितिपति उर परिवर्तित जानी ,
 गे वसुदेव-गेह सुख मानी ।
 सुनि संदेश शौरि मन सोचत ,
 डसत सर्प फण सतत सँकोचत ।

दोहा :— कंस-कुटिलता क्रूरता, जागी मानस माँहि ,
 उग्रसेन नृप-गति सुमिरि, निकसेउ मख ते—“नाहि” । २५

सुनि भाषी सुफलक-सुत वाणी—
 “सुमति तात, कस नीति मुलानी ?
 बद्ध-मूल अब कंस-सिंहासन,
 बल ते पलटि सकत नहिं शासन ।
 छल ते प्रथम लहेउ तेहि राजू,
 छल ते सकत हमहु करि काजू ।
 छलिन संग जे छल नहिं करहीं,
 दलित परास्त मूढ़ ते मरहीं ।
 कंसहिं आजु जो हम अपनावहिं,
 लहि सानिध्य प्रतीति बढ़ावहिं,
 क्रम क्रम असुरन ते बिलगायी,
 अंत विनाशि सकत असहायी ।
 विनवहुँ सकल स्वार्थ भय त्यागी,
 बरहु देवकिहिं यदुकुल लागी ।”
 मर्म वचन जब वभ्रु उचारा,
 लज्जित शूर-सुवन स्वीकारा ।

बोद्धा :—सोचत छल यहि विधि मनुज, एक एक के संग,
 परम छली विधि ताहि क्षण, अन्यहि रचत प्रसंग । २६

मुदित महीप विवाह रचावा,
 यदुकुल सकल निमंत्रि बोलावा ।
 भेटत मिलत करत सत्कारा,
 जनु सौजन्य आपु साकारा ।
 अनुहरि श्रुति-विधि कीन्हे राजा,
 हर्ष सहित सब मंगल काजा ।
 लखि नृप-भवन आर्य-आचारा,
 सुनि श्रुति मंत्र सुखी पुर सारा ।
 भयेउ सहित उत्साह विवाहा,
 यौतुक अमित दीन्ह नरनाहा ।
 बिदा मुहूर्त लखेउ नृप आवा,
 रत्न जटित रथ साजि मँगावा ।

कीन्हेउ स्वसा शौरि अभिनंदन ,
हाँकेउ स्वकर अवनिपति स्यंदन ।
लै भगिनिहिं जस चलेउ भुआला ,
भयी व्योम वाणी विकराला—

दोहा :— “कंस ! जाहि गुनि निज भगिनि, करत आजु सन्मान ,
उपजहि तेहि के गर्भ ते, हन्ता तव बलवान !” २७

सुनी कंस भीषण नभवाणी ,
कोपेउ निमिष माहिं अभिमानी ।
स्यंदन त्यागि गहे कर केशा—
“बधहुँ देवकी मिटहि अँदेसा ।
अबहिं उपाटहुँ विटप समूला ,
फिरि कहँ कुफल, कहाँ फिरि फूला ?”
अस कहि क्रूर कृपाण सँभारा ,
कीन्ह देवकी हाहाकारा ।
गहि सप्रीति तव भूपति-हाथा ,
कह वसुदेव धरणि धरि माथा—
“पातक जदपि नाथ ! जग नाना ,
अबला-वध सम पाप न आना ।
तुम यदुवंश सुवंश-विभूषण ,
बधे वाम लागहि अति दूषण ।”
सुनि बोलेउ खल द्विगुणित क्रोधा—
“मूर्ख ! करसि कत व्यर्थ प्रबोधा !

दोहा :— बरनत शास्त्र सुकर्म बहु, विविध धर्म-आख्यान ,
तदपि आत्म-रक्षा सदश, धर्म कर्म नहिं आन ।” २८

सुनि कुशब्द वसुदेव उदासा ,
तजी देवकिहु जीवन आशा ।
बिलखति वाम पतिहिं लपटानी ,
सहसा शौरि युक्ति मन ठानी ।

छुवत न पयहु विनय ते दुर्जन ,
छल ते विषहु पियावत बुधजन ।
भाषेउ कंसहिं—“सुनहु नरेशा !
को अस तुमहिं देय उपदेशा ।
आजु निखिल भारत महि माहीं ,
शास्त्र-मर्म-विद् तुम सम नाहीं ।
करहु युक्ति कछु विनवत दासा ,
बचहि वाम, प्रभु-संकट नाशा ।
भयी जो भयद व्योम पथ वाणी ,
भगिनी ते न नाथ-हित-हानी ।
जीवन-दान देवकिहिं देहू ,
उपजहिं जबहिं सुवन तुम लेहू ।

दोहा :— बचिहै यहि विधि नाथ-यश, बचिहैं अबला-प्राण ,
होइहै निष्फल नभ-गिरा, निष्फल दैव-विधान ।” २६

भावी-वश जनु भूप अभागा ,
सुनत वचन कछु सोचन लागा ।
त्यागी असि, त्यागे कर केशा ,
बोलि अमात्यन दीन्ह निदेशा—
“लै दंपति कारागृह डारहु ,
प्रहरी पटु दिशि दिशि बैठारहु ।
प्रकटहि गर्भ-चिह्न जब बाला ,
देहु संदेश मोहिं तत्काला ।
जन्मतही बधिहौ अँगजाता ,
छलि न सकत मोहिं आपु विधाता ।”
भाषत वचन सगर्व कठोरा ,
पठये दंपति कारा ओरा ।
भीर अपार जदपि थल माहीं ,
रोकि अनर्थ सकेउ कोउ नाहीं ।
अभय कंस मगधेश सहारे ,
गवने गृह बिलपत जन सारे ।

दोहा :— व्याप्त भीति यदुजन-हृदय, लाग कंस कुल-काल ,
भागे तजि तजि मधुपुरी, इत उत विकल विहाल । ३०

गये न सुफलक-सुत प्रिय भाषी ,
रहे पुरी नृप-वृत्ति उपासी ।
उद्धव, युयुधानहु, कृतवर्मा ,
तजेउ न नगर, तजेउ नहिं धर्मा ।
गवने शौरि-सदन तत्काला ,
व्याकुल लखी रोहिणी बाला ।
पीत देह-लतिका कुँभलाई ,
राहु-ग्रस्त जनु इन्दु-जुन्हलाई ।
गर्भवती वसुदेव-पियारी ,
सींचति मही मोचि दृग वारी ।
समुझि अनिश्चित कंस स्वभावा ,
उद्धव चाहत - तियहिं बचावा ।
जानि नंद-वसुदेव-मिताई ,
दीन्ही गोकुल वाम पठायी ।
नंद गोप राखी सन्मानी ,
मानी भगिनि सदृश नैदरानी ।

दोहा :— काटति कंत-वियोग दुख, इत रोहिणि बिलखाय ,
उत देवकि वसुदेव दोउ, बंदीगृह असहाय । ३१

लागत बंदी-भवन भयावन ,
मनहुँ नरक साक्षात अपावन ।
कोट विकट चारिहु दिशि घेरे ,
भय वश कोउ न आवत नेरे ।
परसति व्योम उच्च प्राचीरा ,
निरखत धीरहु होत अधीरा ।
द्वार वज्रवत् लोह किंवारे ,
दिशि दिशि फिरत सजग रखवारे ।
निवसत दंपति तजि सब आशा ,
व्याप्त दिवस निशि उर नृप-त्रासा ।

जब देवकी प्रथम सुत जायेउ,
 सुनत सरोष कंस उठि धायेउ ।
 अनुनय विनय कीन्हि बहु माता,
 सुनी न एक कंस रिस-राता ।
 हिय-धन छीनि जननि ते लीन्हा,
 निज कर कर बाल वध कीन्हा ।

दोहा :— निर्दय मुदित निरीह हनि, अविदित विधि-व्यापार,
 जानत व्याघ्र कि तेहि बधिक, दै अज करत प्रहार ? ३२
 यहि विधि सुत पै सुत बधे, जब नृशंस मथुरेश,
 जननि-गर्भ प्रविशे स्वयं, वचन-बद्ध विश्वेश । ३३

प्रविशत तनु गुरु जगत-विधाता,
 भयी असह्य भार कृश माता ।
 पीत कान्ति युत देह प्रकाशी,
 उषः काल जनु शशि-निशि भासी ।
 सुमिरि सुमिरि निज शिशुन विनाशा,
 विलपति अंब, न उर उल्लासा ।
 जानि हरिहु जननी दुख-भारा,
 स्वप्न मिस सूचेउ अवतारा ।
 सोवत निशि निरखेउ महतारी,
 वामन दिव्य वेष मनहारी ।
 धृत चक्रादिक वैष्णव लांछन,
 करत सतर्क गर्भ संरक्षण ।
 बहुरि विलोकेउ आपुहिं माता,
 खगपति-पृष्ठ गगन-पथ जाता ।
 जागि प्रभात जननि बड़भागी,
 कहेउ स्वप्न स्वामिहिं अनुरागी ।

दोहा :— पुलकित सुनतहि शूर-सुत, कहत तियहि सन्मानि—
 “त्रेता ये ही स्वप्न शुभ, देखे दशरथ-रानि । ३४

सोरठा:—गर्भ माहिं यहि बार, विष्णु-तेज श्रीराम सम,
आये जगदाधार, होइहै विफल न नभ-गिरा ।”

सुनि पति-वचन हृदय भरि आवा,
आनँद-वारि विलोचन छावा ।
बीतेउ क्रम क्रम दोहद त्रासा,
पुष्ट सर्व अवयव तन भासा ।
जीर्ण पत्र जनु लता विहायी,
शोभित नव मनोज्ञ पुनि पायी ।
चहति दिवस निशि गर्भ दुरावा,
घटा ओट चह चन्द्र छिपावा ।
गयेउ वसन्त, ग्रीष्म ऋतु आयी,
विगत ग्रीष्म, वर्षा नियरायी ।
मास भाद्रपद, पख अँधियारा,
रोहिणि नखत, दिवस बुधवारा ।
तिथि अष्टमी, समय अधराता,
कृष्ण-जन्म जग-मंगल-दाता ।
गगन घटा गरजत धिरि आयी,
धरणि बाल रोदन ध्वनि छायी ।

बोद्धा :—तड़कि तड़कि उत नभ तड़ित, भरेउ अखण्ड प्रकाश,
इत महितल शिशु शशि वदन, कीन्हैउ निशि-तम नाश । ३५

सोरठा:—छायी ज्योति अपार, धरा गगन एकहि भये,
भयेउ कृष्ण अवतार, अखिल विश्व उद्धार हित ।

देखी दंपूति बालक शोभा,
रूप अनूप प्राण मन लोभा ।
हृदय-कुमुद शशि-मुख लखि फूला,
कंस नृशंस सुमिरि उर शूला ।
जनु मज्जत सुरसरि भव-तरणी,
बोरेउ कोउ सहसा वैतरणी ।

जननि अधीर सवेग उसासू,
 भरभर भरे विलोचन आसू।
 छिन्न हृदय जनु मौक्तिक हारा,
 भरि मुक्ता-फल रहे अपारा।
 विलपति, कहति—“विपति पति! टारहु,
 करहु युक्ति कछु तनय उबारहु।
 छल बल नाथ! अबहिं कछु कीजै,
 सुत पहुँचाय अनत कहूँ दीजै।
 नाहित निश्चय कंस सँहारहि,
 होत प्रभात वत्स मम मारहि।”

बोद्धाः— धाय धाय पति पद परी, पुनि पुनि तिय अकुलानि,
 निराधार वसुदेव उर, बाढ़ी पल पल रलानि। ३६

सोरठाः— सोचत—धिक पुरुषत्व! धिक जन्महु नृप कुल विमल,
 धिक विद्या वर्चस्व! सकत रच्छि नहिं निज सुतहु।

जबहिं सहठ कछु युक्ति विचारत,
 दुर्गम दुर्ग देखि हिय हारत।
 तेहि पै निशि, घन गरजत घोरा,
 दामिनि दमकति शब्द कठोरा।
 धीरज-वारिधि सहज गँभीरा,
 बाष्प कण्ठ वसुदेव अधीरा।
 दंपति सुत विलोकि बिलखाहीं,
 एकहिं एक लखहिं पछिताहीं।
 विनु अवलंब मातु पितु जाना,
 सहसा प्रकट भये भगवाना।
 निमिषहि महुँ शिशु वेष दुरावा,
 रूप चतुर्भुज प्रभु प्रकटावा।
 जलधर देह, कमल दल लोचन,
 विद्युत बसन, भाल गोरोचन।
 कौस्तुभ कंठ, वक्त्र वनमाला,
 उर श्रीवत्स-इन्दु-द्युति-जाला।

दोहा :— शिर किरिट, कुण्डल श्रवण, ब्रह्मसूत्र काट धाम ,
शंख, चक्र, वारिज, गदा, चतुर्हस्त अभिराम । ३७

निरखि दिव्य वपु आनँददाता ,
विस्मय हर्ष विवश पितु माता ।
दृग कर्षित इन्द्रिय मन प्राणा ,
जनु प्रति रोम करत छवि पाना ।
दंपति सचकित मोहित जानी ,
कही गँभीर मधुर हरि वाणी ।
गिरा वदन विभु वारिज भाषी ,
रदन पंक्ति द्युति युक्त प्रकाशी ।
मानहुँ व्योम-गामिनी गंगा ,
बही धवल प्रभु पद द्युति संग ।
“त्यागहु भीति !—” कहेउ भगवाना ,
“भय सम मानव-अरि नहिँ आना ।
मैं तुम माहिँ, तुमहु मोहिँ माहीं ,
स्वल्पहु विस्मय-कारण नाहीं ।
एकहि तत्त्व व्याप्त जग सारा ,
नहिँ कहूँ मैं, तुम, मोर, तुम्हारा ।

दोहा :— परति विविधता नयन पथ, सो प्रतिविंब समान ,
निज छाया लखि शिशु समय, नहिँ वस्यक मतिमान । ३८

सोरठा :— यह समस्त संसार, भीतहिँ बंदीधाम सम ,
को तेहि बाँधन हार, खुलि खेलत भव-नाट्य जो ।

पूर्व लहन हित मोहिँ सुत वेषा ,
कीन्हेउ तप तुम दोउ अशेषा ।
दीन्हेउँ मैं वर तेहि अनुसार ,
लीन्हेउँ आजु आय अवतारा ।
जमुना-पार ग्राम अभिरामा ,
गोप-निकेतन गोकुल नामा ।

वसत नंद तहँ सुहृद तुम्हारे,
धर्म-निकेत गुणन-उजियारे।
यशुमति प्रेममयी नँद-नारी,
महि मातृत्व मनहुँ तनु-धारी।
गोकुल वेगि मोहिं लै धावहु,
नंद यशोदा ढिग पहुँचावहु।
मोरि योगमाया गुण-खानी,
यशुदा-गर्भ आजु प्रकटानी।
राखि मोहिं, तेहि यहि थल लावहु,
कंसहिं कन्या जन्म जनावहु।

बोहा :—संतत मम सानिध्य-प्रिय, शेष धारि नर देह,
प्रकटे रोहिणि गर्भ ते, प्रथमहिं ब्रज नँद गोह। ३६
करि व्यतीत शैशव सुखद, अग्रज साथ सप्रीति,
मिलिहौं मधुपुर आय पुनि, त्यागहु उर भ्रम भीति। १४०

सोरठा :—कारागार किंवार, उघरे सहसा अस कहत,
श्रीधर विश्वाधार, विहँसे धरि शिशु वपु बहुरि।

चमत्कार वसुदेव विलोका,
नवस्फूर्ति उर, गत भय शोका।
धाय शूर-सुत सुवन उठावा,
लखेउ न जननि-नयन जल छावा।
द्वार पार पल लागत आये,
प्रहरी इत उत सोवत पाये।
सघन तिमिर निरखत कठिनाई,
दमकति दामिनि देति दिखायी।
वारिद विद्युत महि मिलि गरजत,
होत रोर रहि रहि हिय लरजत।
दायें कबहुँ नाग फुफकारत,
बायें सहसा सिंह दहारत।

सन्मुख हहरति जमुन-तरंगा ,
 विकट प्रवाह धीर मन भंगा ।
 पै उमंग नव पितु अंग माहीं ,
 प्रभु पद दृष्टि, उड़त जनु जाहीं ।

दोहा :— धँसे सरित धृत शीश सुत, बाढ़ेउ वारि प्रवाह ,
 हरि पद परसन हेतु जनु, जमुना उरहु उझाह । ४१

बाढ़ेउ जल मुख लागि पल माहीं ,
 बूड़त उबरत पग न धिराहीं ।
 परसे सरि पद, प्रभु हुंकारा ,
 उतरेउ वारिहु, लागे पारा ।
 बढ़त चले गोकुल नियराना ,
 लखि नैद सदन हृदय हुलसाना ।
 प्रविशे यशुमति-मंदिर माहीं ,
 माया वश कोउ जागेउ नाहीं ।
 शयित योगमाया तहँ पायी ,
 राखि सुवन तेहि फिरे उठायी ।
 जमुन पार पुनि मधुपुर आये ,
 प्रहरी वैसेहि सोवत पाये ।
 पठयेउ वृत्त प्रात नृप पाहीं ,
 जन्मी सुता काल्हि निशि माहीं ।
 जदपि रहस्य कंस नहिं जाना ,
 तोष न उर, मन संशय नाना ।

दोहा :— तर्क कुतर्क अनेक करि, कन्यहिं लीन्ह उठाय ,
 शिला पछारन जस चहेउ, गयी हाथ निपुचाय । ४२

निपुचि उड़ी, पहुँची आकाशा ,
 प्रखर मनहुँ अचिरांशु प्रकाशा ।
 तड़की अंतरिक्ष-पथ घोरा ,
 गिरत वज्र जनु रोर कठोरा—

“कंस ! व्यर्थ मोहिं चहेउ पछारा ,
 उपजेउ अनतहि मारनहारा ।
 करि न सकत खल ! अब शिशु-हानी ,
 लखत न मृत्यु शीश मँडरानी ।”
 सुनि परिताप कंस उर छावा ,
 व्यर्थ देवकी शिशुन नशावा ।
 कीन्हे दंपति मुक्त नरेशा ,
 गये गेह हिय हर्ष अशेषा ।
 भूपति कुपित भवन निज आवा ,
 बोलि पूतनहिं वचन सुनावा—
 “ग्राम ग्राम, ब्रज ब्रज नवजाता ,
 शिशुन खोजि द्रुत करहु निपाता !”

दोहा :— शोच विवश मथुरेश इत, होत हृदय अति दाह ,
 उत गोकुल नंद गोप गृह, उमहेउ हर्ष प्रवाह । ४३

गत-तन्द्रा यशुमति शिशु देखेउ ,
 अविदित वृत्त तनय निज लेखेउ ।
 अब हृदय नहिं हर्ष समायी ,
 नंद मुदित जनु नव निधि पायी ।
 गोकुल मंगल-तूर्य बजावा ,
 सुन्दर सुवन महारि उपजावा ।
 बंदी जन यश गावत धाये ,
 पढ़त स्वस्त्ययन द्विजगण आये ।
 धाय धाय नंदराय सुजाना ,
 सन्माने दै गोधन दाना ।
 श्रुति विधि जातकर्म आचारा ,
 कीन्हेउ कुलगुरु हर्ष अपारा ।
 निर्भय ग्वाल निसान बजावहिं ,
 तारी दै दै नाचहिं गावहिं ।
 भयेउ सकल गोकुल मनचीता ,
 डोलत ग्वाल मनहुँ रणजीता ।

दोहा :— माखन हरदी दूध दधि, घृत जल साथ मिलाय ,
छिरकहिं एकहिं एक सब, गोप ग्वाल हर्षाय । ४४

धाये एक नंद ढिग आये ,
परत चरण गहि महर उठाये ।
एक पुलकि गोवत्स सँवारे ,
लाये गोधन नंद दुआरे ।
एक हँसत मन आपुहि आपा ,
बिहल देह हर्ष हिय व्यापा ।
एक गिरत आनंद अधिकाई ,
एक अंक भरि लेत उठायी ।
गृह गृह बंदनवार बँधाये ,
गृह गृह फूलन मंडप छाये ।
गृह गृह मोतिन चौक पुरायी ,
राखे मंगल कलश सजायी ।
गृह गृह होम हवन सुर-पूजा ,
गृह गृह श्रुति ध्वनि गोकुल गँजा ।
बाजत पणव शंख सहनाई ,
गृह गृह गोकुल बजति बधाई ।

दोहा :— अक्षत रोचन दूब दधि, लै लै कंचन थार ,
यूथ यूथ गोपी चलीं, निरखन नंदकुमार । ४५

प्रकृति-अङ्क-पालित वर नारी ,
तप्त कनक द्युति सहज सँवारी ।
अंगराग अरुणाधर-ज्योती ,
मंजुल हास समुज्ज्वल मोती ।
चल अपांग-रुचि रत्न खानी ,
वीणा वेणु विनिंदक वाणी ।
विजित मलयगिरि-पवन-सुवासा ,
श्वास-समीर सुरभि पटवासा ।
पद-पंकज-आकर्षित अलिगण ,
सोइ मुखर कल चरण-आभगण ।

वितरत वदन चंद्र द्युति वामा ,
 पहुँची प्रमुदित यशुदा-धामा ।
 अपलक निरखहि बाल अनूपा ,
 पियहि दृगन जनु सुधा स्वरूपा ।
 बार बार सब देहि असीसा ,
 “जियहु महरि-सुत ! कोटि बरीसा ।”

दोहा :— यहि विधि जन्मोत्सव भयेउ, बरसेउ आनँद-मेह ,
 सिंचित प्रभु नव प्रीति-जल, सरसत यशुमति गोह । ४६

जो गुण कर्म विहीन, अज्ञाता ,
 परम तत्व विधि-शिव-अज्ञाता ,
 क्रीड़ा जासु सृष्टि यह सारी ,
 रचत सकौतुक देत सँहारी ,
 कहि कहि वत्स ! लाल ! सुत ! छौना ,
 दीन्हे तेहि बहु मातु खिलौना ।
 पलना शयित किलकि प्रभु खेलत ,
 कर पग गहि अँगुठा मुख मेलत ।
 नँद-गृहिणी दुलराय भुलावति ,
 वदन विलोकति, पुलकति, गावति—
 “सोवहु ! सोवहु ! चिर दुख-मोचन !
 सोवहु ! सोवहु ! अंबुज-लोचन !
 सोवहु ! सोवहु ! वदन-सुधाधर !
 सोवहु ! नख-शिख-मृदुल-मनोहर !
 आउ री निँदिया ! कान्ह बोलावहि ,
 काहे न निँदिया ! आय सोवावहि ।”

दोहा :— जागत जो लय काल हू, संसृति सकल सोवाय ,
 पलना रही सोवाय तेहि, यशुमति लोरी गाय । ४७

हर्षित सुनत गीत अभिरामा ,
 मूँदे दृग निज कौतुक-धामा ।

अँग फरकाय स्वल्प मुसकाने,
 श्याम यशोमति सोवत जाने।
 पुनि पुनि माता वदन निहारति,
 भाग्य सराहि हर्ष जल ढारति।
 ताहि समय आये बलरामा,
 रोहिणि-तनय कान्ति हिमधामा।
 चपल श्याम-पलना ढिग जायी,
 पूछत यशुदहिं कछु मुसकार्या—
 “को यह, मातु ! कहाँ ते आवा ?
 बाबा यहि केहि हाट बिसावा ?
 लागत यह अति सुधर सलोना,
 लेहौ ऐसहि महुँ खिलौना।”
 “तुम्हरोहि खेलन हेतु मँगावा,”
 हँसी महरि, हलधर सुख पावा।

बोधा :— उत्कंठित बलराम उर, झूलेउ पलना साथ,
 लगे झुलावन झूमि झुकि, संकर्षण निज हाथ। ४८

लखि अग्रज गति हरि दर्शने,
 दृग उधारि पुनि पुनि मुसकाने।
 मुदित बंधु चह गोद उठावा,
 उठे न हरि बहु रुदन मचावा।
 सुनत यशोमति खीझति धायी—
 “दीन्हेउ नटखट बाल जगायी।”
 “मैं नहिं जानत यह अस रोना,
 छुड़हौ अब नहिं मातु खिलौना !”
 बाल-वचन सुनि विहँसी माई,
 हरिहु अंब लहि रहे चुपायी।
 आयी तबहिं रोहिणी माता,
 नंदहु आनँद-पुलकित गाता।
 प्रमुदित दोउ लखि वदन मयंका,
 चहत लेन हरि निज निज अंका।

त्यागत शिशु नहिं गोद यशोदा ,
छायेउ भवन विनोद प्रमोदा ।

दोहा :— वृद्धि नाश विरहित कहत, जेहि श्रुति शास्त्र पुराण ,
लह्मी वृद्धि तेहि नित्य नव, नन्द सदन भगवान । ४६

उत तनु ललित पूतना धारे ,
विचरति फिरति ग्राम ब्रज सारे ।
जहँ नवजात बाल लखि पावति ,
गरलस्तन निज पान करावति ।
गोकुल यशुमति स्वागत कीन्हा ,
गुनि कुल-बाला आसन दीन्हा ।
वाणी पुष्पित कलुषि सुनायी—
“सुवन तुम्हार असीसन आयी ।”
माता शयित श्याम दरसाये ,
मन ईषत भवपति मुसकाये ।
महरि करन कछु काज सिधारी ,
मायामय हरि आँखि उधारी ।
मुदित पूतना गोद उठावा ,
चूमि चन्द्र मुख कण्ठ लगावा ।
छलिनि विषस्तन शिशु-मुख दीन्हा ,
वज्र शरीर श्याम निज कीन्हा ।

दोहा :— दिग्ध पयोधर दृढ़ गहेउ, सहठ कीन्ह पय पान ,
प्रलपति विलपति पूतना, देत न पै प्रभु जान । ५०

विष-पय सँग कषेँ प्रभु प्राणा ,
परी धरणि विरहित गति ज्ञाना ।
प्रकृत शरीर मरत निज धारा ,
जनु विभीषिका सह आकारा ।
भयेउ कोलाहल गोकुल भारी ,
धाये ब्रज जन काज बिसारी ।

विकल विलोकि कलेवर सारे,
हरि किलकत मृत-वत्त निहारे ।
त्रस्त यशोमति शिशु लै भागी,
पुनि पुनि हिय लगाय अनुरागी ।
भारेउ शिर गोपुच्छ भँवायी,
कीन्ह स्वस्ति-वाचन नँदरायी ।
आरति वनिता वृन्द उतारी,
प्रकुपित देत पूतनहिं गारी ।
सुतहिं पियायेउ पय महतारी,
प्रमुदित ग्राम विगत भय भारी ।

दोहा :— सुनत पूतना-अन्त उत, नृप उर भीति अपार,
जानेउ निश्चय नँद सदन, जन्मेउ मम हंतार । ५१

भवन यूथपति भूप बोलाये,
शकट, प्रलंब, अघासुर आये ।
वृणावर्त, वत्सासुर पापी,
बक, धेनुकहु साधु-संतापी,
मल्ल युगल मुष्टिक, चारणूरा,
केशी, व्योम विकट बहु शूरा ।
नृपति पूतना-निधन जनावा,
उर भय संशय प्रकटि सुनावा—
“विधिहु अराति-रहस्य दुरावा,
मथुरा कहि गोकुल प्रकटावा ।
करहुँ न अबहिं जो अरि अबसाना,
भये प्रौढ़ हरिहै मम प्राणा ।”
सुनत कीन्ह खल-मंडल प्रलपन—
“त्यागत प्रभु ! कस दर्प पुरातन ?
शोच उचित अस शिशु हित नाहीं,
लहत निदेश हतहिं पल माहीं ।”

दोहा :— सुनि जल्पन यहि विधि विपुल, कंसहिं तोष अपार,
इच्छत लय-जलनिधि करन, श्वान-मुच्छ गहि पार । ५२

पहिले शकटासुर ब्रज आयी ,
 शकट रूप गृह रहेउ दुरायी ।
 सहज शकट यशुदा तेहि जाना ,
 धरे लाय दधि भाजन नाना ।
 ढिगहि पालने बाल सोवायी ,
 आपु करन गृह काज सिधायी ।
 सहसा लुधित भुवनभर जागे ,
 अँगुठा पान करन प्रभु लागे ।
 निज निकटहि पुनि शकट निहारी ,
 समुझेउ असुर-मर्म असुरारी ।
 मंद मंद पद पद्म उठायी ,
 गति मायापति सहठ बढ़ायी ।
 तकि कीन्हेउ पुनि पाद प्रहारा ,
 गिरेउ शकट, गृह शब्द अपारा ।
 दूढेउ अक्ष, युगहु बिलगाना ,
 ढरकेउ दधि, फूटे घट नाना ।

बोद्धा :— कौतुक ही शकटहि हतेउ, प्रकटेउ ब्रज नहि भेद ,
 पहुँचेउ मथुरा वृत्त जब, मथुरापति उर खेद । ५३

वृणावर्त पुनि भूप पठावा ,
 चक्रवात वपु ब्रज चढ़ि आवा ।
 धूलि निखिल गोकुल भरि छाथी ,
 अधाधुंध नहि परत लखायी ।
 उड़त असुर जस नंद गृह आवा ,
 क्रीड़त कृष्णहि प्रांगण पावा ।
 लै सँग बालक व्योम उड़ाना ,
 बढी श्याम-गरिमा अकुलाना ।
 हरि खेलाय खल शिला पछारा ,
 चापि श्रीव हठि जीव निकारा ।
 यशुमति सचकित आँगन आयी ,
 बाल न पलना परेउ लखायी—

“श्याम! श्याम! हा श्याम!” पुकारहि,
 “को निधनी के धनहि उबारहि!”
 गृह गृह ब्रज बिलखति महतारी,
 करुणहि क्रन्दति जनु तनु धारी।

दोहा :— खोजत विलपत गोप जन, निरखेउ असुर विशाल,
 मृतक-वच्च खेलत लखे, दनुज-दलन नँदलाल । ५४

विस्मित मुदित कहत ब्रजवासी—
 “कस शिशु बधेउ असुर बल-राशी!”
 धाय उठाय सनेह कन्हैई,
 देखत सब कहूँ चोट कि आयी?
 “दैत्य दुरंत कीन्ह अपघाता,
 केहि विधि बचेउ बाल मृदु गाता!
 यशुमति! तोहि न आवति लाजा,
 भयेउ सुतहु ते बड़ि गृह काजा!
 जो तोहि भारू भयेउ कन्हैया,
 बेचि देहि ब्रज बहुत लेवैया!”
 करत व्यंग ब्रज जन यहि भाँनी,
 यशुमति बाल लगावति छाती—
 “भये सकल ब्रज लोग लबारा,
 कहत—‘तोहि नहि कान्ह पियारा’।
 ईश सहाय बचेउ सुत अब की,
 भूलि न तजहुँ कबहुँ एकाकी।”

दोहा :— बाढ़ेउ नित ब्रज जन हृदय, हरि हित नेह अशेष,
 व्योम मुगांक विलोकि जिमि, उमहत लहरि जलेश । ५५

नाम करन कर अवसर आवा,
 गर्ग गुरुहि वसुदेव बोलावा।
 सुवन-रहस्य सकल समुभायी,
 गोकुल नँद गृह दीन्ह पठायी।

राज-पुरोहित लहि मन मोदा ,
 प्रणमे पद दोउ नंद यशोदा ।
 डारेउ बहुरि चरण शिशु आनी ,
 लोचन लुब्ध, शिथिल मुनि-वाणी ।
 भाषेउ ऋषि धरि धैर्य हठाता—
 “जन्मे परब्रह्म साक्षाता ।
 असुर-विनाशन, जन-हितकारी ,
 नाम कृष्ण, विष्णुहि अवतारी ।
 कंस-विनाश , जासु कर होई ,
 शिशु-स्वरूप प्रकटेउ ब्रज सोई ।
 पूर्व जन्म यशुमति तप कीन्हा ,
 दूध पियावन हित वर लीन्हा ।

बोद्धा — बाल-केलि लीलामयी, सकल अलौकिक कर्म ,
 पालहु विस्मय भीति तजि, प्रकटहु नहिं विभु-मर्म ।” ५६

गवने गर्ग शूर-सुत धामा ,
 बाढ़े इत हरि गोकुल ग्रामा ।
 भयेउ अन्नप्राशन मन भावा ,
 शिशु मुख नंद आपु जुठरावा ।
 सद्यस्नात वदन छवि छलकी ,
 तनु द्युति मोरचंद्र जिमि भलकी ।
 भूषण वसन रुचिर पहिराये ,
 कटि किकिणि, गर हार सोहाये ।
 कंठ वधनखा कठुला राजत ,
 श्याम शरीर पीत पट भ्राजत ।
 शोभित शीश लाल चौतनिया ,
 रुनभुन बजत पाँव पैजनिया ।
 मृदुल कपोल, लोल युग लोचन ,
 भाल डिटौना, कल गोरोचन ।
 लट लटकी विधु आनन छाथी ,
 पियत सुधा जनु राहु चोराथी ।

बोद्धा :— मोर-चन्द्रिका मनहरनि, नील नलिन तनु श्याम ,
मेघ मध्य जनु इन्द्रधनु, नखत सहित अभिराम । ५७

कहहिं अटपटी कलबल वतियाँ ,
दमकहिं अरुण अधर दुइ दतियाँ ।
उदित बालरवि-छवि पै प्राची ,
दामिनि दमकि दमकि जनु नाची ।
अंगुलि आभा मंजुल छायाँ ,
नख मिस मनहुँ बसेउ विधु आयी ।
बंधुक सुमन अरुण रुचि चरणा ,
घुटरुन चलत श्याम नँद-अँगना ।
इत यशुमति उत महर बोलावत ,
दोउ परस्पर होइ लगावत ।
चतुर श्याम पितु मातु रिभावाहिं ,
बारी बारी दुहुँ दिशि धावहिं ।
प्रांगण पार द्वार लागि आथी ,
लखि देहरी अटकहिं अकुलायी ।
नाँधन चहहिं नाँधि नहिं पावहिं ,
गिरहिं धरणि बहु रुदन मचावहिं ।

बोद्धा :— जेहि बल कीन्हैउ जग निखिल, तीनिहि चरण प्रमाण ,
तेहि बल यशुदा, देहरी, चढ़ि न सकत भगवान ! ५८

बाढ़े औरहु कछुक कन्हाई ,
लागे कहन यशोदहिं माई ।
नंदहिं बाबा, बंधुहिं भैया ,
लै लै नाम बोलावहिं गैया ।
सीखेउ रोटी माखन माँगन ,
मिलत देर मचलहिं गिरि आँगन ।
लेहिं बहुरि बलराम बोलायी ,
घेरहिं जननिहिं दूनहु भाई ।
कर्षत संकर्षण इत सारी ,
अइँचत वेणी कृष्ण पञ्जारी ।

आये ताहि समय नँदरायी,
हँसत कहत—“भल कीन्ह कन्हई !
यशुदा कृपण, कृपण-उपजायी,
मोर अभाग ब्याहि घर आयी ।
यहि भरि जन्म तात ! तरसावा,
कबहुँ न माखन मोहिं खवावा ।

दोहा :—कीन्ह सिखावन तुम उचित, चिरजीवहु दोउ भाय” ,
दीन्ह महर अस कहि हरिहिं, माखन स्व-कर खवाय । ५६

महरि हृदय नहिं हर्ष समायी,
सुतहिं सुनाय कहति मुसकायी—
“माखन खाये बढ़ति न चोटी,
होति लाल ! पय पियतहि मोटी !”
सुनतहि फेंकेउ कर ते माखन,
चोटी गहि लागे पय माँगन—
“देहि अबहिं मोहिं दूध पियायी,
कबहुँ न खैहौं माखन माई !”
पियेउ घूँट दुइ दूध कन्हैया,
कहत—“न बाढ़ी चोटी मैया !”
रोवत सुतहिं मातु बहरावा,
अंक उठाय मयंक दिखावा ।
निरखत कहत—“भीठ यह माई,
खैहौं चंदा देहि मँगायी ।”
मातु विविध पकवान मँगाये,
हठी कान्ह सब फेंकि बहाये ।

दोहा :—उड़त चिरैयाँ कान्ह कहँ, दरसायीं बहु मात,
मानत एकहु बाल नहिं, अधिक अधिक विरुभात— ६०

“लाउ मातु ! मैं चंदा लेहौं,
भूख लागि, मैं चंदहि खैहौं ।”

खसकि अंक ते सुसकहि खीभहि ,
 माँगत चंद्र कहाँ ते दीजहि !
 मातु मनहि मन युक्ति द्वायी ,
 जल भरि थार धरेउ मँगवायी ।
 “आउ रे चंदा ! कन्ह बोलावहि ,
 आउ ! लाल तोहि संग खेलावहि ।
 मधु मेवा पकवान मिठाई ,
 तोहि खवावहि कुँवर कन्हई !”
 जननी जल-प्रतिविम्ब देखावा—
 “देखु लाल ! चंदा यहु आवा !”
 गहन चहत जल हाथ चलावत ,
 पकरत शशधर हाथ न आवत ।
 “यह तौ भलमलात अकुलायी ,
 इत पकरहुँ उत जात परायी !”

बोद्धा :— कहति यशोमति—“इंदु अति, तुम ते लाल ! डेरात ,
 जान देहु अब गेह निज, साँचहु यह अकुलात ।” ६१

गहत हिमांशु नयन अलसाने ,
 अंग मोरि फिरि फिरि जमुहाने ।
 लाय मातु पलना पौढ़ाये ,
 थपकि थपकि लालन दुलराये ।
 पुनि कछु कथा कही सुखकारी ,
 गये सोय हरि देत हुँकारी ।
 सोवत भक्तके जब पर्यंका ,
 बिकल जननि उपजी उर शंका—
 साँभहि ते बालक बिरुभाना ,
 बहु समुभायेउँ कहा न माना ।
 अतिशय बिलखेउ आजु कन्हई ,
 खेलत कोउ कुदीठि लगायी ।
 लै लै राई नोन उतारति ,
 कछु पढ़ि पढ़ि तन दोष निवारति ।

दोड़ कर जोरि शीश लगी लावति ,
सजल नयन कुल-देव मनावति—

बोहा :— “भेटहु मोरे बाल के, रोग दोष जंजाल” ,
बार बार यशुमति कहेउ, सुख सोये नँदलाल । ६२

होत प्रभात जननि पुनि जागी ,
सुतहिं जगावति अति अनुरागी—
“विगत निशा, शशधर छवि क्षीणा ,
दुरे नखत, दीपक द्युति-हीना ।
मुँदे कुमुद-दृग, कुवलय फूले ,
अलि मिलि वायु-दोल हँसि भूले ।
पिक गावत, खग बोलत बाणी ,
जागहु ! जागे सब वन प्राणी ।
बाजी वेणु, धेनु वन जाहीं ,
बिछुरत वत्स विलोकि रँभाहीं ।
प्रांगण दिनमणि किरण प्रकाशी ,
जागहु ! जागे सब ब्रज वासी ।
आये द्वार सखा सब खेलन ,
जागहु ! जागहु ! कमल-दलेक्षण !”
‘सखा’ शब्द सुनतहि भगवाना ,
त्यागेउ विहँसि वदन-परिधाना ।

बोहा :— प्रात समय प्रभु मुख लखेउ, प्रमुदित यशुदा नंद ,
मथत सिंधु जनु फेन फटि, निकसेउ पूरन चंद । ६३

धोय वदन विधु कीन्ह कलेवा ,
खेलन चले संग बलदेवा ।
ऊँचे चढ़ि यशुमति गोहरावहि—
“दूरि लाल ! जनि खेलन जावहि ।”
खेलत सुबल सुदामा साथ ,
होड़ा-होड़ी मारत हाथा ।

खेलत खेलत बाढ़ी रारी ,
 हारे श्याम रोष उर भारी ।
 लखि कह हलधर हरिहिं खिभायी—
 “जन्मे विनु पितु मातु कन्हई !”
 रंग भंग सुनि व्यंग रिसाने ,
 मातु समीप आय विलखाने—
 “मैया ! दाऊ बहुत खिभावा ,
 कहत—‘बवा तोहि हाट विसावा’ ।
 पूछत सखा—‘कहाँ तव ताता’ ?
 सब मिलि कहत तुमहु नहिं माता !

बोद्धा :— ‘नंद यशोदा गौर तनु, तुम कत श्याम शरीर’ ?
 चुटकी दै पूछत सखा, सिखै देत बलवीर ।” ६४

सुसकत श्याम कहत, अति खीभत ,
 रोष विलोकि मातु मन रीभत ।
 “सुनहु कान्हू ! बलराम चवाई ,
 को अस गोकुल तेहि पतियायी ?
 गोधन सौ सुनु साँच कन्हैया !
 मोहन पूत, यशोमति मैया ।
 कहत कार जो तोहि लबारा ,
 विधु ते अधिक वदन उजियारा ।”
 सुनि विहँसे हलधर दिशि हेरे ,
 जेवन हेतु तबहिं नंद टेरे ।
 यशुदा प्रमुदित पाँय पखारे ,
 बैठे नंद संग दोउ वारे ।
 थोरहि खात, बहुत लपटावत ,
 आपु न खात नंद-मुख नावत ।
 विहँसत पितु कछु कौर खवाये ,
 लागि मिरिच लोचन भरि आये ।

बोद्धा :— रोवत भागे द्वार दिशि, गोद रोहिणी लीन्ह ,
 फूँकति पुनि-पुनि शिशु वदन, मधुर कौर फिरि दीन्ह । ६५

एक दिवस मनसुखा सुदामा ,
 लाये हरिहिं बाँह गहि धामा ।
 कहेउ यशोदहिं दुहुन सुनायी—
 “हम देखेउ हरि माटी खायी ।”
 कह हरि—“खेल हारि ये रूठे ,
 लाये दंड दिवावन भूठे ।”
 यशुमति कीन्ही पुत्र प्रतीती ,
 खेलन पठये श्याम सप्रीती ।
 सखन संग खेलत सुखदानी ,
 निरखति सुतहिं सजग नँदरानी ।
 सहसा पुनि हरि माटी खायी ,
 देखत महारि रोष करि धायी ।
 पकरेउ भुज, लीन्ही कर साँटी ,
 पुनि पुनि कहति—“निकारहु माटी !
 कैसे अब तुम मोहिं भुठैहौ ,
 खोलहु मुख अब कहाँ दुरैहौ ?”

दोहा :— सुनत श्याम यशुमति वचन, कीन्ह वदन विस्तार ,
 विकल मातु शिशु मुख लखेउ, कोटिन विश्व प्रसार । ६६

देखे व्योम असीम अपारा ,
 देखे अगणित रवि, शशि, तारा ।
 देखे स्वर्ग, नरक, पाताला ,
 देखे दनुज, मनुज, सुर, व्याला ।
 देखे नदि, नद, सर, वन, नाना ,
 देखे सिंधु, सुमेरु महाना ।
 कर ते साँटि गिरत नहिं जानी ,
 मूँदे नयन जननि अकुलानी—
 “पाहि ! पाहि ! मैं पाहि ! कन्हाई !
 मूँदहु वदन मातु बलि जायी ।”
 हरि निज माया बेगि दुरायी ,
 कहत—“नाहिं मैं माटी खायी ।

तोहू निशिदिन दोष लगावति,
जब देखहु साँटी लै धावति।”
सुनत बैन मृदु नैन उधारे,
खेलत देखेउ वाल दुआरे।

दोहा :—कथा सुनायी सब पतिहिं, चकित चित नँदरानि,
कहत महर—“फलिहै सकल, गर्ग कहीं जो वाणि।” ६७

गोपी एक नंद-गृह आयी,
देखे माखन खात कन्हाई।
मन ही मन अभिलाष बढ़ावै,
कबहुँ श्याम मोरे दधि खावै।
गुनि वत्सलता तासु रसेशा,
कीन्ह प्रात उठि भवन प्रवेशा।
प्रमुदित गोपी लखत लुकानी,
पहुँचे हरि जहँ धरी मथानी।
पायी माखन भरी कमोरी,
खान लगे प्रभु चोरी चोरी।
चितवत चहुँ दिशि कहुँ कोउ नाहीं,
लखी खंभ आपनि परिछाहीं।
पूछत, “को तुम ? कवन पठावा ?
अब लागि केतिक माखन खावा ?”
हँसी ठठाय सुनत ब्रजवाला,
भागे भय-विह्वल नँदलाला।

दोहा :—फैली गोकुल बात जब, चोरत माखन श्याम,
ब्रज-वनिता घर-घर-कहहिं, कब अइहैं सुख-धाम। ६८

हरिहु भवन प्रति रस बरसावा,
गोप-वधुन सुख-सिंधु नहावा।
सखा सकल सँग लेहि बोलायी,
शून्य सदन प्रभु पैठहिं धायी।

माखन खाहिं, दूध ढरकावहिं,
दही काढ़ि मुख अंग लगावहिं ।
गृह भाजन सब डारहिं फोरी,
देहिं धेनु बछरन कहैं छोरी ।
दरस-परस-सुख, बतरस लागी,
सहहिं सकल उत्पात सभागी ।
गहि सस्नेह हृदय भरि लेहीं,
छटपटाहिं पै जान न देहीं ।
भागहिं हरिहु हाथ भक्तभोरी,
कंचुकि फारि हार गर तोरी ।
खीमहिं गोपी पाछे धावहिं,
उरहन लै यशुमति ढिग आवहिं—

बोद्धा :— “उपजायेउ अदभुत तनय, अरी यशोमति मात !
को बसिहै नँद-गाँव अब, सहि नित के उत्पात । ६६

दिन प्रति करत दूध-दधि हानी,
कब लगि सहहिं कानि नँद मानी ।
सीखेउ चढ़व सखन के काँधे,
बचत न भाजन छींके बाँधे ।
भवन एक हरि हँसत ठठायी,
परत गान गृह अन्य सुनायी ।
करत व्यंग गृह तीसर श्यामू,
एकहि क्षण प्रविशत बहु धामू ।”
सुनि अनहोनी महारि रिसानी,
मन मुसकाय कही हरि वाणी—
“मैया ! ये सब मोहिं बोलावहिं,
मैं भागहुँ गहि कंठ लगावहिं ।
तुइ इनके नहिं गुन कछु जानति,
जो ये कहहिं साँच सोइ मानति !”
सुनत वचन गोपिन हँसि दीन्हा,
बाल कृष्ण तन मन हरि लीन्हा ।

दोहा :— कहति यशोमति—“गोपिका, मदमाती इतराहि ,
काहे चोरहिं श्याम दधि, घर माखन नहिं खाहि ।” ७०

श्याम चरित लखि ब्रज जन रीझहिं ,
चोरी सुनि सुनि यशुमति स्वीझहिं ।
गोपी कछुक उरहने आयीं ,
गहि हरि हाथ साथ निज लायीं ।
“लखहु महरि यहि को उपजावा ?
कवन पिता कर पूत कहावा ?
चोरी करत मिलेउ घर माहीं ,
तनय तुम्हार होय की नाहीं ?”
गोपिन-उपालंभ सुनि माता ,
उर रिस-ज्वाल, जरे जनु गाता ।
ढूँढ़ि कहूँ ते डोरी लायी ,
लागी बाँधन पकरि कन्हाई ।
दुइ आँगुर नहिं पूरति डोरी ,
माँगि माँगि घर-घर ते जोरी ।
हरिहु विलोकि अंब-विकलाई ,
लीन्ह सकौतुक अंत बँधायी ।

दोहा :— यमलार्जुन तरु जहँ अजिर, लै आयी गहि मात ,
ऊखल ते बाँधेउ जबहिं, डोले तरुवर पात । ७१

बिटप विलोकत प्रभु पहिचाने ,
दोउ कुवेर-सुवन मन जाने ।
नल, कूबर कैलास-निवासी ,
शिव-प्रसाद पायी धन-राशी ।
वार-वधू अप्सरन समेतू ,
गवने कानन क्रीड़ा हेतू ।
सुरसरि-तीर कीन्ह मद पाना ,
धँसे करन सरि नग्नस्नाना ।
मुनि नारद आये तेहि काला ,
पहिरे वस्त्र लजानी बाला ।

सकुचे पै नल, कूबर नाही ,
अचल, विहीन वसन जल माहीं ।
कोप भयंकर मुनिवर कीन्हा ,
शाप कुवेर-सुतन कहँ दीन्हा—
“रहे अचल जल तुम अविचारी ,
होहु विटप ब्रज-मंडल भारी ।

बोद्धा :— द्वापर युग चौथे चरण, जब श्रीहरि अवतार ,
बाल कृष्ण निज कर कमल, करिहैं मोक्ष तुम्हार ।” ७२

यमलार्जुन ये तरुवर सोई ,
डोले गुनि विमुक्ति जनु दोई ।
यह रहस्य नहिं यशुमति जाना ,
बाँधे कसि ऊखल भगवाना ।
कहति—“न अब उरहन मैं सहिहौं ,
चोरी साँटी मारि भुलइहौं ।
लागहिं अगणित यहि घर गइया ,
सेवक गोप असंख्य दुहैया ।
चलहिं महर घर सहस मथानी ,
सीखी सुत चोरी कै बानी ।
कोउ छोरै जनि ठीठ कन्हैया ,”
अस कहि गयी काज-हित मैया ।
माखन-कण शशि-मुख छवि छाजत ,
लोचन लोल अश्रु-कण राजत—
उडुगण सहित निशा-मन मोहत ,
शशधर स्रवत सुधा जनु सोहत ।

बोद्धा :— त्रास-चपल गोलक विमल, सजल विलोचन छोर ,
वंशी-वेधी मीन जनु, करति वारि भकभोर । ७३

देखि दशा गोपी पछितानी ,
यशुमति दिग आर्यी अकुलानी ।

“पाँय परहि हम छोरहु माई !
 हिचकिनि रोवत कुँवर कन्हई ।
 औरहु घर ते माखन लावहिं ,
 हम अपने कर हरिहिं खवावहिं ।
 सुत कुल-दीपक शुचि मणि धामा ,
 वारिय तेहि पै गोधन ग्रामा ।”
 सुनि यशुमति औरहु विरुभानी ,
 भागीं गोपी, महारि रिसानी—
 “तनिक तुम्हार कान्ह दधि खावा ,
 घर-घर गोकुल नाम धरावा ।
 सही न रंच श्याम-लरिकई ,
 अब मोहिं माखन देत मैंगई ।
 तब मन तनिक न धीरज आना ,
 अब मोहिं चलीं सिखावन ज्ञाना ।”

बोद्धा :—छोरे यशुमति श्याम नहि, भयी दुपहरी बेर ,
 गोपिन तब बलभद्र ढिग, जाय सुनायी टेर— ७४

“भोरहि ते तुम्हार लघु मैया ,
 बाँधेउ ऊखल यशुमति मैया ।”
 सुनतहि हलधर व्याकुल धाये ,
 लखत बन्धु लोचन भरि आये ।
 जननि-समीप कहत कर जोरी—
 “देहि मातु ! अब मैयहिं छोरी ।
 काहे हरिहिं दीन्हि अस त्रासा ,
 गोरस केहि कर केतिक नासा ?”
 उत लीलापति अवसर पायी ,
 ऊखल यमल विटप अटकायी ,
 भटकेउ हठि, तरु गिरे विशाला ,
 व्याप्त ओर चहुँ रोर कराला ।
 भौजि वृत्त नल-कूबर तारे ,
 पाय मोक्ष निज लोक सिधारे ।

दौरि परे इत ब्रज नर-नारी ,
महर-दुआर भीर भइ भारी ।

बोद्धा :—निरखेउ यशुमति अजिर-दिशि, दिखे नाहिं घनश्याम ,
दिखेउ उलूखल नाहिं कहूँ, दिखी नाहिं कहूँ दाम । ७५

बिलखी यशुदा बोध विसारा—
“मैं कस बाँधेऊँ प्राण-अधारा !”
रहे घरिक सचकित ब्रजवासी ,
शिशु-गति काहु न मानस भासी ।
कोउ गगन तकि दृष्टि लगायी ,
हेरत विटपन कोउ शिर नायी ।
“बही न तनिकहु कतहुँ बयारी ,
कस ये गिरे महीरुह भारी !”
लखे द्रुमन-बिच पुनि घनश्यामा ,
बैसहि ऊखल, बैसहि दामा ।
त्रस्त, प्रीत, विस्मित नँदरायी ,
छोरेउ धाय यशोमति माई ।
कहत कान्ह—“मैं गयेऊँ डेरायी ।
लुकेऊँ विकल ऊखल तल जायी !”
सुनि शिशु वचन हँसे नर-नारी ,
गवने गृह विस्मय हिय धारी ।

बोद्धा :—“वज्र देह हरि कै ”—कहहिं, जहाँ तहाँ ब्रज लोग ,
“नित उठि परति विपत्ति नव, नित्य बचत विधि-योग ।” ७६

गोकुल निरखि उपद्रव नाना ,
खोजेउ ब्रजजन अन्यस्थाना ।
वृन्दावन शोभन सुखकारी ,
प्रचुर वारि तृण, गो-हितकारी ।
कहेउ महर, गोपन मन माना ,
गृह-गृह सबन सजाये याना ।

चले समोद शकट चढ़ि गावत ,
 श्याम चरित इक एक सुनावत ।
 विरमि कीन्ह वृन्दावन वासा ,
 विरचे लखि सुपास आवासा ।
 चंद्राकृति इक खरिक बनावा ,
 बाँधे धेनु वत्स सुख छावा ।
 गहन अरण्य चरहिं नित गाई ,
 ग्वाल बाल खेलहिं हर्षायी ।
 बैठहिं सब कदंब तरु छाहीं ,
 वृन्दावन सम वन कहूँ नाहीं ।

दोहा :— परम रम्य यमुना बहति, स्वच्छ, सुशीतल नीर ,
 बहत वेणु शृंगी-स्वरित, मंद, सुगंध समीर । ७७

लखी विकीर्ण विपिन प्रभु शोभा ,
 उपजेउ उर गोचारण-लोभा ।
 चले प्रभात विपिन जब ग्वाला ,
 चले लागि पाछे नँदलाला ।
 निरखि यशोमति आतुर धाई—
 “कान्ह ! कान्ह !”—कहि टेर लगायी ।
 भागे हरि कहि—“धेनु चरइहौ ,
 भयेउ सयान न मातु डेरइहौ ।
 जाय जमुन-जल पैठि नहइहौ ,
 भूख लगे मैं वन-फल खइहौ ।”
 माता विविध भाँति समुभावा ,
 कहति—“आजु वन हाऊ आवा ।”
 एकहु जब न सुनी घनश्यामा ,
 पकरि हाथ सौपे बलरामा—
 “देखत रहेहु, कान्ह मम शारे ,
 लौटेहु आजु विशेष सवारे ।”

दोहा :— शृंगी फूँकत गोप सब, श्याम बजायी वेणु ,
 गो बछरा उछरत चले, चली उड़ति पथ रेणु । ७८

सजल जलद छवि श्याम शरीरा ,
 शोभित तड़ित-कांति कटि चीरा ।
 कंध, वक्ष, युग बाहु विशाला ,
 हृदय पदिक, सर्वाङ्गन माला ।
 कुंडल युगल लोल अभिरामा ,
 मंजुल मृदु कपोल छवि धामा ।
 भव्य ललाट रेख गोरोचन ,
 ललित चंद्रिका, तरल विलोचन—
 कुवलय दल अलि-वाल बंधाये ,
 चहत उड़न जनु उड़न न पाये ।
 अरुण अधर दशनन द्युति सोही ,
 धरे लालमणि मुक्ता पोही ।
 बोलत बैन सुमन बरसावत ,
 स्रवत सुधा हँसि वेणु बजावत ।
 काँधे कामरि लकुटी सोही ,
 गो चारत हरि विश्व विमोही ।

दोहा :— सखन-संग खेलत कबहुँ, कबहुँ चरावत गाय ,
 नाचत कबहुँ कदम्ब-तल, मुरली मधुर बजाय । ७६

खेलत ग्वालन संग कन्हैया ,
 बगरे विपिन वत्स अरु गैया ।
 इतनेहि महुँ वत्सासुर आयी ,
 वत्स-वृंद महुँ गयेउ समायी ।
 जानि दैत्य-कैतव बनवारी ,
 पहुँचे क्रम-क्रम तासु पछारी ।
 सहसा कर खल-पूछ लगायी ,
 हतेउ पटक तरु-मूल कन्हाई ।
 घहरेउ कानन, जीव डेराने ,
 चकित सखा, गो-वत्स पराने ।
 पहुँचे साँभ जबहिं ब्रज माहीं ,
 कहेउ वृत्त हरि यशुमति पाहीं—

दोहा :—प्रविशीं सुरभी वत्स सह, ग्वाल बाल, बलराम,
अघासुरहु मूँदेउ वदन, निरखि पूर्ण निज काम । ८२

मूँदत मुख उपजी अँधियारी,
निशि जनु धिरी वादरी कारी ।
सूभत नहिं कछु हाथ पसारे,
“त्राहि ! त्राहि !” सब हरिहिं पुकारे—
“कहँ हलधर ? कहँ कुँवर कन्हारै ?
कहाँ परे हम केहि वश आयी ?”
कह हरि विहँसि—“गुहा यह नाही,
हम सब परे असुर-मुख माहीं ।
धीरज धरहु तो होय उबारा,
तनिक तनिक सब करहु सहारा ।”
अस कहि हरि निज देह बढ़ायी,
बढ़त बढ़त बहुतै बढ़ि जायी ।
अंधकार, कछु सखन न जाना,
बढ़त भये हरि असुर समाना ।
बाढ़ी अघासुरहु विकलाई,
बहुत बढ़े हरि सहि नहिं जायी ।

दोहा :—बहिरंध्र अघ कर फटेउ, निकसे हरि तेहि द्वार,
कहत टेरि—“निकसहु सखा, ईश कीन्ह उखार !” ८४

मरत असुर बिनसेउ अँधियारा,
चौधे दृग विलोकि उजियारा ।
दैत्य देह लखि सूखे प्राणा,
“बचे आजु साँचहु हम जाना ।
धन्य ! धन्य ! तुम धन्य मुरारी !
अब जानेउँ हम तुम अवतारी ।”
कहत विहँसि हरि बात वनायी,
“मारेउँ मैं, तुम भये सहायी ।”
प्रमुदित सकल चले ब्रज ओरा,
हरिहिं सराहत नेह न थोरा ।

उत ब्रह्मा मन माहिं विचारत ,
 को यह कृष्ण असुर संहारत ?
 चहत जहाँ तहँ करत प्रवेशू ,
 धारत रहत नित्य नव वेषू ।
 रहेउ सृष्टि-मर्याद मिटायी ,
 लेहौ शक्ति-थाह ब्रज जायी ।

दोहा :— सृजन समय नहिं जो सकेउ, नापि कमल निज गोह ,
 नापन चाहत आजु सोइ, विश्वाधार सदेह । ८५

कृत-निश्चय चतुरानन आये ,
 चारत सुरभिन हरि वन पाये ।
 ग्वाल-बाल वत्सहु सब गाई ,
 ब्रह्मलोक लै गये चोरायी ।
 विष्णुरे बालक धेनु हेरानी ,
 विधि करतूति हृदय हरि जानी ।
 कीन्हेउ कौतुक द्रुत बनवारी ,
 विरचे वैसेहि सकल सँवारी ।
 वैसेहि रूप, वाहि सब रंगा ,
 वैसेहि प्रकृति, वाहि बल अंगा ।
 वैसेहि साज, वाहि सब नामा ,
 वैसेहि साँभ चले सब ग्रामा ।
 वैसेहि गोपद धूरि उड़ावत ,
 वैसेहि सखा बजावत गावत ।
 वैसेहि सर्व सदन हरि आने ,
 चकित चतुर्मुख हृदय लजाने ।

दोहा :— क्षण विधि ब्रज-क्षण लोकनिज, क्षण आवत, क्षण जाय ,
 दुइ दुइ देखत दोउ थल, गोप, वत्स अरु गाय । ८६

आवत जात वर्ष इक बीता ,
 भयेउ मनहिं मन विधिहु समीता ।

प्रकटेउ प्रभु ब्रह्मा मन ज्ञाना,
मिटेउ मोह, विनसेउ अभिमाना।
लै सँग बालक, बछरा, गाई,
आयेउ गोकुल हरि शरणाई।
“धिक! धिक! मोहिं उपजेउ असमोहा,
कीन्हेउ चौर-कर्म, प्रभु-द्रोहा।
मैं विधि एक लोक निर्माता,
रोम रोम प्रभु बँधे विधाता।
प्राकृत नरहु योग अपनायी,
चमत्कार बहु सकत देखायी।
तुम योगेश, योग साकारा,
योग-शक्ति सिरजत भव सारा।
यह नहिं तनिकहु नाथ बड़ाई,
विरचे कछुक गोप-सुत गाई।

बोद्धा :—संयति-अणु अणु व्याप्त तुम, प्राण रूप भगवान्,
कीन्हेउँ प्रभुहिं न वेष यहि, छमहु मोर अज्ञान।” ८७

उत ब्रह्मा निज लोक सिधारे,
इत हरि अन्य चरित विस्तारे।
एक दिवस खेलत ब्रज खोरी,
देखी श्याम राधिका भोरी।
जनु कछु क्षीर-सिंधु सुधि आयी,
औचक मोहित भये कन्हाई।
पूछत श्याम—“काह तुव नामा ?
को तुव पिता ? कवन तुव भामा ?
पहिले कवहुँ न परी लखायी,
आजु कहाँ ब्रज खेलन आयी ?”
“पितु वृषभानु विदित ब्रज नामा,
बरसाना कछु दूरि न भामा।
राधा मैं, तुम कहँ भल जाना,
चोर ! चोर ! कहि जग पहिचाना !”

मुदित श्याम कह मधु मुसकायी—
“लीन्हेउँ काह तुम्हार चोरायी ?”

दोहा :— समुझे वचन न राधिका, लखति हरिहि अनिमेष ,
बूढ़ति उबरति दृष्टि जनु, सुषमा-सिंधु अशेष । ८८

हर्षित हरि भाषेउ पुनि सैनन ,
“आयेउ साँझ खरिक सँग खेलन ।”
“अइहौ”—कहेउ प्रकट हँसि बाला ,
गवनी भवन वियोग विहाला ।
“साँझ भयी दोहनी दे मैया !
खरिक जाय दुहिहौ निज गैया ।”
बरजति जननि कुँवरि नहिं मानी ,
श्याम मूर्ति हिय माहिं समानी ।
आतुर पहुँची खरिक किशोरी ,
लखे न श्याम विकल मति भोरी ।
कबहूँ इत कबहूँ उत डोलति ,
लेति उसास, कृष्ण मुख बोलति ।
नंद संग देखे हरि आवत ,
शीश मोर-पख, मुरलि बजावत ।
लीन्ह महर राधहिं पहिचानी ,
बोलि श्याम सौपे हित मानी—

दोहा :— “तुम वृषभानु-कुमारिका, खेलतु संग कन्हाय ,
रहेउ विलोकत बाल मम, मारहिं जनि कोउ गाय । ८९

जब लगि खरिक गनहुँ निज गाई ,
तब लगि लावहु कान्ह खेलायी ।”
गये नंद, आयी हरि पाहीं ,
कहति राधिका दै गल बाहीं—
“अब छाँड़हुँ नहिं चरणहु कन्हाई ,
सौपेउ तुमहिं मोहिं नँदरायी ।”

नवल गोपाल, नवेली राधा,
उमहेउ नवल सनेह अगाधा ।
नवल पीत पट, नवलहि सारी,
नवल कुंज क्रीडित बनवारी ।
नवल जमुन-जल, नवल तमाला,
नवल पुलिन, नव नव वनमाला ।
नवल अरण्य, नवल तरु शाखा,
उपजी हृदय नवल अभिलाखा ।
राधा-माधव संग सोहाये,
नवल चंद्र पै नव घन आये ।

दोहा:—बरसत नव रस मेघ नव, भीजे तन मन प्राण,
मिले कामना काम दोउ, मिले भक्ति भगवान । ६०

नंदराय इत ढूँढत आवत,
“राधा ! माधव !” कहि गोहरावत ।
कहत कान्ह—“बादर घिरि आवा,
इन मोहिं लै यहि कुख दुरावा ।
मोहिं बचावत आपुहि भीजी,”
सुनत बैन राधा मन रीझी ।
महर कुँवरि घर हरि सँग-आनी,
राधा छवि लखि महरि लोभानी ।
प्रकटी प्रीति पास बैठारी,
वेणी गुहि, रचि माँग सँवारी ।
गोरे भाल बिन्दु इक कीन्हा,
नील निचोल लाय नव दीन्हा ।
तिल, मेवा, चाँवरी, बतासा,
धरे महरि लै राधा पासा ।
कहति बहुरि—“खेलहु हरि संग,”
सुनि राधा मन द्विगुण उमंगा ।

दोहा:—खेलति खीळति श्याम सँग, धरति तजति हरि बाँह,
मनहुँ तड़ित प्रकटति दुरति, सजल घोर घन माँह । ६१

गयी भवन वृषभानु-कुमारी,
 गवने गो-चारन बनवारी ।
 पहिले धेनुक कंस पठावा,
 हलधर तेहि पल माहिं नसावा ।
 पुनि प्रलंब आयेउ वन माहीं,
 बनेउ सखा कोउ जानेउ नाहीं ।
 ताहू कहँ बलराम सँहारा,
 सुनेउ कंस उर ताप अपारा ।
 सूझेउ नहिं जब नृपहिं उपायी,
 पहुँचे नारद मधुपुर आयी ।
 कह मुनि—“बसत जमुन-जल ब्याला,
 काली नाम महा विकराला ।
 सोवत जागत फणि फुफकारत,
 सतत प्रतप्त वारि विष भारत ।
 दूरि दूरि लगि जमुना माहीं,
 तेहिं भय जीव जन्तु नहिं जाहीं ।

दोहा :— गरल-ज्वाल जरि जात सब, तट तरुवर वृक्ष पात ;
 तस बात डोलत, लगत, उड़त विहग गिरि जात । ६२

फूलत कमल तहाँ जल माहीं,
 व्यापत व्याल गरल तिन माहीं ।
 अब लगि जीव न रचेउ विधाता,
 सकहि पाय जो दह-जलजाता ।
 नंद महर ढिग पठवहु पाती,
 माँगहु कमल मिटहि आराती ।”
 मोद कंस मन सुनि मुनि वाणी,
 भयेउ काज सोचत अज्ञानी ।
 चतुर दूत पुनि भूप बोलायी,
 पाती महर समीप पठायी ।
 उत लखि नृपति दूत नँद-धामा,
 सचकित ब्रजजन, खरभर ग्रामा ।

पाती बाँचत महर डेराना,
कंप शरीर, विकल मन प्राणा।
भयी भीर बड़ि नंद-दुआरे,
सोचत गोप-वृन्द मन मारे।

बोहा :— लिखेउ नृपति—“दिन तीनि महँ, मिलहि कमल जो नाहि,
नासहुँ जन गोधन सकल, बचै न कोउ ब्रज माहि।” ६३

करिय कहा अब कवन उपायी,
को भूपहिँ समुभावहि जायी।
सकै तोरि जो गाहि नभ तारा,
सकै सोखि जो उदधि अपारा,
सकै जो फूँकि सुमेरु उड़ायी,
सकै सोउ नहिँ कमलन लायी।
कहत महर—“भोहिँ नहिँ निज शोचू,
तनिकहु नहिँ धन धाम सँकोचू,
हतिहै सुतन कंस अपघाती,
दहकति सोचि सोचि यह छाती।”
सुनि बोले हरि—“कमलन लइहौ,
जनि डरपहु, मैं सबहिँ बचैहौ।”
बाल-वचन कोउ कान न दीन्हा,
खेलन हेतु गमन हरि कीन्हा।
श्रीदामा-गृह श्याम सिधारे,
लै कंदुक सब सखा हँकारे।

बोहा :—ब्रज बाहर जमुना-निकट, बाल-मण्डली संग,
कीड़त भारत गेंद सब, ताकि एक इक अंग। ६४

भारत एक लेत इक दाँऊ,
नहिँ जानत हरि रचेउ उपाऊ।
सखा अन्य खेलत सुख पावत,
हरि एकहि दिशि गेंद चलावत।

आयेउ जैसेहि जमुन-किनारा ,
 गेंद श्याम श्रीदामहिं मारा ।
 गयेउ सखा मुरि अंग बचायी ,
 परेउ गेंद कालीदह जायी ।
 रिस श्रीदामा उर अति बाढ़ी ,
 कहत—“गेंद लावहु हरि काढ़ी !
 जानि बूझि तुम गेंद पँवारा ,
 नहिं आपन-पर कीन्ह विचारा ।”
 पकरि फेंट पुनि पुनि भक्कभोरा ,
 चितये हरि कालीदह ओरा ।
 भटकि हाथ निज फेंट छोड़ायी ,
 धाये कालीदह समुहायी ।

बोद्धा :— घाय बहुरि लौटे सकल, विकल लागि विष स्मार ,
 उत कदम्ब तरु हरि चढ़े, कूदत लागि न बार । ६५

कूदत हरि उछरेउ दह-नीरा ,
 दिखि न परेउ पुनि श्याम शरीरा ।
 बही पूर्ववत् जमुना धारा ,
 मचेउ सखन विच हाहाकारा ।
 विलपत कहत सकल श्रीदामहिं—
 “गेंद लागि मारेउ घनश्यामहिं !”
 इत यशुमति मन शोच बढ़ावा ,
 भयेउ विलम्ब कान्ह नहिं आवा ।
 खोजन चली छींक भइ भारी ,
 लौटि अजिर दिय दोष निवारी ।
 चली बहुरि निकसी मार्जारी ,
 काटेसि राह, विकल महतारी ।
 नंदहु घर आवत मन मारे ,
 रोवत देखे श्वान दुआरे ।
 परसि शीश इक काग उड़ाना ,
 काँपे महर अशुभ अति माना ।

दोहा :—सदन प्रविशि यशुदा लखी, दीन दुखी द्युति-हीन,
पूछत—“भामिनि ! कान्ह कहँ, काहे वदन मलीन ।” ६६

यहि बीचहि सब सखन पुकारा,
विकल नंद बहु द्वार गोहारा ।
बिलखत बोलत बाल विहाला—
“कूदे कालीदह नंदलाला ।”
“पाहि ! पाहि !” सुनि जननि पुकारा—
“गयेउ कहाँ सुत प्राण-अधारा !”
ब्रजवासी सुनि सुनि उठि धाये,
विलपत कालिन्दी-तट आये ।
कृष्ण ! कृष्ण ! हा कृष्ण ! पुकारी,
कातर शोक गोपिका सारी ।
कहत पछार खाय महि माहीं—
“श्याम बिना ब्रज जीवन नाहीं !”
समुभावत जननिहिँ बलरामू—
“कीन्ह मातु ! लीला कछु श्यामू ।
सकत बिनासि न कोउ मम भ्राता,
गयेउ लेन दह-जल जलजाता ।”

दोहा :—इत गोहरावत कृष्ण कहि, व्याकुल गोप-समाज,
उत हरि पहुँचे जाय तहँ, बसत जहाँ अहिराज । ६७

देखेउ रहेउ सोय अहिरायी,
नागिनि करति कंत सेवकाई ।
निरखि शिशुहिँ मन विस्मय माना,
पूछति—“को तैं बाल अजाना ?
मृदुल अंग नख शिख छवि छायाँ,
को वैरी दह दीन्ह पठायी ?
भागु वेगि बिलमहि अब नाहीं,
जागत नाग जरै पल माहीं ।”
कहत कान्ह—“मोहिँ कंस पठावा,
तब पति-निधन हेतु मैं आवा ।

वृथा करहि जनि कंत बड़ाई,
 वेगि देहि अहिराज जगायी ।
 सोवत अनुचित करब प्रहारा,
 ताते मैं नहि आवत मारा ।”
 सुनत उठी अहि-नारि रिसायी,
 “लेहि तुही खल ! नाग जगायी ।”

दोहा :— व्यंग वचन नागिनि कहे, झपटे कुपित कन्हाय,
 चापि पूँछ भूतल दली, उठेउ उरग अकुलाय । ६८

अकस्मात जागेउ भय खायी,
 जानेउ आय गयेउ खगरायी ।
 लखेउ बाल जब सन्मुख ठाढ़ा,
 झटकी पूँछ कोपि फण काढ़ा ।
 फुफकि फुफकि तकि तकि निज घाता,
 लागेउ करन नाग आघाता ।
 उगलेउ विष, उपजी जल ज्वाला,
 छुइ न सकेउ पै फणि नँदलाला ।
 पदतल पूँछ लखी अहिराज,
 कीन्ह मुक्ति हित कोपि उपाज ।
 घूमि श्याम चरणन सिमिटाना,
 लागि न देर देह लपटाना ।
 जकड़ेउ नख-शिख श्याम शरीरा,
 ताने बंधन हरि-तनु पीरा ।
 विहँसि तियहि कह नाग सुनायी—
 “सकहुँ श्वास महुँ विश्व नसायी ।”

दोहा :— सुने कृष्ण गर्वित वचन, कीन्हेउ तनु विस्तार,
 टूटत अँग, फूटत बदन, निकसी शोणित-धार । ६९

देह-बंध टूटत लखि सारे,
 ‘शरण ! शरण !’ अहिराज पुकारे ।

‘शरण’ सकत सहि श्रीपति नाहीं ,
 भये स्वल्प मुनतहि पल माहीं ।
 बेधि नासिका बल हरि लीन्हा ,
 नाथि नाग माथे पद दीन्हा ।
 चढे सहस्र फणन पुनि धायी ,
 उपजेउ प्रभु जानेउ अहिरायी ।
 कहत करत निज भाग्य बड़ाई—
 “दर्शन दीन्ह सदन हरि आयी ।”
 कोटि कमल लै पन्नग-नारी ,
 पूजे पद, तोषे बनवारी—
 “जाहु, करहु निज लोक निवासा ,
 अब न तुमहिं खगपति ते त्रासा ।”
 चरण-चिह्न मस्तक प्रकटाये ,
 चले नाग निज संग लेवाये ।

बोद्धा :— नाथे अहि, माथे धरे, कोटि कमल अभिराम ,
 नर्तत मुदित फणीन्द्र फण, प्रकटे नटवर श्याम । १००

हरि देखत दौरे ब्रजवासी ,
 जिमि विधु-उदय उदधि जल-राशी ।
 गद्गद नंद प्रमोद अपारा ,
 पुलकेउ रोम रोम तनु सारा ।
 जननि विलोचन वारि बहावत ,
 “तजि निर्मोहि ! मोहिं कहँ धावत !”
 कहत श्याम—“मैं जमुना तीरा ,
 खेलत रहेउँ संग बलवीरा ।
 सहसा मोहिं गहेउ कोउ धायी ,
 फेंकेउ जमुना माहिं भँवायी ।
 उघरे दृग देखेउँ अहिरायी ,
 पूछत—“आये कहाँ कन्हाई” ?
 मैं बोलेउँ—“मोहिं कंस पठावा ,
 कमल लेन तोरे घर आवा” ।

कंस नाम सुनि उरग डरायी ,
कमल सहित मोहिं गयेउ पठायी ।”

दोहा :—हँसी यशोमति सुनि कथा, हँसे सकल ब्रज लोग ,
कहत—“कान्ह ! तुव कुंडली, परेउ झूठ कर योग ।” १०१

विरह-व्यथा क्षण माँझ भुलानी ,
शोक-नदी सुख-सिन्धु समानी ।
कही श्याम निज मन अभिलाषा ,
कीजै निशि यमुना-तट वासा ।
गोप-समाज सुनत हरषाना ,
होन प्रबंध लगे विधि नाना ।
नंद मुदित कछु गोप बोलाये ,
कंस पास लै कमल पठाये ।
औरहु दधि माखन उपहारा ,
प्रेषे महर अनेक प्रकारा ।
लिखी विनीत-प्रीतियुत पाती ,
होय प्रसन्न नृपति अपवाती ।
रहे गुप्तचर जे ब्रज माहीं ,
गये धाय मथुरापति पाहीं ।
अवनिपतिहिं ब्रज-वृत्त सुनाये ,
काली नाथि कमल हरि लाये ।

दोहा :—त्रस्त सुनत मथुरेश उर, उपजेउ विषम खँभार ,
नंद दूत पहुँचे तबहिं, लिये कमल उपहार । १०२

पेखत पंकज भूप विहाला ,
कमल नाहिं जनु कोटिक व्याला ।
नाल समेत भीति उपजावत ,
फण पसारि जनु काटन धावत ।
कपट-कुशल नृप धीरज धारा ,
कीन्हेउ बहु दूतन सत्कारा ।

बाँचत पत्र तोष प्रकटावत,
नंद-सुतन प्रति प्रीति बतावत—
“भयेउ धन्य ब्रज-मंडल आजू,
कृष्ण नाथि अहि कीन्हैउ काजू।
मोरहु जगत बढै नित नामू,
मिले शूर मोहिं हलधर श्यामू।”
सिरोपाव दूतन पहिराये,
दीन्हि बिदा द्रुत सचिव बोलाये।
कीन्हि मंत्रणा मथि ठहरावा,
असुरन बोलि कुमंत्र सुनावा—

बोहा :— “जमुना-तट कानन सघन, आगी देहु लगाय,
ब्रजवासी नहिं कोउ बचै, सोवत हतहु जराय ।” १०२

इत ब्रजजन कालिन्दी-कूला,
हर्ष हुलास भरे, भय भूला।
ऋतु निदाघ शशि उदित अकासा,
व्याप्त व्योम महि विशद प्रकाशा।
ग्वालन लीला रची सँवारी,
बनेउ नाग कोउ, कोउ बनवारी।
औरहु बहु हरि चरित सोहाये,
रचि ब्रजवासिन मोद बढ़ाये।
रास श्याम तेहि राति रचावा,
जनु वैकुण्ठ उतरि महि आवा।
बाढ़ी निशि सुख निद्रा सोये,
श्रान्ति विषाद भ्रान्ति भय खोये।
इतनेहि महँ भागेउ कोउ जागी,
कहत वरत वन लागी आगी।
जागे भागे सब नर नारी,
लखेउ कराल अनल वन भारी।

बोहा :— भागि भागि लौटे सकल, बचेउ न कतहुँ निकास,
दशहु दिशा लागेउ अनल, चढ़ी ज्वाल आकाश । १०४

तरु अररात गिरत महि आयी ,
 तड़-तड़ कड़-कड़ शब्द सुनायी ।
 पट-पट होत, वरत वन बाँसा ,
 चटकत जरत पात कुश काँसा ।
 लटकत जरि जरि ताल तमाला ,
 झुलसत वेलि वितान विशाला ।
 झार झार सब ओर धुंधारा ,
 दमकत उचटि उचटि अंगारा ।
 प्रलय काल सम चली बयारी ,
 झपटति लटपट लपट करारी ।
 गोप ग्वाल ब्रज-बाल विहाला ,
 “पाहि ! पाहि ! राखहु नँदलाला !”
 बिलपत यशुदा नंद पुकारी ,
 “कान्ह ! आजु ब्रज शरण तुम्हारी ।”
 “मूँदहु लोचन”—कहेउ कन्हारै ,
 “पल महुँ अनल जाल मिटि जायी ।”

दोहा :— ब्रजवासिन मूँदे नयन, कीन्ह अग्नि प्रभु पान ,
 सिमिटि समानी ज्वाल मुख, शीतल नीर समान । १०५

“खोलहु लोचन”—कह नँदलाला ,
 नहिँ कहूँ धूम नाहिँ कहूँ ज्वाला ।
 निरखि कहत ब्रजजन हरषायी—
 “हमरे सदा सहाय कन्हारै ।
 बिनु बरसे, छिरके बिनु पानी ,
 कहहु ज्वाल सब कहाँ बिलानी !
 गुनी श्याम नँद-यशुमति छौना ,
 पेटहि ते जानत कछु टोना ।”
 विहँसे हरि, बोलीं ब्रज-नारी ,
 “सिखवहु हमहिँ मंत्र बनवारी ।”
 बोले कान्ह—“मंत्र तेहि आवै ,
 चोरी करि जो माखन खावै ।

उरहन जासु गेह नित आवै ,
जननी सुनि सुनि जासु रिसावै ।
ऊखल ते जो देह बँधावै ,
होत भोर दस साँटी खावै ।”

दोहा :— सुनि रीझी ब्रज वाम सब, खीझी यशुमति मात ,
प्राची दिशि लाली भयी, छायेउ स्वर्ण-प्रभात । १०६

ब्रजजन सब निज निज गृह आये ,
धेनु चरावन श्याम सिधाये ।
जमुना तट हरि दीन्ह विहायी ,
वृन्दावन पाछे रहि जायी ।
बढ़े जात हरि, दौरहिं गैया ,
कहत सखा—“कहँ जात कन्हैया ?
चलि न सकत मग हम सब थाके ,
लागत पग कुश कंटक बाँके ।”
बढ़ि आगे इक सरवर पायी ,
बैठे श्याम सखन बैठायी ।
वारि प्रचुर चहुँ दिशि हरियाई ,
लागीं चरन ससुख हरि-गाई ।
इतनेहि महुँ कहुँ धूम देखाना ,
भीत सखा दावानल जाना ।
कहत श्याम—“दावानल नाहीं ,
बसत विप्र कछु यहि वन माहीं ।

दोहा :— श्रुति-विद् ये द्विज-वर्य सब, दुरे कंस नृप-त्रास ,
यज्ञ होम शुचि धूम यह, महकति रुचिर सुवास ।” १०७

कहत मनसुखा—“भली बतायी ,
रुचिर सुवास लुधा उपजायी ।
उदर माहिं जनु लागी आगी ,
वन फल खाय न बुझै अभागी ।”

कहेउ कान्ह—“नहिं कीजै शोचू,
 माँगहु विप्रन तजि संकोचू।”
 कहत सखा—“हम मंगन नाहीं,
 लाज त्यागि जो माँगन जाहीं।”
 कह हरि—“जाय लेहु मम नामा,
 लज्जा ते न मोहिं कछु कामा।”
 बाढ़ी दिन सँग जुधा-पिपासा,
 गये सखा कछु विप्रन पासा—
 “नंद महर सुत कुँवर कन्हार्ई,
 आये विपिन चरावत गार्ई।
 लागि जुधा प्रभु पास पठाये,
 भोजन हेतु यहाँ हम आये।”

दोहा :— सुनत विप्र रूखे भये, कीन्ह वचन नहिं कान,
 लौटि परे लज्जित सखा, कहत—“भयेउ अपमान।” १०८

रोष भरे सब हरि ढिग आये,
 कहत—“खाय हम बहुत अधाये।
 आपहु चलि अब भोजन कीजै,
 देत विप्र जो भावै लीजै।”
 व्यंग वचन सुनि हरि मुसकाहीं,
 “जाहु सखा ! द्विज-वनितन पाहीं।”
 धर्म तत्व वे नीके जानहिं,
 समदर्शी कछु भेद न मानहिं।”
 जुब्ध सखा सब कहत रिसायी—
 “आपुहि माँगहु जाय कन्हार्ई।”
 हठ कीन्ही हरि, चले बहोरी,
 बोले विप्र वधुन कर जोरी—
 “धेनु चरावत हम वन आये,
 भोजन माँगन श्याम पठाये।”
 सुनतहि उठीं हुलसि ब्रजनारी,
 तनु पुलकित, दृग आनँद वारी।

देहा :—कहहि—“मुरारी ! हरि ! कहाँ, कहाँ श्याम अभिराम ?
विपिन-विहारी कृष्ण कहँ, बनवारी, घनश्याम ?” १०६

भोजन-पात्र अनेक मँगाये ,
व्यंजन विविध सप्रीति सजाये ।
विह्वल चलीं श्याम दिशि धायी ,
जनु सरिता सागर समुहायी ।
दीन्ही द्विजन धाय मग बाधा ,
रहीं न, वहीं सनेह अगाधा ।
कछु सदेह, कछु तजि तजि देही ,
मिलीं जाय घनश्याम सनेही ।
कीन्हेउ श्याम सभक्ति प्रणामा—
“धन्य, लहेउँ दर्शन द्विज-वामा ।”
भोजन करत सप्रीति कन्हार्ई ,
मनहुँ खवावति यशुमति माई ।
अचल भक्ति-वर प्रभु सन माँगी ,
लौटीं सदन चरण-अनुरागी ।
दरस-वृत्त निज पतिन सुनावा ,
उपजेउ विप्रन मन पछितावा—

देहा :—“जप तप यज्ञ समाधि बिनु, इनहि मिले विभु आय ,
भक्ति रहित हम वेद पढ़ि, दीन्हेउ जन्म गँवाय ।” ११०

गये गोप गृह गाय चरायी ,
वन-गाथा ब्रज-वधुन सुनायी ।
गोपी कहहिं—“धन्य द्विज-नारी ,
तजि सर्वस्व भजहिं बनवारी ।
निवसत नित हम संग कन्हार्ई ,
तबहुँ न चरणन भक्ति दृढ़ायी ।”
आयेउ मार्गशीर्ष, सुख मानी ,
गौरी-पूजा हरि-हित ठानी ।
करहिं प्रात जमुना-जल मज्जन ,
माँगहिं वर करि गौरी-पूजन—

“जहँ जहँ जाहिं जनमि हम माई !
 बढै प्रीति हरि पद सुखदायी ।”
 जानेउ हरि गोपिन व्रत धारे ,
 गये प्रात प्रभु जमुन किनारे ।
 लखेउ धरे तट वसन उतारी ,
 नग्न नीर अवगाहत नारी ।

दोहा :— नीर निमज्जत नग्न नित, सब ब्रज-नारि समाज ,
 चलत प्रथा प्राचीन गहि, रंचहु नहिं उर लाज । १११

आजु देहुँ अनरीति मिटायी ,
 लोक लाज मैं देहुँ सिखायी ।
 सोचत मन कछु युक्ति विचारौ ,
 हरे वसन भूषण बनवारी ।
 चढ़े कदंब विटप प्रभु जायी ,
 दीन्हे पट भूषण लटकायी ।
 मणि आभरण समेटि सजाये ,
 परी किरण दिनपति दमकाये ।
 नीलांबर पाटांबर सारी ,
 टाँगी अँगिया विटप सँवारी ।
 अरुण पीत बहु वर्णन सोहत ,
 डार डार अंबर मन मोहत ।
 पायीं जानि न कछु ब्रजनारी ,
 पल महँ कौतुक रचेउ मुरारी ।
 करन लगीं जब रविहिं प्रणामा ,
 उठी दृष्टि देखे घनश्यामा ।

दोहा :— पटं पल्लव भूषण दुरेउ, परेउ दृष्टि रवि नाहि ,
 सुरपति-धनु मानहुँ उयेउ, श्याम नीप तरु माहि । ११२

हरिहिं विलोकत वाम लजानीं ,
 गहिरे नीर धँसीं सकुचानी ।

हिम-शीतल कालिन्दी नीरा ,
 परसत प्राण प्रचंड समीरा ।
 मुख पर्यन्त वारि सब ठाढ़ी ,
 काँपत अंग, ग्लानि मन बाढ़ी ।
 लोचन अवनत जल जनु बोरी ,
 बिनवत ब्रज-वनिता कर जोरी—
 “देखहु निज मन श्याम ! विचारी ,
 अनुचित लखब वसन बिनु नारी ।
 अंबर देहु हमार गिरायी ,
 अधिक कहहिं का, मरत लजायी ।”
 कहेउ हरिहु—“जो लागति लाजा ,
 बख उतारत नित केहि काजा ?
 नग्न नीर तुम कीन्ह प्रवेशू ,
 हमहिं सुनावत अब उपदेशू ।

दोहा :—वारि माहिं निवसत बरुण, तिनकै लाज विहाय ,
 लोक लाजहू त्यागि तुम, धँसत नग्न जल जाय । ११२

गौरी पूजन वृथा तुम्हारा ।
 खंडित ध्यान नेम व्रत सारा ।”
 सकुची गोपी सुनत दुखारी ,
 कहत—“कीन्ह हम चूक मुरारी !
 जो कछु होत सौइ गहि लीन्हा ,
 अनुचित उचित विचार न कीन्हा ।
 जानहिं हम नहिं शास्त्र-विधाना ,
 छमहु हमार श्याम ! अज्ञाना ।
 जब लगि रहहिं देह महुँ प्राणा ,
 करहिं कबहुँ नहिं नग्नस्नाना ।
 देत रहहु नित सीख मुरारी !
 सकहिं निदेश तुम्हार न टारी ।
 वसन देहु अब हमहिं उतारी”—
 अस कहि भयीं मौन सुकुमारी ।

अचल सकल निज निज गति भूलीं,
जनु जल विपुल कुमुदिनी फूलीं ।

दोहा :— प्रमुदित मन घनश्याम तब, फेंके वस्त्र उतारि,
त्यागेउ तरु, पहिरे वसन, गोपिन तजि तजि वारि । ११४

धारे पुनि निज निज आभूषण,
कहहिं—“आजु लागेउ अति दूषण ।
जदपि कीन्ह घनश्याम ढिठाई,
तौहु नीकी चलनि बतायी ।”
निज निज भवन गयीं ब्रज नारी,
आये नन्द-सदन बनवारी ।
दही मथति राधा तहँ ठाढ़ी,
मनहुँ मदन साँचे धरि काढ़ी ।
डोलत तनु, आंदोलित अंचल,
वेणी भूमति इत उत चंचल ।
जनु विधु-वदन दुग्ध अनुमानी,
नागिनि पान हेतु अकुलानी ।
देखेउ आये कुँवर कन्हाई,
मथति कहुँ कहुँ दृष्टि लगायी ।
इतनेहि महुँ आयी नँदरानी,
कहति—“कहा राधा बौरानी ?

दोहा :— “देखु, मथानी कहँ धरी, कहाँ धरेउ दधि-माट,
कहाँ चलावति हाथ तैं, कीन्हें चित्त उचाट ।” ११५

सुनत किशोरी खीझि रिसानी,
आयी हरि ढिग पैंकि मथानी ।
“दासी दास बहुत मम धामा,
कवहुँ न करहुँ हाथ निज कामा ।
आवहुँ खेलन संग कन्हाई,
महरि मथानी देति गहायी ।”

सुनत यशोमति मारन धायी ,
भागी कुँवरि भीति दरसायी ।
आगे राधा, पाछे मोहन ,
गये खरिक देखन गो-दोहन ।
नंदहिं लिखि कह हरि मुसकायी—
“दुहिहौं बाबा निज कर गाई ।”
कहति कुँवरि—“मैं हरिहिं सिखावहुँ ,
दुहन-रीति दुहि धेनु बतावहु ।”
बछरा दीन्हेउ थनन लगायी ,
दोहनी घुदुवन धरी जमायी ।

दोहा :— दुहत आपु गोपाल लिखि, पुलकि रँभानी गाय ,
लागे दुहन स-नेह हरि, दोहनी धार बजाय । ११६

दुहत दीन्ह राधा तन हेरी ,
बिसरी धेनु अनत मति प्रेरी ।
इत चितवहिं, उत धार चलावहिं ,
लिखि लिखि श्यामा मुख सुख पावहिं ।
हाथ धेनु-थन, नैन प्रिया तन ,
चूकि धार बिखरी चंद्रानन ।
दुग्ध-विन्दु राधा मन मोहत ,
धोय कलंक इन्दु जनु सोहत ।
मगन दोउ मिलि ध्यान न राखा ,
आयी तेहि क्षण सखी विशाखा ।
“राधा !” कहि कहि ढेर लगायी ,
“चलहु तुरत घर मातु रिसायी ।
श्यामहिं रहति सदा तैं धेरे ,
ठाढ़ि मनहुँ लिखि धरी चितेरे ।
गोप अन्य कहँ रहे दुरायी ,
जो तुम हरि ते धेनु दुहायी ।

दोहा :— “भये दुहैया श्याम कब, दुहहिं जो मोरी गाय ,
मानि वचन नँदराय के, मैं ही रही सिखाय ।” ११७

सखी संग गवनी सुकुमारी,
 आये लौटि सदन बनवारी।
 पूछउ महरि कछुक अनखायी—
 “राधहिं छँड़िउ कहाँ कन्हई ?”
 मन विहँसे, मुख प्रकटेउ रोषू—
 “सुनु माता ! आपन इक दोषू।
 जहँ तहँ मोर खेलौना डारति,
 मुरली भँवरा कछु न सँभारति।
 आजु प्रभात जबहिं घर आयेउँ,
 राधहिं मथत दही मैं पायेउँ।
 भूठहिं लीन्हे हाथ मथानी,
 मन महँ निज औरहि तेहि ठानी।
 मुरली पै जब दृष्टि लगायी,
 मैं जानेउँ चोरी हित आयी।
 साँचहु फिरि वंशी लै भागी,
 महुँ गयेउँ तेहि पाछे लागी।

दोहा :— खरिक निकट पनघट जहाँ, रपटि गिरी भहराय,
 वंशी छूटी, मैं गही, वह रोयी बिलखाय। ११८

रारि रोय राधा अति कीन्ही,
 मोहिं तोहिं बहु गारी दीन्हीं।
 जात गेह बोली डरपायी—
 ‘मुरली लेहौं श्याम चुरायी।’
 कहा करहुँ मैं अब री साई !
 मुरली राखहुँ कहाँ लुकायी ?
 साँझ सबेरे लागी आवन,
 चोरी करि करि लागी धावन।
 तेहि पै बैर नित्य नव ठानति,
 केतनहु कहाँ एक नहिं मानति।”
 सुनत श्याम बतियाँ रस-बोरी,
 रीफि हँसी यशमति मति-भोरी।

कहति हुलसि—“तुम सुनहु मुरारी !
लागति राधा मोहिं पियारी ।
वृथा करति घर चोरी आयी,
मैं मुरली दस देहुँ गढ़ायी ।”

दोहा :—कहत कान्ह—“जानति नहीं, आजु बतावहुँ तोहि,
बहुत बुरी यह राधिका, तनिक सोहांति न मोहि ।” ११६

ताही क्षण नँदराय पधारे,
श्याम गिरा सुनि हँसे सुखारे ।
लीन्हेउ बाल अंक बैठायी,
चूमत मुख करि भाग्य वड़ाई ।
अवसर लखि बोली नँदरानी—
“सुरपति-पूजा तुमहिं भुलानी ।
गाँव दसक भूपति ते पाये,
बड़े भये जग महर कहाये ।
जेहि प्रसाद सुत संपति पायी,
सो कुलदेव दीन्ह बिसरायी ।”
सुनत नंद पुनि पुनि पछिताने,
यशुमति वचन सत्य सब माने ।
उठे कहत—“सब गोप बोलावहुँ,
अबहिं सकल संभार करावहुँ ।”
नँद-निदेश ब्रज बजी बधाई,
चहुँ दिशि उत्सव-शोभा छापी ।

दोहा :—बाँधे तोरण जहाँ तहाँ, बने विविध पकवान,
बाजे ढोल मृदङ्ग बहु, घर घर मंगल गान । १२०

नंद-सदन सबते बढ़ि शोभा,
व्यंजन विपुल श्याम मन लोभा ।
जबहिं लेन कछु मोहन धावहिं,
बरजति मातु, छुवन नहिं पावहिं—

“जनि आवहु तुम यहाँ कन्हाई !
लखतहि बालक देव रिसायी ।”
बैठे आँगन घरिक चुपायी ,
पुनि पूछेउ नहिं जाति ढिठाई—
“मैया ! मोहिं यह देव देखावहि ,
देखहुँ एतिक कैसे खावहि ।”
सुनि कर जोरति, दोष मिटावति ,
यशुमति शिशु अपराध छमावति ।
सहसा सोचेउ हृदय कन्हाई ,
सुरपति-पूजा देहुँ मिटायी ।
चले सवेग, महर पहुँ आयी ,
लखेउ विपुल ग्वालन समुदायी ।

दोहा :— नंद तहाँ, उपनंद तहँ, गोप-अमुख वृषभानु ,
पूछेउ पितु दिग बैठि प्रभु, मानहुँ निपट अजानु—१२१

“सुरपति कवन देव यह होई ,
पूजन जासु करत सब कोई ?
रहत अदृश्य कि रूप देखावत ?
यदि पूजे नर का फल पावत ?”
कहत महर—“तुम, सुनहु कन्हाई ,
गोपन कर धन सबस गाई ।
जब महि मेघ वारि बरसावहिं ,
बढ़त पात-वृण गैया खावहिं ।
इन्द्र देव सब मेघन स्वामी ,
दिखहिं नाहिं ये अन्तर्यामी ।
करत सुरेन्द्रहिं हमहिं प्रदाना ,
अगणित धेनु वत्स गण नाना ।
हम सब करहिं शचीपति पूजा ,
जानहिं और देव नहिं दूजा ।”
सुरपति-कृपा तुमहिं मैं पावा”—
अस कहि नंद शीश महि नावा ।

दोहा :— विहँसे हरि सुनि पितु वचन, लखेउ नवावत शीश—

“तात ! इन्द्र मेघेश जो, कवन प्रमंजन-ईश ? १२२

केहि के बल पुनि अनल जरावत ?
जलहु कहाँ ते निज बल पावत ?
विरचेउ केहि यह नभ-विस्तारा ?
कवनि शक्ति छिटकावति तारा ?
व्योम भानु शशि केहि प्रकटाये ?
उदय अस्त केहि तिनहिं सिखाये ?
केहि विरचे वन भूमि पहारा ?
केहि कीन्हेउ यह विश्व पसारा ?”
चकित सकल सुनि प्रश्न चुपाने,
बोले प्रभु पुनि, मन मुसकाने—
“सुनहु तात ! इक बात बतावहुँ,
लखेउँ स्वप्न निशि सबहिं सुनावहुँ।
मीठी निंदिया सोयेउँ जबहीं,
आयेउ दिव्य पुरुष कोउ तबहीं।
शंख चक्र शोभित भुज चारी,
भाषेउ विहँसि—‘सुनहु बनवारी !

दोहा :— मेघ-वृन्द-पति इन्द्र यह, मैं सुरनाथहु नाथ,

रवि शशि नभ नक्षत्र सब, मोहि नवावहि माथ । १२३

इन्द्रहिं देत दैत्य जब त्रासा,
आवत बिलपत मोरेहि पासा।
तब लगि चलति इन्द्र इन्द्राई,
जब लगि मैं तेहि होहुँ सहायी।
इन्द्र विषय-रत, इन्द्रिय-दासू,
अब न करहु ब्रज पूजा तासू।
लै भोजन व्यंजन पकवाना,
गोवर्धन गिरि करहु पयाना।
सब मिलि अर्चा मोरि रचावहु,
मोर ध्यान धरि भोग लगावहु।

सबन लखत मैं गिरि प्रकटइहौ ,
 कर ते लै लै व्यंजन खइहौ ।
 मुँह माँगे वर ब्रजजन पावहि ,
 रोग दोष दुख ताप नसावहि ।”
 कही कान्ह सब अद्भुत वाणी ,
 कहत नंद—“यह अकथ कहानी !”

दोहा :— कहत परस्पर गोप कछु, “हमहिं शचीपति-भीति ।”
 कहत अन्य-“हमरे हृदय, केवल कान्ह प्रतीति ।” १२४

बाढ़ी ब्रजजन उर जिज्ञासा ,
 बैठे सरकि सरकि हरि पासा ।
 पूछत—“साँचहु रूप देखइहै ,
 व्यंजन हमते लै लै खइहै ?”
 कहत श्याम—“मैं सत्य सुनावहुँ ,
 प्रकट देव तुम सबहिं देखावहुँ ।
 यह प्रत्यक्ष खात, मुख भाखत ,
 साधक साध्य भेद नहिं राखत ।
 देव न यह मेघेश समाना ,
 रहत सतत जो छिपा लुकाना ।”
 समुझाये सब श्याम सप्रीती ,
 उपजी ब्रजजन हृदय प्रतीती ।
 कहत—“करहु जो कहहिं कन्हाई ,
 चले श्याम-सँग सकल भलाई ।”
 पहुँची गेह गेह पुनि चर्चा ,
 ब्रज ते उठी शचीपति-अर्चा ।

दोहा :— यान सजे, व्यंजन भरे, पहिरे भूषण चीर ,
 गवने हिलि मिलि नारिनर, भयी शैल पै भीर । १२५

द्विज वेदज्ञ नंद बोलवाये ,
 होम यज्ञ जप दान कराये ।

व्योम सधूम, सुवास सोहाई,
स्वरित साम मंत्रन गिरिरायी ।
विष्णु-मूर्ति हरि दिव्य मँगायी,
प्राण-प्रतिष्ठा सविधि करायी ।
कहेउ बहुरे—“अब भोजन लावहु,
सुर सन्मुख सब भेंट चढ़ावहु ।”
लाये भोजन भरि भरि थारा,
बाढ़े व्यंजन मनहुँ पहारा ।
परसत सब, परसति नँदरानी,
परसत महर साँभ नियरानी ।
दृग उत्सुक, उर व्याप्त प्रमोदा,
भोग लगायेउ नंद यशोदा ।
जैसेहि महि नँद माथ नवावा,
दिव्य प्रकाश प्रखर गिरि छावा ।

दोहा :— चौधे लोचन, चित चकित, भये प्रकट भगवान,
बाहु सहस धरि आपु हरि, लागे व्यंजन खान । १२६

वेद ऋचा इत विप्र उचारत,
अंतरिच सुर जयति पुकारत ।
बरसत पुष्प विपुल महि छाये,
कहत गोपजन—“धन्य कन्हारै !”
नंद महर मन मुदित खवावत,
खात देव आनँद उपजावत ।
क्रम क्रम गोप-प्रमुख बहुतेरे,
जुरे समोद सरकि सुर नेरे ।
जुरीं सभक्ति सिमिटि सब वामा,
विभुहिं खवावत करत प्रणामा ।
कान्ह आपु एकवान उठाये,
कौर कछुक कर कमल खवाये ।
विहँसे विभु, विहँसे वनवारी,
सम छवि वेष लखेउ नरनारी ।

ललिता राधहि कहति सनेहू—
“उपजत सखि मम मन संदेहू।

दोहा :— हरि साँवर, साँवर सुरहु, नीरज नयन विशाल ,
मोर मुकुट सखि ! शिर दुहुन, वक्षस्थल वनमाल । १२७

दुहुन श्रवण कुंडल छवि छाजत ,
दुहुन देह पट पीत विराजत ।
दुहुन आभरण अलकहु सोई ,
देव श्याम, सखि ! एकहि दोई ।”
सुनतहि बोली ठीठ विशाखा—
“श्यामहि सकल स्वाँग रचि राखा ।
सुरपति-अर्चन श्याम मिटावा ,
देव-व्याज आपुहिं पुजवावा ।
आपु खात पुनि आपु खवावत ,
धरि दुइ रूप हमहिं भरमावत ।
आपु देव पुनि आपु पुजारी ,
बंचेउ निश्चय हमहिं मुरारी ।
अबहिं जो कपट देहुँ प्रकटायी ,
फिरि न हरिहिं कोउ ब्रज पतियायी !”
वरजेउ राधा नयन तरेरी ,
भक्ति समेत रही सुर हेरी ।

दोहा :— कबहुँ विलोकति विष्णु तन, कबहुँ श्याम छवि-धाम ,
रोम रोम पुलकित कुँवरि, पुनि पुनि करति प्रणाम । १२८

सोरठा :— दै दर्शन, सानिध्य, गोधन-वर्धन वर विविध ,
ब्रजजन जय-ध्वनि मध्य, गवने श्रीधर धाम निज ।

अन्तर्धान भये भगवाना ,
गोप जनहु गृह कीन्ह पयाना ।
तजि तजि शैल शकट निज साजे ,
चढ़ि चढ़ि चले वाद्य बहु बाजे ।

बोलत हँसत प्रशंसत जाहीं ,
 श्याम प्रतीति प्रीति मन माहीं ।
 उत सब वृत्त शचीपति पावा ,
 अर्चन मम ब्रजजन बिसरावा ।
 कोउ अवतरेउ कृष्ण तहँ आयी ,
 पूजा निज मोहिं निदरि करायी ।
 उपजेउ इन्द्र हृदय अति क्रोधा ,
 चाहत लेन विषम प्रतिशोधा ।
 आजुहि जो मैं ब्रज न बहावहुँ ,
 बज्री पुनि नहिं विश्व कहावहुँ ।
 घन संवर्तक तुरत बोलायी ,
 कहत—“बरसि ब्रज देहु बहायी ।

दोहा :—वन, धरणी, गोधन, जनन, वृद्ध, युवा, तिय, बाल ,
 सकल गोवर्धन शैल सह, लै बोरहु पाताल ।” १२६

सुनि निदेश संवर्तक धाये ,
 प्रलय-प्रवर्तक ब्रज चढ़ि आये ।
 नीरद नील कमल कोउ श्यामा ,
 कोउ मयूर कान्ति अभिरामा ।
 इंद्रनील मणि युति कोउ धारे ,
 कोउ कोउ धूम वर्ण कजरारे ।
 उमड़ि घुमड़ि घेरत घहराने ,
 घटाटोप रवि ओट छिपाने ।
 धरणी व्योम सान्द्र अधियारा ,
 अंतराल तम-तोम पसारा ।
 गरज तरज संघट्ट सरोषा ,
 भैरव भेरी भीषण घोषा ।
 गये गोप वन धेनु चरावन ,
 भागे निरखत मेघ भयावन ।
 पनघट भरत नीर पनिहारी ,
 भागीं तजि सिर गागर भारी ।

दोहा :— लागे बरसन घन प्रलय, बही प्रचंड बयारि,
तड़कि तड़कि तड़की तड़ित, अंबर हृदय विदारि । १३०

होत रोर कोउ सुनै न बूझहि,
अंधाधुंध नहि कहु कछु सूझहि ।
गिरी अखंड धार महि घोरा,
जनु ब्रह्मांड-भांड कोउ फोरा ।
भरे ताल, नहिं सलिल समायी,
सरवर भये सरित उतरायी ।
प्रविशी पुनि पथ वीथिन धारा,
ढहे गेह, नहिं रहेउ सहारा ।
बहेउ वारि गो-वत्स बहायी,
सुरभी बही रँभाय रँभायी ।
विलपे गोपी गोप विहाला,
पल पल जल-प्रवाह विकराला ।
पग डगमग नहिं थमत थमाये,
बूड़त ब्रज अब कवन बचाये ?
निकसी शत शत कंठ पुकारा—
“कहाँ कान्ह ब्रज-प्राण-अधारा !

दोहा :— मेघ सुभट, विद्युत धनुष, बूँद बूँद खर बाण,
अब विलंब नँदलाल कस, निकसत ब्रजजन प्राण !” १३१

कहति मातु इत हरिहि सुनायी—
“इंद्र अर्चना तुमहि मिटायी ।
मेघ अमोघ सुरेश पठाये,
बरसि बरसि ब्रज देत बहाये ।
कहँ गोवर्धन देव कन्हई ?
बूड़त ब्रज न उबारत आयी ।
भोजन हेतु दौरि सुर आवा,
भुज सहस्र धरि व्यंजन खावा ।
परी विपति, नहिं देत दिखायी,
सकहु कान्ह ! तौ लेहु बोलायी ।”

हरि गँभीर कह—“विभु न बोलइहौं ,
तनिक काज लागि नहिं भटकइहौं ।
मैं ही मैया ! करहुँ उपायी ,
निमिष माहिं जल-क्लेश नसायी ।”
अस भाषत पर्वत तन हेरा ,
“पाहि ! पाहि !” पुनि ब्रजजन टेरा ।

दोहा :—महि ते गहि गिरि वाम कर, लीन्ह समूल उपारि ,
कनिष्ठिका करजाय हरि, सहजहि लीन्हेउ धारि । १३२

शैल सुमन सम श्याम उठावा ,
छत्र रूप ब्रज ऊपर छावा ।
गिरत परत ब्रजजन सब धाये ,
आतुर सिमिटि शैल तल आये ।
सुरभि, वत्स, गृह-पशु, वनचारी ,
आये सकलि जहाँ गिरिधारी ।
सहज शत्रुता सवन विसारी ,
अहि मयूर सँग बसे सुखारी ।
मृग मृगेन्द्र मूषक मार्जारी ,
रहे हरिहि अनिमेष निहारी ।
विहँसत बहुरि कहत बनवारी—
“राखेउँ अब लागि गिरिवर धारी ।
अब लागत मोहि कछु कछु भारी !”
विकल सुनत बोली महतारी—
“मैया ! सब मिलि होहु सहायी ,
गिरि न परै कहूँ बाल कन्हाई ।”

दोहा :—आर्त बैन माता कहे, विहँसे मन भवपाल ,
लकुटी लै लै भिरि परे, नंद सहित सब ग्वाल । १३३

टेकि टेकि लकुटी सब ठाढ़े ,
पौरुष प्रकटि उठावत गाढ़े ।

निरखत, बिहँसत, कहत कन्हार्ई—
 “मोरी भुजा तनिक सी भाई !
 नख ते टरै गिरै गिरि भारी,
 रहहु ठाढ़ सब टेक सँभारी ।”
 सुनि सुनि श्याम बैन सुखदायी,
 तमकि तमकि हठि करत सहायी ।
 यहि विधि सप्त दिवस ब्रजनाथा,
 धारेउ गोवर्धन निज हाथा ।
 देवपतिहु उत कोप बढ़ावा,
 आपुहि चढ़ि ब्रज ऊपर आवा ।
 काँपेउ नभ, बरसेउ सुररायी,
 बूँद न तबहुँ शैल तल आयी ।
 हरि औरहु माया प्रकटायी,
 गिरत वारि ब्रज जात सुखायी ।

दोहा :— बरसि चुकेउ जब जल प्रलय, गलेउ इन्द्र अभिमान,
 “तजहु मोह”—ब्रह्मा कहत,—“उपजे ब्रज भगवान ।” १३४

कही विधाता जब निज बीती,
 उपजी सुरपति-हृदय प्रतीती ।
 धिक मोहिं मोह-अंध, अभिमानी,
 जो हरि सँग हठि समता ठानी ।
 मैं सुरेश, वे सर्वाधारा,
 तिन ते वैर न मोर उबारा ।
 चतुरानन निज आगे कीन्हे,
 चलेउ शचीपति सुर सँग लीन्हे ।
 तजि सुरपुर वृन्दावन आवा,
 परेउ चरण नहिं उठत उठावा—
 “अनजानत मैं कीन्हि ढिठाई,
 क्षमहु दयानिधि ! मम अधमाई ।”
 देखि सुरेन्द्र-दैन्य दनुजारी,
 दीन्ह तोष, छमि कीन्ह सुखायी ।

कहत शक्र—“वर माँगहुँ एकू ,
करन चहहुँ मैं प्रभु-अभिषेकू ।”

दोहा :—सुरपति हरि अनुमति लही, लै कर सुरसरि वारि ,
कीन्ह कृष्ण अभिषेक ब्रज, लखत गोप नर-नारि । १३५

कहि कहि गो-धन-गोकुलनाथा ,
गोविंद नाम दीन्ह सुरनाथा ।
बिनवत नत-महि सुरन समाजू—
“हम कृतकृत्य दरस लहि आजू ।”
प्रभु परितोषि सुरेश पठाये ,
मुदित अमरपुर सुरहु सिधाये ।
ब्रजजन तहँ जे रहे सयाने ,
लखि कौतुक मन सकल सकाने ।
जाय महर-गृह प्रकटि सनेहू ,
कहेउ सुनाय हृदय संदेहू ।
जो जो अचरज कीन्ह कन्हाई ,
चमत्कार सब कहे सुनाई—
“ये नहि गोप-तनय बनवारी ,
दिव्य पुरुष कोउ ये अवतारी ।”
नंदहु सुनि मन मोद बढ़ावा ,
गर्ग-कहा सब तिनहि सुनावा ।

दोहा :—फैलेउ पल महँ वृत्त ब्रज, श्याम ब्रह्म अवतार ,
कहत नारि-नर—“धन्य हम, निरखत जगदाधार ।” १३६

एक दिवस हरि सखन बोलायी ,
कहे सकौतुक वचन सुनायी—
“सुरपति स्वकर तिलक मम कीन्हा ,
कहि गोविंद मोहिं गोकुल दीन्हा ।
रहेउ कंस अब ब्रजपति नाहीं ,
लेहुँ राजकर मैं ब्रज माहीं ।

जात जे मधुपुर लै दधि प्राता ,
लेहु तिनहिं ते प्रथम जकाता ।
काल्हि सजग रोकहु वन बाटा ,
घेरहु सब मिलि जमुना-बाटा ।”
सुनि सुनि सखा हृदय हुलसाने ,
जाय प्रात वन-विटप लुकाने ।
निकसीं गो-रस बेचनहारी ,
जब प्रभात वन-पथ ब्रजनारी ,
हरि सतर्क कीन्हेउ संकेतू ,
कूदे सखा, वाम हत-चेतू ।

दोहा :— व्यास भीति गोपिन-हृदय, डोलत तनिक न गात ,
चित्र-लिखी ठाढ़ीं सकल, निकसति मुख नहिं बात । १३७

कहेउ सखन ब्रज वनितन पाहीं—
“कोऊ ठग तस्कर हम नाहीं ।
जानत तुम जब सुरपति आयेउ ,
निज कर गोविंद तिलक रचायेउ ।
भये कृष्ण अब गोकुलरायी ,
चाहत लेन जकात चुकायी ।
हम अनुचर, हरि भूप पठाये ,
लेन राजकर यहि थल आये ।”
सुनि ब्रज-वाम धैर्य उर आनी ,
बोलीं श्याम-सखन सन वाणी—
“फिरी ग्राम नहिं कृष्ण-दोहाई ,
भये भूप केहि भाँति कन्हाई ?
शचीपतिहिं को ब्रज पहिचानत ,
हरि बहुरूपिया सब कोउ जानत ।
कब केहि तुमहिं बनायेउ अनुचर ,
हम कस जानहिं तुम नहिं तस्कर ।

दोहा :— भये भूप जो कान्ह अब, काहे रहे लुकाय ?
होहिं प्रकट सन्मुख स्वयं, लेहिं जकात चुकाय ।” १३८

व्यंग वचन बोलहिं सब ठाढ़ी,
 दरस-तृषा गोपिन मन बाढ़ी।
 उत्तरे तरु ते तबहिं मुरारी,
 हँसीं नारि बाजीं करतारी—
 “मुनत नृपति तुम भये कन्हारै !
 कैसे चढ़े पेड़ तुम जायी ?
 जदपि मृगेन्द्र विदित वनराऊ,
 लखेउ न चढ़त विटप तेहि काऊ।
 कपि सम सब आचरण तुम्हारे,
 तबहुँ नृपति तुम बनत हमारे।
 रहे बाल कीन्ही लँगराई,
 बाढ़त सीखि लीन्ही बैदराई।
 तब चोरी दधि माखन खावा,
 अब बड़ि डाकुन-साज सजावा।
 थोरिहु खबरि कंस जो पावै,
 विसरि जाहु सब, बाँधि मँगावै।

दोहा :— चोरत माखन काल्हि लगि, आजु बने तुम राय,
 निशि देखेउ कछु स्वप्न, उठि, प्रात रची ठकुराय ।” १।

बोले हरि—“तुम सकल लवारी,
 कहत बैन नहिं वदन सँभारी।
 सब मिलि मोहिं लगावत चोरी,
 लखत न पै कछु आपनि खोरी।
 चोरी ते व्यापार बढ़ावा,
 राज-भाग नहिं कबहुँ चुकावा।
 आजु लेहुँ जब कसरि निकारी,
 देहुँ धरन तब पाँव अगारी।
 कहा कंस-भय मोहिं बतावत,
 अस नरपति मैं नित्य नसावत।
 दूध दही तुम बेचनहारी,
 सकहु चीन्ही नहिं मोहिं गँवारी।

मैं त्रय लोक, सूर्य, शशि-स्वामी,
अविदित, अलख, अनादि, अनामी ।”
मुनि गोपी बोलीं मुसकायी—
“निज मुख हरि का करहु बड़ाई ?

दोहा :— साँचहु हम समुझहि कहा, अविदित, अलख, अनाम,
नंद गोप-सुत कृष्ण तुम, बसत हमारेहि ग्राम । १४०

सुरपति तुमहि नृपति जो कीन्हा,
चैवर छत्र काहे नहि दीन्हा ?
कहँ सिंहासन धरेउ लुकायी ?
काहे फिरत चरावत गाई ?
राज-वसन कहँ धरे उतारी ?
काहे ओढ़त कमरी कारी ?
काल्हि छाँछ हित ढूँढ़त भाँड़े,
मारग रोकि आजु तुम ठाढ़े !
निदरत नृपहि हमारे आगे,
फिरत कंस-भय भागे भागे ।
जो कछु तुमहिं शक्ति-अभिमाना,
मधुपुर कस नहि करत पयाना ?
सकहु तो मारहु कंसहिं जायी,
देव राजकर हमहुँ चुकायी ।”
मुनत कृष्ण कछु रिस दरसायी,
कहत,—“साँच अब देहुँ बतायी ।

दोहा :— होहि निरर्थक नहि वचन, समुझहु निज मन माहि,
कंस-निधन, मधुपुर गवन, आवन पुनि ब्रज नाहि ।” १४१

भाषे मर्म वचन घनश्यामा,
भर्याँ मुनत व्याकुल ब्रज-वामा ।
“बोलहु नहि अस बैन कन्हाई !
जइहौ कस तुम ब्रज बिसरायी ?

हम सब सुत सम तुमहिं खेलावा ,
पालि पोसि ब्रज-राज बनावा ।
माखन खाहु, चरावहु गाई ,
देहु हमहिं सुख मुरलि बजायी ।
बतरस हित हम तुमहिं खिभावहिं ,
तुम रिस करहु देखि दुख पावहिं ।”
अस कहि धरेउ दूध दधि आगे ,
“लेहु श्याम ! माखन विनु माँगे ।
खेलहु, खाहु, रहहु ब्रज माहीं ,
धरेउ काह तेहि मधुपुर माहीं ।”
बैन सनेह सुनत मुसकायी ,
राज-भाग हरि लीन्ह चुकायी ।

दोहा :— कहहि गोपिका—“तुम विपिन, आजुहि मिले कन्हाय !
पूजहु चिर अभिलाष उर, वंशी देहु सुनाय ।” १४२

सुनत सखा-भुज निज भुज दीन्हा ,
पंकज-पाणि वेणु प्रभु लीन्हा ।
परसत अधर मुरलि मधु बाजी ,
लटकेउ मुकुट भौह छवि छाजी ।
लोचन चपल, लोल श्रुति कुंडल ,
भलकत युग कपोल, मुख-मंडल ।
पीत वसन फहरत तनु कैसे ?
लहरति उदधि उषा-द्युति जैसे ।
चितै चितै प्रभु सैन चलावत ,
अँग अँग पुलक-भँवर उपजावत ।
तरुण तमाल तरे हरि राजत ,
श्यामल कान्ति, मदन द्युति लाजत ।
स्वरित व्योम महि, तरु थहराने ,
धेनु वत्स वृण चरन भुलाने ।
खग मोहे, मृग-यूथ लोभाने ,
भंग-समाधि यती हुलसाने ।

दोहा :— उलटि बहेउ यमुना सलिल, द्रवित बहे पाषाण ,
रुकेउ प्रभंजन लोक त्रय, अटके व्योम विमान । १४३

गोपिन-गति किमि कहहुँ बखानी ,
वारि-बूँद जनु सिंधु समानी ।
भयीं वाम निमिषहि महुँ बौरी ,
कीन्हि मनहुँ कछु वेणु ठगौरी ।
सस्मित मुख सुख श्याम निहारहिं ,
पुलक अंग अँग, पलक न पारहिं ।
लटपटाय चरणन लपटानीं ,
शिथिल शरीर फुरति नहिं वाणी ।
निरखेउ प्रभु गोपी अनुरागीं ,
रुकेउ वेणु सोवत जनु जागीं ।
कहत सप्रीति सुनाय कन्हाई—
“बेचहु दधि अब मधुपुर जायी ।”
सुनत शब्द निज दशा निहारी ,
द्विविधा विवश वाम सुकुमारी ।
कबहुँ शीश दधि-भाजन धारहिं ,
हेरहिं हरि तन बहुरि उतारहिं ।

दोहा :— चरण चलत मधुपुर डगर, लागे दग हरि ओर ,
वेणु रुकेउ, पै मन अबहुँ, बँधेउ राग-रस-डोर । १४४

ब्रज दिशि गवने विपिनविहारी ,
पहुँची मधुपुर घोष-कुमारी ।
बीथिन बरबस चरण चलावत ,
छलकत रस, उछरत अँग आवत ।
परत चौकि, कछु तन सुधि होई ,
कहत, “मधुर दधि लेहै कोई !”
जात भूलि पुनि दधि पल माहीं ,
तजि हरि सूझि परत कछु नाहीं ।
भरी मुरलि मन मधु अभिरामा ,
‘श्याम’ कहत विचरत ब्रज वामा ।

“लेहु श्याम ! कोउ लेहु गोपाला !”
 बेचत ‘श्याम’ फिरत ब्रज-बाला ।
 भयेउ कोलाहल मधुपुर भारी ,
 इत उत जुरे चकित नर-नारी ।
 दही लेन मिस लेहिं बोलायी ,
 सुनत, ‘श्याम’ मुख हँसहिं ठठायी ।

दोहा :— कंस सुनेउ संवाद सब, आयीं ब्रज ते वाम ,
 गोरस-भाजन सिर धरे, बेचत मुख ते ‘श्याम’ । १४५

नृपति विचारत विस्मय मानी ,
 कस ये वाम श्याम-बौरानी ।
 वृन्दावन ते वृत्त मँगावा ,
 आय दूत संवाद सुनावा ।
 शक्र-समागम, तिलक-कहानी ,
 कहेउ कृष्ण-ब्रह्मत्व बखानी ।
 मानत ब्रज श्यामहिं अवतारी ,
 पालत नित निदेश नरनारी ।
 बहुरि राजकर वृत्त बतावा ,
 जनु नरेश-शिर वज्र गिरावा ।
 करत विचार कंस जन-द्रोही ,
 भे बलराम कृष्ण विद्रोही ।
 आजु राजकर ग्राम चुकावहिं ,
 होत प्रात मधुपुर चढ़ि आवहिं ।
 गोपजनहु बहु कीन्हि चँड़ाई ,
 ‘कर’ विरोध बिनु दीन्ह चुकायी ।

दोहा :— क्षुब्ध, कुपित यादव-नृपति, लीन्हे असुर बोलाय ,
 केशी, व्योम, अरिष्ट सन, कहत—“जाहु ब्रज धाय । १४६

करहु सकल छल बल चतुराई ,
 बधहु ग्वाल रचि कल्लुक लपानी ।

मारहु हलधर मोर अराती ,
 बचहि कृष्ण नहिं कवनिहु भाँती ।
 अरि बिनु वधे लौटि जो आवहि ,
 मधुपुर पुनि प्रवेश नहिं पावहि ।”
 यहि विधि प्रलपि प्रकटि नृप रोषा ,
 दै उपहार बहुरि परितोषा ।
 चले असुर कंसहिं शिर नायी ,
 पग पग अहंभाव अधिकायी ।
 समुझत बालक अबहुँ कन्हार्ई ,
 फूँक मारि जनु सकत उड़ायी ।
 तृणावर्त सुधि जेहि क्षण आवति ,
 सहसा हृदय भीति उपजावति ।
 शकट, वत्स, पूतना-निपाता ,
 शोचि धुक्त उर, काँपत गाता ।

दोहा :— विस्मय, मोद, विषाद युत, वृन्दावन नियराय ,
 सखन संग आवत लखे, गोविँद गाय चराय । १४७

ग्वाल बाल कोउ सस्वर गावत ,
 कोउ श्रृंगी ध्वनि सरस सुनावत ।
 कोउ थिरकत, कोउ भाव बतावत ,
 कोउ सुरभि सब जोरि चलावत ।
 सखन मध्य मोहन छवि छावत ,
 हटकत गैयन, वेणु बजावत ।
 नील-कमल-दल-द्युति नँदलाला ,
 वक्षस्थल सित सरसिज-माला ।
 कुवलय रक्त अधर युग लोचन ,
 वारिज-वदन इन्दु-मद-मोचन ।
 रेखा तिलक ललाट सोहार्ई ,
 बही उमहि जनु सुंदरताई ।
 गो-रज मंडित कुंचित केशा ,
 सुषमा धाम श्याम वपु वेषा ।

स्वागत-हित ब्रजजन सब धाये,
यशुमति आतुर हृदय लगाये।

दोहा :— चुमति शिशु, पूछति जननि, “लाये काह कन्हाय !”
हँसि हँसि श्रीपति, ओट पट, वन-फल दिये देखाय । १४८

हाथ पसारेउ यशुमति माई,
छीने वन-फल हँसि नँदरायी।
कहत महर, “मोरेहि हित लाये”,
खीभी महारि, श्याम मुसकाये।
प्रभु पुनि कामरि ओर निहारा,
यशुदा अंचल ललकि पसारा।
दीन्ही कामरि कान्ह भरायी,
वरसे वन-फल गनि नहिं जायी।
ग्वाल गोप मिलि लूटन लागे,
अवसर पायेउ असुर अभागे।
धरेउ अरिष्टासुर वृष वेषा,
भीर मध्य द्रुत कीन्ह प्रवेशा।
पायेउ जहँ जेहि मारन लागा,
आकुल ग्वाल वृंद सब भागा।
गिरे धरणि खल पद दलि डारे,
सींग उठाय अनेक पछारे।

दोहा :— विडरि सुरभि भारीं विकल, खूँ दि खुरन ब्रज बाल,
उत्थित आर्त निनाद थल, त्राहि! त्राहि! नँदलाल ! १४९

गरजेउ दनुज देखि हरि आये,
रोष-अरुण दृग सींग उठाये।
धायेउ वायु वेग बल भारी,
चढ़े सखा भुज उछरि मुरारी।
प्रभु समीप आयेउ जेहि काला,
अपटि गहे हरि सींग विशाला।

पटकेउ महि भकभोरि भँवायी ,
 उठन चहेउ शठ उठि नहिँ जायी ।
 सींग उपारि कीन्ह आधाता ,
 हतेउ दैत्य हरि ब्रज-सुख-दाता ।
 लखि अरिष्ट-वध केशी धावा ,
 अश्व वेष हरि सन्मुख आवा ।
 खुरन खनत महि मुख विस्तारी ,
 लीलन चहत सृष्टि जनु सारी ।
 रहे अचल हरि, कौतुक कीन्हा ,
 सहसा स्वकर असुर-मुख दीन्हा ।

दोहा :— टूटे रद रसना असुर, भयी ऐंठि पाषाण ,
 बढेउ हस्त, श्वासा रुकी, परेउ धरणि निष्प्राण । १५०

हतेउ सकौतुक केशी श्यामू ,
 केशव नाम भयेउ अभिरामू ।
 लखि व्योमासुर उर भय माना ,
 निशि वृन्दावन जाय लुकाना ।
 सुत-बल निरखि नंद आनंदे ,
 पद-पंकज मुद ब्रजजन वंदे ।
 हर्ष-अश्रु बहु मातु बहाये ,
 सुरगण व्योम सुमन वरसाये ।
 सखन बजाये वेणु-विषाणा ,
 गवने भवन करत गुण गाना ।
 आये नंद-सदन बनवारी ,
 आरति प्रमुदित मातु उतारी ।
 भूषण वसन सप्रीति सँभारति ,
 हँसि हँसि जननि अंग रज झारति ।
 लागि जँवावन पुनि महतारी ,
 रोहिणि करति सप्रीति बयारी ।

दोहा :— उदित व्योम लखि शशि शरद, औचक चले पराय ,
 “तनिक खरिक लागि जात मै, ब्यानी धौरी गाय ।” १५१

धाय खरिक पहुँचे घनश्यामा ,
 पाये दुहत धेनु श्रीदामा ।
 कहेउ, “सखा सब लेहु बोलायी,
 वृंदावन खेलहिं निशि जायी ।”
 जोरे सखा सकल श्रीदामा ,
 गये जमुन तट सँग बलरामा ।
 लागे खेलन मिलि सुख देनू ,
 बालक वृंद बने कछु धेनू ।
 धेनु-चोर कछु अन्य वनाये ,
 सखा शेष रक्षक बनि आये ।
 व्योमासुरहु सुअवसर पायेउ ,
 बनेउ चोर, मिलि सखन समायेउ ।
 चोरी-मिस लै बाल उठायी ,
 गिरि गह्वर राखहि खल जायी ।
 शिला द्वार धरि पुनि पुनि आवै ,
 बाल उठाय अन्य लै जावै ।

दोहा :— लीलापति निरखे निखिल, व्योमासुर-व्यापार ,
 दैत्य-कंध आपहु चढ़े, आये गह्वर-द्वार । १५२

लाग उतारन जब बनवारी ,
 उतरे नहिं हरि गरिमा धारी ।
 सकेउ न सहि भव-धर गरुआई ,
 गिरेउ असुर मुँह-भर भहरायी ।
 बधेउ व्योम हरि ग्रीव मरोरी ,
 इलु-दण्ड जिमि जीव निचोरी ।
 गवने गुहा शिला सरकायी ,
 धाये सखा रँभाय रँभायी !
 लखि हरि ग्वाल-बाल सरलाई ,
 विहँसि विहँसि खल-कथा सुनायी—
 “सखा न होय असुर यह भारी ,
 आयेउ गुहा ताहि संहारी ।”

द्वार सबन शव दीख महाना,
“राखे आजु बहुरि हरि प्राणा।
उचित न राति रहव वन होई,
निकसहि कहूँ ते और न कोई।”

दोहा :— “चलहु-चलहु !” बोलहिं सखा, कर्षहिं कर गहि श्याम,
शिला-खंड गोविन्द बसि, लखत प्रकृति छवि धाम । १५३

शरदागम शोभित मधु यामिनि,
महि अवतरित मनहुँ सुर-कामिनि।
विलसित व्योम विमल विधु आनन,
कुंचित अलक श्याम शशलाञ्छन।
पुलकित कौमुदि अमल दुकूला,
तारक-अवलि विभूषण फूला।
बंधुक-अरुण अधर अभिरामा,
कलिका कुंद दशन द्युति धामा।
कैरव कुंडल श्रवणन धारे,
नवल मल्लिका चिकुर सँवारे,
हंस मुखर नूपुर स्वर गावति,
अलि ध्वनि किकिणि वाद्य बजावति,
हरि, ढिग शरद शर्वरी आयी,
चित-रंजिनी वृत्ति हुलसायी।
अधर धरी मधु मुरलि कन्हवाई,
संस्तुति सकल समीप बोलायी।

दोहा :— जागेउ जड़ चेतन जगत, त्यागे नीड़ विहंग,
निकसे वनचर तजि विपिन, सँग सँग सिंह कुरंग । १५४

गति आपनि सबहिन बिसरायी,
वंशी-रव पहुँचेउ ब्रज जायी।
जागे नर, जागी ब्रज-वामू,
पृच्छत—“रास रचेउ कहँ श्यामू ?”

महि कोऊ, कोउ व्योम निहारा,
 “बही उमहि कहँ ते स्वर धारा ?”
 लै लै नाम श्याम उत टेरे,
 चले दारु-योषित इव प्रेरे ।
 सकेउ न रहि कोऊ निज धामा,
 गवने ब्रजजन जहँ घनश्यामा ।
 सकुच नाहिं, भीतिहु हिय नाहीं,
 आये निमिष माहिं हरि पाहीं ।
 लखे समीप श्याम चहुँ ओरा,
 सिंह, व्याघ्र, गज, मृग, पिक, मोरा ।
 सुनत वेणु-ध्वनि त्यागि उपाधी,
 जनु मुनीश सब लागि समाधी ।

दोहा :— ठिठकेउ विधुबँधि वेणु-स्वर, बहेउ व्योम उल्लास,
 याम-हीन यामिनि भयी, रचेउ श्याम महि रास । १५५

हरि-प्रेरित सब ब्रज नर-नारी,
 धाये एक एक कर धारी ।
 शोभित सकल मंडलाकारा,
 चंचल चरण, चपल दृग-तारा ।
 राधा-माधव मध्य विराजे,
 छवि विलोकि रति मन्मथ लाजे ।
 दामिनि-द्युति राजहिं ब्रज-वामा,
 नील निचोल नवल अभिरामा ।
 अँग अँग आभूषण मणि मोती,
 किरण समुज्ज्वल जगमग ज्योती ।
 मेचक केशबंध कमनीया,
 विरचित सुमन-राजि रमणीया ।
 मृगमद-विन्दु इन्दु द्युति साजी,
 कर कंकण, कटि किंकिणि बाजी ।
 बाजे वीणा विविध मृदंगा,
 मुरज पखावज एकहि संग ।

दोहा :— सत सुरन मुरली बजी, गाये गोविंद गान,
सिहरि ससुख वसुधा सुनति, सृजन-प्रलय-आख्यान । १५६

गोपिन गोविंद-लीला गायी,
स्वर-सुरसरि महि व्योम बहायी ।
नर्तत मुद मिलि नटवर संगी,
दमकत वदन ललित भ्रू-भंगा ।
अनुहरि ताल चरण चलि जाहीं,
थिरकत अंग, अधर मुसकाहीं ।
पटकत पग उपजत उल्लासा,
पद पद बाढ़त लास विलासा ।
भुज फेरत, कर भाव बतावत,
बलय मुद्रिका रस बरसावत ।
कवरी शिथिल सुमन भरि लागी,
वदन कमल कच अलि अनुरागी ।
लहरत वसन, उड़त उर अंचल,
अनुहरि हरिहिं विलोल दृगंचल ।
दरकत कंचुकि, तरकत माला,
प्रकटत आनन श्रम-कण-जाला ।

दोहा :— नील पीतपट, लट मुकुट, कुंडल श्रुति ताटक,
अरुभक्त एकहिं एक मिलि, राधा-माधव-अंक । १५७

बहेउ अनवरत रास-प्रवाहा,
वसुधा सुधा-सिंधु अवगाहा ।
उमहत-उद्धरत शशधर ओरा,
सींचत अंबर हर्ष हिलोरा ।
अमर-वाम निज निज पति संगी,
बहीं रास-रस विह्वल अंगा ।
किन्नर, सिद्ध, नाग, गंधर्वा,
नभ नाचत अनुहरि हरि सर्वा ।
उदधि-वीचि, विधु-निशि कर जोरे,
नाचत नखत रास-रस-भोरे ।

महि, खग, मृग, तरु, लता, वित्ताना,
 नाचत सस्मित विविध विधाना ।
 नहिं जड़ चेतन कहूँ कोउ बाचा,
 हरि-लय-लिप्त विश्व सब नाचा ।
 विधि-शारदा, इन्द्र-इन्द्राणी,
 नाचत विहँसि महेश-भवानी ।

दोहा :— रास-सुधा-सिंचित बहुरि, पाये अंग अनंग,
 नाचति रति पति पाय पुनि, राधा माधव संग । १५८

परमानंद मगन जग जानी,
 कीन्हेउ कौतुक सारंगपाणी ।
 गहे हाथ निज राधा हाथा,
 गवने कुंज-भवन ब्रजनाथा ।
 जमुना-नीर तरंग बढ़ायी,
 पुनि पुनि चरण पखारत आयी ।
 झुकत महीरुह करत प्रणामा,
 बरसत सुमन पराग ललामा ।
 स्वागत-गीत कोकिला गावहिं,
 अलि-कुल विरुदावली सुनावहिं ।
 चंद्र मरीचि रंघ-मग आयी,
 बिलसति वदन-कुमुद विकसायी ।
 श्रम-कण मलय समीर सुखाये,
 आसन किसलय लाय बिछाये ।
 मंजु निकुंज ब्रह्म आसीना,
 अंक विराजति प्रकृति प्रवीणा ।

दोहा :— विहँसत हरि हेरत प्रियहिं, लास-रसीले नैन,
 अधर मधुर बरसे बहुरि, सुधा-सिक्त मृदु बैन— १५९

“हम दोउ एक, नाहिं कछु भेदा,
 कहत सकल निगमागम वेदा ।

निवसति यथा क्षीर धवलाई ,
 यथा हुताशन दाहकताई ,
 बसत प्रिये ! तस तुम मोहिं माहीं ,
 तुमहिं विहाय मोरि गति नाहीं ।
 मैं स्रष्टा, तुम चिर नव सृष्टी ,
 मैं संतोष, परम तुम तुष्टी ।
 मैं दिनपति, तुम दिन जजियारी ,
 मैं शशि, तुमहु कान्ति मनहारी ।
 मैं दीपक, तुम शिखा सोहावनि ,
 मैं जलनिधि, तुम वेला पावनि ।
 मैं पावक, तुम स्वाहा रूपा ,
 मैं धनेश, तुम ऋद्धि अनूपा ।
 मैं जहूँ अर्थ तहाँ तुम वाणी ,
 मैं नय, तुमहिं नीति कह ज्ञानी ।

दोहा :— धर्म सत-क्रिया सदृश हम, बोध बुद्धि अनुहारि ,
 व्याप्त विश्व भरि तत्त्व इक, दिखत पुरुष अरु नारि । १६०

यह मम पूर्ण कला अवतारा ,
 विविध चरित्र, अमित विस्तारा ।
 अगणित कर्म, असंख्य निवासा ,
 ग्राम निगम पुर नगर प्रवासा ।
 कतहुँ जन्म, कहुँ शैशव यापन ,
 कतहुँ समर, कहुँ पुर संस्थापन ।
 कतहुँ संधि, कहुँ रण-गुण-गायन ,
 कतहुँ विजय, कहुँ समर-पलायन ।
 कतहुँ वेणु, कहुँ चक्र सुदर्शन ,
 कतहुँ हर्ष, कहुँ रोष-प्रदर्शन ।
 कतहुँ प्रणय, कहुँ अनत विवाहा ,
 कतहुँ हृदय, कहुँ नय-निर्वाहा ।
 कतहुँ शाक, कहुँ मधु पकवाना ,
 कतहुँ पदातिक, कहुँ नभ-याना ।

कतहुँ दया, कहुँ कर्म नृशंसा ,
कतहुँ कुवच, कहुँ संत प्रशंसा ।

दोहा :— जटिल जगत जीवन यथा, जटिल तथा मम कर्म ,
ग्रथित एक गुण चरित सब, समुझहिं ज्ञानी मर्म । १६१

मृदुल भाव मैं ब्रज दरसावा ,
प्रेम-विटप करि यत्न लगावा ।
भक्ति-रूप धरि तुम ब्रज आयीं ,
नीरधि नेह नयन भरि लायीं ।
संसृति-उपवन रहेउ सुखायी ,
सींचि नेह-जल देहु बढ़ायी ।
जब लागि मैं कुश-काँस उखारहुँ ,
खोजि खोजि असुरन संहारहुँ ,
तुम ब्रज बसहु, करहु रखवारी ,
सींचहु प्रेम-विटप दृग-वारी ।
उत मैं करहुँ शूल निर्मूला ,
फूलहि प्रेम-वृक्ष इत फूला ।
धर्मादिक फल लागहिं चारी ,
लहहि प्रिया जग कृपा तुम्हारी ।”
विहँसत हरि बोलत मृदु वाणी ,
सुनि सुनि मन राधा बिलखानी ।

दोहा :— चकित विलोकति श्याम तन, त्यागे नैन निमेष ,
भरि भरि रही दुराय उर, जनु छवि उदधि अशेष । १६२

हरिहु प्रबोधी प्रिया विहाला ,
नारद मुनि आये तेहि काला ।
नर्तत नटवर रास निहारी ,
लखे कुंज पुनि कुंजबिहारी ।
निरखी राधहु दोउ थल साथी ,
मुग्ध बुद्धि-विभ्रम मुनिनाथा ।

पूर्व मोह सुधि मुनि मन आयी ,
 “पाहि ! पाहि ! प्रभु लेहु बचायी ।”
 जानि भक्त वर प्रकटी दाया ,
 भेंटे प्रभु समेटि निज माया ।
 कृष्णस्तुति बहु कीन्हि मुनीशा ,
 माँगेउ वर पुनि धरि महि शीशा—
 “उपजहि जो प्रभु-उर अभिलाषा ,
 होय मोहिं तेहि क्षण आभासा ।
 जब जो मन निज करहु विचारा ,
 होय प्रकट मम मानस सारा ।”

दोहा :— ‘एवमस्तु’ हरि मुख कहत, उपजेउ मुनि मन ज्ञान ,
 मधुपुर दिशि देवर्षि हँसि, सत्वर कीन्ह प्रयाण । १६३

रुकेउ रास सुख जमुन नहाये ,
 ब्रजजन निज निज सदन सिधाये ।
 मुनि नारद उत मथुरा जायी ,
 देखेउ गलित-दर्प नररायी ।
 गुनत अरिष्ट केशि अरि मारा ,
 धुनत शीश मुनि व्योम सँहारा ।
 गनत सुभट जे प्रथम पठाये ,
 कहत—‘गये ते फिरि नहिं आये !’
 निरखेउ नारद नृप मनमारे ,
 हित जनाय मृदु बैन उचारे—
 “सुनु महीप ! ये हरि बलरामा ,
 दोउ वसुदेव-सुवन बलधामा ।
 नंद संग वसुदेव-मिताई ,
 रही रोहिणी गोकुल जायी ।
 जन्मे तहँ हलधर बलवाना ,
 भेद न कोउ कछु मधुपुर जाना ।

दोहा :— जायेउ कृष्णहिँ देवकी, गोकुल दीन्ह पठाय ,
 रचि प्रपंच पुनि नँद-सुता, तुमहि देखायी लाय ।” १६४

सुनतहि कंस भयेउ उठि ठाढ़ा ,
 रोष-समुद्र अंग अंग बाढ़ा ।
 भरी सभा वसुदेव बोलावा ,
 भगिनिहु कहँ अपशब्द सुनावा ।
 कहि कुवाक्य जब खड्ग निकारा ,
 नारद नृपहिं प्रबोधि सँभारा ।
 लै एकान्त गये मुनिरायी ,
 प्रकटि प्रीति पुनि कहेउ बुझायी—
 “कहा लाभ अब इनहिं सँहारे ?
 विचरत ब्रज दोउ शत्रु तुम्हारे ।
 करहु युक्ति कछु मधुपुर आवहिं ,
 मारहु घेरि फिरन नहिं पावहिं ।”
 सुनत मंत्र नरपति मन माना ,
 विहँसे नारद करत प्रयाणा ।
 पथ मुनि करत मनोरथ जाहीं ,
 कंस नृशंस बचहि अब नाहीं ।

दोहा :— धावत महि तजि स्वर्ग दिशि, तेज-पुंज आकार ,
 बरसावत पथ हरि-चरित, भङ्कृत वीरणा-तार । १६५

इत परिजन निज कंस बोलाये ,
 राजभवन यदुवंशी आये—
 कृतवर्मा, सात्यकि अरु आहुक ,
 सत्राजित, प्रसेनजित बाहुक ।
 शतधन्वा अमृदिक सब शूरा ,
 नीति-निपुण उद्धव, अक्रूरा ।
 सोचत मन सब स्वजन समाजू ,
 सुमिरेउ भूप हमहिं कस आजू ।
 जब ते भयेउ कंस मथुरेशा ,
 भये विदेशी हम निज देशा ।
 आयेउ आजु कवन अस काजा ,
 कीन्हि जो कृपा बोलायेउ राजा ।

बैठे यादव करत विचारा ,
आय कंस कीन्हेउ सत्कारा ।
वसुदेवहिं समीप बैठायी ,
कहत कुटुंबिन कंस सुनायी—

दोहा :— “मानस सागर सम विमल, यह यदुवंश महान ,
वंश-विभूषण आपु सब, शोभित हंस समान । १६६

नीर-चीर बिलगावन जानत ,
गुण-अवगुण सबके पहिचानत ।
संबंधी वसुदेव हमारे ,
रहे सदा मोहिं प्राण-पियारे ।
कीन्हेउ भगिनी संग विवाहा ,
सर्व भाँति मैं नेह निबाहा ।
त्यागी पै न शौरि कुटिलाई ,
कीन्हि नंद सँग गुप्त मिताई ।
राज्य हेतु नित प्रति अभिलाखे ,
पत्नी-पुत्र नंद-गृह राखे ।
अब दोउ सुवन भये विद्रोही ,
लेत राज-कर गनत न मोहीं ।
रहि वसुदेव हमारेहि पासा ,
करत नित्य नव भोग विलासा ।
रचत प्रपंच चहत मोहिं मारन ,
चहत सकल यदुकुल संहारन ।

दोहा :— प्रकट मोहिं सब छल कपट, निमिषहि सकहुँ निवारि ,
करिहौ पै जो तुम कहहु, नीति अनीति विचारि ।” १६७

स्वजन समूह सुनत अनखाना ,
कहत असत्य कंस मन जाना ।
रहे चुपाय तदपि भय खायी ,
उद्धव कंसहिं कहेउ सुनायी—

“कृपा कीन्हि प्रभु बोलि पठावा,
जागे भाग्य दरस हम पावा।
पूछी हमते नीति अनीती,
महत अनुग्रह कीन्हि प्रतीती।
निवसत पै हम निज निज गेहा,
खात, पियत, पालत नित देहा।
जब ते असुरन प्रभु सन्माना,
नीति-शास्त्र सब हमहिं भुलाना।
ताते हम सब रहे चुपायी,
पूछत प्रभु ! नहिं सकत बतायी।
औरहु यह संशय मन माहीं,
नव नीतिहिं हम जानत नाहीं।

बोधा :—उग्रसेन नृप राज्य महँ, हम सीखी नय-रीति,
सुनत चलति मधुरेश दिग, अब असुरन कै नीति। १६८

आर्य-नीति प्रीतिहिं आधारा,
असुर नीति आतंक-प्रसारा।
राम सो आर्य नीति भल जानी,
तजेउ राज्य पाली पितु वाणी।
कीन्हीं भरतहु सोइ प्रमाणा,
तजेउ राज्य पूजे पदत्राणा।
असुर नीति अब भारत छायी,
प्रीति, प्रतीति, सुनीति नसायी।
डारत पितु बंदीगृह माहीं,
भोगत राज्य न पुत्र लजाहीं।
नहिं अचरज जो नृप तुम भाखा,
शौरिहु-हृदय राज्य-अभिलाखा।
कीन्ह हस्तगत प्रभु ! पितु-राजू,
तब नहिं भयेउ अधर्म अकाजू,
का अनीति चाहत वसुदेवा
पावहिं राज्य कृष्ण बलदेवा ?

दोहा :—आर्य-नीति अनुसार प्रभु, दोऊ कार्य अधर्म ,
सुनत आसुरी नीति महँ, राज्य-हरण शुभ कर्म ।” १६६

सुनी अवनि-पति उद्धव वाणी ,
बाण समान विषम विष सानी ।
उर प्रतिशोध, क्रोध तनु भारी ,
समुझि समय शठ कहत सँभारी—
“राजनीति जो उद्धव गायी ,
रघुकुल वार्ता कीर्ति सुनाई ,
सो नहिं यादव कुल आचारा ,
हमरे पृथक नीति व्यवहारा ।
ज्येष्ठ नृपति रघुकुल महँ होई ,
कायर मूर्ख न देखत कोई ।
यदुकुल साहस शौर्य-उपासक ,
पूजत ताहि जो रिपु-कुल-नाशक ।
अग्रगण्य मानत हम सोई ,
कुल-दीपक जो सब विधि होई ।
उग्रसेन यद्यपि पितु मोरे ,
वयोवृद्ध रहिये कर जोरे ,

दोहा :—तदपि नृपति गुण एक नहिं, तेज-हीन तन-क्षीण ,
राजसिंहासन सोह नहिं, कायर बुद्धि-विहीन । १७०

धरत न जो मैं निज शिर भारा ,
हरत कोउ औरहि अधिकारा ।
मगधनाथ सन संगर ठानी ,
बैठे उग्रसेन रजधानी ।
कीन्हेउँ मैं गिरिव्रज संग्रामा ,
भयेउ समुज्ज्वल यदुकुल नामा ।
अमरपुरी सम मथुरा सोही ,
तबहूँ उद्धव निंदत मोही ।
सो मैं सुनी, न रिस उर आनी ,
स्वार्थ-निबद्ध निखिल जग जानी ।

बैठे उग्रसेन सिंहासन ,
चलेउ देश महँ उद्धव-शासन ।
नहिँ अचरज जो करत प्रशंसा ,
मानत तिनहिँ वंश अवतंसा ।
का अचरज जो निंदत मोहीं ,
कहि कलंक कुल, परिजन-द्रोही ।

दोहा :— निंदास्तुति नर नित करत, हित-अनहित अनुसार ,
उग्रसेन नृप राज्य सँग, गत उद्धव अधिकार ।” १७१

बोले सुनि उद्धव अति क्षोभा—
“नहिँ मम उर शासन-हित लोभा ।
संतत रहेउँ अवनिपति-अनुचर ,
सेवक, सखा, सचिव अरु सहचर ।
साँचहु पै जो प्रभु-आरोपा ,
भयेउ न यादव-शासन लोपा ।
रहे राजजन यदुजन सारे ,
कब कहँ कवन समर हम हारे ?
निज मुख प्रभु ! निज करत प्रशंसा ,
मानत आपुहिँ कुल-अवतंसा ।
तदपि न कुल कहँ परत लखायी ,
दिशि दिशि दिपति असुर-प्रभुताई ।
कीन्ह विजित जो प्रभु मगधेशा ,
भये मगध-जन कस मथुरेशा ?
अनुचित ज्येष्ठ होब जो राजा ,
मत्स्य-न्याय-बल चलत समाजा ,

दोहा :— सिंहासन सोहत सतत, जो केवल कुल दीप ,
उचित कृष्ण बलराम दोउ, चाहत होन महीप ।” १७२

सुनतहिँ कंस न रोष सँभारा ,
‘राजद्रोह’ !—कहि कीन्ह पुकारा ।

सुनत नृपति-स्वर अनुचर धाये ,
 असुर यवन बहु दौरत आये ।
 कुलजन बीच विजाति-प्रवेशा ,
 लखि यदुजन महँ छायेउ रोषा !
 उठि सुफलक-सुत सबहिं सँभारा ,
 नृपहिं तोषि मृदु वचन उचारा—
 “उचित न सेवक-स्वामि-विवादू ,
 प्रभु-निदेश हम गनत प्रसादू ।
 देहु निदेश हमहिं जन जानी ,
 करिहैं पालन सब सुख मानी ।”
 सुनि वसुदेवहिं भूप निहारा ,
 वक्र वचन रिस रोकि उचारा—
 “जो नहिं तुम्हरे मन कुटिलाई ,
 सुत दोउ मधुपुर लेहु बोलायी ।

दोहा :— लिखहु पत्रिका जस कहहुँ, अबहिं महर नँद नाम ,
 लै आवहिं मधुपुर तुरत, तनय कृष्ण बलराम ।” १७३

विकल सुनत सोचत वसुदेवा—
 अइहैं पढ़त कृष्ण बलदेवा ।
 छल-बल सुत मधुपुर बोलवायी ,
 बधिहै कंस बाल असहायी ।
 प्रमुदित भूप गहावत पाती ,
 गहत लेखनी धरकति छाती ।
 बधिर शौरि, नयनन तम नीरा ,
 रुद्ध कंठ, प्रस्वेद शरीरा ।
 “लिखहु पत्र !”—नृप कहत बहोरी—
 “लिखहु, छाँड़ि पाछिल छल चोरी ।”
 खसी लेखनी, छूटी पाती ,
 मूर्छित शौरि, हँसेउ अपघाती ।
 अट्टहास पुनि पुनि नृप कीन्हा ,
 “आजु राज-द्रोही मैं चीन्हा !”

कीन्ह भूप उठि पाद-प्रहारा ,
हा ! हा ! करि यदुजनन पुकारा ।

दोहा :— सात्यकि, कृतवर्मा सबन, गही हस्त करवाल ,
घिरे असुर यवनहु विपुल, भयेउ द्वन्द्व विकराल । १७४

लरत भिरत करि असि-परिचालन ,
पहुँचे निकसि भवन निज यदुजन ।
समुझि नृशंस कंस कुटिलाई ,
रहे जहाँ तहँ सकल दुरायी ।
उत वसुदेवहिं देवकि साथ ,
बंदी बहुरि कीन्ह नरनाथा ।
अक्रूरहिं पुनि कहेउ बोलायी—
“जाहु अबहिं ब्रज नँद ढिग धायी ।
कहेउ, ‘हमहिं यदुराज पठावा ,
धनुष-यज्ञ हित तुमहिं बोलावा ।
मल्ल-युद्ध, व्यायाम-विधाना ,
क्रीड़ा कौतुक देखब नाना ।
जब ते कृष्ण कमल लै आये ,
निरखन हेतु नृपति ललचाये ।
साथ लेवाय चलहु सुत दोऊ’ ,
‘गवनहु,’ कहेउ, ‘विलम्ब न होऊ ।’

दोहा :— औरहु रुचि अनुसार कहि, देश काल अनुकूल ,
लै आवहु वसुदेव-सुत, मेटहु मम उर शूल ।” १७५

सुफलक-तनय सुनेउ प्रस्तावा ,
सहमेउ उर उपजेउ पछितावा ।
प्रीति नृपति-मुख, हृदय कठोरा ,
चहत अधर्म करावन घोरा ।
खल स्वामी-सेवा-सहवासा ,
अहि फण-तल जनु दादुर वासा ।

आयी सुधि पुनि हरि-यश केरी,
उपजी - हृदय प्रतीति घनेरी।
सुनियत कृष्ण ब्रह्म अवतारा,
प्रकटे हरन धरणि-भय-भारा।
वधहिं जो कंसहिं मधुपुर आयी,
मिलहि मोहिं यश, विश्व भलाई।
करत तर्क कछु कहि नहिं आवा,
स्यंदन साजि सारथी लावा।
कंस चतुर नहिं अवसर दीन्हा,
पठवत नेह प्रकट बहु कीन्हा।

दोहा :— सुफलक-सुत बैठाय रथ, कहत कंस सिर नाय,
“तुमहिं हितैषी एक मम, दुर्दिन भये सहाय।” १७६

सुनि अक्रूर मनहिं मन माखे,
वचन शिष्ट नृप सन कछु भाखे।
ब्रज दिशि जैसेहि कीन्ह प्रयाणा,
निज पद-प्रीति दीन्हि भगवाना।
सोचत—नृपति अनुग्रह कीन्हा,
हरि-दर्शन अवसर मोहिं दीन्हा।
लखिहैं लोचन छवि सुखकारी,
भव-पथ-ज्योति, भीति-तम-हारी।
मिलिहैं वन मोहिं धेनु चरावत,
ग्राम सखन सँग गावत आवत।
विचरत ब्रज-बीथिन अभिरामू,
मिलिहैं मोहिं कहाँ धौ श्यामू?
धनि यशुदा नैद हृदय लगावत,
जागत सोवत लखि सुख पावत।
धनि धनि गोप वृन्द ब्रजवासी,
लखत बाल-लीला सुख-राशी।

दोहा :— धनि ब्रज-वन विचरत जहाँ, धनि चारत जे धेनु,
घरत अघर वादत मधुर, धनि सर्वोपरि वेणु। १७७

मन उमंग मग सोचत जाहीं,
जात समय जानेउ कछु नाही ।
परति मधुपुरी अब न लखायी,
रवि-तनया पाछे रहि जायी ।
लगे दिखान ग्राम वन बागा,
भयी साँभ रवि अथवन लागा ।
इत श्यामहु वन धेनु चरायी,
पहुँचे खरिक सखन सँग आयी ।
पुलकित वत्स पियावत धेनू,
गावत सखा बजावत वेणू ।
दुहत धेनु प्रभु गोपन संगी,
उपजत नाद मधुर रस रंगा ।
दुहत, लगावत होड़ कन्हाई,
मृदुलस्पर्श देत पय गाई ।
ताहि समय नृप-स्यंदन आवा,
गोप वृन्द सब देखन धावा ।

दोहा :— खरिक-द्वार ठाढ़े हरिहु, अभिनव वारिद श्याम,
इंदु-विनिंदक द्युति वदन, लोचन कमल ललाम । १७८

भुज आजानु महा छवि छायी,
उर मोतिन वर माल सोहायी ।
जनु तजि मरकत-कान्ति पहारा,
उतरी उज्ज्वल सुरसरि धारा ।
कुंडल श्रुति मणि-मंडित भूमत,
भलकत अरुण कपोलन चूमत ।
शोभित पीत वसन अति अंगा,
नील शैल जिमि ज्योत्स्ना संगी ।
नयन-कौमुदी, आनंद उद्गम,
अधरस्मित जनु हरति विश्व-तम ।
भाल विशाल तिलक त्रय रेखा,
भुवन-विमोहन प्रभु-वपु, वेखा ।

हलधर बहुरि लखे तहँ ठाढ़े ,
 सुषमा-सिंधु मनहु मथि काढ़े ।
 कुंद इंदु हिम द्युति उजियारे ,
 गौर शरीर नील पट धारे ।

दोहा :— उर भुज नयन विशाल अति, शोभित श्रीपति पास ,
 नीलाचल दिग राज जनु, मेघयुक्त कैलास । १७६

लखि अक्रूर ललकि रथ त्यागा ,
 पदतल परत विलंब न लागा ।
 हर्ष प्रकर्ष पुलक उपजावा ,
 कहेउ नाम, कहि और न आवा ।
 व्यापी उत्कंठा अंग अंगा ,
 वहीं नैन-मग जमुना-गंगा ।
 ध्वजा वज्र पद्मांकित पाणी ,
 परसेउ शीश प्रीतिवश जानी ।
 उभय भुजा भरि भक्त उठावा ,
 हृदय लगाय हरेउ पछितावा ।
 पूछी हेम कुशल कुल केरी ,
 कंस कुशल पूछी हँसि हेरी ।
 सुनत प्रश्न जनु सोवत जागा ,
 भेंटत हलधर उर अनुरागा ।
 पूछि प्रथम गोकुल-कुशलाई ,
 कंस कथा आद्यन्त सुनायी ।

दोहा :— सुफलक-सुत मुख वृत्त सुनि, कहत विहँसि घनश्याम ,
 “गवनेब मधुपुर प्रात हम, निशि निवसहु सँग धाम ।” १८०

अस कहि लिये अतिथि प्रिय साथा ,
 गवने ग्राम ओर ब्रजनाथा ।
 ग्वालबाल सब विकल विहाला ,
 सोचत काह कहेउ नँदलाला ।

देखि व्यथित बोले ब्रजराजू—
 “नहिं तनिकहु भय शंका काजू ।
 यज्ञ-महोत्सव नृपति रचावा,
 देखन हित मधुपुर बोलवावा ।
 चलहु काल्हि सब संग हमारे,
 देखहु पुर उत्सव रँग सारे ।”
 विहँसत श्याम सखन समुभावत,
 शंकित सकल भरोस न आवत ।
 लखत वदन तन नयन चोराये,
 यहि विधि नंद-सदन सब आये ।
 ‘कंस-दूत’—सुनि महर डेराने,
 परिचय देत श्याम मुसकाने ।

दोहा :—काँपत कर आसन धरत, अर्घ्य न सकत उठाय,
 सहमे नंद सँदेश सुनि, गिरेउ वज्र जनु आय । १८१

यशुमति सहि नहिं सकी प्रहारा,
 भयेउ नंद-गृह हाहाकारा ।
 विनवति अक्रूरहि नँदरानी—
 “काहे नृपति निठुरता ठानी ?
 हरि हलधर मोरे अति बारे,
 लखे कबहुँ नहिं मल्ल अखारे ।
 ये बालक गो-चारत वन वन,
 यज्ञ सभा इन सुनी न श्रवणन ।
 गुरु द्विज कबहुँ न भ्राम जोहारा,
 जानहिं काह राज-व्यवहारा !
 बरु नृप लेहि धाम धन गाई,
 मन-वांछित ‘कर’ लेहिं चुकायी ।
 सर्वस लेय देय इक श्यामू,
 जननी-जीवन, ब्रज-सुख धामू ।
 वासर वदन विलोकि बितावहुँ,
 निशि शिशु अंक लाय सुख पावहुँ ।

दोहा :— एक आस अभिलाष इक, माँगहुँ शीश नवाय—
“इन आँखिन आँगन लखहुँ, खेलत सदा कन्हाय ।” १८२

यहि विधि बिनवति लेति उसासा,
मुख नत, फुरत अधर-पुट नासा ।
लखेउ नेह अक्रूर अपारा,
देत तोष मृदु वचन उचारा—
“मातु ! यज्ञ देखन ये जाहीं,
तीनहुँ भुवन इनहिं भय नाहीं ।
पूजे चरण सुरेशहु जासू,
सकत कि कंस हानि करि तासू ?”
हरिहु आप जननी समुझायी,
कहत मातु, सुत हृदय लगायी—
“जेहि मुख कहेउ महर कहँ ताता,
जेहि मुख मोहिं कहेउ नित माता,
तेहि मुख आजु कहत तुम जाना,
भयेउ सुमन कस कुलिश समाना ?
रहेउ अंत जो यहि विधि मारन,
काहे कीन्ह गोवर्धन धारण ?”

दोहा :— विलपति मातु, न लखि परत, व्यथा-वारिनिधि-कूल,
ढरकि कपोलन अश्रु-जल, भिजवत देह-डुकूल । १८३

विलपति बैठि यशोमति धामा,
व्यापेउ वृत्त विकल सब ग्रामा ।
गोपी गोप कहहिं—“को आवा ?
काहे श्यामहिं कंस बोलावा ?”
कोउ कह—“खरिक पाय बनवारी,
रथ ते उतरि मोहिनी डारी ।
मिले श्याम तेहि जिमि पय पानी,
ब्रज-सुधि-बुधि क्षण माहिं भुलानी ।
खोयी वस्तु मनहुँ हरि पायी,
रहत न पल नृप-दूत विहायी ।

जइहैं मधुपुर होत प्रभाता ,
तजि ब्रजजन गोधन पितु माता ।”
कहत कोउ—“मधुपुर का पइहैं ,
यशुमति तजि नहि मथुरा रहिहैं ।”
बोलेउ कोउ—“ये आपु विधाता ,
इनके कोउ न नात पितु माता ।

दोहा :— जन्महि जब चाहहि जहाँ, त्यागहि पुनि पल माहि ,
नेह नीति जानहि नहीं, बसति दया उर नाहि । १८४

हम हरि-मिले, हमहिं हरि नाहीं ,
बसे कमल सम ब्रज-सर माहीं ।
चले आजु सहसा नृप पासा ,
करि ब्रज श्री-हत, जीव हताशा ।”
कोउ कह—“श्याम न लाँछन-भागी ,
भये हमहिं ब्रज लोग अभागी ।
चाहत गोकुल दैव नसावा ,
कालहि सुफलक-सुत बनि आवा ।
ब्रजवासिन-सर्वस्व कन्हार्ई”—
कहहि गोप गोपी बिलखायी ।
मिलि कछु गवनहि नंद-दुआरे ,
लखि अक्रूर फिरहि मन मारे ।
कछु जन जिनहिं समीप बोलायी ,
चलहु संग अस कह नँदरायी ,
भये धन्य ते जन ब्रज आजू ,
पायेउ मनहुँ भुवन-त्रय राजू ।

दोहा :— भेंट धरत, साजत शकट, राखत शस्त्र दुराय ,
हरि-रक्षा चाहत सकल, माँगत ईश-सहाय । १८५

तेहि निशि ब्रज नहिं सोयेउ कोई ,
बरनत चरित रहे सब रोई ।

जात भवन निशि अति भय पावहिं ,
 प्रविशहिं द्वार, लौटि पुनि आवहिं ।
 जनु प्रति भवन भयेउ भय-डेरा ,
 उड़त विहग, नहिं लेत बसेरा ।
 धेनु रँभाहिं, बच्छ अकुलाहीं ,
 राम ! श्याम ! कहि जनु बिलखाहीं ।
 शुक-सारिकहु जरत विरहागी ,
 फरफरात, हरि-हरि रट लागी ।
 जात अकारण दीप बुझायी ,
 तारक टूटि गिरत महि आयी ।
 रोवत श्वान निरखि नभ ओरा ,
 छापी ब्रज क्रंदन-ध्वनि घोरा ।
 उमहेउ शोक-सिंधु जनु आयी ,
 बहे जात ब्रजजन असहायी ।

दोहा :— व्योम अरुण साजत रथहिं, सुफलक-सुत नँद-द्वार ,
 आवत दिनपति, जात हरि, करि गोकुल अँधियार । १८६

विरह-अनल नभ लखि साकारा ,
 भयेउ कोलाहल ग्राम अपारा ।
 गोकुल-गेह शैल जनु सारे ,
 गोपी-गोप नदी-नद-नारे ।
 उमहे महर-द्वार सब आयी ,
 करुणा सिंधु बहेउ हहरायी ।
 अश्रु नीर, उच्छ्वास तरंगा ,
 क्रंदन भँवर, धैर्य-तट भंगा ।
 डगमग मध्य राज-रथ नैया ,
 निराधार अक्रूर खेवैया ।
 बूड़त व्याकुल प्रभुहिं पुकारा ,
 द्वार कृष्ण तेहि क्षण पगु धारा ।
 निरखि मातु पद प्रणमत श्यामू ,
 उठेउ रोय सस्वर ब्रज ग्रामू ।

हरि ! केशव ! गोविन्द ! पुकारे ,
कहाँ जात घनश्याम हमारे ?

दोहा :— हिचकिन बिलपीं गोपिका, “करहु न कान्ह ! अनाथ ,
मुरलीधर ! गिरिधर ! रहहु, राजहु ब्रज ब्रजनाथ !” ? ८७

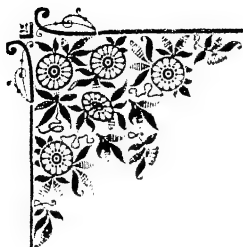
बंदि सबहिं चहुँ दिशि ब्रजनंदन ,
निवसे बंधु सहित नृप-स्यंदन ।
विरह-वह्नि नहिं सकीं सँभारी ,
भुलसीं लता-मृदुल ब्रज-नारी ।
कौन कंस ? यह कसि कुटिलाई ,
कवनि खबरि ? केहि हाथ पठायी ?
को ब्रज जीवन-मूरि उपारी ?
जात कहाँ, नहिं सुनत गोहारी ?
दशा यशोमति बरनि न जायी ,
गिरति भूमि, उठि कहति कन्हाई !
दौरति बहुरि, गिरति पुनि धरणी ,
टेरति सुत, कलपति नँद-धरनी—
“विरमहु पल बिछुरत घनश्यामा !
लखहु वत्स ! बिलखत सब ग्रामा ।
एकहु बार न फिरि मोहिं हेरा ,
जात कहाँ करि दृगन अँधेरा ?”

दोहा :— प्रेरे सुफलक-सुत तुरग, मुख फेरेउ घनश्याम ,
स्यंदन-तल तेहि क्षण गिरी, कोउ विरहिसि ब्रज-वाम । ? ८८

राधा ! राधा ! कहि बिलखायी ,
त्यागेउ रथ श्रीपति अकुलायी ।
सानुराग भरि हृदय निहारा ,
नयनन उमहि बही जल-धारा ।
सुधा-सिक्त राधा-अँग सारे ,
जागी वदन ज्योति नव धारे ।

भयी न प्राकृत तिय पुनि तैसे ,
जल-कण स्वाती सीपी जैसे ।
धायी जननि सुवन ढिग आयी ,
नत ईषत हरि-नयन लजायी ।
अंब-अंक दीन्हीं प्रभु राधा ,
लेति यशोमति प्रीति अगाधा ।
पुनि पुनि सुता लगावति छाती ,
लहेउ सनेह बुझत जनु बाती ।
देखि प्रीति पुलकित ब्रजवासी ,
जनु निशि सहसा उषा प्रकासी ।

दोहा :— बसि स्यंदन ब्रजपति लखे, विलखत ब्रज नर-नारि ,
लखे राधिका ढिग बहुरि, पौछत सब दृग-वारि । १२३
हाँके हय सुफलक-सुवन, गये कृष्ण बलराम ,
गयी न ब्रज तजि एक ध्वनि, “जय-जय राधेश्याम !” १२४



मथुरा काण्ड



सोरठाः—मुकुट जासु हिमवंत, चरण पखारत सिन्धु नित ,
जन्मत जहँ भगवंत, प्रणमहुँ भारत मातु सोइ ।
जननि-चरण-जलजात, भक्ति सहित बंदहुँ बहुरि ,
मधुपुर दिशि हरि जात, भार जासु दुःसह हरन ।

त्यागत ब्रज ब्रजराज अधीरा ,
होत विमुख, वरसे दृग नीरा ।
छायेउ दुर्दिन सहसा -स्यंदन ,
श्यामल नवल शरीर सजल घन ।
चंद्रक केश-कलाप ललामा ,
सुरपति-चाप उदित अभिरामा ।
जल-कण छलकि कपोलन छाये ,
पाटल पावस-विन्दु सोहाये ।
विलसत वर वक्षस्थल हारा ,
मौक्तिक उज्ज्वल पावस-धारा ।

स्यंदन-घर्घर गर्जन घोरा ,
 भ्रान्त मत्त नर्तत पथ मोरा ।
 रथ-गति-दोलित केशव पासा ,
 शोभित हलधर तड़ित-विलासा ।
 सारथि सुफलक-सुवन प्रभंजन ,
 बाजि-वेग हरि-वारिद-वाहन ।

दोहा :— धावत प्रलय-पयोधि-धृत, दुर्दिन स्यंदन-रूप ,
 उद्वेलित, बोरन चहत, द्वीप कंस यदु-भूप । १

बलरामहु ब्रज-विरह दुखारे ,
 लखत सतृष्ण दृश्य पथ सारे ।
 चिर परिचित थल जस जस आवत ,
 सुफलक-सुतहिं ललकि दरसावत—
 “जम्बू-कुंज मध्य अभिरामा ,
 लखहु शिला वह नीलम-श्यामा ।
 सजग जननि-रुग जहाँ बरायी ,
 आवत हरि मोहिं अनुसरि धायी ।
 सुमन विभूषण कबहुँ बनावत ,
 पाछे कबहुँ विहग लागि धावत ।
 जम्बू-पत्रन कबहुँ बजावत ,
 अनुहरि भ्रमर कबहुँ कल गावत ।
 शिला-शयित मोहिं कबहुँ निहारी ,
 चापत चरण विहँसि बनवारी ।
 ‘हाऊ ! हाऊ !’—कहि डरपायी ,
 सहसा पुनि गृह जात परायी ।

दोहा :— लखहु तात ! वह नीप तरु, मुकुलित नयन-विनोद ,
 धारि शिखरडक जासु तल, नर्तत श्याम समोद । २

लखहु बहुरि वह गिरि गोवर्धन ,
 ब्रजजन-धन, गोवत्सन-जीवन ।

निर्मल नील सलिलं जहँ निर्भर ,
 निर्भर-भङ्कृत कानन कंदर ।
 जाहि धारि नख सुमन समाना ,
 हरेउ श्याम सुरपति-अभिमाना ।
 चारत सुरभिन जहाँ सुखारी ,
 विचरत निर्भय विपिन-विहारी ।
 गर निदान, कटि काछनि काछे ,
 फिरत लकुटधर गइयन पाछे ।
 प्रविशत कबहुँ गर्त कान्तारा ,
 कबहुँक निर्भर वारि-विहारा ।
 कबहुँ आमलक गोफन धारत ,
 होइ लगाय, भँवाय, पँवारत ।
 भूलत कबहुँ दोल तरु डारी ,
 कूकत पुनि पुनि पिक अनुहारी ।

दोहा :— लखहु आस्रतरु श्याम-प्रिय, चढ़ि जेहि घरत लवंग ,
 किलकिलात लांगूल गहि, कर्षत करि करि व्यंग । ३

लखहु तालवन पुनि वह ताता !
 जहँ मैं धेनुक असुर निपाता ।
 श्यामल-श्री वनान्त मनहारी ,
 फल विशाल लघु घन अनुहारी ।
 बट भाण्डीर लखहु अब आवा ,
 जहँ प्रलम्ब मैं मारि गिरावा ।
 लखहु ! लखहु ! मधुवन नियराना ,
 चिर नव नंदन विपिन समाना ।
 जहँ वनराजि प्रसन्न गँभीरा ,
 सुरभि-भार मुद-मंद समीरा ।
 व्योम-विचुंबित तरुवर श्यामा ,
 शिखरन कुसुमित मणि अभिरामा ।
 सलिल-ढरनि मुखरित निर्भरिणी ,
 तुहिन-समुज्ज्वल, पथ-श्रम-हरनी ।

विहरत स्वेच्छा मृग चहुँ ओरा,
फल-आस्वाद-मुदित खग-शोरा ।

दोहा :— थलन थलन शोभित लखहु, मंजुल लता-वितान,
स्वरित वितान वितान नित, माधव-मुरली-तान ।” ४

हलधर-गिरा बाल रस पागी,
बाल-सुलभ हरि-दुख ब्रज लागी ।
उपजेउ सुफलक-सुत मन मोहा,
अँगुसेउ उर सन्देह-प्ररोहा ।
जदपि जगन्मोहन-छवि-धामू,
प्राकृत शिशु ये हलधर-श्यामू ।
मृदुल कलेवर, मंजुल जल्पन,
आकुल, तजत स्वजन जल लोचन ।
कंस वीर-अवतंस, दुरन्ता,
सेवित शूर-मल्ल-सामन्ता ।
होय जो मधुपुर शिशुन सँहारा,
कहिहै मोहि वधिक संसारा ।
यहि विधि सोचि रहेउ हरि हेरी,
भयी मंद गति स्यंदन केरी ।
जानि दशा हरि कह मुसकायी—
“जमुना पुलिन गये हम आयी !”

दोहा :— तजि निद्रा जागेउ मनहुँ, सुनि मृदु गोविंद बैन,
फेरे जमुना-तीर दिशि, भरे शोक-जल नैन । ५

अन्तर्वाहि जमुन-जल श्यामल,
जनु महि देवि मुकुर मणि निर्मल ।
अथवा सलिल रूप अपनायी,
जनु वैदूर्य-शैल महिशायी ।
नीलस्फटिक मनहुँ कमनीया,
परिणत वारि वेष रमणीया ।

पुञ्जित त्रिभुवन पुण्य अनूपा ,
शोभित महि जनु सलिल स्वरूपा ।
वारि-विमलता रंजति नयनन ,
हंस-मुखरता तोषति श्रवणन ।
कमल-गंध आमोदित नासा ,
परस-सुखद शीतल वातासा ।
रसना-सरस, ताप-त्रय-हारी ,
सम सर्वेन्द्रिय मन सुखकारी ।
लखि अक्रूर हर्ष उर छावा ,
स्यंदन जमुन-पुलिन विरमावा ।

दोहा :— अग्रज-सँग रथ राखि हरि, लहि सविनय आदेश ,
मज्जन-हित सुफलक-तनय, कीन्हैउ वारि प्रवेश । ६

परसत वारि विनष्ट विषादा ,
अवगाहत अँग अँग आह्लादा ।
करि सम्पन्न सविधि सुख-मज्जन ,
जपन लगेउ जब ब्रह्म सनातन ,
लखेउ वारि कौतुक अभिरामा ,
शोभित शेष-वेष बलरामा ।
कमल-नाल-द्युति श्वेत अहीशा ,
शीश सहस फण, मणि प्रति शीशा ।
मंजुल नील वसन अँग धारे ,
राजत वारि कुण्डली मारे ।
कौतुक औरहु लखेउ सशंका ,
लसत श्याम संकर्षण-अंका ।
चक्रादिक शोभित भुज चारी ,
शिर सहस्र फणि-मणि-उजियारी ।
मरकत कान्ति शरीर विशाला ,
कटि पट पीत, बुद्ध वनमाला ।

दोहा :— तड़ित-पाल-मण्डित मनहुँ, सजल मेघ नभ माँह ,
उदित मनोरम शक्र-धनु, परी जमुन-जल छाँह । ७

विस्मय सुफलक-सुत मन बाढ़ा ,
 तजि जल चकित सरित तट ठाढ़ा ।
 अवलोके स्यंदन घनश्यामा ,
 बंधु समीप लखे बलरामा ।
 विभु-माया-विमुग्ध मति भोरी ,
 प्रविशेउ व्याकुल वारि बहोरी ।
 लखे बंधु-द्वय पुनि सरि-नीरा ,
 सोइ विभूषण, वेष, शरीरा ।
 लखे नाग नर किन्नर देवा ,
 रुद्र विरेचि करत हरि सेवा ।
 लखे सकल सनकादिक मुनिजन ,
 अञ्जलि-बद्ध करत गुण गायन ।
 पुलकेउ सुफलक-सुवन निहारी ,
 धायेउ स्यंदन दिशि तजि वारी ।
 गत मन-मोह, प्रीति नव जागी ,
 पदतल परेउ भक्त अनुरागी ।

दोहा :— बरनेउ यमुना-वृत्त सब, निज मन मोह सुनाय ,
 तोषेउ श्याम-सनेह लखि, पुनि पुनि हृदय लगाय । ८

उपजेउ कंस-नाश-विश्वासा ,
 हाँकेउ स्यंदन, उर उल्लासा ।
 मधुपुर दिशि आगे रथ धावा ,
 सन्मुख मोद विमुख दुख छावा ।
 गोकुल दिशि व्याकुल वनचारी ,
 श्यामहि रहे सशंक निहारी ।
 रुकेउ करिनि-करि वारि-विहारा ,
 रुकेउ सुमन भ्रमरन गुंजारा ।
 सोइ घनश्याम, सोइ रथ-घर्घर ,
 नर्तन-विरत शान्त शिखि तरुवर ।
 चकित कपोत करत नहि कूजन ,
 करत न कुट कुट कुकुट कूलन ।

हंसदु करत किलोल न नीरा ,
स्यंदन लखत विषण्ण, गँभीरा ।
बद्ध-विलोचन निरखत मृग-गण ,
निरखत सारस उन्नत आनन ।

दोहा :— तरु-शाखन निश्चल लखत, अपलक विहग समाज ,
पूछत मानहुँ मौन सब, 'जात कहाँ बजराज' ? ६

आवत इत विलोकि यदुनंदन ,
उमहेउ मधुपुर दिशि अभिनंदन ।
भरे विकच अंबुज-आमोदा ,
बहत अनिल सरि-सिक्त, समोदा ।
प्रणमत अवनत मस्तक तरुगण ,
करत सुमन-फल-अर्घ्य समर्पण ।
मंगल-कलश ताल-फल राजत ,
मार्ग-विटप प्रतिहार विराजत ।
श्रेणी-बद्ध व्योम बक छाये ,
स्वागत वंदनवार सजाये ।
पथ पाँवड़े सस्य मिस पारति ,
हास काँस मिस धरणी धारति ।
स्वरित वेगु-वन पवन-तरंगा ,
बंदी बरनत चरित प्रसंगा ।
नर्तत मोर, विहग मधु गावत ,
अलि-कुल मंगल-वाद्य बजावत ।

दोहा :— जनु प्रथमहि यहि ओर लखि, आवत हरि विश्वेश ,
वनदेवी आपुहि करति, स्वागत धरि बहु वेष । १०

निरखि प्रकृति-शोभा अभिरामा ,
बिसरेउ विरह, मुदित घनश्यामा ।
रथ सवेग अक्रूर चलावत ,
उड़त मनहुँ हय हरि मन भावत ।

लहरत ध्वज, फहरत पीताम्बर,
विखरति आनन अलक मनोहर ।
कर निवारि प्रभु केश सँभारत,
आवत बहुरि, बहुरि हरि वारत ।
मानत नहि, मुख-अंगुज छाये,
लुब्ध मधुप नहि उड़त उड़ाये ।
सुफलक-सुत मुरि निरखी शोभा,
आपुहि मधुप भयेउ मन लोभा ।
अरुभेउ उर सुरभेउ पुनि नाहीं,
कीट-भृङ्ग-गति भइ पल माहीं ।
रहेउ न रंचहु रथ-पथ-ध्याना,
जात कहाँ काहे नहि जाना ।

दोहा :— छवि-जलनिधि बूड़े नयन, लै इन्द्रिय मन साथ ,
खोयेउ भव सुफलक-सुवन, पाये हरि भव-नाथ । ११

धावत हय उत बिनु परिचालन,
आये दृग-पथ मधुपुर-उपवन ।
कोट कँगूरहु परे लखायी,
राजवाद्य-ध्वनि श्रुति-पथ आयी ।
जानि मनहुँ निज नाथ अवाई,
स्वागत करति पुरी हर्षायी ।
विविध भाँति सजि साज सिँगारा,
आतुर जनु पति-पंथ निहारा ।
पुर-प्राकार मनहुँ कटि किंकिणि,
पथ-जन-घोष मनहुँ नूपुर-ध्वनि ।
अञ्जलि विपिन-प्रसून ललामा,
अलि-स्वर स्वस्ति-पाठ अभिरामा ।
कलश उरोज, ध्वजा जनु अंचल,
सँभरत नाहि दरस-हित चंचल ।
उपवन वसन, भवन आभूषण,
धाम-छत्र जनु बेणी-बंधन ।

दोहा :— नवल नागरी मधुपुरी, शिर-प्रासाद उठाय,
झाँकति वातायन-द्वगन, गये प्राण-पति आय ! १२

लखि सन्मुख पुर विरमेउ स्यंदन,
उतरे अग्रज सह यदुनंदन ।
ब्रज-शकटहु पुनि परे लखायी,
आये गोपन सह नैंदरायी ।
भेंटे पुत्रन महर सप्रीती,
बिछुरे मनहुँ गये युग बीती !
अवसर लखि सुफलक-सुत ज्ञानी,
बोलेउ नैंद सन सविनय वारणी—
“ब्रज दिशि जब मोहिं कंस पठावा,
लावन कहेउ, न वास बतावा ।
उचित न रिपु-गृह रैन-निवासा,
उचित न वन एकाकी वासा ।
जदपि न कहूँ हरि-रामहिं भीती,
उचित न तदपि तजव नय-नीती ।
तुम वसुदेव सखा विख्याता,
वैसहि मानहु मम संग नाता ।

दोहा :— जानि मोहिं पितृव्य सम, बहुरि विलोकि सनेह,
स्वीकारहिं आतिथ्य हरि, निवसहिं निशि मम गेह ।” १३

सुनि प्रस्ताव श्याम मुसकाने,
नंद महर सुनि हृदय सकाने ।
सुफलक-सुतहिं जानि नृप-दासा,
उपजत नहिं नैंद मन विश्वासा ।
सोचि सहज राजन कुटिलाई,
रुखे वचन कहे नैंदरायी—
“सुतन-सहित मोहिं उत्सव-काजा,
पठै संदेश बोलायेउ राजा ।
करहु कृपा अब नृप ढिमु जायी,
देहु आगमन मोर जनायी ।

आवत जब जब मैं नृप पासा,
उतरत उपवन निरखि सुपासा।
बसि निशि यहि थल काल्हि प्रभाता,
अइहौ रंगभूमि मैं ताता !
इतनहिं चहहुँ स्वामि-सतिभाऊ,
रूठै सुतन संग नहिं राऊ।”

दोहा :— भयेउ विकल सुफलक-तनय, सुनत शिष्ट दृढ़ बैन,
पठयेउ हरि परितोषि पुर, गवनत छलके नैन। १४

देखि विपिन वट वृक्ष विशाला,
उतरे इत शकटन सँग ग्वाला।
मुदित महीरुह श्याम निहारी,
छाया सघन पंथ-श्रम-हारी।
विटप मनोज्ञ फलन सह कैसे,
पद्मराग युत मरकत जैसे।
अनिल-अकंपित, सहित बरोहा,
समाधिस्थ जनु मुनि कोउ सोहा।
तरुतल शिविर नंद निज डारे,
निवसे सुतन समेत सुखारे।
समय जानि हरि विनय सुनायी—
“देहु निदेश, लखहुँ पुर जायी।”
सुत-मंतव्य न नंदहिं भावा,
मन कुतर्क बहु, उर भय छावा।
चहत कहन, ‘नहिं’, कहि नहिं जायी,
“लौटेहु वेगि”—कहेउ सकुचायी।

दोहा :— परिचित मथुरा-वीथि-पथ, पुनि कछु गोप बोलाय,
पठये हरि-बलराम सँग, सुत-वत्सल नंदराय। १५

शैशव-चपल चले पुर ओरा,
गवनत जनु मृगराज-किशोरा।

सर समीप, उपवन वहि पारा ,
 लखे विपुल अंबर अंबारा ।
 वसन वर्ण बहु धोय सुखायी ,
 रजक अनेकन रहे तहायी ।
 अटके दृग लखि नृप-पट चीरा ,
 ठिठके लुब्ध सुग्ध आभीरा ।
 राज-रजक तहँ मगध-निवासी ,
 असुर पाप-मति अवगुण-राशी ।
 लाय मगध ते कंस बसावा ,
 हठी कुटिल भूपति मन भावा ।
 वसनन ढिग विलोकि बहु घोषा ,
 उठेउ दण्ड लै असुर सरोषा ।
 कहि कहि पुनि पुनि गोप गँवारा ,
 कीन्हेउ असुर व्यंग बौछारा ।

दोहा :— गोप-वृन्द विक्षुब्ध लखि, बरजेउ हलधर धाय ,
 कहे असुर सन हरि वचन, मनहीं मन मुसकाय— १६

“रजक-श्रेष्ठ तुम भूपति-प्रियजन ,
 देत तुमहिं मैं परिचय आपन ।
 मथुराधीश कंस मम मामा ,
 जात निमंत्रण लहि नृप-धामा ।
 मातुल ललित दुकूल निहारी ,
 मन अस होत लेहुँ अंग धारी ।
 राजसभा-उपयुक्त मनोहर ,
 पहिरावहु चुनि चुनि वर अंबर ।
 देहै भूप जो मोहिं उपहारा ,
 देहौ लौटत अंश तुम्हारा !”
 हँसेउ असुर कहि, “तुम जन नीचू ,
 काहे प्रलपि बोलावत मीचू ।
 बेचि दूध दधि घृत तुम माते ,
 जोरत फिरत नृपन संग नाते ।

सुनहि जो कोउ राजजन वाणी ,
होइहै पल महँ प्राणन हानी ।

दोहा :— ब्रुवत जिनहि नरपति डरत, कंस वसन ये सोय ,
माँगत तुम आभीर ते, आये कहँ मति खोय ?” १७

दर्प विलोकि कुपित बलरामा ,
कीन्ह विनोद बहुरि घनश्यामा—
“परिचय यद्यपि निज मैं दीन्हा ,
अब लगि नाहिं मोहिं तुम चीन्हा ।
पितु वसुदेव, देवकी माता ,
साँचहु नृप सँग मातुल-नाता ।
निवसहुँ नँद-गृह गोकुल ग्रामा ,
कृष्ण, कान्ह, हरि बहु मम नामा ।”
सुनत नाम खल उठेउ रिसायी ,
कहत व्यंग करि—“तुमहि कन्हाई !
डरत तुमहि ते नृपति हमारे !
तुमहि व्योम, केशी, बक मारे !
शूर सकल ये मोर सजाती ,
मिले आय भल तुम कुल-घाती ।”
यहि विधि जल्पत दण्ड उठायी ,
धायेउ असुर हरिहिं समुहायी ।

दोहा :— सजग श्याम तत्काल मुरि, गये प्रहार बराय ,
कराघात कीन्हेउ सबल, परेउ शीश महि जाय । १८

रजक असुर-अनुजीवी जेते ,
भागे भीत पुरी दिशि तेते ।
हाहाकार करत पथ जाता—
“गोप कृष्ण नृप-रजक निपाता !”
वृत्त तड़ित-नाति मधुपुर छावा ,
इत उत जुरि जन हर्ष जनावा ।

“कीन्हि कृष्ण”, कोउ कहत, “चढ़ाई,”
 कहत कोउ—“मिलि करहु सहायी।”
 सुनेउ वृत्त उद्धव कृतवर्मा,
 सात्यकि, जे जानत पुर-मर्मा।
 लखि अवसर पुरजनन प्रचारी,
 कंस-विरोध-बहि पुर जारी।
 हरि स्वागत हित मार्ग सँवारी,
 धाये दरस-तृषित नर नारी।
 उत लखि गोप रजक सब भागे,
 राखे पट समेटि हरि आगे।

दोहा :— पीत नील सुन्दर वसन, धारे हरि बलराम,
 वर्ण वर्ण पहिरे सखन, चुनि चुनि ललित ललाम । १६

लहि वर वसन मुदित आभीरा,
 पग पग लखत चलत मुरि चीरा।
 करि विनोद हरि सखन रिभावत,
 विहँसत राम, गोप सुख पावत।
 परेउ दृष्टि प्राकार विशाला,
 सुधा-धवल जनु महिधर-माला।
 परिखा दुर्गम वृत्ताकारा,
 मथुरा सलिल-वलय जनु धारा।
 तोरण श्वेत फटिक निर्माये,
 स्वर्ण-द्वार मणि-खचित सोहाये।
 निज कर-कमल राम-कर धारी,
 प्रविशे प्रमुदित पुर असुरारी।
 लखेउ राज-पथ सन्मुख सोहत,
 जगमग मणिन विपणि मन मोहत।
 महल विशाल शैल अनुहारी,
 विविध सभा-गृह, भवन, अटारी।

दोहा :— छादित वर तरु-राजि पथ, संवृत लता-प्रतान,
 खग कूजत छाया सघन, पिक गावत कल गान । २०

सुनत पुरी प्रविशे ब्रजराजू,
 धाये पुरजन तजि सब काजू ।
 घिरि दिशि दिशि ते दरस-पियासी,
 उमही राजमार्ग जन-राशी ।
 युवतिन-यूथ गवाक्षन छाये,
 पंथ प्रतीक्षत पलक बिछाये ।
 जैसेहि प्रभु पुर-पथ पगु धारा,
 उठेउ गूँजि दिशि दिशि जयकारा ।
 मंगल खील भरे सब ओरा,
 बरसे सुमन न ओर न छोरा ।
 मूर्ति मनोहर मृदुल निहारी,
 जनु छवि-पाश-बद्ध नर-नारी ।
 बिसरे देह गोह भव-पाशा,
 कंस अनीति, असुर दुख-त्रासा ।
 मोहे मोहन रँग रस-राते,
 मधुकर निकर मनहुँ मधुमाते ।

दोह । — जे जहँ अचल अवाक तहँ, अपलक रहे निहारि,
 राखे लिखि जनु चित्रपट, लक्ष लक्ष नर-नारि । २१

उठत चरण हरि-चरणन साथ,
 विरमत, लखि विरमे ब्रजनाथा ।
 जेतिक पुर-मग धरत श्याम-डग,
 गिनि जनु तेतिक चलत लोग पग ।
 करि सर्वस्व ब्रजेश अधीना,
 भये पौर जनु निज गति हीना ।
 सहजहि विश्व-विमोहन-हारे,
 मुद्रा पुनि जन-रंजनि धारे ।
 निकसत पथ अरि मित्र उदासी,
 रंक राजजन यति संन्यासी,
 आनंद-कंद मंद मुसकायी,
 चितवत जैसेहि जात बिकायी ।

निकसेउ राजमार्ग नृप-माली,
भूलेउ भव विलोकि वनमाली ।
पद जनु गड़े, नयन अनुरागे,
शशि-मुख अड़े, दरस-रस पागे ।

दोहा :— लखि प्रति पल कमनीय छवि, पुलकेउ मालाकार,
पहिराये वनमालि-गर, नृप-हित-निर्मित हार । २२

ताही समय कंस नृप-दासी,
कुब्जा छवि यौवन-रस-राशी,
निकसी लिये नृपति-अनुलेपन,
मृगमद कुंकुम सुरभित चंदन ।
निरखि भीर हेरी हरि ओरा,
अटके शशि-मुख नयन चकोरा ।
सरिता-ढरनि ढरी अतुरानी,
उमहि बही, छवि-सिन्धु समानी ।
उर-प्रसून शत शत खिलि फूले,
हरि-छवि-दोल प्राण जनु भूले ।
कब कर उठेउ, लीन्ह कब चंदन,
कीन्हेउ श्यामल अँग कब लेपन,
कीन्ह पत्र-रचना केहि भाँती,
जानी तिय न रूप-रस-माती ।
कृपा दृष्टि हरि तेहि दिशि फेरी,
विहँसे लखि त्रिवक्र नृप-चेरी ।

दोहा :— चापि तासु पद निज चरण, अँगुरी चिबुक लगाय,
कौतुक उचकावत भयी, निमिष माँहि अष्टजु काय । २३

पुण्यस्पर्श पुलक तनु छावा,
रस-पीयूष वाम अन्हवावा ।
आनँद अँग अनवद्य निहारी,
हरि मुसकात, लाज-नत नारी ।

पुनि पुनि बंदि चरण सुखदायी ,
गवनी तन-मन-कलुष नसायी ।
चमत्कार निज नयन निहारा ,
इत उत पुरजन वचन उचारा—
“प्राकृत नर न बंधु ये दोऊ ,
मनुज रूप धृत सुर ये कोऊ ।
आकृति अति गंभीर कल्याणी ,
दिव्य हास, गति, वीक्षण, वाणी ।
प्रासादिक पावन अनुभावा ,
प्रजा-पुण्य जनु तनु धरि आवा ।
पय-मुख जबहिं पूतना नासी ,
ये ही अघ, बक, वत्स-बिनासी ।

दोहा :— नृणावर्त, केशी बधे, व्योमासुर बलवान ,
मृत्यु निमंत्रित कीन्हि नृप, बधिहैं होत विहान ।” २४

पूछत कोउ, “काज का आवा ,
जो नृप इनहिं निमंत्रि बोलावा ?”
कहत कोउ जो जाननहारा—
“धनुष-यज्ञ मिस कंस हँकारा ।
शूल समान रहे उर शाली ,
करिहै खल कछु काल्हि कुचाली ।”
कोउ कह, “ये सचराचर स्वामी ;
जानत जन-मन अन्तर्यामी ।
कृत-निश्चय आये पुर माहीं ,
बचिहै कंस कियेहु छल नाहीं ।
विचरत मथि पुर सिंह समाना ,
प्रति पद नृपहिं समर-आह्वाना ।
रजक निपाति नृपति-पट धारा ,
विलसत वत्त महीपति-हारा ।
भूप विलेपन भाल सोहावा ,
नृप ते बढि पुर स्वागत पावा ।

दोहा :—अबहीं ते मथुराधिपहि, विक्रम-विरहित जानि,
राज-चिह्न जनु ये सकल, रहे हरिहि सन्मानि ।” २५

कहत अन्य पुरजन मतिमाना—
“मानत हम ये विभु भगवाना ।
पै जब जब प्रभु नर-तनु आवत,
निज पुरुषार्थ नरहु प्रकटावत ।
सहत अधर्म जो विनु प्रतिकारा,
ईशहु देत न ताहि सहारा ।
ताते कहहुँ तजहु कदराई,
कंस अनीति न अब सहि जायी ।
मगध-माण्डलिक भूप हमारा,
नासे आर्य धर्म आचारा ।
धनी असुर, वैभव नृप-धामा,
प्रजा रंक, क्रंदन प्रति ग्रामा ।
भयेउ पाप-मय मथुरा-राजू,
कातर रहि हम कीन्ह अकाजू ।
लीन्हि दैव-सुधि इनहि पठावा,
होहु सहाय मिटहि दुख-दावा ।”

दोहा :—यहि विधि नर बतरात पथ, कुपित चढ़त भ्रू-चाप,
बरसि सुमन पुर-नारि उत, करत मधुर आलाप — २६

इन्द्र-उपेन्द्र कहत ये कोऊ,
नर-नारायण कोउ कह दोऊ ।
कोउ कह—“राम-लक्षण वपु धारा,
धनु-भंजन हित पुनि अवतारा ।
निरखन हित नृप-धनुष कठोरा,
लखहु जात ये मख-गृह ओरा ।”
कोउ कह—“ये वसुदेव-कुमारा,
छवि-निधि अन्य न अस संसारा ।
कंस-त्रास वसुदेव दुराये,
बसि गोकुल नैद-तनय कहाये ।

क्रीडत ग्राम गोप-सुत संगे ,
जानेउ इन निज जन्म-प्रसंगा ।
पितुहि नृपति बंदी-गृह डारा ,
आये सुनत करन उद्धारा ।
नील क्षौम शशि-तनु अभिरामा ,
रोहिणि-सुवन सोइ बलरामा ।

दोहा :— पीत क्षौम, मणिइन्द्र द्युति, तरल तिरीछे नैन ,
शीर्ष शिखण्डक श्याम सोइ, मंदस्मित मधु बैन । २७
मूर्ति मधुर रस-सार दोउ, मदन-मनोहर वेष ,
लखहु अशंक मृगेन्द्र सम, मख-महि करत प्रवेश ।” २८

वचन रसाल कहत पुर-बाला ,
पहुँचे उत केशव मख-शाला ।
लखेउ धनुष गृह-मध्य विशाला ,
जनु प्रसुप्त भुजगेन्द्र कराला ।
सुमन-अलंकृत सोहत कैसे ,
जलधर इन्द्र-धनुष सह जैसे ।
भीषण रम्य शरासन धेरे ,
फिरत चतुर्दिक असुर धनेरे ।
आकृति परुष, वेष विकराला ,
अस्त्र-शस्त्र-धृत मानहुँ काला ।
पृछेउ तिन-समीप प्रभु जायी—
“धरेउ धनुष केहि हेतु सजायी ?”
सुनत खलन गांभीर्य गँवावा ,
व्यंग वचन कहि हरिहि सुनावा—
“निवसत तुम गँवार केहि देशा ,
जानत जो न धनुष-उद्देशा ?

दोहा :— विश्व-विदित मथुरेश-धनु, पूजत नित नृप आय ,
लखेउ न अब लागि वीर हम, स्वल्पहु सकै नवाय । २९

शूर-शिरोमणि असुर-समाजू,
 तिन महुँ अग्रगण्य मगराजू ।
 सकेउ नवाय न सोउ जब चापू,
 करत पोच नर वृथा प्रलापू ।
 सुनेउ कंस अब गोकुल ग्रामा,
 उपजेउ कोउ कृष्ण बलधामा ।
 गोप-गँवारन महुँ यश पावा,
 कहत गोवर्धन शैल उठावा ।
 काल्हि प्रभात रंग-महि आयी,
 लखिहै भूपति तासु शुराई ।”
 सुनि उपहास कुपित पुरवासी,
 धायी असुरन-दिशि जन-राशी ।
 बढे अमर्षी असुरहु तत्क्षण,
 लखे श्याम पुर विसव-लक्षण ।
 धैर्य-सिन्धु हरि अवसर चीन्हा,
 सत्वर गमन धनुष दिशि कीन्हा ।

दोहा :— असुर-वृन्द तजि पुरजनन, आवहि जब लागि धाय,
 सुमन-चाप सम वज्र-धनु, सहसा लीन्ह उठाय । ३०

लता सदृश मौर्वी गहि हाथा,
 कर्षी अनायास ब्रजनाथा ।
 सहि नहिं सकेउ शक्ति-पति कर्षण,
 टूटेउ इच्छु समान शरासन ।
 वज्र-कठोर रोर पुर व्यापा,
 अँग प्रस्वेद, कंस उर काँपा ।
 बरसे सुमन सुरन मनमाने,
 लखि बल-विक्रम असुर सकाने ।
 पुरजन कीन्ह महत जयकारा,
 सोवत असुरन मनहुँ प्रचारा ।
 पुनि पुनि करि उन्मत्त प्रलापा,
 घेरेउ श्यामहि खलन सदापा ।

प्रजाजनहु असुरन पछियावा ,
हरि समुभाय तिनहिं बिलगावा ।
चाप-खण्ड गहि पुनि दोउ भाई ,
हनन लगे असुरन समुहायी ।

दोहा :— रिस-रंजित मुख-श्री ललित, कलित कुटिल भ्रू-चाप ,
अनल रूप खल हेतु जो, हरत भक्त-भव-ताप । ३१

असुरहु कीन्ह शस्त्र-बौझारा ,
शैल-शिखर जनु पावस-धारा ।
तोमर, प्राश, शक्ति बरसायी ,
बाण-समूह समर-महि छायी ।
राम-श्याम अरि वार बरावत ,
शत्रु-समूह धँसत, हठि धावत ।
हरि हुंकरत हनत धनु-खंडा ,
राम मुष्टिकाघात प्रचण्डा ।
घोर प्रहार, कुपित हरि हलधर ,
उठि नहिं सकत असुर गिरि महि पर ।
यम सम खलन बंधु दोउ लागे ,
रण महि त्यागि विकल बहु भागे ।
घेरेउ पुरजन जान न दीन्हा ,
करि करि अंग भंग वध कीन्हा ।
राम - श्याम - पुरजन - कोपागी ,
जरे शलभ सम असुर अभागी ।

दोहा :— हत-रिपु, परिवृत पौरजन, शोभित भये ब्रजेश ,
मेघ-मुक्त, नखतन सहित, राजत जनु राकेश । ३२

लखेउ श्याम ढरि चलेउ दिनेशा ,
सकुचे सुमिरि नंद-आदेशा ।
उपवन दिशि गवने ब्रज-नंदन ,
जय ध्वनि करत चले सँग पुरजन ।

नेह-उदधि मधुपुर लहराना ,
बहे, न काहु धाम-धन-ध्याना ।
पुर-प्रवेश-द्वारहु करि पारा ,
फिरी न जब जन राशि अपारा ,
पुनि पुनि कहि मृदु मंजुल वाणी ,
फेरन चहेउ सबहिं सुखदानी ।
सुनि जन रुके, बढे नहिं आगे ,
निश्चल चरण, नयन सँग लागे ।
डगमग मार्गभ्रष्ट जन-नैया ,
मध्य धार जुनु तजी खेवैया ।
लखि हरि जात हृदय अवसादू ,
लहत तोष करि करि जय नादू ।

दोहा :— भये प्रकट तेहि थल तबहिं, उद्धव अति मतिमान ,
धारे सैनिक वेष सँग, कृतवर्मा, युयुधान । ३३

जाय जनन ढिग कह समुभायी ,
कंस कुवृत्ति कपट चतुराई—
“धावहि चढ़ि न रैन कहुँ दुर्जन ,
रच्छहु हरिहिं धेरि पथ उपवन ।
हति तुम आजु यज्ञ-गृह असुरन ,
दीन्ह महीपहिं समर-निमंत्रण ।
धरि पद राज-द्रोह पथ माहीं ,
सकत लौटि पाछे कोउ नाहीं ।
धरा धाम सुत वित तिय त्यागी ,
बुधजन करत यत्न जय लागी ।
श्याम-हाथ जय प्रात हमारी ,
रहि निशि सजग करहु रखवारी ।
सकहिं ससुख हरि हलधर सोयी ,
करहु न रव, ढिग जाहु न कोई ।”
औरहु बोध वचन बहु भाखे ,
ठाँव ठाँव उद्धव जन राखे ।

दोहा :— व्यूह-बद्ध जन कंस-भय, राखेउ हरिहि दुराय ,
सम-रिपुशशि लखि जिमि कमल, मुँदि अलि लेत लुकाय ३४

यहि विधि नगर-कथा सब गाथी ,
कंस-वृत्त अब कहहु सुनायी ।
तजि अक्रूर बंधु दोउ उपवन ,
हाँकेउ राजभवन दिशि स्यंदन ।
उर न शान्ति, पथ सोचत जाहीं—
अघ अब कवन कंस मन माहीं ?
हरि-हलधर वध हित नरनाहा ,
राखेउ रचि प्रपंच धौ काहा ?
निज छल जो खल देहि बतायी ,
लहहुँ पुण्य यश हरिहिं चेतायी ।
यहि विधि सोचत नृप ढिग आवा ,
राम श्याम आगमन जनावा ।
हुलसेउ सुनि उर, पुलकेउ सब तन ,
निकसेउ कंटक मनहुँ पुरातन ।
उठि धायेउ, गहि हृदय लगावा ,
बरबस सँग आसन बैठावा ।

दोहा :— पुनिपुनि कहि 'पितृव्यमम', दीन्हेउ बहु सन्मान ,
अवसर लखि भाषी गिरा, सुफलक-सुवन सुजान— ३५

“ग्राम्य बाल वसुदेव-कुमारा ,
अबहुँ अबोध, सुमन-सुकुमारा ।
विलपे दोउ तजत नँद-नारी ,
आये पथ मोचत हग वारी ।
चहहु तौ असुर पठै कछु राती ,
आजुहि उपवन देहु निपाती ।”
सुनत वचन सुफलक-सुत केरा ,
जागेउ जनु शठ संशय-प्रेरा ।
लखि अक्रूरहिं तीखे नयनन ,
चाहत करन मनहुँ मन मंथन ।

गवनेउ जब यह उर न उल्लाहा,
रहेउ प्रकटि अब प्रीति अथाहा ।
रिपु सँग रचि कुचक्र कछु घोरा,
चाहत लेन मर्म अब मोरा ।
थिर न छिनहु घन-आकृति जैसे,
प्रति पल अन्य मनुज-मन तैसे ।

दोहा :— नेही, विश्वसनीय चिर, कोऊ नहि संसार,
मित्रहु ते रिपु सम सजग, यह नय-नीतिन-सार । ३६

कीन्हे कंस प्रलाप घनेरे,
पूछे कुशल-प्रश्न बहुतेरे ।
बरने विविध देश वन ग्रामा,
लीन्ह न पुनि हरि हलधर नामा ।
जब प्रसंग अक्रूर उठावा,
कहि कछु सौम्य नरेश बरावा ।
रच्छत भेद मौन जन धारी,
दुर्जन वाक्य-जाल विस्तारी ।
उर विष, नेह नयन बरसावत,
अधर हास, मधु बदन बहावत ।
लखि लखि सुफलक-सुत मन आवा,
शठ अस अन्य न विधि निर्मावा ।
बीछी पूँछ, सर्प मुख माहीं,
नहिं खल अंग जहाँ विष नाहीं ।
गये गेह अक्रूर उदासा,
मन अति खिन्न, न पूजी आशा ।

दोहा :— इत जब बुद्धि सराहि निज, रहेउ कंस मुसकाय,
पुर हरि स्वागत वृत्त सब, कहेउ गुप्तचर आय । ३७

सुनत सकानेउ शठ संवादू,
तर्क बितर्क करत सविषादू—

सुफलक-सुत मोहिं सन छल कीन्हा ,
 मम उर भाव अरिहिं कहि दीन्हा ।
 करि मंत्रणा संग खल लावा ,
 पुनि मम मर्म लेन ढिग आवा ।
 शिशु अबोध नहिं ये दोउ भ्राता ,
 ये नय-निपुण, अनागत-ज्ञाता ।
 गोकुल ते आये असहायी ,
 लीन्हेउ प्रविशत पुर अपनायी ।
 सोचत यहि विधि कंस मनहिं मन ,
 परेउ धनुष-भंजन-रव श्रवणन ।
 होय शान्त जब लगि उर-कंपन ,
 सुनेउ, हतेउ असुरन हरि-पुरजन ।
 लहेउ वृत्त पुनि, उद्धव-प्रेरे ,
 रच्छत जन अरि उपवन घेरे ।

दोहा :— सुने उत्तरोत्तर सकल, वज्र-कठोर प्रसंग ,
 रोमांचित सस्वेद नृप, रहेउ काँपि प्रत्यंग । ३८

केतनहु शठ अशक्त असहायी ,
 सक्त्त न शाठ्य कबहुँ बिसरायी ।
 निर्बल श्वानहु दशन-विहीना ,
 धावत काटन वृत्ति-अधीना ।
 असुर मल्ल मुष्टिक जग नामो ,
 वैसहि चारणूरहु बल-धामा ।
 लखी न महि जिन कबहुँ अखारे ,
 कंस क्रूर निज भवन हँकारे ।
 कहेउ प्रपंच तिनहिं समुझायी ,
 रंग-भूमि जेहि हेतु बनायी—
 “यह नहिं मल्ल-युद्ध साधारण ,
 चहहुँ सयुक्ति शत्रु-संहारन ।
 रिपु-वय, वेष, वंश बिसरायी ,
 समर नियम मर्याद विहायी ,

करि बल कौशल छल चतुराई,
हतहु आततायी दोउ भाई ।

दोहा :— युगम-युद्ध महँ काल्हि जो, हरहु शौरि-सुत प्राण ,
दैं निज सँग आसन सभा, करिहौँ आपु समान ।” ३६

मल्लन भरि उत्साह पठावा ,
हस्तिप बोलि निदेश सुनावा—
“काल्हि कुबलयापीड़ सकारे ,
राखहु रोपि रंग-गृह द्वारे ।
रातिहि ते बहु मद्य पियायी ,
करहु मत्त दुर्धर गजरायी ।
आवहि राम कृष्ण दोउ भ्राता ,
जबहि रंगमहि-द्वार प्रभाता ,
प्रेरि प्रमत्त मतंग दुरन्ता ,
निमिषहि माहिं करेहु अरि अन्ता ।”
करि बहु गज गजपाल प्रशंसा ,
पठयेउ दैं धन कंस नृशंसा ।
कीन्हेउ सब, संतोष न आवा ,
हरि-आतंक हृदय मन छावा ।
पुनि पुनि लेत उष्ण निःश्वासा ,
गवनेउ सभय कंस रनिवासा ।

दोहा :— फूली संध्या, भानु-मुख, अवज्रत लखि निज काल ,
बूड़ेउ पश्चिम वारिनिधि, पतन-सलज्ज विहाल । ४०

गिरत जलधि जल-विन्दु उछारे ,
बिखरे सोइ व्योम जनु तारे ।
लखि जनु सखि संध्या अवसाना ,
धृत निशि दुखित तिमिर-परिधाना ।
क्रम क्रम विगलित उदय-ललाई ,
परेउ निशापति-विम्ब लखायी ।

“ये दोउ बाल दिव्य बलधारी,
कैसेहु कोउ सकत नहिं मारी !”
पहुँचेउ शयन-गोह अकुलायी,
परेउ तहँहु सोइ शब्द सुनायी ।
बैठत, उठत, नीद नहिं आवति,
श्रुति सोइ गिरा त्रास उपजावति ।

दोहा :— भूपकी पलक प्रभात कछु, दिखे स्वप्न हरि आय ,
नख शिख रौद्र स्वरूप लखि, जागेउ खल भय खाय । ४५

अँग प्रकम्प भागेउ अकुलायी,
गिरेउ भूमि पर्यंक विहायी ।
परेउ दिखाय कतहुँ कोउ नाहीं,
उठेउ सलज्ज स्त्रीभ मन माहीं ।
प्राची दिशा भयी कछु लाली,
हतेउ तमस-गज रवि बलशाली ।
अरुण नखन करि-कुंभ विदारा,
बही क्षितिज जनु शोणित धारा ।
उदित सहस्ररश्मि मनहारी,
गोल प्रवाल-पिण्ड अनुहारी ।
भाव न सौम्य कंस उर जागा,
काल-घंटिका सम रवि लागा ।
जांघिक नियति बजाय बजायी,
आयु-शेष जनु रही सुनायी ।
किरण-राग-परिस्त्रावित प्राची,
नृप-दृग रक्त-सरित सम नाची ।

दोहा :— खिलेउ कमल, झूलेउ अलिहु, डोली शीतल वात ,
मरणासबहि पै कबहुँ, भयेउ कि मधुर प्रभात ? ४६
बलवति जीवन-अस पै, उर उर बसति अशेष,
मज्जन करि लागेउ सज्जन, रँग-महि हेतु नरेश । ४७

उत पुरजन-परिवृत ब्रजरायी,
सोय विपिन सुख रैन बितायी ।

वादत वाद्य लोग अनुरागे,
 मधुर मंद ध्वनि सुनि हरि जागे ।
 सचकित पुनि ब्रजपति कल्याणी,
 सुनी प्रगल्भ विप्रजन-वाणी ।
 तजि सुमेरु प्राची दिशि आयी,
 उदित दिनेश भुवन-सुखदायी ।
 तमस-असुर हति, हरि शशि-शासन,
 बसेउ भानु उदयाद्रि-सिंहासन ।
 उडुगाण क्षीण, कुमुद श्री-हीना,
 अंध उलूक तेज-हत, दीना ।
 कुवलय-दल कपाट कर-किरणन,
 खोलि विमुक्त किये रवि अलि-गण ।
 मिली अवलि अलि फूलन साथी,
 गाय भुलावति कारा-गाथा ।

दोहा :— चक्रवाक युग्महु मिलेउ, भरेउ भुवन नव प्राण,
 कलरवमिस रवि-यश विमल, खगकुल करत बखान । ४८

गिरा गँभीर श्रवण-सुखदायी,
 इंगितज्ञ हरि मन अति भायी ।
 गवने मज्जन-हित प्रभु सस्मित,
 लखि उपकरण वारि पुनि विस्मित ।
 फटिक-पीठिका पुरजन लायी,
 हेम-कलश घट धरे सजायी ।
 शीतल सुरभित सलिल निहारी,
 पुलके जन-वत्सल असुरारी ।
 सुखस्नान निशि तंद्रा नासी,
 नीलस्निग्ध कान्ति तन भासी ।
 तिलक भाल, भुज-वच्च विलेपन,
 अंग युगल पट पीत विभूषण ।
 नित-चर्या निवृत्त ब्रजनाथा,
 गये महर ढिग अग्रज साथी ।

करि प्रणाम नंदहिं समुभावा,
गोपन सँग रँग-गेह पठावा।

दोहा :— शिविर-द्वार प्रकटे बहुरि, जनु रवि उदित द्वितीय,
प्रणत प्रजाजन मूर्ति लखि, तेज-मुञ्ज, कमनीय । ४६

भाषे आशिष-वचन विप्रजन,
भयेउ चतुर्दिक पुष्प प्रवर्षण।
भेरी, श्रृंग, शंख-रव व्यापे,
जय-ध्वनि तुमुल मही-नभ काँपे।
हर्षित लखि जन-ओज अपारा,
हरि पग रँग-अवनि-पथ धारा।
प्रभु गवन्त गवने बलवीरा,
वदन दृढ, गति उद्धत धीरा।
जन जल निधि जनु उठी हिलोरा,
बही अबाध रँग-महि ओरा।
काल्हि कंस-पद-दलित समाजू,
गवन्त आजु मनहुँ मृगराजू!
महत जनहि सद्गुण उपजावत,
हिमवंतहि सुर-सरित बहावत।
सुने सकल उत कंस प्रसंगा,
रिपु-प्रयाण, पुरजनन उमंगा।

दोहा :— हृदय भीति, मुसकान मुख, गुप्त कवच युत देह,
परिवृत सेनप आसजन, प्रविशेउ नृप रँग-गेह । ५०

भाषेउ प्रतीहार—“नरराजू” !
उठेउ राज-अनुजीवि समाजू।
मंच विशाल हेम निर्मावा,
मणि-मंडित नृप हेतु बनावा।
लहरत भव्य दुकूल-विताना,
विशद गगन-सरि फेन समाना।

पर्यंकिका शुभ्र मनहारी ,
निवसेउ नृप बंदन स्वीकारी ।
भूप-समीपहि मंत्रिन आसन ,
मंत्रिन ढिगहि प्रधान राजजन ।
सजि सजि निज निज देशन साजा ,
राजत विपुल माण्डलिक राजा ।
तिन पाछे ब्रज, ग्राम, गोष्ठ-पति ,
अंत, रिक्त जन-मंचन-संहति ।
सुघटित रँग-महि वृत्ताकारा ,
मध्य मल्ल-व्यायाम अखारा ।

दोहा :— गंध-सिक्त मृदु मृत्तिका, भ्रमत मल्ल बलवान ,
ठोंकि ठोंकि भुज-दण्ड युग, गरजत सिंह समान । ५१

रंग-भूमि लखि नृप अनुरागा ,
गर्व प्रसुप्त बहुरि उर जागा ।
लखत चतुर्दिक नंदहिं चीन्ही ,
भृकुटी कुटिल कंस निज कीन्ही ।
रिस लखि भीति महर-मन छाथी ,
पल पल बढ़ी हृदय-विकलाई ।
चितये चहुँ दिशि धीरज खोथी ,
दिखेउ न कतहुँ सहायक कोई ।
लखे बहुरि मुष्टिक-चाणूरा ,
एक ते एक क्रूर नृप-शूरा ।
हहरेउ हृदय, भरेउ दग पानी ,
सोचत आजु भयी सुत-हानी ।
सुमिरत श्याम-चरित उर आशा ,
भलकी वदन विजय-अभिलाषा ।
भयी तबहिं हरि-जय-ध्वनि द्वारे ,
गरजे मल्लहु तरजि अखारे ।

दोहा :— शमित शब्द-संहति सकल, व्यापी गज-चिग्धार ,
अड़ेउ कुलयापीड पथ, रोकि रंग-गृह-द्वार । ५२

पशु-बल चलति कंस-प्रभुताई ,
 तासु प्रतीक मनहुँ गजरायी ।
 चरुचि शत्रु-छल हलधर भाखा ,
 “प्रकट प्रकट, नृप गज पथ राखा ।”
 लखि करि सन्मुख शैलाकारा ,
 रुकी निमिष जन-राशि अपारा ।
 अकस्मात करि गर्जन घोरा ,
 धाये सात्यकि वारण ओरा ।
 शत-शत, सहस-सहस पुनि धाये ,
 लक्ष-लक्ष जन शस्त्र उठाये ।
 शिलाखण्ड लै कोऊ धावा ,
 बड़े लोग गहि जो जहँ पावा ।
 गूँजेउ दिशि दिशि शब्द भयंकर ,
 “मारहु चूर्ण चूर्ण करि कुंजर ।
 तोरि फोरि रँग-महि धँसि धावहु ,
 हतहु असुर, खल कंस नसावहु !”

दोहा :— लखी कान्ति विकराल प्रभु, रोकेउ हस्त उठाय ,
 उद्धव-शासित जन-उदधि, थमेउ नुब्ध हहराय । ५३

लखत लोग रण-मत्त अधीरा ,
 बड़े आपु गज-दिशि यदुवीरा ।
 परिकर पीत उठेउ फहरायी ,
 भाल लता कुंतल छवि छायी ।
 सहज सौम्य मुख भयेउ कठोरा ,
 जागेउ रौद्र तेज तनु घोरा ।
 दमके पुण्डरीक हग डोरे ,
 लाल सुरंग रोष-रस बोरे ।
 पट कटि बद्ध, संयमित केशा ,
 प्रकटेउ नरसिंह वेष ब्रजेशा ।
 ललकारेउ गजपाल सरोषा ,
 भरेउ भुवन नीरद-निर्घोषा ।

जन-राशिहु पुनि गरजि प्रचारा,
‘मारु ! काटु !’—ध्वनि भयी अपारा ।
सुनि अंकुश करिपाल सँभारा,
तमकि नाग-कुंभस्थल मारा ।

दोहा :—मद-मैरेय-प्रमत्त गज, कुछ अंकुशाघात,
भपटेउ चिग्वारत प्रबल, जनु लय-भँभावात । ५४

उठी शुण्ड जनु भुजग भयंकर,
हरिहिं हठात लपेटेउ कुंजर ।
जब लागि पदतल सकहि चपायी,
छूटे प्रभु वेष्टन निपुचायी ।
उछरे तड़ित-वेग ब्रजनाथा,
मुष्टिक वज्र हनी गज-माथा ।
छायेउ ‘जयति कृष्ण’—रव भारी,
छायी हग गजेन्द्र अधियारी ।
सतत कौतुकी हरि मुसकायी,
रहे द्विरद-पद-मध्य दुरायी ।
अंध, क्रोध-बंधुर गजराजू,
सूँघत, धरन चहत ब्रजराजू ।
पुनि पुनि ढूँढत शुण्ड भँवायी,
मुरत, जात हरि घात बचायी ।
जस जस भ्रमि प्रभु करत निवारण,
तस तस खीभि फिरत नृप-वारण ।

दोहा :—गड़गड़ात मदकल भ्रमत, चकाकार गजेन्द्र,
मथत सुधा वारिधि फिरत, जनु मंदर शैलेन्द्र । ५५

सहसा भपटि सुपर्ण समाना,
पकरी द्विरद-वाल भगवाना ।
चहेउ लपेटन शुण्ड भँवायी,
गही सकौतुक सोउ ब्रजरायी ।

धूम्र कुंजर संग घुमायी ,
 गिरेउ भूमि हस्तिप असहायी ।
 मिलेउ न खलहि पलायन-योगू ,
 छिन्न-भिन्न अँग मारेउ लोगू ।
 उत हरि पटकेउ भूमि मतंगा ,
 वहेउ रक्त कुम्भस्थल भंगा ।
 मौक्तिक बिखरि नाग-अँग छाये ,
 शोणित-रंजित अरुण सोहाये ।
 नभ जनु निशा शारदी तारे ,
 संध्या-राग-सिक्त अरुणारे ।
 यद्यपि वारण प्राण विहाला ,
 उठेउ सरोष तबहुँ विकराला ।

दोहा :— दुर्निवार, दारुण द्विरद, भयद कुम्भ-थल दीर्घ ,
 प्रलय-जलधि-संघात जनु, गिरिवर शृंग विशीर्ष । ५६

धायेउ सिन्धुर पुनि चिगधारी ,
 रहे अचल निज थल असुरारी ।
 आवत ढिग मत्तेभ दुरंता ,
 शुण्ड वराय गहेउ हरि दंता ।
 व्याप्त वीर रस, उछरि अधीरा ,
 दंत अपर पकरेउ बलवीरा ।
 अडे सरोष युगल भट भारे ,
 भटके हठि गजदंत उपारे ।
 गरजि अशंक सिंह अनुहारी ,
 मुष्टिक निष्ठुर हलधर मारी ।
 केशव-दंताघात प्रचंडा ,
 गिरेउ भूमि करि जनु गिरि-खंडा ।
 दीन्हेउ उठन न पुनि भगवाना ,
 पद-आघात हरे गज प्राणा ।
 महि-नभ विजय-दुन्दुभी बाजी ,
 धाये जन रँग-महि दिशि गाजी ।

दोहा :— वदन विकीर्ण श्रमाबु-कण, रक्त-सिक्त पट देह ,
धरे कंध सिन्धुर-रदन, प्रविशे हरि रँग-गोह । ५७
कोलाहल कल्लोल करि, गरजत 'जय ब्रजनाथ',
धँमेउ रंग जन-चारिनिधि, हहरि लहरि हरि साथ । ५८

रौद्र प्रजा आघात कराला ,
उठी समूल काँपि रँगशाला ।
जन-पदतल लखि शासन ध्वंसा ,
काँपिउ नख-शिख कंस नृशंसा ।
विहँसे हरि विलोकि कदराई ,
चितये उद्धव दिशि मुसकायी ।
प्रभु मति-गति उर जानन हारे ,
मंचन जन उद्धव बैठारे ।
जैसेहि शान्त भयेउ रव घोरा ,
दृग लाखन हेरे हरि ओरा ।
भृकुटि-भंग मुख मंजुल राजत ,
जनु रस वीर शान्त रस भ्राजत ।
श्याम कंठ, रिस-लोहित लोचन ,
जनु शिव अपर त्रिपुर-मद-मोचन ।
त्रस्त राजजन असुर समाजू ,
जनु हरि मूर्तिमंत यमराजू ।

दोहा :— नाची पुनि सोइ कंस-दृग, स्वप्न-मूर्ति विकराल ,
भयेउ अंध निर्वाक नृप, लखि सन्मुख निज काल । ५९

अमात्यन-इंगित पायी ,
मुष्टिक हरिहिं सुनायी ।
युगल तुम वीर-प्रवाला ,
उसुनि यश महत भुआला ।
नेदेश दोउ उतरि अखारे ,
युग्म-रण साथ हमारे ।
श्रेष्ठ हम महुँ चारणूरा ,
ग्वाल-गण तुम कहँ शूरा ।

युद्धहु तेहि सँग उतरि अखारा ,
मम सँग हलधर बंधु तुम्हारा ।
प्रजा-धाम, धन, महि, सुत, दारा ,
बल, कौशल भूपति-हित सारा ।
ताते शिर धरि नृप-आदेशा ,
करहु मल्ल-महि वेगि प्रवेशा ।”
अस भाषत हलधरहिं प्रचारा ,
जनु निज कालहिं खल ललकारा ।

दोहा :— प्रभु-समीप चारणूरह, गयेउ ठौंकि भुज-दण्ड ,
देखि हरिहि निज थल अचल, बोलेउ वचन प्रचण्ड । ६०

“नृप-निदेश कोउ सकत न टारी ,
रहेउ काह खल ! सोचि विचारी ।
भंजि शरासन, हनि गजराजू ,
प्रविशेउ रंग मनहुँ मृगराजू ।
सुनि जय-जय उपजेउ अभिमाना ,
शूर-शून्य शठ ! सब जग जाना ।
अब विलीन बल, दर्प, घमंडा ,
सकुचत उर लखि मम भुजदंडा ।
कहत मूढ़ तोहिं विभु अवतारा ,
सुनि सोइ मैं रण-हेतु प्रचारा ।
यह मथुरा, यह कंस सभालय ,
यह वैकुण्ठ न, क्लीबन-आलय ।
शूर समर हित यह महि रंगा ,
यहाँ न प्रणय-कलह श्री संग्गा ।
यहाँ न नारद-वीणा-नादा ,
यहँ प्रचंड भुजदंड-निनादा ।

दोहा :— भक्तन-अर्पित भोग नहिं, यह मम मुष्टि कराल ,
“विष्णुहु ते नहिं भीति मोहिं, तैं खल ! केवल ग्वाल ।” ६१

कुलिश-कठोर, महाद्रि-विशाला,
 देह कराल, दैत्य-दृग-ज्वाला ।
 बदेउ कृष्ण-दिशि गरजि प्रचंडा,
 उत्थित भुज जनु मद-गज शुंडा ।
 शीर्ष शिखा लघु उठि अस लागी,
 धूम-प्ररोह मनहुँ कोपागी ।
 धरत धमकि पद धरणि कँपायी,
 भूपटि हरिहिं गहि लीन्ह उठायी ।
 चहेउ जबहिं महि देहुँ पछारी,
 सहसा गही ग्रीव असुरारी ।
 भये शिथिल पल महँ अँग सारे,
 कूदे ब्रजपति उछरि अखारे ।
 अंतराल भरि सिंह-निनादा,
 काँपी रंगभूमि भुज-नादा ।
 धायेउ दैत्यहु क्रोध असीमा,
 भयेउ मल्ल-आयोधन भीमा ।

दोहा :— संकर्षण-मुष्टिक भिरे, भये घात-प्रतिघात,
 भयी सभा निस्तब्ध लखि, चकित रुके दृग-पात । ६२

दैत्य प्रमत्त दोउ दुर्धर्षा,
 भयेउ अशस्त्र घोर संघर्षा ।
 उछरहिं, लरहिं, ताकि निज घाता,
 पटकहिं, करहिं, कील-आघाता ।
 जानु-जानु भुज-भुज टकराहीं,
 घोर विघट्ट, गुथहिं, हटि जाहीं ।
 मुष्टि-प्रहार वज्र सम करहीं,
 कटकटाय चपटहिं हठि लरहीं ।
 मनहुँ महा अर्णव लय-काला,
 गरजहिं, बड़ि टकराहिं कराला ।
 तुंग तरंग तुमुल संघर्षा,
 लोटहिं, हहरि भिरहिं सामर्षा ।

जस जस भिरत मल्ल हरि संगी ,
तस तस होत क्षीण बल अंगी ।
प्राण-शक्ति क्रम क्रम मुरझानी ,
भयेउ शिथिल, जानी बल-हानी ।

दोहा :— पायघात हरि गहि अरिहिं, पटकेउ करि बल पूर ,
अमर बाध नभ, भूमि जय, गिरेउ मृतक चाणूर । ६३

राम ताहि क्षण मुष्टिक मारा ,
भरेउ भुवन जय-घोष अपारा ।
शल-तोशल आदिक नृप-योधा ,
धाये बंधुन ओर सक्रोधा ।
घेरन चहेउ हरिहिं अघ-राशी ,
भये विचुब्ध देखि पुरवासी ।
उद्धव औरहु प्रजा प्रचारी ,
भिरे लोग असुरन ललकारी ।
धाये आपु वीर युयुधाना ,
कृतवर्महु हठि संगर ठाना ।
प्रजा राजजन सकल नसाये ,
हते असुर सब, जहँ जो पाये ।
मारे कृतवर्मा नृप-भ्राता ,
सात्यकि मंत्रिन खोजि निपाता ।
हत-मति कंस, हगन अधियारा ,
मृत मंत्रिन लै नाम पुकारा ।

दोहा :— करि अस्फुट चीत्कार कछु, बोलेउ विकल विहाल—
“बधहु घेरि वसुदेव-सुत, बाँधहु नँद, सब ग्वाल ।” ६४

कोपे हरि सुनि भूप-प्रलापा ,
चढ़ी भृकुटि पुनि जनु यम-चापा ।
लखेउ सदर्प नृपहिं ब्रजराजू ,
जिमि शिखरस्थ मृगहिं मृगराजू ।

उछरि, मंच चढ़ि, गहेउ नरेशा ,
 गहत उरग जिमि भूपटि खगेशा ।
 भागन चहेउ, भागि नहिं पावा ,
 पकरि चिकुर हरि मंच गिरावा ।
 खसेउ किरिट, गिरे मणि सारे ,
 मनहुँ युगान्त भरे नभ तारे ।
 मृत्यु-भीति साहस उपजावा ,
 लपकि चहेउ खल खड्ग उठावा ।
 अट्टहास मधुसूदन कीन्हा ,
 पटक मंच ते महितल दीन्हा ।
 गरजे तरजे मनहुँ मृगेशा ,
 कूदे नृप ऊपर विश्वेशा ।

दोहा :— हरि-नारिमा ब्रह्मांड-गुरु, सकेउ सँभारि न कंस ,
 प्राण-विहग पल महँ उड़ेउ, त्यागि शरीर नृशंस । ६५
 बाजी सुरपुर दुंदुभी, व्योम विमान अपार ,
 बरसत इन्द्रादिक अमर, पारिजात मंदार । ६६
 नाचीं निर्जर-नारि नभ, जय-निनाद धनधोर ,
 मुक्त-शिखा नारद मुनिहु, नाचे हर्ष-विभोर । ६७

मोद उदधि जनु नंद नहावा ,
 रुद्ध कंठ, सुत हृदय लगावा ।
 गोप लखहिं, पुलकहिं, आनंदहिं ,
 हरि हलधर पद पंकज बंदहिं ।
 गिरा-अतीत प्रजाजन हर्षा ,
 उमहेउ सँग सँग विषम अमर्षा ।
 कीन्हे असुरन नित क्षत जेते ,
 हरियर भये आजु जनु तेते ।
 उठी कराल गरजि जन-राशी ,
 धायी असुरन रक्त-पियासी ।
 मुख असंख्य दारुण उद्गारा ,
 “नासहु असुरन-धन, सुत, दारा !”

सुनि स्वर जन-दिशि श्याम निहारा ,
 भीषण जनु अंतक-परिवारा ।
 जानत प्रभु जन-रोष सकारण ,
 वध निरीह पै चहत निवारण ।

दोहा :— लीलापति द्रुत युक्ति रचि, भाषेउ जनन सुनाय—
 “मुक्त करहु सब वृद्ध नृप, बंदीगृह दिशि धाय ।” ६८
 ‘बंदीगृह’ हरि मुख कहत, ‘बंदीगृह’ प्रतिरोर ,
 धाये ‘बंदीगृह’ कहत, जन लाखन तेहि ओर । ६९

उपजेउ जनु जन-जलनिधि ज्वारा ,
 हहर, लहर, गुरु गरज अपारा ।
 उमड़, घुमड़ संघटित धावा ,
 लय जनु पुष्कर घन नभ छावा ।
 उदित रौद्र रस जन हृद्दामा ,
 मुख-मुद्रा उदग्र उद्दामा ।
 भीम भृकुटि, घूर्णित दग लाला ,
 जनु उत्थित फण अगणित व्याला ।
 क्रोध प्रवृद्ध प्रजा प्रलयंकर ,
 भये उदित जनु द्वादश दिनकर ।
 गति उद्धत, उद्दीपित, भीषण ,
 बहे प्रलय जनु सप्त समीरण ।
 दिग् विदीर्ण, जन-नाद कराला ,
 रहीं तड़कि जनु शिला विशाला ।
 पहुँचत ढिग जन-पारावारा ,
 उठेउ काँपि बंदीगृह सारा ।

दोहा :— कारा-पति प्रहरी सकल, असुर कंस-विश्वस्त ,
 धाये नृप-वध सुनि कुपित, अस्त्र-शस्त्र धृत हस्त । ७०

पौरहु सन्मुख लखे अधमतम ,
 दर्पी, हठी असुर सोइ निर्मम ।

घृत जनु परेउ कृशानु ज्वलंता ,
 घृत-आयुध कर उठे अनंता ।
 धाये अँधाधुंध जन कैसे ,
 धावत चक्रवात मरु जैसे ।
 कंषित क्षिति, अरि-व्यूह दरारा ,
 भये असंख्य अदम्य प्रहारा ।
 कुपित प्रजा मानहुँ चामुंडा ,
 रव भैरव, आघात प्रचंडा ।
 चूर्ण-विचूर्ण गिरे खल सारे ,
 तिल तिल मर्दित महि संहारे ।
 अस्त अचिह्न असुर समुदायी ,
 जात फेन जिमि लहरि विलायी ।
 उमहि बहे जन कारा-द्वारा ,
 अगणित आतुर भये प्रहारा ।

बोद्धा :—टूटे वज्र किँवार नहिं, जन-समुदाय अधीर ,
 लगे हनन प्रहरण विविध, कारागृह - प्राचीर । ७१

उत सुनि असुर-नाश संवादू ,
 कीन्हेउ बंदिन आनँद-नादू ।
 काटि बंध अन्योन्य सहारे ,
 धाये कोट-द्वार दिशि सारे ।
 सुनि जय-घोष करत प्रतिघोषा ,
 भिरे सोउ प्राचीर सरोषा ।
 द्विदिशि घात डोलेउ प्राकारा ,
 भंजित थल थल रोर अपारा ।
 ढहेउ असुरता अंतिम आश्रय ,
 शयित संग महि प्रजा-दुःख-भय ।
 बंदी त्राता मिलन सोहावा ,
 उर सुख-सिंधु लहरि दृग आवा ।
 उग्रसेन पद हलधर श्यामू ,
 परसे प्रथम कहत निज नामू ।

ललकि हरिहिं नृप कंठ लगावा,
तुमहि पुत्र चिर त्रास मिटावा ।

दोहा :— जननि जनक हरि-मुख लखत, थिर तारक दग कोष,
सोचत स्वप्न कि सत्य यह, होत न दृष्टि भरोस ! ७२

निरखि मोह चिर विरह-प्रजाता,
कहि कहि 'अंब !' प्रबोधी माता ।
प्रणमत पद वसुदेव उठावा,
सुनि मुख 'तात' ! पुलक तनु छावा ।
सुत हिय लाय लहेउ विश्वासू,
हर्ष प्रकर्ष कपोलन आँसू ।
बलरामहु गहि हृदय लगाये,
दग-जल दोउ सुवन अन्हवाये ।
भेंटे पुनि नंदहिं सन्मानी,
गोपन मिले श्याम सम जानी ।
लखि हरि हलधर स्वजन-मिलापा,
पुरजन उरहु प्रीति रस व्यापा ।
जय ध्वनि मध्य वृद्ध नृप साथी,
प्रविशे राजभवन यदुनाथा ।
मृदु बैनन रानिन समुभायी,
सविधि मृतक अंत्येष्टि करायी ।

दोहा :— परिजन पुरजन बोलि पुनि, ग्रामपतिहु सह नंद,
हेरि वृद्ध नृप-दिशि कहे, वचन सच्चिदानंद । ७३

“मन मम मातुल-मृत्यु सँकोचू,
दीन्हेउँ वृद्ध नृपहिं सुत-शोचू ।
कीन्हेउँ सो लखि जन-दुख भारी,
दंडय प्रियहु जो अत्याचारी ।
माँगहुँ तदपि क्षमा कर जोरी,
होहिं प्रसन्न विनय सुनि मोरी ।

राज्य सँभारि बहुरि निज लेहीं ,
मोहिं निदेश योग्य मम देहीं ।
निज सर्वस्व महर मोहिं दीन्हा ,
पुत्र-सनेह पालि बड़ कीन्हा ।
आयसु देहिं नृपति, पितु, माता ,
जाहुँ लौटि पुनि ब्रज सुखदाता ।
जब तब नृप-अनुशासन पायी ,
अइहौं पुर सेवक सम धायी ।”
मौन श्याम कहि पावन वाणी ,
मुदित नंद, सब सभा सकानी ।

दोहा :— कमल-कोष अलि स्वप्न निशि, देखत स्वर्ण प्रभात ,
तेहि क्षण मानहुँ सर प्रविशि, करिनि कीन्ह आघात । ७४

प्रजा सुराज्य-स्वप्न-सुख नासा ,
हत परिजन पुरजन अभिलाषा ।
अवनि नखन वसुदेव करोवत ,
उद्धव उग्रसेन-मुख जोवत ।
तबहिं वृद्ध नृप धीरज आनी ,
भाषी समयोचित शुचि वाणी—
“कहे वचन तुम तांत सोहावन ,
विनय, विवेक, विरति-युत पावन ।
जदपि शोक सुत उर मम भारी ,
सुखी राष्ट्र लखि महुँ सुखारी ।
परिजन, प्रजा, देव, द्विज, धर्मा ,
वेद-पाठ, यज्ञादिक कर्मा ,
नासे सकल कंस निज पापा ,
मिटेउ अंत तिनहिन अभिशापा ।
तुम अवतरित लोक-हित लागी ,
छमहुँ तुमहिं मैं काह अभागी ।

दोहा :— तात ! तजहु नहिं राज्य अब, करहु न जगत अकाज ,
परिजन, पुरजन, प्रजा-सँग, महुँ चहुँ हरि-राज । ७५

यद्वंशिन महँ रीति पुरानी ,
 लहत प्रभुत्व जो गुण-बल-खानी ।
 भरतखंड महँ यह यदुवंशा ,
 रहेउ तात ! नृप-कुल-अवतंसा ।
 विगत आजु वह वैभव सारा ,
 भयेउ असुर सम्राट हमारा ।
 धर्म-प्राण तुम शक्ति-निधाना ,
 करहु वत्स ! पुनि कुल-उत्थाना ।
 लखहु नयन भरि असुर-विनाशा ,
 इतनिहि अब मम उर अभिलाषा ।”
 बार बार नृप विनय सुनायी ,
 हेरत सब तन, चहत सहायी ।
 सात्यकि, कृतवर्मा, सब अभिजन ,
 भूमिप, प्रजा-पंचगण, पुरजन ,
 मिलि सब उद्धव ओर निहारे ,
 पुलकित तनु तिन वचन उचारे—

दोहा :—“आजु सफल मम जन्म जग, सन्मुख लखत समाज ,
 कंदुक जिमि पद-तल लुठत, जहँ ब्रजमंडल-राज । ७६

अब लागि सुत पितु बंदी करहीं ,
 परिजन-प्राण राज्य-हित हरहीं ।
 नहिँ अस पाप राजपद लागी ,
 करहिँ न नीच धर्म-पथ त्यागी ।
 भयेउ आजु आश्चर्य महाना ,
 प्रकटे राम बहुरि मैं जाना ।
 जो कछु सुनेउँ लखत सोइ लोचन ,
 प्रभु अवतरेउ प्रजा-दुख-मोचन ।
 साँचहि यह अवनीश सुनावा ,
 असुर-राज्य भरि भारत छावा ।
 थल थल जदपि चतुर्दिक राजा ,
 स्वामी जरासंध अधिराजा ।

जो न आर्ष नृप नावत माथा ,
जियन न देत ताहि मगनाथा ।
करि रण तेहि सँग नृप जो हारत ,
नरबलि हित बंदीगृह डारत ।

दोहा :— होतहि बंदी शत नृपति, देहै बलि मगधेश ,
मुनत नाम डोलति धरा, काँपत आर्य नरेश । ७७

उत्तर दिशि यवनन-बल बाढ़ा ,
जब-तब होत आक्रमण गाढ़ा ।
काल यवन, यवनन-महिपाला ,
नाम-स्वरूप महा विकराला ।
भारतवर्ष - विजय - अभिलाषी ,
काँपत रहत सप्तनद-वासी ।
मैत्री तासु मगधपति संगी ,
एक बाँवि के दोउ भुजंगा ।
भयेउ कंस खल दोउन दासा ,
विदलित संस्कृति, धर्म-विनाशा ।
मुनि जामाता-निधन-सँदेशू ,
अइहै चढ़ि ससैन्य मगधेशू ।
यवन-वाहिनी लै बलशाली ,
करिहै यवनहु प्रबल कुचाली ।
यहि विधि जब मथुरा घिरि जायी ,
हरि बिनु को तेहि सकै बचायी ?

दोहा :— चहत सोइ हरि ग्राम बसि, बहुरि चरावन धेनु ,
यवन जरैहैं मधुपुरी, श्याम बजैहैं वेणु ।” ७८

बिहँसे हरि मुनि उद्धव वाणी ,
प्रीति, प्रतीति, भक्ति-रस-सानी ।
कहत, “सदा मुरलीधर रहिहौँ ,
अवसर परे चक्र कर गहिहौँ ।

धेनु चरावत मोहिं न लाजा ,
 अइहौ पुरी परत नृप-काजा ।
 नीति-निपुण उद्धव अति ज्ञानी ,
 राजनीति कहि विशद बखानी ।
 सो मैं सकल सुनी धरि ध्याना ,
 भयेउ असुर-बल-विक्रम-ज्ञाना ।
 जानत मैं अब कंस नसायी ,
 सोये साँप जगाये आयी ।
 घेरि डसहिं जो मधुपुर-वासी ,
 होय पाप मोहिं रहे उदासी ।
 प्रथमहि ताते कहेउँ सुनायी ,
 अइहौ पुर नृप-आयसु पायी ।

दोहा :— महाराज जो करि कृपा, लेहिं मुकुट शिर धारि ,
 जन-संरक्षण-भार सब, लेहै दास सँभारि । ७६

साँचहु महत रहेउ यदुवंशा ,
 जो कछु कीजै थोरि प्रशंसा ।
 पै रघुवंश - नेह - सद्भावा ,
 कबहुँ न यदुवंशिन दरसावा ।
 रहेउ शिथिल संतत अनुशासन ,
 मानत कोउ न ज्ञान-वय-शासन ।
 सबही निज निज बल-अभिमानी ,
 सबहि स्वतंत्र, सबहि गुण-खानी ।
 पाय पिता ते निज अधिकारा ,
 भये आपु नृप नय-अनुसारा ।
 छीनेउ पद करि कंस अनीती ,
 सो मैं लेउँ, कहाँ कै रीती ?
 जेहि कर जो सो आपन पावै ,
 वेदस्मृति यह धर्म बतावै ।
 तात ! वृथा का कहहुँ बदायी ,
 धरे छत्र सिर वंश-भलाई ।

दोहा :— देहूँ वचन, करिहौं सदा, तब लागि वंश-सहाय ,
जब लागि गहि सब धर्म-पथ, बसिहैं नेह ददाय ।” ८०

अस कहि निज कर मुकुट उठायी ,
दीन्हेउ वृद्ध नृपहि पहिरायी ।
बंदन कीन्ह धरणि धरि माथा ,
कहि कहि ‘मम प्रभु ! यदुकुल-नाथा’ !
चकित समाज, हर्ष स्वर भारी ,
बिह्वल नृपति, विलोचन वारी ।
उठेउ, प्रभुहि गहि कंठ लगावा—
“पुत्रवंत मैं आजु कहावा ।
करिहौं सोइ विरचि तुम राखा ,
एकहि बात सुनत मन माखा ।
बसिहौं बहुरि ग्राम जो जायी ,
सकिहौं क्षण नहि राज्य चलायी ।
नाहिं पूर्व बल तन-मन माहीं ,
सधिहै जन-हित मोहिं ते नाहीं ।
करहुँ विनय ताते कर जोरी ,
पुरवहु यह अभिलाषा मोरी—

दोहा :— राज-भवन सुत सम बसहु, होहुँ बहुरि सुतवंत ,
बिसरहिं भवपथ-भीति-भ्रम, निरखि नित्य भगवंत ।” ८१

व्यथित गिरा सुनि हरि नृप केरी ,
भाषे वचन नंद दिशि हेरी—
“त्रिभुवन-राज्य देहि जो कोऊ ,
लेहौं इनहिं निदरि नहिं सोऊ ।
पितु ते बढि ये पिता हमारे ,
बढ़े आजु लागि इनहिं सहारे ।
करिहौं सोइ देहि आदेशू ,
स्वप्नहु टारि न सकहुँ निदेशू ।
इन अधीन हम, इनहिन चेरे”—
सुनि अवाक् सब नंद-दिशि हेरे ।

रुद्र-कंठ नृप महर निहारा ,
 विलखत नंदहु वचन उचारा—
 “भार कान्ह सब मम शिर दीन्हा ,
 कहि कहि ‘पितु’ यश-भाजन कीन्हा ।
 मैं लघु भूमिप, गोप, गँवारा ,
 जानहुँ काह राज-व्यवहारा ।

दोहा :— राजनीति सब मोरि यह, सरबस मोरे श्याम ,
 चहुँ, चलाहिं हरि लौटि ब्रज, बसहिं सदा मम धाम । ८२

तदपि महुँ निज मन गुनि राखा ,
 पूजहि मोरि न यह अभिलाखा ।
 देखी न्याय-बुद्धि हरि केरी ,
 राज्यहु दीन्ह हस्त-गत फेरी ।
 पाय सुयश, हरि पिता कहायी ,
 करि अनीति रहिहौँ कहँ जायी ?
 भयेउँ धन्य करि अब लागि सेवा ,
 पावैं अब निज सुत वसुदेवा ।
 राज्य संपदा हरि लौटारी ,
 देहुँ, लेहिं हरि शौरि सँभारी ।
 देत श्याम हहरति यह छाती ,
 सौपब उचित तबहुँ पर थाती ।
 कहिहौँ लौटि यशोदहिं जायी ,
 आयेउँ मधुपुर श्याम गँवायी !”
 विगलित बाष्प-सलिल नँद-वाणी ,
 निरखत हरिहिं, बहत द्रग पानी ।

दोहा :— हृदय लगायेउ घाय हरि, कहेउ सनेह सुभाय ,
 “रहिहौँ आवत-जात पुर, सुत निज बिसरि न जाय ।” ८३

वसुदेवहु पुनि धीरज दीन्हा—
 “बूडत वंश राखि तुम लीन्हा ।

सुखहि सखा नहि, सत्य सनेही,
तुमते उरिन न धरि शत देही।
मानेहु ऐसिहि सतत मिताई,
सुत दै सखा बिसरि जनि जायी।”
यादव-वृंदहु धैर्य बँधावा,
उद्धव विविध भाँति समुभावा।
कहेउ भूप पुनि गहि नँद-बाँहीं,
“ऋण गुरु, देन योग्य ढिग नाही।
माँगहु पै मम प्रीतिहि लागी,
दै वाँछित कछु होहुँ सभागी।”
आग्रह पुनि पुनि भूपति कीन्हा,
नँद हरि-निरत फेरि मुख लीन्हा।
हृदय लगाय श्याम बलरामा,
बिलखत लौटि परे ब्रजग्रामा।

दोहा :— भेंटे प्रभु पुनि पुनि सखन, बरसत नयनन नीर,
बसे श्याम पुर, ब्रज बसी, ब्रजपति-विरहज पीर। ८४

इत कुल-गुरु वसुदेव बोलायी,
सुवन-उपनयन-तिथि ठहरायी।
पठयी मुदित वृद्ध नृप पाती,
न्योते सब संबंधि सजाती।
सुनि सुनि उग्रसेन-उद्धारा,
कंस-निधन, हरि-चरित उदारा,
यथा-काल यदुवंशी राजा,
आये सह-कुटुम्ब सजि साजा।
आयेउ कुन्तिभोज बल-राशी,
पृथु क्षितिपति आनर्त-निवासी।
वीर हिरण्य दशार्ण-नरेशा,
नीलहु माहिष्मतीपुरेशा।
भगिनि पाँच वसुदेव-दुलारी,
व्याहीं विविध नृपन वर नारी।

केकय नृपति-रानि श्रुतिकीर्ती,
आयी लै सुत संग सप्रीती ।

दोहा :—आयी श्रुतदेवा बहुरि, श्रुतिश्रवा विख्यात,
दंतवक्र शिशुपाल दोउ, विश्रुत नृपतिन-मात । ८५

पुनि राजाधिदेवि गुण-स्वानी,
आयी मालव-महिपति-रानी ।
ज्येष्ठ शौरि-भगिनी सुकुमारी,
आयी पृथा न पाण्डु-पियारी ।
पाती लै जो दूत पठावा,
दुखद वृत्त तेहि लौटि सुनावा—
निबसत तुहिन-शैल तप लागी,
लहे पाँच सुत पाण्डु सभागी ।
यहि विधि परिवृत स्वजन-समाजू,
कीन्ह शौरि सब मंगल-काजू ।
गर्ग आपु वेदोक्त सोहावा,
हरि हलधर उपनयन करावा ।
जन्मे 'द्विज' कहाय भगवाना,
जन्मे आजुहि जननी जाना ।
मणि, सुवर्ण, गोधन-समुदायी,
कीन्ह दान, चिर साध मिटायी ।

दोहा :—दण्ड, कमण्डलु, मौजि-धृत, मृगछाला युत श्याम,
कीन्हीं गुरुजन सन विनय, करत सभकि प्रणाम— ८६

“प्रेमामृत तुम सब बरसावा,
कीन्ह कृपा, द्विज-पद मैं पावा ।
धारेउँ शीश आजु मैं ऋषि-ऋण,
बिनु श्रुति-पाठ न तासु विमोचन ।
दीन्हेउ गुरु गायत्री-दाना,
सोउ न सार्थक बिनु श्रुति-ज्ञाना ।

उधरे ज्ञान-नयन नहिं जासू,
व्यर्थहि जन्म अवनि-तल तासू।
बिनवहुँ ताते सबहिं निहोरी,
द्विजता सफल करहु मिलि मोरी।
गुरु-निकेत ज्ञानार्जन हेतू,
पठवहु कहुँ मोहिं बंधु समेतू।”
सुनत भयेउ अति विकल शौरि-मन,
प्रणत सुवन-शिर भरे अश्रुकण।
व्यथित नृपति, मर्माहत माता,
जनु अनभ्र नभ वज्र-निपाता।

दोहा :—“काल्हि मिलन, आजुहि विरह, लखे न भल भरि नैन,
कोटि मनोरथ-लब्ध तुम, भाषत कस अस बैन ?” ८७

लखि हरि स्वजन-सनेह अपारा,
गुरु तन कातर नयन निहारा।
पुलकित गर्ग गुनत मन माहीं—
इनते परे ज्ञान कछु नाहीं।
ये विभु, द्रष्टा ऋषि-समुदायी,
पावन श्रुति इनहिन यश गायी।
पै सिखवन हित आश्रम-धर्मा,
करन चहत शिष्योचित कर्मा।
प्रकटन हित आचार्य-बड़ाई,
बसन चहत ये गुरुकुल जायी।
अस विचारि, हरि इच्छहु जानी,
कही गर्ग समयोचित वाणी—
“पुत्रवंत सब मनुज सभागे,
चहत सतत सुत आँखिन आगे।
वर्धमान पै बाल-मयंका,
रहत न जननि उदय-दिक् अंका।

दोहा :—धृत नर-तनु हरि विश्व-धन, सुत तुम्हरेहि ये नाहिं,
सकत बद्ध करि को इनहिं, क्षीण भुजन निज माहिं।” ८८

सुनि राजाधिदेवि हरषायी ,
 कही शौरि सन गिरा सोहायी—
 “मुनि सान्दीपनि काशी-वासी ,
 योगी, कर्मनिष्ठ, तप-राशी ,
 व्यास-परशुधर-शिष्य सुजाना ,
 शास्त्र-शास्त्र-निधि अस नहि आना ।
 भयेउ कुपित काशी-नरनाहा ,
 जानत कोउ न कारण काहा ।
 सहसा जन्मभूमि निज त्यागी ,
 बसे अबन्ती शिव-अनुरागी ।
 उज्जयिनी आश्रम निर्मावा ,
 नृप-सत्कृत चहुँ दिशि यश छावा ।
 गुरुकुल भव्य, अनेक शिष्यगण ,
 पढ़त नृपति-सुत, विप्र अकिंचन ।
 महाकाल जहँ, जहँ सान्दीपनि ,
 उज्जयिनी काशिहु ते पावनि ।

दोहा :— पठवहु मम सँग मोह तजि, राम श्याम गुण-धाम ,
 रखिहौं जिमि युग अक्ष निमि, रच्छत आठहु याम ।” ८६

सुनि गुरु-वचन शौरि-मन तोषा ,
 भगिनि-गिरा सुनि हृदय भरोसा ।
 वृद्ध नृपहि नहि आत्म-प्रतीती ,
 उर अति व्याप्त मगधपति-भीती ।
 निरवधि विरह जानि मन शोचू ,
 कहि न सकत कछु हृदय सँकोचू ।
 नृप अन्तर्भय प्रभु मन भासा ,
 ‘अइहौं वेगि’, दीन्ह आश्वासा ।
 अन्तर्दाह देवकिहु दीना ,
 धिक धारव तनु सुवन-बिहीना ।
 वृथा राज, धन, धाम-पसारा ,
 बिनु शशि-वदन हृदय अधियारा ।

बिलपत दीन्ही अनुमति माता ,
शुभ तिथि साधि चले दोउ भ्राता ।
लखि सुत गवनत जानि अमङ्गल ,
रोकेउ बरबस जननि नयन-जल ।

दोहा :— कुलदेवन विनवति विकल, रच्छहु यदुकुल-दीप ,
रहहु पार्श्व जागत सुवन, सोवत शीर्ष समीप । ६०
सौं पै सुत जनु काढ़ि दग, भगनिहिँ शौरि गँभीर ,
गवनत रथ पथ पुरजनन, बरसेउ नयनन नीर । ६१

लहि यादव-कुल-कैरव-चन्दू ,
मन राजाधिदेवि आनन्दू ।
दक्षिण दिशि अबन्ति-रथ धावा ,
वर्त्म करील तमालन छावा ।
बायें गंगा-जमुन-प्रदेशा ,
पूरित जन-धन-धान्य अशेषा ।
दिशि दाहिन मरुधन्व प्रसारा ,
सन्मुख चेदि-राज्य-विस्तारा ।
ऋतु हेमन्त, नील आकाशा ,
उज्ज्वल दिवस, शीत वातासा ।
ऋतु सुख, शक्ति, धान्य, धन-देनी ,
पुलकित महि, खग, मृग, तरु, श्रेणी ।
शालि-विपाक पाण्डु कहुँ धरणी ,
कहुँ कपास-छादित सित बरनी ।
कहुँ गोधूम-हरित अभिरामा ,
द्विदल-सस्य धृत कहुँ कहुँ श्यामा ।

दोहा :— कहुँ सन-सुमनन पीत महि, बहु वर्णा रमणीय ,
मनहुँ मेदिनी-तल उदित, सुरपति-धनु कमनीय । ६२

विहग-कुलहु महि मातु समाना ,
शोभित नवल उष्ण परिधाना ।

नाना वर्ण परिच्छद-धारी ,
 नर्तत तरु-वितान मनहारी ।
 विमल व्योम, जल-खाद्य-सुपासा ,
 प्रकटत स्वरन प्राण-उल्लासा ।
 कहूँ पारावत कूक सोहायी ,
 कहूँ महोक-कुक्कुट-ध्वनि छायी ।
 स्वर्णिम वक्ष, पक्ष अति कारे ,
 विचरत पीलक कतहुँ सुखारे ।
 गावत कतहुँ हरेवा उपवन ,
 कूजत भृंगराज कहूँ कुंजन ।
 उड़त विशिख सम शुक बहुरंगा ,
 थिरकत कतहुँ हरित पतरंगा ।
 गावत कहूँ खंजन मदमाते ,
 बोलत कतहुँ लाल रँग-राते ।

दोहा :— गाय मधुर श्यामा रही, महि बहाय स्वर-धार ,
 बरसत भारद्वाज नभ, आनन्द-पारावार । ६३

थल-थल नव नव प्रकृति-स्वरूपा ,
 पल-पल धारति वेष अनूपा ।
 लखत उल्लसित हलधर श्यामू ,
 मनहर थलन करत विश्रामू ।
 यहि विधि चर्मणवति करि पारा ,
 विदिशा-विभव विलोकि अपारा ,
 निरखेउ उत्तरविध्य प्रदेशा ,
 दुर्गम, निविड़ अरण्य अशेषा ।
 दीपित दिनकर कतहुँ पहारा ,
 कहूँ दरि कन्दर चिर अधियारा ।
 कहूँ कहूँ नभ-चुम्बन-अभिलाषी ,
 उन्मुख, प्रांशु शाल तरु-राशी ।
 कहूँ कहूँ अतल गर्त भय-दाता ,
 लय जनु विभु वराह-उत्खाता ।

शिला-खण्ड कहुँ, कहुँ मणि-आकर ,
कहुँ मनोज्ञ गिरि, कतहुँ भयंकर ।

दोहा :— करि भोजन विश्राम हरि, लखि नभ उदित मयंक ,
लागे हाँकन आपु रथ, प्रविशे गहन अशंक । ६४

नील शैल, वन नील विशाला ,
नभहु लसत जनु नील तमाला ।
शाखा प्राची दिशा-विभागा ,
उदित कलाधर किसलय लागा ।
मज्जित रश्मि-धार यदुरायी ,
पुलकित स्यंदन रहे चलायी ।
बढ़ी त्रियामा जस जस प्रति क्षण ,
सुप्त ग्राम पुर, जागेउ कानन ।
नाना शब्द स्वरन वन छावा ,
कहुँ मृदु रव, कहुँ भीम विरावा ।
निकसे श्वापद अगणित जाती ,
शूकर, शरभ, महिष, मृग-पाँती ।
विहरत कानन कुञ्जर-वृन्दा ,
पाकर भंजि चरत सानंदा ।
लहि शाद्वल शम्बरि-समुदायी ,
सचकित शावक रहीं चरायी ।

दोहा :— सहसा गिरि, वन, कंदरा, व्यापेउ दारुण रोर ,
हरि केहरि-गर्जन सुनेउ, श्रुति-उन्माथी, घोर । ६५

सिहरे त्रस्त सकल वन-प्राणी ,
चपल मृगावलि विकल परानी ।
विह्वल शम्बरि मुख-वृण त्यागी ,
स्रवत फेन शावक लै भागी ।
भयेउ पलायित न्यंकु-सँघाता ,
खरभर शीर्ण शुष्क वन-पाता ।

भागे करि-निकरहु चिग्वारी,
मेघाकार स्रवत मद-वारी ।
भागत भीत शृगाल हुआने,
घुर्घुरात वाराह पराने ।
कीन्ह तरक्ष तीक्ष्ण चीत्कारा,
ध्वनित विपिन, प्रतिध्वनित पहारा ।
व्याकुल विटप विहग-समुदायी,
असमय केका-ध्वनि वन छायी ।
टिटिभहु तजि निज नीड़ उड़ाना,
प्रति पल सिंह-नाद नियराना ।

दोहा :— अकस्मात तुरगहु अड़े, खुरत, खूँदि फुफुवात,
देखेउ वनचर राम कोउ, आवत दुरत सघात । ६६

पुनि सुस्पष्ट लखेउ शार्दूला,
मानहुँ सचल लोध्र द्रुम फूला ।
लखे बहुरि भय-प्रस्त तुरंगा,
निकटहि सारथि-चाप-निषंगा ।
निमिषहि महँ शर धनुष चढ़ावा,
कर्षि कर्ण-पर्यन्त चलावा ।
गिरेउ दहारि क्रूर, रिस-राता,
ध्वंसि शिला नख-दंष्ट्राघाता ।
राखि हरिहिं स्यंदन बलरामा,
आये चलि सत्वर तेहि ठामा ।
लखेउ मृगेन्द्र आर्त त्रियमाणा,
कर्षत बाण परेउ निष्प्राणा ।
तेहि क्षण वन कोलाहल छावा,
हय-पद-रव पुनि श्रुति-पथ आवा ।
मृगया-शब्द-ध्वनित कान्तारा,
लखे पाँच उतरत असवारा ।

दोहा :— बंधु विन्द अनुविन्द दोउ, तनय अवन्ति भुआल,
रुक्मि विदर्भ-नरेश-सुत, दंतवक्र, शिशुपाल । ६७

मृगयार्थी, सम वय, वपु, वेषा,
 मृत मृगपति लखि रोष अशेषा ।
 रामहिं जानि सिंह-हन्तारा,
 कुपित चेदि-पति वचन उचारा—
 “को तैं धृष्ट, नराधम व्याधा ?
 दीन्ही कस नृप-मृगया बाधा ?
 कीन्ह न खल निज-परहु विचारा,
 मम शर-आहत केहरि मारा ।”
 सुने वचन कटु हलधर मानी,
 भाषी क्रुद्ध तीव्रतर वाणी—
 “वनचर सिंह व्याघ्र खल ! ताके,
 भुज विक्रम, उर साहस जाके ।
 सोवत कंदर सिंह जगायी,
 हनत प्रचारि शूर समुहायी ।
 निकसे निशि तुम, दासहु साथा,
 सके न तबहुँ निहति मृगनाथा !

दोहा :— मैं यात्री, रक्षार्थ निज, बधेऊँ एक ही बाण,
 चहहु कुशल तौ जाहु गृह, तजि नृपत्व-अभिमान ।” ६८

दंतवक्र सुनि रोष दुरायी,
 बोलेउ कपटी सन्मुख आयी—
 “बरने सब तुम निज गुण-भ्रामा,
 अब लगि कहेउ न कुल निज नामा ।”
 हलधर जैसेहि परिचय दीन्हा,
 अट्टहास सुनि रुक्मी कीन्हा ।
 कहि आभीर, घोष, गोपाला,
 भाषे पुनि कुशब्द शिशुपाला ।
 ताही क्षण बढ़ाय निज स्यंदन,
 पहुँचे विग्रह-थल यदुनंदन ।
 सुत अनुविंद विंद पहिचानी,
 रोकी रारि अवन्ती-रानी ।

दीन्हेउ परिचय कहि कहि नामा ,
 पूछि कुशल हरि कीन्ह प्रणामा ।
 विनय शील बहु प्रभु दरसावा ,
 तजेउ न खलन तबहुँ दुर्भावा ।

दोहा :— मृगया-शिविरन तेहि निशा, निवसे हरि तिन संग ,
 बढेउ तिलहु सौहार्द नहि, उपजे वैर-प्रसंग । ६६
 ब्राह्म मुहूर्त सजाय रथ, मालव-महिषी साथ ,
 मृगया-व्यसनी नृप-सुतन, तजि गवने यदुनाथ । १००

पहुँचे प्रभु उज्जयिनी प्राता ,
 पुरी पुरारि विश्व-विख्याता ।
 दूरिहि ते देखेउ प्राकारा ,
 धवल, विशाल, मण्डलाकारा ।
 जानि मनहुँ गिरिजा-पति-वासा ,
 मिस प्राकार बसेउ कैलासा ।
 पुरी-भृकुटि सम सतत तरंगिणि ,
 लखी बहुरि सिम्रा सरि पावनि ।
 सकी न जनु शिव-संग विहायी ,
 बही जाहवी मालव आयी ।
 तट शोभित वन उपवन नाना ,
 दोलित वीचि-वात उद्याना ।
 निरखत, नगर-द्वार करि पारा ,
 महा विपणि-पथ श्याम निहारा ।
 रजत, स्वर्ण, मणि, मौक्तिक-ढेरी ,
 अविचल होत विलोचन हेरी ।

दोहा :— शिव-प्रसाद श्री-सँग बसति, शारद वैर-विहीन ;
 मनुजहि नहि, शुक-सारिकहु, शास्त्र-विचार-प्रवीण । १०१

सोरठा :— उज्जयिनी-यश-धाम, महाकाल-दर्शन करत ,
 प्रविशे हलधर श्याम, प्रमुदित मालव-पति सदन ।

लखेउ अवन्ति-पतिहि यदुरायी,
रुग्ण, वृद्ध अति, शय्या-शायी ।
तदपि वज्र तनु भव्य, विराटा,
भुज आजानु, प्रशस्त ललाटा ।
वक्ष विशाल, वदन युति-खानी,
कहत पूर्व श्री-शौर्य-कहानी ।
आदर उर अवलोकत जागा,
प्रणमत पद नयनन अनुरागा ।
कहेउ सुनाय वृत्त सब रानी,
लखि हरि-मुख तनु-व्यथा भुलानी ।
‘वत्स ! तात !’ कहि दीन्हि असीसा,
बोलेउ हृदय लगाय महीशा—
“जब ते सुनेउ कंस-अवसाना,
यदुकुल-तिलक तुमहिं मैं माना ।
पूजहिं मम अभिलाष त्रिलोचन,
होहु तात मगपति-मद-मोचन ।”

बोद्धा :— कहि कहि प्रिय शत अवनि-पति, दीन्ह सुखद आवास ,
तजत कक्ष हरि बाल इक, लखी जाति नृप पास । १०२

कुँवरि मित्रविन्दा वर वामा,
नृप प्रिय सुता, रूप अभिरामा ।
कनक-लता तनु-यष्टि सोहायी,
आनन शरद्-इन्दु-छवि छायी ।
नयन विशाल भ्रमत लागि श्रवणन,
अंजन-रज्जु-वृद्ध जनु खंजन ।
चितवति तरल विलोचन जेही,
मज्जति सुधा-उदधि जनु तेही ।
परसति पद प्रवाल जहँ वामा,
भरत सहस सरसिज तेहि ठामा ।
उड़त वसन अँग गवनति कामिनि,
औचक दमकि जाति जनु दामिनि ।

करि संचित जनु सुषमा-सारा ,
दीन्हि तियहिं विधि रूप अपारा ।
भयेउ न हरि-उर रंच विकारा ,
वासस्थल प्रशान्त पगु धारा ।

दोहा :— लखेउ मित्रविन्दहु हरिहिं, रमे नयन असहाय ,
गवनी उर धरि मूर्ति मधु, पितु ढिग कछुक लजाय । १०३

उत रानिहिं समीप नृप पायी ,
हृदय-व्यथा निज बरनि सुनायी—
“क्रुद्ध कंस-वध सुनि मगधेशा ,
चहत ससैन्य चढ़न ब्रज देशा ।
गुनि मोहिं वृद्ध, अशक्त, विहाला ,
पठये दंतवक्र, शिशुपाला ।
कहत दोउ, ‘ब्रज करन चढ़ायी ,
मगपति मालव-सैन्य मँगायी ।’
रुक्मिहु ताही कारण आवा ,
साम, दान, भय, भेद दिखावा ।
सके न जब करि मोहिं अधीना ,
भरमाये मम सुत मति-हीना ।
मृगया-मिस गवने लै कानन ,
चहत पिता ते सुत बिलगावन ।
अब लागि मालव-कुल-सन्माना ,
रच्छेउँ मैं प्रयत्न करि नाना ।

दोहा :— ढाहति क्षण क्षण मृत्यु सरि, सैकत देह-कगार ,
सुत एकहु कुल-दीप नहिं, मम पाछे अँधियार ।” १०४

शोक-विकल प्रिय पितुहिं निहारी ,
बहेउ मित्रविन्दा-दृग वारी ।
सुता प्रबोधि पठायी रानी ,
बोली पति सन धीरज-वाणी—

“बार असंख्य हमहिं मगधेशा ,
 पठये यहि विधि दूत, सँदेशा ।
 अन्त अवन्ति-शक्ति पहिचानी ,
 रहेउ चुपाय सतत अभिमानी ।
 हरि, हलधर-बल, शौर्य अशेषा ,
 सकत न जीति इनहिं मगधेशा ।
 सकहिं जो हम श्यामहिं अपनायी ,
 रहिहै नहिं अवन्ति असहायी ।
 मधुपुर जस मैं हरिहिं निहारा ,
 उपजेउ सहसा हृदय विचारा ।
 श्याम मित्रविन्दा छवि-खानी ,
 विरचे विधि सँयोग मन ठानी ।

बोद्धा :— शिव-गिरिजा, विभुसिन्धुजा, मन्मथ-रति अनुरूपा ,
 काञ्चन-मणिहु सँयोग सम, यह सम्बन्ध अनूप ।” १०५

नीति, नेह-युत रानी-वाणी ,
 सुनी नरेश्वर उर सुख मानी ।
 विगत ताप, मानस नव चाऊ ,
 बोलेउ हरि-छवि-मोहित राज—
 “आये आपु श्याम मम धामा ,
 प्राङ्गण पारिजात जनु जामा ।
 सकत समीप जो नर मधु पायी ,
 सो कि कबहुँ वन खोजन जायी ?
 पै जाने बिनु तनया-भावा ,
 उचित न करब हरिहिं प्रस्तावा ।
 औरहु भय इक मम मन माहीं ,
 करहिं विरोध सुवन कहूँ नाहीं ।
 जब लगि गुरुकुल श्याम-निवासा ,
 करहु न उर-गत-भाव प्रकाशा ।
 होत समावर्तन संस्कारा ,
 करिहौ बहुरि विवाह-विचारा ।”

दोहा :— यहि विधि मंत्र द्वाय जब, मुदित रानि महिपाल ,
लौटे मुगया ते कुँवर, विन्दादिक तेहि काल । १०६

हरि-विरुद्ध शिशुपाल-प्रचारे ,
विँद अनुविँद पितु पास सिधारे ।
कुपित निरखि गृह हरि-पहुनाई ,
कहेउ विन्द अति करत ढिठाई—
“लाय ग्वाल ये मालव माहीं ,
कीन्हेउ मातु वंश-हित नाहीं ।
जानत ब्रज-मण्डल सब कोऊ ,
नँद आभीर-तनय ये दोऊ ।
रहे शौरि जब काराधामा ,
जन्मे नंद-सदन बलरामा ।
कृष्ण जो कारा देवकि जाये ,
कब, केहि भाँति नंद-गृह आये ?
करि छल इन जब कंस निपाता ,
आपुहिं कीन्ह शौरि-सुत ख्याता ।
वसुदेवहु लखि बल अपनाये ,
दोउ मिलि उग्रसेन भरमाये ।

दोहा :— मगधाधिप-कर वेगि दोउ, जइहैं अब यम-धाम ,
रच्छहि वसुदेवहि इनहिं, नहिं मालव कछु काम ।” १०७

भाषी वाणी विन्द कराला ,
सुनि बरसी नृप-नयनन ज्वाला ।
सुत पति दोउ कुपित अति जानी ,
बोली वाद बरावत रानी—
“विमल वंश सुत ! जन्म तुम्हारा ,
उचित न तजब शिष्ट आचारा ।
मम वसुदेव प्राण-प्रिय भ्राता ,
पूज्य तुम्हारेहु मातुल-नाता ।
वशी, विवेकी, सत्य-निधाना ,
श्रुति-सम तिन कर वचन प्रमाणा ।

का अचरज खल-दृष्टि बरायी ,
 राखे सुत नैद-गेह दुरायी ।
 नारद अखिल आर्ष कुल-टीका ,
 सकत न कहि ते बात अलीका ।
 कंस-सभा नृप, प्रजहिं सुनायी ,
 प्रकटेउ जन्म-वृत्त मुनिरायी ।

बोहा :— समदर्शी, निष्काम हरि, नहिं विभूति ते प्रीति ,
 त्यागत कर-गत राज्य जो, सो कि करत अनरीति ?” १०८

यहि विधि कहि कहि मंजुल वाणी ,
 बोधे विविध भाँति सुत रानी ।
 तबहुँ करत हरि-हलधर-निंदा ,
 तजी न निज हठ विँद अनुविंदा ।
 पुनि पुनि खलन-सोइ रट लागी ,
 ‘गवनहिं गोप अवन्ती त्यागी ।’
 सकेउ न धैर्य अधिक नृप राखी ,
 गिरा कठोर वज्र सम भाखी—
 “मम जियतहि तुम कुल-यश-घाती ,
 बैचत रिपु-कर पैतृक थाती ।
 अधम मगधपति-सेवा लागी ,
 चहत देन निज स्वजनन त्यागी ।
 वृद्ध अशक्त जदपि मैं आजू ,
 मोरहि अबहुँ धाम, धन, राजू ।
 रखिहौ हरिहिं पुरी अपनायी ,
 रुचै जो तुमहिं करहु सो जायी ।

बोहा :— प्रिय स्वतंत्रता-क्लेश जेहि, तेहि पै वारहुँ प्राण ,
 प्रिय दासत्व-विभूति जेहि, सुतहु सो गरल समान ।” १०९

सुनि सुत-पितु-विवाद विकराला ,
 आयेउ समुभावन शिशुपाला ।

यह खल-रीति सदा संसारा ,
 दै विष धाय करत उपचारा ।
 पै अवसर नहिं अधमन पावा ,
 नृप गृह-कलह-प्रसंग बरावा ।
 प्रकटेउ खलन कपट-अनुरागा ,
 विदा-निदेश बद्ध-कर माँगा ।
 रुक्मि विशेष सनेह जनायी ,
 भूपहिं सविनय गिरा सुनायी—
 “चलत भगिनि रुक्मिणि प्रिय मोरी ,
 कहेउ मोहिं पुनि पुनि कर जोरी—
 ‘सखी मित्रविन्दा निज साथा ,
 लायेउ बहु निहोरि नरनाथा ।’
 पठयेउ पितु मम सोइ सँदेशा ,
 लै सँग जाउँ जो देहु निदेशा ।”

दोहा :—सोचि नात, भीष्मक-प्रणय, पठयी सुता नरेश ,
 अन्य खलहु लहि-लहि विदा, गवने निज-निज देश । ११०

सोरठा :—इत मालव-पति-रानि, शुभ दिन सँग लै राम-हरि ,
 ज्ञान-ध्यान-तप-स्नानि, सान्दीपनि आश्रम चली ।

दूरिहि ते हरि-दृग-पथ आये ,
 आश्रम-चिह्न अनेक सोहाये ।
 घनस्निग्ध कानन मनहारी ,
 विचरत पथ निर्भय वनचारी ।
 त्वचा-छिन्न तरु बल्कल लागी ,
 मौझी जीर्ण वटुन कहूँ त्यागी ।
 व्योम-विमल निर्भर-जल माहीं ,
 भग्न कमण्डलु कहूँ उतराहीं ।
 उत्थित आहुति-धूम-विताना ,
 नभ जनु स्वर्ग-मार्ग-सोपाना ।
 लखेउ बहुरि कछु बढि यदुनंदन ,
 रटत पाठ, काटत कुश बटुगण ।

संतत पाठ-श्रवण-अभ्यासी ,
 शुक्ल पदत श्रुति आश्रम-वासी ।
 जानि पुण्य तप-महि नियरानी ,
 त्यागेउ सत्वर स्यंदन रानी ।

दोहा :— अर्घ्य पुष्प, स्वागत-वचन, खग-स्वर, अलि-गुञ्जार ,
 सीखेउ शाखिहु नत फलन, मनहुँ अतिथि-सत्कार । १११

कीन्हेउ आश्रम श्याम प्रवेशा ,
 नहिं जहँ अनृत, न राग, न द्वेषा ।
 परी न जहाँ मनोभव-छाया ,
 जहाँ सकल निर्मल मन काया ।
 पढ़त जहाँ कोउ वेद, पुराणा ,
 सीखत कहँ कोउ यज्ञ-विधाना ।
 धर्मशास्त्र व्याख्या कहँ होई ,
 दर्शनशास्त्र पढ़त कहँ कोई ।
 रहेउ सिखाय कतहुँ कोउ योगा ,
 धनुर्वेद कहँ सहित प्रयोगा ।
 कला शास्त्र नहिं अस जग माहीं ,
 पढ़त जाहि बडु आश्रम नाहीं ।
 गुरुकुल मध्यस्थल पुनि जायी ,
 अवलोके कुलपति यदुरायी ।
 शोभित बट-छाया सान्दीपनि ,
 मूर्ति जगन्मङ्गल, अति पावनि ।

दोहा :— शैल-अचल, जलनिधि-गहिर, रवि सम तेजोधाम ,
 तपस-कोष, विज्ञान-निधि, सत्य-सखा, निष्काम । ११२

मुनि-पत्निहु देखी यदुनाथा ,
 स्वाहा जनु यज्ञानल साथा ।
 अवनत मस्तक मुनि-पद रानी ,
 बंदे पत्नी-सह सुख मानी ।

माधव, रामहु श्रद्धा-धामा ,
 कीन्ह पद्म पद दण्ड-प्रणामा ।
 लखि हरि विसरेउ मुनिहिं विरागा ,
 भलकेउ नयन दिव्य अनुरागा ।
 सन्मुख भुवन-विभूतिन-सारा ,
 जनु सच्चिदानंद साकारा ।
 सिक्त नयन अमृत-निष्यन्दा ,
 लावित उर समाधि-आनंदा ।
 नेह-तन्तु लखि बद्ध मुनीशा ,
 प्रकटेउ हृदय ज्ञान जगदीशा ।
 जदपि रानि कहि वृत्त बतावा ,
 प्रभु-प्रसाद सब मुनि-मन आवा ।

दोहा :— सौंपि तपोधन बंधु दोउ, गवनी जल-दृग रानि ,
 निवसे आश्रम राम हरि, गुरुकुल निज कुल मानि । ११३

आश्रम-रहनि लखी यदुरायी ,
 सरल, स्वस्थ, तन-मन-बलदायी ।
 सरि-जल पान, अशन नीवारा ,
 बल्कल वसन, सुलभ वन सारा ।
 विषयन-सहित त्यागि भय, चिन्ता ,
 मन स्वाधीन, उड़ान अनंता ।
 प्रकृति-अङ्क बसि आश्रम-वासी ,
 अर्जत शक्ति, शान्ति, सुख राशी ।
 समता, बंधु-भाव उर जागत ,
 आपु-समान विश्व सब लागत ।
 छीलत वसन हेतु तरु-काया ,
 करत न पृथुल घाव वश दाया ।
 जानि सदय वन-जीव अशंका ,
 प्रसवति शिशुहिं मृगी मुनि-अंका ।
 लखि वन लावित करुणा-वारी ,
 त्यागत सहज बैर वनचारी ।

दोहा :— खेलत मातु विहाय निज, सिंह-शावकन संग,
मुदित सिंहनी पय पियत, निर्भय शाव कुरंग । ११४

नेह दशहु दिशि आश्रम छावा,
केवल विषयन प्रति रिपु-भावा ।
मर्षी सकल, क्रोध सब त्यागा,
केवल शुकन माहिं मुख-रागा ।
गर्व न बसत काहु उर माहीं,
त्यागि ताल-तरु मद कहूँ नाहीं ।
सरसति नित सर्वत्र मृदुलता,
तजि कुशाग्र नहिं कतहुँ तीक्ष्णता ।
प्रणय-सूत्र जु रि चटकत नाहीं,
चटकनि केवल कलियन माहीं ।
रहत बुद्धि मन सतत अचंचल,
चंचल बन कदली दल केवल ।
ज्ञान-लोभ तजि कतहुँ न लोभा,
पर-दुःखहिं लखि उपजत क्षोभा ।
विमल-चरित तरु पशुहु लखाहीं,
तजि हवि-धूम मलिन कछु नाहीं ।

दोहा :— गुरु दयालु, श्रद्धालु वटु, वहाँ विनय, यहँ नेह,
सान्दीपनि-आश्रम सदा, बरसत आनंद-मेह । ११५

सोरठा :— गुरुकुल अमल अकास, मधुर कलाधर सम उदित,
बाढ़े विनहि प्रयास, कृष्णचंद्र लहि नित कला ।

ब्रह्मचर्य-नियमन अपनायी,
व्रत अध्ययन मग्न यदुरायी ।
दुहुँ संध्या रवि अग्नि उपासी,
गुरु-पद वंदि वेद-अभ्यासी ।
श्रुति-पुट पियत वचन-पीयूषा,
पुलकित रोम रोम शुश्रूषा ।

जागत गुरु ते प्रथम प्रभाता ,
अशन-शयन सब गुरु पश्चाता ।
जल, वल्कल, कुश, समिधा, सुमनन ,
लावत गुरु हित भ्रमि नित वन वन ।
पुर भिक्षार्थ जात श्रीनाथा ,
फिरत विपिन गुरु-गङ्गयन साथा ।
नवल नेह नित गुरु प्रति जागा ,
गुरु-पत्निहु पद सोइ अनुरागा ।
मृदुल मधुर वदु जन सँग नाता ,
सखा, सनेहि, सहायक, भ्राता ।

दोहा :— श्यामहु हित गोकुल भयेउ, गुरुकुल सरसि सनेह ,
भयेउ यशोदा-नन्द-सदन, मुनि सान्दीपनि-गेह । ११६

विप्र सुवन इक वदु गुण-धामा ,
निवसत आश्रम नाम सुदामा ।
विषय, विलास, विभूति-उदासी ,
सत्य-व्रती, धृति-धीरज-राशी ।
शान्त, सुशील, सुबुद्धि, उदारा ,
सरल स्वभाव, सौम्य व्यवहारा ।
उर-जल विमल बिम्ब हरि साँचा ,
लखत अकिंचन द्विज-मन राँचा ।
करत यथा हरि गुरु-सेवकाई ,
द्विज तिमि हरि-पद प्रीति हृदायी ।
सेवत निशि दिन तन-मन-काया ,
रहत सदा लगि सँग जिमि छाया ।
निरखि प्रेम निष्काम, अपारा ,
श्यामहु सखा-भाव उर धारा ।
अनुदिन बढ़ी प्रीति कमनीया ,
भयेउ विप्र हरि-हृदय द्वितीया ।

दोहा :— दास्य भक्ति द्विज-सुत-हृदय, हरिहु भक्त निज दास ,
निवसत निशि दिन दोउ दिशि, महत नेह, आश्वास ।

ईधन लखि न एक दिन धामू,
 मुनि-पत्नी वन पठये श्यामू।
 गये सुदामहु हरि सँग लागी,
 विचरत वन वटु गुरु-अनुरागी।
 सईतत शुष्क काष्ठ चहुँ ओरा,
 प्रविशे क्रम क्रम कानन घोरा।
 प्रौढ़ शिशिर, नभ घन नीहारा,
 भूतल सर्ज, शाल-विस्तारा।
 जम्बू, तिन्दुक, शाक, रसाला,
 हरित पत्र शिर छत्र विशाला।
 विकसित कुन्द, फलिनि खिलि फूली,
 लहि अलि-अवलिलवलि भुकि भूली।
 कर्मद-सुरभित दिशा-विभागा,
 पाण्डु वर्ण वन लोध्र-परागा।
 सलिल स्वल्प सर, स्रव-खग नाना,
 करत कोलाहल विविध विधाना।

दोहा :— विहरत कारण्डव, वरट, चक्रवाक, मंजोर,
 कुशल किलकिला मीन गहि, उड़त, न सलिल हिलोर । ११८

रम्य विपिन, खग-स्वर मनहारी,
 शिशिर वनानिल श्रम-अपहारी।
 काष्ठ यथेष्ट सँजोय सुखारे,
 लखे न सखन गगन घन कारे।
 जैसेहि धरि शिर ईधन-भारा,
 अभिमुख आश्रम-पथ पगु धारा।
 लय-गति बही वायु विकराला,
 गरजी अंतराल घन-माला।
 विद्युत-बेलि फैलि नभ व्यापा,
 तड़क कड़क भूमंडल काँपा।
 उपल-वृन्द महि विपुलाकारा,
 बरसे शिलासार, दुर्वारा।

दारुण वृष्टि, सृष्टि एकार्णव ,
निष्फल नयन, श्रवण रव भैरव ।
विगत दिवस, घन-घोर त्रियामा ,
भटके तजि पथ श्याम सुदामा ।

दोहा :— श्वापद-संकुल वन गहन, घन बरसत अविराम ,
यापी बट-छाया निशा, अभय सखा घनश्याम । ११६

विहँसी उषा प्राचि-दिग्प्राङ्गण ,
गूँजी अरुणशिखा-ध्वनि कानन ।
राशि राशि नीहार विनाशी ,
उदित अंशुमत-रश्मि प्रकाशी ।
मुदित गरुड़ चढ़ि गगन उड़ाना ,
मुखरित खग पुनि तरुन विताना ।
सजल धरणि, जल-कण तृण पाता ,
जग जनु नवल प्रलय पश्चाता ।
उत न देखि लौटे यदुवीरा ,
खोजत फिरत मुनीश अधीरा ।
'श्याम ! सुदामा ! हरि !' गोहरायी ,
गुरुहु गहन भ्रमि रैनि वितायी ।
शिष्य प्रभात मुनीश निहारे ,
आवत काष्ठ अबहुँ शिर धारे !
निष्ठा लखत पुलक तनु छाये ,
आशिष देत नयन भरि आये ।

दोहा :— यहि विधि नित सेवा-निरत, साङ्ग सर्व श्रुति-ज्ञान ,
गुरु-मुख एकहि बार सुनि, सीखेउ ज्ञान-निदान । १२०

चौसठ दिवसहि माहिं ब्रजेशा ,
लहे सर्व शस्त्रास्त्र अशेषा ।
पुलकित तन मन पुनि घनश्यामा ,
करि सबंधु कुलपतिहिं प्रणामा ,

गुरु-दक्षिणा-हेतु कर जोरी ,
 बोले वचन भक्ति-रस बोरी—
 “गत-करतल फल विल्व समाना ,
 तात-प्रतोलित विश्व-विधाना ।
 जानि अतथ्य अर्थ सब त्यागे ,
 एक परार्थ नाथ अनुरागे ।
 बाञ्छा-छायहु छुयेउ न जाही ,
 वस्तु प्रदेय काह जग ताही ?
 तदपि छात्र हित शास्त्र-प्रमाणा ,
 बिनु दक्षिणा सफल नहि ज्ञाना ।
 हृदय हमारहि हित धरि देवा !
 देहु निदेश करहि कछु सेवा ।”

बोधा :— विनय-मधुर मुनि सुनि वचन, लखि सस्पृह हरि ओर ,
 सानुराग भाषी गिरा, सजल अचल दग-कोर—१२४

“सुदिन, सुतिथि, ते क्षणहु सोहाये ,
 उदित भाग्य मम जब तुम आये ।
 साधत योग जो ध्यान न आवा ,
 बिनु प्रयास सोइ लोचन पावा ।
 बीतेउ जीवन त्रयी पढ़ावत ,
 समुझी सोउ तुमहि समुभावत ।
 गुरु तुम्हार मैं जग जन लेखे ,
 जग-गुरु तुमहि माहि मैं देखे ।
 ब्रह्मचर्य आदर्श सिखावन ,
 आये शिष्य-वेष तुम पावन !
 लोकाचार महुँ अपनायी ,
 लीन्हि तुम ते नित सेवकाई
 तुम मम तप-फल तात ! सदेहा ,
 अबहुँ कि कछु अभाव मम गेहा ?
 आर्ष-विधान तदपि सत्कारी ,
 निज संकल्प कहहुँ असुरारी !

दोहा :— आर्य-धर्म, संस्कृति सकल, नासी मगध-नरेश ,
देहु दक्षिणा-रूप मोहि, तासु निधन भुवनेश ! १२२

गोपनीय कछु जीवन-गाथा ,
कहहुँ आजु तुम ते यदुनाथा !
असुर-त्रस्त भारत महि देखी ,
व्यास गुरुहु मम जुब्ध विसेखी ।
द्विज-वृन्दहु भयभीत निहारी ,
विधि नवीन मुनिवर निर्धारी ।
शिष्यन सब श्रुति शास्त्र पढ़ायी ,
माँगत अन्त बटुहिं मुनिरायी—
'यहै दक्षिणा मोहि स्वीकारा ,
भरि जीवन श्रुति-धर्म प्रचारा ।'
मोहूँ ते मुनि श्रुति-अनुरागी ,
सोइ शिद्धान्त दक्षिणा माँगी ।
आयेउँ काशी आयसु पायी ,
यापत जीवन वेद पढ़ायी ।
सहसा काशिराज मति-हीना ,
भयेउ भीत मगधेश-अधीना ।

दोहा :— जन्मभूमि तजि खिन्न मन, भूपति-धन, सन्मान ,
कीन्हेउँ पुनि मालव निवसि, नव गुरुकुल-निर्माणा । १२३

तात ! समस्त मही यहि काला ,
रहेउ त्रस्त करि मगध-भुआला ।
विपुल नृपति-कुल भारत माहीं ,
डरत न तेहि अस क्षितिपति नाहीं ।
तजि स्वधर्म, कुल-मान विहायी ,
जियत नृपति बहु करि सेवकाई ।
कछु असह्य जिन कहँ अपमाना ,
त्यागे युद्धत रण-महि प्राणा ।
कातर अन्य राज्य निज त्यागी ,
बसत सभीत विदेश अभागी

बंदी अन्य मगधपति-गोहा,
निवसत मानहुँ नरक सदेहा ।
लहि बंदी शत नृप-कुल-दीपा,
देहै नरबलि मगध महीपा ।
प्रजा, अवनिपति, मुनिजन सारे,
लखि लखि संस्कृति-ह्रास दुखारे ।

बोद्धा :— दिव्य शौर्य, धृति, नीतियुत, तुमहि भरत-महि आस,
आर्य-राज्य थापहु बहुरि, करि नृशंस अरि-नाश ।” १२४

सुनि हरि मुनिवर-गिरा उदारा,
मन प्रमोद, मुख बचन उचारा—
“पर-हित-रत तुम त्याग-स्वरूपा,
गिरा तुम्हारि तुमहि अनुरूपा ।
तात-निदेश शीश मैं धारा,
होय पूर्ण अभिलाष तुम्हारा ।
बिनती तदपि मोरि प्रभु पाहीं,
यहि महुँ कछु गुरु-सेवा नाही ।
करि हम प्रथमहि कंस-सँहारा,
मगधपतिहि रण-हेतु प्रचारा ।
करिहै सोउ आक्रमण सत्वर,
होइहै मधुपुर समर भयंकर ।
हम क्षत्रिय, वह अध-पथ-गामी,
मम कर्तव्य तासु बध स्वामी !
ताते दै कछु निज सेवकाई,
करहु कृतार्थ हमहि मुनिरायी !”

बोद्धा :— लखि सनेह, आप्रह अमित, कहेउ विरत मुनिराज—
“गुरु-पत्नी ते पूछि दोउ, करहु कहहि जो काज ।” १२५

मुदित बंधु मुनि-पत्निहि जायी,
गुरु-अनुशासन कहेउ सुनायी ।

सुनत वचन पुलकित व्रत-क्षामा ,
 जनु उर शुष्क नवाङ्कुर जामा ।
 मृतसुत सुमिरत उष्ण उसासू ,
 रोदन हृदय, कपोलन आँसू ।
 सादर धैर्य दीन्ह यदुरायी ,
 मातु पुरातन कथा सुनायी—
 मज्जत तीर्थ प्रभास सोहावा ,
 जलनिधि जेहि विधि सुतहिं बहावा ।
 “दिव्य पुरुष तुम अमृत-राशी ,
 कहत तुमहिं विभु आश्रम-वासी ।
 सकहु तौ तात ! वत्स मम लायी ,
 देहु जननि-उर-दाह मिटायी ।”
 सुनत वचन हरि-मन अनुरागा ,
 धन्य मातु ! सुत-जीवन माँगा ।

दोहा : — नारि-रूप प्रति कल्प विभु, सिरजत जग छविमान ,
 उचितहि गुरु माँगेउ निधन, जननी जीवन-दान । १२६
 मृदु वचनन आश्वास दै, गुरु-अनुशासन पाय ,
 चढ़ि अवन्ति-प्रति-रथ चले, दिशि पश्चिम दोउ भाय । १२७

त्यागत मालव महि रमणीया ,
 धान्य बहुल, श्यामल, कमनीया ,
 बहुरि कपास-समुज्ज्वल वेषा ,
 शुचि, समृद्ध आनर्त प्रदेशा ,
 करत शुक्तिमत पर्वत पारा ,
 रम्य, दिव्य मणि-द्युति उजियारा ,
 लखत तमाल ताल उत्ताला ,
 पूगी, नारिकेल-वन-माला ,
 निरखेउ अतल, असीम, अपारा ,
 लुब्ध पयोनिधि भीमाकारा ।
 व्योमग, शैल-शृंग-उत्तुंगा ,
 युग-क्षय-ताण्डव-तरल तरंगा ।

श्रवणन एकहि रव विकरारा ,
मुग्ध दृगन एकहि आकारा ।
दिशि, विदिशा, वसुधा, आकाशा ,
विश्व समस्त सलिल-मय भासा ।

बोद्धा :— हरि-चरणोदक नीरनिधि, विरहज हाहाकार ,
गुनि जनु लय बिनु नहि मिलन, करत युगान्त-गोहार । १२८

सोरठा:— तजि स्पंदन जगदीश, सहसा लखि महि पद धरत ,
चिर विरही वारीश, लहरेउ उमहि सहस्र-गुण ।

प्रसरित अगणित बाहु-तरंगा ,
मणि वैदूर्य विमल जल-अंगा ।
शिर महोर्मि, श्रुति रविमणि कुण्डल ,
विलसत हृदय हार बड़वानल ।
पल्लव पारिजात परिधाना ,
श्री-शशि-सोदर भूषण नाना ।
दण्ड चंद्रमणि मुक्तन-पोहा ,
फेनिल छत्र स्वच्छ शिर सोहा ।
दोलत चामर सप्त प्रभंजन ,
शैलाकार तिमिङ्गिल वाहन ।
रत्न-दीप्त, धृत स्वस्तिक-लाञ्छन ,
मण्डल-बद्ध भुजंगम परिजन ।
सुता धरित्री, सुत निशिनाथा ,
सुरसरि-प्रमुख सरित तिय साथ ।
चरण पखारि पलटि लहराना ,
प्रविशे सिन्धु-सदन भगवाना ।

बोद्धा :— जस-जस जलनिधि तल धँसे, सलिल-राशि नीलाभ ,
भानु-विभा-भासित भयी, अधिक-अधिक हरिताभ । १२९

धूमल भयेउ दृश्य पुनि सारा ,
रुद्ध अंशुमत-रश्मि प्रसारा ।

प्रभु सबन्धु जल-मध्य विलोका ,
 अन्यहि नयन-मनोहर लोका ।
 समतल कतहुँ, उदधि अभ्यन्तर ,
 कहुँ गिरि, कतहुँ गर्त, कहुँ कन्दर ।
 कहुँ कहुँ ज्वाला-पर्वत दाहा ,
 बहत उष्ण कहुँ सरित-प्रवाहा ।
 सुरपति-धनु-द्युति विविध विधाना ,
 विपुल वनस्पति कानन नाना ।
 शुक्ति, शंख, मणि, रत्न अपारा ,
 गुल्म-प्रवाल व्यजन-आकारा ।
 जन्तुहु नाना वर्ण अनल्पा ,
 महाकार कोउ, कोउ अति स्वल्पा ।
 कोउ कोउ लता-वितान स्वरूपा ,
 कोउ सदीप-शरीर अनूपा ।

बोद्धा :— कहुँ जल-वाजि, गजेन्द्र कहुँ, कतहुँ सिंह, कहुँ श्वान ,
 महानाग वृश्चिक कतहुँ, कहुँ अठपाद महान । १३०

सोरठा :— पूजि शेष विश्वेश, अर्घ्य-पाद्य पीयूष दै ,
 भाषे वचन जलेश, भक्ति-सलिल-स्त्रावित नयन—

“सुरसरि-हृत पद-पद्म-परागा ,
 निर्मित भारत-मही सभागा ।
 संचित प्रभु-चरणोदक-धारा ,
 मैं महि पुण्य त्रिदिशि रखवारा ।
 मज्जत बारिधि-विरह अथाहा ,
 अब लागि मैं निज धर्म निबाहा ।
 साम्प्रत म्लेच्छ अशुचि, उत्पाती ,
 दैत्य, यवन, मुर नाना जाती ,
 नौ-बल बली, नवायुध धारे ,
 भे जल-दस्यु अधम-मति सारे ।
 अधिकृत मम द्वीपन आराती ,
 त्रासत भारत महि दिन-राती ।

जे सांयात्रिक भारतवासी ,
लौटत लै विदेश-धन-राशी ,
करि सहसा आक्रमण भयावन ,
हरत आर्य-धन स्लेच्छ उपावन ।

बोद्धा :— दुरि कबहुँ मम कूल-जल, शिशु लै जात चोराय ,
देत यंत्रणा भाँति बहु, राखत दास बनाय । १३१

कबहुँ स-बल तट-महि चढ़ि धावत ,
लूटि धान्य-धन ग्राम नसावत ।
जदपि सुमति मम कूल-निवासी ,
अल्प-प्राण बाणिज्य-उपासी ।
निवसत मध्यदेश-महि वीरा ,
त्यागि अरक्षित मोहिं, मम तीरा ।
बढ़ी शक्ति नित स्लेच्छन केरी ,
लीन्हेउ पश्चिम-तट अब घेरी ।
रहेउँ पुण्य महि परिखारूपा ,
भयेउँ दस्यु-हित द्वार-स्वरूपा ।
मैं सद्धि अब जिमि हिमवन्ता ,
सकहुँ रोकि नहिं स्लेच्छ दुरन्ता ।
हिमगिरि-रक्षण हेतु नरेशा ,
जब तब करत प्रयत्न विशेषा ।
भयेउ न अब लागि नृप मतिमाना ,
करत मोहिं जो अभय प्रदाना ।

बोद्धा :— भारत-महि उद्धार-हित, लीन्ह नाथ अवतार ,
मोरहु संरक्षण करहु, गुनि मोहिं भारत-द्वार । १३२

वरुण-कृपा मैं जानत नाथा ,
आये जेहि लागि अग्रज साथा ।
दैत्य कराल पंचजन नामा ,
बसत मध्य मम करि निज धामा ।

मुर, दनु, दैत्य, यवन, सब असुरन—
 सेवित, ताते नाम पंचजन ।
 व्यर्थहि जग मोहिं दोष लगावा,
 प्रभु-गुरु-सुत तेहि खलहि चोरावा ।
 शंख तासु ढिग एक विशाला,
 वादत होत नाद विकराला ।
 गूँजत द्वीप द्वीप रव भारी,
 खल-मण्डली जुरति सुनि सारी ।
 हरहि जो दैत्य-शंख कोउ जायी,
 सकिहैं करि नहिं स्वजन सहायी ।
 सकत शंख हरि सहजहि शेषा,
 बधि खल सकत सहज विश्वेशा ।”

बोहा :—दरसायेउ पुनि द्वीप-मथ, गढ़ दैत्येश जलेश,
 कौतुक ही शंखहिं हरेउ, हरि-तामस-तनु शेष । १३३

सोरठा :—बधेउ दैत्य अध-खानि, निमिषहि माहिं प्रचारि हरि,
 कही मरत खल-वाणि, “द्विज-सुत प्रथमहि मैं हतेउँ ।”
 सुनि सत्वर हरि राम, चढ़ि रथ, लै जलनिधि-विदा,
 दिशि दक्षिण यम-धाम, जाय लहेउ मुनिवर-सुवन ।

प्रसुदित गुरु-सुत सँग भगवाना,
 कीन्ह अवन्ती ओर प्रयाणा ।
 उत मिलि सखिहिं, विदर्भ विहायी,
 भवन मित्रविन्दा पुनि आयी ।
 लखी स्वजन सखिजन सुकुमारी,
 अन्य-मनस्क, मलीन, दुखारी ।
 मनहुँ अदृष्ट-पूर्व कोउ वामा,
 दग्ध हृदय, उद्वेग प्रकामा ।
 क्षीण शरीर-यष्टि शुच-भारा,
 ग्रीष्म-शुष्क जनु सुरसरि-धारा ।
 वदन-सरोज विवर्ण विशेषा,
 श्री-हत प्रात मनहुँ राकेशा ।

ललित कपोल न पाटल-रागा,
 सुमन-हास्य पत्राधर त्यागा ।
 दृष्टि सदा आनन्द तरंगिणि,
 शोण, उराग्नि-बाष्प-निष्यंदिनि ।

बोद्धा :— अन्तर्गूढ विषाद-धन, छादित हृदयाकाश,
 भयी नष्ट सहसा मनहुँ, प्राणाधिक अभिलाष । १३४

दशा विलोकि विकल अति रानी,
 गवनी सुता-सदन बिलखानी ।
 पूछेउ वृत्त लेत मन थाहा,
 बहेउ कुँवरि-दृग सलिल-प्रवाहा ।
 वृन्त-छिन्न किसलय अनुहारी,
 मूर्छित मातु-अङ्क सुकुमारी ।
 सुता सँभारि अंब उर लायी,
 जागी नेह-सुधा जनु पायी ।
 मृदु बैनन जननी समुभावा,
 क्रम-क्रम लज्जावरण हटावा ।
 कही मित्रविन्दा सब गाथा,
 जेहि विधि भवन लखे यदुनाथा ।
 जित-मनसिज हरि-छवि अभिरामा,
 बसी अमिट जेहि विधि हृद्धामा ।
 “मिलिहैं कबहुँ मोहि बनवारी,
 गइउँ विदर्भ साध उर धारी ।

बोद्धा :— निरखी सखि उत प्राण-प्रिय, रुक्मिणी छवि-गुण-धाम,
 नारद-मुख सुनि हरि-सुयश, जपति दिवसनिशि नाम । १३५

अर्पित हरि-पद तन-मन-प्राणा,
 पूजति हरिहि, धरति हरि-ध्याना ।
 सुनि जन्मे कारा असुरारी,
 तीर्थराज तेहि कहति कुमारी ।

परसेउ हरि ब्रज निज पद-रेणू ,
 गुनति गोप धनि, सेवति धेनू ।
 नीरद-कान्ति जानि वनमाली ,
 ऋतुपति पावस मानति आली ।
 विलसत सुनि हरि-तनु पीताम्बर ,
 पहिरति पीत त्यागि नीलाम्बर ।
 जानि हरिहिं गुञ्जा-अनुरागी ,
 मुक्ताहार दिये सखि त्यागी ।
 हरि-शिर चंद्रक सुनि सुकुमारी ,
 पाले शिखि उडाय शुक सारी ।
 जानि धरी मधुराधर श्यामा ,
 वादति वेणु बीन तजि वामा ।

दोहा :— लखि गवनत खग, वारिधर, पवनहु उत्तर ओर ,
 प्रेषति प्रेम-सँदेश सखि, हरि-अनुरक्ति-विभोर । १३६

भीष्मक दुहिता-इशा निहारी ,
 व्याहन श्यामहिं चाहत कुमारी ।
 रुक्मि मगधपति-वृत्ति-उपासी ,
 चाहत करन चेदिपति-दासी ।
 सखी शंकिता हरि-लव लागी ,
 यापति दिवस विलपि, निशि जागी ।
 आर्त, भक्त, अनुरक्त, अनाथा ,
 शून्य विश्व तेहि बिनु यदुनाथा ।
 करि साक्षी मोहिं, अग्नि, दिनेशा ,
 कीन्हे रुक्मिणि वरण ब्रजेशा ।
 मम प्रयाण-दिन नयनन वारी ,
 भाषी गिरा विदर्भ-कुमारी—
 'फिरहिं त्यागि गुरुकुल जब नाथा ,
 कहेउ सुनाय मोरि सब गाथा ।
 कीन्हेउ सोइ जेहि मंगल-मूला ,
 होहिं भुवन-धन मम अनुकूला ।'

दोहा :— प्रिय सखि-दुख मैं दुःखिता, सकी न कहि मुख 'नाहि',
भयेउ भाग्य-निर्णय विषम, अटल एक पल माहि ।” १३७

व्यथा-कथा कहि व्याकुल विन्दा,
निर्भर नीर नयन-अरविन्दा ।
जननी सुता-मनस्थिति जानी,
रहि क्षण मौन कही शुचि बाणी—
“वचन जो सखी-संग तुम हारा,
पालव पावन धर्म तुम्हारा ।
निश्चय विभु नर-तनु यदुरायी,
लाये गुरु-सुत यमपुर जायी ।
निस्प्रेही, निर्मम, निष्कामा,
नहि बिनु भक्ति मिलत घनश्यामा ।
हरि प्रति ताराप्रीति तुम्हारी,
रुक्मिणि अलख भक्ति उर धारी ।
चक्षुराग अनुराग न साँचा,
नहि तेहि माहि सुजन-मन राँचा ।
कहिहौ हरिहि सखी-सन्देशू,
मिलिहैं हरि तेहि मोहि न अँदेसू ।

दोहा :— तुमहु सखी-सम भजि गुणन, सकत पाय यदुनाथ,
शशि एकहि निशि नलिनि दोउ, करत समान सनाथ ।” १३८

सोरठा :— पतिहि सुनायेउ जाय, सुता-वृत्त पुनि रानि सब,
ताही क्षण यदुराय, प्रविशे साप्रज नृप-सदन ।

मिली रानि वात्सल्य-विहाला,
करि स्वागत उल्लसित भुआला ।
दम्पति प्रकटि प्रीति सन्माना,
राखे भवन राम भगवाना ।
विगत दिवस कछु, हरि-प्रति रानी,
बरनी रुक्मिणि-सुता-कहानी ।

सुनि निष्पन्न-कथित सब गाथा ,
 भाषे वचन विशद यदुनाथा—
 “सुत-हित सोचत जो पितु-माता ,
 सोइ अपत्यहिं क्षेम-प्रदाता ।
 जननी मोहिं गर्भ निज धारा ,
 शैशव यशुमति कीन्ह सँभारा ।
 दीन्ह लाय तुम विद्या-दाना ,
 मम मन मातु-भाव, नहिं आना ।
 उचित तदपि जग नय-निर्वाहा ,
 अग्रज पाछेहि अनुज-विवाहा ।”

बोद्धा :— नीति, सनेह, विनोद-मय, सुनि मधुमय हरि-वाणि ,
 धृतिमति, सुमति, कुशाग्रमति, सस्मित मालव-रानि । १३६

सोरठा :— विँद अनुविन्द विहाय, लहि सबते नित नेह नव ,
 दम्पति-आयसु पाय, गवने निज पुर राम हरि ।
 पाय बहुरि ब्रजचंद, उमहेउ मधुपुर सिन्धु सुख ,
 भवन-भवन आनंद, मग्न महोत्सव भूप-गृह ।

हुलसे जननि, जनक, नरनाहा ,
 भयेउ समावर्तन सोत्साहा ।
 शोभित हरि धृत-नृप-पट भूषण ,
 तजि उदयाद्रि व्योम जनु पूषण ।
 महाप्राणता अँग अँग छायी ,
 नख-शिख बही छलकि तरुणाई ।
 तनु-द्युति इन्द्र-नीलमणि-श्यामा ,
 कण्ठ कपोत-कान्ति अभिरामा ।
 मंजुल मृदुल कपोल समुज्ज्वल ,
 लोचन ललित तरल अरुणोत्पल ।
 नव शतपत्र वदन छवि-खानी ,
 नील नवल नीरद-ध्वनि वाणी ।
 आकृति दिव्य, प्रकृति गंभीरा ,
 सुषमा-शौर्य-सिन्धु, मति-धीरा ।

महत भक्ति-आश्वास-आयतन ,
पूर्णकाम लखि भूप, प्रजज्ञन ।

बोहा: — कंस-भीति-परित्यक्त पुर, बहुरेउ स्वजन-समाज ,
मधुपुर सुर-दुर्लभ जुरेउ, ऋद्धि, सिद्धि, सुख-साज । १४०

एक दिवस हरि बंधु बोलायी ,
कहेउ, “चलहु ब्रज देखहिं जायी ।
गोपी, गोप, वत्स, प्रिय धेनू ,
मिलहिं समोद बजावहिं वेणू ।
बसि कछु दिन, करि मातु सुखारी ,
फिरहिं बुझाय वियोग-दवारी ।”
लोचन जल सुनतहि ब्रज-नामा ,
“आजुहि चलिय,”—कहत बलरामा ।
“चलब प्रात,”—जस कहेउ ब्रजेशा ,
कीन्हेउ उद्धव कक्ष प्रवेशा ।
लखि अमात्य-मुद्रा गंभीरा ,
जानेउ मर्म सर्व यदुवीरा ।
चितै सचिव तन कह मुसकायी—
“जरासंध जनु कीन्हि चढ़ायी !”
नीति-शास्त्र-निर्मल-मन उद्धव ,
प्रमुदित निरखि स्वामि-बुधि-वैभव ।

बोहा: — “प्रभु इंगित-आकार-विद, ज्ञान-भानु-आवास ,
सुमति सर्वतोमुखि करति, अमर-गुरुहु उपहास । १४१

सोरठा:—सत्य स्वामि अनुमान, आवत सजि धजि मगधपति ,
अरि प्रलयाग्नि समान, रच्छहु विक्रम-वारिनिधि ।”
दीन्ह धैर्य धृति-सिन्धु, कहि करिहौ कर्तव्य जो ,
कहेउ हेरि पुनि बंधु, “दुर्लभ अब मोहिं ब्रज-दरस ।”

उत विशाल बल बाहिनि साथ ,
धावत मधुपुर दिशि मगनाथा ।

नाँघत निशि दिन विपिन पहारा ,
 करत पार अगणित नदि नारा ,
 चित्र विचित्र निशान उड़ावत ,
 जय-ध्वनि सहित मगधपति आवत ।
 पाय निदेश चेदि-नरपाला ,
 मिलेउ प्रयाग आय शिशुपाला ।
 धाय लीन्ह मधुपुर दोउ घेरी ,
 विकल प्रजा ब्रजमण्डल केरी ।
 चेदिपतिहिं पुनि दूत बनायी ,
 पठयेउ रचि प्रपंच मगरायी ।
 शौरि भगिनि-सुत स्वागत कीन्हा ,
 आदर मान हरिहु बहु दीन्हा ।
 सके न कुमति-प्रीति पै पायी ,
 दुहि कि सकत कोउ बंध्या गाई ?

दोहा :— कीन्हि निखिल यदुकुल-सभा, उग्रसेन महिपाल ,
 जरासंध-संदेश दै, बोलैउ खल शिशुपाल—१४२

“मोहिं यदुकुल-संबंधी जानी ,
 पठयेउ जरासंध हित मानी ।
 कंस मगधपति प्रिय जामाता ,
 गोप-सुतन करि कपट निपाता ।
 दण्ड प्रचण्ड देन हित आजू ,
 आयेउ चढ़ि भारत-अधिराजू ।
 सौपहिं जो भूपति कंसारी ,
 निमिषहिं माहिं मिटहि रण रारी ।”
 यदुवंशी सुनि वचन रिसाने ,
 धैर्य-अवधि हरि मन मुसकाने ।
 संकर्षण कर शस्त्र सँभारा ,
 खीभि वृद्ध नृप वचन उचारा—
 “कवन गोप-सुत यह कंसारी ,
 माँगत जेहि मगधेश प्रचारी ?

यह सुवंश यदुवंश समाजू,
यहाँ न ग्वाल गोप सुत काजू !”

दोहा :— करत व्यंग तब चेदिपति, लीन्हैउ गोविंद नाम ,
खड्ग-हस्त सुनतहि उठे, सात्यकि सह बलराम । १४३

सैनन बरजि बंधु, युयुधाना,
भाषे विहंसि वचन भगवाना—
“शूद्र, वैश्य, द्विज-वर्ण-विचारा,
होत सतत भूपति-दरबारा ।
पै निर्णायक क्षत्रिय लागी,
नहिं थल अन्य समर-महि त्यागी ।
आयेउ चढ़ि स्वेच्छा मगराजू,
समर प्रसंग उपस्थित आजू ।
मैं क्षत्रिय अथवा कछु अन्यहि,
देहौ उत्तर उचित समर महि ।”
मुनि बोलेउ सदर्प शिशुपाला—
“नर्तत शठ ! शिर काल कराला ।
मोहिं न पै तुव प्राणन शोचू,
जन्मत मरत नित्य नर पोचू ।
सालत एकहि उर मम शूला,
तुव सँग यदुकुल-नाश समूला ।

दोहा :— मगधनाथ-बल, बाहिनी, वसुधा, विभव विशाल ,
सकै जीति जो तेहि समर, भयेउ न भुवन भुआल । १४४

बधि तोहि, बाँधि वृद्ध महिरायी,
जइहै मुदित मगध मगरायी ।
रखिहै अन्य नृपन सँग कारा,
तजि वृण-पात न जहँ आहारा ।
निष्ठुर अनुष्ठान तेहि ठाना,
पशु सम अन्त यज्ञ बलिदाना ।

ताते कहेउँ नृपहिं समुझायी ,
तजहिं तोहिं, पुर बसहिं चुपायी ।
तोरेहु उर जो रण-अभिलाषा ,
काहे करत निरीह विनाशा ?
विमल वंश यह चंदन द्रुम सम ,
लपटेउ तैं बनि विषम भुजंगम ।
जो भुज शौर्य पराश्रय त्यागी ,
युद्धसि कस न प्राण निज लागी ।
तैं, तुव बंधु कंस हत्यारा ,
दुहुन मगधपति समर प्रचारा ।

दोहा :— कीन्ह तुमहि विद्रोह दोउ, रारि तुम्हारेहि साथ ,
वृद्ध नृपति यदुवंश सँग, चहत न रण मगनाथ ।” १४५

सुनि कहु वचन कुपित नरनाथा ,
कीन्ह शान्त हरि गहि नृप-हाथा ।
चेदिपतिहिं यदुनाथ निहारे ,
वक्र भृकुटि, दृगदल रतनारे—
“आये करन मोर कुल निश्चय ,
दीन्ह सबहिं तुम निज कुल-परिचय ।
शृंग अनार्य-ललाट न जामा ,
आर्य-भाल नेहिं विधु अभिरामा ।
बरसत मुख जस मधु, विष-बाणा ,
मिलत दुहुन पितु वंश प्रमाणा ।
तदपि वचन इक सत्य तुम्हारा ,
हम दोउ बंधु कंस हन्तारा ।
हमहि दोउ जीवन व्रत धारा ,
क्रम क्रम आततायि संहारा ।
जाहु कहहु निज प्रभुहिं सुनायी ,
करिहैं समर हमहि दोउ भाई ।

दोहा :— रहिहैं पुर सेना सकल, यदुजन, वृद्ध भुआल ,
मथिहैं मागध-बल-उदधि, नंद गोप के लाल ।” १४६

हत-मति सभा वचन सुनि सारी,
विगत समर उत्साह, दुखारी।
उर वसुदेव अमंगल-भीती,
जल-दृग वृद्ध नृपति वश प्रीती।
उद्धव विकल, हृदय पङ्खितावा,
बंधु-वचन हलधर मन भावा।
विस्मित, चकित, भीत शिशुपाला,
गवनेउ माँगि विदा तत्काला।
प्रविशि शिविर जब कहेउ सँदेशा।
कीन्हेउ अट्टहास मगधेशा,
इत तजि सदन द्वार हरि ठाढ़े,
सँग बलराम पुलकि जनु बाढ़े।
राजपुरोहित तिलक सँवारा,
स्वस्ति वचन द्विज-वृंद उचारा।
जननी गुरुजन आशिष साथा,
जय-ध्वनि मध्य चले यदुनाथा।

बोद्धा :— पहुँचि समर-महि कीन्ह प्रभु, पाँचजन्य रव घोर,
कम्पित मही, दिगन्त, नभ, शंख-निनाद कटोर। १४७

शिविर-द्वार निज मगपति आयी,
लखे चकित लोचन यदुरायी।
मुग्ध विलोकि मनोहर वेषू,
हँसेउ ठठाय बहुरि मगधेशू।
लखि परिजन तन वचन सुनावा—
“को यह नट ? रण महि कस आवा !”
बिहँसि कहेउ हरि,—“मिलेउ सँदेशू,
बाँधन मोहिं चहत मगधेशू।
आयेउँ आपु बँधावन काजा,
संग न वाहिनि स्वजन न राजा।
लखन चहहुँ पौरुष प्रभुताई,
बाँधत नहिं कस देर लगायी ?”

सुनत दृप्त मधुसूदन-बाणी,
दृग आरक्त, कुपित अभिमानी।
जैसेहि पुनि हरि ओर निहारा,
वचन सव्यंग नरेश उचारा—

दोहा :— “कमल-गर्भ-मृदु देह तुव, वचन वज्र अनुहार,
जानि परत बसि ब्रज भयेउ, तोहि कछु बुद्धि-विकार ! १४८

बधि पूतना वृद्ध कोउ नारी,
बक-धेनुक खग-पशु संहारी,
विटप उपारि, शिला शिर धारी,
गर्वित गोप सहज अविचारी।
भरेउ अबहुँ सोइ तुव दृग माहीं,
सन्मुख लखत सैन्य मम नाहीं।
यहाँ न रास-नृत्य सुखकारी,
यह रण-भूमि प्राण-अपहारी।
यहाँ न धेनु लकट लै चारत,
ये गजेन्द्र पद मर्दि पैवारत।
यहाँ न अंभा-रव गोशाला,
समर-वाजि ये, हेष कराला।
यहँ न शकट पद भंजि नसाये,
ये मागध रथ रण-हित आये।
यहाँ न गोपी-नूपुर-रुनझुन,
ज्या-निर्घोष यहाँ अति दारुण।

दोहा :— सन्मुख यह यमुना नहीं, जहँ सुख वारि विहार,
शूर-मकर-मय यह भयद, मम बल-पारावार । १४९

सोरठा :— एकहि लहरि विशाल, सकति निमिष महँ बोरि तोहि,
उचित कि मूढ़ गोपाल, करव विवाद भुआल सँग ?”

सुनि प्रलाप कह हँसि मधुसूदन—
“करत समर चदि काह विकत्थन।

व्यर्थ गोप-नृप-भेद समीक्षा ,
 पलहि माहिं पुरुषत्व-परीक्षा ।
 गोप-अवनिपति-कृति कर अन्तर ,
 प्रकटत कस न समर महि सत्वर ?”
 सुनि सेवकन सरोष नरेशा ,
 “धरहु गोप-सुत”—दीन्ह निदेशा ।
 चले सुनत घेरन दुइ चारी ,
 आवत ही हरि हते प्रचारी ।
 भिरे धाय पुनि बीस-पचासा ,
 पलहि माहिं हठि हलधर नासा
 शत, पुनि सहस्र, सैन्य पुनि सारी ,
 घेरेउ उमहि घटा जनु कारी ।
 ढाँपे ओट वीर-कुल-भानू ,
 ढाँपति उड़ि जिमि रेणु कृशानू ।

दोहा :—सौध-शिखर चढ़ि उत लखेउ, उग्रसेन रण ओर ,
 दिखे न कहूँ हरि-राम-रथ, उपजेउ संशय घोर । १५०

अशुभ-विशंकी सदा सनेहू ,
 सकेउ न शान्त निवसि नृप गेहू ।
 हरि-अनुराग विहाल भुआला ,
 “साजहु सैन्य”—कहेउ तत्काला ।
 पुलके सुनि उद्धव, युयुधाना ,
 शौरि-प्रमोद न जाय बखाना ।
 सत्राजित, प्रसेनजित, बाहुक ,
 मुदित वीर कृतवर्मा, आहुक ।
 हर्ष-प्रफुल्ल वृद्ध नररायी ,
 पहिरत कवच न अंग समायी ।
 बजे भयानक आनक वृन्दा ,
 सजे शूर उर उर आनंदा ।
 सजी अपार मत्त गज-पाँती ,
 अश्वारोही, रथी, पदाती ।

उघरे पुरी-द्वार, रव घोरा,
बही वाहिनी दक्षिण ओरा ।

दोहा :— दिशि, विदिशा, महि, नभ ध्वनित, गज-चिधार, हय-हेष,
जय-रव, रथ-रव, शंख-रव, सिंह-निनाद अशेष । १५१

सोरठा :— उत लखि असुरन-भीर, शस्त्र-पात विकराल अति,
हरि हलधर रण-धीर, सुमिरे सब दिव्यास्त्र निज ।

गगन चीरि मानहुँ सब धाये,
सुमिरत ही हरि-हाथन आये ।
वैष्णव अक्षय तूण, शरासन,
तडित-तेज-हत चक्र सुदर्शन ।
कौमोदकी गदा विकराला,
जित-रवि-द्युति नंदक करवाला ।
लहे दिव्य हल मूसल रामा,
प्रतिहत शत्रु, घोर संग्रामा ।
लय कालानल शिखा समाना,
कर्षी सारँग-ज्या भगवाना ।
कड़के वज्र-सहस्र जनु संगी,
बधिर वैरि मातंग तुरंगा ।
चक्राकृति सारँग कोदण्डा,
उदित मनहुँ मार्तण्ड प्रचण्डा ।
भीषण विशिख शरासन छूटे,
अरि-शिर छिन्न, कुंभ गज फूटे ।

दोहा :— भिन्न अश्व अँग, छिन्न ध्वज, हत रथि, ध्वस्त रथाङ्ग,
छादित बाण दिगन्त नभ, पूरित मही मृताङ्ग । १५२

मागध-वाहिनि-वारिधि सेतू,
भ्रमत चतुर्दिक यदुकुल-केतू ।
युद्धत हलधर समर-अमर्षी,
बाहुदण्ड विविधायुध वर्षी ।

धावत जेहि दिशि रथ घन-नादी ,
 भागत भीत त्यागि रण सादी ।
 व्यथित रथी कर ते धनु डारत ,
 हींसत वाजि, द्विरद चिग्धारत ।
 बधे असंख्य असुर संकर्षण ,
 शोणित सरित बही समराङ्गण ।
 राजत भूषण जनु तट-रेणू ,
 चामर हंस, छत्र सित फेनू ।
 स्यंदन-चक्र भँवर अनुमाना ,
 वाजि नक्र, गज द्वीप समाना ।
 भुज भुजंग जनु कमठ कपाला ,
 केश-समूह मनहुँ शैवाला ।

दोहा :— प्रतिपल शोणित नद भयद, भयेउ सिन्धु लहराय ,
 तजि आयुध मागध-चमू, कहूँ-कहूँ चली पराय । १५३

सोरठा :— तेहि क्षण मथुरा ओर, रेणु-राशि नभ-पथ उड़ी ,
 युद्ध-वाद्य-ध्वनि घोर, सिंहध्वनि श्रुति-पथ परी ।

लखि आवति वाहिनि बलशाली ,
 जनु कल्पान्त प्रलय बाताली ,
 प्रेरेउ चेदिपतिहिँ मगधेशा ,
 “रोधहु रिपु-पथ”—दीन्ह निदेशा ।
 लै चतुरंगिणि निज शिशुपाला ,
 यदु-बल ओर बढेउ तत्काला ।
 मगधपतिहु निज सैन्य सँभारी ,
 चलेउ आपु हरि-दिशि रिस भारी ।
 दूरिहि ते निरखे यदुनंदन ,
 प्रलय-समुद्यत मनहुँ त्रिलोचन ।
 अंग प्रसून-मृदुल, मनहारी ,
 लखे कठोर अयस अनुहारी ।
 नख-शिख संस्कृत छवि अभिरामा ,
 वज्राधिक कर्कश, भय-धामा ।

सुधा-धाम जनु सौम्य हिमांशू,
भयेउ ज्वलंत प्रखर उष्णांशू ।

दोहा :— लागेउ नट, अब सोइ सुभट, ब्रह्म-भूषित अंग अंग,
नासत रथ, रथि, सारथी, तुरंग, मत्त मातंग । १५४

सोरठा :—मूर्तिमंत रस वीर, मुग्ध विलोकित मगधपति,
घायेउ रोष अधीर, लखि पुनि झीजति सैन्य निज ।

जात बंधु दिशि देखि सक्रोधा,
रोधेउ रिपु-पथ हलधर योद्धा ।
प्रतिहत गति, आरक्त विलोचन,
कीन्हेउ मगधनाथ शर-मोचन ।
राम क्षतांग, रक्त-अभिषेका,
कर कोदण्ड, रोष उद्रेका ।
प्रेषे विशिख असंख्य सपत्ता,
विग्रह वैरि विदारण-दत्ता ।
आयुध विविध नरेन्द्र चलाये,
अंतरिक्ष हलि काटि गिराये ।
रण-दुर्मद, उन्मत्त भुआला,
लीन्हि ज्वलंत शक्ति विकराला ।
हाथहि माहि तीक्ष्ण शर प्रेरी,
नासी राम शक्ति अरि केरी ।
कोपस्फुरित अधर पुनि हलधर,
फेंकेउ दिव्य मुसल प्रलयंकर ।

दोहा :— ध्वस्त पताका, चूर्ण रथ, हत सारथी तुरंग,
आहत मागध माहि पतित, गत मद, समर-उमंग । १५५
उत्थित उत्तर ताहि क्षण, विजय-निनाद कराल,
दिखी रौद्र यदुवाहिनी, पछियावति शिशुपाल । १५६

सोरठा :—जर्जर हरि-शर-जाल, लखि नव बल भागे असुर,
हलधर-मुसल-विहाल, मगध भुआलहु रण तजेउ ।

लज्जित, वीत-प्रभाव मगेशा ,
 गयेउ विवर्ण त्रस्त निज देशा ।
 विजय-वाद्य यदु सैन्य बजाये ,
 लूटे मगध-शिविर मन भाये ।
 फिरे जीति रिपु हर्ष अपारा ,
 पुलकित पुरजन नगर सँवारा ।
 सिक्त वीथि-शत मृगमद चंदन ,
 जयस्तंभ मणि काञ्चन तोरण ।
 केतन विविध विचित्र सोहाये ,
 सौध-शिखर तिय, पथ नर छाये ।
 दुंदुभि, वीणा, वेणु-निनादा ,
 ध्वनित नगर श्रुति-मंत्रन-नादा ।
 थल थल लाज प्रसून-प्रवर्षा ,
 प्रविशे पुरी प्रवीर सहर्षा ।
 यहि विधि लै सँग सैन्य विशाला ,
 चढ़ेउ सप्त-दश बार भुआला ।

बोद्धा :—रक्षित निशि-दिन मधुपुरी, माधव-भुज-प्राकार ,
 सकेउ प्रवेश न करि असुर, तजेउ समर प्रति बार । १५७

सोरठा :—पुनि सरोष मगधेश, कीन्ह निमंत्रित यवन-पति ,
 निज माण्डलिक नरेश, प्रेरे सब सेना सहित ।

काल यवन लहि मगपति-पाती ,
 चलेउ सवाहिनि भुवन-अराती ।
 भारत-नृपहु मगध-सामन्ता ,
 चले सदल ब्रज ओर अनंता ।
 भौम प्राग्ज्योतिषपुर-स्वामी ,
 पौण्ड्रक मगध-दास, अनुगामी ,
 बली बृहद्बल कोशल-राजा ,
 मद्र-महीप शल्य महाराजा ,
 शकुनि कुटिल गान्धार-कुमारा ,
 रुक्मी भीष्मक-तनय जुभारा ।

दंतवक्र कारुष-महीशा ,
जयद्रथ सिन्धुदेश-अवनीशा ।
शाल्व विमान-बली, विकराला ,
काशि-नरेश, चैद्य शिशुपाला ।
पाण्ड्य, चोल दक्षिण दिशि-वासी ,
शवर नृपति गिरि विन्ध्य-निवासी ।

दोहा :— आर्य, यवन, दानव, असुर, बर्बर नाना जाति ,
चली चमू चहुँ ओर ते, गज, रथ, वाजि, पदाति । १५८

लय-घन घिरत देखि यदुरायी ,
कहे वचन यदुजनन सुनायी—
“आवत उत्तर ते यवनेशा ,
म्लेच्छ विपुल सँग, वाजि अशेषा ।
बलु सरित ते ब्रज पर्यन्ता ,
नृप सब जरासंध-सामन्ता ।
बली पाण्डु कुरुजाङ्गल राजा ,
हिमगिरि जाय बसेउ तप-काजा ।
पथ प्रशस्त यवनन हित सारा ,
कहुँ कोउ तिनहि न रोकनहारा ।
अन्य दिशन ते आर्य, विजाती ,
चढ़े कराल असंख्य अराती ।
घिरेउ चतुर्दिक मधुपुर आजू ,
नहिँ कोउ सुहृद, न सेना साजू ।
सन्मुख समर वंश अवसाना ,
युक्ति न दुर्ग-शरण तजि आना ।

दोहा :— समतलस्थ मथुरा नगर, नहि गिरि वारि सहाय ,
प्रबल शत्रु शस्त्रास्त्र बल, देहैं दुर्ग ढहाय । १५९

गयेउँ जबहिँ मैं गुरु-सुत लावन ,
पश्चिम उदधि लखेउँ अति पावन ।

तट-महि लागि तहँ द्वीप अशेषा ,
 स्वप्नहु शक्य न शत्रु-प्रवेशा ।
 तिन महेँ श्रेष्ठ कुशस्थल द्वीपा ,
 शैल रैवतक रम्य समीपा ।
 भेंटत जहँ गिरि जल सुख मानी ,
 राखहु तहँ यदुकुल-रजधानी ।
 करहिँ जो निज रक्षा हम आजू ,
 बढिहै दिन-दिन धन जन राजू ।
 करत प्रबल सँग सकल मिताई ,
 मिलिहैं क्रम क्रम हमहिँ सहायी ।
 पाय सुअवसर, रिपुहिँ प्रचारी ,
 सकिहैं सहजहिँ हम संहारी ।
 देहिँ निदेश जो नृप हर्षायी ,
 करहुँ सुपास आपु मै जायी ।”

दोहा :— व्यथित जदपि यदुजनसकल, छूटत देखि स्वदेश ,
 कुल-संरक्षण-हित-विकल, अनुमति दीन्हि नरेश । १६०

सोरठा :— सुनि यदुजन-आधार, गये आपु आनर्त हरि ,
 विरची भारत-द्वार, उदधि-सुता द्वारावती ।
 नृप स्वजन्मन पहुँचाय, फिरे श्याम हलधर सहित ,
 घेरेउ मधुपुर आय, काल यवन ताही समय ।

नगर-द्वार उत यवन प्रचारत ,
 इत गोविंद मन माहिँ विचारत—
 मधुपुर तजत न रंच सँकोचू ,
 छूटत ब्रजजन उर अति शोचू ।
 गयेउँ न कबहुँ, सुधिहु नहिँ लीन्ही ,
 लहिँ मै प्रीति व्यथा बहु दीन्ही ।
 बसिहौँ दूरि द्वारका जायी ,
 तजिहैं तनु ब्रजजन बिलखायी ।
 उद्धव सुहृदहिँ श्याम बोलावा ,
 “जाहु अबहिँ ब्रज,”—वचन सुनावा ।

जानि सुमति सब कहेउ ब्रजेशू,
चलेउ सचिव लै प्रेम-सँदेशू।
बंधुहिं बहुरि कहेउ असुरारी—
“रहि पुर सजग करहु रखवारी।
जब लगि पहुँचि सकै मगधेशा,
आवहिं जब लगि अन्य नरेशा,

दोहा :— यवनेशहिं निज सैन्य ते, तब लगि मैं बिलगाय ,
नसिहौं शैल अरण्य कहुँ, विकट थलन भरमाय ।” १६१

अस कहि तजि निज आयुध स्यंदन ,
निकसे नगर-द्वार यदुनंदन।
प्रकटेउ जनु गिरि-गुहा विहायी ,
मदगज-दर्प-दलन मृगरायी।
लखेउ यवन, मन तर्क बढ़ावत ,
को यह समर निरायुध आवत ?
अतसी-सुमन देह-द्युति श्यामा ,
शरद सुधांशु वदन अभिरामा।
वनज अक्ष, भुज वक्ष विशाला ,
तिलक ललाट, हृदय वनमाला।
चिबुक चारु, गंभीर, हठीली ,
गति अशंक, उद्धत, गर्वीली।
शिर किरीट, श्रुति कुण्डल-धारी ,
कटि कौशेय पीत मनहारी।
लखि यवनेश हृदय अनुमाना ,
यहै कृष्ण छवि-शौर्य-निधाना।

दोहा :— लखि मम विक्रम वाहिनी, रण-जय-आस विहाय ,
दीन भाव दरसाय शठ, चाहत जान पराय । १६२

जानि यवन-मन-गति यदुरायी ,
विरमि, हेरि, हँसि चले परायी।

जनु दृग-कर्षित यवन अभागी ,
 चलेउ ससंभ्रम पाछे लागी ।
 गहन चहेउ खल गहि नहि पावा ,
 इत उत धावत म्लेच्छ बरावा ।
 जात दूरि हरि श्रम दरसावत ,
 उपजति आस, कुमति पुनि धावत ।
 लखि समीप आयेउ यवनेशा ,
 विहँसत, धावत बहुरि ब्रजेशा ।
 तपन-रोष-परितप्त भुआला ,
 पछियावत श्रम-स्विन्न, विहाला ।
 परिचित गिरि वन श्याम सयाने ,
 यवन भ्रमाय गहन अनजाने ,
 लता-प्रतानन रहे दुरायी ,
 खल-वैकल्य लखत मुसकायी ।

दोहा :— अकस्मात प्रकटे बहुरि, हरि गिरि-गह्वर-द्वार ,
 धायेउ म्लेच्छहु क्रोध जरि, बरसत नयन अँगार । १६३

लखि इत उत सचकित भगवाना ,
 दरसायी भय भीति महाना ।
 कीन्ह धाय पुनि गुहा प्रवेशा ,
 भावी-विवश धँसेउ यवनेशा ।
 द्रुमाभील पथ शिला विशाला ,
 अन्तराल गाढ़ान्ध कराला ।
 बढ़त अशंक जात विश्वेशा ,
 यवनहु विवश रोष आवेशा ।
 औचक लखे कोउ मुनिरायी ,
 मग्न समाधि विश्व बिसरायी ।
 कौतुक ही पट पीत उतारी ,
 दीन्हेउ हरुये मुनि-अँग डारी ।
 शिला एक पुनि लखी समीपा ,
 रहे ओट दुरि यदुकुल-दीपा ।

तेहि क्षण काल यवन तहँ आवा ,
लखि पट पीत रोष तनु छावा ।

दोहा :— पदाघात कीन्हैउ प्रबल, कहत यवन कटु बैन ,
भग्न योग-निद्रा त्वरित, उधरे मुनिवर-नैन । १६४
अग्नि-पुञ्ज प्रकटेउ अमित, तड़ित-सहस्र कराल ,
भयेउ भस्म तत्काल खल, जरि योगानल-ज्वाल । १६५

शिला विहाय, मंद मुसकायी ,
प्रकटे मुनि समक्ष यदुरायी ।
विनय-धाम पद कीन्ह प्रणामा ,
जोरिं पाणि पूछेउ पुनि नामा ।
लखि हरि-तेज, दिव्य जन जानी ,
आत्म-कथा मुनिवर्य बखानी—
“उपजेउ त्रेता नृप मान्धाता ,
मैं मुचुकुन्द तासु अँगजाता ।
सुरपुर जब तारक चढ़ि आवा ,
मोहिं सहाय हित इन्द्र बोलावा ।
निवसत तहँ नारद मुनिरायी ,
विष्णु भक्ति मोहिं सविधि सिखायी ।
लौटि, सुतहिं दै पैतृक राजू ,
आयेउँ यहि कानन तप काजू ।
शान्त गुहा लखि कीन्ह निवासा ,
लागि समाधि, नष्ट भव-त्रासा ।

दोहा :— को दुर्मति यह आजु मोहि, सहसा दीन्ह जगाय ,
कवन अलौकिक रूप तुम, कहहु सकल समुझाय” । १६६
प्रकटेउ दिव्य स्वरूप निज, केशव आनंद-कंद ,
गवनेउ मुनिहिम-शैल दिशि, लहि तप-फल सानंद । १६७

सोरठा :— यहि विधि दस्यु नसाय, हरि इत मधुपुर दिशि चले ,
उत उद्धव ब्रज जाय, श्री-हत वन, खग, मुग लखे ।

निर्जन वृन्दावन द्युति-हीना,
 सूखे वृण-तरु, जीव मलीना।
 अनल-पुञ्ज इव कुञ्ज लखाहीं,
 खग-मृग भीत समीप न जाहीं।
 देखि न परत चरत कहूँ धेनू,
 कतहुँ न बाल बजावत वेणू।
 विरह विकल यमुना अति कारी,
 हहरति बहति विरह-ज्वर-जारी।
 विरहित कान्ति रेणु, कुश, काँसा,
 धार न नाव, न तट कल हासा।
 म्लान तमाल न शिखि शिर धारत,
 अब नहिं कृष्ण-रूप अनुहारत।
 विकसत कमल न सरि सर माहीं,
 परति सुनाय मधुप-ध्वनि नाहीं।
 मौन पपीहा, नहिं खग-कूजन,
 भक्त कानन भींगुर-भक्तभक्तन।

दोहा :— पत्र, कुसुम, फल-हीन तरु, कतहुँ न मधु पिक-राग,
 बहत न मंद समीर वह, उड़त न पुष्प-पराग। १६८

दिन-शशि इव निशिनाथ लखाहीं,
 ब्रज जनु करत प्रकाश लजाहीं।
 खरिक शून्य, नहिं गोप, न गाई,
 विजन वीथि नहिं पथिक लखायी।
 गोपिन गृह प्रदीप नहिं बारे,
 चेतन-हीन भवन ब्रज सारे।
 आयेउ उद्धव-रथ नँद-द्वारे,
 देखे महर जानु शिर धारे।
 श्याम-वियोग विकल अति दीना,
 दै जनु कल्पवृक्ष विधि छीना।
 रथ-घर्घर सुनि आतुर धाये,
 पुलकित कहत 'श्याम फिरि आये' !

लखे जबहि उद्धव ढिग जायी,
हृदय-व्यथा हिय माहि दुरायी।
रथ ते प्रीति प्रदर्शि उतारा—
“कृपा प्रभूत तात ! पगु धारा।

दोहा :—सुर-गुरु सम मतिमान प्रभु, सचिव सुवंश सुनाम,
धन्य आजु ब्रज ग्राम यह, धन्य आजु मम धाम।” १६६

आसन अर्घ्य लाय गृह दीन्हा,
बहु विधि पूजन अर्चन कीन्हा।
व्यंजन सरस सप्रेम खवाये,
शय्या मृदुल लाय बैठाये।
आयी सुनत धाय नँदरानी,
लागति औरहि जाति न जानी।
बिछुरत श्याम नयन भरि आये,
बहत अबहुँ, नहिं थमत थमाये।
सुमिरि सुमिरि उपजति उर पीरा,
बहति नयन-मग, गलत शरीरा।
अस्थि-मात्र अब अंब लखायी,
जनु ब्रज-व्यथा देह धरि आयी।
लखि यशुमति उद्धव अनुरागे,
बिसरी नीति, प्रीति-रस पागे।
तजि शय्या पद-वंदन कीन्हा,
कहि हरि-कुशल धैर्य बहु दीन्हा—

दोहा :—“पठयेउ नेह-सँदेश हरि, ‘जब ते बिछुरेउँ माय !
माखन देत न कोउ मोहिं, कोउ न कहत कन्हाय’।” १७०

वचन सुधा-सम सुनि मुसकानी,
जागी जनु सोवत नँदरानी।
पूछति जल-कण नयन दुरायी—
“औरहु कछु मोहिं कहेउ कन्हाई ?”

कहेउ कान्ह, “सुनु मइया मोरी,
 निशि दिन मोहिं आवति सुधि तोरी ।
 मथुरा-वासिन करि चतुराई,
 मोहिं पहरवा दीन्ह बनायी ।
 नित प्रति असुर पुरी चढ़ि आवहिं,
 शिशु विलोकि मोहिं मारन धावहिं ।
 जानत नहिं यशुमति जन्मावा,
 पय पियाय मोहिं बली बनावा ।
 सुमिरि तोहिं जब करहुँ लरायी,
 निमिष माहिं अरि जात परायी ।
 तोरिहि कृपा विजय मैं पावहुँ,
 आशिष देहि जीति रिपु आवहुँ ।

बोहा :— देश-धर्म-त्रासक असुर, देहीं जबहि नसाय,
 करिहौ तनिक विलम्ब नहिं, अइहौ मइया ! धाय । १७१

तब लगि लकुटी कमरी मोरी,
 धरेउ सैति भँवरा चकडोरी ।
 राखेउ मुरली कतहुँ लुकायी,
 लै जनि राधा जाय चुरायी ।”
 सुनति, हँसति, बिलपति महतारी,
 सुखी श्याम सुनि आपु सुखारी ।
 आशिष देति, कहति समुझायी,
 कहेउ सँदेश देवकिहिं जायी—
 “जदपि कान्ह मम आँखिन-तारा,
 हरन चहहुँ नहिं तनय तुम्हारा ।
 देखेउँ सोचि हृदय निज माहीं,
 हरि सबके, एकहि के नाही ।
 बसे जदपि मोहन मम धामा,
 मोहेउ बरसि नेह ब्रज ग्रामा ।
 भवन भवन उत्पात मचावा,
 भवन भवन दधि माखन खावा ।

भवन भवन जोरेउ हरि नाता,
भवन भवन गोपी हरि-माता ।

दोहा :— ताते मैं विनती करहुँ, मानि मोहिं हरि-धाय ;
मोहन मूरति बार इक, कैसेहु देहु दिखाय । १७२

कहेउ बहुरि श्यामहु ते जायी,
आय वदन विधु जाहिं देखायी ।
जेतिक चहहिं खाहिं हरि माटी,
अब नहिं कबहुँ छुअहुँ कर साँटी ।
मन-माने गृह-भाजन फोरी,
जेतिक चहहिं करहिं हरि चोरी ।
अब नहिं ऊखल बैधिहै मइया,
कहिहौं पुनि न चरावन गइया ।”
अटपट वचन कहति नँदरानी,
सुनत नंद उद्धव सुख मानी ।
देखेउ गोपिन रथ तेहि काला,
संभ्रम दौरि परी ब्रज-बाला ।
वैसहि स्यंदन, वैसेहि चाका,
वैसेहि फहरत ध्वजा पताका ।
वैसहि सकल साज रथ जोरे,
वैसेहि श्वेत परत दिखि घोरे ।

दोहा :— विहँसहि एकहिं एक कहि, ‘आये सखी ! कन्हाय !’
जो जैसी तैसिहि चलीं, विह्वल नँद-गृह धाय । १७३

पहुँचीं सकल यशोमति-धामा,
लखि उद्धव सहमीं ब्रज-वामा ।
पठये सखा, श्याम नहिं आये,
सूखे अधर, दृगन जल छाये ।
चितवहिं सकल ठगी-सी ठाढ़ी,
विरह-व्यथा जागी पुनि गाढ़ी ।

देखीं उद्धव : सब ब्रज-नारी,
व्याकुल जिमि यशुमति महतारी ।
कीन्हेउ सादर सबहिं प्रणामा,
कहेउ, “सुखी दोउ हरि बलरामा ।”
निरखि शील, सुनि हरि-कुशलाई,
बैठीं सब उद्धव ढिग आयी ।
कहहिं—“कवन अस चूक हमारी,
दीन्हेउ जो ब्रजनाथ बिसारी ।
घाट, बाट, वीथी, गृह, ब्रज, वन,
रहे साथ निशि-दिन नैदनंदन ।

दोहा :— टेरि टेरि मुरली स्वरन, नवल प्रीति नित कीन्हि,
कहँ वह रस ! कहँ रीति यह ! गयेन पुनि सुधिलीन्हि ।” १७४

हँसि कह उद्धव गोपिन पाहीं—
“हमरेहु श्याम, तुम्हारेहि नाहीं ।
एतिक दिवस कीन्ह ब्रज वासा,
बरसेउ आनँद हर्ष हुलासा ।
हम यदुजन सब रहे दुखारी,
भये अंध हग पंथ निहारी ।
कीन्ह कंस नित अत्याचारा,
सहे दिवस-निशि असुर-प्रहारा ।
लीन्हि हमारि न सुधि तुम ब्रजजन,
रहे मग्न अपनेहि सुख भोगन ।
गये काल्हि हरि मधुपुर माहीं,
पाये रहि दुइ दिन घर नाहीं ।
आयीं हरिहि लगावन दोषू,
रहीं प्रकटि हम सब पै रोषू ।
तुमहि कहहु कहँ भयी अनीती,
कीन्ही श्याम कवनि अनरीती ?

दोहा :— जेतिक दिन गोकुल बसे, बसहिं जो मधुपुर माहिं,
लोक, शास्त्र दुहुँ दृष्टि ते, अपराधी हरि नाहिं ।” १७५

सुनि सुनि उद्धव-वचन विहाला,
 रीम्नि खीम्नि बोलीं ब्रजवाला—
 “यदुजन सँग हरि कर कछु नाता,
 को अस कहै सुनै को बाता!
 जब लगि श्याम चरायीं गाई,
 परे न भाई-बंधु लखायी।
 जब अक्रूर क्रूर ब्रज आवा,
 कहेउ, ‘कंस नैद-सुवन बोलावा’।
 गयेउ साथ लै मधुपुर माहीं,
 राखेउ हरिहिं गेह कोउ नाहीं।
 तरुवर तरे कीन्ह हरि वासा,
 आयेउ यादव एक न पासा।
 भोर भये गज मल्ल हँकारी,
 चाहेउ कंस बधन बनवारी।
 भयेउ न सुफलक-सुवन सहायी,
 उद्धव गुनिहु न परे लखायी।

दोहा :— यशुमति-आशिष कंस बधि, विजयी भये कन्हाय,
 घर घर ते हरि-बंधु बनि, निकसे यदुजन धाय !” १०६

विहँसत कहहिं वचन तिय ग्रामा,
 भये चकित उद्धव मति-धामा।
 सूझ न उत्तर, हृदय लजायी,
 कहत, “कहाँ सीखी चतुराई?
 जानेउँ आजु भेद ब्रज-वामा!
 बतरस तुम भुरये घनश्यामा।”
 सुनि गोपिन पुनि गिरा उचारी—
 “बोलहु उद्धव ! वचन सँभारी।
 नीति-कुशल अति परिडत, ज्ञानी,
 सीखेउ शास्त्र वेद तुम मानी।
 सो तुम सूध, चतुर ब्रजनारी,
 तुमहि योग्य यह बात तुम्हारी !

लखि ब्रजजन प्रति मोहन-प्रीती,
व्यापी अति तुम्हरे उर भीती ।
लेहि न बहुरि मुरय हम श्यामहिं,
लाये संग न तुम हरि ग्रामहिं ।

दोहा :— मूठ साँच कहि श्याम ते, आये तुम ब्रज धाय,
औरहु कहिहौ मूठ अब, इत ब्रज ते उत जाय । १७७

दया करहु, त्यागहु कुटिलाई,
भेद-नीति यह देहु विहायी ।
कहेहु हरिहिं संदेश हमारा—
विकल मातु पितु ब्रज वन सारा ।
आवहिं बहुरि, बसहिं ब्रज माहीं,
माखन खाहिं बरजिहैं नाहीं ।
उरहन यशुदा ढिग नहिं लइहैं,
चोरी अब न उचारि बतइहैं ।
गहि अब कबहुँ गेह नहिं लइहैं,
वेणी हरि ते नाहिं गुहइहैं ।
चरण महावर नहिं लगवइहैं,
ता ता थे ई अब न नचइहैं ।
भूलि न कहिहैं कबहुँ 'कन्हवाई',
हाथ जोरि कहिहैं 'ब्रजरायी' ।
मधुपुर ते बढि गोकुल-राजू,
वहाँ अशान्ति, यहाँ सुख-साजू ।

दोहा :— बाल-सखा हरि के सुभट, सैन्य हमारी धेनु,
चलत उड़ति खुर-रेणु पथ, राज-वाद्य वर वेणु । १७८

औरहु कहेउ श्याम ते जायी—
ग्राम बसब जो नाहिं सोहायी,
मधुपुर रहहिं, कबहुँ ब्रज आवहिं,
दर्शन देहिं, हमहु सुख पावहिं ।

पूर्व सनेह बिसरि जो जाहीं,
बिसरव उचित नात नव नाहीं ।
जस पुरजन तस हम सब ब्रजजन,
श्याम श्रूप, हम दोउ प्रजाजन ।
जन-रंजन वर राजन-धर्मा,
प्रजा-प्रपीड़न घोर अधर्मा ।
प्रजहि जानि आवहिं इक बारा,
मिलहि दरस, कछु होय सहारा ।
तुम उद्धव ! मंत्री हरि केरे,
जात व्यथा नयनन निज हेरे ।
लावहु ब्रज पुनि हरिहिं बुझायी,
हिय-धन बहुरि देखावहु आयी ।

दोहा :— नाहित होइहै ब्रज उजरि, हरि बिनु शून्य मसान,
उर उर हरि-मूरति बसी, प्राणन मुरली-तान ।” १७६

अस कहि व्यथा-विकल ब्रजनारी,
सकीं न सहि हरि-विरह-दवारी ।
बाष्प कण्ठ, मुख फुरति न वाणी,
उद्धव-चरण बिलखि लपटानी—
“आनहु ब्रज अब वेगि कन्हई,
बूड़त ब्रज तुम लेहु बचायी ।
इन्द्र-कोप ते श्याम उबारा,
श्याम-कोप तुम होहु सहारा ।”
लखि करुणा उद्धव, अकुलाने,
ज्ञान, ध्यान, श्रुति, शास्त्र भुलाने ।
गये समुझि समुझाय न पावा,
धैर्य देत निज धैर्य गँवावा ।
आये पोंछन ब्रजजन-आँसू,
भलकेउ दृग जल, उष्ण उसासू ।
बहे आपु दुख-पारावारा,
अतल, अकूल, अगम्य, अपारा ।

दोहा :— गयीं गोपिका गेह निज, रटत रटत घनश्याम,
उद्धव काटी जागि निशि, जपत जपत हरि-नाम । १८०

शय्या त्यागि कल्लुक भिनुसारे,
मञ्जन हित सरि ओर सिधारे ।
पहुँचे जमुन तीर जस उद्धव,
परेउ श्रवण-पथ मधुर वेणु-रव ।
औचक चंद्र ज्योति निज पायी,
जल, थल, व्योम ज्योत्स्ना छायी ।
शीतल, मंद, सुगंध समीरण,
सहसा डोलि बहेउ वन कुंजन ।
तरुन प्रसून खिले हुलसायी,
भूली अवलि अलिहु कल गायी ।
कुहकी कोकिल, नाचे शिखिगण,
व्याम्र विहग-ध्वनि लता वितानन ।
विस्मित उद्धव चहुँ दिशि हेरा,
जागेउ वन जनु वंशी-प्रेरा ।
वंशीवट दिशि जबहिं निहारा,
छटा विलोकि पुलक तनु सारा ।

दोहा :— मोर मुकुट, पट पीत धृत, वनमाला अभिराम,
बादत वंशी धरि अधर, कोटि काम, छवि श्याम । १८१

पदतल लखी बहुरि कोउ वामा,
धरि सुमनाञ्जलि करति प्रणामा ।
लोचन चकित विलोक्त शोभा,
भक्ति-प्रवाह हृदय, मन लोभा ।
भयेउ अदृश्य दृश्य पल माहीं,
नहिं हरि कतहुँ, वाम कहुँ नाहीं ।
परी न पुनि कहुँ वेणु सुनायी,
वन तरु बहुरि गये मुरझायी ।
नहिं कहुँ कोकिल, नहिं कहुँ मोरा,
नहिं कहुँ खग-रव, नहिं अलि-शोरा ।

भयेउ प्रभा-विरहित पुनि शशधर ,
 प्रकटेउ प्राची दिशा दिवाकर ।
 उद्धव सत्वर सरित नहायी ,
 आये विस्मित नँद-गृह धायी ।
 यशुमति पार्श्व युवति सोइ देखी ,
 विह्वल उद्धव भये विसेखी ।

दोहा :— “श्याम-सखी राधा यहै,” कहेउ महारि मुसकाय ,
 “डरत मधुपुरहु जाहि हरि, मुरली लेति चोराय ।” १८२

गवनी राधा सुनत लजानी ,
 यशुमति प्रीति पुनीत बखानी ।
 “राधा-माधव”—कहि कहि माता ,
 सकुचति, आवति मुख नहिं बाता ।
 आये नँद, औरहु सकुचानी ,
 रही चुपाय बिलखि नँदरानी ।
 तेहि ज्ञान उद्धव अवसर पायी ,
 नंदहिं सादर विनय सुनायी—
 “असुर त्रास छायेउ पुर माहीं ,
 आयसु देहु, जाउँ हरि पाहीं ।
 कृष्ण अनादि, अरूप, अकारण ,
 नारायण, अच्युत, जग-तारण ,
 व्यापक ब्रह्म सदा सब पाहीं ,
 विरह-प्रसंग तहाँ कछु नाहीं ।
 अस मन गुनि हरि-पद सुखदायी ,
 सुमिरहु दोउ नित शोक विहायी ।”

दोहा :— कहि-कहि भक्ति-प्रसंग बहु, विविध ज्ञान-आख्यान ,
 ब्रजजन बंदि, प्रबोधि सब, उद्धव कीन्ह प्रयाण । १८३

उत दुर्मति यवनेश नसायी ,
 पहुँचे पुनि मधुपुर यदुरायी ।

यवनन सुनेउ निधन यवनेशा ,
 गवने अमित त्रस्त निज देशा ।
 आये बहु यदुपति-शरनाई ,
 राखे पूर्व वैर बिसरायी ।
 शिविर, शस्त्र, धन, धान्य घनेरे ,
 लहे प्रजाजन यवनन केरे ।
 हरि-प्रेरित बहु पुर नर नारी ,
 बसे जाय आनर्त सुखारी ।
 इतनेहिं महँ उद्धव चलि आये ,
 ब्रज-दुख-दुखी, विश्व बिसराये ।
 कहत व्यथा ब्रज छलकत लोचन ,
 दुखी आपु सुनि सुनि दुख-मोचन ।
 वंशीवट-प्रसंग जब आवा ,
 विकल सचिव, हरि वचन सुनावा—

श्लोका :—“एकहि मैं अरु राधिका, द्वैत-भाव भव-भ्रान्ति ,
 ब्रजजन समुक्ति रहस्य यह, लहिहैं पुनि सुख-शांति ।” १८४

अस कहि हरि सुहृदहिं समुझायी ,
 दीन्हेउ द्वारावती पठायी ।
 परे तबहिं रण-वाद्य सुनायी ,
 मगध-वाहिनी पुर चढ़ि आयी ।
 कहेउ हलधरहिं हरि मुसकायी—
 “चलहु संग मम पुरी विहायी ।
 मगपति हारि सप्त-दश बारा ,
 आयेउ अन्तिम करन प्रहारा ।
 बचेउ न भारतवर्ष नरेशा ,
 लायेउ जेहि न संग मगधेशा ।
 ये महीप नहिं शत्रु हमारे ,
 येहु मगध-त्रस्त, रण-हारे ।
 होइहै भिरे समर अति भारी ,
 पड़हैं कछु न इनहिं हम मारी ।

रक्त-पात नहिं, मम उद्देशा ,
उचित न बधव निरीह नरेशा ।

दोहा :— ताते सम्मति तात ! मम, निष्फल अब संग्राम ,
गवनहिं जो आनर्त हम, जइहै रिपु निज धाम । १८५

जात हमहिं लखि पुरी विहायी ,
जइहै रिपुहु हमहिं पछियायी ।
बचिहै क्षति ते पुर यहि भाँती ,
फिरिहैं निज निज देश अराती ।”
नीति-युक्त यद्यपि हरि-वाणी ,
सुनत अधीर राम अति मानी ।
चितै बंधु तन कहेउ सक्षोभा—
“भाषत हरि ! कस वचन अशोभा ।
युद्ध सनातन क्षत्रिय-धर्मा ,
समर-पलायन कायर-कर्मा ।
तजहिं समर-महि हम जो आजू ,
होहिं कलंकित शूर-समाजू ।
विमल वंश यदु सुयश-विनाशा ,
परिजन, पुरजन, राष्ट्र हताशा ।
नगर नगर प्रति होहि हँसायी ,
गये कृष्ण बलराम परायी ।

दोहा :— नासि कीर्ति कुल, लहि अयश, धारत जे जग प्राण ,
अधम श्वान सम ते मनुज, जीवित मृतक समान । १८६

सबल संग जो वैर बिसायी ,
निवसत उदासीन गृह जायी ,
सो समीप जनु पावक जारी ,
सोवत अभिमुख प्रबल बयारी ।
वैर जदपि सम रवि शशि साथी ,
प्रसत सतर्क राहु दिननाथा ।

प्रसत हिमांशु न लावत देरी,
सो महिमा सब अदिमा केरी।
औरहु प्रकट चंद्र-मृदुताई,
धारत मृगहि अंक अपनायी।
तबहुँ न ताहि प्रशंसत सज्जन,
निंदत जगत कहत 'मृग-लाब्धन'।
निठुर सिंह मृग-यूथ नसावत,
कहत मृगेश विश्व यश गावत।
रौंदत सब पद-तल लखि छारा,
सबहि बचाय चलत अंगारा।

दोहा :— नासि शत्रु, पद शीश धरि, करत शूर जब हास,
पाय सुगम अवलम्ब तब, चढ़ति कीर्ति आकाश ।” १८७

मुनि विहँसे हरि पुनि समुभावा—
“हलधर-सुयश भुवन भरि छावा।
जानत रिपुहु शौर्य-बल-गाथा,
हारेउ रण पुनि पुनि मगनाथा।
क्षत-विक्षत मगधेश-शरीरा,
हरियर व्रण, आजहु उर पीरा।
सकहु नसाय नृपन पल माहीं,
सकहु सैन्य बधि संशय नाहीं,
उचित न तदपि सदा संग्रामा,
युद्ध निरर्थक गर्हित कामा।
केवल बल श्वापद-व्यवहारा,
बुद्धि-युक्त मानव-आचारा।
बुद्धि-साध्य जब लागि नृप-कर्मा,
गहब युद्ध-पथ धोर अधर्मा।
वरनी मुनिन चतुर्विधि नीती,
उचित न एक दण्ड पै प्रीती।

दोहा :— सोइ नृपति जो, तेज-युत, देत तदपि नहिं ताप,
लरत जे भूपति नित्य उठि, ते बसुधा-अभिशाप । १८८

ताते तात ! कहहुँ समुभायी ,
 आजु तजे रण भूरि भलाई ।
 बसि द्वारावति, शक्ति बढ़ायी ,
 करिहैं रण पुनि अवसर पायी ।
 लहि मगपतिहिं कतहुँ एकाकी ,
 लेहैं करि हमहू निज जी की ।”
 अस कहि गहि संकर्षण-हाथा ,
 पुर बाहर निकसे यदुनाथा ।
 आगे हरि, पाछे बलरामा ,
 अग्रज खिन्न, शान्त घनश्यामा ।
 असुर शिविर जैसेहि नियराने ,
 सैनिक इत उत देखि सकाने ।
 नृपतिन सुनेउ राम हरि आये ,
 शिविर-द्वार निज निज सब धाये ।
 ‘धावहु, धरहु’—कहत शिशुपाला ,
 बढेउ संग लै कछुक भुआला ।

दोहा :—मगधनाथ बरजेउ सबहिं, बरनि यवन-पति नाश,
 “धेरहु अरिहिं ससैन्य सब, मिलहि न कतहुँ निकास ।” १८६

सुनत चले दोउ बंधु परायी ,
 चले ससैन्य नृपति पछियायी ।
 प्रेरत पल पल सकल महीशा ,
 धायेउ आपहु मगध-अधीशा ।
 लखि रिपु-रोष श्याम मुसकाहीं ,
 विरमि करत रण बहुरि पराहीं ।
 जात दूरि करि अरि-मद-भंगा ,
 तन-द्युति मिलति क्षितिज-रँग संगी ।
 फहरत पट पावत रिपु भासा ,
 धावत बहुरि धारि उर आशा ।
 निरखि समीप महीप-समाजू ,
 होत अदृश्य बहुरि यदुराजू ।

लखत अमर उत नभ हरि-करनी ,
पुलकित परसि चरण इत धरणी ।
छुअत मृदुल हरि-पद-जलजाता ,
कंटक होत कुसुम, कुश पाता ।

बोहा :— होत सुगम कान्तार गिरि, सर सरि विरहित वारि ,
मेव शीश छाया करत, श्रम-हर बहति बयारि । १६०

सोरठा :— साग्रज धाय ब्रजेश, चढे प्रवर्षण गिरि-शिखर ,
ठढे घेरि नरेश, शैल-मूल सब सैन्य सह ।

राजत शिला-खण्ड सुख-धामा ,
राजत पार्श्व बंधु बलरामा ।
पर-दिगाङ्गना भाल सोहावा ,
उदित तिलक सम शशि मनभावा ।
दमके शिर-किरीट, श्रुति-कुण्डल ,
भलभल दल कपोल, मुख मण्डल ।
मणि-द्युति-मण्डित मेचक केशा ,
सुर-धनु-भूषित जनु घन-वेषा ।
पिक मधु रव मुखरित गिरि कानन ,
पुलकेउ दिव्य प्रभा प्रभु-आनन ।
विस्मृत हरि रण, रिपु-समुदायी ,
लखत व्योम महि सुन्दरताई ।
परमानंद प्रकट अंग अंगा ,
आत्म-मग्न हरि शान्ति अभंगा ।
परत न श्रुति मगपति-दुर्वादा ,
उत्तर देत शैल-प्रतिनादा ।

बोहा :— पल पल बढ़ी निशीथ पै, उतरे नहि यदुराय ,
गिरि चहुँ दिशि मगपति कुपित, दीन्हेउ अनल लगाय । १६१

सोरठा :— बढ़ी ज्वाल उदाम, प्रेरेउ अनुजहि हलि विहँसि ,
गवने साग्रज श्याम, द्वारावति निज योग-बल ।
जरेउ ज्वलित गिरि-देश, जरे जानि दोउ अरि अनल ,
गये मुदित निज देश, मूढ़ मगेश, नरेश सब ।



द्वारका काण्ड



सोरठाः—बसेउ वारिनिधि कोड़, रक्तगत-भयभीत जो ,
बंदहुँ सोइ रणछोड़, इष्टदेव आनर्त-जन ।
सिन्धु-सुता अभिराम, असुर-त्रस्त-यदुजन-शरण ,
दहुँ शुचि हरि-धाम, रमा-रूप द्वारावती ।

बसे समुद यदुजन, यदुरायी ,
असुर-अभेद्य पुरी मन भायी ।
गहिर रसातल, भीमाकारा ,
परिखा आपु पयोधि अपारा ।
शैल-सलिल-अनुसरि प्राकारा ,
सहज अगम्य, चक्र-आकारा ।
श्रान्त मनहुँ भव-भारं उठायी ,
परिखा-मार्ग शेष महि आयी ,

वप्र-स्वरूप धारि बल-धामा ,
 रच्छत हरि-पुर, लहत विरामा !
 योजन-त्रय रैवतक पहारा ,
 योजन-त्रय वाहिनि-विस्तारा ।
 शत-शत सैन्य-व्यूह प्रति योजन ,
 व्यूह-व्यूह द्वारस्थ वीरगण ।
 द्वार-द्वार आयुध प्रलयंकर ,
 अयःकरणप, चक्राश्म भयंकर ।

दोहा :— धारि शक्ति, तोमर, परिघ, शूल, धनुष, करवाल ,
 अष्ट प्रहर रहि भट सजग, रच्छत दुर्ग विशाल । १

जन-दृग-उत्सव, अरि-मद-गंजनि ,
 माया-विरचित, हरि-मन-रंजनि ,
 दुर्ग-समावृत पुरी-प्रसारा ,
 करति कला जहँ प्रकृति-सिंगारा ।
 सितमणि-रचित भवन, प्रासादा ,
 धवलित सुधा, नयन आह्लादा ।
 प्रसरत भूमि व्योम आलोका ,
 दिन-भ्रम बसत सुखी निशि कोका ।
 शिशिर हेतु गृह सौध सोहाये ,
 दिनमणि-कान्त मणिन निर्माये ।
 दिवस अंशुमत-रश्मि समायी ,
 वितरति ऊष्मा निशि सुखदायी ।
 ऋतु निदाघ हित बहु रम्यस्थल ,
 सलिल-यंत्र-युत विपुल हर्म्यतल ।
 चंद्रकान्त मणि-निर्मित कण कण ,
 वितरत शैत्य द्रवत शशि-किरण ।

दोहा :— भवन भवन मणि स्वर्णमय, कुञ्जस्तंभ कवाट ,
 जाल, अर्गला, दैहली, बलभी, वीथी, बाट । २

धूप-कपूर-धूम नभ जनु घन,
 नर्तत शाखिन भ्रान्त शिखीगण ।
 मणिगण पण्य अगण्य विपणि पथ,
 जन-संमर्द, गजेन्द्र, वाजि, रथ ।
 किसलय, कोरक, लता, प्रताना,
 फल-विनम्र तरुवर उद्याना ।
 वरसत यंत्र-निबद्ध-कलश रस,
 उपवन व्याप्त दिवस-निशि पावस ।
 कुक्कुट, किलकिल, चक्र, वरट वर,
 लवखग-कलकल-कलित सरोवर ।
 सागर-जलकण-सिक्त प्रभञ्जन,
 बहत प्रबल श्रम-आतप-गञ्जन ।
 लहरत जलधि, बढत, घटि आवत,
 दोल भुलाय पुरी जनु गावत ।
 गिरि-गौरव, सागर-गहराई,
 द्वारावति सहजहि दोउ पायी ।

दोहा :— माया-निर्मित द्वारका, वसुधा विभव विशाल,
 मणि मुक्तन खेलत जहाँ, पथ-वीथिन पुर-बाल । ३
 व्योम-विचुम्बित नृप-भवन, राजत ध्वज अभिराम,
 फहरत, प्रेरत भानु-रथ, लहत अरुण विश्राम । ४

मगध-आक्रमण-त्रास विसारी,
 निवसति माथुर प्रजा सुखारी ।
 वारिधि-रन्ध्रित यदुजन निर्भय,
 यदुजन-रक्षित उदधि वीत-भय ।
 असुर, यवन जल-दस्यु अनेकन,
 नासे क्रम क्रम हलि, मधुसूदन ।
 विरहित म्लेच्छ वारिनिधि-द्वीपन,
 बसे साहसिक जाय आर्यजन ।
 सागर-पथ प्रशस्त पुनि पायी,
 प्रमुदित सांयात्रिक-समुदायी ।

भारत-पोत अनेक विधाना,
लागे करन विदेश प्रयाणा ।
हरि-भुज-रक्षित वणिक् प्रवासी,
लावत रौप्य, स्वर्ण, मणि-राशी ।
जलनिधि-पश्चिम-तट-जन सारे,
भये अभय, श्री-सुवन, सुखारे ।

बोद्धा :— उदधि पार व्यापार हित, पुरी द्वारका द्वार,
रत्नाकर ते बढि भयी, मणि-रत्न-भंडार । ५

उग्रसेन-उर आनंद भारी,
प्रभु-प्रसाद पाये फल चारी ।
सकल सम्पदा सुरपुर केरी,
हरि-बल आय भयी नृप-चेरी ।
स्वर्ग न लहत भोग जो सुरगण,
भोगत बसि द्वावावति यदुजन ।
यदुकुल-गौरव-विभव सोहावा,
भुवन चतुर्दश नारद गावा ।
ब्रह्मलोक पहुँची यश-गाथा,
निवसत जहँ रेवत नरनाथा ।
सुता रेवती तासु कुँवारी,
अनवद्यांगि रूप-उजियारी ।
लहि धाता-सम्मति, आदेशा,
आयेउ द्वावावती नरेशा ।
ब्याही नृपति सुता बलरामहिं,
हलधर मुदित पाय वर वामहिं ।

बोद्धा :— उग्रसेन प्रमुदित हृदय, उत्सव सजेउ महान,
शौरिहु धेनु सुवर्ण मणि, दीन्हे विप्रन दान । ६

एक दिवस प्रिय उद्धव साथी,
सुखासीन उपवन यदुनाथा ।

उन्मुख अस्ताचल दिशि भानू,
ज्वलित जलधि-जल मनहुँ कृशानू ।
ताहि समय इक द्विज शुभ वेषा,
प्रविशेउ उपवन श्रान्त विशेषा ।
वसन धूलि-कण, गौर शरीरा,
मुख सतेज, पद-प्रगति अधीरा ।
लखि समीप प्रभु आसन त्यागी,
प्रणमे साधु-सुजन-अनुरागी ।
अभिनंदत पृष्ठी कुशलाई,
भाषि 'स्वस्ति' द्विज विनय सुनायी—
“नाथ ! विदर्भ देश मम वासू,
नृप भीष्मक यश-शौर्य-निवासू ।
रुक्मि भूप-सुत दारुण जनु फणि,
सुता भुवन-भामिनि-मणि रुक्मिणि ।

दोहा :—कुमुद देह, पूरौन्दु मुख, कर पद उषा-विलास,
वेणि श्रेणि अलि, मधु अधर, शरद चंद्रिका हास । ७

सोरठा :—नाथ विमल यश गान, सुनि नारद-मुख पितु-भवन,
धरति दिवस निशि ध्यान, अर्पित तन मन प्रभु-चरण ।

दर्पी रुक्मि कुमति, कुल-पांशू,
सखा असाधु, मगधपति-दासू ।
भगिनि-मनोरथ सुनि बरियायी,
सुहृद चैद्य सँग रची सगाई ।
सुत-हठ टारि सकेउ नहिं राजा,
साजे सब विवाह हित साजा ।
रुक्मिणिहू भीषण प्रण ठाना,
बरहुँ हरिहि, नतु त्यागहुँ प्राणा ।
निश्चित दिवस तृतीय विवाहू,
हाथ द्वारकानाथ निबाहू ।
उत शठ-हठ, इत भक्त-प्राण-प्रण,
अशरण-शरण तुमहि कह मुनिजन ।

प्रणत-पाल प्रभु ! विरुद तुम्हारा ,
करहु धाय निज जन-उद्धारा ।
सुरपति-गर्व खर्वि खगरायी ,
हरि अमृत जिमि महिमा पायी ,

दोहा :— तिमि दलि नृप-मण्डल सकल, सहित चैद्य मगनाथ ,
हरि रुक्मिणि वसुधा-सुधा, सुयश लहहु यदुनाथ !” ८

विप्र वचन सुनि हरि मन आयी ,
गिरा जो मालव-रानि सुनायी ।
हास-सुमन पत्राधर फूला ,
मन अनुकूल, वचन प्रतिकूला—
“नृप-सुत मै न सुनहु द्विजदेवा !
भरहुँ उदर नित करि पर-सेवा ।
राज-त्रास मम शैशव बीता ,
अजहुँ बसहुँ जल मगपति-भीता ।
ग्रन्थि सनेह संग मम जोरी ,
पति-सुख चाहति कुँवरि अति भोरी ।
उदासीन जे धन नहिं गेहा ,
निर्मम, पुत्र कलत्र न नेहा ,
सबल संग हठि ठानत रारी ,
आत्म-तोष जे नित्य सुखारी ,
चरित अचिन्त्य सदा जिन केरे ,
तिन सँग प्रीति कलेस घनेरे ।

दोहा :— वंश-विभव-सम्यक् वर, त्यागि चैद्य शिशुपाल ,
करति उचित नहिं नृप-सुता, दैति मोहिं वरमाल ।” ९

सोरठा :— “प्रभु कौतुक-आवास”—बोलेउ विहँसि सुबुद्धि द्विज ,
“कीन्ह नाथ परिहास, भयेउ पूर्ण अब काज मम ।

प्रकटी प्रभु जो निज लघुताई ,
सो सब नारद पहिलेहि गाथी ।

निर्मम नाथ न यहि संदेहू,
साँचहु उदासीन, बिनु गेहू।
अप्रिय तुमहिं राज-पद स्वामी !
तबहुँ लोक-त्रय पद-अनुगामी।
सोउ नाथ ! नहिं नूतन गाथा,
गहि यह नीति भये सुरनाथा।
करत शचीपति नित सेवकाई,
तबहुँ आपु वासव लघु भाई।
कहेउ जो करत उदर यहँ पोषण,
सोउ नाथ ! नहिं अभिनव दूषण।
सागर प्रिय ससुरारि तुम्हारी,
युग युग ते तहँ बसत सुखारी।
युद्ध त्यागि वारिधि दिशि पाँयन,
का अचरज जो कीन्ह पलायन !

दोहा :— अनुचित एकहि बात प्रभु ! बसत आपु जेहि गेह ,
तासु सुता रुक्मिणि-रमा, दुखित अनत धरि देह । १०

ताते करि मम वचन प्रतीती,
करहु सफल प्रभु ! रुक्मिणि-प्रीती।
भीष्मक-उर मगपति-भय भारी,
माँगे देहिं न राजकुमारी।
एकहि भाँति नाथ ! उद्दारा,
हरहु कुँवरि करि पुर पैठारा।”
उद्धव मुग्ध सुनत द्विजवाणी,
कहेउ विप्र सन सारँगपाणी—
“अब मैं समुक्ति भेद सब पावा,
कौतुक नारद चहत रचावा।
जीवन्मुक्त जदपि मुनिरायी,
रचत समर कहँ, कतहुँ सगाई।
यह सर्वोत्तम रचेउ प्रसंगा,
समर विवाह दोउ इक संगी !

सकत को नारद खेल बिगारी,
बरिहौ वेगि विदर्भ-कुमारी।

दोहा :— करहु विप्र द्वारावती, आजु रात्रि सुख वास,
होत प्रभात विदर्भ-दिशि, हम सब करब प्रवास ।” ११

अस कहि सेवक-वृन्द बोलायी,
विप्रहिं वास दीन्ह सुखदायी।
पुनि भूपति सन मंत्र दढ़ावा,
वृत्त सकल यदुजनन सुनावा।
मुनि कह हलधर समर विशारद—
“नहिं हित-चिन्तक जस मुनि नारद।
तजि रण कीन्ह अयश हम अर्जन,
भये हास्य-आस्पद जग यदुजन।
निज गौरव, कुल-कीर्ति नसायी,
आय वारिनिधि रहे दुरायी।
अवसर उचित मुनीश विचारा,
कुँवरि संग कुल-यश-उद्धारा।
कुण्डिनपुर विदर्भ-रजधानी,
जुरिहैं नृपति, सैन्य, सेनानी।
मथुरा-विजय-मत्त मगनाथा,
अइहै स-बल चेदिपति साथा।

दोहा :— भंजि विवाह, प्रचारि अरि, गंजि मगधपति-मान,
रंजि जनेश-कुमारि हम, लहिहैं सुयश महान ।” १२

राम-गिरा सात्यकि मन भायी,
हर्ष न यदुजन-हृदय समायी।
प्रमुदित उद्धव बचन सुनावा—
“यदुकुल-उदय समय पुनि आवा।
परम अनुग्रह केशव कीन्हा,
लाय निवास हमहिं यहाँ दीन्हा।

गिरि-जल-परिवृत पुरी हमारी,
 सहजहि सकत रच्छि तेहि नारी ।
 एकहि संशय मम मन माहीं,
 बिसरि न कहूँ हम अरि निज जाहीं ।
 जेहि भय यदुजन तजेउ स्वदेशा,
 जियत सो अबहुँ अधम मगधेशा ।
 अजहुँ नृपति बहु आर्य-वंश के,
 निवसत बंदी-भवन मगध के ।
 कीन्हे बिनु समूल रिपु-नासा,
 गरल शान्ति-सुख, भोग-विलासा ।

दोहा :— ताते मम मत हरि कुँवरि, निदरि चैद्य मगधेश,
 असुर-त्रस्त धरणिहि बहुरि, देहु मुक्ति-सन्देश । १३
 वहि-शिखा नव जिमि लहत, होतु अरणि-संघर्ष,
 लहहि हरिहु वैदर्भि करि, शस्त्र-घर्ष सामर्ष । १४

लखि व्याकुल निज कुल रण हेतू,
 कहे वचन मृदु शान्ति-निकेतू—
 “समरांगण-प्रिय अग्रज मानी,
 उद्धव नीति-परायण, ज्ञानी ।
 सहमत दोउ कार्य जेहि माहीं,
 उचित सतत सो संशय नाहीं ।
 तदपि अजेय अबहुँ मगधेशा,
 सुहृद, सैन्य, सामन्त अशेषा ।
 अकस्मात इत उत हम पायी,
 सकत समर-महि ताहि हरायी ।
 पै बिनु लहे अन्य नृप संग्गा,
 संभव नहि मागध-बल भंग्गा ।
 विदलित भगिनि-मनोरथ पदतल,
 व्याहत चैद्यहि ताहि रुक्मि खल ।
 ताते लोक-नीति अनुसारा,
 हरण रुक्मिणी धर्म हमारा,

बोद्धा :—पै जो मागध, चेदिजन, करहिं न पथ-अवरोध ,
फिरहिं हमहु आनर्त दिशि, विनु रण वैर-विरोध ।” १५

निश्चित गुनि विदर्भ संग्रामा ,
दीन्हेउ हरिहिं न उत्तर रामा ।
नृपति-निदेश पाय पुनि प्राता ,
चले बाजि, गज, रथ-संघाता ।
शमित अधि-ध्वनि, भरि गिरि कंदर ,
उत्थित पटह-निनाद भयंकर ।
शैल-उपल गज-ओट दुराने ,
नाँधि विटप ध्वज नभ फहराने ।
मेघपुष्प, सुग्रीव, बलाहक ,
शैव्य बाजि घर हरि-रथ-वाहक ।
हाँकत दारुक मनहुँ उड़ाहीं ,
करत पार गिरि, नद, नदि जाहीं ।
पहुँचे कुण्डिनपुर हरि आगे ,
सुनि रिपु नृप जनु सोचत जागे ।
‘होहि बिघ्न,’—कहि प्रकटहिं शंका ,
व्याप्त शिविर प्रति हरि-आतंका ।

बोद्धा :—मुदित हृदय भीष्मक नृपति, कीन्हेउ स्वागत धाय ,
लब्ध सुधा छवि मुग्ध जन, रहे पुष्प बरसाय । १६

नूतन राजभवन नृप लायी ,
दीन्हेउ हरिहिं वास सुखदायी ।
क्रम-क्रम वृत्त सकल प्रभु पावा ,
मगपति सहित चैद्य जिमि आवा ।
वाहिनि वीर रथ्य रथ संगी ,
बाजि-वृन्द, रणधीर मतंगा ।
बंधु-वर्ग, बहु अन्य महीशा ,
भौम, शाल्व, पौण्ड्रक अवनीशा ।
दंतवक्र, जयद्रथ, मद्रेशा ,
विंद, अनुविंद, कलिङ्ग नरेशा ।

दुर्योधनहु सुनत तिन साथा,
 चितित कछु निज मन यदुनाथा ।
 पाण्डु-निधन पुनि परेउ सुनायी,
 पृथा ससुत जिमि गजपुर आयी ।
 बसत अंध धृतराष्ट्र सिँहासन,
 दुर्योधनहि करत महि-शासन ।
 धन, यौवन, प्रभुता, अविवेकू,
 जुरे सकल, नहिँ अंकुश एकू ।

श्रीहृदयः—भीष्म-भुजन-बल आजु लगि, भरतवंश स्वाधीन,
 भेद-दक्ष मगधेन्द्र अब, चाहत करन अधीन । १७

एकछत्र भारत महि राजू,
 भोगेउ भरतवंश नरराजू ।
 करि अधीन अब कुरुजन-जनपद,
 चाहत मगधपति सार्वभौम-पद ।
 दुर्योधनहु स्वार्थ निज लागी,
 जात जरासँध-शरण अभागी ।
 पाय मगधपति-शक्ति-सहारा,
 हरत चाहत पाण्डव-अधिकारा ।
 कुन्ती-सुत निज बंधु विचारी,
 तर्क वितर्क मग्न असुरारी ।
 द्वारावती-सैन्य सह तेहि क्षण,
 पहुँचे कुण्डिनपुर सब यदुजन ।
 रामहिँ हरि सब कथा सुनायी,
 लीन्हे सुफलक-सुवन बोलायी ।
 कहि, “लावहु पाण्डव-कुशलाता”,
 पठये गजपुर दिशि जन-त्राता ।

श्रीहृदयः—गवने इत अकूर, उत, रुक्मिणि गौरि-निकेत,
 गवनी पूजन हित विपिन, माता सखिन समेत । १८
 बांजत मंगल-वाद्य बहु, मर्दल, शंख, मृदंग,
 विविधायुध संनद्ध भट, अंग-रक्षक बहु संग । १९

कलित-वसन-भूषण, गज-गामिनि,
मंगल-गीत-मुखर द्विज-भामिनि ।
मागध, बंदी, सूत अनेकन,
पढ़त प्रशस्ति, करत अभिनंदन ।
विरत-महोत्सव राजकुमारी,
गवन्ति श्याम-मूर्ति उर धारी ।
सुभिरत पद पद प्रभु-गुण-ग्रामा,
प्रविशी विधुधर-सुन्दरि-धामा ।
करि भव-सहित भवानी-मञ्जन,
धूप, दीप, मालाक्षत-अर्पण,
रुचिराम्बर भूषण पहिरायी,
सजल नयन वर विनय सुनायी—
“दम्पति तुमहि पुराण विश्व के,
प्रणयिन-उर जानत दोउ नीके ।
दया-निकेत, जगत-पितु-माता,
होहु मनोवांछित वर-दाता ।”

दोहा :— विनवति इत ईश्वरि-शिवहिं, रुक्मिणि धरि पद साथ,
उत सुनि उपवन आगमन, जुरे प्रजा, नरनाथ । २०

सोरठा :— अग्रज सह यदुनाथ, शोभित राज-समाज-मणि,
शस्त्र-सुसज्जित साथ, अगणित यादव-वीरगण ।

सखिन सहित करि कुल-आचारा,
मंदिर-द्वार कुँवरि पगु धारा ।
कौमुदि जनु नभ महि छिटकायी,
तारक-युक्त पूर्णिमा आयी ।
सद्यस्नात अंग उजियारे,
शुभ्र वसन, मणि भूषण धारे ।
घन-जल-पूत मही जनु सोहति,
कास-सुमन-संयुत मन मोहति ।
अभिनव पल्लव पद मनहारी,
हस्त अरुण अंबुज-रुचि-धारी ।

कुडमल कुन्द राग द्युति दशना,
मध्य मृगेश, हंस-स्वर रशना ।
अलक अवलि अलि श्याम सोहायी,
छहरि ललाट अर्ध-विधु छायी ।
मंद समीरण-विलुलित अंचल,
मनहुँ मनोभव-केतन चंचल ।

दोहा :— शैलसुता-गृह-द्वार जनु, सहसा उदित मयंक,
बद्ध-विलोचन मुग्ध जन, पुरजन, राजा रंक । २१

गति मानस-वन-कमल-विहारी,
मंजुल मद मराल अनुहारी ।
मृदु मंजीर-निनद श्रुति-उत्सव,
वीक्षण जनु शर तीक्ष्ण मनोभव ।
हरि-दर्शन उत्कंठित वामा,
उठे नृपन दिशि दृग अभिरामा ।
प्रकटित सद्यः तूण, ज्वलंता,
बरसे मनसिज-बाण अनंता ।
गत-गांभीर्य, भ्रान्त नरनाथा,
खसे हस्त-आयुध धृति साथा ।
नष्ट ज्ञान, निश्चेष्ट शरीरा,
विस्मृत आत्म महिष रणधीरा ।
लखत नृपति शत नयनन जानी,
हरि-अनुरक्त कुमारि लजानी ।
उत्तरीय निज विकल सँभारी,
भाल अलक कर वाम निवारी,

दोहा :— लखे मृगाक्षी सन्मुखहि, पुरीकाक्ष यदुवीर,
वदन क्षपापति, वक्ष वर, जलधर-स्वच्छ शरीर । २२

रस शशि-रश्मि-प्ररोह प्रजाता,
सिंचित मनहुँ वाम वर गाता ।

विगत दिवस-निशि विरहज तापा,
 आनन्द परम रोम प्रति व्यापा।
 देखे कुँवरि बहुरि यदु-पुंगव,
 आवत मंद मनहुँ कण्ठीरव।
 लखत चित्रवत राज-समाजू,
 गवने सुमुखि-पार्श्व यदुराजू।
 युग-युग परिचित लोचन चारी,
 मिले अभिन्न निजत्व बिसारी।
 पुरजन मुग्ध निरखि वर जोरी,
 बिसरे निमिष-पात, मति भोरी।
 लहि संकर्षण-इंगित तेहि क्षण,
 लायेउ हरि ढिग दारुक स्यंदन।
 हस्त प्रशस्त भक्त-वर-दाता,
 बदेउ कुँवरि दिशि त्रिभुवन-त्राता।

दोहा :— पुलक-जाल, प्रस्वेद-जल, ललित बालमणि-हाथ,
 गहेउ मृदुस्मित-मुग्ध-मुख, मुकुलित-दग यदुनाथ। २३

सोरठा :— स्यंदन कुँवरि चढ़ाय, पांचजग्य-रव भरि भुवन,
 जनु नृप सुत जगाय, गवने जन-जय-मध्य हरि।
 गवने रामहु संग, गवनी यादव वाहिनी,
 चैद्य-स्वप्न-सुख भंग, कहत मगेशहि आर्त स्वर—

“अछत आपु, महि-रत्न भुआला,
 हरि नृप-सुता जात गोपाला।
 करत शंख-ध्वनि सबहिं प्रचारी,
 धिक आयुध ! धिक शक्ति हमारी !
 जाहि जो गृह बिनु तिय उद्वारे,
 हँसिहैं प्रजा, भूप रिपु सारे।”
 सुहृद वचन सुनि सजग मगेशा,
 ‘धरहु धाय खल’, दीन्ह निदेशा।
 कहि कहि, “विरमु गोप ! आभीरा” !
 धाये स-बल नृपति रणधीरा।

पहुँचे हरि समीप पछियायी,
वरसे आयुध, इषु भरि लायी ।
फेरेउ मुख यदु-बलहु प्रचण्डा,
कर्षित ज्या गरजे कोदण्डा ।
कुपित हरिहु, हलधर, युयुधाना,
प्रेरे निशित प्रज्वलित बाणा ।

बोद्धा :— परिपंथी-नृप-चक्र पै, वरसे भल्ल अथोर,
अर्धचंद्र, नालीक, चुर, शृंग, शिलीमुख घोर । २४

हत पदाति, विदलित मातंगा,
भिन्न पंक्ति रथ, छिन्न तुरंगा ।
खण्डित मस्तक, भग्न कपाला,
दिशि दिशि कीर्ण शिरोरुह-जाला ।
शकलित कर्ण, कण्ठ, वक्षस्थल,
पातित हस्त, जानु, जघनस्थल ।
भ्रष्ट मुकुट, कुण्डल, तनुत्राणा,
हस्तावाप, विभूषण नाना ।
दीर्णित पट्टिश, प्रास, चर्म, असि,
पातित छत्र, पताका चहुँ दिशि ।
विस्मृत जय-स्वर, वीरालापा,
वारित बंदी-सूत-प्रलापा ।
कुण्ठित पणव-पटह-भंकारा,
हय-हेषा, कुंजर-चिग्घारा ।
छिन्न-भिन्न मागध चतुरंगा,
त्रस्त नृपति क्षत-विक्षत अंगा ।

बोद्धा :— समर-मही शोणित-नदी, प्रचलित विपुल कबंध,
उड़त गृध्र, जंबुक फिरत, कर्षित मज्जा-गंध । २५

सोरठा :— मागध-मुख्य भुआल, धिक्कारत इक एक कहँ,
दारुण व्रणन-विहाल, गलित-गर्व रण-महि तजी ।

रुक्मिणि मुदित विलोकति श्यामू,
धृत जनु कार्तिकेय वपु कामू।
भृकुटि-भंग मुग्धानन आजत,
अलि उद्भ्रान्त कमल जनु राजत।
प्रलपत उत हत-तेज भुआला,
इक रुक्मिहि अति कुपित, कराला।
बरजेउ जनकहु खल नहि माना,
खड्ग उठाय महा प्रण ठाना—
“सकहुँ उबारि भगिनि जो नाही,
धरहुँ न पद पुनि पितु-पुर माहीं।
जइहै जहँ जहँ खल गोपाला,
गहिहौ प्रविशि व्योम पाताला।”
अस कहि रथ बढ़ाय रिस राता,
धायेउ हठी, मूढ़, मद-माता।
“विरमु चोर! आभीर!”—पुकारत,
जनु गोमायु मृगेन्द्र प्रचारत।

दोहा :—लखि अग्रज आकुल कुँवरि, पत्राधर परिस्लान,
कंपित तनु, आहत-मरुत, वल्ली कल्प समान। २६
लखनि कबहुँ निज प्राण-धन, कबहुँक बंधु अधीर,
आवत जस जस पास रथ, उमहत नयनन नीर। २७

क्रम-क्रम पहुँचि निकट हरि-स्वंदन,
कहे रुक्मि दुर्वचन अनेकन—
“को तैं शठ ? को तोहि जन्मावा ?
कहँ खल ! शैशव-काल बितावा ?
वंश, शील, यश, वैभव-हीना,
शाठ्य-निरत, मर्याद-विहीना।
मायहि केवल महिमा तोरी,
लाज न हरत कुँवरि बरजोरी।
कीन्ह विमल मम कुल-अपमाना,
जात कहाँ सकुशल लै प्राणा ?

सकत न चलि माया मम संगे ,
करत अबहिं शर-ज्वाल पतंगा ।”
औरहु कहत अवाच्य घनेरे ,
धरि धनु रुक्मि प्रखर शर प्रेरे ।
तकि तकि शर-प्रवाह बरसावा ,
विद्ध बाहु हरि शोणित-सावा ।

दोहा :— अश्रु भरे रुक्मिणि-नयन, भये सरोष अँगार ,
इक कर पोंछति हरि-रुधिर, इक लोचन-जल-धार । २८
ज्वलित-हुताशन-मूर्ति हरि, प्रेषे शिततम वाण ,
हत हय सारथि, महि पतित, धनु, अंगुलि-तनु-त्राण । २९

सोरठा :— धायेउ रोष अशेष, खड्ग-हस्त खल त्यागि रथ ,
गहे भूपटि हरि केश, हरी ढाल-करवाल दोउ ।

लै सोइ खड्ग जबहिं निज हाथा ,
चहेउ बधन रुक्मिहिं यदुनाथा ,
हरि चरणारविन्द गहि धायी ,
विलपत रुक्मिणि विनय सुनायी—
“देवदेव तुम, यह अज्ञानी ,
विभु-सामर्थ्य सकेउ नहिं जानी ।
माँगहुँ अभ्रज-प्राणन-दाना ,
भुवन-शरण्य छमहु भगवाना !”
अस कहि परी चरण तल दीना ,
दारु-नारि जनु तंतु-विहीना ।
गदगद गिरा, कण्ठ-अवरोधा ,
हृग जल, उष्ण श्वास, गत बोधा ।
अँग-प्रकम्प, चल वेणि-कलापा ,
नख-शिख वाम महा भय व्यापा ।
करुणहि आपु मनहुँ धृत काया ,
क्रन्दति, याचति गहि पद दाया ।

दोहा :— द्रवित दयानिधि, वध-विरत, बाँधेउ रथ आराति ,
काढ़े कुवचन खल तबहुँ, काह कहि, 'गोप! कुजाति' । ३०
“जानत मोहि भल तुवभांगनि”, —भाषेउ विहसत श्याम ,
“पूछत तेहि नहि मूढ़ ! कस, वंश, नाम, मम धाम !” ३१

सोरठा :—सरस कृष्ण-परिहास, मौन मूढ़ रुक्मिहु सुनत ,
भलकेउ ईषत हास, सलज, सजल, रुक्मिणि-दृगन ।

कीन्ह भोजकट हरि विश्रामा ,
अनुजहिं आय मिले बलरामा ।
आयी यादव सेनहु सारी ,
मोद अपार, विजय-ध्वनि भारी ।
यदु-भट एकहिं एक बखानी ,
कहत सुनत निज शौर्य-कहानी ।
विहँसत बरनत शत्रु-पलायन ,
भागे विरथ भूप जिमि पाँयन ।
जित-अरि रामहु रोष-विहीना ,
उर सकरुण लखि रुक्मिहिं दीना ।
हरिहिं बुझाय बंधु-अनुरागी ,
कीन्ह मुक्त नृप-सुवन अभागी ।
हठी रुक्मि लज्जित मन माहीं ,
गयेउ बहुरि कुरिण्डनपुर नाहीं ।
सहज शत्रु निज कृष्णहिं मानी ,
बसेउ भोजकट करि रजधानी ।

दोहा :— चली बहुरि यदु-वाहिनी, करि भोजन विश्राम ,
प्रियहिं दिखावत दृश्य पथ, हाँकेउ निज रथ श्याम । ३२

मंजुल रुक्मिणि, मंजुल मोहन ,
मंजुलतम रुक्मिणि-मनमोहन ।
मंजुल महि, मंजुल आकाशा ,
मंजुल विश्व वसन्त-विलासा ।

जीवित, जाग्रत, खग-रव-मुखरित,
 वन मंजुल लहि तरु मन-वांछित ।
 वन-तनु तरुण, भरित नव प्राणन,
 तरुहु मंजु लहि अभिनव पर्णन ।
 तरु-शिर-छत्र, मृदुल, मनभावन,
 पर्णहु मंजुल लहि नव सुमनन ।
 पर्ण-आभरण, कान्ति-निकेतन,
 सुमनहु मंजुल लहि मधु नूतन ।
 सुमन-सुधा, मधुकर-आकर्षण,
 मधुहु मंजु लहि नूतन रज-कण ।
 मधु-सौहार्द-समृद्ध, समुज्ज्वल,
 रजहु मंजु लहि नूतन परिमल ।

बोद्धा :— लहि परिमल दक्षिण अनिल, शीतल, मलयज, मंद,
 विहरि भुवन कण-कण भरत, नवस्फूर्ति सानंद । ३३

गत नीहार, वारिधर, दामिनि,
 दिन सुखोष्ण, सुख-शीतल यामिनि ।
 कान्ति हरितमणि मही विहायी,
 स्वर्णिम शस्य-विपाक सोहायी ।
 पर्ण अशोक विलोचन-मोहन,
 वन-श्री-चरण-अलक्तक शोभन ।
 शाल समुन्नत, हरित चिरंतन,
 शोभित लब्ध पिङ्ग लघु सुमनन ।
 पुष्पित सुरभि-भवन संतानक,
 काञ्चन-कान्ति, समुज्ज्वल चंपक ।
 विकसित विपिन बकुल मधुरासव,
 भंकृत अलि-कुल पान-महोत्सव ।
 फुल्ल पलाश लाल वन-माला,
 जग ज्वलंत जनु मनसिज-ज्वाला ।
 मुकुलित विपिन छाये सहकारा,
 सुरभि-प्रभाव भुवन सविकारा ।

दोहा :—कुसुमित मधु-निधि माधवी, कुसुमाकर-शृङ्गार,
पुलकित लहि अँग-सँग अनिल, अलि-चुम्बन-गुञ्जार । ३४
मही सुमन, सरि सर सुमन, शून्यहु सुरभि प्रसार,
बसेउ सुमनशर मिस सुमन, मनहुँ छाये संसार । ३५

नव उत्कंठा विह्वल प्राणी,
स्वरित विपिन विहगहु बहु वाणी ।
गावत मधुर मंद ध्वनि खंजन,
'पिउ ! पिउ !' रटत पपीहा वन वन ।
पर्ण-निकुंज पुत्रप्रिय हूकत,
भरि स्वर हृदय-हूक जनु फूकत ।
हेमकार निज 'ठुक, ठुक'-माता,
प्रकटत उर मनसिज-आघाता ।
विहरत व्रतति-पुञ्ज अति चंचल,
गावत भृंगरोल नीलोज्ज्वल ।
विन्दुरेखकहु कुञ्जन गावत,
छादन छहरि सुझवि दरसावत ।
सघन पर्ण-पुट दुरि तन्वंगिनि,
भरति हृदय मधु राग सुभाषिणि ।
बरसत दहियर प्राण उमंगा,
सावित महि, गिरि, नभ स्वर-गंगा ।

दोहा :—कूजति, क्रीडति मंजरि, कोकिल अलि-कुल-संग,
वादत जनु जय-दुन्दुभी, विजयी भुवन अनंग । ३६

धृत कहूँ परिणय-हित नव चीरा,
खोजत चातक प्रियहि अधीरा ।
कतहुँ पंच दश मिलि इक संग,
जुरे स्वयंवर हेतु भोजंगा ।
गाय गाय सब प्रिया रिभावत,
गावत अधिक वधू सोइ पावत !
नाद-होड़ जनु फिरि फिरि होई,
सब निज कहत, सुनत नहि कोई

नीलकंठ बँधि मनसिज-पाशा ,
 प्रेयसि-संग उड़त आकाशा ।
 रीम्नि रिम्भावत उड़ि विधि नाना ,
 स्वरित प्रणय-आदान-प्रदाना ।
 शुक-ढिग शुकिहु मनोभव-भोरी ।
 प्रकटति छवि बहु विधि अँग मोरी ।
 शुकहु रीम्नि शुकि-शिर सोहरायी ,
 प्रकटत मुद पुट चंचु मिलायी ।

दोहा :— मृगहु शृङ्ग-सोहराय मृगि, रहेउ पुलक उपजाय ,
 कुसुम-चषक मधु प्रेयसिहि, मधुपहु रहेउ पियाय । ३७

सोरठा :— लहन हेतु पुनि अँग, करि सकाम हरि-रुक्मिणिहि ,
 व्यापेउ मनहुँ अनंग, आकुल करि अणु अणु सुवन ।
 लीलापति मुसकात, सलज कुँवरि लखि काम-कृति ,
 जानेउ समय न जात, पहुँचेउ रथ द्वारावती ।

सुनत उग्र नृप नेह-निकेतू ,
 सचिव, स्वजन, वसुदेव समेतू ,
 परिवृत पौर-प्रमुख-समुदायी ,
 मिलेउ हरिहि पुर बाहर आयी ।
 बँदि नृपति-पितु-पद यदुनाथा ,
 प्रविशे पुर वैदर्भी साथा ।
 लखि जन त्रिभुवन-तिय-मणि रुक्मिणि ,
 सुषमा-अंबुधि, कान्ति-तरंगिणि ,
 पुलकत कहत एक इक पाहीं—
 “यह इन्दिरा, अन्य कोउ नाहीं ।
 प्रकटी पूर्व हरिहि मथि जलनिधि ,
 लही आजु पुनि मथि रण-वारिधि ।”
 करत मधुर आलाप नगर-जन ,
 पहुँचेउ राज-द्वार हरि-स्यंदन ।
 मुदित देवकी वधू विलोकी ,
 अनाँद-अश्रु सकति नहिं रोकी ।

दोहा :— शोधि घरी शुभ गर्ग मुनि, कीन्हे परिणय-कृत्य ,
मुखरित पुण्या यदुपुरी, मंगल-गायन-नृत्य । ३८
लोक-रीति श्रुति-विधि यथा, करि साक्षी हविवाह ,
प्रणयिनि माया सँग भयेउ, मायानाथ-विवाह । ३९

सोरठा :— हर्ष-उदधि भरपूर, सुख-निमग्न आनर्त इत ,
प्रभु-प्रेरित अकूर, पहुँचे उत कौरव-पुरी ।

पुरी हस्तिना सुरसरि-रम्या ,
लिखित व्योम-पथ मंदिर-हर्म्या ।
भरतवंश - नृपगण - सन्मानी ,
युग-युग भरतखण्ड-रजधानी ।
आर्यजाति - इतिवृत्त - आयतन ,
मुदित बभ्रु लखि पुरी पुरातन ।
करत पाण्डुसुत-भवन प्रवेशू ,
भये व्यथित लखि पृथा-कुवेषू ।
असमय गत-धव, दव जनु जारी ,
चीन्हि परति नहिं शूर-कुमारी ।
आनन म्लान, लता तनु क्षीणा ,
शीश शिरोरुह-सुमन-विहीना ।
वसन श्वेत, भूषण अँग नाहीं ,
अचल कपोल पाणितल माहीं ।
दिवस-उदित मानहुँ शशिलेखा ,
गत द्युति, शेष रही कछु रेखा ।

दोहा :— पितृलोक-गत प्राणपति, मनोकामना जानि ,
लखि बालक पाण्डव सकल, भयी न सती सयानि । ४०

बभ्रु विलोकत व्याकुल धायी ,
मिली विलोचन वारि बहायी ।
पूछि निखिल यदुकुल-कुशलाता ,
कहति, “दीन्ह दुख मोहि विधाता ।

सुत मम बाल, काल कठिनाई,
 पति सुरपुर, नहिं कोउ सहायी।
 नृपति सुतन-वश, नेत्र-विहीना,
 नीति - अनीति - विवेकहु - हीना।
 द्वेषत सब मम वत्स सुयोधन,
 चहत अनाथ राज्य-हित नासन।
 सहहुँ सुतन सह नित नव त्रासा,
 वृक-वन करहुँ मृगी जिमि वासा।”
 विलपति कुन्ती व्यथा घनेरी,
 करि सुधि पितु-कुल, परिजन केरी।
 अक्रूरहु कुल-वृत्त सुनावा,
 कंस-त्रास - जिमि कृष्ण नसावा।

दोहा :— बरने मगपति-आक्रमण, काल यवन-अवसान,
 कीन्हेउ हरि जिमि लै स्वजन, द्वारावती प्रयाण । ४१

“करुणा-धाम, विश्व-सुखकारी,
 सकत कि श्रीहरि स्वजन बिसारी।”
 अस कहि प्रभु-प्रेषित उपहारा,
 दीन्हेउ मणि सुवर्ण भंडारा।
 तेहि क्षण पाँचहु पाण्डव आये,
 सुर-अंशज, वर वेष सोहाये।
 ज्येष्ठ युधिष्ठिर शान्त, गँभीरा,
 भीम द्वितीय बलिष्ठ शरीरा।
 अर्जुन श्याम-कान्ति छवि छायी,
 बल-सौष्ठव-संयोग सुघराई।
 सुतनु नकुल सहदेवहु भ्राता,
 बुधि-बल-खानि, माद्रि-अँगजाता।
 तेज-पुञ्ज सब पाण्डु-कुमारा,
 वभ्रु-हृदय लखि मोद अपारा।
 प्रणत पाँचहु हृदय लगायी,
 कहि मृदु वचन प्रीति उपजायी।

दोहा :— निरखि प्रणय हिलमिलि सकल, पृच्छत गोविंद-गाथ,
कहत नकुल—“कैहि विधि धरेउ, गोवर्धन हरि हाथ ?” ४२

गर्व-गिरा सुनि भीम उचारी—
“सकत महुँ लघु गिरि कर धारी ।”
भाषेउ अर्जुन, “शर बल सारा,
सकहुँ ढहाय सुमेरु पहारा ।”
कहेउ युधिष्ठिर, “तुम अभिमानी,
श्रीहरि-कथा सुनी नहिं जानी ।
धरि कर गिरि हरि गोप बचाये,
देत गरजि तुम गिरिहि ढहाये !”
विहँसे सुनि अक्रूर सुवाणी,
सुत-प्राणा कुन्तिहु मुसकानी ।
नत-मस्तक अति पार्थ लजाने,
समुझि चूक निज मन पछिताने ।
लखि अग्रज-अनुशासित भ्राता,
विनयी, शिष्ट, जननि-सुख-दाता,
आशिष दीन्हि पुलकि अक्रूरा—
“होहु बंधु सब हरि सम शूरा ।”

दोहा :— बहु विधि पृथा प्रबोधि, पुनि, लै यदुपति-सन्देश,
कीन्हेउ सुफलक-सुत सुमति, भूपति-भवन-प्रवेश । ४३

कहि कुल, जनक, जननि, निज नामा,
कीन्हेउ सादर नृपहिं प्रणामा ।
प्रकटि मोद, करि कृष्ण-बड़ाई,
कीन्ही धृतराष्ट्रहु पहुनाई ।
भाषेउ वभ्रु बोधि कुरुनाथा—
“पठयेउ यह सँदेश यदुनाथा ।
महितल जदपि विपुल नृप-वंशा,
भरतकुलहि नृप-कुल-अवतंसा ।
पाय विमल कुल-नृपन-सहारा,
भयेउ भुवन श्रुति-धर्म प्रचारा ।

वंशहु तेहि ते गौरव पावा,
 श्रुति-पथ भारत-धर्म कहावा ।
 भरतवंश-पोषित, सन्मानी,
 भयी भारती संस्कृत वाणी ।
 उपजे सार्वभौम नृप नाना,
 लहेउ भूमि भारत अभिधाना ।

दोहा :— अङ्कित तिल तिल भूमितल, भरत-वंश शुचि नाम,
 गइहैं जन कल्पान्त लागि, कुल महिमा, गुण ग्राम । ४४

भयेउ प्रबल अब असुर-समाजू,
 काल-रात्रि आर्यन हित आजू ।
 तबहुँ पाण्डु निज भुज-बल-वैभव,
 रच्छी कुल-महिमा, यश, गौरव ।
 भीष्म पितामह, विदुर-सहारे,
 बसे तुमहु स्वाधीन, सुखारे ।
 जदपि असुर-आतंक अशेषा,
 सकेउ न करि कुरु-राज्य प्रवेशा ।
 अब मगपति गहि पंथ अपावन,
 बंधु ते बंधु चहत बिलगावन ।
 पाण्डु-सुतन दुर्योधन माहीं,
 चहत सनेह जरासँध नाहीं ।
 मगपति-नीति विदित संसारा,
 करत भ्रष्ट पथ तरुण कुमारा ।
 ताते कुमति-प्रभाव बरायी,
 बसहु वंश सौहार्द दृढ़ायी ।

दोहा :— पितु-सनेह-प्रश्रय-रहित, पाँचहु पाण्डव बाल,
 सुतन सहित सम भाव गहि, पालहु सबन भुआल ।” ४५

सुनत अंध नृप कपट पसारा,
 सुमिरत पाण्डु दृगन जल धारा—

“कुल-प्रदीप पाण्डव उजियारे,
 सुवन-शतहु ते अधिक पियारे ।
 आजु महीतल द्रोण समाना,
 धनुर्वेद-निष्णात न आना ।
 कुँवरन-शिक्षा हित सन्मानी,
 राखे द्रोण लाय रजधानी ।
 अस्त्र-ज्ञान लहि तिन ते सारा,
 भये शूर सब पाण्डु-कुमारा ।
 दीन्ह द्रोण गुरु जो कछु शिक्षण,
 होइहै सत्वर तासु प्रदर्शन ।
 रहहु कृपा करि पुर दिन चारी,
 लेहु सकल निज नयन निहारी ।
 लहि चेदीश-विवाह निमंत्रण,
 गवनेउ कुण्डिनपुर दुर्योधन ।

दोहा :— फिरतहि सुरसरि-तीर करि, रंगभूमि निर्माण,
 करिहैं प्रकटित द्रोण गुरु, कुँवरन-आयुध-ज्ञान ।” ४६
 अक्षर पै अक्षर करे, गयेउ कहत नृप अंध,
 कहेउ न एकहु शब्द पै, जरासंध-संबंध । ४७

सोरठा :— विहँसे मन अक्रूर, लखत नृपहि, सोचत हृदय—
 यह मुख-मृदु, उर-क्रूर, कोष-गुप्त दुर तीक्ष्ण सम ।

लोभी, लोलुप, दया-विहीना,
 दुर्बल मानस, साहस-हीना ।
 पर-नयनन जग देखन हारा,
 दृढ़-निश्चय-खल-जन-खिलबारा ।
 बहु-श्रुत तदपि विवेक न जागा,
 स्वल्पाशय, जन्मान्ध, अभागा ।
 करत जात लखि नृपति प्रलापा,
 करुणा-भाव वध्रु-मन व्यापा ।
 आग्रह बहुरि कीन्ह नरनाहू,
 बसि अवलोकहु बाल-उच्छाहू ।

विरमे वभ्रुहु नीति-निकेतु ,
 कुरुकुल-गति-विधि जानन हेतु ।
 भूपति-सचिव, हितैषी, अभिजन ,
 अन्य समीपवर्ति जे प्रिय जन ,
 सबन वृत्त कुन्ती ते जानी ,
 मिले सजग सुफलक-सुत ज्ञानी ।

बोहा :— जाय लखे अकूर जब, भीष्म भुवन-नर-रत्न ,
 उमही श्रद्धा दूत-उर, बिसरे नीति-प्रयत्न । ४८

शूर-शिरोमणि, ध्वज जनु काया ,
 महि सम क्षमाशील, उर दाया ।
 ब्रह्मचर्य-व्रत-व्रती, विरागी ,
 पितु हित महि-जीवन-सुख-त्यागी ।
 ज्येष्ठ, श्रेष्ठ कुल, शान्तनु-नंदन ,
 प्रमुदित वभ्रु करत पद-वंदन ।
 लहि हरि-सुहृद अतिथि निज गेह ,
 भेंटे भीष्महु उर अति नेह ।
 पूछत, सुनत श्याम-चरितावलि ,
 प्रकटत हृदय-भक्ति पुलकावलि—
 “तात ! मुनीश व्यास द्वैपायन ,
 कहत—‘कृष्ण नर-तनु नारायण’ ।
 पुण्यश्लोक सकल तुम यदुजन ,
 लखत दिवस-निशि विभु निज नयनन ।
 लहहुँ जो दर्शन एकहु बारा ,
 गुनिहौ सार्थक जीवन सारा ।”

बोहा :— पुनि प्रशंसि सब पाण्डु-सुत, शौर्य, शील, व्यवहार ,
 समदर्शी सुरसरि-भुवन, प्रकटी प्रीति अपार । ४९

सोरठा :— द्रोणाचार्य समीप, गवने पुनि सुफलक-भुवन ,
 कहि कहि ‘वंश-प्रदीप’, पार्थ-प्रशंसा कीन्ह गुरु ।

विदुर-भवन पुनि कीन्ह प्रयाणा ,
 मिलेउ धाय हरि-भक्त सुजाना ।
 जदपि महीप-अनुज, प्रिय सहचर ,
 विनय-विनम्र, प्रजाजन-अनुचर ।
 विग्रह-संधि-कुशल, व्यवहारी ,
 अकुटिल-बुद्धि, धर्म-पथ-चारी ।
 लोक-संग्रही, विषय-उदासा ,
 नृपति-अमात्य, संतजन-दासा ।
 पाण्डव-हितू, पृथा-अवलंबन ,
 चीन्हेउ वभ्रुहु भेंटत सज्जन ।
 हृदय-दुराव, सँकोच विहायी ,
 कहेउ आगमन-ध्येय बुभायी—
 कुण्डिनपुर मग-महिपति साथ ,
 लखेउ सुयोधन जिमि यदुनाथा ,
 पाण्डु-निधन सुनि पाण्डव हेतू ,
 भये विकल जिमि यदुकुल-केतू ।

बोधा :— सुनि विदुरहु कुरुकुल-कथा, कही समस्त बखानि ,
 करत सुयोधन निशि-दिवस, जेहि विधि पाण्डव-हानि —५०

“हम महँ अग्रजात धृतराष्ट्रहि ,
 जन्म-अंध, नहिँ सके राज्य लहि ।
 जन-मत, धर्मशास्त्र-अनुसारा ,
 पैतृक छत्र पाण्डु शिर धारा ।
 लहेउ न जो धृतराष्ट्र सिँहासन ,
 लहिँ कस सकत सुयोधन शासन ?
 पाण्डु दिवंगत तजि सुत बालक ,
 भे धृतराष्ट्र निरीक्षक, पालक ।
 निदरि लोक-मत, परि सुत-प्रीती ,
 करत नित्य धृतराष्ट्र अनीती ।
 बसत सिँहासन, छत्र धरावत ,
 करत सोइ जो सुत समुभावत ।

सकल जानपद पौर-समाजू,
चहत युधिष्ठिर निज युवराजू।
पै करि सुतहिं सर्वराकारा,
क्रम-क्रम हरन चहत अधिकारा।

दोहा :— स्वार्थ-हेतु मगधेश-सँग, कीन्ह सुयोधन प्रीति,
लागी करन प्रवेश अब, कुरुकुल असुरन-नीति।” ५१

सोरठा :— भीमहि सुरसरि-धार, विष दै जिमि बोरेउ खलन,
कथा सहित विस्तार, सजल दगन बरनी विदुर।

विदुर-नेह लखि वधु सुखारी,
मिलेउ पृथा-पाण्डव-हितकारी।
बहु विधि प्रीति प्रतीति द्वायी,
आयेउ कुन्ती-गृह हर्षायी।
लौटेउ दुर्योधन तेहि काला,
अँग अँग यदुजन-बाण विहाला।
गृह गृह गजपुर गूँजी गाथा,
रुक्मिणि-हरण कीन्ह यदुनाथा।
करि रणमहि मगपति-मद-गंजन,
लही कुँवरि सह जय यदुनंदन।
हर्ष उत्तरापथ भरि व्यापा,
इत उत करति प्रजा आलापा—
“नासी हरि जस यवन-उपाधी,
नसिहैं निश्चय असुरन-व्याधी।”
भीति अंध भूपति उर छांयी,
कातर नीति सुतहिं समुझायी—

दोहा :— “मगधनाथ यदुनाथ महँ, बाढ़ी भीषण रारि,
उचित बसव निष्पन्न अब, सम-बल दोउ बिचारि।” ५२

सोरठा :— उत आचार्य सुजान, द्रोण पाथ समतल मही,
महारंग निर्माण, कीन्ह जाहूवी रम्य तट।

निर्मित क्रीड़ा-मही महाना,
 गत वल्मीक, पंक, पाषाणा ।
 मृगमद-मलयज - जल - परिसिंचित,
 तोरण - ध्वजा - पताक - अलंकृत ।
 प्रेक्षागारहु रम्य, विशाला,
 हेम-विनिर्मित मंचन-माला ।
 मध्य राजकुल-मंच सोहाये,
 शशिमणि-खचित, स्वर्ण-निर्माये ।
 नियमित कनक-शृंगखला चारी,
 रत्न-दण्ड चित्रित, मनहारी ।
 नर्तत तिन पै क्षौम-विताना,
 भूषित मुक्ता-गुल्मन नाना ।
 प्रहर वृतीय काज सब त्यागी,
 जुरी प्रजा विक्रम-अनुरागी ।
 जुरी अपरिमित पुरजन-नारी,
 कुल-ललनहु कुन्ती, गान्धारी ।

षोढा :— शोभित कौरव कुल-वधू, मंच-माल महि रंग,
 उषा, शारदा, श्री, शची, मनहुँ मेरु गिरि-शृंग । ५३

सोरठा :— विदुर पितामह कंध, अंध नृपहु धृत हस्त निज,
 पूछत रंग-प्रबंध, प्रविशेउ सुफलक-सुत सहित ।
 शिष्यन सह वर वेष, प्रविशे द्रोणाचार्य पुनि,
 शुभ्र वसन, सितकेश, लसत श्वेत उपवीत उर ।

चंदन श्वेत ललाट विशाला,
 श्वेत सुमन वक्षस्थल माला ।
 औचक जनु रँग-व्योम प्रदेशा,
 प्रकटेउ परिवृत रश्मि दिनेशा ।
 मंगल वाद्य बजे सब संगी,
 सजग सभा, उत्साह अभंगा ।

कीन्हेउ विधिवत द्विजन स्वस्त्ययन,
 उर्वी व्योम स्वरित श्रुति-शब्दन।
 गुरु-निदेश लहि तबहिं शिष्य-गण,
 निज निज कौशल कीन्ह प्रदर्शन।
 कोउ प्रास-धर, कोउ शूल-धर,
 कोउ पट्टिश-धर, कोउ धनुर्धर।
 अश्वारोहण करि कोउ धावा,
 धावत लक्ष्य भेद दरसावा।
 खड्ग-युद्ध कोउ कीन्ह भयावन,
 कोउ कोउ मल्ल-युद्ध मन-भावन।

दोहा :— आरोहण, लंघन, तरण, लुत, सुरंग-उपभेद,
 दरसाये दुर्गाक्रमण, यंत्र तंत्र बहु भेद। ५४

सोरठा :— धृत कर गदा कराल, लखत हस हग एक इक,
 भये प्रकट तेहि काल, भीम सुयोधन रंग-महि।

युगल किशोर, वीर-रस-बंधुर,
 मनहुँ प्रमत्त वन्य नव सिन्धुर।
 वीर-नाद करि, गदा भँवायी,
 निमिषहि माहिं भिरे समुहायी।
 शब्दित रँग-महि गदा-प्रहारा,
 तड़ित ताल-तरु मनहुँ विदारा।
 करत घात, प्रतिघात बरावत,
 विफल प्रयत्न रोष दरसावत।
 रण-दुर्मद बल कौशल करहीं,
 जनु विभु-हिरण्याक्ष पुनि लरहीं।
 दाँव-घात, सब योग-कुयोगू,
 लखत अवाक स्वजन, पुर-लोगू।
 सहसा विस्मृत रँगमहि-नियमन,
 उठेउ कुटिल उद्धत दुश्शासन।
 पुनि पुनि करत बंधु-जय-नादा,
 कहे धष्ट भीमहि दुर्वादा।

दोहा :— क्षुभित निखिल गजपुर-प्रजा, छायेउ रोष अपार ,
गूँजी चहुँ दिशि भीम-जय, काँपेउ प्रेक्षागार । ५५
भंग रंग-महि होत लखि, द्रोण रणस्थल आय ,
कीन्हे पुरजन शान्त पुनि, प्रतिभट दोउ बिलगाय । ५६

प्रिय शिष्यहिं आचार्य निहारा ,
पार्थ प्रदर्शन-महि पगु धारा ।
वदन ओज, सर्वाङ्ग सुलक्षण ,
भुज विशाल कर्कश ज्या-घर्षण ।
रक्षित वर्म सुवर्ण शरीरा ,
बाण-प्रपूर्ण पृष्ठ तूणीरा ।
करतल विलसत धनुष महाना ,
सुदृढ़ अँगुरियन अँगुलि-त्राणा ।
जनु रवि-विद्युत-सुरधनु-द्योतित ,
संध्या-राग-युक्त घन शोभित ।
मूर्त वीर रस रंग विलोकी ,
सकी न सभा मुग्ध मुद रोकी ।
भयी हर्ष-ध्वनि विविध प्रकारा ,
भाषे पुरजन वचन उदारा—
“गुरु-प्रिय शिष्य, श्रेष्ठ धनुमाना ,
वीर न कुँवर पार्थ सम आना ।”

दोहा :— रंग-अवनि अर्जुन निरखि, सुनि पुरजन-आलाप ,
हर्ष-अश्रु-सिंचित हृदय, कुन्ती विरहित ताप । ५७

सोरठा :— विदुरहिं कहत सुनाय, मुद-मुख दुख-उर अंध नृप—
“पार्थ सुवन जन्माय, कीन्ह अलंकृत कुल पृथा ।”

भयेउ मंद जस जन-रव, जय-जय ,
दरसाये दिव्यास्त्र धनंजय ।
धारि अस्त्र आग्नेय शरासन ,
प्रकटेउ पार्थ प्रचण्ड हुताशन ।

पुनि वरुणास्त्र हस्त निज लीन्हा,
 अनल प्रशान्त सलिल-बल कीन्हा ।
 बहुरि अस्त्र पर्जन्य-प्रभावा,
 अन्तरिक्ष घन-पुञ्जम छावा ।
 प्रकटि अस्त्र वायव्य प्रभञ्जन,
 नासे बहुरि निमिष महुँ घन-गण ।
 भौम अस्त्र-बल महि प्रकटायी,
 पार्वतास्त्र पर्वत-समुदायी ।
 अन्तर्धान-अस्त्र संधाना,
 भये पार्थ पल अन्तर्धाना ।
 प्रकटेउ पल महुँ सूक्ष्म स्वरूपा,
 बहुरि विशाल शैल अनुरूपा ।

दोहा :— पल महि पै, पल व्योम-पथ, पल स्पंदन दिखराहिं,
 पल समीप, पल दूरि अति, पुनि अदृश्य पल माहिं । ५८

चकित, विमुग्ध विलोकेउ पुरजन,
 औरहु बहु शस्त्रास्त्र-प्रदर्शन ।
 भेदे अर्जुन लक्ष्य अपारा,
 बीज सूक्ष्मतम, घट सुकुमारा ।
 अशनि-पिण्ड-सम अन्य कठोरा,
 हनि शर, भेदि, छेदि, तकि, तोरा ।
 अस्थिर लक्ष्यहु विविध प्रकारा,
 भेदे भ्रमत चक्र-आकारा ।
 लखत हस्तलाघव जन सारे,
 मुद-बिह्वल जय-शब्द पुकारे ।
 गूँजेउ सहसा प्रेक्षागारा,
 जनु गिरि फोरि बही सरि-धारा ।
 पर-यश-असहन-शील सुयोधन,
 कोपेउ सुनत प्रजा-जय-शब्दन ।
 लोल किरीट, कम्प सब अंगन,
 अरुण विलोचन, स्वेद कपोलन ।

दोहा :— रंग-द्वार ताही समय, उपजेउ रोर प्रचण्ड ,
गरजे सहसा व्योम जनु, लय-धन घुमड़ि घमण्ड । ५६

सोरठा :— कर्षित जनु निज ओर, लक्ष लक्ष पुरजन-नयन ,
शब्दित बाहु कठोर, भये कर्ण रँगमहि प्रकट ।

दर्पित पद-गति सिंह समाना ,
वज्र वक्ष, युग बाहु महाना ।
शैल-विशाल शरीर सोहावा ,
विंध्याचलहि मनहुँ चलि आवा ।
सहज कवच, सहजहि श्रुति-कुण्डल ,
रवि-आभा रवि-सुत मुख-मण्डल ।
करि आचार्य द्रोण पद-वंदन ,
कृपाचार्य, गुरुजन अभिवादन ,
विहँसि सुयोधन दिशि अभिमानी ,
कही प्रचारि पार्थ सन वाणी—
“कौशल कछु तुम रँग दरसाये ,
जय-ध्वनि-फूलि न अंग समाये ।
प्रकटि अबहिं सोइ कौशल सारा ,
चहत हरन मैं गर्व तुम्हारा ।
देहिं जो गुरु करि कृपा निदेशू ,
प्रकटहुँ निज शर-बल सविशेषू ।”

दोहा :— अस कहि द्रोणाचार्य दिशि, लखि अनुशासन पाय ,
सोइ अस्त्र-कौशल सकल, कर्णहु दीन्ह दिखाय । ६०

चकित, समुत्सुक, अपलक लोचन ,
पुलक-जाल अंग लखत सुयोधन ।
लहि अरि-शौर्य-पथोनिधि-तारण ,
लघु उर सकेउ न करि मुद धारण ।
जदपि शील, कुल, नामहु अविदित ,
पिलेउ धाय जनु युग-युग-परिचित ।

तृषित कि पृष्ठत कबहुँ जलोद्गम ,
 पियत ताल, सरि, कूप मानि सम ।
 भेंटेउ कर्णहिँ हृदय लगायी ,
 कही गिरा संवृति विसरायी—
 “अग्रज सदृश मिले तुम आजूँ ,
 रहहु संग, भोगहु कुरु-राजूँ !”
 सुने सुयोधन-शब्द वृकोदर ,
 भयी भंग भ्रू, बदन भयंकर ।
 नयन अँगार अरिहिँ जनु जारी ,
 फुरत अधर कटु गिरा उचारी—

दोहा :— “कब, केहि ते, केहि भाँति तुम, पायेउ कुरु-कुल-राज ,
 अछत पाँच हम आजु जो, करत दान तजि लाज ।” ६१

सोरठा :— सुनत पार्थ दिशि कुद्ध, बढेउ कर्ण भीमहिँ निदरि—
 “करहु संग मम युद्ध, रंचहु जो बल-दर्प उर ।”
 विहँसिरिपुहिँ समुहाय, निमिषहिँ महँ अर्जुन बढे ,
 बिलखी उर निरुपाय, लखिरण-महिँ दोउ सुत पृथा ।

सायुध धार्तराष्ट्र शत योधा ,
 जुरे कर्ण-पाछे करि क्रोधा ।
 पाण्डु-सुतहु लखि रिपु रण-माते ,
 उठे त्यागि आसन रिस-राते ।
 कर्णार्जुन जस धनु टंकारा ,
 कृपाचार्य रण-महिँ पगु धारा ।
 पृछेउ कर्णहिँ करत प्रशंसा—
 “को तुम तात ! जन्म केहि वंशा ?
 नियम द्वन्द्व-रण कर प्रख्याता ,
 करत समर सम-कुल-संजाता ।
 अर्जुन जन्म भरत-कुल लीन्हा ,
 शोभित कवन वंश तुम कीन्हा ?”
 मुनि निस्तब्ध रंग-महिँ सारी ,
 व्याकुल कर्ण, बिलोचन वारी ।

लज्जित, आनन-द्युति कुँभिलानी,
नत शिर, रुद्ध कण्ठ, गत वाणी ।

दोहा :— लखी पृथा निज सुत-दशा, त्यागत जनु तनु प्राण,
कहि न सकी, 'यह मम सुवन', सहि न सकी अपमान । २

सोरठा :— गिरी धरणि अकुलाय, धाय सँभारेउ कुल-तियन,
उठी चेत पुनि पाय, जनु शर-आहत, भीत मृगि ।

उत प्रभुता-प्रमत्त दुर्योधन,
कीन्ह हठी अन्यहि आयोजन ।
वैरी वीर पाण्डु-सुत जानी,
कर्णहिं मन तिन ते बढि मानी,
करन हेतु तेहि निज अनुकूला,
भाषी गिरा अनर्थन-मूला—
“कृपाचार्य जो वचन उचारे,
समुझत मर्म तासु हम सारे ।
पाण्डव-पक्षपात धरि निज मन,
पार्थ-प्राण गुरु चहत बचावन ।
पै दै सुहृदहि नृप-पद यहि थल,
करत प्रकट मै अबहिं कपट छल ।
सुनहु राजजन ! प्रजा ! महीशा !
ये अब अंग देश अवनीशा ।
करहिं पार्थ रण नृप सँग आयी,
सकत न अब आचार्य बचायी !”

दोहा :— अस कहि पुनि पुनि लाय उर, प्रकटि प्रीति-अतिरेक,
कीन्ह सुयोधन रंग-महि, सविधि कर्ण-अभिषेक । ६३

सोरठा :— बरसत शोणित नैन, उठे भीम गहि कर गदा,
तेहि क्षण आतुर बैन, 'कर्ण ! कर्ण !' श्रुति-पथ परे ।

द्वार-देश जन दृष्टि फिरायी,
वृद्ध मूर्ति इक रँग दिशि आयी ।

पालक कर्ण लकुटि कर धारे,
 जीर्ण देह, प्रस्वेद पनारे,
 अधिरथ नाम, सारथी वेषा,
 'कर्ण ! कर्ण !'—कहि कीन्ह प्रवेशा ।
 लखि, अभिषेक-सिक्त धरि शीशा,
 बंदे चरण कर्ण अवनीशा ।
 सुत-पितु नात दुहुन महँ जानी,
 हँसे सव्यंग भीम अभिमानी ।
 हेरत कर्णहिं कहेउ पुकारी—
 “वंश वृत्ति अब प्रकट तुम्हारी ।
 सूत-सुवन तुम सारथि-नंदन,
 उचित न शस्त्र-ग्रहण तजि तोदन !
 हाँकहु रथ रण राज्य बिसारी,
 सोह न सूत नृपति-सुत रारी ।”

दोहा :—बढ़ेउ सुनत संधानि शर, कर्णहु कोप अपार,
 बढ़े भीम दिशि हस्त-असि, शत धृतराष्ट्र-कुमार । ६४
 बढ़े शौर्य-गर्वाढ्य सब, पाँचहु पाण्डव वीर,
 निदरत विंशति-गुण अरिन, शस्त्र-उदग्र, अधीर । ६५

सोरठा :—सहसा दोउ बिच धाय, छीने शिष्यन-शस्त्र गुरु,
 पुनि नृप अनुमति पाय, सत्वर कीन्ह समात रँग ।

लखे वधु कुरु-राज्य-प्रमुख जन,
 तजि रँग जात खिन्न निज भवनन ।
 आकुल शान्तनु-सुत गंभीरा,
 संजय-वदन व्यक्त उर पीरा ।
 सोमदत्त, वाह्मीक दुखारी,
 दुर्मन द्रोण, विदुर हग वारी ।
 अंध भूपतिहु चिन्तित देखा,
 खचित भाल जनु भावी-रेखा ।
 देखेउ बहुरि जात दुर्योधन,
 जोरे कर्ण-पाणि कर आपन ।

मूर्तिमंत पाण्डव-विद्वेषा,
जनु घृत पाय प्रवृद्ध विशेषा।
दोउ दुश्शील, न संयम रंचा,
जनु दारुण कछु रचत प्रपंचा।
संशय सुफलक-सुत मन व्यापा,
पाण्डव-अहित सोचि उर काँपा।

दोहा :— लखी पृथा पुनि गृह प्रविशि, जनु बूढ़ति मँझधार,
विरमे गजपुर बभ्रु तजि, निज पुर गमन-विचार। ६६

सोरठा :— अर्जुन गत कछु काल, देन हेतु गुरु-दक्षिणा,
जीति द्रुपद पाञ्चाल, बाँधि समर सौपेउ गुरुहिं।

कुरु-राज्यहि सम प्रबल, विशाला,
संस्कृति-धाम देश पाञ्चाला।
जदपि जाति दोउ भरत-प्रजाता,
क्रम क्रम शिथिल परस्पर नाता।
सीव सन्निकट, नित संघर्षा,
सकत न सहि इक-एक प्रकर्षा।
पाय धनंजय-जय संवादू,
दिशि दिशि कौरव-पुर आह्लादू।
स्वेच्छा नगर सजायेउ पुरजन,
कीन्हैउ हुलंसि पार्थ-अभिनंदन।
हाट, बाट, बीथी, चौराहन,
करत विचार जुरत जहँ बहुजन—
जदपि वयस्क भये ये पाण्डव,
अतुलित शौर्य, शील, गुण-वैभव।
सौपत राज्य अंध पै नाहीं,
निवसत कछुक पाप मन माहीं।

दोहा :— यहि विधि दिन-प्रति पुर बढेउ, जस जस जन-अपवाद,
व्यापेउ दुर्योधन-हृदय, तस तस रोष-विषाद। ६७
कर्ण संग सोचत अधी, नित्य कुचक्र नवीन,
बरजत सुत पै अंध नृप, निर्बल साहस-हीन। ६८

सहसा पुर जनु दैव-पठावा,
 शकुनि सुयोधन—मातुल आवा।
 सैंग चार्वाक अनीश्वर-वादी,
 परिव्राजक, श्रुति-पथ-प्रतिवादी।
 आनन्द-भोग-वाद व्याख्याता,
 मगध-महीपति-गुरु प्रख्याता।
 सहजहि विषयासक्त सुयोधन,
 प्रसुदित -पाय तर्क-अनुमोदन।
 चार्वाकहिं निज गुरु करि माना,
 दै धन रत्न कीन्ह सन्माना।
 लहि श्रुति-विश्रुत वंश प्रवेशा,
 उर चार्वाक हर्ष सविशेषा।
 कणिकहिं शिष्य श्रेष्ठ निज जानी,
 गयेउ राखि कुरुकुल-रजधानी।
 दुर्मति दुर्योधन मन भावा,
 दै अमात्य-पद नेह दड़ावा।

दोहा :— पर-मर्मान्वेषण-कुशल, छिद्र-प्रहारन हार,
 कीन्हेउ धृतराष्ट्र-हृदय, कुटिल कणिक अधिकार। ६६

सोरठा :— शकुनी-कणिक-कुमंत्र, कर्ण सुयोधन पाय दोउ,
 लाक्षा-गृह षडयंत्र, रचेउ पाण्डु-सुत-दाह हित।

राजभवन-वल्लभ इक दुर्जन,
 दुष्कृति-जीवी, नाम पुरोचन।
 ताहि सुयोधन भवन बोलावा,
 छल प्रपंच सब कहि समुभावा—
 “वेगि वारणावत तुम धावहु,
 जतु-गृह तहाँ गोप्य निर्मावहु।
 काष्ठ, सर्जरस, सन सम सारे,
 द्रव्य अनल-उदीपन हारे,
 करि संचित, रचि भवन विशाला,
 लेपहु मेलि तेल, धृत, राला।

देहु मृत्तिका पुनि अस थापी,
कैसहु चतुर सकै नहिं भाँपी।
कुन्ती जब निज सुतन समेतू,
आवहि निवसन लाह-निकेतू,
करि सत्कार, प्रतीति द्वायी,
जारेउ सोवत अनल लगायी।”

दोहा :— पठै वारणावत शठहिं, बहु धन-स्वम दिखाय,
लै दुश्शासन संग निज, आयेउ पितु ढिग धाय। ७०

पाण्डु-सुतन उत्कर्ष कहानी,
साश्रु-नयन खल बिलखि बखानी।
गहि पितु-पद पुनि कीन्ह निवेदन—
“करहु तात ! पाण्डव-निर्वासन।
रहहिं वारणावत जो जायी,
लेहौ मैं सब काज बनायी।
तात-प्रसाद सचिव नव सारे,
वाहिनि, कोषहु हाथ हमारे।
भीष्म पितामह सतत विरागी,
सम कौरव-पाण्डव तिन लागी।
अश्वत्थामा मम दल माहीं,
सुत तजि सकत द्रोण गुरु नाहीं।
विदुरहि पाण्डव-पृथा-सहायी,
बसिहैं सोउ असहाय चुपायी।
स्वल्पस्मृति सब प्रजा पौरगण,
देत बिसारि पलहिं महँ प्रियजन।

दोहा :— भावी नृप पाण्डव समुक्ति, करत आजु सन्मान,
काल्हि प्रमुख जन द्रव्य लै, करिहैं मम गुण गान।” ७१

सोरठा :— दुश्शासनहु विशेष, कीन्हिं पुनि पितु सन विनय,
लोभी, समय नरेश, भयेउ मौन द्विविधा-विकल।

कर्ण-शकुनि-प्रेषित तेहि काला,
 आयेउ नृप ढिग कणिक कराला ।
 अंध असंशय छल नहि जाना,
 कीन्हेउ सरल भाव सन्माना ।
 जानि हितू पुनि नृपति अभागी,
 कहि सब वृत्त मंत्रणा माँगी ।
 कणिकहु निज उर हर्ष दुरायी,
 बोलेउ कपट-भीति दरसायी—
 “कृपा कीन्हि जो प्रकटि प्रतीती,
 पूछत मम मत नाथ ! सप्रीती ।
 इतनिहि विनय करहुँ प्रभु पाहीं,
 जानहि मर्म कोउ यह नाहीं ।
 करत शास्त्र जो नीति बखाना,
 वरनत जेहि सब वेद पुराणा,
 जाहि प्रशंसि लहत द्विज भोजन,
 गहि तेहि मूढ़हि करत आचरण !

बोद्धा :—ताहि प्रशंसत बुधजनहु, सर्व काल, सब ठौर,
 पै जेहि जीवन आचरत, नाथ ! नीति।सो और ! ७२

वनिता, भोजन, गृह, गज, स्यंदन,
 वसन, विभूषण, माला, चंदन,
 जीवन-सार इनहिं कर भोगा,
 मंगल प्राप्ति, अनर्थ वियोगा ।
 राज्य श्रेष्ठ सुख-भोग-प्रदाता,
 महि पै सोइ स्वर्ग साक्षाता ।
 तेहि कर लाभ, वृद्धि, रखवारी,
 राजनीति इतनेहि महुँ सारी ।
 निदरि सकल सामाजिक बंधन,
 साधत संतत स्वार्थ विज्ञ जन ।
 बंधन सब समष्टि-हित लागी,
 विनसत निर्बल व्यक्ति अभागी ।

कहि जन्मान्धहिं प्राप्य न राजू,
हरेउ नाथ-अधिकार समाजू।
साधेउ स्वार्थ शास्त्र करि साखी,
प्रभु-हित-हानि ध्यान नहिं राखी।

दोहा :— अकस्मात स्वामिहि मिलेउ, पुनि निज पैतृक राज ,
निष्कण्टक भोगब सुकृत, तजब अनर्थ, अकाज । ७३

दैहिक दोष जो प्रभु-पथ बाधा,
कीन्हेउ सुवन कवन अपराधा ?
का अनीति जो सुत शत आजू,
तजन चहत नहिं करगत राजू ?
जानत भल ते राज्य विहायी,
होइहैं विभव-हीन असहायी।
पारतन्त्र्य परि क्लेश महाना,
पराधीन नित भोजन-पाना।
जिमि दिनकर-शोषित सरि-वारी,
बिनसत क्रम क्रम मीन दुखारी,
तिमि पाण्डव-अपहृत अधिकारा,
जइहैं छीजि नाथ-परिवारा।
ताते मानिन-वृत्ति उपासी,
दड़वहु संपति शत्रु विनासी।
मनुज-बुद्धि-गत साधन जेते,
करत स्वार्थ-हित बुध जन तेते।

दोहा :— जो गिरि-माला, जलनिधिहु, रोधत पथ समुहाय,
पुरुष मनस्वी हठि तिनहिं, देत ढहाय, सुखाय । ७४

सोरठा :— उद्बन्धन, विष, दाह, उचित नीति सामादि सम,
करि उपाय नरनाह ! रिपु-विहीन भोगहु मही ।”

प्रलपेउ जस जस खल वाचाला,
भयेउ विमोहित वृद्ध भुआला।

दारुण विष-द्रुम अंध न चीन्हा,
 चंदन द्रुम-भ्रम आश्रय लीन्हा।
 सचिव-सुतन परितोषि पठावा,
 युधिष्ठिरहि नृप भवन बोलावा।
 पूछि मातु-अनुजन-कुशलाई,
 नयनन नेह नीर छलकायी,
 शिर प्रेमोष्ण फेरि निज पाणी,
 भाषी माखन-मृदु नृप वाणी—
 “तात ! ज्येष्ठ तुम पाण्डु-कुमारा,
 कुरुकुल-धन, जन, राज्य तुम्हारा।
 जानि धरोहरि मही तुम्हारी,
 कीन्ही मैं अब लगि रखवारी।
 अब समर्थ तुम शास्त्र-शस्त्र-वित,
 सकल नृपोचित गुणन-अलंकृत।

दोहा :—लेहु सँभारि जो राज्य निज, महुँ पाय अवकाश,
 वय चतुर्थ मुनि-वृत्ति गहि, जाय करहुँ वनवास । ७५

एकहि बाधा यहि महुँ सम्भव,
 करहि न कहुँ मम सुवन उपद्रव।
 पाय सुयोधन कर्ण-कुसंगति,
 होत जात दूषित-मति दिन प्रति।
 परत काज नित तुम्हरेहु संगी,
 उपजत नित नव कलह-प्रसंगी।
 अनुज जननि सह पुरी विहायी,
 बसहु जो कछुक दिवस कहुँ जायी,
 होइहै मन्द सुयोधन द्वेषा,
 मिलिहै मोहि सुयोग विशेषा।
 कर्ण कुटिल ते तेहि विलगायी,
 लेहौ काहु विधि समुभायी।
 नगर वारणावत मन-भावन,
 सुरसरि-तीर क्षेत्र अति पावन।

रुचहि तो मम निदेश शिर धारी ,
निवसहु तहैं कछु काल सुखारी ।

दोहा :—शूल सकल निर्मूलि मैं, करिहौं पथ परिशोध ,
लहिहौं सत्वर पितृ-पद, गत-विद्वेष-विरोध ।” ७६

सोरठा:—धर्म - अंश - संजात, धर्ममूर्ति पाण्डव प्रथम ,
कहि, ‘जो आयसु तात’!—परसि चरण गवनेउ भवन ।

कुन्तिहिं जब सब वृत्त सुनावा ,
चकित जननि, मुख वचन न आवा ।
दारुण भीम-हृदय सन्देह ,
कहेउ “न उचित तजब निज गेहू” ।
बभ्रुहु चिन्तित सुनि संवादू ,
कहेउ प्रकटि निज हृदय-विषादू—
“रचि कछु भीषण चक्र सुयोधन ,
चहत समातु तुमहिं निर्मूलन ।
लागत मोहिं सब नृप-व्यवहारा ,
नेह-हीन, छल-कपट-पसारा ।
रुढ़न हित निज आत्मज-शासन ,
करत तुम्हार नगर-निष्कासन ।
तुम अधिकार-विहीन, अनाथा ,
साधन सकल सुयोधन-हाथा ।
शत्रु सबल, तुम निर्बल आजू ,
दण्डनीति गहि सरै न काजू ।

दोहा :—भेद सकत नहिं डारि तुम, दै न सकत कछु दान ,
ताते सामहि आजु गहि, लेहु रच्छि निज प्राण । ७७

प्रकटहु शील विनय सविशेषा ,
धरहु शीश निज नृपति-निदेशा ।
बनि अनजान, मोद - प्रकटायी ,
बसहु वारणावत सब जायी ।

आकृति ते दरसाय प्रतीती,
 रहेउ ससंशय, सजग, सभीती ।
 महुँ वेगि द्वारावति जायी,
 कहिहौ हरिहिं दशा समुभायी ।
 अइहै सुनतहि संशय नाहीं,
 बनिहै बिगरी निमिषहि माहीं ।”
 तर्क-युक्त अक्रूर-सुवाणी,
 कुन्ती-पाण्डव हृदय समानी ।
 विदुर-पितामह-गृह पुनि जायी,
 कथा बरनि सब पृथा सुनायी ।
 सम्मति गमन हेतु दोउ दीन्ही,
 आज्ञा कुन्ती शिर धरि लीन्ही ।

दोहा :— द्वारावति दिशि कीन्ह उत, सुफलक-सुवन प्रयाण,
 सुतन सहित त्यागेउ नगर, कुन्तिहु धरि हरि-ध्यान । ७८

नगर वारणावत जब आयी,
 स्वागत कीन्ह पुरोचन धायी ।
 आसन, शय्या, भोजन, पाना,
 दिये पुरोचन वाहन नाना ।
 मिले आय पुरजन सस्नेह,
 बसे पाण्डु-सुत लाक्षा-गेह ।
 उत गजपुरी विदुर मतिमाना,
 शत्रु-कुचक्र युक्ति कर जाना ।
 अनुचर निज विश्वस्त पठावा,
 गुप्त वारणावत चलि आवा ।
 पाण्डु-सुतन सन अवसर पायी,
 रिपु-छल सकल कहेउ समुभायी ।
 कहि जनिनिहिं सब सुतन प्रसंगा,
 खनी गेह इक गुप्त सुरंगा ।
 सोवत राति पुरोचन पायी,
 दीन्ह भीम गृह अनल लगायी ।

दोहा :— कदि सुरंग ते पारडु-सुत, गवने सुरसरि-पार ,
ज्वाला-बलयित लाह-गृह, भयेउ सकल जरि छार । ७६

सोरठा :—अरि जब चक्र अगण्य, रचत पृथा-सुत-नाश हित ,
शौरि-भगिनि उत अन्य, भयी अभागिनि पति-रहित ।

गवनत स्वर्ग अवन्ति-महीपा ,
बुभेउ मनहुँ मालव-कुल-दीपा ।
जरासंध निज अवसर पायी ,
लीन्हे विँद अनुविँद अपनायी ।
लहेउ अवन्तिहु असुर प्रवेशा ,
उपजे कंस-कुशासन-क्लेशा ।
लीन विषय-सुख विँद नरनाहू ,
लाहि मागध बल गनत न काहू ।
चहत विभव निज नव दरसावा ,
भगिनि-स्वयंवर भव्य रचावा ।
अवसर उचित ताहि मन जानी ,
सुमिरेउ हरिहिँ अवन्ती-रानी ।
गये स्वयंवर हरि तत्काला ,
मेली हुलसि कुँवरि वर माला ।
खल-मण्डली लुब्ध, लखि, सारी ,
बल ते लहन चही वर नाप्री ।

दोहा :— मदि विन्द अनुविन्द मद, रिपु-नृप संकल हराय ,
वरी मित्रविन्दा कुँवरि, द्वारावति हरि लाय । ८०
सन्मानी रुक्मिणि सखी, भगिनि सहोदर मानि ,
बढ़ेउ नेह शत-गुण अधिक, पूर्व वृत्त सब जानि । ८१

सोरठा :—यहि विधि बसि सुख गेह, हेरत जब हरि वभु-यथ ,
जामेउ द्रुम सन्देह, अकस्मात यदुवंश महँ ।

यदुवंशी सत्राजित नामा ,
सूर्य-भक्त, यश-पौरुष-धामा ।

करि प्रभास तप, रविहिं रिभायी ,
 वर मणि दिव्य स्यमंतक पायी ।
 दिनमणि सम मणि-ज्योति अपारा ,
 दिन प्रति देति स्वर्ण अठ भारा ।
 रत्न हस्त जस यादव लीन्हा ,
 मोह प्रवेश हृदय हठि कीन्हा ।
 अनुहरि पात्र विभव फलदायी ,
 नवत महत लहि, लघु बौराथी ।
 सोचत सत्राजित जुद्राशय—
 यह मणि द्रव्य-निकेतन अक्षय ।
 द्रव्य-मूल जीवन-सुख सारे ,
 धर्माचरणहु द्रव्य सहारे ।
 द्रव्यहि शक्ति-प्रभाव-प्रदायक ,
 शक्तिमंत सोइ यदुकुल-नायक ।

दोहा :— सत्राजितहिं समस्त जग, लागेउ नूतन, आन',
 आशा-अनुरंजित नयन, मानस स्वर्ण-विहान । ८२

द्वारावति प्रभास-तजि आवा ,
 घर घर रत्न-प्रभाव सुनावा ।
 गवनेउ पुनि अहमिति उर भारी ,
 यदुजन-सभा कण्ठ मणि धारी ।
 द्युति-कर्षित लखतहि भगवाना ,
 मणि-गुण निमिष माहिं पहिचाना ।
 सादर सत्राजितहिं सुनायी ,
 भाषेउ सहज भाव यदुरायी—
 “लक्षण कछु विशिष्ट मणि माहीं ,
 जानत जेहि तुम अब लगि नाहीं ।
 रहत रत्न यह जब जेहि देशा ,
 राज-प्रजा-कल्याण अशेषा ।
 बारेक आय अनत जो जायी ,
 प्रविशत देश ईति भयदायी ।

प्रसरत आधि व्याधि विकराला,
बरसत घन न, परत दुष्काला।

दोहा :— मणि तुम्हारि, पै अब निहित, यहि महँ जन-कल्याण,
छल बल ते जो कोउ हरै, होय अनर्थ महान। ८२

मणि-रक्षा तुम ते नहिं होई,
सौपहु नृपहिं प्रजा-हित सोई।
मणि ते मिलत जो कंचन भारा,
राखहु तेहि पै निज अधिकारा।
तप-उपलब्धहु दुर्जन-बल-धन,
भयद, अशुभ जिमि चिता-हुताशन।
सुरसरि सम जग-क्षेम प्रसूती,
सदा परार्थहि सुजन-विभूती।
तुम उदार-मन, तपी, विरागी,
करहु काज यह जन-हित लागी।
प्रजा-सुखहि हित मम प्रस्तावा,
धरहु न मन संशय, दुर्भावा।”
छुभित सुनत सत्राजित वचनन,
गवनेउ सभा त्यागि अति दुर्मन।
भाषी इत उत गिरा अशोभा,
बसेउ कृष्ण-उर मम मणि-लोभा।

दोहा :— सकेउ समुक्ति सामान्य कब, असामान्य-व्यवहार,
आरोपत गर्हित सतत, तेहि निज मनोविकार। ८४

सत्राजित प्रसेनजित भ्राता,
बन्धुन-प्रीति पुरी प्रख्याता।
जनु विधि वाम बुद्धि हरि लीन्ही,
मणि अनुजहिं सत्राजित दीन्ही।
धारि प्रसेनहु गर्व समेतू,
गवनेउ कानन मृगया-हेतू।

अनुधावत मृग चपल विशेषा,
 कीन्हेउ विजन अरण्य प्रवेशा।
 शुष्क कण्ठ अति तृषा-अधीरा,
 श्रान्त शरीर, गयेउ सरि-तीरा।
 अवनत वदन पियत जब वारी,
 भूपटेउ सहसा सिंह दहारी।
 हति प्रसेन कीन्हेउ रव घोरा,
 लै मणि चलेउ गहन वन ओरा।
 ताही क्षण जनु नियति-बोलाये,
 जाम्बवंत तेहि थल चलि आये।

दोहा :—बधि कण्ठीरव, रत्न लै, धँसे गुहा बिज धाय,
 रोहिणि सुता सुकण्ठ मणि, पहिरायी हर्षाय । ८५

सोरठा :—उत प्रसेनजित गेह, लौटेउ नहि, बीते दिवस,
 भयेउ प्रबल सन्देह, हरि-विरुद्ध यादव-हृदय।

सत्राजित मानस भय छावा,
 प्रकट दोष नहिं हरिहिं लगावा।
 कही सगोत्रन सन विष वाणी,
 आप्त जनन प्रति तिनहु बखानी।
 क्रम क्रम व्याप्त पुरी अपवादा,
 मणि-हित हरि प्रसेन अवसादा।
 हाट, बाट, बीथी, आपानक,
 भवन भवन परिवाद भयानक।
 कूप, सरित-तट, चैत्यन माहीं,
 नहिं थल जन-प्रवाद जहँ नाहीं।
 करति न जहँ रवि रश्मि प्रवेशा,
 लहत न जहाँ वायु विनिवेशा,
 अमरराज-वज्रहु जहँ निष्फल,
 कुण्ठित अन्तक-प्रगतिहु जेहि थल,
 प्रविशत संशय तहँहु कठोरा,
 असि ते तीक्ष्ण, विषहु ते घोरा।

दोहा :— वट बीजहु ते अति प्रबल, संशय-मूल सप्राण ,
निमिषहि माहि प्ररोह बढ़ि, पादप होत महान । ८६

दासी दासन नगर-कहानी ,
राजभवन सब आय बखानी ।
सुनि सुनि मिथ्यावाद भयंकर ,
लुभित मातु-पितु, भूपति, हलधर ।
रोष अपार स्वजन मन माहीं ,
सकुचत कहत हरिहि कोउ नाहीं ।
रुक्मिणि सहि न सकी अपवादू ,
कहेउ प्रभुहि सब प्रकटि विषादू ।
लखि अपवाद-भीरु अति वामा ,
भाषी मधुर गिरा घनश्यामा—
“पक्षपात तजि लखहु विचारी ,
कहत अनृत नहि पुर-नर-नारी ।
शैशव मैं नवनीत चोरवा ,
नित दधि-दूध लूटि वन खावा ।
भये वयस्क तुमहि हरि लाये ,
परेउ स्वभाव, न छुटत छुटाये !”

दोहा :— विहँसी सुनि भीष्मक-सुता, प्रभु-मुख प्रभु-इतिहास ,
हरेउ प्रिया उर शोक हरि, करत मधुर परिहास । ८७

पौर-प्रमुख, सत्राजित साथ ,
गवने वन प्रभात यदुनाथा ।
सरिता-तट प्रसेन शव पावा ,
मृत शार्दूलहु सबहि दिखावा ।
चरण-चिह्न पुनि ऋत्तराज के ,
गुहा-द्वार लागि हरि अवलोके ।
कानन गहन, गुहा अनजानी ,
विरमे द्वार पौर भय मानी ।
प्रविशे श्रीहरि सहज निराकुल ,
दुर्गम मार्ग शंकु-द्रुम-संकुल ।

सूक्त न कछु घन तिमिर प्रसारा ,
मुद्रित दृग मानहुँ तम-भारा ।
चरणहि ते करि मार्ग-निरूपण ,
गवनत हरि गहि तृण, तरु-शाखन ।
सहसा भयेउ प्रकाश अपारा ,
भव्य भवन हरि गुहा निहारा ।

दोहा :—अवलोकेउ श्रीहरि बहुरि, इन्द्रनील मणि द्वार ,
उत्कीर्णित कलधौत-लिपि, राम-कथा कर सार । ८८

पूर्व जन्म निज जीवन-गाथा ,
बाँची रोमांचित यदुनाथा ।
पढ़ि सीता-अपवाद अपावन ,
त्यागन बहुरि अरण्य भयावन ,
सस्मित मुख लीला-पुरुषोत्तम ,
प्रविशे सन्मुख भवन ससंभ्रम ।
लखत विपुल ऐश्वर्य-पसारा ,
अमरोचित सब साज सँभारा ,
अवलोकी प्राङ्गण घनश्यामा ,
तरुतल रमा-मूर्ति कोउ वामा ।
एकाकिनि जनु जनक-कुमारी ,
रही जोहि पति-पथ सुकुमारी ।
रत्न स्यमंतक कण्ठ विलोका ,
वदन-प्रभा-हत मणि-आलोका ।
उठी वाम सुनि हरि-पद-चापा ,
भयेउ रोर सहसा गृह काँपा ।

दोहा :—भवन अपरिचित लखि पुरुष, जाम्बवंत बलवान ,
गरजि तरजि हरि-दिशि बढे, शिला उपाटि महान । ८९

लखत ऋक्षराजहि हरि जाना ,
हरिहि न ऋक्षराज पहिचाना ।

दिवस अष्ट-विंशति अविरामा ,
 भयेउ गुहा भीषण संग्रामा ।
 उपल, महीरुह, नाना प्रहरण ,
 प्रेरे ऋक्षराज अति भीषण ।
 करि कौशल हरि सकल बराये ,
 मुष्टिक-बद्ध ऋक्षपति धाये ।
 वज्र-सदृश दुर्वार प्रहारा ,
 अनायास यदुनाथ निवारा ।
 विगलित गर्व सहठ तब योद्धा ,
 उछरि गहे हरि-पद सक्रोधा ।
 उठत न चरण, प्रयत्न महाना ,
 लज्जित भक्त, द्रवित भगवाना ।
 दीन्हे राम-रूप धरि दर्शन ,
 पुलकित परेउ चीन्हि पति चरणन ।

दोहा :— माँगि क्षमा दीन्ही सुता, दिव्य स्यमंतक साथ ,
 लब्ध-रत्न-द्वय मन मुदित, तजी गुहा यदुनाथ । ६०

उत पुरवासी कंदर-द्वारा ,
 विरमे परस्वत पथ पखवारा ।
 अंत सशंक, समीति, दुखारे ,
 लौटे द्वारावति मन मारे ।
 सुनि यदुपति-वियोग-संवाद ,
 शोक राज-गृह, पुरी विषाद ।
 सोचत, पुर प्रवाद-प्रिय जानी ,
 तजेउ हमहि श्रीहरि यश-मानी ।
 यदुपति-दर्शन-विरहित प्रति क्षण ,
 भयेउ असह्य, भ्रान्त मति पुरजन ।
 सत्राजितहि दोष कछु देही ,
 कछु निज शीश पाप सब लेही—
 हमहि सकल मर्याद-बिहीना ,
 भाषेउ निज मुख मणि-कौलीना ।

भये सकल मतिमंद, अभागी,
हती सुरभि हम पगतरी लागी।

बोहा :—पूर्व पुरय-बल-प्राप्त हरि, चारु चरित, निष्ठाप,
खोये मति-चापल्य वश, रहेउ शेष परिताप । ६१

यहि विधि दग्ध विरह-दव-ज्वाला,
दिन प्रति पुरजन विकल, विहाला।
सुमिरत हरिहि धारि हिय ध्याना,
बहु उपवास, नियम, व्रत, दाना।
करत महामाया-आराधन,
नित्य छमावत, अघ, अपराधन।
आये सहसा पुरी मुरारी,
कण्ठ स्यमंतक, सँग वर नारी।
हर्ष-पयोधि मग्न पुरवासी,
लीन्हे धाय घेरि सुखराशी।
मुदित विलोकत आनंदकंदा,
जय-स्वर-मुखरित पुर आनंदा।
प्रतिक्रिया लखि उर उर माहीं,
प्रेमस्निग्ध प्रसुहु मुसकाहीं।
लखि सुयोग पुनि सभा बोलायी,
गुहा-वृत्त सब कहेउ सुनायी।

बोहा :—मणि सत्राजित-कण्ठ जब, पहिरायी जगदीश,
निदक पद-वंदक भयेउ, लागेउ महि नत शीश । ६२

संतत मार्ग-अष्ट सब प्राणी,
इतमति होत चूक पहिचानी।
जब लागि पुनि न इष्ट पथ पावत,
फिरत त्रास प्रति पद उपजावत।
सोचत सत्राजित दुख दीना—
निंद्य जन्म मम संयम-हीना।

सद्गुण-भूषण श्याम सत्यधन ,
पर-हित व्यसन, धर्म-हित जीवन ।
अस नर-रत्न उपल हित त्यागा ,
तजि सुरतरु किशुक अनुरागा ।
सकहुँ न जो पुनि स्वामि रिभायी ,
मुयेउ न मम उर जरनि बुभायी ।
सुता सत्यभामा गुण-धामा ,
करहिं जो ताहि ग्रहण घनश्यामा ,
यौतुक-रूप मणिहिं दै साथी ,
होहुँ बहुरि कृतकृत्य, सनाथा ।

दोहा :— अस मन गुनि, मंतव्य निज, प्रभुहि सुनायेउ जाय ,
स्वीकारी श्रीपति सुता, दीन्ही मणि लौटाय । ६३
द्वय विवाह यहि विधि भये, बहुरि पुरी आह्लाद ,
लौटे तेहि क्षण वभ्रु लै, पाण्डु-सुवन-संवाद । ६४

कहेउ वृत्त सुफलक-सुत सारा ,
सुनि सुनि शोकाकुल परिवारा ।
तत्क्षण आर्त-बंधु यदुनाथा ,
गवने गजपुर हलधर साथी ।
इत वभ्रुहु निज गृह पगु धारी ,
सुनी स्यमंतक-गाथा सारी ।
सुनेउ सत्यभामा-हरि-परिणय ,
निमिषहि माहिं भयेउ जनु मति-लय ।
चहत विवाहन वामहिं आपू ,
लहि संवाद विषम उर तापू ।
भूलेउ भक्ति सुनीति मुग्ध मन ,
भूलेउ नयन अंगना-आनन ।
सोचत, कीन्हि कृष्ण कुटिलाई ,
पठै अनत मोहिं तिय अपनायी ।
श्रेष्ठ वस्तु जो लखत जाहि थल ,
हरत अशंक सतत करि कछु छल ।

दोहा :—कृतवर्मा निज मित्र-गृह, आये आतुर धाय,
कृष्ण-कुटिलता, छल सकल, कहेउ सरोष सुनाय । ६५

बोलेउ विहँसि चतुर कृतवर्मा—
“विदित मोहिं सब यदुकुल मर्मा ।
तुम, सात्यकि, हरि, हलधर सारे,
उपजे वृष्णि-वंश उजियारे ।
राजपाट, धन, धाम तुम्हारा,
केवल सेवा स्वत्व हमारा ।
नामहि-मात्र उग्र अब राजा,
हरिहि यथार्थ आजु यदुराजा ।
सकल भोज-अंधक-कुल-यदुजन,
करत सोइ जो कहत वृष्णि जन ।
जन्मेउँ भोज-वंश मैं हीना,
उचित बसब ऐश्वर्य-विहीना ।
आजु रोष तुम्हरे मन माहीं,
तजि पै सकत हरिहिं तुम नाहीं ।
देहै मूढ़हि तुमहि सहायी,
खोजहु मित्र अनत कहँ जायी !”

दोहा :—मर्म वचन अकूर सुनि, तजी न निज उर आस,
सुहृद-भाव पुनि पुनि प्रकटि, उपजायेउ विश्वास । ६६

कृतवर्मा तब मन्त्र दृढ़ावा,
शतधन्वहिं निज भवन बोलावा ।
बरनि रत्न-गुण ताहि लोभायी,
कहेउ कुचक्र बभ्रु समुभायी—
“मनुज सकल जग एक समाना,
करति दिव्य वस्तुहि यश दाना ।
दिव्य शस्त्र लहि हरि-बलरामा,
भये आजु यदुकुल यश-धामा ।
सकहु स्यमंतक जो तुम पायी,
बढ़िहै वंश कीर्ति प्रमुताई ।

गये सुदूर देश हरि-रामा ,
मणि आजहु सत्राजित-धामा ।
अवसर अस न बहुरि तुम पावहु ,
हति सत्राजित मणि अपनावहु ।”
मणि-गुण सुनत लुब्ध मन-काया ,
व्यापी शतधन्वा-उर माया ।

दोहा :— अर्ध रात्रि अन्तक सदृश, सत्राजित-गृह जाय ,
हरी स्यमंतक पाप-मति, बधि सोवत असहाय । ६७
प्रात सत्यभामा सुनेउ, जैसेहि पितु-वध घोर ,
स्यंदन साजि सरोष उर, गवनी गजपुर ओर । ६८

इत तब लगि साग्रज पुर आयी ,
प्रविशे विदुर-सदन यदुरायी ।
मूर्ति-विभव मुनि-ध्यान-अंगोचर ,
भयेउ भक्त-दृग-अंचल गोचर ।
उर कंदलित दरस आनंदा ,
देह पुलक, दृग अंबु अमंदा ।
पाय दरस बरसे जनु कोये ,
लोचन-सलिल कमल पद धोये ।
भरे बहुरि विनयस्तुति फूला ,
लहि वर भक्त हरिहु अनुकूला ।
जानेउ लखतहि यदुकुल-दीपा ,
विलसत उर विज्ञान-प्रदीपा ।
उर-भावुकता मानस-नियमित ,
मानस हृदय-भावना-स्भावित ।
राग-विराग-विवाद बिसारी ,
निजाधीन मन विश्व-विहारी ।

दोहा :— जन-मन-प्राङ्गण कल्पतरु, श्याम सच्चिदानन्द ,
दीन्हेउ पुनि पुनि अंक भरि, भक्तहि मोक्षानन्द । ६९

बसे सुखासन लखि यदुनाथा ,
बरनी विदुर लाहगृह-गाथा ।

जेहि विधि पाण्डव जननी-संगा,
प्रविशे विपिन पार करि गंगा ।
पथ जिमि मिले व्यास ऋषिरायी,
आश्रम लाय कीन्हि पहुनाई ।
पुरी एकचक्रा द्विज-गेहा,
राखेउ जस मुनीश सस्नेहा ।
“बसत समातु अबहुँ तहँ भ्राता,
जब तब देत मोहिं कुशलाता ।
मैं अरु व्यास ऋषीश्वर दोई,
जान रहस्य, अन्य नहिं कोई ।
इत गजपुर मृत पाण्डव जानी,
समुक्ति प्रपंच प्रजा पछितानी ।
प्रकट शोच धृतराष्ट्र जनावा,
करि अंत्येष्टि हृदय सुख पावा !

दोहा :— सुखी सुयोधन सम कवन, यहि वसुधा-तल आज,
जानि नष्ट पथ-शूल सब, प्रकट भयेउ कुरुराज । १००
इत खल भोगत राज्य-सुख, उत सब पाण्डु-कुमार,
मिद्वान करि पोषत उदर, अस विचित्र संसार !” १०१

विदुर सजल दृग बरनत गाथा,
भाषी धैर्य-गिरा यदुनाथा—
“पितुहू ते बड़ि तुम उपकारी,
रच्छे पाण्डव संकट दारी ।
लोभाकृष्ट हृदय दुर्योधन,
सकत न कुटिल भोगि चिर पर धन ।
जब जब लघुमति सीमा त्यागी,
होत महत आसन अनुरागी,
तब तब घटत अनर्थ अनेकन,
पावत क्लेश नित्य नव सज्जन ।
बिनसत दुर्जन अंत अभागी,
संतत सुजन अमर यश-भागी ।

धैर्यहि जग श्री-सौख्य-प्रदाता ,
तजहिं धैर्य नहिं पाण्डव भ्राता ।
यापि सधीर समय प्रतिकूला ,
प्रकटहिं लहि अवसर अनुकूला ।

दोहा :— पृथा, पाण्डु-सुत पास मम, पठवहु यह सन्देश—
‘अइहैं सत्वर शुभ दिवस, मोहिं संशय नहिं लेश’ ।” १०२

भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, समीपा ,
चहत जान जब यदुकुल दीपा ,
सहसा रुकेउ द्वार इक स्यंदन ,
लखी सत्यभामा यदुनंदन ।
अधरस्फुरण, प्रकम्प शरीरा ,
नयन विशाल स-ज्वाल, सनीरा ।
तजि आतुर रथ, लै पितु नामा ,
लिपटी पति-पद बिलपत वामा ।
सुनि सत्राजित बध दोउ भ्राता ,
नख-शिख रोष तरंगित गाता ।
पालि तबहुँ प्रभु शिष्टाचारा ,
भीष्म, द्रोण, नृप-गृह पगु धारा ।
शान्तनु-तनय तोषि यदुनंदन ,
गवने द्वारावति दिशि तत्क्षण ।
उत शतधन्वा सुनि आगमनू ,
गयेउ भीत कृतवर्मा-भवनू ।

दोहा :— कृतवर्महु उर व्याप्त भय, गुनि हरि-रोष कराल ,
कहे शील बंधुव तजि, निठुर वचन तत्काल — १०३
“वभ्रु-कहे तुम कीन्ह सब, करिहैं सोइ सहाय ,
नित मोहिं पै यदुपति-कृपा, महुँ भक्त यदुराय ।” १०४

वचन शुष्क सुनि खल उर काँपा ,
गयेउ वभ्रु दिग मन परितापा ।

सुफलक-सुतहु सुअवसर जानी,
भाषी तर्क-युक्त मधु वाणी—
“लखहु सोचि आपुहि मन माहीं,
हरि ते रच्छि सकत कोउ नाही।
जब सरि पूर बहत घहरायी,
मूढ़हि धँसि बूढ़त असहायी।
चहहु जो आजु बचावन प्राणा,
करहु अनत तजि पुरी प्रयाणा।
जेहि पै होय परम विश्वासा,
जाहु राखि निज मणि तेहि पासा।
राखे संग न सकहु दुरायी,
मणि हित देहौ प्राण गँवायी।”
सुनत हताश कुमति निरुपायी,
दै वभ्रुहिं मणि चलेउ परायी।

बोहा :—पहुँचे हलधर कृष्ण दोउ, द्वारावति तेहि काल,
भागत शतधन्वहि सुनेउ, औरहु रोष कराल। १०५

शतधन्वा वर वाजि सवारा,
धावत नाँधत सरित पहारा।
स्यंदन पछियावत हरि रामा,
छूटत जात रम्य वन ग्रामा।
विकल निखिल आनर्त विहायी,
चलेउ पूर्व दिशि बधिक परायी।
उज्जयिनी, विदिशा, कालिञ्जर,
प्रविशे अनुधावत हरि हलधर।
प्रतिष्ठान, काशिहु पुनि त्यागी,
भागेउ मिथिला ओर अभागी।
सहसा गिरेउ अश्व निष्प्राणा,
हरि-स्यंदन-घर्घर नियराना।
मति-विसव कछु सुनत न बूझत,
धावत इत उत पंथ न सुझत।

रथ अग्रजहिं राखि भगवाना,
आपहु पायँन कीन्ह प्रयाणा ।

दोहा :— सकेउ भागि नहिं खल विकल, हतेउ केश गहि धाय ,
लही न पै मणि तासु ढिग, विहँसे मन यदुराय । १०६

सोरठा :— बंधुहिं सहज स्वभाव, आय सुनायेउ वृत्त जब ,
अविश्वास, दुर्भाव, उपजेउ सहसा राम-उर ।

अनुजहिं संशय-नयन निहारी ,
गिरा रुक् वलराम उचारी—
“प्रिय वयस्य मम मिथिला-नाथा ,
बसिहौ कछुक दिनन तिन साथी ।”
अस कहि, त्यागि हरिहिं सविषादा ,
प्रविशे हलि मिथिला-प्रासादा ।
कीन्हेउ स्वागत धाय विदेहू ,
राखेउ गेह पूजि सस्नेहू ।
गजपुर वृत्त सुयोधन पायी ,
आयेउ जनकपुरी हर्षायी ।
प्रकटि राम-पद भक्ति अशेषा ,
सीखेउ गदा-युद्ध सविशेषा ।
प्रेमाङ्कुर रामहु-मन जामा ,
उपजेउ पक्षपात हृद्धामा ।
सहज शिष्य-गुरु-नात ददायी ,
गवनेउ गेह मुदित कुरायी ।

दोहा :— हरिहु पहुँचि उत जब पुरी, दीन्हेउ मणि-संवाद ,
उपजायेउ दारावती, खलन बहुरि अपवाद । १०७

जानि उपाय-निपुण मधुसूदन ,
पावत शान्ति न विकल वभ्रु-मन ।
तीर्थाटन मिस लै मणि भागे ,
पुरी अनर्थ होन नित लागे ।

मणि-विहीन आनर्त दुखारी,
 बरसे मेघ न बूँदहु वारी।
 परत न एक ओस-कण प्राता,
 तृण-विहीन महि, तरु बिनु पाता।
 सरि, सर, वापी वारि-विहीना,
 बिनसेउ गोधन साधन-हीना।
 परेउ देश दारुण दुष्काला,
 दिशि दिशि अन्न-अभाव कराला।
 प्रजा लुधार्त, विकल पुर प्रामा,
 क्रन्दन घोर व्याप्त प्रति धामा।
 बड़े विपुल तस्कर, बटमारा,
 नष्ट निखिल जीवन-व्यापारा।

दोह :— कय-विक्रय विरहित निगम, कहूँ न यज्ञ, जप, दान,
 मनुज सचल कंकाल जनु, महितल मनहुँ मसान। १०८

विकल विचारत हरि मन माहीं—
 अब न पुरी मणि, वभ्रुहु नाहीं।
 शतधन्वा ते मणि इन पायी,
 दुरे दूरि कहूँ मम भय जायी।
 अस गुनि मन हरि दूत पठाये,
 काशी तिन सुफलक-सुत पाये।
 सादर द्वारावती बोलायी,
 राखेउ हरि सनेह प्रकटायी।
 आवत पुर मणि बरसेउ वारी,
 बहुरि निखिल आनर्त सुखारी।
 भयेउ हरिहु मन दृढ़ विश्वासा,
 रत्न अबहुँ सुफलक-सुत पासा।
 तदपि सभय पुनि जाहिं न भागी,
 कहेउ न कछु हरि जन-अनुरागी।
 अक्रूरहु निश्चिन्त सुखारी,
 समुक्तेउ हरि मणि-कथा बिसारी।

दोहा :— एक दिवस यादव-सभा, वभ्रुहिं लखि यदुराय ,
चचैउ मणि निज अंग ये, राखत वसन दुराय । १०६

हेरत वभ्रुहिं हरि मति-धीरा ,
भाषी गिरा वदन गम्भीरा—
“शतधन्वा जब पुर यह त्यागी ,
भागैउ मम भयभीत अभागी ।
गयेउ तुमहिं दै मणि हत्यारा ,
लही न मैं जब तेहि संहारा ।
कलुषित जन मन पुनि मम ओरा ,
भये अग्रजहु विमन, कठोरा ।
खिन्न तजेउ मोहि मार्गहि माहीं ,
आये अबहुँ बहुरि गृह नाहीं ।
बढ़ेउ पुरी अनुदिन अपवादू ,
भयेउ शान्त नहि अबहुँ विवादू ।
तुमहु बिसारि प्रजा-कल्याणा ,
लै मणि कीन्ह विदेश प्रयाणा ।
संकट अगणित मणि उपजाये ,
फिरत तदपि तुम ताहि दुराये ।

दोहा :— अजहुँ तुम्हारेहि पास मणि, यहि क्षण, यहि थल माहि ,
प्रकटे बिनु तेहि तजि सभा, उचित गमन गृह नाहि । ११०

विस्मित सभा, वभ्रु-उर काँपा ,
व्याप्त भीति, लज्जा, अनुतापा ।
मन नयनन तम-पारावारा ,
भयेउ शून्य सहसा संसारा ।
शिथिल शरीर न सके सँभारी ,
गिरे वभ्रु पद ‘पाहि’ पुकारी ।
लखतहि प्रणत चरण निज गुरुजन ,
सकुचे विनय-मूर्ति यदुनंदन ।
कहि, ‘पितृव्य !’ ‘तात !’ उर लाये ,
अभय वचन भगवान सुनाये ।

लहि संज्ञा, मणि सन्मुख राखी,
गिरा दीन सुफलक-सुत भाखी—
“कीन्हेउ घोर कर्म में अवमति,
संभव नहिं यहि जीवन निष्कृति।
समुचित दण्ड प्रभुहु नहिं दीन्हा,
गुनि पितृव्य क्षमा मोहि कीन्हा।

दोहा :— नष्ट आत्म-विश्वास मम, उर असह्य अव-भार,
उचित मृतक-वत् गृह बसहुँ, जानि जन्म निस्सार । १११

अस कहि सभा-भवन मणि त्यागी,
गवने गृह अक्रूर विरागी।
गवने अनुधावत यदुरायी,
मणि सप्रीति साग्रह लौटायी।
बभ्रुहु ध्यान-अध्ययन-लीना,
बसे भवन भव-भोग-विहीना।
लहत स्यमंतक ते जो कंचन,
करत दान नित, बसत अकिंचन।
नियमित क्रम क्रम मन-गति सारी,
निर्विकार पुनि बभ्रु सुखारी।
उत सुनि वृत्त जनकपुर सारा,
रामहु द्वारावति पगु धारा।
हरि-उर पूर्व नेह अवलोकी,
बसे गेह बलराम विशोकी।
गत अशान्ति, संशय, दुर्भावा,
सुख सौहार्द पुरी पुनि छावा।

दोहा :— श्रीहरि तवहिं सुलक्षणा, वरी माद्रि वर नारि,
पुनि भद्रा केकय-सुता, सत्या अवध-कुमारि । ११२
धारि बहुरि प्रद्युम्न वपु, शंकर वर अनुसार,
हरि-रुक्मिणि पितु-मातु लहि, भयेउ मदन साकार । ११३

सोरठा:—उपजे साम्ब कुमार, बहुरि जाम्बवति गर्भ ते,
पुरी उछाह अपार, मज्जित सुख-सरि राज-गृह ।

ताहि काल पाञ्चाल-अधीश्वर,
द्रुपद रचेउ निज सुता स्वयंवर ।
कृष्णा त्रिभुवन-सुन्दरि नारी,
यश-सुरभित भारत महि सारी ।
यदुजन द्रुपद-निमंत्रण पावा,
हर्ष हुलास निखिल कुल छावा ।
तरुण द्रौपदी-छवि अभिलाषे,
वृद्ध जन्ममहि-दरस पियासे ।
तरुण वृद्ध अस को कुल माहीं,
उत्सव-प्रियता जेहि उर नाहीं ?
लखि उछाह, लै संग समाजू,
गवने मध्यदेश यदुराजू ।
जैसेहि करि कालिन्दी पारा,
प्रभु पाञ्चाल-भूमि पगु धारा,
लखे पंथ स्वागत हित निर्मित,
उपवन, सदन, विहार अपरिमित ।

दोहा:—लहत नित्य आतिथ्य नव, स्वजनन सह यदुवीर,
नियराने काम्पिल्यपुर, पुराय जाहवी तीर । ११४

सोरठा:—सुनि हरि आवन-वृत्त, धाय मिले प्रमुदित द्रुपद,
मुग्ध देह, दग, चित्त, भयेउ भक्त लखतहि नृपति ।

सेवा-भाव-विनम्र महीपा,
पूजि शास्त्र-विधि यदुकुल-दीपा,
नूतन अतिथि-नगर मन-भावन,
लाय दीन्ह सुख-वास सोहावन ।
अवलोकैउ यदुजन संभारा,
निर्मित नव परिखा, प्राकारा ।

फटिक सौध, व्योमग अट्टालक,
मणिमय कुट्टिम, हाटक जालक।
दिशि दिशि रत्नस्तंभ विशाला,
दोलित सित स्रग्दाम प्रवाला।
चित्र-विचित्र पताका केतन,
भूषित वंदनवार निकेतन।
अशन-शयन-सुविधा विधि नाना,
रम्य विहार-भूमि, उद्याना।
गायन, नृत्य, चतुर्दिक कौतुक,
जन संमर्द, लखत दृग उत्सुक।

दोहा :— सिञ्चित पथ सुरमित सलिल, धावत रथ, गज, बाजि ,
व्याप्त विपुल कल्लोल पुर, रहे वाद्य बहु बाजि । ११५

रचित स्वयंवर-महि पुर-पासा,
रत्न-स्वचित जनु ज्योत्स्ना-हासा।
मंच उच्च मानहुँ गिरि-श्रृंगा,
मनहर आसन नाना रंगा।
मंचन सँग सोपान सोहाये,
रुचिर छदन छादित मन भाये।
सुरसरि-शीकर-शीतल, मंदा,
डोलत सतत अनिल सानंदा।
चंदन, अगरु, धूप, घनसारा,
सुमन-सुवासित रँग-थल सारा।
मध्य भाग वेदी निर्मायी,
दिव्य शरासन धरेउ सजायी।
धनुष समीपहि यंत्र महाना,
फिरत अहर्निश चक्र समाना।
कृत्रिम मत्स्य सोह तेहि ऊपर,
भ्रमत यंत्र-गति-साथ निरंतर।

दोहा :— परी प्रलय-जलनिधि-भँवर, निरालंब जनु मीन,
चक्रवारि-प्रेरित सतत, घूमति निज गति-हीन । ११६

समारोह लखि हर्ष अपारा ,
 निवसे यदुजन पुर पखवारा ।
 दिवस षष्ठ-दश भयेउ स्वयंवर ,
 प्रविशे रंग असंख्य नारि नर ।
 निवसि सिंहासन स्वजनन साथा ,
 निरखेउ समारंभ यदुनाथा ।
 आसमुद्र भारत महि माहीं ,
 नहि अस शूर जो रँग-थल नाहीं ।
 वर्ण-विभेद-विचार विहायी ,
 जुरेउ विशाल आर्य-समुदायी ।
 सकल नियत निज थल आसीना ,
 नहि रँग मनुज जो आसन-हीना ।
 गूँजी बंदीजन वर वाणी ,
 गावत शौर्य अतीत कहानी ।
 राजपुरोहित हवन करावा ,
 श्रुति-उच्चार स्वस्ति-स्वर छावा ।

दोहा :— थमे वाद्य सहसा सकल, जन-कोलाहल शान्त ,
 रँग-भूमि गवनी कुँवरि, धरति चरण मृदु, कान्त । ११७

अँग पंकज-किजल्क-सुवासा ,
 मलय समीर मनहुँ निःश्वासा ।
 देह कान्ति इन्दीवर श्यामा ,
 दशनोज्ज्वल मुखेन्दु अभिरामा ।
 नयन अधीर, मधुर आलोकित ,
 नीलस्निग्ध अलक अति कुञ्चित ।
 अधर बिम्ब विद्रुम द्युति भासा ,
 मंजु कपोल, कण्ठ, श्रुति, नासा ।
 अरुण सहस्रपत्र पद राजत ,
 मंद मंद मणि नूपुर बाजत ।
 कर युग मंजुल मृदुल मृणाला ,
 अङ्गुलि ललित कलित जयमाला ।

मनहुँ विमोहन हित जग सारा ,
बहुरि मोहिनी वपु विभु धारा ।
प्रविशति रँग पाञ्चाल-कुमारी ,
लक्ष लक्ष दृग अचल निहारी ।

दोहा :— सम्मोहन मुनि-मानसहु, सुषमहि साङ्ग निहारि ,
उन्मुख, उत्कण्ठित, चकित, दत्तचित्त नर नारि । ११८

हरि इक अविकल, विगत-विकारा ,
समारंभ सम भाव निहारा ।
रँग-महि निखिल लखत यदुराजू ,
रमे नयन जहँ द्विजन-समाजू ।
लखे पाँच जन विप्रन माहीं ,
लखे कतहुँ जस महितल नाहीं ।
आकृति अवलोकत अनुमाने ,
पाण्डव पाँच श्याम पहिचाने ।
मुदित हृदय हलधरहिं दिखायी ,
भाषी मंद गिरा यदुरायी—
“ये नृप-सुत द्विज-वेष बनाये ,
ज्ञात्र-तेज नहिं दुरत दुराये ।
भस्मावृत पावक सम ताता !
लागत मोहिं ये पाण्डव-भ्राता ।
अवसर जानि चाहत अब प्रकटन ,
करिहैं ये ही मत्स्य-विभेदन ।”

दोहा :— स्वजनन बहुरि निदेश हरि, दीन्हेउ पाय सुयोग—
“करै न यादव शूर कोउ, मत्स्य-भेद उद्योग ।” ११९

ताही क्षण पाञ्चाल-कुमारा ,
धृष्टशुम्न उठि वचन उचारा—
“सुनहु आर्य-जन ! प्रजा ! नरेश !
यह मम स्वसा दिव्य वपु वेषा ।

कृष्णा यज्ञानल-संजाता ,
 कन्या-रत्न भुवन-विख्याता ।
 सुलक्षणा, शुभ परिणय-काङ्क्षिणि ,
 वरिहै ताहि जो शूर-शिरोमणि ।
 शौर्य-निकष यह धनु, ये बाणा ,
 मत्स्य-युक्त वह यंत्र महाना ।
 ग्रहणहु कठिन कठोर शरासन ,
 औरहु कठिन बाण-अध्यासन ।
 मत्स्य सचल, अति कठिन निरीक्षण ,
 कौशल-सीमा लक्ष्य-विभेदन ।
 कर्म अमानुष संशय नाही ,
 पै भरोस दृढ़ मम मन माहीं—

बोद्धा :— आर्य-मही वीरप्रसू, प्रकटत नित नररत्न ,
 लहिहै यश सँग कोउ कुँवरि, आजहु सिद्ध-प्रयत्न ।” १२०

दुस्साहस-वर्जक वर वाणी ,
 रूप-विमुग्ध नृपन अवमानी ।
 धावत मधुप गंध-मधु-भूला ,
 लखत प्रसून, गनत नहिं शूला ।
 उठे त्यागि आसन नरनाथा ,
 सुत, पितु, बंधु, मित्र इक साथी ।
 सकल नेह-संबंध बिसारी ,
 बड़े प्रलपि कर शस्त्र सँभारी ।
 दमके शिर किरीट, उर हारा ,
 भुज केयूर, रंग उजियारा ।
 मनसिज-जब बहु धाय महीपा ,
 पहुँचे तमकत चाप समीपा ।
 शकुनि अप्रसर, गर्व अशेषा ,
 झपटि गहेउ कार्मुक सावेशा ।
 कर्षेउ जैसेहि धनुष हठाता ,
 लागेउ भीषण व्या-आघाता ।

दोहा :— गिरेउ अवनितल, खसि गिरे, कनक मुकुट, मणिहार ,
अट्टहास गूँजेउ सभा, लज्जित सुबल-कुमार । १२१

तजेउ न तबहुँ नृपन अविवेका ,
धनु दिशि बड़े एक पै एका ।
रुक्मि, जयद्रथ, अश्वत्थामा ,
पौण्ड्रक, काशिराज बलधामा ,
विंद, भगदत्त, शल्य मद्रेशा ;
चेदिनाथ, कारुष-नरेशा ,
औरहु विपुल वीर धनुधारी ,
सके न मौर्वि-निघात सँभारी ।
विफल-प्रयत्न सकल शिर नायी ,
लौटे मंचन दर्प गँवायो ।
सहसा उठे कर्ण धनुमाना ,
भयेउ कोलाहल सभा महाना—
‘सारथि ! सूत !’—शब्द रँग छाये ,
निदरि कर्ण रव धनु ढिग आये ।
सहजहि जस उठाय ज्या तानी ,
बदन विवर्ण कुँवरि बिलखानी ।

दोहा :— धरेउ शरासन बाण जस, कृष्णा कीन्ह पुकार—
“वरिहौ मैं न अनार्य-सुत, सूत-सुवन, रथकार !” १२२
सुनत कर्ण कटु हास्य करि, त्यागेउ धनुष सक्रोध ,
बसेउ निजासन, उर भरी, विषम ज्वाल प्रतिशोध । १२३

सुदृढ़-दशा लखि जुब्ध सुयोधन ,
जाय उठायेउ सुदृढ़ शरासन ।
कर्षत शिञ्जिनि महितल आवा ,
अट्टहास पुनि रँग-थल छावा ।
अस्थिर द्रुपद, हतप्रभ राजा ,
उठेउ तबहि कोउ विप्र-समाजा ।

लखि छवि दिव्य मुग्ध रँग-शाला ,
 मुग्ध कुँवरि, चंचल कर माला ।
 उत अग्रजहि कहेउ भगवाना—
 “यह अर्जुन कौन्तेय, न आना ।
 द्युति कुरुविन्द, मूर्त कन्दर्पा ,
 वत्सकंध वृहत, मुख दर्पा ।
 भुज प्रचण्ड गज-शुण्ड प्रमाणा ,
 गवनत धनु दिशि सिंह समाना ।
 लखहु सुमन सम धनुष उठावा ,
 लखहु कर्षि ज्या बाण चढ़ावा ।”

दोहा :— भाषे इतं श्रीहरि वचन, तजेउ पार्थ उत बाण ,
 छिन्न मत्स्य निपतित मेही, हर्ष-निनाद महान । १२४

जय-शब्दन गूँजेउ रँग सारा ,
 सुमन-वृष्टि चहुँ ओर अपारा ।
 मुदित विप्र मृग-चर्म उछारे ,
 विजय-बाद्य बाजे रँग द्वारे ।
 मागध सूत प्रशस्ति उचारी ,
 विह्वल मुद-अतिरेक कुमारी ।
 मनोराग-अरुणित मुख रोचन ,
 पुलक कपोल, प्रफुल्ल विलोचन ।
 मधुरस्मित विम्बाधर भासुर ,
 रशना कणित, रणित पद नूपुर ।
 आनँद-निर्भर बाल मराली ,
 गवनी प्रिय समीप पाञ्चाली ।
 उन्मुख कुँवरि, पटाञ्चल चंचल ,
 तरल कर्णिका, अलक, दृगंचल ।
 उठत हस्त कंकण-मणि दमकी ,
 भासित रंग बिज्जु जनु चमकी ।

दोहा :— परिणय-प्रणय-प्रतीक वर, शौर्यार्चन जयमाल ,
 अर्पी आनँद-कण्टकित, अर्जन-वत् विशाल । १२५

लखि सन्निकट द्रौपदी-शोभा ,
 प्रबल विशेष जनेशन-लोभा ।
 लही न निज निज बल पाञ्चाली ,
 चहत करन मिलि सकल कुचाली ।
 जैसेहि द्रुपद-सुता लै संगी ,
 निकसे अर्जुन तजि महि रंगा ।
 बड़ी लालसा उर अनिवारा ,
 पार्थहि रण-हित नृपन प्रचारा ।
 धर्म-शील पाञ्चाल मुञ्चाला ,
 युद्ध-प्रसंग विलोकि विहाला ।
 नम्र-मौलि समुझायेउ निज प्रण—
 “उचित न नीति-नियम-अतिवर्तन ।”
 बोलेउ सुनि अविनीत सुयोधन—
 “बधहु विप्र-सँग शठ पाञ्चालन ।
 ये ही सब मर्याद बिसारी ,
 वरत भिक्षुकहि राजकुमारी ।”

दोहा :— सुनत द्रुप कुरुपति-वचन, कुपित सकल पाञ्चाल ,
 विफल विलोकि विनम्रता, बोलेउ लुब्ध मुञ्चाल— १२६

“गुनि मन अतिथि, तुमहि सन्मानी ,
 भाषी मैं नत-मस्तक वाणी ।
 धृष्ट, वक्रमति, तुम अति मानी ,
 मृदुता मम कातरता जानी ।
 कहहुँ सत्य, नहि करत विकथन ,
 गनत तृणहिवत् मैं सब कुरुजन ।
 सबल वंश मम स्वबल-भरोसे ,
 नहि कुरुजन सम हम पर-पोसे ।
 कहत द्विजन तुम भिक्षुक आजू ,
 चलत द्रोण द्विज बल कुरुराजू ।
 करि अश्वत्थामा पद-पूजन ,
 बसत अभय जगतीतल कुरुजन ।

कृपाचार्य द्विज अन्य भिखारी ,
जियत जासु तुम चरण पखारी ।
वीर एक तुम कुल उपजावा ,
जीतन जो मोहिं मम पुर आवा ।

दोहा :— जारेउ तुम तेहि लाह-गृह, बांधव जननी साथ ,
जानत जग जेहि भाँति तुम, भये आजु कुरुनाथ ।” १२७
विहँसे अर्जुन सुनि वचन, विहँसे सुनि भगवान ,
क्रुद्ध सुयोधन कर्ण-सँग, समर हेतु समुहान । १२८

लखेउ धनंजय कर्ण रणोद्यत ,
बढ़त सदर्प द्रुपद दिशि उद्धत ।
लखे बहोरि विपुल पाञ्चाला ,
बढ़त युद्ध-सन्नद्ध कराला ।
समर विलोकि पार्थ समुपस्थित ,
द्रुपदहिं कही गिरा वीरोचित—
“जेहि क्षण राजकुँवरि रँग-शाला ,
पहिरायी मम गर वर माला ,
ताहि क्षणहि तेहि रक्षण-भारा ,
पतिस्वरूप मैं निज शिर धारा ।
होहु विरत रण लै पाञ्चालन ,
लखहु स्वधर्म करत मैं पालन ।”
अस कहि द्रुपदहिं पाछे डारी ,
भाषेउ कर्णहि पार्थ प्रचारी—
“अवसर तुम न रँग-महि पावा ,
औरहु अधिक गर्व उर छावा ।

दोहा :— चाहत करन तुम्हार मैं, दर्प आजु सब चूर्ण ,
शौर्य-निकष मोहिं मानि निज, प्रकटहु शर-बलपूर्ण ।” १२९
सुनतहि प्रेरेउ तीक्ष्ण शर, कर्ण शौर्य-सर्वस्व ,
प्रकटेउ बीचहि काटि तेहि, पार्थहु निज वर्चस्व । १३०

सोरठाः—लखेउ ताहि क्षण भीम, अनुजहिं एकाकी निरखि,
मरडली असीम, आवति घेरति चतुर्दिंक ।

भूपटि भीम इक विटप उपारा,
रण-महि प्रविशि नृपन ललकारा ।
धाये लखि क्रोधित बहु योद्धा,
लागेउ होन रोध-प्रतिरोधा ।
जहाँ पूर्व श्रुति-मंत्रोच्चारण,
गावत जहाँ बंदिजन, चारण,
परिणय-साज विप्र जहँ साजत,
मंगल वाद्य रहे जहँ बाजत,
युद्ध-वाद्य-स्वर तहँ, महि काँपी,
'मारु काटु' ध्वनि दिशि दिशि व्यापी ।
पाय सुयोग भीम रण रोपा,
कीन्ह आपु अन्तक जनु कोपा ।
रोष वृकोदर भीषण ज्वाला,
भुलसे समर-मही महिपाला ।
एक शल्य मद्रेश विहायी,
चले विकल नरराज परायी ।

दोहा :—अविदित मातुल नात निज, लरे मद्रपति वीर,
आहत भीमाघात ते, भागे अन्त अधीर । १३१

सोरठाः—उत उद्धत राधेय, दीर्ण-देह अर्जुन-शरन,
गुनि मन द्विजहिं अजेय, पूछेउ विस्मय-युक्त स्वर—

‘को तुम सर्व पराक्रम-समुदय ?
दिव्य हस्तलाघव, बल अक्षय ।
की तुम विष्णुहि कायावाना,
जन्मे विप्र-रूप भगवाना ?
शकहि तौ नहिं महि तनु-धारी ?
अथवा प्रकट आपु त्रिपुरारी ?

की तुम अस्त्रवेद साकारा ?
 फिरत सिखावत रण-व्यापारा ।
 सकत मनुज नहीं करि रण मम सँग ,
 क्षत-विक्षत मम लखहु अंग अंग ।”
 विहँसि धनंजय वचन उचारे ,
 “गयेउ न गर्व जदपि तुम हारे ।
 मैं द्विज भिक्षुक, सुर कोउ नाहीं ,
 युद्धहु जब लागि बल तनु माहीं ।
 रण-महि नहीं प्रलाप कर कामा ,
 जो अति विकल जाहु निज धामा ।”

बोद्धा :— सुनि लज्जित प्रतिपक्षि-पद, कीन्हेउ कर्ण प्रणाम ,
 “ब्रह्मतेज उत्कृष्ट जग,”—कहि त्यागेउ संग्राम । १३२

रिपु निज रण भीमार्जुन जीते ,
 भये प्रजा-पाञ्चाल-पिरीते ।
 द्विज-वृन्दहु मानोन्नत शीशा ,
 पूछत वंश, देत आसीसा ।
 भीत पाण्डु-सुत भेद न प्रकटहि ,
 तजी कुँवरि-सँग सत्वर रँग-महि ।
 दुहिता-वत्सल द्रुपद सुजाना ,
 अवलोके द्विज करत प्रयाणा ।
 व्याकुल लखि अभद्र व्यवहारा ,
 धृष्टद्युम्न सन वचन उचारा—
 “नाम-निवासहु बिना बताये ,
 लखहु जात द्विज सुता लेवाये ।
 यथा अलौकिक इन कर विक्रम ,
 तैसेहि असामान्य यह गति-क्रम ।
 हम प्रण-बद्ध उचित नहीं रोधा ,
 पै रहि गुप्त लगावहु शोधा ।”

बोद्धा :— पितु-निदेश ते इत चलेउ, धृष्टद्युम्न जेहि काल ,
 अग्रज-सँग गवने हरिहु, पाण्डव-प्रेम-विहाल । १३३

सरि-तट इक घटकार निकेतू,
निवसति कुन्ती सुतन समेतू।
जात प्रात सुत भिक्षा लागी,
लौटत मध्य दिवस नित माँगी।
होत दिनान्त आजु नहिँ आये,
व्यथित पृथा, केहि कहँ बिलमाये ?
नगर स्वयंवर-साज-समाजा,
जुरिहँ रंग-अवनि नर राजा।
लेहि न कहूँ सुत चीन्हि सुयोधन,
रचै न पुनि कछु चक्र पाप-मन।
तर्क-वितर्क मग्न जब माता,
सुनेउ भीम-स्वर श्रुति-सुख-दाता।
“भिक्षा श्रेष्ठ मातु ! हम पायी,
आशिष देहु, विलोकहु आयी।
अविदित रँग-वृत्तान्त, समर-जय,
समुक्ति न सकी मातु सुत-आशय।

बोद्धा :— भवनहि ते दीन्हेउ पृथा, प्रमुदित मन आदेश—

“लेहु बाँटि तुम मिलि सकल, लही जो वस्तु विशेष !” १३४

त्यागि कुटी जस बाहर आयी,
परसे द्रुपद-मुता पग धायी।
हुलसी विदित-वृत्त सब माता,
बधुहिँ असीसति पुलकित गाता।
अपलक दृग लावण्य विलोकति,
हर्ष-अश्रु हिय लाय विमोचति।
कहत नकुल जस जस रण-नाथा,
फैरति पार्थ-भीम-शिर हाथा।
सहसा निज निदेश मन आनी,
लज्जित जननि, विषम उर ग्लानी—
रवि ! शशि ! शंभु ! शिवा ! तुम साखी,
कबहुँ न अनृत गिरा मै भाखी।

कहे आजु अनदेखे वचना ,
राखी विरचि काह विधि रचना ?
सकत निदेश सुवन नहिं टारी ,
बाँटि जाय नहिं राजकुमारी ।

दोहा :— समुक्ति अंब अन्तर्व्यथा, पुत्रहु सकल अधीर ,
प्रविशे ताही क्षण भवन, संकर्षण, यदुवीर । १३५

कहि वसुदेव-सुवन निज नामा ,
कीन्ह पृथा पदपद्म प्रणामा ।
बंदे बहुरि युधिष्ठिर, भीमा ,
भेंटे पार्थ सनेह असीमा ।
परिचय पाय माद्रि-सुत हर्षे ,
ललकि राम-माधव-पद परसे ।
अवलोकत हरि-रूप सभागे ,
भाव विभिन्न हृदय प्रति जागे ।
लखे पृथा प्रभु त्रिभुवन-त्राणा ,
धर्महि मूर्त धर्म-सुत जाना ।
भीम विलोके हरि अनुकूला ,
जनु संकल्प मूर्त भव-मूला ।
पार्थहिं शौर्य-स्रोत प्रभु लागे ,
छवि-निधि निरखि नकुल अनुरागे ।
लखेउ हरिहिं सहदेव सुजाना ,
जनु साकार ज्ञान विज्ञाना ।

दोहा :— ध्यावत निशि दिन जाहि सब, लहि तेहि सहसा गेह ,
मुद-बाहुल्य-प्रफुल्ल दग, पुलक-अलंकृत देह । १३६

करत दरस उपजेउ अनुरागा ,
सेवा-रस पाण्डव-उर जागा ।
लखे हरिहु सब बन्धु गुणागर ,
शौर्य, सुबुद्धि, धैर्य, धृति-सागर ।

चीन्हे प्रीति-पात्र, उर लाये,
 दै सर्वस्व मिलत अपनाये ।
 पल्लव-आसन नकुल बिछावा,
 लखतहि पृथा-हृदय भरि आवा ।
 सुमिरि दशा उद्वेग अथाहा,
 बहेउ अंब-दग अंबु-प्रवाहा ।
 परितोषेउ हरि कहि मृदु वाली—
 “धैर्य-खानि तुम मातु ! सयानी ।
 सुत-हित करत जो मिलि पितु अंबा,
 कीन्ह सकल तुम बिनु अवलंबा ।
 आजु तुम्हारेहि पुण्य सहारे,
 भये सुवन त्रिभुवन उजियारे ।

दोहा :— त्यागहु सब उर शोक भय, वीत - विघ्न - अपकर्ष ,
 यश-शशि जीवन-नभ उदित, अनुदिन नव उत्कर्ष ।” १३७

अस कहि वसन विभूषण नाना,
 दीन्हे प्रकटि प्रीति भगवाना ।
 जैसेहि लै पाञ्चाल-कुमारी,
 कुन्ती मातु कुटीर सिधारी,
 धर्म-सुवन यदुपतिहिं सुनावा,
 जेहि विधि कुरुजन-कृत दुख पावा,
 पुरी एकचक्रा जस त्यागी,
 आये यहाँ स्वयंवर लागी ।
 “दरस तुम्हार आजु प्रभु ! पाये,
 बीते कुदिन, सुदिन फिरि आये ।
 व्यास-कृपा हरि-महिमा थोरी,
 जानहुँ, जदपि बुद्धि भव-भोरी ।
 सुमिरि नाथ-यश, जपि नित नामा,
 यापी हम दुर्दैव-त्रियामा ।
 लहि सानिध्य-मात्र यदुराजू !
 गनत सफल हम जीवन आजू ।

दोहा :— अब ते अनुचर दास हम, स्वामी तुम भगवान !
रुचै करहु निर्माण प्रभु ! रुचै करहु अवसान ।” १३८

बल विक्रम सँग विनय विलोकी,
कही विहँसि हरि गिरा विशोकी—
“मत्स्य-भेद सब मंगल-भूला,
सुखद भविष्य, नष्ट पथ-शूला ।
जानहु यह विधि-निर्मित काजू,
लहिहौ वेगिहि पैतृक राजू ।
अमित पराक्रम द्रुपद-नरेशा,
वसुधा, वाहिनि, विभव अशेषा ।
धृष्टद्युम्न योद्धा बलखानी,
अनुज शिखण्डी पटु सेनानी ।
कुँवरि तिहुन-प्रिय प्राण समाना,
करिहैं शीघ्रहि अनुसंधाना ।
पावत शोध न जब लागि राजा,
पूर्ण न जब लागि परिणय-काजा,
जब लागि लहत राज्य तुम नाही,
बसिहौ तब लागि यहि पुर माहीं ।”

दोहा :— तोषि पाण्डु-सुत भाँति बहु, कुन्ती-पद शिर नाय,
लौटे सायज निज शिविर, प्रमुदित मन यदुराय । १३९

सोरठा :— निरखे आवत जात, धृष्टद्युम्न हरि राम दोउ,
मोद न हृदय समात, लब्ध-सूत्र लौटेउ भवन ।

प्रात पितुहि संवाद सुनावा,
मृत जनु द्रुपद प्राण पुनि पावा ।
आये हरि समीप तत्काला,
भाषे सविनय वचन भुआला—
“तुम सर्वज्ञ कहत मुनि सारे,
भव-प्रपंच सब जानन हारे ।

को यह नाथ ! महा धनुधारी,
गथेउ सुता लै प्राण-पियारी ?
साँचहु जो कोउ द्विज-कुल-भूषण,
तौ शास्त्रोक्त-विवाह अदूषण ।
जो कोउ क्षत्रिय नृपति-कुमारा,
विप्र-वेष केहि कारण धारा ?
तुम जन-वत्सल, मृदुल स्वभाऊ,
त्यागहु मोहिं जन जानि दुराऊ ।
नाथ ! सुमन-सम सुता सोहायी,
अनजानत मैं कहाँ चढ़ायी ?”

दोहा :— कह हरि—“भेदेउ लक्ष्य जेहि, जीतेउ नृप-सन्दोह,
जानहु निश्चय ताहि तुम, कोउ नृप-वंश-प्ररोह । १४०
अनलहु कुसमय लखि बसत, करि आवृत तनु छार,
पाय अनिल-बल पुनि सुदिन, प्रकटत बनि अंगार ।” १४१

विगत-विषाद सुनत नरनाहू,
पूछेउ हृदय नवीन उछाहू—
“नाम-वंश प्रभु ! कहहु बुझायी,
कवनि विपति, कस बसत दुरायी ?
जासु नाथ ! तुम सखा, सनेही,
सकत कि त्रासि विश्व कोउ तेही ?
तुम्हरी कृपा महाँ यदुनाथा !
सकत समर करि कालहु साथ ।”
पूर्णकाम सुनतहि यदुरायी,
नृपहिं प्रशंसि कहेउ मुसकायी—
“सत्यसंध तुम अति बलधारी,
सहज न पै कुरुजन-सँग रारी ।
ये पाण्डव जतु-भवन विहायी,
दुर्योधन-भय बसत दुरायी ।
अब लगि फिरे समातु अनाथा,
आजु तुमहिं लहि भये सनाथा ।

दोहा :— निमिषहि महुँ संधानि शर, कीन्ह मत्स्य जेहि भेद ,
द्रोण-शिष्य प्रिय पार्थ सोइ, जनु सदेह धनुवेद ।” १४२

सुनि श्रुति-अमृत गिरा नरेशा ,
दीन्हेउ तत्क्षण सुतहिं निदेशा—
लै रथ श्रेष्ठ तात ! तुम धावहु ,
सत्वर भवन पाण्डु-सुत लावहु ।
करि सादर सप्रीति अभिनन्दन ,
बहुरि सुनायउ मोर निवेदन—
‘यह पाञ्चाल देश मम सारा ,
सुता सहित अब भयेउ तुम्हारा ।
महुँ दास सुत-पौत्र-समेतू ,
बसहु ससुख अब राज-निकेतू ।
तुम नरपति-सुत, मैं नरनाहा ,
उचित वंश-विधि पालि विवाहा ।
अब नहिं गुप्त वास कर काजू ,
होहु प्रकट, माँगहु निज राजू ।
गहहिं नीति-पथ जो नहिं कुरुजन ,
लेहु स्वत्व निज चढ़ि समराङ्गण ।’

दोहा :— यहहु कहेउ, बसि गेह मम, निरखत पथ यदुराय ,
मातु सहित धारहु चरण, शोच-सँकोच विहाय ।” १४३

गवनेउ धृष्टद्युम्न तत्काला ,
लायउ निज गृह हरिहिं भुआला ।
करि बहु विधि केशव-सेवकाई ,
पूर्व कथा अबनीश सुनायी ।
अर्जुन जस गुरु द्रोण पठाये ,
पुर पाञ्चाल समर हित आये—
“युद्ध कठोर जदपि मैं कीन्हा ,
रण-महि मोहिं पार्थ गहि लीन्हा ।
मुग्ध निरखि मैं शौर्य अपारा ,
कीन्हेउ सुता-विवाह-विचारा ।

सुनेउँ वृत्त पुनि लाह-निकेतू,
 जरे पाण्डु-सुत मातु समेतू।
 उपजेउ उर जो विषम विषादू,
 नासेउ आजुहि सुनि संवादू।
 जियत पार्थ ! पुनि मम जामाता !
 दव-विदग्ध वन वृष्टि-निपाता ।”

दोहा :— प्रकटत परमानन्द इत, जब हरि प्रति नरनाथ,
 घृष्टधुम्न प्रविशे पृथा, पाण्डव, भगिनी-साथ । १४४

सोरठा :— लखि सन्मुख पाञ्चाल, मूर्तिमंत संकल्प निज,
 प्रीति-प्रफुल्ल, विहाल, मिलेउ हर्ष-निर्भर हृदय ।

भैंटीं दोउ भरत-कुल-शाखा,
 भयीं अभिन्न, निजत्व न राखा।
 हर्ष-प्रवाह, उमंग-तरंगा,
 मनहुँ रहीं मिलि यमुना-गङ्गा।
 मिले सरस्वति-सम यदुराजू,
 भयेउ द्रुपद-गृह तीरथराजू।
 जनु पावित्र्य-प्रकर्ष बोलाये,
 व्यास मुनीश ताहि क्षण आये।
 भानु-प्रभा मुख विधु-मधुराई,
 नयनन विश्व-शान्ति जनु छाये।
 गहे धाय पद पाण्डव, राजा,
 परसे चरण मुदित यदुराजा।
 मुनिहु मिले भरि उर भगवाना,
 रहेउ न निमिष भुवन, निज भाना।
 भैंटत पुनि पुनि प्रीति अथोरी,
 चिर-परिचित जनु मिले बहोरी।

दोहा :— दिये सुखासन नृप मुदित, निवसे सब सानन्द,
 भये उदित जनु एक सँग, हस्त नखत, रवि, चन्द । १४५

लै सहर्ष जब कुन्ती सासू,
 गवनी हुपद-सुता रनिवासू।
 करत ऋषीश्वर व्यास-प्रशंसा,
 कहे वचन यदुकुल-अवतंसा—
 “उदित विशेष भाग्य मम आजू,
 लहेउँ तुम्हार दरस मुनिराजू!
 केवल तुम्हरेहि नाथ ! तपोबल,
 रक्षित आर्यन-संस्कृति महि-तल।
 सरित सनातन मलिन निहारी,
 बुधि-बल कीन्ह विमल तुम वारी।
 पूर्व ज्ञान तुम करि सब संचय,
 रोपेउ आर्यधर्म-तरु अक्षय।
 मूढ़न ज्ञान-नयन तुम दीन्हे,
 ज्ञानी जन अति-ज्ञानी कीन्हे।
 भारत महि नव युग-निर्माता,
 विश्व-भूति तुम प्राण-प्रदाता।

दोहा :— तुम्हरेहि तप-बल, ज्ञान-बल, नसिहैं असुर समूल,
 रहिहैं चिर सुरभित, नवल, विमल नाथ-यश फूल। १४६
 सस्मित वेदव्यास सुनि, भाषेउ हरिहि निहारि—
 “कवनि चूक मम जो रहे, प्रभु ! माया विस्तारि। १४७

लेत रहत तुम महि अवतारा,
 मैं यश-गायक नाथ ! तुम्हारा।
 पूर्व चरित मैं अब लागि गाये,
 गइहौ अब नव चरित सोहाये।
 कार्य तुम्हार कठिन यहि वारा,
 भयेउ जटिल जीवन-व्यापारा।
 बधे पूर्व जे जन-रिपु नाथा !
 शैल-विशाल देह, दश माथा।
 अब तनु जुद्र, प्रपंच पसारा,
 एकहि शीश कुबुद्धि-पहारा।

बढ़ेउ बहुरि सोइ असुर-समाजू,
चीन्हव तिनहिं कठिन पै आजू।
जीती बहुरि मही तिन सारी,
राज्य-संग दुर्नीति प्रसारी।
कुसमय भयेउ नाथ ! संघर्षा,
नष्ट आर्य-जीवन-आदर्शा।

दोहा :— आर्यहु वर्तत जिमि असुर, आयेउ दारुण काल,
भव-वादी चार्वाक द्विज, असुर-वृत्ति शिशुपाल ! १४८

जीवन अब प्रभु ! बुद्धि-अधीना,
विकृत बुद्धि भावना-हीना।
तर्क-वितर्क-प्रवाह अनल्पा,
शब्द-विलास विपुल, कृति स्वल्पा।
होत कर्म-पथ क्लेश अशेषा,
सहत को त्याग-भाव बिनु क्लेशा ?
करत त्याग नहिं श्रद्धा-हीना,
श्रद्धा-भाव न बुद्धि-अधीना।
हृदय-हीन नर श्रद्धा नासी,
जियन चहत मति-मात्र उपासी।
रहित श्रृंखला सकल समाजू,
जीवन बिना व्यवस्था आजू।
निष्ठा नष्ट, विलीन नियंत्रण,
वाद-विवाद-श्रान्त अति जन-मन।
विरहित त्याग-भाव, बलिदाना,
क्रम क्रम जीवन-स्रोत सुखाना।

दोहा :— बुद्धि - भावना - संतुलन, आर्यधर्म - आधार,
नष्ट भावना आजु प्रभु ! शेष बुद्धि-व्यभिचार ! १४९

चंचल मानस, थिर न विचारा,
मन क्षण कछु, क्षण अन्य प्रकारा।

आत्मघात-पथ जनु बौरायी ,
 ध्येय-विहीन रहे नर धायी ।
 अनुचित ज्ञानोपासन नाही ,
 श्रद्धा-बिनु न सार तेहि माहीं ।
 श्रद्धा-योग लहत जब ज्ञाना ,
 सकत तबहिं करि नर-कल्याणा ।
 सृजन-शक्ति ताही महँ होई ,
 प्रकटत प्रति पल जीवन सोई ।
 बुद्धि-जीवि हम मुनि जग माहीं ,
 सकत ज्ञान दै, श्रद्धा नाही ।
 तेहि हित प्रभु ! अवतार तुम्हारा ,
 तुम कृति, भक्ति, ज्ञान साकारा ।
 जेहि तुम मिलत, करत जहँ वासा ,
 भरत उछाह, आस, विश्वासा ।

दोहा :— लखि-सुनि प्रभु ! तुम्हरेहि चरित, उठे सुप्त उर जागि ,
 लोभ, मोह, भय, दीनता, रहे महीतल त्यागि । १५०
 निरखि सच्चिदानंद छवि, होत द्रवित उर आप ,
 महँ आजु कृतकृत्य प्रभु ! विरहित अध, भव-ताप ।” १५१

यहि विधि द्रुपद-गेह करि वासू ,
 सुखी श्याम लहि मुनि-सहवासू ।
 कृष्णद्वय सँग सँग गृह पायी ,
 हर्ष न भूपहु-हृदय समायी ।
 नित नूतन संवाद प्रसंगा ,
 सुनत पाण्डु-सुत सहित उमंगा ।
 परिणय-दिन समीप जब आवा ,
 भूपहिं व्यास मुनीश बोलावा ।
 कृष्णा-पाण्डव-कथा पुरानी ,
 जन्म-जन्म पर्यन्त बखानी ।
 सुनि नृप कीन्हेउ सहित उछाह ,
 पाँचहु सँग निज सुता विवाह ।

हेम, रत्न, रथ, वाजि अशेषा,
दीन्हे यौतुक-रूप नरेशा ।
हर्षित कुन्ती, पूजी वाणी,
वधू क्लेश-हारिणि सन्मानी ।

दोहा :— सौपि हरिहि पाण्डव सकल, गवने इत मुनिराज,
लहि गजपुर उत वृत्त जनु, वज्राहत कुरुराज । १५२

शकुनो दुश्शासन लै संगी,
गवनेउ पितु समीप मन भंगा ।
सुनि अवसन्न अंध, अंग कम्पित,
कहत, “महाभय भयेउ उपस्थित !
पाण्डु-सुतन सह दुरितहु मोरा,
प्रकटित भुवन अयश भरि घोरा ।
आहत आशीविष सम पाण्डव,
डसिहैं सुत करि समर पराभव ।”
विकल पितुहिं लखि मूढ़ सुयोधन,
कीन्ही राजनीति बहु वर्णन ।
छल प्रपंच पुनि विपुल बखाना,
एकहु यत्न न नृप-मन माना ।
निज मत, सुत-मत नष्ट प्रतीती,
सुमिरे विदुर, भीष्म, वश भीती ।
द्रोणहु, कर्णहु भवन बोलायी,
पूछी सम्मति वृत्त सुनायी ।

दोहा :— जीवित पाण्डव मातु-सह, सुनतहि नेह-अधीर,
पुलकित तनु शान्तनु-सुवन, नयनन आनंद-नीर । १५३

भाषे वचन वंश-अनुरागी—
“सम पाण्डव कौरव मम लागी ।
पालन चहहु धर्म जो आजू,
सौपहु पाण्डु-सुतन सब राजू ।

पै दुर्योधन आजु नरेशा,
 अर्थ-वासना हृदय अशेषा ।
 विषयासक्त, विभव मति पागी,
 जियन न चहत राज पद त्यागी ।
 राखहु राज्य तासु हित आधा,
 लहहि पाण्डु-सुत अर्ध अबाधा ।
 चहत तात ! जो कुल-कल्याणा,
 तजि यह आजु उपाय न आना ।
 चिर कुरुकुल-रिपु ये पाञ्चाला,
 कबहुँ न बंधु-भाव इन पाला ।
 लहि संबंधी पाण्डव योद्धा,
 चाहत करन वैर-प्रतिशोधा ।

दोहा :— अवसर-दर्शी, भेद-पटु, मानी ये पाञ्चाल,
 कण्टक ते कण्टक चहत, काढ़न द्रुपद भुआल । १५४
 तदपि हृदय मम तोष सुनि, पाण्डव कुन्ती साथ,
 विद्यमान पाञ्चाल-पुर, शान्ति-मूर्ति यदुनाथ । १५५

सुनत विदुर गुरु द्रोण मुदित मन,
 कीन्हेउ भीष्म-कथन अनुमोदन ।
 कर्णहि लागि गिरा जनु शूला,
 भाषे वचन तीक्ष्ण प्रतिकूला—
 “भये वृद्ध अति शान्तनु-नंदन,
 का अचरज अप्रिय रण-प्राङ्गण ।
 प्रवचन-वीर विदुर विख्याता,
 रहेउ न कबहुँ समर ते नाता !
 जदपि नाथ-धन धारत प्राणा,
 कुरु पाण्डव दोउ गनत समाना ।
 दोषी इनहि कहहुँ कस ताता !
 ये दोउ राजवंश-संजाता ।
 पै लखि द्रोण कहत सोइ वाणी,
 उपजति उर रिस, संशय, ग्लानी ।

जासु आश्रितहु अरि-अनुरागी,
बिनसत हत-श्री स्वामि अभागी।

दोहा :— गहेउ शस्त्र कर द्रोण पै, गयेउ न वंश-प्रभाव,
नमत उदित आदित्य नित, यह द्विज जाति स्वभाव । १५६

मम मत कातर सम्मति त्यागी,
होहु पराक्रम-पथ अनुरागी।
करत जो विक्रम-समय विषादा,
होत अवश्य तासु अवसादा।
भोगत संतत मही सो ताता!
करत जो चढ़ि रण शत्रु-निपाता।
द्वारावति यदु-बाहिनि आजू,
दै न सहाय सकत यदुराजू।
अबहिं दुपद-पुर पै चढ़ि धायी,
सहजहि हम रिपु सकत नसायी।
रिपु उपेक्ष्य ये पाण्डव नाहीं,
होइहैं बद्धमूल क्षण माहीं।
करत अरिहिं जो अवसर-दाना,
निश्चय अंत तासु अवसाना।
स्वल्पहु अनल वायु-बल पायी,
देत सकल कान्तार जरायी।

दोहा :— मानहु सम्मति तात ! मम, राखहु मम शिर भार,
एकाकी मैं सैन्य लै, करिहौ अरि-संहार ।” १५७

कुपित द्रोण सुनि, वचन उचारा—
“कथन तुम्हार कुलहि अनुसार।
दाख कि कबहुँ नीम तरु लाग़ा ?
कबहुँ कि गरल-वमन अहि त्यागा ?
विश्व-विदित यह विप्र-स्वभावा,
राखत सर्व काल सम भावा।

उदितहि रवि नहिं हम अभिनन्दत ,
 हम आदित्य काल तिहुँ वंदत ।
 सत्यव्रती हम सत्य सुनावत ,
 सूत-सुतहिं मुँह-देखी गावत ।
 होइहै जब रण-काल उपस्थित ,
 तुम ते पूर्व निधन मम निश्चित ।
 जियत द्रोण जब लागि संसारा ,
 रखिहै को तुव शिर रण-भारा ।
 पाण्डु-सुवन दुर्योधन माहीं ,
 चाहत बंधु-भाव तुम नाही ।

दोहा :— कुरुजन-द्वेषी नृप द्रुपद, तुमहिं पाण्डु सुत-डाह ,
 तुम दोउ निज निज द्वेष वश, चाहत पर-गृह-दाह । १५८

जब लागि मिलत न पाण्डव कुरुजन ,
 यहि कुल तबहीं लागि तुव पूजन ।
 तुम दूषित-मति, कलुष-निकेतू ,
 नासत सुरतरु इन्धन हेतू ।
 चहत द्रुपद-पुर पै तुम धावा ,
 पै कस वृत्त एक बिसरावा ?
 निवसत आजु द्रुपद-रजधानी ,
 वीरोत्तम अर्जुन धनु-पाणी ।
 बीते नहिं बहु दिन तुम हारे ,
 भागे रण तजि गर्व बिसारे !”
 कुपित कर्ण प्रतिभाषी वाणी—
 “तजेउ अर्जुनहिं मैं द्विज जानी ।
 जो समुहात मोहिं निज वेष ,
 नामहि-मात्र रहत महि शेषा ।”
 निरखि करत पुनि कर्ण प्रलापा ,
 रोष अपार भीष्म उर व्यापा ।

दोहा :— पिशुन, कलहजीवी जबहिं, कहेउ ताहि गाङ्गेय ,
 क्रोप-प्रकम्पित तजि समिति, गवनेउ गृह राधेय । १५९

दोहा :— विदुर, द्रोण, शान्तनु-तनय, लखि पाण्डव-अनुकूल ,
काल समुक्ति प्रतिकूल निज, करे अंध मुख फूल— १६०

“विदुर ! द्रुपदपुर यहि क्षण धावहु ,
सादर पाण्डु-सुतन लै आवहु ।
लावहु कुन्ती द्रुपद-कुमारी ,
सुनहु सुधा-स्वर, होहु सुखारी ।
सविनय कहेउ द्रुपद सन जायी ,
‘भयेउँ धन्य सम्बन्धी पायी ।’
कृष्णहिं विनय सुनाय बहोरी ,
लावहु सँग हरि हलधर जोरी ।”
धाये विदुर सुनत तत्काला ,
पहुँचे प्रमुदित पुर पाञ्चाला ।
सुनत सँदेश सबन सुख पावा ,
विदा साज सब द्रुपद सजावा ।
दीन्ह विपुल नृप धन-भण्डारा ,
भेंटत मिलत सनेह अपारा ।
यदुजन हू हलधर सँग सारे ,
तीर्थन भ्रमत स्वदेश सिधारे ।

दोहा :— इत हरि लै सँग द्रौपदी, कुन्ती, पाण्डु-कुमार ,
कीन्ह हस्तिनापुर पहुँचि, अर्ध राज्य स्वीकार । १६१

भयेउ अंत जब राज्य-विभाजन ,
तबहुँ न तजी कुटिलता कुरुजन ।
सुरसरि-सिञ्चित श्रेष्ठ प्रदेशा ,
राखि सुतन हित अंध नरेशा ,
दीन्ह पाण्डवन यमुना-अंचल ,
यज्ञानल-अपूत वन्यस्थल ।
कुपित भीमसेनहिं समुभायी ,
खाण्डवप्रस्थ गये यदुरायी ।
यमुना-तट लहि थल मनभावा ,
इन्द्रप्रस्थ नव पुर निर्मावा ।

करि वेदोक्त कृत्य पुनि सारा ,
मुनिन युधिष्ठिर तिलक सँवारा ।
कुन्ती आग्रह लखि यदुनाथा ,
निवसे नव पुर पाण्डव साथा ।
जदपि प्रकट निरपेक्ष जनार्दन ,
निरखत सजग धर्म-सुत-शासन ।

दोहा :— भृत्य-विनेता, धर्म-मति, प्रत्युपकर्ता, धीर ,
उत्साही, जन-भक्त नृप, लखि पुलकित यदुवीर । १६२

हरि पाण्डव सनेह नित बाढ़ा ,
अर्जुन सँग सौहार्द प्रगाढ़ा ।
सम-वय सम-द्युति पार्थ जनार्दन ,
दिव्य शरीर नयन-मन-नंदन ।
नर नारायण चिर अनुरागा ,
प्रबल दुहुन उर दिन प्रति जागा ।
शयन, पान, भोजन नित साथा ,
पलहु न पृथक पार्थ यदुनाथा ।
विचरत एक दिवस दोउ वीरा ,
प्रविशे यमुना-गहन गँभीरा ।
घन तरु कुंज लता संताना ,
सहसा लखेउ प्रकाश महाना ।
निरखी तेजपुंज अति नारी ,
तप-निमग्न तरुणी सुकुमारी ।
मस्तक जटा कलाप ललामा ,
रक्तोत्पल जनु अलि अभिरामा ।

दोहा :— मुञ्ज मेखला सूक्ष्म कटि, कृश शरीर तप-भार ,
भानु प्रभा आपुहि मनहुँ, तपति विपिन साकार । १६३

जनु शशि-कला आपु तल्लीना ,
अग्नि-शिखा जनु धूम-विहीना ।

अथवा लहि विविक्त थल शोभित ,
 वनदेवी आपुहि ध्यानस्थित ।
 विपिन निकुञ्ज व्रतति तरु सारे ,
 तापसि तेज पुञ्ज उज्जियारे ।
 लखि इक गुल्म तमाल समीपा ,
 भये ओट विहँसत यदु-दीपा ।
 कर्षित मनहुँ योषिता-छवि-गुण ,
 पहुँचे निमिष माहिं ढिग अर्जुन ।
 लखि आश्रम आयेउ अभ्यागत ,
 कीन्हेउ तापसि अर्जुन स्वागत ।
 लहि फल-मूल विपुल सत्कारा ,
 अर्जुन सविनय वचन उचारा—
 “वन निर्जन, श्वापद चहुँ ओरा ,
 को तुम शुभे ! करत तप घोरा ।

दोहा :—सिद्धि-सुता गंधर्वजा, विद्याधर कुल नारि ,
 यक्ष, नाग, मुनि-अंगना, अथवा अमर-कुमारि ?” १६४

सुनत विकम्पित अधर प्रवाला ,
 कीर्ण वदन रद किरणन-जाला ।
 महि संलग्न नयन, नत माथा ,
 वरनी दिव्य वाम निज गाथा—
 “त्रिभुवन जीवन-ज्योति-प्रदाता ,
 भानु सहस्र-रश्मि मम ताता ।
 राखेउ पितु कालिन्दी नामा ,
 बीतेउ शैशव मम सुरधामा ।
 असुर अजेय भौम तेहि काला ,
 चढ़ेउ अमरपुर पै विकराला ।
 शक्रहु सके न खलहिं हरायी ,
 हरी जो श्रेष्ठ वस्तु जहँ पायी ।
 कुण्डल-हीन अदिति कहँ कीन्हा ,
 वरुण-छत्र, मणि मंदर लीन्हा ।

अविवाहित बहु देव कुमारी,
बरबस हरीं भौम अविचारी ।

दोहा :— देव, नाग, गंधर्व, नर, जाति न महितल माहि ,
कन्या जासु कुमारि लखि, हरी भौम खल नाहि । १६५

प्रागज्योतिषपुर शठ रजधानी,
कन्यापुरी बसी अध-खानी ।
सुमन-मृदुल, मंजुल, सुकुमारी,
बंदिनि तहाँ असंख्य कुमारी ।
असुर-बासना-विष-तनु कलुषित,
पै मन अविजित अजहुँ अदूषित ।
सकत न सुर कोउ करि उद्गारा,
बढ़त जात नित अत्याचारा ।
खल-भय निखिल देव-समुदायी,
राखत इत उत सुता दुरायी ।
पितु-मुख सुनी बहुरि मैं गाथा,
धरेउ कृष्ण-वपु हरि भवनाथा ।
लोक-शरण्य, सदय, शूरोत्तम,
वे ही निखिल स्लेक्ष-कुल-क्षय-क्षम ।
सुनि प्रभु-पद करि आत्म-समर्पण,
कहेउँ पितहिं अभिवाञ्छित आपना

दोहा :— पितु आदेशहि ते यहाँ, निवसि धरहुँ हरि-ध्यान,
आजु पूर्ण संकल्प मम, मये प्रकट भगवान । १६६

चकित पार्थ सुनि भाषी वाणी—
“भयेउ तुमहिं कछु भ्रम कल्याणी ।
पाण्डु-सुवन मैं अर्जुन नामा,
मैं नहिं वासुदेव घनश्यामा ।”
सुनि आदित्य-सुता मुख भास्वर,
उदित हास्य-रेखा अरुणाधर ।

भ्रूलतिका सहसा लीलाञ्छित ,
भाषत वचन तरल दृग किञ्चित—
“श्यामल तुम श्यामल मधुसूदन ,
पै लखि तुमहिं न विभ्रम मम मन ।
कहेउ वेष पितु मोहिं बुझायी ,
पुण्डरीक लोचन यदुरायी ।
भृगु-पद-लाञ्छन विशद वत्त वर ,
गर कौस्तुभ मणि, कटि पीताम्बर ।
मैं नहिं वचन असत्य उचारा ,
हरि निश्चय आश्रम पगु धारा ।

दोहा :— चलत कहेउ पितु मोहिं दै, तुलसि-माल अभिराम ,
‘होइहै यह मणि माल जब, अइहैं आश्रम श्याम ।’ १६७
प्रविशे आश्रम तुम जबहिं, प्रविशे हरि तेहि काल ,
ताहि क्षणहि सहसा भयी, तुलसि-माल मणि-माल । १६८

गोपी-धृत दधि-चोर समाना ,
तजेउ तमाल-गुल्म भगवाना ।
निरखी मधुर मूर्ति रवि-नंदिनि ,
मन-निर्वाण , नयन आनंदिनि ।
आत्म-विस्मरण क्षण अनुरागी ,
पार्थ-विलोकि विकल जनु जागी ।
तिर्यक् कछुक परावृत आनन ,
सस्पृह नयन, लाज अवगुण्ठन ।
पुनि कर्तव्य भाव उर आनी ,
अञ्जलि भरे प्रसून सयानी ।
चही करन हरि-दिशि बढि पूजा ,
धरेउ एक पद बढेउ न दूजा ।
बिखरे सुमन प्रकम्पित वामा ,
गहेउ हस्त सस्मित घनश्यामा ।
विलसित श्याम-वत्त वर कामिनि ,
घन उत्संग मनहुँ सौदामिनि ।

दोहा :— सूर्य-सुता पायेउं पतिहि, सफल याग, तप, त्याग,
लाज विलोचन, स्वेद अँग, रोम-रोम अनुराग । १६६

सोरठा :— कालिन्दी - यदुराय, मिलन पुलकि अर्जुन लखेउ,
स्यंदन दोउ बैठाय, लौटे पुर प्रमुदित हृदय ।
इन्द्रप्रस्थ भगवान, पाण्डु-सुवन सुस्थित निरखि,
कीन्ह स्वपुर प्रस्थान, कालिन्दी सह लहि बिदा ।

मुखी पाण्डु आत्मज लहि राजू,
मिलि सब करत प्रजा-हित काजू ।
यश ऐश्वर्य दिवस-निशि बाढ़ा,
मुनि कुरुजन उर द्वेष प्रगाढ़ा ।
बोलि कर्ण, शकुनी, दुश्शासन,
करत कुमंत्र नित्य दुर्योधन ।
बान्धव पाँच बीच इक नारी,
सोचत तेहि लागि संभव रारी ।
इन्द्रप्रस्थ निज दूत पठायी,
लखत सतर्क योग कुरायी ।
भेद सकल नारद मुनि पावा,
धर्मराज द्विग जाय सुनावा ।
पाण्डव सुनत अवधि निर्धारी,
कृष्णा रहहि जासु जब नारी ।
नियम व्यतिक्रम जेहि ते होई,
द्वादश वर्ष बसहि वन सोई ।

दोहा :— उत द्वारावति ब्याहि हरि, कालिन्दी सविधान,
भौमासुर संहार हित, चाहेउ करन प्रयाण । १७७

गरुडाकृति निज दिव्य विमाना,
सुमिरेउ प्रिय-दर्शन भगवाना ।
प्रकटेउ तत्क्षण महा विशाला,
भूषित मौक्तिक, रत्न, प्रवाला ।

स्वर्ण, रौप्य, मणि-आसन नाना
 सुख शयनाशन-गृह, उद्याना ।
 रम्य यान षट ऋतु सुखकारी,
 नृप-प्रासाद मनहुँ नभचारी ।
 गरुड़स्थित गवन्त यदुराई,
 सुनत सत्यभामा उठि धाई ।
 मुग्ध विमान लखत मनहारी,
 'लेहु संग' हठि गिरा उचारी ।
 रण-प्रसंग रसिकेश सुनावा,
 विहँसत चहत तियहिँ डरपावा ।
 सुनत विलोचन अरुण विशाला,
 औरहु जुब्ध अभय यदुबाला ।

बोहा :— अटल वाम हठ जानि मन, लीन्हेउ सँग भगवान ,
 भौमासुर पुर दिशि चलेउ, हरि-मन-यंत्रित यान । १७१

उत्थित गरुड़ व्योम अस भासा,
 जनु द्वादश आदित्य प्रकाशा ।
 पद्मद्वय जनु घन लयकारी,
 जव-उद्वेलित वारिधि वारी ।
 विचलित दिग्द्विपेन्द्र भय माना,
 शंकित प्रलय काल नियराना ।
 लखेउ ससंभ्रम प्रिया श्याम-तन,
 मुकुलित विस्मय हर्ष विलोचन ।
 शीतल पवन पुलक उपजावा,
 रोष सत्यभामा विसरावा ।
 फुल्ल कमल-केसर द्युति वामा,
 हास विलास सुमन अभिरामा ।
 विकसित विशदस्मित मुख सरसिज,
 रही रिभाय मनहुँ रति मनसिज ।
 निवासि समीप हरिहु अनुरागे,
 दृश्य उदात्त दिखावन लागे—

बोद्धा :— “लखहु यान-जव वारिनिधि, शैल विपिन समुदाय ,
भूमण्डल मानहुँ सकल, रहेउ धाय अकुलाय । १७२

लखहु प्रिया ! पुनि पुरी-प्रसारा ,
दमकत जलधि हेम-प्राकारा ।
बाडव-अनल भेदि जनु वारी ,
उत्थित, दशहु दिशा उजियारी ।
पुरी दृश्य धूमल अब सारा ,
दिखत अबहुँ रैवतक पहारा ।
धृत वनराजि वसन अभिरामा ,
यदुजन प्रहरी आठहु यामा ।
जलधि-तरंग कन्दरा सस्वर ,
जनु जल-शैल ‘सजग’ प्रश्नोत्तर ।
रहेउ सोउ अब दृश्य न शेषा ,
लखहु रम्य आनर्त प्रदेशा ।
प्रिय मोहिं परम प्रान्त मनभावन ,
पायेउ जहँ आश्रय हम यदुजन ।
अकलोकहु वह विन्ध्य लखायी ,
गिरि-श्रेणी विस्तीर्ण सोहायी ।

बोद्धा :— भारत महि-कटि इन्द्रमणि, मनहुँ मेखला श्याम ,
लता कुञ्ज मय मञ्जु यह, शाश्वत वनश्री-धाम । १७३

भयेउ विष्णुपद परसि निरन्तर ,
विष्णु सहस्र-शीर्ष जनु गिरिवर ।
विविध धातु नीलाङ्ग अलंकृत ,
उर शत-शत निर्भर-रव भंकृत ।
लखहु बहुरि कछु दक्षिण ओरा ,
होत शैल-पदतल जल-रोरा ।
मुखरित मधु अगण्य जनु अलिगण ,
रही गाय रेवा शिव-गुण गण ।
तरल स्वभाव सरित जग सारी ,
प्रकृति-वक्र, बहु-पथ-संचारी ।

रेवहि इक सत्पथ निर्वाहा,
 सम, अकुटिल आद्यन्त प्रवाहा।
 बहि पितु-पद गहि, जित-पथ-बाधा,
 मिलति जाय पति जलधि अगाधा।
 विजयस्मारक प्रति पद छाये,
 तीर्थस्थल सोइ पुण्य सोहाये।

दोहा :— सुरसरि-जल मज्जन किये, बिनसत जीवन-पाप,
 रेवा समिरन मात्र ते, नष्ट कलुष, त्रय ताप । १७४

सन्मुख यह उज्जयिनी पावनि,
 निवसत जहँ मुनीश सान्दीपनि।
 अग्रज सँग जहँ करि मैं वासा,
 कीन्हेउँ शास्त्र शास्त्र अभ्यासा।
 विंद अनुविंद जहँ समर हरायी,
 हरी मित्रविन्दा पुनि जायी।
 महाकाल मन्दिर जहँ राजत,
 जहँ त्रिकाल त्रिपुरारि विराजत।
 मालव चर्मणवतिहु विहायी,
 गये दशार्ण देश हम आयी।
 विन्ध्य शैल-परिवृत शुचि धरणी,
 बहति दशार्ण सरित मन-हरनी।
 पावन, ताप-हरण अवगाहन,
 अर्जुन सुमन-सुगंधित तटवन।
 नर्तत जहँ समोद शिखि मदकल,
 मत्त स्वर्णमृग-युक्त वनस्थल।

दोहा :— सुषमा-निधि महि खण्ड यह, बली हिरण्य भुआल,
 लखहु बहुरि कारूष जहँ, दंतवक्र महिपाल । १७५

उत्तर बहुरि विहाय त्रिवेणी,
 पुनि काशी चारिउ फल देनी,

लखहु प्रिया ! वह पौण्ड्र प्रदेशा ,
 वासुदेव जहँ कोउ नरेशा ।
 सकल चिह्न मम धारनहारा ,
 आपुहिँ कहत विष्णु-अवतारा ।”
 हँसी सत्यभामा सुनि वाणी ,
 मगध-मही आगे नियरानी ।
 प्रियहिँ दिखाय कहेउ विश्वेशा—
 “असुर-त्रस्त यह प्राच्य प्रदेशा ।
 अवलोकहु ! वह जन-धन-खानी ,
 मनहर जरासंध रजधानी ।
 पञ्च शैल-परिवृत अभिरामा ,
 पुञ्जित सुषमा गिरिव्रज नामा ।
 प्राची नारिकेल वन-माला ।
 ब्रह्मपुत्र नद-वाह कराला ।”

दोहा :— प्रियहि दिखायेउ हरि बहुरि, भौमपुरी - प्राकार ,
 रच्छत जाहि सतर्क नित, पावक, पवन, पहार । १७६

यान प्रधान द्वार जब आवा ,
 पाञ्चजन्य हरि शंख बजावा ।
 करि कौमोदकि गदा-प्रहारा ,
 नासेउ सुदृढ़ पुरी प्राकारा ।
 सुमिरत चक्र सुदर्शन धावा ,
 पावक पवन प्रभाव मिटावा ।
 लखि उत्पात भौम अति मानी ,
 पठयेउ रण हित मुर सेनानी ।
 हरि तेहि सहसुत सप्त निपाता ,
 चढ़ेउ भौम तब रण-मद-माता ।
 शुण्ड-खड्ग-धृत सँग गज-यूथा ,
 अगणित अश्व, पदाति-वरूथा ।
 धूलि नभस्तल जनु लय काला ,
 बरसी तकि विमान शर-ज्वाला ।

प्रिया-धैर्य लखि हरि मुसकायी ,
प्रेरे दीप्तायुध समुदायी ।

दोहा :— निरखि दग्ध निज सैन्य दल, गज बढ़ाय हरि ओर ,
भौम समर-दुर्मद सरुष, तजेउ शूल अति घोर । १७७
अरि-आयुध करि छिन पथ, तजेउ चक्र जगदीश ,
कुण्डल मुकुट किरीट युत, गिरेउ मही कटि शीश । १७८

सुनि पति-निधन भौम-पटरानी ,
आयी श्याम-शरण बिलखानी ।
सहित अमात्य, पुरोहित, पुरजन ,
कीन्ह सविधि श्रीपति-अभिनंदन ।
दीन वचन कहि सुत पद डारा ,
अभय वचन भगवान उचारा ।
भौम-पुरी पुनि प्रिया समेतू ,
प्रविशे प्रमुदित कृपा-निकेतू ।
विजित असुर पद-रज शिर धारत ,
वरसि सुमन जन जयति उचारत ।
वरुण-छत्र, सुरपति मणि मंदर ,
अदिति मातु श्रुति-कुण्डल सुन्द
सौपे प्रभुहि रानि सब लायी ,
कन्यापुर पुनि गयी लिवायी ।
जहँ शत-सोरह-सहस कुमारी ,
हरि बंदिनि संत्रस्त निहारी ।

दोहा :— रूप-राशि पै द्युति-रहित, कलुषित पै निष्पाप ,
जातरूप रज-ध्वस्त जनु, जग-जीवन अभिशाप । १७९

सुनि श्रीपति-मुख मुक्ति-संदेशू ,
भयेउ प्रथम उर मोद अशेषू ।
लखि गोविन्द भौम-मद-मोचन ,
बदन-सरोज लोल अलि-लोचन ।

दुख सुख बहुरि साथ मन व्यापे,
संशय आस युक्त उर काँपे ।
बद्धाञ्जलि, नत लोचन छलके,
ढरकि कपोल सलिल-कण भलके ।
विकल सकल पूछहिं प्रभु पाहीं—
“कहहु नाथ ! अब हम कहैं जाहीं ?
नष्ट शील, दूषित पर पापू,
अपनिहि दृष्टि पतित हम आपू ।
पतित-पावनहु तुम भगवाना,
सकत न करि जो शरण प्रदाना,
तौ प्रभु ! भुवन चतुर्दश माहीं,
ठौर अभागिनि हित कहूँ नाहीं ।

दोहा :—पर-गृह-वासहि दोष ते, राखी सीय न राम,
बरबस दूषित नारि हित, नाथ ! कहाँ तब ठाम ? १८०

विश्रुत कुल हम सकल प्रजाता,
रखिहैं पै न गेह पितु-माता ।
अपयश-पङ्क-निमग्न अभागी,
गति न जगत कहूँ प्रभु-पद त्यागी ।
दुरित-संहरण सुयश तुम्हारा,
अब लघु, नाथ-प्रभाव अपारा ।
गुनि अनाथ अपनावहु नाथा !
दासी जानि लेहु निज साथा ।
गृह-चर्या, रानिन सेवकाई,
करिहैं वंश-गर्व बिसरायी ।”
अस भाषत विह्वल वर नारी,
सींचे चरण विलोचन-वारी ।
दशा बिलोकि द्रवित यदुरायी,
हेरे प्रियहि हृदय सकुचायी ।
विकल नारि-दुख नारि विशेषा,
बिनवति पतिहिं निवारहु क्लेशा !

दोहा :— लीलापति, कल्याण-मति, अपयश-सुयश-अतीत ,
कृपा-कटाक्षहि मात्र ते, कीन्हीं वाम पुनीत । १८१

गज रथ धन जो असुरन दीन्हा ,
प्रेषित उग्रसेन ढिग कीन्हा ।
कन्यहु सकल विप्रजन साथ ,
पठयीं द्वारावति यदुनाथा ।
करि निष्कण्टक पूर्व प्रदेश ,
भौम-सुतहिं पुनि दै पितु देश ,
तजी भौम-नगरी यदुनन्दन ,
चले यान चढ़ि अमर-निकेतन ।
निरखत ग्राम नगर पथ नाना ,
धायेउ उत्तर-पश्चिम याना ।
मगध, मध्यदेशहु करि पारा ,
हरिद्वार श्रीहरि पगु धारा ।
जहँ हिमगिरि ते गंगा आवति ,
दरस परस प्राणन पुलकावति ।
बिसरत भव मज्जन जहँ कीन्हे ,
आगे बढ़त स्वर्ग जन चीन्हे ।

दोहा :— जहँ ते गिरि, जल, वायु, नभ, होत और के और ,
पल-पल पथ नवता मिलति, पद-पद पावन ठौर । १८२

आयेउ हृषीकेश हरि-याना ,
प्रियहिं दिखाय कहेउ भगवाना—
“कुब्जाम्रक वह लखहु सोहावा ,
तपि मुनि रैभ्य मोक्ष जहँ पावा ।
पुनि ऋषि-शैल लखहु मन-भावन ,
तपे जहाँ रघुकुल-मणि लक्ष्मण ।
सन्मुख वह शुचि देवप्रयागा ,
कीन्हे मुनिजन जहँ तप यागा ।
पूर्व अलकनंदा वह आवति ,
भागीरथि उत्तर चहरावति ।

भेंटत दोउ पुनि भुजा पसारी ,
गंगा नाम होत अघहारी ।
जहाँ देवशर्मा द्विजरायी ,
तपि पाये त्रेता रघुरायी ।
कीन्ह जहाँ तप आपु विधाता ,
अब लागि ब्रह्मकुण्ड विख्याता ।

दोहा :— सूर्यकुण्ड, शिव-तीर्थ जहँ, निरखत पातक भाग ,
सत्य-शान्ति-सुषमा-सदन, पावन देवप्रयाग । १८३

अब श्रीतीर्थ लखहु मनहारी ,
भव्य प्रदेश नयन-मुखकारी ।
सिद्धि-धाम शुचि चेत्र सोहावा ,
करि तप जहँ कुवेर पद पावा ।
शुम्भ निशुम्भ जहाँ संहारी ,
दीन्हे शीश कालिका डारी ।
अवलोकहु ! अब रुद्रप्रयागा ,
परम पवित्र, शिवहिं प्रिय लागा ।
जहँ मंदाकिनि नदि मनभावनि ,
मिलति अलकनंदा महुँ पावनि ।
पूजि आशुतोषहिं मुनि नारद ,
भये जहाँ संगीत-विशारद ।
कल्पेश्वर पुनि निरखहु सुन्दर ,
लहेउ कल्पतरु जहाँ पुरंदर ।
लखहु बहुरि जहँ धवली गंगा ,
मिलति अलकनंदा सरि संगी ।

दोहा :— पावन विष्णु-प्रयाग यह, थल प्रिय मोहि विशेष ,
अमल स्वर्ग-दर्पण सदृश, आगे दिव्य प्रदेश । १८४

हिमगिरि उन्नत भाल उठाये ,
परसत नभ जनु होड़ लगाये ।

मेघ चहत परसन गिरि-शृंगन,
 तरुगण चहत छुवन बढ़ि मेघन ।
 धाय ससीम असीमित ओरा,
 छुवन चहत जनु गौरव-छोरा ।
 कछुक दूरि अलकापुरि सोही,
 वहति अलकनंदा मन मोही ।
 सन्मुख पुण्य शिखर कैलासा,
 जहाँ सतत शिव-शिवा निवासा ।
 बदरी धाम समीप विराजा,
 सकल तीर्थराजन-अधिराजा ।
 जहँ विभु नर-नारायण वेषा,
 रहि अदृश्य तप करत अशेषा ।
 बधि वृत्रासुर जहाँ सुरेशा,
 कीन्हेउ तप, छूटे अघ क्लेशा ।

दोहा :— युग-युग जहँ भारत-सुतन, सोचे स्वर्ण-विचार,
 तपि तपि सन्तति हेतु जहँ, रचेउ शक्ति-आंगार । १८५

अब अदृश्य सोउ महि कमनीया,
 लखहु गंधमादन रमणीया ।
 तपत जहाँ सब बालखिल्य मुनि,
 अहोरात्र मुनि परति वेद ध्वनि ।
 करत सिद्धगण ब्रह्म-विचारा,
 किन्नर कानन निरत विहारा ।
 शिखर-शिखर हिम घनगण छाये,
 रक्त पीत बहु वर्ण सोहाये ।
 गिरि-आलिङ्गित नदि-नद सुन्दर,
 गह्वर, गर्त, विपुल हिम-कन्दर ।
 दिव्य महीरुह चहुँ दिशि छाये,
 सन्तानक, मंदार सोहाये ।
 पाटल, कुटज, अशोक अनेका,
 पुष्पित रम्य एक ते एका ।

स्वर्ग-कुसुम बहु अन्य मनोरम,
दिव्य सुवास युक्त सब स्वर्णिम।

दोहा :— स्वर्ण-वर्ण तरु फूल फल, स्वर्ण-विहग प्रति डार,
स्वर्ण-कमल सरि सर विपुल, स्वर्ण-भ्रमर गुञ्जार। १८६

रहेउ न अब घन-लोकहु शेषा,
दशहु दिशा हिम-राशि अशेषा।
उड़ि विमान आयेउ गिरि मन्दर,
भयेउ दृश्य औरहु शुचि सुन्दर।
तुङ्ग महीधर दृग-दुर्वारा,
हिम-संभव असंख्य नदि-नारा।
निर्भर बहत होत रव घोरा,
ढहत शैल करि शब्द कठोरा।
हिमहु पार करि बढेउ विमाना,
सिद्ध-मार्ग देखहु नियराना।
करत न दिनपति जहाँ प्रकाशा,
उदित न शशिहु जहाँ आकाशा।
कीन्हेउ जिन महितल तप भारी,
ते नक्षत्रलोक अधिकारी।
जुभत शूर धर्म-संग्रामा,
नखत रूप आवत यहि धामा।

दोहा :— रवि शशधर सम देह धरि, राजत सुरपुर पास,
आत्म-ज्योति जगमग सतत, सुर-पथ करत प्रकाश। १८७

जैसेहि बढेउ गरुड़ पथ गाजी,
सुर-दुंदुभी अताड़ित वाजी।
भौम-आक्रमण मन अनुमानी,
भागे विकल अमर भय मानी।
हरिहिं सिद्ध-पथ पवन विलोका,
धायेउ लै संवाद विशोका।

जव-कम्पित सुरतरु, मन्दारा,
हरिचंदन-सुरभित पथ सारा ।
लहत वृत्त गत चिन्ता शोका,
उमहेउ मोद-उद्धि सुर-लोका ।
दिव्य वाद्य स्वागत-स्वर बाजे,
वसन आभरण सुरगण साजे ।
हर्ष-विह्वला सुरपुर-नारी,
उर हरि-दरस-कुतूहल भारी ।
शृंगारित अँग स्वर्ग-विलासिनि,
चलीं पतिन-सँग ज्योत्स्ना-हासिनि ।

दोहा :— गंधर्विनि, विद्याधरी, किन्नरि चढ़ीं विमान,
मुख-धुत-अमृत-धौत पथ, मुखरित नभ कल गान । १८८

लखे सत्यभामा सब आवत,
यान सहस्र-अर्क जनु धावत ।
प्रकटे सुर सब, व्याप्त दिगन्तर,
हरि-जय-शब्द प्रकम्पित अम्बर ।
सुरपति सह वसु, लोकपालगण,
रुद्र, साध्य, आदित्य, मरुद्गण,
विश्वेदेवा, अश्विनि, ग्रहगण,
शशि, देवर्षि, यज्ञ, हवि, श्रुतिगण,
मूर्त, दैन्य-व्यंजक कृत अञ्जलि,
प्रणत पराग पद्म पद जनु अलि ।
भौम-निधन सुनि आनंद-विह्वल,
वरसे मुकुल कल्पतरु अविरल ।
नभ-सरि अर्घ्य, अमर-तरु हारा,
दिव्याक्षत, सुगंध, घनसारा,
अर्चित प्रिया सहित विश्वेशा,
सुरपति सँग पुर कीन्ह प्रवेशा ।

दोहा :— परिवृत नभ-सुरसरि-मुलिन, रत्नोज्ज्वल अभिराम,
आमोदित नंदन विपिन, काम-भूमि सुर-धाम । १८९

लहि त्रिदशन-सेवा-सत्कारा ,
 मणि-गिरि हरि इन्द्रहिं लौट ।
 दै जलपतिहिं छत्र यदुनाथा ,
 निवसे ससुख शचीपति साथ ।
 श्रीपति-रानि बल्लभा जानी ,
 शक्र सत्यभामहु सन्मानी ।
 रूप-राशि हरि-प्रिया निहारी ,
 प्रकटी प्रीति सकल सुर-नारी ।
 कीन्ह न एक शची सत्कारा ,
 लखि लावण्य द्वेष उर धारा ।
 कहि मानुषी क्षणिक-छवि-जीवन ,
 गर्वित गुनि अक्षय निज यौवन ।
 बहु शृङ्गार-सँभार पसारति ,
 वेणी सुरतरु-सुमन सँवारति ।
 रोष सत्यभामा उर माहीं ,
 हरि-भय कहति शचिहिं कछु नाहीं ।

दोहा :— एक दिवस सुर-मातु गृह, गवने जब यदुनाथ ,
 गयी सत्यभामहु विमन, खिन्न-हृदय पति साथ । १६०

कहि जननी हरि पद शिर नावा ,
 भौम-निधन संवाद सुनावा ।
 सुधा-स्त्रावि, पहिराये कुण्डल ,
 दमकेउ हृष्ट अदिति-मुखमण्डल ।
 लखी सत्यभामा सुर-माता ,
 जदपि आदिजा अभिनव गाता ।
 नेह-मयी लखि श्रद्धा जागी ,
 वंदे पद-सरसिज अनुरागी ।
 अदितिहु लखी रूपवति वामा ,
 जनु लावण्य-लता अभिरामा ।
 गुनि पुनि अचिर-यौवना नारी ,
 आशिर्वचन कहे सुखकारी—

“देति पुत्रि ! मैं यौवन अक्षय ,
मम प्रसाद नहीं तोहि जरा-भय ।
कबहुँ न म्लान रूप-श्री-फूला ,
संतत कान्त प्रीत, अनुकूला ।”

दोहा :— अमृत प्राप्त अयत्न जनु, आनंदित सुनि बाल ,
सुमिरि शचिहि मुसकान मुख, विकसित नयन विशाल । १६१

जानि प्रिया-रुचि पुनि यदुनंदन ,
गवने प्रमुदित नंदन-कानन ।
चिर तारुण्य-वसंत विभूषित ,
विहरत जहँ सुर-युग्म उल्लसित ।
किन्नरि जहँ रस-धार बहावति ,
शिखि सँग नाचि अमर सँग गावति ।
जहँ अप्सरा-अलक सँग विहरत ,
चूमि कपोल अनिल सुख-सिहरत ।
जहाँ विमल जल कमल-पसारा ,
करत श्वेत करि-करिनि विहारा ।
अमर-विहार-भूमि अभिरामा ,
जहँ प्रति सुमन सतनु जनु कामा ।
पूजि समस्त अमर अभिलाषा ,
षट् ऋतु करत सतत जहँ वासा ।
विपिन विभक्त ऋतुन अनुसार ,
कतहुँ ग्रीष्म, कहुँ पावस धारा ।

दोहा :— कतहुँ शालिमय ऋतु शिशिर, हिममय कहुँ हेमन्त ,
कहुँ ज्योत्सना-विहसित शरद, पुष्पित कतहुँ वसन्त । १६२
मृदुल वायुमण्डल सकल, सुखद, सरस, अनुकूल ,
कतहुँ न विषधर जीव कोउ, कहुँ न फूल सँग शूल । १६३

आनंद-मुकुलित लोचन आनन ,
अमति सत्यभामा सुर-कानन ।

विस्मित, विहसित, पुलकित, विलसित,
ललित दुकूल अनिल-आलोलित !
लीलापति लखि छवि मुसकायी,
गिरा सकौतुक प्रियहि सुनायी—
“भू तुव सुमुखि ! लता कमनीया,
अधरहि मधु प्रवाल रमणीया ।
नंदन विपिन प्रिया ! तुव आनन,
तरु-समुदाय-मात्र यह कानन !”
सुनि विरचित कटाक्ष श्रवणोत्पल,
आगे बढ़ी विलासिनि विह्वल ।
सहसा सुरतरु नारि निहारा,
मनोकामना जनु साकारा ।
ताम्र-वर्ण मृदु मञ्जु प्रवाला,
दिव्य सुवास, हेम जनु छाला ।

दोहा :— लखि लोचन तरु-छवि भरी, भरेउ लोभ अंग-अंग,
बोली वाम विमुग्ध मन, करति भृकुटि वर मंग— १६४

“करत सतत तुम सुर-उपकारा,
सुर न करत कछु प्रत्युपकारा ।
मुख विनयस्तुति नित्य सुनावत,
शब्दहु गाय सोइ दोहरावत ।
कहि कहि गोविंद ! हरे ! मुरारे !
घेरत घर नित हाथ पसारे ।
तुमहु न कबहुँ परीक्षा लेहू,
शिक्षा उचित इनहि नहि देहू ।
प्रिय मोहि अति यह तरु मनभावन,
लै निज प्राङ्गण चहहुँ लगावन ।
प्रिय यह मोर करहु यदुनाथा !
बिटप उपाटि चलहु लै साथी !
साँचहु जो सेवक सुरराजू,
होइहै मुदित निरखि प्रभु-काजू ।

जो कृतघ्न करिहै अपमाना,
पइहै उचित दण्ड मघवाना ।”

दोहा :— प्रिया-तर्क सुनि हरि हँसे, कहत, “तजहु उर-क्षोभ,
तुम कुल-भूषण अंगना, सोहत तुमहिं न लोभ । १६५

माँगत सुतनु ! हीनता मोरी,
कीन्हे हरण कहहि जग चोरी ।
निर्जर स्वार्थ-निरत जग जाना,
लोभ सुरेश सुमेरु समाना ।
गुनि निर्वल मैं देत सहारा,
चहहुँ न रंचहु प्रत्युपकारा ।”
भाषी यदुपति गिरा गँभीरा,
औरहु सुनि सुनि नारि अधीरा ।
रंजित रोष निरखि तिय-आनन,
कहे विनोद वचन यदुनंदन—
“देहौ जो नहिं कुहठ विहायी,
होइहै तुम्हरिहि जगत हँसायी ।
सत्राजित-मणि-लोभ सुमिरि मन,
करिहैं जग-जन व्यंग अशोभन—
‘खोये-मणि हित तिन यश प्राणा,
लोभिनि दुहितहु पितुहि समाना ।

दोहा :— सकी स्वभाव न त्यागि निज, अमर-निकेतहु नारि,
नंदनवन ते कल्पतरु, लायी सहठ उपारि ।” १६६

पितु-अपकीर्ति सुनत रिस भारी,
बोली कम्पित नख-शिख नारी—
“लोभी पितृ-वंश मम सारा,
वृष्णि कुलहि निलोभ तुम्हारा !
शतधन्वहिं अक्रूर उभारा,
सोइ साँचहु मम पितु-हत्यारा ।

लोभ-दण्ड तुम ताहि न दीन्हा,
मणि लौटाय पुरस्कृत कीन्हा।
बसत कपट उर जदपि महाना,
शब्द-कुशल नहिं तुम सम आना।
वंचत कहि कहि 'प्राण-पियारी',
मानत हृदय तुच्छ मोहिं नारी।
नित्य विवाह मङ्गलाचारा,
एकहु सँग नहिं हृदय तुम्हारा!
स्वेच्छाचारी, अंकुश-हीना,
आत्म-निरत तुम नेह-विहीना।

दोहा :—पालित भोजन वस्त्र ते, लालित वाक्य-विलास,
हेम-पुत्रिका सम सकल, करत भवन हम वास” ! १६७
मान-वचन सुनि हरि विहँसि, वन-पालकन बोलाय,
कहेउ, “लिये मै जात तरु, देहौ वेगि पठाय” । १६८

गवने तरु-समीप असुरारी,
पारिजात हठि लीन्ह उपारी।
राखेउ तेहि जस लाय विमाना,
विहँसी प्रिया, हँसे भगवाना!
उत रत्नक सुरपति ढिग जायी,
विपिन-वृत्त सब कहेउ सुनायी।
विकल शची उर कोप अपारा,
कहि कटु वाक्य पतिहिं धिक्कारा।
लखि नहिं करत प्रभाव प्रलापा,
भरेउ भवन करि घोर विलापा।
प्रणय-भृत्य व्यापेउ अविचारा,
शक्र धृतायुध विपिन सिधारा।
गवनत हरि लखि कहेउ पुकारी—
“जात कहाँ सुरतरुहिं उपारी?”
उत्तर जब न वृष्णिपति दीन्हा,
शस्त्राघात शचीपति कीन्हा।

दोहा :— विफल शक्र-शस्त्रास्त्र करि, धारे हरि धनु-बाण ,
निमिषहि महुँ नंदन भयेउ, संगर-मेही महान । १६६

करि जब निज दिव्यास्त्र प्रहारा ,
पायेउ निर्जर-पति नहि पारा ,
प्रेरेउ जुद्ध वज्र विकराला ,
कम्प त्रिलोक मनहुँ लय काला ।
अचल चक्रधर कौतुक कीन्हा ,
आवत वज्र विहँसि गहि लीन्हा ।
ध्वस्त-शक्ति अमरेश लजाना ,
इत कर चक्र गहेउ भगवाना ।
चाहेउ जैसेहि करन प्रहारा ,
“पाहि ! पाहि !” सुरनाथ पुकारा ।
कही सत्यभामा हँसि वाणी—
“उचित न दीन वचन रण ठानी ।
दारुण शची-हृदय अभिमाना ,
गनति न काहुहि आपु समाना ।
स्वामी तासु तुमहु सुरराजू ,
भाषत ‘पाहि’ न कस उर लाजू ?

दोहा :— कीन्ह गर्व मिलतहि शची, जानि तुमहि सुरनाह ,
ताही कर प्रतिकार यह, मोहि न सुरतरु-चाह । २००

कायर-पत्नी आपुहि जानी ,
करिहै अब न गर्व इन्द्राणी ।
अमर-नारि तेहि मृत्युहु नाही ,
जरिहै चिर ईर्ष्यानल माहीं !”
विकल सुरेश दुःख सुनि घोरा—
‘कहत देवि ! कस वचन कठोरा ?
मैं सुरेश, हरि त्रिभुवन-स्वामी ,
अविदित, अलख, अनादि, अनामी ।
धरि नर-रूप करत सुर-काजू ,
त्रातहि त्राहि कहत कत लाजू ?

दाया करहु तुमहु अब देवी !
जानि मोहिं हरि-पद-रज-सेवी ।
समर-मही मैं सुरतरु हारा ,
तेहि पै अब न शची-अधिकारा ।”
आग्रह अमित अमरपति कीन्हा ,
दै हरि वञ्च कल्पतरु लीन्हा ।

दोहा :— सुर-समाज जुरि कीन्ह पुनि, पद-वन्दन, सन्मान ,
दिशि दश भरि सुरतरु-सुरभि, उड़ै उव्योम हरि-यान । २०१

द्वारावति श्रीहरि जब आये ,
लखन अमरतरु पुरजन धाये ।
परति जासु अँग तरुवर-छाया ,
अमर-स्वरूप दिखति नर-काया ।
बहुरि सत्यभामा-गृह लायी ,
रोपेउ पारिजात यदुरायी ।
गूँथति कुसुमन केश-कलापू ,
गनति धन्य रानिन महँ आपू ।
ब्याहीं ताहि समय असुरारी ,
भौमासुर-हत सकल कुमारी ।
पुनि प्रद्युम्न भोजकट जायी ,
हरी रुक्मि-कन्या बरियायी ।
गत कछु दिवस सुयोधन राजा ,
साजे दुहिता-परिणय साजा ।
जाम्बवती-सुत साम्ब सुजाना ,
कीन्हेउ सुनि गजपुरी प्रयाणा ।

दोहा :— सप्तपदी अवसर पहुँचि, करि मण्डप पैठार ,
हरी लक्ष्मणा हरि-सुवन, कुरुपुर हाहाकार । २०२

कुपित कुरुजनहु घेरि कुमारा ,
गहि रण-महि कारागृह डारा ।

लेहि द्वारावति वृत्त जनार्दन ;
 गुनि मन हलधर शिष्य सुयोधन ,
 पठयेउ गजपुर दिशि यदुनाथा ,
 रामहिं सात्यकि उद्धव साथा ।
 गुरु-आगमन सुनत कुरुरायी ,
 धाय सभक्ति कीन्ह पहुनाई ।
 भेंटे भीष्म विदुर सब कुरुजन ,
 द्रोण, कर्ण, कृप आदि मुदित मन ।
 जुरी सभा लखि, अनुसरि नीती ,
 भाषी उद्धव गिरा सप्रीती—
 “यदुजन-कुरुजन-नेह, मिताई ,
 जग-विश्रुत युग-युग चलि आयी ।
 निर्मल दोउ सोमकुल-शाखा ,
 शाशवत बंधु भाव हम राखा ।

दोहा :— पारण्य-बंधन-बद्ध दोउ, रहे सदा शुचि वंश ,
 जन्मे नृप, सेनप, सचिव, भरतखण्ड - अवतंस । २०३

साम्ब कृष्ण भगवान-कुमारा ,
 उग्रसेन नृप प्राण पियारा ।
 कुरुजन तेहि बंदी-गृह डग्री ,
 कीन्ह निखिल यदुवंश दुखारी ।
 सोचि भयेउ भ्रम-वश यह काजू ,
 कीन्ह न रोष हृदय यदुराजू ।
 पठयेउ हमहिं, कही यह वाणी ,
 ‘त्यागव उचित न प्रीति पुरानी ।
 यहि विवाह अनुचित कछु नाहीं ,
 बढ़िहै नेह वंश दोउ माहीं’ ।”
 सुनि सरोष भाषेउ दुश्शासन—
 “भये तुल्य-कुल कब ते यदुजन ?
 यादव कन्या कुरुजन लीन्हीं ,
 कबहुँ सुता निज हम नहिं दीन्हीं ।

वचन सँभारि न कृष्ण उचारा,
वैभव साथ बढेउ अविचारा ।

दोहा :— गुनि निर्वल कुरुवंश मन, कीन्ह कृष्ण अपमान,
चहत मुकुट-पद पादुका, काल-चक्र बलवान ।” २०४

सु ; शासन-शब्द कराला,
कहे वचन हलि लोचन ज्वाला—
“कालचक्र हू ते बलवाना,
चक्र सुदर्शन सब जग जाना !
तिमि हल मुसलहु विक्रम-धामा,
समर वैरि-बल-गर्व-विरामा ।
मुकुट पादुका भेदहु यहि क्षण ।
करत प्रकट मै, निरखहि कुरुजन !”
अस कहि हल कराल हलि धारा,
गये धाय जहँ पुर-प्राकारा ।
हल-मुख राखि दुर्ग दृढ़ भूला,
कर्षी पुरी मनहुँ लघु फूला ।
डगमग डोलेउ गजपुर सारा,
‘पाहि ! पाहि !’ कुरुवंश पुकारा ।
करि लक्ष्मणा साम्ब दोउ आगे,
आये शरण वंश-मद त्यागे ।

दोहा :— रचि विवाह पूजे सबन, राम - चरण - जलजात,
आमंत्रित आये सकल, गजपुर पाण्डव आत । २०५

सोरठा :— लखि सम्भव विवाह, पाण्डु-सुवन करि बहु विनय,
इन्द्रप्रस्थ सोत्साह, लाये यदुजन राम सह ।

तहाँ भीम हलधरहिं रिभायी,
सीखेउ गदा युद्ध मन लायी ।
अपनायेउ पार्थहिं युयुधाना,
लहेउ विविध दिव्यस्त्रन जाना ।

बसत समुद सब प्रीति अपरिमित,
 सहसा भयेउ कुयोग उपस्थित।
 एक दिवस सरि मज्जन हेतू,
 गवने हलधर स्वजन समेतू।
 भीम, नकुल, सहदेवहु संग,
 करत केलि मिलि जमुन-तरंगा।
 सुखासीन इत निज प्रासादू,
 सुनेउ धनंजय आर्त-निनादू।
 द्वार कारुणिक जाय निहारा,
 द्विज दरिद्र इक करत गोहारा—
 “हरी धेनु मम धँसि गृह चोरन,
 जात लिये कोउ करत न रक्षण।

दोहा :— लेत नृपति षष्ठांश जो, रञ्जित नहि धन प्राण,
 साक्षी वेदस्मृति सकल, अधी न तेहि सम आन ।” २०६

सुनतहि अर्जुन ‘अभय’ उचारी,
 दृष्टि शस्त्र हित इत उत डारी।
 सहसा करि सुधि व्याकुल देहा,
 बिसरे शस्त्र द्रौपदी-गेहा।
 तहँ एकान्त युधिष्ठिर-वासू,
 नियमित द्रुपद-सुता-सहवासू।
 प्रविशत भवन नियम-उल्लंघन,
 द्वादश वर्ष देश-निर्वासन।
 नाहित गो द्विज दोउ अपकारा,
 नष्ट धर्म, अपकीर्ति अपारा।
 गुनि गुरु धर्म, नगण्य शरीरा,
 कृत-निश्चय गवने मति-धीरा।
 प्रविशे अग्रज-आयसु पायी,
 लौटे लहि आयुध-समुदायी।
 सादर द्विजहि संग बैठावा,
 स्थंदन ईंगित मार्ग चलावा।

दोहा :— पुर बाहर पहुँचत गहे, सहजहि तस्कर-वृन्द,
दै द्विज धेनु, असीस लहि, लौटे गृह सानंद । ३०७

उत करि तब लगि वारि-विहारा,
लौटे हलधर, पाण्डु-कुमारा ।
जैसेहि अर्जुन वृत्त सुनावा,
हतमति सकल, शोक गृह छावा ।
दृढ़ निश्चयी पार्थ मन जानी,
सुत-वत्सला पृथा बिलखानी ।
धर्म-सुवन पायेउ संवादू,
कहेउ पार्थ सन प्रकटि विषादू—
“मम अपराध तात ! तुम कीन्हा,
मैं तेहि ताहि समय छमि दीन्हा ।
गो, द्विज, प्रजा-कार्य तुम साधी,
मानत कस आपुहिं अपराधी ?”
सुनि कह चकित पार्थ मतिमाना—
“भाषत कस अस धर्म-निधाना !
वचन-बद्ध हम पाँचहु भाई,
उचित न धर्म साथ चतुराई ।”

दोहा :— भये निरुत्तर धर्मसुत, व्याकुल सात्यकि, राम,
सज्जित पार्थ प्रवास हित, कीन्हेउ सबहिं प्रणाम । ३०८

विरह विकल तजि परिजन पुरजन,
कीन्ह ताहि दिन पार्थ पर्यटन ।
धैर्य सबहिं हलि सात्यकि दीन्हा,
रहि दिन चारि गवन गृह कीन्हा ।
द्वारावति स्वजनन ढिग जायी ।
पार्थ-पर्यटन कहेउ सुनायी ।
बिह्वल सुनि यदुकुल-अवतंसा,
उर अधीर, मुख शब्द प्रशंसा—
“पालत धर्म क्लेश सहि नाना,
करिहै धर्म अंत कल्याणा

देखेउं खोजि भुवन त्रय माहीं,
 पार्थ समान पुरुष कहूँ नाहीं।
 धर्म-प्राण ओरहु सब भ्राता,
 वसुधा-भूषण, सज्जन-त्राता।
 नसिहैं ये ही असुर-कुराजू,
 भरिहैं भुवन शान्ति सुख साजू।”

बोहा :—कहत वचन रोमाञ्च तनु, लोचन नेहज नीर,
 सोचि सुहृद सत्वर मिलन, घरेउ धैर्य यदुवीर। २०६

एक दिवस नृप सभा सोहायी,
 यिद्यमान यदुजन यदुगयी।
 पौण्ड्रक-दूत द्वारका आवा,
 हरिहि स्वामि-सन्देश सुनावा—
 “पौण्ड्र-नरेश विष्णु अवतारा,
 निज इच्छा महितल तनु धारा!
 शंख चक्र पद्माङ्कित वेषा
 पठयेउ मोहिं यह देन सँदेशा—
 ‘त्यागहु कृष्ण ! दिव्य मम लाञ्छन,
 विभु-अनुकरण उचित नहिं मनुजन।
 त्यागहु वासुदेव निज नामा,
 भजहु जानि मोहिं जग-विश्रामा।
 मास अवधि मम आयसु मानी,
 अइहौ जो न शरण अज्ञानी,
 करि मैं द्वारावती चढ़ायी,
 देहौ यदुकुल निखिल नसायी,”

बोहा :—हँसी सभा, हलधर हँसे, सुनि अपूर्व सन्देश,
 प्रतिभाषत कौतुक-मुदित, हँसे आपु परमेश— २१०

“मम वसुदेव पिता यश-धामा,
 ताते वासुदेव मम नामा।

चाहेउ सकत न तेहि मैं त्यागी,
 गयेउ नाम मम पाछे लागी !
 अन्य चक्र आदिक जे लाच्छन,
 करि निमिषहिं महँ सकत विसर्जन ।
 जाय वेगि पौण्ड्रक-रजधानी,
 तजिहौ तहँहि तीर्थ तेहि मानी ।”
 अस कहि विदा दूत कहँ दीन्ही,
 भूपहु सभा विसर्जित कीन्ही ।
 गत कछु दिन सुमिरेउ हरियाना,
 गरुड़-ध्वजाङ्कित प्रकट विमाना ।
 पौण्ड्रक-पुरी पहुँचि श्रीरंगा,
 काशी-चमू लखी चतुरंगा ।
 काशी-नृपति पौण्ड्र-पति साथी,
 आयेउ लै पदाति, हय, हाथी ।

श्लोका :—अरि-वाहिनि दोउ मिलि बढीं, मनहुँ सिन्धु घहराय,
 आवत पौण्ड्रक पुनि लखेउ, समर-मही यदुराय । २११

धारे वैसहि धनुष विशाला,
 वैसहि कौस्तुभ मणि, वनमाला ।
 चूड़ाभरण शीश सोइ सुन्दर,
 वैसहि कटि-प्रदेश पीताम्बर ।
 गरुड़-ध्वजाङ्कित रथ आसीना,
 हँसे विष्णु लखि विष्णु नवीना !
 प्रथमहि अस्त्र प्रदीप्त पँवारी,
 हरि समरामि सैन्य सब जारी ।
 बहुरि पौण्ड्र-नृपतिहिं समुहायी,
 भाषे विहँसि वचन यदुरायी—
 “कीन्हि कृपा प्रभु ! दूत पठावा,
 मिलेउ सँदेश सुनत मन भावा ।
 आयेउँ धावत पालि निदेश,
 लोचन सफल भये लखि वेषू !

अब प्रभु-आदेशहि अनुसारा ,
तजत सकल निज शस्त्रन-भारा ।”

दोहा :—अस कहि त्यागी हरि गदा, मेटेउ नट-पाखंड ,
खसे चिह्न, पुनि चक्र तजि, काटि किये दुइ खंड । २११

काशीपतिहि बहुरि संहारा ,
वाराणसि शिर छिन्न पैवारा ।
चीन्हि शीश पुर-प्रजा सुबारी ,
मुदित—‘हटेउ हरि अत्याचारी !”
पै पितु सम नृप-सुत अघखानी ,
हठ शठ कृष्ण-निधन हित ठानी ।
करि भीषण अभिचार विधाना ,
अनुष्ठान हरि ऊपर ठाना ।
गये स्वपुर उत हरि सुखराशी ,
इत खल दक्षिण अग्नि उपासी ।
प्रकटी कृत्या अति विकराजा ,
केश लाल, मुख पावक-जाला ।
जिह्वा लोल, नयन अंगारा ,
‘कृष्ण ! कृष्ण !’—दारुण उद्गारा ।
महि, नभ, वन, गिरि, सिंधु कैपायी ,
प्रमथन-परिवृत हरि-पुर आयी ।

दोहा :—भागत निरखि दवाग्नि जिमि, जीव जन्तु वन केर ,
भागे पुरजन भीत तिमि, करि करि यदुपति-टेर । २१२

खेलत चौसर उद्धव साथा ,
लखि उत्पात चकित यदुनाथा ,
जानी पुनि कराल अति कृत्या ,
अनुष्ठान-जाता, शिव-भृत्या ।
सुमिरि चक्र भाषेउ यदुरायी—
‘पावक-त्रास मिटावहु जायी।’

प्रकटेउ चक्र सहस मुख जासू,
कोटि अर्क सम प्रखर प्रकाशु ।
महा अनल जनु प्रलयकारी,
व्याप्त व्योम, महि, सागर-वारी ।
हतप्रभ कृत्या चली परायी,
वाराणसि प्रमथन सह आयी ।
प्रतिहत, नृपति-सुतहि संहारी,
कीन्हें छार ऋत्विजहु जारी ।
आवत चक्र निरखि भय मानी,
निहत-तेज मख-कुण्ड समानी ।

दोहाः—भयेउ परावृत चक्र पुनि, भये सुखी पुर-लोग,
पुनि वैसेहि द्वारावती, नित नूतन सुख भोग । २१४

भयेउ प्रबल महितल तेहि काला,
बाण असुर बलि-सुत विकराला ।
पूजि पुरारि बाण वर पावा,
भुज सहस्र बल युग भुज छावा ।
शिव-संरक्षित, सुषमा-खानी,
शोणितपुरी तासु रजधानी ।
तनया उषा सुतनु, सुकुमारी,
पितु-प्रिय, शिव-शैलजा-दुलारी ।
कृष्ण-पौत्र अनिरुद्ध कुमारा,
लखि सपने निज तन मन वारा ।
सखी चित्रलेखा इक तासू,
मायाविनि, अबाध गति जासू ।
करि निशि द्वागवति पैठारा,
अंतःपुर ते हरेउ कुमारा ।
सहित कुंवर पर्यङ्क उठायी,
उषा-भवन दीन्हेउ पहुँचायी ।

दोहाः—सुनेउ वृत्त जब बाण नृप, प्रविशि सुता-आगार,
नारेउ बंदीगृह कुपित, गहि अनिरुद्ध कुमार । २१५

उत नारद मुनीश-मुख गाथा,
 मुनि सरोष यदुजन, यदुनाथा,
 लै बाहिनि चतुरंगिणि घोरा,
 बेरी बाण-पुरी चहुँ ओरा।
 पुर-रक्षण-प्रण-बद्ध पुरारी,
 कीन्हेउ हरि सँग संगर भारी।
 वैष्णव रौद्र अस्त्र विकराला,
 चले ज्वलन्त मनहुँ लय काला।
 प्रेरेउ जब जृम्भक यदुरायी,
 सोये गिरिजापति जंभुआयी।
 जैसेहि असुर बधन हरि लागे,
 चक्र-प्रकाश-चकित शिव जागे।
 'रच्छहु भक्तहि'—शम्भु पुकारा,
 विहंसि चक्र निज हरि लौटारा।
 हरिहु कीन्ह विनय हर केरी,
 हरि-हर मिलत रहे सुर हेरी।

श्लोकः—प्रसूत बाण अनिरुद्ध सँग, कीन्हेउ सुता विवाह,
 लौटे सब द्वारावती, यदुजन सहित उछाह। २१६

तीर्थ तीर्थ उत करत प्रवासू,
 पहुँचे अर्जुन क्षेत्र प्रभासू।
 लहि संवाद देवकी-नंदन।
 कीन्हेउ धाय सुहृद-अभिनंदन।
 परसत चरण पार्थ सुख माना,
 पुनि पुनि अंक भरेउ भगवाना।
 लाय रैवतक दीन्ह निवासा,
 कीन्हेउ आपु सखा संग बासा।
 वरनत यात्रा तीर्थस्थाना,
 कानन, शैल, नदी नद नाना,
 श्रमित पार्थ लोचन अलसाने,
 सोये ससुख कबहि नहि जाने।

सुनी प्रात वंदीजन-वाणी,
जाग अर्जुन रैनि सिरानी ।
उधरत दृग जगवंदन जोये,
पृष्ठत मृदु स्वर—“निशि सुख सोये?”

दोहा :—भाषेउ विहँसत पार्थ, “जब, आपुहि प्रभु अनुकूल,
होत विश्व नंदन विपिन, शूल सकल मृदु फूल ।” २१७

स्यंदन बहुरि सुहृद बैठायी,
चले लिवाय पुरी यदुरायी ।
सागर-तट गिरि-मार्ग सोहाये,
यदुजन कानन कुञ्ज सजाये ।
लखेउ पार्थ प्राकार-प्रकाशा,
स्वागत-दीप करत जनु हासा ।
तरु रस बरसत चरण पखारत,
कोकिल पृष्ठत क्षेम पुकारत ।
उदधि-बीचि-स्वर वाद्य बजावति,
स्वागत हेतु पुरी जनु आवति ।
मिले धाय प्रमुदित यदुवंशी,
कीन्ह पार्थ-आतिथ्य प्रशंसी ।
उग्रसेन कीन्हेउ सन्माना,
सुवन समान शौरि मन जाना ।
पार्थहु बंदि निखिल यदुवृन्दू,
प्रविशे श्याम-सदन सानंदू ।

दोहा —विस्मित हरि-प्रासाद लखि, अंतःपुर विस्तार,
सौध हर्म्य अगिणत जहाँ, कला कोल आगार । २१८

चित्र विचित्र लता-गृह नाना,
क्रीड़ा-पर्वत विविध विधाना ।
विपुल शिखर-गृह, भवन विहारा,
श्रेणी-मार्ग, गबाच अपारा ।

इन्द्रनील मणि वलभि अप्रतिम,
रत्न विटंक, वेदिका, कुट्टिम ।
आसन मरकत मणि-मय झलमल,
शयन शरद-शशि-हास समुज्ज्वल,
कलित मल्लिका कुसुम मालिका,
दामिनि-द्युति-हर रत्न-दीपिका ।
मौक्तिक युत कौशेय विताना,
अगरु-धूम शुचि मेघ समाना ।
भीतिन चित्रित खग मनहागी,
उड़न चहत जनु पंख पसारी !
चित्रित सुमन सुवास परागा,
गुञ्जत भ्रान्त भ्रमर अनुरागा !

श्लोकाः—सुरतरु-सौरभ-परिमलित, पवन प्रवाहित मंद,
प्रविशत जालक-रंभ्र पथ, निशि शशि-कर सानंद । २१९

बसि हरि-भवन पार्थ सुख पावा,
दीर्घ प्रवास-क्लेस बिसरावा ।
लीलापति तहँ पार्थ निहारे,
निवसत माया-विग्रह धारे ।
जात जबहिँ अर्जुन जेहि धामा,
निरखत तहँ तहँ हरि घनश्यामा ।
सुखासीन कहँ रुक्मिणि पासा,
करत सरस हरि हास विलासा ।
कतहुँ सत्यभामा कृत माना,
गहि पद विनय करत भगवाना ।
बारि-विहार कतहुँ रस-रंगा,
खेलत चौसर काहू संग्गा ।
आत्मज पौत्र अंक कहँ लोन्हे,
कतहुँ होम पूजा चित दीन्हे ।
कतहुँ सुनत इतिहास पुराणा,
कहुँ विप्रन मणि काञ्चन दाना ।

श्लोकाः—पुत्र-पौत्र-परिणय कतहुँ, मुदित मंगलाचार,
सचिवन सँग आसीन कहूँ, विग्रह-संधि-विचार । २२०

राग-विराग, परिग्रह-त्यागा,
द्वन्द्व-अतीत-हरिहिं सम लागा ।
गत-आसक्ति तबहुँ उत्साहुँ,
करि कर्तव्य गनत बड़ लाहू ।
धारत भुवन-भार हरि तैसे,
बहुत बलय नर कर निज जैसे ।
मानस धर्म, कोप यम वासा,
कृपा धनद, भुज रुद्र निवासा,
घदन हिमांशु, प्रताप हुताशन,
गिरा शारदा, लक्ष्मी नयनन,
बुद्धि गजानन, छवि रतिनाथा,
तन बल वायु, तेज दिननाथा ।
सर्व देवमय कृष्ण स्वरूपा,
बसत भुवनतल विभु-प्रतिरूपा ।
सुखी पार्थ लहि संग जनार्दन,
भयेउ प्रसाद देश-निर्वासन ।

श्लोकाः—यदुजन जिमि निवसत सुखी, हरिहिं स्वजन निज जानि,
माया-मोहित अर्जुनहु, बसे सखा उर मानि । २२१

उत्सव-प्रिय सब यादव लोगू,
जल, थल, शैल करत मिलि भोगू ।
एक दिवस रैवतक पहारा,
गवने यदुजन करन विहारा ।
विहरत सँग अर्जुन घनश्यामा,
लखी शैल-शोभा अभिरामा ।
पुष्पित अद्रि-शिखर मनहारी,
लिपटीं फूलि लता सुकुमारी ।
स्वर्ण-वर्ण कुसुमित सिंधुवारा,
तोमर हस्त मदन जनु धारा ।

कुरुवक मनहुँ मनोभव-बाणा,
विकसित भेदि हृदय, मन, प्राणा ।
पूँछ पसारि नाच वर मोरा,
करत शिखिनि संग मिलि कर शोरा ।
तरु तरु कुहक वोकिला कारी,
'पीव' ! पपीहा उठत पुकारी ।

बोहा :—सनि सर्वाङ्ग प्रसून-रज, झुकि कीन्हे मधु पान,
सुमन सुमन प्रति गिरि त्रिपिन, मत्त मधुप कल गान । २२२

यहि विधि भ्रमत पार्थ हरि-संगा,
निरखत कोड़ा कौतुक रंगा ।
सहसा भयी नयन-पथ-गामिनि,
कोउ लावण्य-मयी यदु-भामिनि ।
शशधर आनन आनंददाता,
मनहर कमल-मृदुल सब गाता ।
मधुरस्मित अरुणाधर उज्ज्वल,
किसलय मञ्जुल मनहुँ सुमन-दल ।
अरुणोत्पल पद शोभाशाली,
गवनति पथ वितरति जनु लाली !
चकित धनंजय रूप निहारा,
हरिहिं हेरि मन करत विचारा—
हरि-सौष्ठ, हरि-वदन-लुनाई,
हरि-छवि जनु नारी तनु आयी ।
शोभा जदपि सोइ मनहारी,
गोरोचन-द्युति तिय सुकुमारी ।

बोहा :—ताही क्षण पार्थहि निरखि, भयी मुग्ध वर वाम,
आलक्षित युग उर प्रणय, बिहँसे मन घनश्याम । २२३

गवनी लज्जित तिय छवि-धामा,
व्यथित पार्थ, मन-प्राण सकामा ।

निरखी सखा-दशा यदुरायी
चितथे मौन मर्म मुसकायी ।
आकुल फाल्गुन हृदय लजाने,
चोभ-संयमित मन पछिताने—
कीन्हेउ मैं संयम अभ्यासा,
तीर्थ तीर्थ पर्यटन, प्रयासा ।
व्रत नियमहु करि नष्ट न लोभा,
लखत नारि-छवि क्षण महुँ शोभा ।
समुझी मम गति अन्तर्यामी,
धिक् ! धिक् ! मोहिं काम-पथ-गामी ।
सुहृद-मनोगति यदुपति जानी,
कही विनोद-विमिश्रित वाणी—
“भगिनि सुभद्रा यह प्रिय मोरी,
मृग-शिशु सहश चपल, मति भोरी ।

दोहा :—मातु, पिता, यदुजन, नृपति, पुरजन-प्राण पियारि,
तजहु सखा परिताप उर, सुंदरि अबहुँ कुँवारि ! २१४

संकर्षण प्रिय शिष्य सुयोधन,
चहत भगिनि हठि ताहि विवाहन ।
विरहित संयम, सहज पापमति,
मम मत अनुजा योग्य न कुरुपति ।
उपजेउ तुम्हरे उर अनुरागा,
निश्चय भाग्य कुँवारि कर जागा ।
भयी तुमहिं लखि सोउ सविकारा,
विधि जनु आपु सुयोग सँवारा ।
सहसा तुम दोउ लखि अनुकूला,
मोर मनोरथ-तरु जनु फूला ।”
सुनि हरि वचन पार्थ सुख पावा—
मोहिं नार्थ ! सब विधि अपनावा ।
आयसु जो अब लहहुँ तुम्हारी,
याचहुँ पितु ढिग जाय कुमारी ।”

कहेउ बिहँसि हरि, “यदुकुल माहीं,
माँगे मिलत कचहुँ कछु नाही।

दोहा :—जेतिक शिर तेतिक मतहु, करिहैं वचन न कान,
चहत वरन तौ करि हरण, करहु स्वपुर प्रस्थान।” २२५

विस्मित पार्थ सुनत प्रस्तावा,
“कस अधर्म प्रभु ! चहत करावा !
जानि स्वजन, बहु प्रकटि सनेहू,
राखेउ यदुजन मोहिं निज गेहू।
करि विश्वास-घात तिन साथी,
सकत न लहिं मैं सुख यदुनाथा !
यदुजन प्रभुहिं सुहृद मम जानी,
कहिहैं गिरा व्यंग-विष-सानी।
बढ़हि जो बंधु-द्वेष मोहिं लागी,
होइहौं जग मैं अपयश-भागी।”
बिहँसे हरि लखि शुचि संकोचू,
भाषे वचन हरत उर शोचू—
“बसत सतत मैं यदुजन माहीं,
व्यंग-भीति मोहिं तनिकिहु नाही।
मत मम देश काल अनुसारा,
गहे न स्वल्पहु अहित तुम्हारा।

दोहा :—धर्म-विमुख, गर्वित, कुमति, दुर्योधन नरनाह,
करिहैं हाँठ अग्रज तदपि, तेहि सँग भगिनि विवाह। २२६

वरहि सुपति भगिनी सुकुमारी,
यह मम धर्म सकहुँ नहिं टारी।
इष्ट मित्र परिचित मम जेते,
लखे विचरि सकल मैं तेते।
तिन महुँ तुमहिं श्रेष्ठ वर मानी,
ब्याहन चहहुँ भगिनि कल्याणी।

हरण, स्वयंवर, कन्या-दाना—
प्रचलित तीनहु आजु विधाना ।
सब कर हित, अधर्म नहिं होई,
दीन्ह तुमहि मैं सम्मति सोई ।
मम अनुजा, मोरहि अनुशासन,
व्यर्थ कुतर्क करत कत निज मन ?
दादुर रटत सरोवर रहहीं,
तबहुँ तृषाते धेनु जल पियहीं ।
देहैं तुमहिं जो यदुजन दोषू,
लेहैं मैं सँभारि सब रोषू ।

दोहा :—दीपक तेलहि ते दिपत, तिल ते सरत न काज,
युक्तिहि सकत बताय मै,” कहि बिहँसे यदुराज । २२७

सुनत धनंजय दूत बोलावा,
इन्द्रप्रस्थ संदेश पठावा ।
आयेउ उत्तर—“श्याम-निदेशा,
पालहु संतत त्यागि अँदेशा ।
आयसु लहि अर्जुन अनुरागे,
हरण सुअवसर खोजन लागे ।
एक दिवस वसुदेव कुमारी,
क्रीड़ा हित रैवतक सिधारी ।
समाचार जस यदुपति पावा,
स्थंदन निज सजि साज मँगावा ।
भेंटि सनेह पार्थ बैठारे,
मायापति मृदु वचन उचारे—
“सहित सुभद्रा गृह निज जायी,
पाआलिहिं “अस कहेउ बुझायी—
‘प्रिय भगिनी यह केशव केरी,
सेया हेतु पठायी चेरी ।

दोहा :—जानि सपली याहि जनि, मानव निज अपमान,
द्रुपद-मुता-पद पार्थ-हिय, लै न सकति निय आन ।” २२८

हरिहिं मप्रीति पार्थ शिर नाथी ,
 गवने रथ वर वाजि चलायी ।
 स्यंदन काञ्चन जटित विशाला ,
 मुखरित मञ्जुल किंकिण-माला ।
 आयुध-युक्त मनोजव धावा ,
 शैल रैवतक सत्वर आया ।
 उत यदुनंदिनि क्रिये सिंगारा ,
 सखिन सहित वन करति विहारा ।
 कबहुँ रुचिर चंद्रक कर धारी ,
 नाचति बाल शिखी अनुहारी ।
 कबहुँ सखिन-परिवृत सोत्साहा ,
 रचति फलिनि-सहकार-विवाहा ।
 कबहुँ पपीहा पाछे धावति ,
 'पिड !' पुकारि वन शोर मचावति ।
 सहसा लखि रथ ठिठकी बाला ,
 उठे पार्थ दिशि नयन विशाला ।

जोडा : -उतरे पार्थहु थामि रथ, झलकी नयनन चाह ,
 बैठाथी स्यंदन पुलकि, अनुरागिनि गहि बाँह । २२६

द्विविधा-विह्वल इत सुकुमारी ,
 उठीं बिलखि उत सखी पुकारो ।
 आवहिं जव लगि रक्षक वृन्दा ,
 नाँधेउ शैल युग्म सानंदा !
 कर मीजत रक्षक मनमारे ,
 सभा-द्वार सब जाय पुकारे ।
 सभापाल करि रोष अपारा ,
 कहेउ—'बजावहु नगर नगारा ।
 बाजेउ दारुण संकट-डंका ,
 गँजी द्वारावती सशंका ।
 सुनेउ जहाँ जेहि भैरव रोरा ,
 चलेउ सवेग सभा-गृह ओरा ।

यादव विपुल वंश कुल केरे,
 धाये चकित पटह-स्वर-प्रेरे।
 रुग्णहु यदुजन नहिं पुर माहीं,
 आयउ सभा भवन जो नाहीं।

दोहा :—चिन्तित निज निज आसनन, बैठे जस सब आय,
 कही धनंजय-कृति सकल, सभापाल समुझाय। २३०

उठी पुकारि सभा 'धिकारा !'
 'गहहु' ! 'बधहु' ! ध्वनि भयी अपारा।
 कीन्ह कुपित महि पद-आघाता,
 क्रोध कराल प्रकम्पित गाता।
 तमके बदन, नयन अंगारे,
 फरके भुज, शस्त्रास्त्र उछारे।
 एक ते एक अधिक सब उद्धत,
 प्रलय-काल जनु भयेउ समुद्यत।
 सिंह-निनाद सभा-गृह गाजा,
 रव दारुण, बाजे रण-बाजा।
 सहसा हलधर हरिहिं निहारा—
 बदन प्रशान्त, मौन अविकारा।
 परम धनंजय-सुहृद विचारी,
 लखि निश्चेष्ट हृदय रिस भारी।
 भरी सभा अनुजहिं ललकारा—
 "केशव ! आजु मौन कस धारा ?

दोहा :—भयेउ न यदुकुल आजु लागि, अस अनर्थ अपकार,
 कीन्हैउ जस यह गेह बसि, अर्जुन सखा तुम्हार। २३१

लहि यदुकुल-बल पांडव आजू,
 भये सत्तल, पायेउ निज राजू।
 बंधु जानि हम दीन्ह सहारा,
 पठये नित नूतन उपहारा।

प्रातः प्रतापित सतत हम पाली,
प्रविश भवन तिन कीन्ह कुचाली।
रोष न तबहुँ कृष्ण मन माही!
दंठे मौन, कहत बहुत नाही।
अब लाग हम यदुवाशन केरी,
कन्या कबहुँ काहु नहि हेंरी।
सकत न रच्छि जो निज धन दारा,
जात समाज रसातल सागा।
जगन न रंच तासु सन्माना,
पद पद अध पतन अपमाना।
भयउ अथ आजु कुन माही,
केशव त-हुँ कहत बहुत नाही!

श्लोक १—भाषत कम्पित अंग अंग, हलधर रोष अधीर,
चितथी यदुपात दश सभा बोले द्वार मान धीर—२२२

“सभा भवन मोहि शान्त निहारी,
रोष पूज्य अमज उर भारी।
बोलेहु विनु जय एतक खारी,
बोले होय दशा का मारा।
तात-निदेश तबहुँ सन्मानी,
कहिहौ उचित परन जो जानी।
जस यह कुन्ती-मुन मम भ्राता,
सोइ तासु संग अमज-नाता।
त-हुँ सर्व धनजय-दोष,
सदत जात मम शिरहि सरोष।
कीन्है जो अर्जुन अपराधा,
बाँटव उचित ताहि करि आधा।”
मुनि द्वार-वचन प्रेम-रस-साने,
हैंसी सभा, हलधर मुसकान।
शान्त रोष, उपजेउ सद्भाव,
उम, शौरि-उर धीरज आवा।

दोहा :—पूछेउ हरि तब यदुजनन,—“केती राजकुमारि,
प्राति वत्सर यदुजन हरत, धम-अधर्म विसारि ? २३३

करत नृपति को भारत वासू,
ही न यदुजन कन्या जासू ?
भीष्मक-तनय रुक्मि नरनाहू,
रुचत न तेहि यदु विवाहू ।
भगिनो, सुता दोउ हरि लाया,
कीन्ह विपुल हम तासु भलाई,
भरत-कुलहु सँग करि बरजोरी,
हरी सुयोधन-सुता बहोरी ।
कीन्हेउ जब कुरुवंश-विरोधू,
उपजेउ अग्रज-उर अति क्रोधू ।
हल-बल कर्षि पुरी-प्राकारा,
लागे बोरन सुरसरि-धारा
व्याकुल कुरुजन 'पाहि' पुकारी,
दीन्ही माम्बहि व्याहि कुमारी ।
अर्जुन जन्म ताहि कुल लीन्हा,
हरि कन्या कस अनुचित कीन्हा ?

दोहा :—यदुजन-कृत कन्या-हरण, संनत पुण्य-कलाप,
करत अन्य जो कर्म साइ, होत निमिष महुँ पाप ! २३४

रुचेउ मोहि नहि यह अविचारा,
ताते सभा भौन मै धारा ।
औरहु हृदय दुःख यह लागा,
पात्र कुपात्र भाव हम त्यागा ।
रूप, शील, कुल, गुण-आगारा,
कहाँ पार्थ सम अन्य कुमारा ?
पराक्रमी, उत्साही, धीरा,
सुकृती, सुमति, यशस्वि, गँभीरा ।
महाबाहु, दिव्यास्त्र-प्रहारी,
कहँ अस अन्य भुवन धनुधारी ?

गहि विवेक देखहु मन माहीं,
योग्य सुभद्रा अस वर नाही।
जो हम करत सोइ तेहि कीन्हा,
हरि कन्या बल-परिचय दीन्हा।
कुल-बालक अर्जुन मन जानी,
व्याहव उचित कुंवरी सन्मानी।

श्लो० — हमरे बल पाण्डव बली, हम पाण्डव-बल पाय,
लहि अवसर मगधेश्वरहि, सकिहैं सहज हराय । २३५

सुनि हरि-वचन सबहि संतोष,
बलरामहु त्यागेउ उर रोष।
चितै अनुज-तन पुनि संकर्षण,
कीन्हेउ वचनामृत तहैं वर्षण—
पार्थहि व्यर्थ दीन्ह मैं दोष,
तजहु तुमहु सब निज निज रोष।
सुनि केशव-मुख मित्र-वड़ाई,
एकहि बातः समुक्ति मैं पायी।
सखा, सुपात्र, सुनीति विचारी,
निज रथ हरि अर्जुन बैठारी,
दीन्ह पठाय सुभद्रा-संगा,
नहिं कहूँ हरण, न समर-प्रसंगा!
शैशव ते मैं श्यामहि जानत,
ब्रिनु उत्पात निरस जग मानत।
रचि प्रसंग आपुहि सुरम्भावहि,
आगि लगाय बुझावन धावहि।

श्लो० — चित्रकार जिमि चित्र रचि, निखि लहत आनंद,
तिमि अपनेहि सुख हेतु हरि, करत रहत जग-दंद । २३६

सिक्त सनेह-सुधा बल-वाणी,
सुनत विमुग्ध सभा हर्षानी।

सहहि मगध-अधिपति-सुधि आयी,
 लौटत गृह मुख पार्थ बढ़ाई।
 बजे राजगृह मंगल बाजा,
 साजे भूपति यंतु-साजा।
 सहस स्वर्ण रथ सैन्यव धारे,
 सारथि चतुर साजि सब जोरे।
 साज बहुरि मत्त गजराजा,
 भूमत चलत मन्हूँ गिरिराजा।
 दस सहस्र वर माथुर गई,
 सकल भवण सींगन मदवायी।
 वसन, विभूषण, धान्य अपाया,
 बहु मणि, रत्न, हेम-भण्डारा।
 रामहि सौपि कहैउ महाया—
 “आवहु इन्द्रप्रस्थ पहुँचाया।”

बोद्धा :— हर्षित हलधर हठि बहुरा, लीन्ह अनुज निज साथ,
 यौतुक संपात लै आमत, गमन कोन्ह यदुनाथ। ३६७

चले सवेग, सैन्य बहु संग,
 जाति मन्हूँ सागर दिशि गगा।
 इन्द्रप्रस्थ पहुँचे जब जायो,
 कीन्ह धम-सुन स्वागत धाया।
 भार अपर महापात द्वारे,
 यौतुक पुरजन लेखत सुखारे।
 भयेंउ विवाह, नगर उत्साहा,
 निरखि कुँवर-छावि हर्ष-प्रवाहा।
 पाय बधू यदुवश-प्रजाता,
 पुनक्ति लेखि मुख कुन्ती माना।
 निरखि स्वरूप, सुशील, सुचाली,
 भागनिहि सम माना पाञ्चाला।
 प्रमुदित पार्थ सुभद्रहि पाथी,
 जनु हरि-प्रीति देह धरि आयी।

नवल नात लहि यदुकुल साथा,
शत गुण सुखी धर्म नरनाथा ।

बोद्धा :— हर्षित निवसे वर्ष भरि, इन्द्रप्रस्थ यदुनाथ,
गृह बन नित्य विहार नव, सुखद धनंजय साथ । २३८

तबहि अग्नि-आग्रह अनुसारा,
हरि अर्जुन खाण्डव बन जारा ।
धनु गाण्डव, निधंगहु अन्त्य,
स्यंदन कपि-ध्वज लहेउ धनंजय ।
बसत अमुर मय तेहि बन माहीं,
शिल्पी जेहि समान जग नाहीं ।
हृष्ट अल करत बन प्रासा,
पहुँचेउ जवहि अमुर-गृह पासा,
भागेउ आकुल सुधि बुधि त्यागी,
भीषण आगी पाछे लागी ।
धाये हरिहु निधन मन ठानी,
सम्मुख चक्र सुदर्शन तानी ।
मृत्यु विलोकि उभय दिशि आयी,
परेउ पार्थ-पद मय अकुलायी ।
शरणागतहि रच्छि विश्वेशा,
लाय पुरा पुनि दीन्ह निदेशा—

बोद्धा :— “धर्म नृपति हित अस करहु, सभा भवन निर्माण,
सकैन राच पुनि जग निखल, जस शिल्पी कोउ आन ।
उपकृत मय मैनाक गार, सु-तहि गवनेउ धाय,
आरंभी अद्भुत सभा, माण्डफाटक बहु लाय । २४०
मयेउ जन्म आभन्यु कर, उर उर हर्ष महान,
जातकर्म निज हाथ करि, फिरे स्वपुर भगवान । २४१

सोरठा —कंस - काल - भौमारि, बाणामुर - रण - मद - दलन ,
 जित-सुरभि-त्रिपुरारि, बंदहुँ यदुगनि चक्रघर ।
 कारा-द्वार उधारि, गच्छेउ राज-समाज जेहि ,
 बंदहुँ हरि भगधार, धर्ममुवन-मन, भीम-भुज ।

दाहा :— विष-द्रुम खल, चंदन सुजन, आतिहरण हरि नाम ,
 भरहि आस विश्वास नव, भरतखण्ड प्रात धाम ।

कृत प्रभात शुचि मंगल काजू ,
 देत द्विजन गोधन यदुराजू ।
 रात्रि महाणव-मगन दिवाकर ,
 शीतल - सुलिल - निवास - मंद - कर ,
 उत्थित भेदि पयोधि-तरंगा ,
 सुरतरु - पल्लव - पाटल रंगा ।

ताहि समय प्राञ्जलि प्रतिहारी,
 प्रणमत प्रभु-पद गिरा उचागी—
 'देव ! कोउ द्विज मगध-निवामी,
 द्वारस्थित दर्शन अभिलषो ।
 आशय विशद, सुमूर्ति, सुवेषा,
 लायेउ कछु निगूढ सन्देशा ।'
 सुननाह दै आयसु जगवदन,
 कीन्हे अनुचर-वृन्द विमर्जन ।
 प्रविशत विप्रहि बहुरि विलोका—
 गति शंकित, मुख अकित शोका ।

बोधा :— मापी हरि स्वागत-गिरा, दान्ह विहँनि अवधान ।
 दृष्ट-दृष्टि लहि प्रभु दरस, बोलेउ द्विज मतिमान— १

“गिब्रज नाथ ! मगध-रजधानी,
 दुर्गस्थित शिव-मठ यश-स्वानी ।
 वंश क्रमागत तासु पुनारां,
 पशमात-सेवक मैं असुगरी ।
 तहाँ आजु महिपाल छियासी,
 जरासन्ध-जित, कागावानी ।
 जो शिव, सुशरण, सर्व-शमकर,
 सब-बंध-माचन, विश्वभर,
 धर्मरूप जो सर्व-भूत-पति,
 नर बलि देन चाहत तेहि मगपति ।
 भवन तासु पावन, उन्नियारा,
 आजु भयद कारा आंधयारा ।
 भोग यातना तहाँ अशेषा,
 निवसन बंदी आर्य नरेशा ।
 बलि पशु मानि सकल व्यवहारा,
 रज्जु-निबद्ध, पात आहारा ।

बोधा :— असह वेदना निशि दिवस, प्राण-मात्र अक्शेष,
 पठयेउ भोहि प्रभु पास तिन, दीन्हेउ यह सन्देश— २

मृतक-कल्प हम पुण्यहोन जन,
 प्रणन नाथ-पद करन निवेदन ।
 मनुज-अयोगति मनुजहि हाथा,
 अब लगि अम न सुनी यदुनाथा !
 जम गहि रण-महि कारा डारी,
 कीन्ह मगध-अवनोश हमारा ।
 अरि निज सगर शूर नसावत,
 प्राण-दण्ड अग्राधिह आवत ।
 यज्ञ पशुहु हित श्रुति-संरक्षण,
 मृत्यु यत्रणहि लहत कछु न क्षण ।
 पै इक मगपति-इच्छा त्यागी,
 नहि श्रुति नीति गीति हम लागी ।
 कोरा कल्पनातत हमारा,
 अन्तर्वाह्य सान्द्र अधियाग ।
 उर चिर बगन व्यथानल भारी,
 नयनन सतत वेदना-वारी ।

निशि-दिन निद्रा-जागरण, ऋतु सब एक समान,
 होत वेद-मात्र ते, तन नज प्रणन भान । ४

मनुज विधाता दोउन-विष्मृत,
 हम इक नाथ-नाम-बल जाबित ।
 सुनेउ रैवनरु-गुहा निवास,
 हरि कहार बल-विक्रम-राशा ।
 अस्म-आत स्वर परतहि श्रवणन,
 घावत लाँघत शैल सिधुवन ।
 स्वगपति-जव, लय-वारिद गजन,
 तीक्ष्ण नखाकु चक्र सुदर्शन ।
 विद्युत मण्डपनि, वज्राघाता,
 आततायि-अन्तक, जन-त्राता -
 अस प्रभु-कीति निखिल महि व्यापी,
 कौनत कृष्ण-नाम सुनि पापी ।

विन्द तुम्हार ! असुर-मद-गंजन,
दलित, दान, निज जन-भय-भंजन ।
तुमहु हमहि नहि नाथ ! बिसारहु,
बूझत जन गहि हाथउ बारहु ।

श्लोकाः— नाथ-नाम रसना वसत, मानस निशि दिन ध्यान,
सुनन चहत पद-चाश्रुति, विरमे कहँ मगवान । ५

मुनि सदेश विह्वल भव मोचन,
भूषित करुणा-वारि विलोचन ।
विप्रहि दै परितोष पठावा,
स्यंदन साजि सारथी लावा ।
सहचर उद्धव सात्यकि साथी,
गवने सभा-भवन यदुनाथा ।
रथ मंगल-मय मूर्ति निहारी,
पथ बीथिन जन-जय-ध्वनि भारी ।
सभा ससंभ्रम छेउ समाजा,
पौर, अमात्य, स्वजन, महाराजा ।
गुरुजन-पदवंदन प्रभु बीन्हा,
अग्रसेन अर्धामन दीन्हा ।
सभासीन शोभन यदुगाजू,
सुरगण मध्य मनहुँ सुराजू ।
मंगल वाद्य सहित श्रुति मंत्रन,
राज-काज आरभेउ द्विजजन ।

श्लोकाः— अमृत विश्व ताही समय, नारद अमर मुनीश ।
प्रकटे सहसा यदु सभा, घाय मिले जगदीश । ६

प्रणत देवि ऋषि-पद यदुराजू,
भरेउ सप्रीति भुजन मुनिराजू ।
भेंटत श्यमहि सोइ मुनीशा,
जनु उदयाद्रि उदित रजनोशा ।

हम-रत्न-आसन बठाया ,
 पूजेउ सर्वाधि मुनिहि यदुरायी ।
 मुनिवर-हस्त कमण्डलु पावन ,
 पूर्ण तीर्थ-जल कलुष-नसावन ।
 प्रेम पुत्तकि मुनि करतल धारी ,
 सीचेउ हरि-मस्तक शुचि वारी ।
 भाषेउ प्रभु—“लहि दशन आजू ,
 नष्ट निखिल मम अघ मुनिराजू !
 ज्ञान-प्राण तुम प्रेम सदेहा ,
 युग-युग ते मम सुहृद, सनेहा ।
 जदापि तुमहि नहि राग न द्वेषा ,
 सहत निरंतर जग-हित क्लेशा ।

बोद्धा :—करत कृपा मुनिनाथ ! तुम, आगत जब मम पास ,
 मानत असुरन-नाश हित, मैं तोह पूर्वाभास ।” ७

विहँसे मुनि मुनि गिरा उचारी—
 “अकथ कथा सब नाथ ! तुम्हारी ।
 धरणा-भार उत्तारन-कारण ,
 धरत मनुज तनु तुम जग-तारण !
 भवानीत तुम आजु समाया ,
 सपितु, समातु सभ्रात, सजाया ।
 आत्मज, पौत्र प्रपौत्र, सजाती ,
 राज्य, प्रजा, बल, सुहृद, अराती ।
 निवसत महि माया विस्तारे ,
 मर्ग प्रवृत्ति मनहुँ बपु धारे ।
 ध्यान-अगम्य कहति श्रुति जोई ,
 चर्म-चक्षु देखत जग सोई ।
 निरखि विश्व आचरण तुम्हारा ,
 सीखत धर्म, लोक-आचारा ।
 आपुहि स्वेच्छा असुर नसावत ,
 औरन सतत निमित्त बनावत ।

दोहा :— धिरति सघन रञ्जनी जवाहि, व्यापि मही अकाश,
बिनु शशि सकत कि नासि तम, अयुतन नखत-प्रकाश । ८

धरि बहु पूर्व समय अवतार,
असु-वृन्द जो प्रभु सहारा ।
भानत जरासध तिन आगे,
हिमगिरि-पार्श्व सह्य जमि लागे ।
कहाँ हिरण्यकशिपु दशशीशा !
कहाँ मगधेश, चेदि-अवनीशा !
विचि सघ इन शक्ति बढ़ायी,
भये धर्म घातक दुखदायी ।
संघ-शीश मगधेश भुगला,
भुज युग दंतवक्र शिशुगला ।
शाल्व व्योमचर उदर समाना,
अग विभिन्न अन्य नृप नाना ।
हते मगध-महीपनि तिन माहीं,
मस्तक-रहित जियहि तनु नाहीं ।
नासहु सत्वर अव तेहि स्वामी,
बहु दिन जियेउ पाप-पथगामी ।

दोहा — आतुरता प्रभु ! मम छमहु, धर्मराज दिग जाय,
राजसूय कतु हेतु सब, आयेउँ मैं समझाय ।” ९

मुनि मुनि-वचन हँसे भगवाना,
“नारद मम नारद, नहि आना !”
दून धर्मसुत तेहि क्षण आवा—
‘इन्द्रप्रस्थ नृप हाँहि बोलावा’ ।
मुनि तन लखत पढ़त पुनि पाती,
आनंद-पुनिकत असु-अगती ।
गगन-मागे गवने मुनिगयी,
हेरे यदुजन दिशि श्दुगयी ।
कह उद्धव, मुनि उचित विचार,
याह विधि सहजहि अरि-संहार ।

सोइ नृप राजसूय अधिकारी,
नृपति जासु सब आज्ञाकारी।
भोगत सो पद मगपति आजू,
नत मस्तक सब राज-ममाजू।
दिनु तेहि हते समर-महि माहा,
धर्म सुवन-मख संभव नाही।

शेखाः—शक्तिमंत सब पाण्डु सुत, तांह पै आपु सहाय,
मम मत, मख-मिस हम सकत, १२ पुनिज आजु नसाय ॥ १०

नुभिन सुनत भाषेउ संवर्षण—
गावत काह पाण्डु सुत गुण-गण !
ददुर्वंशिन-अरि मगध नरेशा,
तजउ तासु भय हम निज देशा।
प्रबल आजु हम पुनि सब भता,
सकत स्वबल निज नासि अगता।
करहि जो भरतवंश यह बाजू,
होइहै सोइ भारत-आधिगजू।
छांचत पाण्डु पुत्रन पै प्राता,
छांचत न निज कुल संग अनीता।
अत प्रिय कुन्ती सुत मांहि सारे,
सहजहि यदुजन अधिक पियारे।
सकत सोइ मगधेश नसायी,
करहि जासु हरि आपु सहायी।
मम मत प्रथम छांचत कुल-सेवा",
अस काह मौन भये बलदवा।

शेखाः—प्रमुदित कृतवर्मा सुनत, भाषे उठि सोइ बैन,
स्वजन संकुचित वृत्ति लाख, नत-शर पकज-नैन ॥ ११

निरखे यदुवंशिन यदुवीग,
हृदय विषाद, वदन गम्भीरा।

शोच-निमग्न कहत कछु नाहा,
व्यापी भीति स्वजन मन माहीं।
प्राञ्जलि सात्यकि गिरा उचारी—
“छमहु जो कछु प्रभु ! चूक हमारी।”
बलरामहु मृदु वचन सुनावा—
“ऐतिक क्लेश तात ! कस पावा ?
सूफेउ मोहिं सोइ मैं भाखा,
करिहौ सोइ जो कान्ह रचि राखा।
प्रेम-पयोनिधि व्यथा बह या,
पावन वचन कहे यदुरायी—
“एकहि नीति तत्व मैं जाना—
हेतु समष्टि व्यक्ति-बलिदाना।
स्वजनहि बसत जासु मन माहीं,
सबत धर्म-हित तोह ते नाहीं।

दोहा:— चहत करन यदुवंश जो, असुर-शक्ति अवसान,
आर्यन - संस्कृति - अभ्युदय, पूर्ण धर्म-उत्थान, १२

आत्म-समृद्धि-यत्न तौ त्यागी,
होहु भरतकुल-हित अनुरागी।
युग युग भारतवंश-महाराजा,
भये चक्रवर्ती अधिराजा।
धर्मराज-पद नावत मा ।,
लजिहै कोउ न आर्य नरनाथा।
त्यागि मोह सोचहु मन माहीं,
यह यदुवंश-अवस्थिति नाहीं।
मिलिहै हमहि न रुढ़ि-सहारा,
केवल बल न चलत आधिकारा।
जहँ औदाय शौर्य सँग निवसत,
विजय विभूति बसहि तहँ शाश्वत।
परिग्रह-प्राद-गृहीत सुद जन,
सकत कि साधि महत आयोजन ?

सर जो बहुत उदार अभिलाषा,
उचित तजब साम्राज्य-पिपासा।

बोद्धा — बृहत् आर्य-हित माहि जो, क-हि स्वहित हम लीन,
भारत-माहि ते नमिष महँ, होइहैं असुर विल्लान । १२

यहि विधि बोधि स्वजन भगवाना,
कीन्ह युधिष्ठिर-पुत्री प्रयाणा।
तजि आनर्त, नाँधि सौवीरा,
मरुथल पार कीन्ह यदुवीरा।
कालिन्दी-तट नेह-विहाला,
आय मिलेउ हरि धर्म भुआला।
मिले पञ्च पाण्डव भगवाना,
भेटे जनु पञ्चेन्द्रिय प्राणा।
अभिनन्दन-स्वर, श्रुति-ध्वनि साथी,
धलेउ लिवाय हरिहि नरनाथा।
यमुना ते नृप-गृह पर्यन्ता,
स्वागत साज समाज अनन्ता।
भूषित वीथी, चत्वर, आपण,
छादित पथ वितान, ध्वज, तोरण।
नृप-सम हरि-अनुरक्त प्रजाजन,
प्रति पद सुमन-प्रवर्षण-पूजन।

बोद्धा — प्रविशि राजप्रासाद प्रभु, लही पृथा-आसीस,
मेटि सुभद्रा द्रौपदिहि, मोद-मगन जगदीश । १३

कृनस्नान, भोजन विश्रामा,
सुख-आसीन निरखि सुख-धामा,
सादर धर्म-सुवन दिग जायो,
हिय अभिलाषा हरिहि सुनायो—
“नाथ ! सभागृह देखन लागी,
आये पुर नारद अनुपामी।

आवदित-गात सहसा मुनिराऊ,
 कीन्हेउ राजसूय प्रस्ताऊ।
 तब ते अनुज, अमात्य, अमजन,
 करत निरंतर सत्र-चिन्तवन।
 दिन प्रति बढ़ति जानि अभिचाषा,
 मोहि न नाथ ! निज बल विश्वा मा।
 निगखि स्वजन-हठ. निज कदराई,
 पाता द्वागवती पठायी।
 कोउ स्वार्थवश. काउ वश प्रीती,
 मोह प्रशंसत काउ वश भाती।

श्लोक :— जानत तुम सब नाथ ! मम, वसुधा, वाहिनि कोष,
 अन्तर्यामी प्रात प्रकट सकल युधिष्ठिर-दोष । १५

राजसूय अधिकारी सोई,
 सार्वभौम जो भारत हाई,
 मिलत जाहि चहुँ दिशि सन्माना,
 विभव जासु अमरेश समाना,
 चारिउ वण सुखी जेहि राजू,
 विगत ताप त्रय मनुज. समाजू।
 मोहि भरोस नाथ ! निज नाही,
 संशय सहस उदित मन माहीं।
 प्रभु सब भाति मोर हितकारी,
 विमल विवेक, बुद्धि. बलधारी।
 मद, मत्सर, ममतादिक त्यागी,
 संतन नाथ ! सत्य-अनुरागी।
 कबहुँ न मानस व्याप्त विकारा,
 सदा एकरस हृदय तुम्हारा,
 संगल-मूल नाथ-उरेशू,
 शब्द शब्द जग-क्षेम-संदेशू।

श्लोक :— धरि तनु तुम सार्थक करत, वाणी वेद पुराण,
 देहु सोइ उपदेश मोहि, होय भुवन-कल्याण । १६

भरित अनन्य भक्ति नृप-वाणी ,
भाषे हरिहु वचन सुख मानी—
“पूर्व समय यहि भारत देशा ,
सार्वभौम बहु भये नरेशा ।
त्यागि राजकर नृप मान्धाता ,
भये चक्रवर्ती विख्याता ।
अनुसरि तिनहि, रिझाय समाजू ,
लहेउ भगोरथ पद अधिराजू ।
तप-बल कार्तवीर्य सोइ पावा ,
धन-बल ताहि मरुत अपनावा ।
पूर्व पुरुष पुनि भरत तुम्हारा ,
भुज-बल जीति भुवन यह सारा ,
भयेउ राजराजेश्वर नामी ,
एकछत्र नृप, वसुधा-स्वामी ।
एक एक गुण-बल ये महिपति ,
भये छत्रपति भारत-अधिपति ।

दोहा :— जन-मत, तप, धन, बाहुबल, तुम चारिउ गुण-गेह ,
भीमार्जुन माद्री-तनय, जनु दिक्पाल सदेह । १७

चारिउ अनुज जाय दिशि चारी ,
करिहैं स्ववश मही यह सारी ।
होइहै सफल असंशय यागा ,
एकहि कार्य कठिन मोहि लागा ।
जरासंध जग आजु प्रतापी ,
गर्वित, मत्त, धर्म-संतापी ।
सकल आर्य-कुल समर पछारी ,
भोगत एकछत्र महि सारी ।
सुहृद अभिन्न तासु शिशुपाला ,
शिष्य-सदृश कारुष भुआला ।
सदा सहायक शाल्व कुचाली ,
बहु विमान-स्वामी, बलशाली ।

मम संबंधी विदर्भ-अधीशा ,
 अन्यहु बहु यादव अवनीशा ,
 भीति-ग्रस्त मगपति-अनुयायी ,
 सतत समर-महि तासु सहायी ।

दोहा :— हमहु आक्रमण-ग्रस्त नित, अंत तासु भय भागि ,
 वसे स्वजन सह वारिनिधि, जन्म-मही निज त्यागि । १८

मगपति सकल त्यक्त मर्यादा ,
 चहत समूल धर्म अवसादा ।
 समर-मही बहु नृप संहारे ,
 गहि रण अन्य बंदि-गृह डारे ।
 नर-बलिदान-ठान शठ ठानी ,
 पशु-सम हनन चहत अभिमानी ।
 अद्यावधि अवनीश छियासी ,
 राखे करि बंदी अघराशो ।
 लहत चतुर्दश अन्य भुआला ,
 करिहैं खल नरमेध कराला ।
 भारत-महि करि धर्म विकासा ,
 क्रम-क्रम ऋषिन पशुत्व विनासा ।
 कुरुणा आर्य-धर्म-आधारा ,
 मानव-सम पशु सँग व्यवहारा ।
 ताहि नसाय चहत मगनाथा ,
 वृत्ति पाशाविक मनुजहु साथी ।

दोहा :— भीषण यह संस्कार-पतन, सकहि जो रोकि नरेश ,
 गइहैं शाश्वत तासु यश, दया-धाम यह देश" १९ ।

चिन्तित सुनि अति धर्मन रेशा ।
 कहेउ अजेय जानि मगधेशा—
 “जगसंघ जब अस बलवाना ,
 तजेउ समर आपुहि जगवाना ,

सकत ताहि तब को संहारी ?
स्वप्नहिं मख-अभिलाष हमारी ।”
भाषे सुनि हरि वचन सप्रीती—
“उचित न तात ! धरब उर भीती ।
रचे विरंचि पाप जग नाना ,
भीति समान न गहित आना ।
भीति सकल अघ-अवगुण-मूला ,
प्रकृति आपु कातर-प्रतिकूला ।
छमत ईश बहु अघ नर माहीं ,
छमत कबहुँ कायरता नाहीं !
काल असीम, विपुल यह महितल ,
भीरुहिं सुयश न कबहुँ काहु थल ।

बोधा :—निश्चित मृत्यु मुहूर्त जो, सकत ताहि को टारि ?
जो नहि निश्चित, जानि को, कब केहि जइहै मारि ? २०

दुहु विधि व्यर्थ मृत्यु हित शोचू ,
धरत भीति उर मनुजहि पोचू ।
तेज, नीति, धृति-युत नररायी ,
कालहु सकत सयुक्ति हरायी ।
दल बल विपुल मगधपति पासा ,
वाहिनि-युद्ध न मोहिं जय आशा ।
वैयक्तिक विक्रम हम संगी ,
भीम-पराक्रम नहिं अरि अंगा ।
पार्थ समान न सो धनुधारी ,
निश्चित तासु युग्म-रण हारी ।
जदपि नीति विद् मगध नरेशा ,
दोष तासु अभिमान अशेषा ।
युग्म-युद्ध-आह्वान हमारा
करिहै हठि मदान्ध स्वीकारा ।
सहजहि यहि विधि मेदि उपाधी ,
सकिहै करि हम मख निर्व्याधी ।

शोहा :—भीमार्जुन जो देहु मोहि, तजि भय, भ्रम, सन्देह,
मगध-महीपति मैं हतहुँ, मगध - महीपति - गेह ।” २१

मुनि भाषी नृप गिरा सोहायी—
“माँगत केहिते का यदुरायी !
पाण्डु-सुतन तन, मन, धन, प्राणा,
अर्पित पाद पद्म भगवाना ।
जियन चहत हम गोविंद साथा,
मृत्यु पियारि बिना यदुनाथा ।
भुक्ति मुक्ति मम तुमही स्वामी !
जानहु सो सब अन्तर्यामी ।”
अस कहि नृप दोउ अनुज बोलायी,
हरि-मंतव्य कहेउ समुझायो ।
पुलकित सुनत सुमत दोउ वीरा,
फुरत भुजा जनु समर-अधीरा ।
सौपेउ हरिहिं धर्मसुत अनुजन,
बंधु-सनेह बहेउ भरि नयनन ।
प्रीत सराहि, बोधि हरि राजा,
साजे गिरिव्रज-यात्रा साजा ।

शोहा :—वसन उपकरण लहि सकल, वेष स्नातक धारि,
गवने मगध-प्रदेश दिश, पाण्डु-सुवन, असुरारि । २२

त्यागत कुरुजाङ्गल, पाञ्चाला,
प्रविशे कोशल देश विशाला ।
सरयु, शोण, जाह्नवी पारा,
निरखेउ प्राच्य प्रदेश प्रसारा ।
गिरिव्रज-पुरी बहुरि नियरानी,
धन-जन-स्नानि, मगध-रजधानी ।
ऋषि, ब्राह्म, चैत्यक, वैहारा,
वृषभ, पंच गिरि जनु प्राकारा ।
करत सार्थ मिलि ‘गिरिव्रज’ नामा,
निर्भय नगर शौच-श्री-धामा ।

लखत शैल-कटिमहि मनमोहन,
 कीन्हेड श्याम शिखिर आरोहण ।
 लता, कुञ्ज, मञ्जरि-मय कानन,
 गुञ्जत भृंग, मंजु खग-कूजन ।
 फुल्ल विपुल अबुज-रज-रञ्जित,
 शोभा-सीव सरोवर सुरभित ।

कथा :— निरखे पुनि नृप प्रमदवन, रम्य विपिन, आराम,
 शैल-गर्म-उत्कीर्ण बहु, क्रीड़ा गृह अभिराम । २३

शैल-लग्न पुनि नगर विलोका,
 महि अवतरित मनहुँ सुरलोका ।
 गोपुर खगपति-पंख समाना,
 राजभवन जनु हिमगिरि आना ।
 छद्म वेष भीमार्जुन साथी,
 परिखा पार कीन्हि यदुनाथा ।
 पुरी प्रधान द्वार पुनि जायी,
 लखे विपुल रक्षक-समुदायी ।
 जानि सज्जग प्रहरी रण-घोरा,
 खोजय संधि फिरे चहुँ ओरा ।
 सहसा चैत्य वृक्ष हरि चीन्हा,
 करि तेहि लक्ष्य गमन द्रुत कीन्हा ।
 लखे धरे तहँ तीनि नगारा,
 बाजत सुवत शब्द पुर सारा ।
 प्रात नित्य धरि चंदन, माला,
 पूजत सविधि मगध-भूपाळा ।

कथा :— गुनि विश्रुत ये सोइ पटह, श्रीहरि-इंगित पाष,
 निमिषहि महँ निरशब्द सब, दीन्हे पार्थ नसाय । २४

लगि प्राचीर चैत्य-तरु जामा,
 भंखेड निरखि भीम बलधामा ।

भयेउ विशाल विवर प्राकारा ,
 कीन्ह पाय पथ पुर पैठारा ।
 लोध, बकुल तरु-अबलि निहारी ,
 बसि तल यापेउ काल सुखारी ।
 ताही समय ओट गिरि-सानू ,
 अथयेउ सहसा पश्चिम भानू ।
 शरद पूर्णिमा विधु आकाशा ,
 उदित विशद भरि भुवन प्रकाशा ।
 लखि अवसर उपनगर विहायी ,
 गये राजपथ-भीर समायी ।
 दीप्त प्रदीप इन्दु-शुति-हारी ,
 जगमग रत्न दिवस उजियारी ।
 राजित मद् गजराज राज पथ ,
 जन-संकुल-कल्लोल, वाजि, रथ ।

बोद्धा :— ललित उल्लिखित व्योम गृह, निशि विलास रस रंग ,
 पहुँचे नृप-प्रासाद ढिग, पाण्डु-भुवन, श्रीरंग । २४

करि मन्दिर गोपुर-अधिरोहण ,
 उत्तरे तीनहु नृपगृह-प्राङ्गण ।
 करत सुमन-तरु-वीथिन पारा ,
 सहसा नृप समक्ष पगु घारा ।
 पूछेउ चकि नृप रोष अशेषा—
 “को तुम ? कस अस कीन्ह प्रवेशा ?”
 सस्मित प्रतिभाषेउ असुरारी—
 “प्रकट वेष ते जाति हमारी ।”
 सुनि नृप नखशिख तिनहि निहारा ,
 आत्म-प्रीत हँसी वचन उचारा—
 “उच्च शरीर, तेज मुख धारे ,
 वक्ष विशाल, नयन रतनारे ।
 भुज प्रत्यंचा चिन्ह सोहाबे ,
 तुम क्षत्रिय द्विज-वेष बन्धये ।

दुरनुष्ठित-मन, दण्डनीय जन,
आये सन्मुख विनु अनुशासन।

दोहा:—नासी नृप मर्याद तुम, करि यहि भाँति प्रवेश,
कुशल न अब भाषे अनृत, कहहु काह उद्देश ?” २६

दीन्हेउ उत्तर हरि मतिमाना—
“सत्य तुम्हार नृपति अनुमाना।
ये दोउ वीर भरतकुल-जाता,
अर्जुन भीम नाम विख्याता।
कृष्ण नाम मम, तुम सन नाता,
मातुल मम तुम्हार जामाता।
वैर हमार विदित जग माहीं,
आयेउँ रण-याचन तुम पाहीं।”
मर्मस्पर्शि गिरा हरि केरी,
सुनी अवनिपति नयन तरेरी।
बोलेउ पुनि सगर्व मगराजा—
“रंचहु कृष्ण ! न तुव उर लाजा।
समर त्यागि, आनर्त परायी,
बसेउ वारिनिधि जाय दुरायी।
बहुरि विदर्भ हरी पर नारी,
भागैउ आपु बंधु रण डारी।

दोहा:—माया-शत अभ्यस्त शठ, कपटी कायर साथ,
करत न रण वीरामणी, भारतमहि-अधिनाथ ।” २७

मन मुसकाने सुनि श्रीरंगा,
कहे वचन मृदु मिश्रित व्यंगा—
“मम हित जो कछु सुमति तुम्हारी,
पहिलेहि ते निज हृदय विचारी,
लायेउँ सँग भट रण-अनुरागी,
इन नहि कबहुँ समर-महि त्यागी।

विश्रुत वंशज, माया-हीना,
दोउ तुमहिं सम समर-प्रवीणा।
मोहिं भरोसा युद्धत इन साथी,
लज्जिहै नहिं भारत-अधिनाथा।”
सुनत वचन नृप उर रिस छायी,
लखेउ पार्थ दिशि भृकुटि चढ़ायी।
अभय धनंजय वचन सुनावा—
“तुम नृप ! पाप-पंथ अपनावा।
करि बंदी पशुवत् नृप नाना,
करन चहत तुम नर-बलिदाना।

दोहा :—करहु मुक्त महिपाल सब, जाहिं सुखी निज धाम,
नाहित योचत मै समर, करहु युगम संग्राम।” २८

सुनि मगधेश न उत्तर दीन्हा,
पूछेउ भीमहिं सम बल चीन्हा—
“कहहु काह उद्देश तुम्हारा ?
केहि कारण गिरिब्रज पगु धारा ?”
भाषेउ भीम, “मोहिं अभिमाना,
भुवन न मम समान बलवाना।
सोई गर्व तुम्हरे मन माहीं,
युद्ध विहाय अन्य गति नाहीं !
समर हेतु आयेउँ मगधेशा !
नहिं परमार्थ मोर उद्देशा।”
सुनत सदपे वृकोदर बाणी,
कहेउ मदान्ध सहज अभिमानी—
“कपटी, कुटिल, कृष्ण हतभागा,
बंधु तुम्हार मूढ़ मोहिं लाग्गा।
शूर-प्रकृति तुम मोहिं अति भाये,
सत्रोचित शुचि वचन सुनाये।

दोहा :—अतिथि रूप इन संग तुम, बसहु निशा मम धाम,
बाहु प्रात यम-सद्व पनि, करि मो संग संग्राम।” २९

अस कहि अतिथि भवन दै वासू,
 गर्वित गयेउ नृपति रनिवासू।
 इत मगपति-अघ बरनि अपारा,
 भीमहिं हरि भरि रैनि उभारा।
 कृत प्रभात समरोचित वेषा,
 आयेउ भीम समीप नरेशा।
 मुनि निशि-वृत्त नगर उत्तेजन,
 जुरे मल्ल-महि विपुल पौर जन,
 वीर भुजायुध वाद्य-प्रचारे,
 उत्तरे द्रुत दुर्दान्त अखारे।
 कर्कश वक्ष बाहु शैलोपम,
 कुशल मल्ल दोउ सम-बल-विक्रम।
 चढ़ी भृकुटि करतहि अभिवादन,
 भिरे धाय मद-शोण विलोचन।
 लागे लरन युगल ललकारी,
 उत्थित ताल-बाहु-रव भारी।

श्लोकाः— जानु-मुष्टि-संघट ते, बाढ़ेउ भैरव रोर,
 फूटत शिला विशाल जनु गिरत वज्र जनु घोर। ३०

कर्षि गहत दोउ एकहिं एका,
 करत घात-प्रतिघात अनेका।
 भरि युग बाहु बहुरि बिलगाहीं,
 'उरोहस्त' डारहिं महि माहीं।
 पाणि-पाणि अँग-अंगन मारी,
 ऋपटत, सिमिटत, हटत पछारी।
 गरजत घोर मनहुँ पंचानन,
 छिटकत दृग-अंगार अग्नि-कण।
 युद्धत मनहुँ उदग्र मतंगा,
 श्लोषित स्रवत दीण अँग अंगा।
 दोउ असहिष्णु, जयेच्छा गाढ़ी,
 रण-दारुणता क्षण-क्षण बाढ़ी।

कार्तिक कृष्ण प्रतिपदा प्राता ,
प्रारंभेउ युग रण प्रख्याता ।
दिवस चतुर्दश बिनु विश्रामा ,
भयेउ महा भीषण संप्रामा ।

दोहा :— निशा चतुर्दिशि भीम लखि, कछुक श्रान्त मगराय ,
ऋपटि प्रभंजन-वेगि गहि, लीन्हेउ शत्रु उठाय । ३१

विकल बार शत अधर भँवायी ,
पटकेउ महि बल सकल लगायी ।
जानु-प्रहार मेरु करि घोरा ,
मर्दि अस्थि-पंजर अरि तोरा ।
गहि दोउ चरण, चीरि करि खण्डा ,
कीन्हेउ गर्जन भीम प्रचण्डा ।
अंग सकल मृत-शोणित लाला ,
व्याप्त रौद्र रस बदन कराला ।
भीमहि नरसिंह-वेष निहारी ,
भागे पुरजन 'पाहि' ! पुकारी ।
मगधनाथ-शव हरि उठवाबा ,
सादर राजद्वार रखवाबा ।
व्याप्त नगर कोलाहल भारी ,
आशा भीति विवश नरनारी ।
हतमति त्रस्त सचिव सब परिजन ,
छायेउ घोर राजगृह क्रन्दन ।

दोहा :— मगध महीपति जेष्ठ सुत, सहदेवहि लै साथ ,
सकल नृपोचित मृत-क्रिया, करवायी यदुनाथ । ३२

रानिन पुनि प्रबोधि भगवाना ,
कीन्हेउ कारा-भवन प्रयाणा ।
बैदिन-द्वार भयी हरि-जय-ध्वनि ,
परेउ श्रवण पद-चाप बहुरि मुनि ।

निशा-विषाद-स्वप्न जनु नासा ,
 निमिषहि माहिं छिन्न सब पाशा ।
 थमेउ हगन दुख-अश्रु-विमोचन ,
 बही मोद-मंदाकिनि लोचन ।
 परे पद्म पद तनु सुधि नाहीं ,
 लाये हरि नृप-मंदिर माहीं ।
 क्षौरस्नान सप्रीति करायी ,
 कीन्हेउ सँग भोजन यदुराई ।
 “आयेउ इन्द्रप्रस्थ मख काजा ,
 दै निदेश पठये गृह राजा ।
 बद्ध नेह-बंधन नररायी ,
 गवने मनहुं जन्म नव पायी ।

दोहा :— रोपि मगध पुनि धर्म-तरु, करि सहदेव नरेश ,
 भीमार्जुन सह हरि जबहि, चलन लगे कुरु देश— ३३

मुदित-हृदय सहदेव सोहावा ,
 पैतृक स्यंदन साजि मँगावा ।
 बाल अरुण सम कान्ति मनोहर ,
 चक्र युगल जनु पूर्ण कलाधर ।
 किंकिणि मानहुं तारक-माला ,
 शक्रचाप-द्युति ध्वजा विशाला ।
 घोष गँभीर मनहुं धन-गर्जन ,
 कीन्हेउ सौपत हरिहि निवेदन—
 “नाथ ! विष्णु कर यहि शुचि स्यंदन ,
 यहि चढ़ि कीन्हे रण जगवंदन ।
 त्रेता बहुरि शचीपति लीन्हा ,
 मम प्रपितामहिं तिन पुनि दीन्हा ।”
 विहँसे सुतन कथा असुरारी ,
 प्रीति विलोकि लोन्ह स्वीकरी ।
 पाण्डु-सुनत सह बसि यदुनंदन ,
 हाँकेउ आपुहि वैष्णव स्यंदन ।

बोहा :— इन्द्रप्रस्थ पहुँचे जयी, सुनेउ वृत्त अवनीश ,
मेटत पुनि-पुनि तनु पुलकि, भीमहि देत असीस । ३४

धर्म-सुतहि हरि स्यंदन दीन्हा ,
किये यत्न बहु नृप नहि लीन्हा ।
भीमहि देन चहेउ यदुनंदन ,
सुनतहि सविनय कीन्ह निवेदन—
“नाथ ! सदा मैं पद-अनुगामी ,
हतेउ मगधपति आपुहि स्वामी ।
मैं निमित्त, यश मिलेउ उदारा ,
रथ पर नाथ ! न मम अधिकारा ।”
लखि औदार्य श्याम सुख पावा ,
विजय-प्रतीक मानि अपनावा ।
शुभ-मुहूर्त पुनि भूप सभागी ,
पठये अनुज दिग्विजय लागी ।
उत्तर दिशि आमेरु धनंजय ,
जीते आर्य स्तेछ नृप दुर्जय ।
पूर्वहि हरि-जित प्राच्य प्रदेशा ,
जीतेउ सहजहि भीम असेषा ।

बोहा :— दक्षिण पश्चिम दोउ दिशा, जीतीं माद्रि-कुमार ,
अंबुधि-वसना वसुमती, धर्म-सुवन जयकार । ३५

लब्ध-मनोरथ यहि विधि राजा ,
आरंभे सब अध्वर-काजा ।
व्यासहि पुरी सशिष्य बोलावा ,
समारंभ तिन सविधि रचावा ।
ब्रह्मावरण आपु मुनि लीन्हा ,
गायक साम सुसामहि कीन्हा ।
याज्ञवल्क्य अध्वर्यु बनायी ,
होता धौम्य पैल मुनिरायी ।
किये होत्रगाता बहु मुनि-जन ,
रची यज्ञ-महि करि सुर-पूजन ।

निर्मायेउ मण्डप सुविशाला,
गूँजी श्रुति-मंत्रन मखशाला।
तब लागि उत नृप दूत पठाये,
चारिउ वर्ण निर्मात्रि बोलाये।
नगर ग्राम नहिं भारत माहीं,
आयेउ अतिथि जहाँ ते नाहीं।

दोहा :—सागर ते गिरि मेरु लागि, प्रजा-पंच, नरनाह,
जुरे धर्मसुत यज्ञ हित, अश्रुत-पूर्व उच्चाह। ३६

महि-दुर्लभ सब लहे निवासा,
जहँ निशि दिवस सौख्य-श्री-वासा।
अद्वि सिद्धि सुरलोक बिसारी,
आर्यी इन्द्रप्रस्थ जनु सारी।
सहित सुयोधन सब कुरु लोगू,
पावन याग दीन्ह निज योगू।
कौरव पाण्डव दोउ परिवारा,
इष्टि-कार्य कीन्हेउ मिलि सारा।
धर्मसुतहु अनुराग बढ़ावा,
दीन्हेउ जाहि कार्य जो भावा।
भोजन-पान प्रबन्ध अपारा,
दुश्शासन सोत्साह सँभारा।
विप्र-वृन्द सेवा सत्कारा,
अश्वत्थामा निज शिर धारा।
नृपतिन स्वागत सुविधा सारी,
लही सचिव संजय सुविचारी।

दोहा :—सौपेउ सविनय नृप कृपहिं, हेम-रत्न-भण्डार,
विदुर विवेकी शीश सब, धरेउ आय-व्यय-भार। ३७

सोरठा :—भावे वचन उदार, प्रतिनिधि करि निज कुरुपतिहिं—
“स्वीकारहु उपहार करद-नरेन्द्र-प्रदत्त तुम।”

भीष्म द्रोण ढिग गवनेउ राजा,
 सौपेउ सर्व-निरीक्षक काजा ।
 कमलनयन ढिग जाय बहोरी,
 बोलेउ धर्म-सुवन कर जोरी—
 “आपहु निज अभिरुचि अनुसार,
 रुचहि जो उचित धरहु शिर भारा ।”
 भाषेउ सुनतहि जगन्निवासा—
 “कहहुँ तात ! निज उर अभिलाषा ।
 आये मखि-हित अगणित ज्ञानी,
 ऋषि, मुनि, साधु योगि, यति, ध्यानी,
 बहु वेदज्ञ, नियम-व्रत-धारी,
 मर्मनिष्ठ, त्यागी, आचारी ।
 करि नित तिनके पद-प्रक्षालन,
 चहत अनन्त पुण्य मैं अर्जन ।
 जो प्रसन्न मोहिं पै नरराजू !
 देहु कृपा करि मोहिं यह काजू ।

बोद्धा :—चकित अवनिपति सुनि वचन, कहत अकथ गति जानि,
 “करहु चहहु जो नाथ ! तुम, यष्टा आपुहिं मानि ।” ३८

मख-शोभा किमि कहहुँ बखानी,
 भारत पुनि न यज्ञ अस जानी ।
 भरतखण्ड राज्यैक्य अखण्डा,
 आर्य-शक्ति-मार्तण्ड प्रचण्डा—
 भये न प्रकट कवहुँ पुनि तैसे,
 लखे न बहुरि देश दिन वैसे !
 आर्य सुसंस्कृति, धर्म अनूपा,
 प्रकटे यज्ञ मनहुँ धरि रूपा ।
 व्योम विमानन अमर विराजत,
 मनुज समाज महीतल राजत ।
 अमरन ते बढि मनुज-समाजू,
 ज्ञान, शक्ति, स्वातंत्र्य, स्वराजू ।

करि षट् वैश्वानर आवाहन ,
दीन्ही आहुति मुनिन समंत्रन ।
पूर्ण यज्ञ पूर्णाहुति साथा ,
परसे गुरुजन-पद नरनाथा ।

बोद्धा :— दीन्ह धान्य, धन, धेनु, मणि, द्विजन यथेच्छित दान ,
तृप्ति मही नर, नभ अमर, व्यास विश्व यश-गान । ३६

बहुरि द्विजेश नरेश समाजा ,
मण्डप अन्तर्वेदि विराजा ।
उठि उठि नृपन भाषि निज नामा ,
धर्म-आत्मजहिं कीन्ह प्रणामा ।
करि जय-जय-ध्वनि, दै उपहारा ,
निज अधिराज कीन्ह स्वीकारा ।
निरखि अखण्ड राष्ट्र-अभिसृष्टी ,
कीन्ह सुरन नभ सुमनन-वृष्टी ।
बहुरि नीति-नय-प्रश्न अनेकन ,
पूछे नृपन, बखाने मुनिजन ।
शोभित मनहुँ मेरु गिरि-शृंगन ,
करत उदात्त अमर रंभाषण ।
तबहिं पितामह अवसर जानी ,
भाषी धर्म-सुवन सन वाणी—
“भये भरत-कुल भूप अनेका ,
विभव-वरिष्ठ एक ते एका ।

बोद्धा :— सुकृती नहि तुम सम भयेउ, अस नहि जुरेउ समाज ,
नृप, महर्षि, राजर्षि सब, समा उपस्थित आज । ४०

पूजे बिनु यह अतिथि-समाजू ,
होत न तात ! पूर्ण क्रतु काजू ।
मित्र स्नातक, गुरु हितकारी ,
ऋत्विज, नृपति अर्घ्य-अधिकारी ।

इन सब यहि समाज पगु धारा ,
 करहु तुमहु समुचित सत्कारा ।
 इनहु माहिं सर्वोत्तम जोई ,
 योग्य अग्रपूजा जन सोई ।
 वीर-समाज मध्य जो वीरा ,
 त्यागी, धर्मनिष्ठ मतिधीरा ,
 संयमशील न जेहि सम आना ,
 धरत परार्थहि जो जग प्राणा ,
 लोक-मान्यता दिशि दिशि जासू .
 पूजा प्रथम करहु तुम तासू ।'
 सुनि समाज-मत जानन काजा ,
 लखेउ सदस्यन दिशि महाराजा ।

शेडा :— सहसा हेरी सब समा, श्रीहरि दिशि सोत्साह ,
 पुरुषोत्तम पूजन चहत, द्विज, मुनीश, नरनाह । ४१

लखि सहदेव मंगध-महिपाला ,
 छटेउ सभा हरि नेह-विहाला ।
 अल्प वयस्क तदपि मति खानी ,
 हरिहि प्रशंसि कही शुचि वाणी—
 “श्रीहरि अछत भुवन त्रय माहीं ,
 मम मत अग्र-पूज्य कोउ नाहीं ।
 ये प्रभु पूर्ण ब्रह्म अवतारी ,
 निवसत महि जन-हित तनु धारी ।
 इन कर कछुक अंश सुर पावत ,
 वंदनीय भरि विश्व कहावत ।
 यज्ञ-याग सब इनहिंन देही ,
 आहुति, मंत्र, हुताशन येही ।
 शुद्ध बुद्ध ये विश्वाधारा ,
 इनते भिन्न न कछु संसारा ।
 पूजत श्रीपति-पद जलजाता ,
 नित्य शचीपति, शंभु, विधाता ।

दोहा :— इनते परे न कर्म कछु, नहि कछु ज्ञान, न ध्यान,
तीनहु लोकन, काल त्रय, अग्र-पूज्य भगवान ।”

गिरा विशद सहदेव उचारी,
मुदित सभा सब ‘साधु’ पुकारी ।
पाय व्यास ऋषि भीष्म निदेशा,
पूजन हरिहिं उठेउ राजेशा ।
अन्तःप्रीत पुलक तनु प्रकटित,
हर्ष-वाष्प-जल लोचन सावित ।
लखात सभा नृप श्रीपति पूजत,
जनु शत जन्म पाप परिमार्जित ।
महां महिप, मुनिजन अनुपामे,
जय-ध्वनि करत भक्ति-रस-पामे ।
सुन दुन्दुभो व्योम बजायी,
बरसे सुमन सभा-महि छायी ।
हरि चरणोदक धरि निज शीशा,
पावन अमर, महीश, मुनीशा ।
नत-पद सभा प्रमोद प्रकर्षा,
एक चेदिपति हृदय अमर्षा ।

दोहा :— हरि-पूजन, जयध्वनि, सुयश, सकेउ न सहि शिशुपाल ।
मुकुट-भंग-भाषण वदन, बोलेउ वचन कराल— ४३

“सुनहु सभासद ! सर्व समाजू !
कीन्ह अधर्म धर्म-सुत आजू ।
अबहुँ बाल सहदेव कुमारा,
जानत धर्म न कुल-आचारा ।
मानि पयोमुख-वचन प्रमाणा,
कीन्ह महीश सभा-अपमाना ।
यहि थल आजु उपस्थित मुनिजन,
अगणित विद्याव्रती, ज्ञानिजन ।
आजीवन वद वेशभ्यासी,
तप-रत वानप्रस्थ संन्यासी ।

योगी, जीवन्मुक्त, विरागी,
धारे देह परार्थहि लागी।
जिन चरणन रज धारत शीशा,
यम, अमरेश, जलेश, धनेशा।
व्यास सहित इन सबहिं विहायी,
पूजि कृष्ण मर्याद मिटायी।

दोहा :— विरहित आश्रम, वर्ण कुल-धर्म-पतित, गोपाल,
स्वेच्छाचारी कृष्ण यह, सिंहन मध्य शृगाल ।” ४४

सुनत चेदिपति-वचन कठोरा,
व्यपेउ रोष, कोलाहल घोरा।
लोचन लाल, बाहु बहु तमके,
निकसि कोष ते आयुध चमके।
हरि-अवमान अधीर भुआला,
धाये क्रोधित जहँ शिशुपाला।
निरखि चतुर्भुज उठि कर जोरे,
सौम्य वचन कहि नृपति निहोरे।
विरमे सहसा सुनि हरि-वाणी,
बसे प्रशान्त वचन सन्मानी।
लखि प्रभाव खल-उर रिस-ज्वाला,
भयी भभकि औरहु विकराला।
धर्म नृपहि पुनि सरुष निहारी,
गिरा कुटिल चेदीश उचारी—
“जानि तुमहि धर्मज्ञ, सुजाना,
बनि हम करद अधाश्वर माना।

दोहा :— तुम जानत यहि कृष्ण-बल, भये राज-अधिराज,
पूजत राज-समाज तोहि, उपजी हृदय न लाज । ४५

शोभित यहि थल नृपति अशेषा,
विद्यमान द्रुम, मद्र-नरेशा।

चलति चमू रज भालु छिपायी,
 कर्ति उत्तरापथ भरि छायी।
 भीष्मक सभा-भवन आसीना,
 भूप सर्व-प्रिय, समर-प्रवीणा।
 अन्य परशुधर जनु जग आजू,
 निखिल दक्षिणापथ अधिराजू।
 शोभित एकलव्य, दुर्योधन,
 मध्यदेश-अवनीश अनेकन।
 इन सब विश्रुत नृपन विहायो,
 पूजत कृष्णहि लाज न आयी।
 वयोवृद्ध नहि भीष्म समाना,
 द्रुपद समान हितैषि न आना।
 गुरु कोउ मही द्रोण सम नाही,
 शूर न कर्ण-सदृश जग माहीं।

दोहा :— ऋत्विज, राजा, वृद्ध, गुरु, शूर कृष्ण यह नाहि,
 समर त्यागि भागेउ विकल, लुकेउ सलिल-निधि माहि।” ४६

मुनि उठि ऋत्विज-प्रतिनिधि रूपा,
 कहे व्यास ऋषि वचन अनूपा—
 “श्रीहरि संग नाम मम लीन्हा,
 उचित न चेदि-अवनिपति कीन्हा।
 राजत जहँ हरि तहँ मम पूजा,
 यहि ते अधिक न पातक दूजा।
 इष्टदेव ये मम भगवाना,
 इन हित मोर योग, तप, ध्याना।”
 अस कहि हरि ढिग व्यास मुनीशा,
 जाय धरी पदरज निज शीशा।
 लखि कृष्णद्वय प्रेम-सम्मिलन,
 कीन्ही जय-ध्वनि हर्षित मुनिजन।
 पुनि भीष्मक, द्रुम, शल्य नरेशन,
 प्रकटो विपुल प्रीति प्रभु-चरणन।

द्रोणहु कहेउ विहँसि हरि हेरी,
“बालक-बुद्धि चेदिपति केरी।

दोहा :— कीन्ह गुरुत्व बखान मम, राखेउ उर नहि ध्यान,
पाँच सात जग शिष्य मम, ये जग-गुरु भगवान् !” ४७

भीष्महु कहेउ चेदिपति पाहीं—
“यह मगधेश सभा-ग्रह नाहीं,
करि तुम जहाँ हास उपहासा,
कीन्ह स्वजाति स्वधर्म विनाशा।
निवसे आर्य-सभा तुम आजू,
तजे विवेक सरहि नहि काजू।
पूजा-हित लै नाम अनेकन,
चहत सभा भ्रम-भेद प्रसारन।
सिखये पाठ मगधपति जेते,
करत प्रयुक्त रहत तुम तेते,
विदित न तुमहि मगधपति साथ,
नासी असुर-नीति यदुनाथा।
अब वह असुर-संघ कहँ नाहीं,
जन्मेउ आर्य-संघ महि माहीं।
रंचहु हृदय न मम विद्वेषा,
हितकर देहु तुमहि उपदेशा—

दोहा :— नव भारत, नव तंत्र महँ, चहुहु जो सकुशल वास
आर्य-शील-संयम गहहु, तजि विरोध, उपहास

शिशु सहदेव, न तौ कछु हानी,
कही गँभीर सत्य शुचि वाणी।
बाल, वयस्क, वृद्ध, नृप, दासू,
सबन हस्त सम दीप-प्रकाश।
अद्वितीय यदुपति श्रुति-ज्ञाना,
अस तत्त्वज्ञ जगत नहि आना।

योगी तपी, नियम-व्रत-धारी,
जीवन्मुक्त तदपि आचारी ।
जदपि सर्वतोऽजयी, शान्त-मन,
कहूँ अस शौर्य शान्ति-सम्मेलन ?
हरि पुरुषोत्तम, विभु, भगवाना,
प्रति निश्वास विश्व कल्याणा ।
पूजनीय ये त्रिभुवन माहीं,
इनते श्रेष्ठ कतहुँ कछु नाहीं ।
सो सब जानि कृष्ण द्वैपायन,
कीन्हेउ हरि-यश श्रीमुख गायन ।

दोहा :— सुचि वेदव्यामहु बचन, जो नहिं तुमहि प्रमाण,
निश्चय तुम्हरे हेतु कछु, रचि राखेउ भगवान ।” ४६

लागो खलहिं न प्रिय हित-वाणी,
पुनि विष-वचन कहे अभिमानी—
“भीष्म ! तुम्हार बुद्धि-बल, ज्ञाना,
आजुहि सभा माहि मैं जाता ।
संतत मुखापेक्षि पर केरे,
यावज्जीवन तुम पर-चेरे ।
निज गौरव उर कबहुँ न व्यापा,
करत परभुति जीवन यापा ।
का अचरज जो लाज विहायी,
गोप-कीर्ति तुम गाय सुनायी ।
व्यर्थ धर्म अभिमान तुम्हारा,
व्यर्थहि ब्रह्मचर्य व्रत धारा ।
पौरुष-विरहित कथन तुम्हारा,
पौरुष-हीन सर्व व्यवहारा ।
गति मति आजु तुम्हारि निहारी,
उपजत संशय उर मम भारी ।

दोहा :— रचि प्रपंच वंचेउ जगन, मिथ्या धर्म-धमण्ड,
ब्रह्मचर्य मिथ्या सकल, त्याग-वरति पाखण्ड ।” ५०

सुने वृकोदर वचन कराला,
सहजहि रक्त दृगन रिस ज्वाला।
भाल विशाल सजग सब रेखा,
भयी वक्र भू वक्र विसेखा।
भीषण ओष्ठ विखण्डित दशनन,
कपटे भीम करत गुरु गर्जन।
घाय भीष्म गहि कीन्ह निवारण—
“वत्स ! सभा यह, नहि समराङ्गण !”
लखि, करि अट्टहास विकराला,
बोलेउ पुनि अशंक शिशुपाला—
“काह भीम ! मोहि आंखि दिखावत,
केहि तुम गरजि तरजि डरपावत।
करि छल जरासंध संहारी,
शौर्य-गर्व बाढ़ेउ उर भारी।
बधेउ न तुम मगपति रण रंगा,
जानत मैं सब कपट-प्रसंगा।

बोहा :— बिवर पुरी-प्राकार करि, बनि द्विज कीन्ह प्रवेश।
हत्यारे तुम, वीर नहि, हतेउ गुप्त मगधेश। ५१

यहू माहि नहि भीम-बड़ाई,
सब पापिष्ठ कृष्ण-अधमाई।
कहत भीष्म जेहि विभु-अवतारा,
तेहि सम जग न अन्य हत्यारा।
नारी-हत्या कर्म कठोरा,
कहत ताहि श्रुति पातक घोरा।
कीन्हे हरण पूतना-प्राणा,
तदपि न वीर कृष्ण सम आना।
को अस आर्य आजु यहि देशा,
देत धेनु-वत्सहि जो क्लेशा।
वत्सहि जदपि अधम संहारा।
तबहूँ कृष्ण धर्म-अवतारा।

निखिल नीति-नय-बन्धन तोरी,
कीन्ही ब्रज यहि घर-घर चोरी।
नाचेउ गोपिन सँग बनि नारी,
तबहूँ कृष्ण विष्णु अवतारी!

बोझा :—सहि न सकहुँ यहि ते अधिक, छल, अनीति, अविचार,
अबहि निपातत मैं लखहु, चोर, जार, हत्यार ! ५२

अस कहि काढ़ि तीक्ष्ण करवाला,
घायेउ श्रीहरि दिशि शिशुपाला।
लखतहि उठी सभा सक्रोधा,
घाये शस्त्र-सुसज्जित योद्धा।
पाण्डव, द्रोण, भीष्म, मद्रेशा,
भीष्मक, द्रुपद, विराट नरेशा,
संकर्षण सह यादव वीरा,
बेरेउ चैद्यहि रोष-अधीरा।
छायेउ भीषण सभा खँभारा,
समुझायेउ हरि, बहुरि निवारा।
भयो सभा जब शान्त गँभीरा,
भाषी धीर गिरा यदुवीरा—
“कहे चैद्य दुर्वचन अनेकन,
सुने सकल मैं, रोष न मम मन।
करत जबहि कोउ मम उपहासू,
परखत मैं निज यम-अभ्यासू!

बोझा :—साधु-सुजन-निदा तदपि, सहि न सकहुँ पल एक,
कहे पितामहि चेदिपाति, वचन अवाच्य अनेक। ५३

करि अनार्य-संगति नित वासा,
बुद्धि विवेक सकल खल नासा।
सद्गुण-अवगुण, धर्म-अधर्मा,
पाप-पुण्य, सत्कर्म-कुकर्मा,

सकत न अन्तर शठ पहिचानी,
गत-विवेक पशुवत् यह प्राणी।
पितु हित भीष्म जन्म-सुख त्यागा,
सो पाखण्ड अधम वहाँ लागा!
ब्रह्मचर्य पुरुषत्व-अभावा!
स्वजन-प्रेम दासत्व कहावा।
गुण-प्रादकता पर-गुण-गायन!
नाश-निवारण समर-पलायन!
सुकृत सकल यहि पार लखाहीं,
कहे कुवाच्य बचेउ कछु नाहीं।
तबहुँ शान्त नहिं द्वेष कराला,
गही सभा मर्हि खत करवाला।

बोद्धा:—तजी सकल मर्याद यहि, विलग होहु महिपाल।
नाचत लखहु कराल वह, काल शीश शिशुपाल।” ५४

अस भासत हरि चक्र पँवारा,
उपजेउ अकस्मात उजियारा।
ज्योति पल्लवित महि आकाशा,
चौधे दृग, दिशि दशहु प्रकाशा।
तड़की तड़ित मनहुँ कहुँ घोरा,
गिरेउ सभा जनु वञ्च कठोरा।
निमिष न कहुँ कछु बाहु लखाना,
भागे भीन अवनिपति नाना।
लखेउ रहे तहँ जे धरि धीरा—
कतहुँ चैद्य-शिर, कतहुँ शरीरा!
कौतुक और भयेउ तेहि काला,
प्रकटी चैद्य-देह तजि ज्वाला।
टूटत व्योम मध्य जिमि तारा,
होत विलीन असीम मँभारा,
तैसेहि ज्योति आपु प्रकटानी,
आपुहि हरि-पद परसि समानी।

श्लोकाः— विजय-दुन्दुभी नम बजी, मही नृपन-जयनाद ,
कीन्हीं विनयस्तुति मुनिन, भरेउ भुवन आहाद । ५५

निखिल सभा महाँ तीनि भुआला ,
हचेउ न जिनहि निधन शिशुपाला ।
दन्तवक्र कारूप-नरेशा ,
माया कुशल शाल्व असुरेशा ।
तीसर दुर्योधन कुराया ,
जेहि असह्य पाण्डव-प्रभुनाई !
तीनहु मन हरि-पाण्डव-भीती ,
द्वेष-विदग्ध हृदय, मुख प्रीती ।
यज्ञ-वधान भयउ इत शेषा ,
अवभृथ-मज्जन कीन्ह नरेशा ।
उत लै दन्तवक्र निज साथा ,
गवनेउ शाल्व जहाँ कुरुनाथा ।
कीन्हेउ दुर्योधन सत्कारा ,
बचन शल्व असुरेश उचारा—
“अब आभिन्न ये पाण्डव यदुजन ,
संग सुख-भोग, संग रण, शासन ।

श्लोकाः— अरि तुम्हार ये पाण्डु-मुत, मम अराति यदुराय ,
सकत दुहुन मैं नासि जो, कुरुजन करहि सहाय । ५६

समर-नीति अति कृष्ण प्रवीणा ,
कीन्हेउ राजचक्र बल क्षीणा ।
भौम, पौण्ड्रकहि पृथक नसायी ।
पृथकहि हतेउ मगधपति जायी ।
वैसेहि बधेहु आजु शिशुपाला ,
नृपन-काल यह व्याल कराता ।
पृथकहि पुनि निज अवसर पायी ,
डसिहै तुमहि मोहि असहायी ।
रक्षण। एकहि भाँति हमारा ,
करहि अबहि मिलि हमहि प्रहारा ।

कर्ण, शकुनि, तुम शत कुरु भाई,
करहु जो रण माह मोरि सुहायी,
पाण्डव सहित कृष्ण मैं नासी,
आजुहि देहुँ उपाधि निवासो ।”
मत सुनतहि कुरुपति-मन भावा,
पितु दिग जाय प्रपंच सुनावा—

बोद्धा :— “जारि जिनहि जतु-गेह हम, चहेउ समूल विनाश,
भये तात ! सोइ पाण्डु-सुत, आजु समृद्धि-निवास । ५४

भुज-बल लहि साम्राज्य विशाला,
भये चक्रवर्ती महिपाला ।
भरतखण्ड निवसत नृप जेते,
करद सकल आये मख तेते ।
यह उपकार-ग्रहण मोहि राजा,
सौपेउ विभव दिखावन काजा ।
भीर अपार युधिष्ठिर-द्वारे,
लागे हेम-रत्न अंबारे ।
वसन वर्ण बहु पद्म-विनिर्मित,
मृदुलस्पर्श, मनोहर, चित्रित,
नृपति उत्तरापथ दे लाये,
लहे पाण्डु-पुत्रन मन भाये ।
विविध जाति वर वाजि सोहाये,
परसत वायु-वेग जे धाये,
लाये पश्चिम ते शक भूपा,
संग अमित उपहार अनूपा ।

बोद्धा :— दीन्हें पुनि भगदत्त नृप, पूर्व दिशा-अधिराज,
आसन, स्थंदन, असि, कवच, सहस श्वेत गजराज । ५५

जे महीन्द्र दक्षिण दिशि करे,
लाये मणि-माणिक्य घनेरे ।

कालागरु शुचि मलयज चंदन,
दीन्हे द्रव्य सुगन्ध अनेकन ।
लायेउ विपुल अवनिपति सिंहल,
मौक्तिक, मणि वैदूर्य समुज्ज्वल ।
मध्यदेश-वासी सामान्ता,
दिये दिव्य उपहार अनंता ।
हिमगिरि ते सागर लगि सारी,
उपजति वस्तु जो जहँ मनहारी ।
बहुरि मनुज निज कर कुशलाई,
जो जो वस्तु जहाँ निर्मायी—
मिली समस्त नृपहि उपहारा,
भरेउ पाण्डु-पुत्रन भण्डारा ।
विभव लखेउँ जो स्वप्नहु नाही,
लखेउँ सकल निज अरि-गृह माहीं ।

दोहा :— परसे जस जस इन करन, वे मणि रत्न अपार,
वृश्चिक-दंशन सम भये, मोहि सकल उपहार । ५६

रिपु-उत्कर्ष सहत जे अविकल,
तिन सम अधम जीव नहि महितल ।
तिनते कुलहि न सुख सन्माना,
धारत अरि-हर्षहि हित प्राणा !
लज्जा ग्लानि हृदय मम घोरा,
सहि न सकत अरि-सुख मन मोरा ।
निश्चय महुँ तात ! हठ ठाना—
हतिहौ रिपु नतु तजिहौ प्राणा ।
दैवयोग मोहि मिले सहायी,
कीर्ति विमल जिन कै जग छाथी ।
जल-थल-वायु-वली असुरेशा,
शाल्व-शौर्य जानत सब देशा ।
दन्त्रवक्र तैसहि जग-नामी,
प्रबल विशाल बाहिनी-स्वामी ।

करिहैं दोउ सहाय महीशा,
देहु तात ! अनुमति आसीसा ।”

दोहा :— सुनत बुद्धि-हत अंध नृप, पठये विदुर बोलाय,
राखि-मंत्रणा, पुत्र-हठ, कही विकल समुझाय । ६०

सहमे विदुर वृत्त सुनि सारा,
नृपहिं प्रबोधत वचन उचारा—
“तात ! पाण्डु-सुत राज्य अखण्डा,
सैन्य, सुहृद, सामन्त प्रचण्डा ।
सकत समर को पार्थ हरायी ?
भीमहिं सकत कवन समुहायी ?
हरि-संग सकत कवन कर संगर,
जीति न जिनहिं सके शिवशंकर ?
धारत मन प्रतिकूल विचारा,
नष्ट सुकृत अघ होत अपारा ।
बन्धु विगोध, असुर-संग प्रीती,
नहिं अस जगत अधर्म अनीती ।
सुनतहिं भीष्म विषम संवादू,
तजिहैं तुमहिं सरुष, सविषादू ।
जइहैं द्रोण पितामह-साथा,
होइहैं इन बिनु वंश अनाथा ।

दोहा :— हमहूँ सकत नहि रहि तहाँ, जहाँ कृष्ण-विद्वेष,
अस कहि गवने गृह विदुर, व्याकुल त्यागि नरेश । ६१

पितुहिं प्रभावित, भीत निहारी,
गिरा परुष कुरु नाथ उचारी—
“कहेउँ बुझाय तात ! शत बारी,
भुजग भीम यह अनुज तुम्हारा ।
राखत सतत तुमहिं वश अपने,
भजत तुमहु तेहि जागत सपने ।

पाये बिनु शठ-मत, अनुमोदन,
रुचत तुमहि नहिं शयनहु, भोजन ।
यह अति कुटिल, स्वामि-हित-द्रोही,
बसत गेह मम, निंदित मोही ।
अनय अधिक अब सहिहौ नाहीं,
देहौ रहन न गजपुर माहीं ।
सुत सरोष लखि भीत नृपति मन,
शकुनी कर्ण बोलाये तत्क्षण ।
कहउ कर्ण सुनि सकल प्रसंगा—
“उचित समर नहिं यदुज्जन संग ।

दोहा :— वैर उचित नहि कृष्ण सँग, उचित न असुरन प्रीति,
सकत समर-महि पाण्डुसुत, एकाकिहि मैं जीति ।” ३२

भयेउ सुयोधन सुनत हताशा,
अवनत शीश, उष्ण निःश्वासा ।
शकुनि विलोकि धैर्य बहु दीन्हा,
विकट प्रपंच प्रकट पुनि कीन्हा ।
“लखि लखि पाण्डव विभव विशाला ।
मोरेउ उर क्रोधानल ज्वाला ।
जेहि क्षण मम पितु सुबल महीशा,
कीन्ह दुष्टिष्टिर पद नत शांशा ।
उपजेहु क्षोभ जो मम मन माहीं,
बिनु प्रतिशोध सकत मिटि नाहीं ।
जानत महुँ कर्ण धनुधारी,
सहजहि सकत शत्रु-संहारी ।
पै मोहि अप्रिय जस रिपु-शासन,
तैसेहि रक्तपात, जन-नाशन ।
युक्ति श्रेष्ठ मैं हृदय विचारी,
रक्तपात बिनु विजय हमारो ।

दोहा :— एकहि साधन अस जगत, द्यूत कहावत सोय,
अरि-नवस्व निरख-रण, पल महुँ आपन होय । ३३

द्यूत-अपरिचित यहि जग माहीं,
 नृप कोउ धर्मराज सम नाहीं।
 वैसेहि द्यूत ज्ञान-आगारा,
 मोहि मम कोउ न कहूँ संसारा।
 संगर-महि जस कर्ण भयंकर,
 मैं तस द्यूत-समर प्रलयंकर।
 इतनिहि तुम सब करहु सहायी,
 लेहु द्यूत हित नृपहि बोलायी।
 राखहु शेष शीश मम भारा,
 हरिहौ राज्य, विभव, धन, दारा।
 सुनत बचन शठ आनंद पागे,
 मिलि सब युक्ति विचारन लागे।
 पुनि कह शकुनि, “युधिष्ठिर राज,
 धर्म-भीरु, अति सरल स्वभाऊ।
 महाराज जो देहि निदेशा,
 अइहै तेहि धरि शीश नरेशा।”

दोहा: — कीन्ह खलन निश्चय जबहि, जाहि स्वपुर यदुराय,
 धर्मसुतहि धृतराष्ट्र तब, गजपुर लोह बोलाय। ६४

पाण्डु-सुतन मिलि अंध नरेशा,
 गवनेउ प्रकटि प्रीति सविशेषा।
 गयने गजपुर सँग सब कुरुजन,
 पाछे रहे शकुनि दुर्योधन।
 शाल्व समीप सुवल-सुत आवा,
 कुरुकुल-मत कहि तेहि समुझावा।
 बोलेउ सुनत जुब्य अमुरेशा,
 “गहे काल कर कुरुजन-केरा।”
 दै शकुनिहि अमुरेश विदाई,
 भाषेउ दंतवक्र द्विग जायी—
 “कीन्ह मूढ़ कुरुराज हताशा,
 तबहुँ समर-महि मोहि जय-आशा।

पाण्डव-सुतन प्रति कृष्ण-सनेहू ,
बसिहै कछु दिन पाण्डव-गेहू ।
तब लगि हम दोउ सैन्य सजावहिं ,
द्वारावति सबेग चढ़ि धावहिं ।

दोहा :— सकिहैं जब लगि लौटि पुर, दोउ हलधर यदुराय ,
तब लगि बधि यदुवंश हम, देहैं नगर नसाय ।” ६५

कुरुपति ढिग उत शकुनि सिधारा ,
कहे सुनाय शाल्व-उद्गारा ।
सुनि असुरेश अमंगल वाणी ,
टारी हँसि कुरुपति अभिमानी ।
बोलेउ मातुल सन मुसकायी—
“भूप-सभागृह देखहिं जायी ।”
विहँसेउ शकुनिहु वचन उचारा—
“बेगि सभागृह होय तुम्हारा ।”
चढ़े मनोरथ शकुनि सुयोधन ,
गवने सभा-भवन अवलोकन ।
ताहि समय हरि अनुजन साथी ,
आयेउ सभा धर्म नरनाथा ।
संग सुभद्रा द्रुपद-कुमारी ,
कुन्ती मातु अन्य कुल नारी ।
दुर्योधनहिं निहारि नरेशा ,
कीन्हेउ आदर-मान विशेषा ।

दोहा :— शिल्पकला साकार जनु, रचित मयासुर गेह ,
लखत फिरत कुरुपति चकित, गति विरहित मति देह । ६६

विविध वर्ण मणि-रत्न लगायी ,
प्रकटी असुर कला-कुशलाई ।
लखि संध्या-लोहित मणि-कुट्टिम ,
होत ज्वलंत हुताशन-विभ्रम ।

शुभ्र अश्रम जनु इन्दु-जुन्हाई,
करस्पर्श विनु जानि न जायी।
माया मय गृह-रचना सारी,
भयेउ सुयोधन-मन भ्रम भारी।
मरकत-मण्डन, नव-असि-श्यामा,
कुट्टिम सभा-भवन अभिरामा।
गुनि मन ताहि सुयोधन वारी,
धरे चरण निज वसन सँभारी।
समुक्त भ्रान्ति लखेउ चहुँ ओरा,
निरखि विपुल जन उर दुख घोरा।
लज्जित चलेउ कछुक पग आगे,
लखेउ न सन्मुख सलिल अभागै।

दोहा :— निर्मित सर शुभ्रस्फटिक, जल दल नलिनि निगूढ़,
मय-माया-मोहत धँसेउ, जानि ताहि थल मूढ़। ६४

गिरेउ, भयेउ स्वर, उछरेउ नीरा,
उठेउ सिक्त-तन-वसन, अधीरा।
निरखि निकटवर्ती नर नारी,
सहज हास्य नहि सके सँभारी—
हँसे भोम, विहँसी पाञ्चाली,
कुरुपति-हृदय शून जनु साली।
लखत खिन्न मन धर्म भुआला,
आयेउ बंधु-समीप विहाला।
प्रकटि प्रीति पूछी कुशलाई,
दीन्हे अभिनव वसन मँगायी।
करि उपचार विविध विधि तोषा,
तजेउ न तबहुँ सुयोधन रोषा।
निरखत तबहिँ सभा-आगारा,
आयेउ तेहि थल सुवल-कुमारा।
लखि कुरुनाथ लुब्ध-मन-भगा,
मवनेउ तत्क्षण है निज संग।

दोहा :— गये दोउ उत गजपुरी, भरि उर द्वेष अथाह ,
इत द्रौपदि, भीमहि कहेउ, विमन धर्म नरनाह— ६८

“प्रकटी तुम सुवृत्ति नहिं आजू,
गवनेउ गेह लुब्ध कुरराजू।”
कहेउ भीम सुनि सरल स्वभाऊ—
“उर मम तात ! न रंच कुभाऊ ।
हँसे समस्त दास, सब दासी,
शकुनिहु सकेउ रोकि नहिं हाँसी ।
हँसब गिरत लखि मनुज स्वभाऊ,
गिरहि रंक अथवा कोउ राज ।
होत न जो कुरूपति अति मानी,
आपहु हँसत चूक निज जानी ।
भीष्म-वचन सुनि विहँसे यदुपति,
कीन्हेउ गमन विहँसि गृह नरपति ।
करि निज बदन बहुरि गम्भोरा,
भाषेउ पाञ्चालिहि यदुवीरा—
“कीन्हेउ तुमहु सुयोधन-दोषा,
गयेउ निहारत तुमहिं सरोषा !”

दोहा :— विहँसि द्रुपद-तनया कहेउ, “का करिहै कुरराय,
जब लागि रत्नक मोर हरि, चक्रपाणि यदुराय ?” ६९

करि पाण्डव-पुर बहु दिन वासा,
प्रकटी प्रभु प्रयाण-अभिलाषा ।
जाय पृथा-पद बंदन कीन्हा,
भेंटि सुभद्रहि धोरज दीन्हा ।
कृष्णा-भवन मिलन पुनि धाये,
बिछुरत सखी नयन भरि आये ।
राजपुरोहित धौम्य मुनीशा,
बंदन कीन्ह धरणि धरि शोशा ।
पूजि देव द्विज हलधर साथी,
निकसे पुरी त्याग यदुनाथा ।

मागध स्यंदन नृपति मँगावा ,
सादर साम्रज हरिहि चढ़ावा ।
बिरह-अधीर, सनेह-विहाला ,
चढ़ेउ आपु रथ धर्म भुआला ।
लै सारथि ते स्वकर अभीषू ,
हाँके अश्व आपु अवनीशू ।

दोहा :— लीन्ह धनंजय कर चँवर, गुनि आपन बड़ भाग ,
भीमादिक रथ साथ चलि, प्रकटेउ उर-अनुराग । ७०

जाय दूर कछु, गहि कर यदुपति ,
रथ ते सहठ उतारे नरपति ।
भूप भीम-पद परसि सोहाये ,
पार्थहि प्रीति पुलकि हिय लाये ।
कीन्हैउ माद्री-सुतन प्रणामा ,
मिले सप्रेम सबहि बलरामा ।
गवनेउ स्यंदन, रेणु उड़ानी ,
प्रणयी पाण्डव-नयनन पानी ।
हरिहु पाण्डु-पुत्रन लागि ललके ,
जल-कण पंकज-लोचन भलके ।
जब लागि पाण्डव दृग-पथ आये ,
लखत सास्र हरि दृष्टि लगाये ।
विहँसे हलधर गिरा उचारी—
“स्वजन, पुरी-सुधि कान्ह बिसारी ।
परत पृथा-सुत अब न लाखायी ,
निवसहु द्वारावति समुहायी !”

दोहा :— हँसि पोंछे दृग-कोर हरि, सुनि अमज मधु व्यंग ,
बढ़े दोउ आनर्त दिशि, बरनत विविध प्रसंग । ७१

उत द्वारावति शाल्व भुवाला ,
चढ़ेउ बाहिनी लै बिकराला ।

संग सबल कारुष-नरेशा ,
 दलेउ दुहुन आनर्त प्रदेशा ।
 शिविर असंख्य घेरि पुर डारे ,
 रुद्ध प्रवेश वीथि पथ सारे ।
 सैनिक, स्यंदन, वाजि अपारा ,
 बधिर दिशा गजराज-चिघारा ।
 उपपुर नासि कीन्ह सब निर्जन ,
 उजरि गये सुन्दर वन-उपवन ।
 पुर ऊपर पुनि रोपि विमाना ,
 बरसे प्रहरण शिला महाना ।
 आयुध बिविध वृष्टि अति घोरा ,
 ढहे विशाल गेह चहुँ ओरा ।
 बअपात-भीषण विस्फोटा ,
 इत उत भग्न भयेउ हड़ कोटा ।

दोहा :— धूलि-धूम धरणी सकल, नभ दीप्तायुध ज्वाल ,
 सर्वनाश शंकित पुरी, 'हरि ! हरि !' रटति बिहाल । ७२

लखि सात्यकि, कृतवर्मा वीरा ,
 गद, प्रद्युम्न, साम्ब रण-धीरा ,
 उद्धव, चारुदेष्ण, अक्रूरा ,
 निकसे वंश अष्ट-दश शूरा ।
 समर प्रवृत्त भयीं दोउ वाहिनि ,
 व्याप्त प्रलय-वनघोर भीम ध्वनि ।
 बिविधायुध संघट्ट विभीषण ,
 युद्धत पुनि जनु दैत्य विवुधगण ।
 साम्ब शत्रु-सेनप संहारा ,
 दंतवक्र रण हेतु प्रचारा ।
 उत उदग्र प्रद्युम्न करत रण ,
 भ्रमत समर जनु आपु जनार्दन ।
 नासी विपुल सैन्य चतुरंगा ,
 जर्जर शरन शाल्व-प्रत्यंगा ।

सन्मुख समर मरण निज जाना,
गगन मार्ग चढ़ि यान उड़ाना ।

दोहा :- आवत कबहुँ दृष्टि पथ, कबहुँ अदृश्य विमान,
कबहुँ रैवतक गिरि-शिखर, कबहुँ उदधि लहरान । ५२

विकल शत्रु-माया सब यदुजन,
तजेउ न पै हरि-सुत शर वर्षण ।
जहँ लखात असुरेश-विमाना,
बरसत तकि पावस भरि बाणा ।
इधु, लुर, अर्धचन्द्र शर प्रेरे,
स्वर्णपुङ्ख, मुखलौह घनेरे ।
शिव-वर जदापि अभेद्य विमाना,
विद्ध असुर-अंग, विह्वल प्राणा ।
सचिव सुमान ताहि क्षण तासू,
मायिन माहिं ख्याति जग जासू,
रुक्मिणि-सुत पाछे खल जायी,
गदाघात कीन्हेउ महि-शायी ।
मूर्च्छित गिरेउ वीर इत जेहि क्षण,
परी शंख-ध्वनि यदुजन-श्रवण ।
वाञ्छजन्य-रच दिशि दश व्यापा,
हर्षित स्वजन, शत्रु-दल काँपा ।

दोहा — आवत ही हरि अमजहि, पुर-रक्षार्थ पठाव,
मथत समर-सागर बढे, रिपु-दल-बल बिचलाय । ५३

हरि-आगमन लुब्ध असुरेशा,
बरसे तकि रथ शस्त्र अशेषा ।
शिलाखण्ड अगणित लै डारे,
तरु उपारि नभ-मार्ग पँवारे ।
लखि आवत निज दिशि अरि-प्रहरण,
नासे अन्तराल यदनठन ।

गदा विशाल बहुरि लै हाथा,
 ताकि असुर त्यागी यदुनाथा ।
 भयेउ तिरोहित शाल्व सुरारी,
 गिरी सशब्द गदा महि भारी ।
 प्रकट असुर पुनि शर खर बरसत,
 विकल वाजि, दारुक क्षत-विक्षत ।
 लखि बिनसत निज सारथि, स्थंदन,
 सुमरी वैष्णव गदा जनार्दन ।
 कौमोदकी दिव्य कर लीन्ही,
 लक्षित यान त्यागि प्रभु दीन्ही—

रोहो :—नभ अमोघ गवनी गदा, लागी घोर विमान,
 गिरेउ यान वारिधि-सलिल, सोध्य दिनेश समान । ७५

सोरठा :—तजी न महि संग्राम, तबहुँ शाल्व माथा-बली,
 मचेउ समर अविराम, दिवारात्रि द्वारावती ।

इन्द्रप्रस्थ इत पाण्डव पासा,
 आये विदुर विवर्ण, हताशा ।
 धर्मसुतहि सन्देश सुनावा—
 “द्युत हेतु धृतराष्ट्र बोलावा ।”
 शत्रु-प्रपंच भीम पहिचानी,
 कही बुझाय अग्रजहि वाणी—
 “नासे द्यूत सुखी गृह नाना,
 यहि सम तात ! अनर्थ न आना ।
 उपजत बाढ़त बैर अनंता,
 द्यूत समीप जात नहि संता ।”
 चिन्तित धर्मसुतहि अवलोका,
 पृछेउ विदुरहि पार्थ सशोका—
 “सुजन-शिरोमणि तुम यहि देश,
 लाये कस अस निध सँदेश ?
 सुनत प्रश्न अति विदुर अधीरा,
 हृग-पथ बही उमहि उर-पीरा ।

दोहा :— भाषेउ लज्जित धर्म-मति, “मोहि धृतराष्ट्र नरेश,
इन्द्रप्रस्थ पठयेउ सहउ, लै यह पाप सँदेश । ७६

परवश भयेउ महुँ अघ-भागी,
छमहु तात ! मोहि जानि अभागी
कुरुजन-अन्न रुधिर तनु माहीं,
भाखि न सकेउँ अन्त मुख ‘नाहीं’ ।
तदपि तात ! यह दृढ़ मत मोरा—
धरहु न पद तुम गजपुर ओरा ।”
सुनत धमसुत भयेउ गँभीरा,
पूछेउ बहुरि प्रश्न मति धीरा—
“सहजहि मोहि पितृव्य बोलावा,
अथवा द्यूत-निदेश पठावा ?
विकल अनुज, नृप-आशय जाना,
विकल विदुर, असमंजस प्राणा ।
समुझी सकल वंश-हित-हानी,
सकेउ न तबहुँ अनृत कहि वाणी—
“तात ! सहज नहि नृप-सन्देशा,
दीन्हेउ द्यूत हेतु आदेशा ।”

दोहा :—भाषेउ निश्चय युक्त स्वर, सुनतहि धर्म नरेश—
“पितु-अग्रज वे पूज्य मम, सकहुँ न टारि निदेश ।” ७७

जस तजि धर्म-अधर्म-विचारा,
नृप-निदेश तुम निज शिर धारा ।
बद्ध महुँ तैसेहि नय-बंधन,
सपनेहु करि न सकहुँ उल्लंघन ।
जतु-गृह नृप मोहि दीन्ह पठायी,
गयेउँ सहर्ष आँच नहि आयी ।
भयेउ अंत सब विधि कल्याणा,
करिहैं मंगल पुनि भगवाना ।”
अस कहि कुल-तिय, अनुजन साथी,
गजपुर गयेउ धर्म-नरनाथा ।

पृथा सुभद्रा, द्रुपद-कुमारी,
अंतःपुर गवनी सब नारी।
भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा,
सबहिं पाण्डु-सुत कीन्ह प्रणामा।
बहुरि जाय धृतराष्ट्र समीपा,
वदे चरण भरत-कुल-दीपा।

दोहा :— सकेउ न कहि कछु धर्म-सुत, उठेउ बोलि कुरुराज—
“जुरी सभा सब द्यूत हित, जोहत पंथ समाज।” ७८

गहि धृतराष्ट्र धर्मसुत-बाहीं,
लायेउ द्यूत-सभागृह माहीं।
राजत बाल-वृद्ध बहु कुरुजन,
सम्बन्धी, सामन्त, सुहृद्गण।
उठे लखत सब कुन्ती-नंदन,
कीन्हेउ सुबल-सुवन अभिनंदन।
नियतासन पाण्डव बैठाये,
बोलेउ कुटिल शकुनि मुसकाये—
“भूरि विभव तुम भारत-नाथा,
समता मोरि न स्वामी साथा।
प्रतिनिधि मोहिं निज कीन्ह सुयोधन,
खेलत मानि नृपति-अनुशासन।
विजय पराजय कुरुजन सारी,
लेहैं मोरि शीश निज धारी।
यहहु कीन्ह नृप नियम-विधाना,
आयसु बिनु न खेल अवसाना।”

दोहा :— अनुमोदेउ परिचालि शिर, अंध बद्ध सुत-पाश,
भाषेउ सविनय धर्म-सुत, “मोहि न द्यत अस्यास। ७९

तदपि तात ! आदेश तुम्हारा,
सेबक सदा शीश निज धारा।

पितु ते बद्धि प्रभु ! पिता हमारे,
 राजपाट, धन, धाम तुम्हारे।
 मोरि सुयोधन दोउ जय-हारी,
 लाभ-हानि सब नाथ ! तुम्हारी।
 ताते सब विहाय उर-ग्लानी,
 खेलत प्रभु-निदेश सन्मानी।
 विदुर हताश सुनत उद्गारा,
 भीष्म द्रोण उर भीति अपारा।
 शत धृतराष्ट्र-सुवन मुसकाये,
 कपट अन्त कर शकुनि उठाये।
 रत्न अलभ्य विनिमित्त माला,
 लै गथ राखेउ धर्म भुआला।
 भलकेउ लोभ सुयोधन-नयनन,
 फेंके पाँसा शकुनि अभय-मन।

दीहा :— उमहेउ आनँद-ज्वार जनु, कौरव - पारावार,
 हार उठायेउ कर शकुनि, करि निज विजय पुकार । ८०

धरी धर्म नृप पुनि मणि-राशी,
 जीतेउ शकुनि कपट-अभ्यासी।
 हारे गज, रथ, वाजि नरेशा,
 पल-पल बढेउ द्यूत-आवेशा।
 निरखि अनर्थ होत अति घोरा,
 विदुर बद्ध-कर अन्ध निहोरा—
 “तात ! द्यूत वेद-मृति बजित,
 संतत साधु-संत-जन-निदित।
 धर्म-सुवन धन-धाम गँवावा,
 राज्य निखिल अब दाँव लगावा।
 उचित न हरब अरिहु कर सर्वस,
 करत अनर्थ नाथ ! कस सुत-वश।
 सोइति ‘अति’ नहि कबनेउ ठाऊँ,
 रोकहु खेल, भये बहु दाऊँ।”

द्रोण पितामह बहु समुभावा ,
रहेउ मौन नृप सुवन-पदावा ।

दोहा :— पाँसा फेंके पुनि शकुनि, हारे धर्म-भुआल ,
पुलकित कुरुपति, बंधुजन, नाचत हर्ष-विहाल । ८१

लखत नृपहि कर अच छडारी ,
व्यंग गिरा हँसि शकुनि उचारी—
“रहे न तुम महिपति, नरनाहा ,
सकत लगाय दाँव अब काहा ?”
सुनि जनु ग्रहगण-ग्रस्त भुआला ,
हेरेउ अनुजन दिशि तत्काला ।
व्याकुल भीष्म, द्रोण मन माखा ,
दाँव भूप सहदेवहि राखा ।
हारि बहुरि नृप नकुल लगाये ,
पलहि माँहि दोउ बंधु गँवाये ।”
वक्र वचन लखि शकुनी भाखे—
“दाँव समोद माद्रि-सुत राखे ।
अर्जुन-भीम सहोदर आता ,
सकुचत धरत तिनहि तुम ताता !”
सुनि सरोष नृप वचन उचारा—
“नेहहु तुमहि न सद्य हमारा ।

दोहा :— मोरे अनुज समान सब, घाटि बाढ़ि कोउ नाहि ,
अस कहि अर्जुन दाँव धरि, खोयेउ निमिषहि माहि । ८२

भीमहि पुनि अबनीश गँवावा ,
अंत आपु धरि दाँव लगावा ।
परे बहुरि विपरीतहि पाँसा ,
प्रकटेउ कुरुजन उर उल्लासा ।
लखेउ न तिन दिशि धर्म महीपा ,
गयेउ शान्त पितृव्य समीपा ।

गाह पद सविनय वचन उचारा—
 “निज सर्वस्व तात ! मैं हारा ।
 रहेउ न शेष स्वत्व अब पासा ,
 देहु निदेश करहि सोह दासा ।”
 सुनि कहु वचन सुबल-सुत भाखा—
 “अबहुँ इन दुराय कछु राखा ।
 गये जदपि सब अनुजन हारी ,
 बची अबहुँ पाञ्चाल-कुमारी ।”
 सुनि कह धर्मपुत्र कर जोरी—
 “छमहु ! तात मम विस्मृति, खोरी ।”

दोहा :—मौन अंध लखि धर्म-सुत, धरी दाँव कुल-बाल ,
 विकल पितामह, द्रोण, कृप, वदन स्वेदकण-जाल । ८३

बिलखत विदुर कहेउ नृप पाहीं—
 “अबहुँ तात ! भाखहु मुख ‘नाहीं’ ।
 मौन अखण्ड अंध सुनि साधी ,
 निर्विकल्प जनु लागि समाधी ।
 बही विदुर-नयनन जल-धारा ,
 कुपित भीष्म पुनि पुनि धिक्कारा ।
 फेंके सुबल-सुवन जब पाँसा ,
 सकेउ न रोकि अंध उल्लासा ।
 पुनि पुनि पूछत सुतन कुचाली ,
 “गये जीति का हम पाञ्चाली !”
 जयी शकुनि सुनि वचन उचारे ,
 “द्रुपद-कुमारि पाण्डु-सुत हारे ।”
 अट्टहास सुनि कीन्ह सुयोधन ,
 बोलेउ वचन बिलोकि विदुर तन—
 “मम निदेश अन्त पुर धावहु ,
 सभा मध्य पाञ्चाली लावहु !”

दोहा :—मर्यादा अतिक्रान्त राउ, भाषे वचन अशंक ,
 सुनि लषाश्च पाण्डव-नयन व्याप्त मया आघातः । ८४

गिरा असाधु विदुर अवमानी,
 सारथि बोलि कही खल वाणी—
 “पाण्डव-भीति विदुर-उर भारी,
 आज्ञा पालत डरत हमारी।
 वश मम ये सब पाण्डव आजू,
 करि न सकत कछु काहु अकाजू।
 लावहु सभा द्रौपदी दासी,
 अति प्रिय मोहिं तासु मधु हाँसी!”
 गवनत सारथि विदुर निहारा,
 बहे वदन दारुण उद्वारा—
 “भयी प्रतीति आजु मन मोरे,
 नाचत काल शीश शठ! तोरे।
 दत्त-चित्त परधन, परदारा,
 पामर तोहि सम को संसारा।
 उपजे निखिल भरत-कुल-घाती,
 गुनि भविष्य फाटति यह छाती।

दोहा :— निष्फल कबहुँ न होत खल, कुल-कान्ता अपमान,
 उमहत तिनके अश्रु सँग, प्रलय-पयोधि महान, ८५

सोरठा :— छेड़त हठि मृगराज, नृद्र मृगन सम शक्ति तुव।
 गिरन चहत शिर गाज, शासत तोहि न बुद्धजन।”

सुनत सुयोधन जुब्ध अशेषा,
 कीन्ह ताहि क्षण सूत प्रवेशा।
 आतुर तेहि सब सभा निहारी,
 सविनय सारथि गिरा उचारी—
 आर्यी रानि सभा गृह नाही,
 पूछेड प्रश्न धर्म नृप पाहीं—
 ‘हारे प्रथम मोहिं या आपू,
 पुनि पुनि पूछहिं करहिं विलापू।’
 सुनतहिं प्रश्न धर्म नृप काँपा,
 कलकल विपुल सभा गृह व्यापा।

उत कुरुपति अमर्ष-उद्दीपित,
भाषे भीषण वचन पाप-चित—
“लावहु सभा नारि बरजोरी !”
सुनि बोलेउ सारथि कर जोरी —
“रजस्वला पाञ्चाल-कुमारी,
लाये सभा नाथ ! अब भारी ।”

श्री ६१ :— कहेउ कुपित-कुरुपति सुनत, “खल ! तोरेहु उर भीति ।
दासी अब यह द्रौपदी, कहाँ धर्म ! कहँ नीति ।” ८६

भाषेउ बहुरि बोलि दुश्शासन—
“करहु तात ! उर-शल्य प्रमार्जन ।
गवनहु मम अनुशासन पाली,
लावहु कर्षि केश पाञ्चाली ।”
उठेउ सुनत शठ पाप-निवासू,
गयेउ नियति-मोहित रनिवासू ।
लखी म्लान पाञ्चाली द्वारे,
कुन्तल मुक्त, वसन इक धारे ।
लावित ठ्यथा-बाष्प शशि आनन,
भयी समीत निरखि दुश्शासन ।
चहेउ गहन कर खल विकराला,
भागी गृह दिशि बाल विहाला ।
सकी न करि रनिवास प्रवेशा,
गहे रूपटि दुश्शासन केशा ।
कर्षत कच कुलपापु, कुचाली,
चलेउ सभा दिशि लै पाञ्चाली ।

श्री ६२ :— विषम-विषाद विवर्ण मुख, दग दुर्दिन-जल-धार,
शरद पूर्णिमा शशि-कला, मानहुँ प्रस्त नीहार ८७

पद पद द्रुपद-सुता विलखानी,
“करत काह पामर काकाजी ।

लखत न रजस्वला मैं नारी,
परस निषिद्ध, अंग इक सारी।
जाहूँ आजु जो गुरुजन आगे,
लागहि पातक सबहिँ अभागे।”
व्यंग वचन दुःशासन भाखा—
“धरत दाँव कस ध्यान न राखा ?
धृत-विजित दासी तैं आजू,
दासिन काह लाज ते काजू ?”
यहि विधि कहत कुवाच्य अपारा,
गहे केश धृतराष्ट्र-कुमारा,
त्यक्त मान मर्यादा सारी,
लायेउ कर्षि सभा-गृह नारी।
कीन्हेउ गुरुजन हाहाकारा,
अवनत शीरा सभा-गृह सारा।

दोहा :— लज्जा-विधुरित द्रौपदी, कुन्तल वदन विलोल,
कण्ठ-बाध-कुरिउत रुदन, तारक कातर लोल—८८

“हा ! हा ! हठी कुलाधम ! पापी !
काहे लाज हरत सन्तापी ?
गुरुजन सकल सभा-गृह माहीं,
करत सहाय धाय कस नाहीं ?
शोक विकल मैं भूली वामा,
प्रविशत सभा न कीन्ह प्रणामा।
छमहिँ सो गुरुजन अब मम खोरी,
करहुँ प्रणाम सबहिँ कर जोरी।
पूछहुँ प्रश्न बहुरि मैं सोई,
उत्तर देहु धैर्य मोहिँ होई।
हारे प्रथम मोहिँ जो स्वामी,
मैं दासी कुरुपति-अनुगामी।
पै जो पहिलेहिँ आपुहिँ हारा,
नष्ट मोहिँ हारन अधिकारा।

भयी कवन विधि मैं पर-चेरी ?
करत न न्याय रहे का हेरी ?

दोहा :— भीष्म, विदुर, कृप, द्रोण, नृप, सबहि धर्म-अभिमान ,
बैठे कस अब मौन गहि, कहाँ शास्त्र-श्रुति-ज्ञान ?” ८६

व्याकुल भीष्म, न शीश उठावा ,
मोचत दृग जल वचन सुनावा—
“अघ असंख्य देखेउँ जग माहीं ,
यहि ते अधिक दीख अघ नाहीं ।
व्यर्थ मोहि कस ईश जियावा ,
बधू-मान मम लखत नसावा ।
नष्ट आजु मम मति-गति, ज्ञाना ,
उत्तर काह देहुँ नहि जाना ।
मति धृतराष्ट्र ईश हरि लीन्ही ,
भद्रे ! तिनहि दशा यह कीन्ही ।
दीन्हेउ द्यूत हेतु आदेशा ,
सके टारि नहि धर्म नरेशा ।
आपुहि प्रथम गये नृप हारी ,
धरेउ दाँव तोहि पुत्रि ! पछारी ।
भयेउ आपु जब भूपति दासा ,
रहेउ न स्वल्प स्वत्व तेहि पासा ।

दोहा :— पति-पत्नी संबंध पै, अविनाशी सब काल ,
सकेउँ न करि निर्णय उचित, ताते मौन विहाल । २०

संकट तोहि पै जदपि अपारा ,
तबहुँ पुत्रि ! तोहि धर्म पियारा ।
ताते धर्म-प्रश्न तैं कीन्हा ,
मैं हत-बुद्धि पंथ नहि चीन्हा ।
धर्म-निष्ठ यहि कुरुकुल माहीं ,
धर्म नरेश सदश कोउ नाहीं ।

इन के कहे चलत कल्याणी !
 होइहै कबहुँ तोरि नहिं हानी ।”
 सुनि बिलपति तिय पतिहिं निहारा ,
 लज्जित भूप, न वचन उचारा !
 क्रुद्ध मदान्ध अधीर सुयोधन ,
 भाषे अधम वचन पुनि भीषण—
 ‘कहहिं युधिष्ठिर सभा पुकारी ,
 अब नहिं द्रुपद-सुता मम नारी ।
 पाञ्चालिहु सब कुरुजन आगे ,
 कहहि न ये मम स्वामि अभागे ।

दोहा :— करिहौं तौ मैं द्रौपदिहि, निमिष माहि स्वाधीन ,
 नाहित लखिहै यह सभा, कृष्णा वसन-विहीन । ६१

दीन आजु ये पाण्डु-कुमारा ,
 बैठे मानहुँ धर्म-अवतारा ।
 वैसेहि दीन वदन यह नारी ,
 करुणहि मनहुँ आपु तनुधारी ।
 इन्द्रप्रस्थ मोहिं गृह निज पायी ,
 कीन्हि सबन मिलि मोरि हँसायी ।
 आजु शील-शालिनि यह वाला ,
 कुल-तिय-शील न वहि दिन पाला ।
 गिरत मोहिं लखि कीन्ही हाँसी ,
 विधि-वश आजु भयी मम दासी ।
 ‘एकहि विधि दासी निर्वाहा ,
 संतत करव स्वामि-मन-चाहा ।
 देहुं निदेश याहि क्षण यहि थल—
 बसहि वसन तजि मम जघनस्थल !”
 अस कहि अट्टहास करि भारी ,
 जघन जघन्य मदान्ध उधारी ।

दोहा :— कहे गरज अनुजहि बहुरि, वचन अधम, अध-मूल—
 “भरी सभा बरबस हरहु, पाण्डव-नारि दुकूल !” ६२

चेष्टा कलुषित लखी वृकोदर,
 भभकी तन रोषाग्नि भयंकर ।
 जिमि दावाग्नि जरत द्रुम भारी,
 फूटति छिद्रन लपट करारी ।
 प्रकटी रोम रोम तिमि ज्वाला,
 विकृत आकृति, भृकुटि कराला ।
 चहत मनहुँ कुरुनाथहिं लीलन,
 उत्थित हाथ कीन्ह प्रण भीषण—
 “कुत्सित इंगित करि अविचारी,
 लखि कुल-तिय खल जाँघ उधारी ।
 भंजहु जो न सोइ उरु तोरा,
 नरक निवास लहहुँ चिर घोरा ।
 होत न बद्ध धर्म-नय-बंधन,
 करत अबहिं यहि थल उरु भंजन ।
 बोलेउ सुनि कुरुराज सहासा—
 “तजु दुर्बुद्धि ! मुक्ति-अभिलाषा ।

श्री ६१ :—मरणावधि शठ । कण्ठ तब, परेउ दासता-पाश,
 प्रलपि व्यर्थ कत मूढ़ । निज, करवावत उपहास ।” ६२

अस कहि कीन्ह बहुरि अनुशासन,
 गहेउ दुकृत धाय दुःशासन ।
 अम्बर स्रस्त हठात सँभारी,
 लखेउ चतुर्दिक् ‘पाहि !’ पुकारी—
 “वंश विमल मोहिं विधि उपजावा,
 विश्रुत विश्व पितहु मैं पावा ।
 आयी व्याहि भरत-कुल माहीं,
 सुयश जासु सुनि सुरहु सिद्दाहीं ।
 पतिहु पाकशासन सम पाये,
 चक्रवर्ति जग जीति कहाये ।
 करत न आजु कोउ संरक्षण !
 बैठे सकल अबल नत-आनन !

कहाँ वृकोदर-दर्प असीवा ?
 कहाँ आजु अर्जुन-गाण्डीवा ?
 कहाँ विदुर नय-नीति-बखाना ?
 कहाँ पितामह-शौर्य महाना ?

दोहा :— अछुत पाँच पति सब स्वजन, जाति हाय ! मम लाज,
 विरमु ! विरमु ! पापिष्ठ पै, बचे अबहुँ यदुराज ।” ६४

कर्षी पुनि दुश्शासन सारी,
 “कृष्ण ! कृष्ण !” द्रौपदी पुकारी—
 दीनबन्धु ! जगदीश्वर ! स्वामी !
 गोपी-वल्लभ ! जन-अनुगामी !
 माधव ! मधुसूदन ! दुखहारी !
 सकत को तुम बिनु अब उद्धारी ?
 रमानाथ ! ब्रजनाथ ! उबारहु !
 बूड़ति नाथ नाथ ! अब तारहु !”
 कर्षत इत दुश्शासन सारी,
 लरत शाल्व सँग उत असुरारी ।
 बर्धित संगर-रोष अपारा,
 दुहुँ दिशि दारुण शस्त्र-प्रहार ।
 महाशक्ति इक असुर उठायी,
 भीषण हरि दिशि ताकि चलायी ।
 मानहुँ उल्का-पिण्ड विशाला,
 धायी व्योम-मार्ग विकराला ।

दोहा :— रोकहि जब लागि ताहि हरि, परी मनक यह कान,
 “बूटत अम्बर देह ते, हरि ! हरि ! हरि ! भगवान् !” ९५

बिसरेउ समर, विकल भगवाना,
 गजपुर दृश्य दोख धरि ध्याना ।
 लागि बाहुतल शक्ति महाना,
 गिरत शार्ङ्ग धनु हरि नहि जाना ।

कीन्ह सुरन नभ हाहाकारा,
भयेउ सभा-महि इत जयकारा।
कर्षत हठि दुश्शासन चीरा,
बाढ़ेउ वसन लखि चकित, अधीरा,
कर्षत जस जस रिस करि भारी,
तस तस बढ़ति द्रौपदी-सारी !
“गोविंद ! केशव !” करति पुकारा,
बाढ़ेउ वसन, लाग अंबारा।
आनंद-अश्रु विदुर-दृग छाये,
पुलकित भीष्म, द्रोण हर्षाये।
शिथिल बाहु शठ कर्षत हारा,
बाढ़ेउ वसन, न बार न पारा।

दोहा: — सभा माहि उमहैउ मनहुँ, अम्बर - पारावार ;
बूढ़ी नख-शिख द्रौपदी, “हरि ! हरि !” — भरी पुकार । ६६

त्यागि वसन दुश्शासन जायी,
बसेउ निजासन शीश नवायी।
विस्मय दुर्योधन-उर व्यापा,
क्रुद्ध वृकोदर, अँग-अँग काँपा।
फुरत ओष्ठ, लोचन रतनारे,
भाषे वचन ज्वलंत अँगारे—
“पुनि मैं करत सुनाय सबहि प्रण,
करिहौ. भुज दुश्शासन-भंजन।
उर विदारि, हरि पामर-प्राणा,
करहुँ न उष्ण रक्त जो पाना,
होय निखिल मम सुकृत विनाशा।
पावहुँ पिट-लोक नहि वासा।”
प्रकटि वसन-निधि ते तेहि काला,
चण्डी मनहुँ आपु विकराता,
द्रुपद-कुमारि केश छिटकायी,
कीन्ह महाप्रण सबहि सुनायी—

शेखा :—“खल-भुज-भञ्जन-रक्त विनु, बँधिहौं नहि ये बार ,
जेहि पति राखी आजु मम, सोइ प्रण-राखनहार !” ६७

इत कृष्णा प्रण कीन्ह कठोरा ,
भयेउ भूप-ग्रह उत रव घोरा ।
अग्निहोत्र हित निर्मित शाला ,
प्रविशेउ सहसा धाय शृगाला ।
करत अशुभ स्वर अति भयकारी ,
पादक उठेउ उलूक पुकारी ।
औरहु विहग अमंगल मूला ,
बोले विपुल शब्द प्रतिकूला ।
कम्पित सुनत अंध नृप-गाता ,
चहत करन अब काह विधाता !
बसन-चमत्कृति सुनि आतंका ,
उपजी उर निज कुल-क्षय-शंका ।
बोलेउ धरि सब सुत-शिर खोरी—
“कहँ द्रौपदी वधू प्रिय मोरी ?”
कृष्णा निकट बोलि सन्मानी ,
प्रकटि सनेह कही नृप वाणी—

शेखा :—“धर्मव्रता मम वधुन महँ, तोहि ते बढ़ि नहिँ आन ,
गुनि प्रसन्नमोहि माँगु अब, मन-वाञ्छित वरदान ।” ६८

सचकित सुनत गिरा नृप केरी ,
बोली वाम पतिन तन हेरी—
“साँबहु जो प्रसन्न तुम ताता !
पुनि जो मम अनुकूल विधाता ,
तौ ये धर्म-तनय दुख-दीना ,
तजि दासत्व होहि स्वाधीना ।”
“एवमस्तु”—धृतराष्ट्र सुनावा ,
“माँगु पुत्रि ! औरहु मन भावा ।”
द्रुपद-सुता सुनि गिरा उचारी—
“सहहिँ मुक्ति अब मम पति चारी ।

रथारूढ़, आयुध कर-धारे,
 होहिं बहुरि स्वाधीन सुखारे।”
 “औरहु माँगु” कहेउ जब राज,
 बोली विहँसि, न जात स्वभाऊ—
 “मोहिं न तात ! माँगन-अभ्यासा,
 माँगै रहे स्वामि जब दासा।

दोहा :— अब सायुध सुरराज सम, स्वामी मम स्वाधीन,
 सकत मोहिं दै जीति जग, अब न द्रौपदी दीन !” ६६

इङ्गित वचन भीम घर लागे,
 सोबत मनहुँ वृकोदर जागे।
 सुमिरि पलहिं महँ निज प्रण घोरा,
 लखेउ सरोष सुयोधन ओरा—
 “गयेउ मोर दासत्व नसायी,
 सँभरु मदान्ध ! मृत्यु चलि आयी !”
 धाये जनु उत्थित-फण व्याला,
 दिग्दीर्णित गर्जन विकराला।
 सहसा धाय धर्म नरनाथा,
 कहि अनुचित बरजेउ गहि हाथा।
 सुनेउ भीम-स्वर अंध भुआला,
 सुमिरि-सुमिरि प्रण प्राण विहाला।
 सत्य-असत्य-विवेक बिसारे,
 कपट वचन अवनीश उचारे—
 “धर्म-सुवन तुम धर्मस्वरूपा,
 धैर्य तुम्हार तुमहिं अनुरूपा।

दोहा :— लौटारत धन राज्य मैं, देत तुमहि आसीस,
 बढ़हि नित्य ऐश्वर्य यश, होम करहि जगदीश। १००

तुमहि धृत-हित गजपुर पेरी,
 लीन्ह परीक्षा मैं सब केरी।

वंश-बलाबल मैं जब जाना,
मित्र-अमित्र सबहि पहिचाना।
तुम धर्मज्ञ, पार्थ मतिमाना,
योद्धा भीम समान न आना।
बन्धु-प्रेम, भद्रा, सद्भाषा,
माद्री-सुतन माहि मैं पाषा।
मम दिशि तुम सब बंधु विलोकी,
छमि सुत मम मोहि करहु विशोकी।
वृद्ध, अंध, जर्जर तनु सारा,
तुम कुल-भूषण होहु सहारा।”
द्रवित धर्म-सुत दैन्य निहारी,
देत तोष बरसे दृग वारी।
करि पुनि गुरु-जन-चरण प्रणामा,
गवने पाण्डु-सुवन यश-धामा।

दोहा:- अनुज द्रौपदी साथ इत, तजी समा नरनाथ,
गरुष गिरा धृतराष्ट्र सन, भाषी उत कुरुनाथ—१०१

“सुत-हिय-घातक पितु जग माहीं,
त्रिभुवन तुम समान कोउ नाहीं।
भवन बोलाय, छीनि अरि सर्वस,
दै दासत्व कीन्ह हम निज बश।
कुवचन कहे तिनहि हम नाना,
कीन्ह घोर नारी-अपमाना।
‘छमिहैं पाण्डव’—जासु विचारा,
तेहि सम मूढ़ न याहि संसारा।
करि आहत त्यागत जो व्याला,
नाचत तेहि शिर प्रति पल काला।
जानहु तुम मोहि मृतक समाना,
पितु-करतूति सुवन-अवसाना।”
कीन्ह सुयोधन करुण विलापा,
लखि पुनि मोह अंध-मन व्यापा।

कहत—“चूक कीन्हीं मैं भारी,
कहहु कवन विधि जाय सँभारी !”

दोहा:—शकुनि कुमति क्षण मौन गहि बोलेउ “एकहि आस,
द्वादश वत्सर पाएउ-सुत, जायउ करहि बनवास । १०२

वत्सर एक बहुरि अज्ञाता,
निवसहि कहँ दुराय सब भ्राता ।
प्रकटहि जो तेहि वत्सर माहीं,
द्वादश वर्ष बहुरि वन जाहीं ।
बोलि सभागृह धर्म नरेशा,
बहुरि श्रुत-हित देहु निदेशा ।”
सुनि कुमंत्र गुरु-जन मन क्रोधा,
अंध सबन मिलि बहुरि प्रबोधा ।
जानि असाध्य गमन गृह कीन्हा,
नृप इत बोलि धर्म-सुत लीन्हा ।
प्रविशि युधिष्ठिर पद शिर नावा,
“कस पुनि दासहि तात बोलावा ?”
“खेलहु बहुरि”—अवनिपति भाखा,
कहेउ सुबल-सुत शेष जो राखा ।
वन, अज्ञात-वास प्रस्ताउ,
कहेउ शकुनि, अनुमोदेउ राऊ ।

दोहा:—भाषेउ भीम सरोष सुनि, “काहे यह परिहास ?
कहहु प्रकट तजि छल-कपट, देन चहत वनवास !” १०३

सुनि अर्जुन भीमहि समुझावा—
“कस तुम तात ! धैर्य बिसरावा ।
अनुचर हम सब अग्रज केरे,
वे आचरत धर्म-नय-प्रेरे ।
धारे धैर्य अजहुँ मन माहीं,
होइहै तात ! अमंगल नाहीं ।”

उत आतुर कुरूपतिहिं निहारी,
 धृष्ट शकुनि पुनि गिरा उचारी—
 “नृपति-निदेश मान्य जो नाही,
 कहहु, हमहु निज निज गृह जाहीं।”
 “जानत तुम सब”—कहेउ भुआला,
 “भोहि निदेश मान्य सब काला।”
 सुनत शकुनि पुनि अब पँवारे,
 बैसेहि बहुरि युधिष्ठिर हारे।
 शान्ति अखण्ड सभा-गृह छायी,
 हर्ष-विषाद प्रकटि नहि जायी।

श्लोकाः—बोलेउ दुःशासन विहँसि, “हम कस सौन उदास ?
 भारत-महि कुरुजन लही, पाण्डु-सुवन वनवास !” १०४

अस कहि बल्कल-वसन मँगायी,
 राखे पाण्डु-सुवन द्विग लायी।
 लखतहि धर्मराज स्वीकारे,
 अंग-विभूषण-वसन उतारे।
 धृत सानुज बल्कल-मृगछाला
 परसे नृप-पद धर्म भुआला।
 द्रुपद-सुता लखि गवनति संग,
 कीन्ह नीच दुःशासन व्यंगा—
 “मूढ़न सौपि सुता सुकुमारी,
 कीन्हि अनीति द्रुपद नृप भारी।
 ये पाण्डव पुरुषत्व-विहीना,
 छात्र-धर्म-परित्यक्त, मलीना।
 हृष्ट-पुष्ट सब जदपि लखाहीं,
 चर्म-मृगेश, सत्व तनु नाही !
 बलि वन इन सँग, करि सेवकाई,
 देहै कृष्णा जन्म गँवायी।

श्लोकाः—समाश्रिता विष-वृक्ष यह, मधुर बल्लि पाञ्चालि,
 सकति भोगि हम सँग विभव, पत्निभाव प्रतिपालि !” १०५

दोहा :—नयन तरेरे भीम सुनि, “त्यागु नीच ! उपहास ,
धूत-विटप फाल मृत्यु-फल, कारहै कुरुकुल-नाश । १०३

कुक्कति, कुवाच्य सकल खल तोरे,
रहिहैं अमिट हृदय-पट मोरे ।
बिनु तब-क्षतज किये प्रक्षालन,
सम मम लागि गेह, गिरि, कानन ।”
अस कहि भीम बढे जब आगे,
हँसत अंध-सुत पाछे लागे ।
अनुहरि सकल वृकोदर-पद-गति,
नाचत, गावत, विहँसत दुर्मति ।
सुनि कलकल अश्लील धनंजय,
कही गँभीर गिरा कृत-निश्चय—
“विमल भरत-कुत जन्म तुम्हारा,
तजब न उचित सुजन-व्यवहारा ।
अचिर तुम्हार दास-परिहासा,
फिरिहैं हमहु, करहु विश्वासा ।
देहौ तब न राज्य लौटारी,
बचिहैं कुरु-कुल केवल नारी ।

दोहा :—होय हिमाचल वरु सचल, निर्जल पारावार,
कृष्ण-कृपा ते प्रण विफल, होइहै नाहि हमार ।” १०४

जानि पाण्डु-सुत गवनत कानन,
धाये मिलन विकल सब गुरुजन ।
बदन विवर्ण, हृदय दूख दाहा,
कण्ठ रुद्ध, दृग वारि प्रवाहा ।
लखि बंदत पद धरि महि सीसा,
दीन्हि मनहि मन संजन असीसा—
कहेउ विदुर—“बिनबहुँ मैं ताता !
कानन योग्य न कुन्ती माता ।
पालहु पेटिक बत्स ! सनेहु,
मातहि राखि जाहु मम गेह ।”

कहेउ धमसुत—“कुरुकुल माहीं,
तुम सम तात ! हितू मम नाहीं।
सहज कथन आदेश तुम्हारा,
दीन वचन कस आजु उचारा ?”
विदुरहिं लै पुनि नृप निज संगी,
कहेउ जाय सब पृथहि प्रसंगा।

दोहा:—आर्तनाद ध्यापेउ भवन, कुन्ती जनु निष्प्राण,
निकसत नयनन नीर, मुख, ‘कृष्ण ! कृष्ण ! भगवान !’ १०८

छोरठा:—विदुरहि सौं पि विहाल, पृथा, सुभद्रा, कुल सकल,
काम्यक वन तत्काल, गवनेउ नृप सानुज, सतिय।

उत द्वारावति शाल्व सुरारी,
गरजेउ गिरत शङ्ख धनु भारी—
“आपुहिं मन अजेय तैं मानी,
भयेउ कृष्ण ! दिन प्रति अभिमानी।
करि छल कंस, काल संहारे,
बैसेहि चैद्य, मगधपति मारे।
आजुहि मिलेउ समर समुहायी,
बधत अबहि जो भागि न जायी !”
करत प्रलाप विपुल यहि भाँती,
कीन्हेउ केहरि-नाद अराती।
करत अनवरत शर बौछारा,
प्रकटेउ पौरुष असुर अपारा।
लखि बोलेउ दारुक अनुरागी—
“करत विलम्ब नाथ केहि लागी ?”
सुनि हरि धरेउ दिव्य धनु बाणा,
काटेउ सत्वर अरि-शिरत्राणा।

दोहा:—शोभित हरि उदयाद्रि जनु, चक्र हाथ जस लीन्ह,
सहस-रश्मि सम शस्त्र निज, त्यागि असुर तकि दीन्ह। १०९

मस्तकं द्वित्र किरीट-अलंकृत ,
 गिरेड शरीर मही जनु महिभृत ।
 पुनि कारूष-पतिहि प्रभु मारा ,
 अनुज विदूरथ तासु संहारा ।
 असुर-सैन्य जनु लय जल राशी ,
 मथि यदुवंशिन सकल बिनासो ।
 जित-अराति प्रविशे पुर माहीं ,
 शोभा पूर्व लखी कहूँ नाहीं ।
 भग्न भवन, उजरे उद्याना ,
 निर्जन हाट-बाट, पथ नाना ।
 शाल्व-विमान पुरी सब नासी ,
 आश्रय-विरहित नगर-निवासी ।
 गवने प्रति गृह कृपा-निकेतू ,
 दीन्ह धान्य-धन धैर्य-समेतू ।
 आरंभेउ जस पुग-निर्माणा ,
 पाण्डव-वृत्त लहेउ भगवाना ।

बोद्धाः - दूतन-मुख बनवास सुनि, क्षण नहि कीन्ह विलम्ब ,
 पाण्डु-सुवन भेंटन चले, पाण्डु - सुवन - अवलम्ब । ११०

दिवा-रात्रि प्रभु करत प्रवासू ,
 पहुँचे वन जहँ पाण्डव-वासू ।
 क्रीड़त इत उत धावत मृगगण ,
 मंजुल खग-रव-मुखरित कानन ।
 होम-धूम तरु-शीर्षन छावा ,
 विपिन प्रशान्त श्याम-मन भावा ।
 मुनि-मण्डली मध्य यदुराजा ,
 लखेउ बहोरि युधिष्ठिर राजा ।
 शोभित अनुज चतुर्दिक चारी ,
 फल धर्मादि मनहुँ तनु धारी ।
 द्रुपद-सुता जनु भक्ति सोहायी ,
 शास्त्र-चिन्तवन भुति-ध्वनि छापी ।

बलकल वसन, अंग मृगछात्रा,
सतनु सुकृत जनु धर्म भुआला।
रथ-घर्घर सुनतहि पहिचाना,
एठेउ कहत—“आये भगवाना।

दोहा :— उठे मुनिहु सुनतहि वचन, विहल परमानंद,
मथतसिन्धु सहसा लहेउ, जनु अमृत सुरवृन्द। १११

भेंटि पाण्डु-सुत मुनि-पद परसे,
आशिष-शब्द चहूँ दिशि बरसे।
मानि सफल आजीवन तप-श्रम,
गवने मुनिजन निज निज आश्रम।
सरि-जल विमल कीन्ह हरि मज्जन,
सुखासीन पुनि लहि दर्भासन।
दिये वृकोदर वन-फल आनी,
लखि पाञ्चाल-सुता बिलखानी।
तुम सर्वस्व हमहि प्रभु ! दीन्हा,
रंकन भारत-अधिपति कीन्हा।
हम करि आजु कुटी पहुनाई,
रहे वन्य फल तुमहि खवायी।
रचि जिमि सुन्दर सुमनन-माला,
पहिरावत गज-गर गजपाला,
पै चापल्य-दोष बश वारण,
भंजत स्वकर करत नहि धारण,

दोहा :— प्रभु-प्रदत्त साम्राज्य तिमि, धर्मराज महाराज,
कीन्ह तिरस्कृत, राज्य सँग, गयी भरतकुल-लाज। ११२
सकत तुमहु करि नाथ ! का, लिखित ललाट जो क्लेश,
प्रमत अकैतन वृषभ-पति, यद्यपि सखा घनेश।” ११३

विकल प्रबोधी प्रभु पाञ्चाली—
“अइहैं पुनि दिन वैभवशास्त्री।”

सुनि उमहेउ जनु उर दुख-सागर,
 बहेउ बाष्प-जल नयनन मरमर—
 'केहि विधि धैर्य धरहु यदुरायी !
 दशा-विपर्यय सहि नहि जायी ।
 सुधा-श्वेत शय्या निशि सोयी,
 मंगल गीतन जागत जोई,
 कुश-शय्या सोइ सोय भुआला,
 उठत अशुभ सुनि शब्द शृगाळा ।
 नित जो बहु द्विज अतिथि जेवायी,
 करत सरस भोजन बलदायी,
 वन-फल खाय सो धारत प्राणा,
 छीजति कायहु अशहि समाना !
 धरे जे चरण पीठ मणि-मण्डित,
 राज-शीश-सज-रज जे रञ्जित,

दोहा :— कुशकरटक-क्षत-रक्त ते, रञ्जित अब पद सोय,
 धीर धरहुँ केहि भाँति हरि ! उठत आपु हिय रोय ! ११४

चंदन-चर्वित अँग जिन केरे,
 रथं चढ़ि चलत, रहत जन घेरे,
 सोइ भीम वनचर अनुहारी,
 धूसर धूलि आजु पदचारी !
 जीति उत्तरापथ जेहि सारा,
 कीन्ह नृपहिं धन, सुयश अपारी,
 सोइ अर्जुन अस भाग्य-विधाना,
 देत लाय बल्कल-परिधाना !
 कोमल अँग नकुल सहदेवा,
 सेवक सहस करत नित सेवा,
 महि कठोर सोवत अब सोई,
 कीर्ण केश जनु वन-गज दोई !
 क्षितिपति-क्षमहि विभव-क्षय कारण,
 कीन्हे शान्ति तबहुँ हिय धारण ।

विप्र-वृत्ति जो अस प्रिय लागी,
देत न छात्र धर्म कस त्यागी ?

• दोहा :— करत प्रवाहित नहि सरित, काहे ये धनु-बाण ?
शोभा-हित धारव इन्हि, छात्र धर्म-अपमान । १११५

सुनि तिय-वाणी भीम विहाला,
बरसी अनल-शैल जनु ज्वाला—
“हृत ऐश्वर्य, राज श्री नासी,
अरि आनंदित, हम वन-वासी ।
पै न दहति उर तस महि-हानी,
जस अवनीश-वृत्ति-कृत-ग्लानी ।
दिन प्रति दैन्य नृपहि प्रिय लागा,
कीन्हेउ धर्मज पौरुष-त्यागा ।
धृत यति-वेष भ्रमत नित वन-वन,
चहत त्रयोदश वर्ष बितावन ।
जानत अवधि-अंत कुरुरायी,
जइहै चरणन राज्य चढ़ायी ।
विभव-हेतु कुरुपति, मत मोरा,
सकत सकल करि पातक घोरा ।
शिशुपन ते जेहि करि संतापा,
प्रति नव वर्ष किये नव पापा,

• दोहा :— कीन्ह मोर जेहि दै गरल, सुरसरि-सलिल-प्रवाह,
मात सहित जतु-गेह जेहि, रचेउ निखिल कुल-दाह, ११६

कपट-धृत जेहि लीन्हेउ राजू,
हरी सभा कुल-ललना-लाजू,
देहै सोइ राज्य लौटारी—
सोचत, बुद्धि जासु विधि मारी !
औरहु कहहु स्वमत यदुनाथा !
देहि जो सहज राज्य कुरुनाथा,

लीन्हे तेहि अपमान बिसारी,
 नासहि धर्म, अकीर्ति हमारी।
 धिक भुजबल ! धिक शौर्य हमारा !
 पर-प्रसाद-भोजिहिं धिक्कारा !
 श्वापद जदपि तदपि मृगराज,
 दर्पयुक्त, नहिं तजत स्वभाज।
 भक्षत इभ करि कुम्भ विदारण,
 भूलिहु लखत न पर-हत वारण।
 तैसेहि तेजयुक्त नरराज,
 पर-प्रदत्त भोगत नहिं राज।

श्लोक :— जूझत मानी मान हित, धन-वसुधा हित नाहि,
 अमर सुयश, त्रिभुवन-विभव, बिनसत निमिषहि माहि । ११६

तजत मानिजन तृणवत प्राणा,
 तजत न तेज, आत्म-सम्माना।
 वारिद बसत दूरि नभ माहीं,
 मृगगति पहुँच तहाँ लगि नाहीं,
 तबहुँ सुनत घन-गर्जन घोरा,
 करत कटाक्ष गरजि तेहि ओरा !
 तेजस्विन उर सहज अमर्षा,
 सहत न कबहुँ शत्रु-उत्कर्षा।
 हरि धन-संपति, करि छल नांना,
 कुरुजन कीन्ह सभा अपमाना।
 एकहि जगत तासु प्रतिकारा,
 सहित सहाय शत्रु-संहारा।
 द्रुपद-मुता दृग-वारि बहायी,
 दारुण अग्नि हृदय सुलगायी।
 रण-हत पति-शव पै कुरु-नारी,
 करिहैं आर्तनाद जब भारी,

श्लोक :— तबहि तिनहि लोचन-सलिल, यह हिय-अनल बुझाय,
 विनु कुरुवंश-विनाश मोहि, जीवन शून्य लखाय । ११८

दोहा :— होहुँ वृद्ध, मुज-बल घटहि, जर्जर होय शरीर,
होइहै तबहुँ न क्षीण उर, वैर-शोध विनु पीर ।” ११६

जाया, अनुज-वचन सुनि रिस-भय,
नृप सविषाद, व्याप्त उर अनुशय ।
निखिल कुटुम्ब अधीर विलोका,
हरेउ मृदुल वचनन हरि शोका ।
ताहि समय मुनि दिव्य विलोचन,
आये व्यास दीन-दुख-मोचन ।
हर्ष धरत पद आश्रम व्यापा,
प्रणति, असीस, मिलन, आलापा ।
ध्यान-धीर मुनि नृपहि निहारी,
भाषे वचन आर्द्र दृग-वारी—
“दोइ वृत्त विधि-विश्व अशोभन,
लुब्ध होत मुनि जिनहि मुनिहु मन—
छल-बल-अजित दुर्जन-वैभव,
सत्य-धर्म-प्रिय सुजन-पराभव,
चकित तात ! मैं लखि तव त्यागा,
द्वार पर कहैं अस विभव विरागा !

दोहा :— जब लागि वसुधा-तल बसहि, धर्मवान मतिमान,
तब लागि पाण्डव-यश विमल, करिहैं सज्जन गान ।” ११७

मुनि भविष्य-दर्शी यदुरायी,
गिरा नीतियुत मुनिहि सुनायी—
“भंगल तासु सदा मुनिनाथा !
बरद तुम्हार जासु शिर हाथा ।
‘हरि सर्वस्व कीन्ह निर्वासन,
कपट-कुशल यह कुमति सुयोधन ।
विदित ताहि यहि जग बद्धि सेवा,
तेहि वश सकल मनुज मुनि देवा ।
करि नित भीष्म द्रोण सेवकाई,
लेहै दोउ कुरुपति अपनायी,

भीष्म द्रोण सम यहि जग माहीं,
योद्धा तात ! अन्य कोउ नाहीं ।
परशुराम विंशति-इक बारा,
क्षत्रिय रहित कीन्ह जग सारा ।
सके सोउ नहि भीष्म हरायी,
तिन वश मृत्यु विश्व-भयदायी ।

दोहा :— अस्त्र-शस्त्र-ज्ञाता जगत, द्रोण सदृश को आन ?
बरसत रण शर-जाल द्विज, लागत काल समान । १२१

कर्ण महारथि रण-उन्मादा,
सदा चहत पाण्डव-अवसादा ।
तीनहु बल कुरूपति बलधामा,
देहै राज्य न बिनु संग्रामा ।
पाण्डु-सुतन अस कहाँ सहारा ?
जइहैं कस रण-वारिधि पारा ?
तुमहि अनन्य-शरण मुनिनायक !
होहु अनोथन नाथ ! सहायक ।”
विहँसे सुनत व्यास मुनिराई—
“चहत देन प्रभु मोहि बढाई ।
नाहित करत नाथ भ्र-क्षेपण,
होत निखिल भवबन्ध विमोक्षण ।
मानि तथापि नाथ-आदेशा,
देहौ पार्थहि मैं उपदेशा ।
पूर्व समय वृत्रासुर-त्रासा,
जाय सकल सुर सुरपति-पासा,

दोहा :— दीन्हें इन्द्रहि मिलि सबन, निज निज अस्त्र विशेष,
लब्ध दिव्य आयुध सकल, भये अजेय सुरेश ! १२२

ये अर्जुन नर ऋषि अवतारी,
जन्मे नाथ-साथ वपु धारी ।

सहजहि करि तप, सुरन रिभायी,
सकत दिव्य आयुध-निधि पायी।
मंत्र प्रतिस्मृति प्रभु ! मम पाहीं,
जपत जाहि तप विघ्न नसाहीं।
करत तपश्चर्या कछु काला,
प्रीत इन्द्र आदिक दिक्पाला,
प्रकटि सकल देहैं वरदाना,
अख, शख, आयुध विधि नाना।
देहैं आपु कृपानिधि शंकर,
अख पाशुपत विश्व-क्षयंकर।”
अस कहि लै पार्थहि निज साथी,
गवने थका विविक्त मुनिनाथी।
शिष्य-भाव अर्जुन दरसावा,
मंत्र प्रतिस्मृति मुनि ते पावा।

शेडा :— भानु-तेज जिमि बिम्ब तजि, करत सरोज विकास।

निर्गत मुनि-मुख मंत्र तिमि, पार्थ मोह-तम नास। १२३

भेंटि सबहि, हरि-आयसु पायी,
त्यागेउ जस आश्रम मुनिरायी।
धृत-व्रत सखा धनंजय जानी,
कही धर्म-सुत सन हरि वाणी।
“पार्थहि देहु निदेश नरेशा !
तप हित हिमगिरि करहि प्रवेशा।
बीर, धीर, गुण-ज्ञान-निधाना,
सबहि पार्थ प्रिय प्राण समाना।
इनहिन पै भावी रण भारा,
निर्भर निखिल वंश उद्धारा।
ताते मन बल हृदय हृदायी,
आयसु देहु मोह बिसरायी।”
अस भाषत प्रभु नयनन नीरा,
आपुहि सखा-वियोग अधीरा।

सहित द्रुपद-तनया सब आता,
विकल विलोकि धनंजय जाता।

दोहा :— हवन, स्वस्त्ययन, पाठ करि, धरे हस्त धनु बाण,
भेंटि सबहि, आसीष लहि, कीन्हैउ पार्थ प्रयाण । १२४

व्याप्त शोक काम्यक बन भारी,
जीव, जन्तु, वनदेव दुखारी।
भोजन-पान कीन्ह नहिं काहु,
उर अर्जुन-विरहानल दाहु।
सखा शौर्य-गाथा कहि नाना,
कीन्ह व्यतीत राति भगवाना।
कहेउ प्रात नृपतिहिं यदुरायी—
“बिनु अर्जुन यह बन दुखदायी।
जब लगि पार्थ करत तप-साधन,
तुम सब जाय करहु तीर्थाटन।
लखि नित नूतन सरित, पहारा,
विपिन, ग्राम, पुर, चैत्य, विहारा,
सकिहौ अनुज-विरह बिसरायी,
कटिहैं कुदिन कछुक दुखदायी।
भारत सम महि पुण्य न आना,
उपजे युग-युग पुरुष महाना।

दोहा :— कीन्ह शूर, ज्ञानी, तपिन, जहँ जहँ जन-कल्याण,
भये सोइ थल यश-सदन, पावन तीर्थ-स्थान । १२५

करि दर्शन, सुनि शुचि आख्याना,
पावत नवस्फूर्ति मन प्राणा।
मानस बुद्ध वृत्ति क्षण त्यागी,
होत असीम विश्व अनुरागी।
तजहु न नृप ! यह स्वर्ण संयोगू,
तीर्थन काटहु बंधु-वियोगू।”

धर्म-मूल यदुनंदन वाणी,
 सुनत धर्मसुत-हृदय समानी ।
 कीन्हेउ पाण्डु-सुवन तीर्थाटन,
 पहुँचे उत गजपुरी जनार्दन ।
 पाण्डव-कुशल संदेश सुनावा,
 कुन्ती विदुरहिं धैये वैधावा ।
 बहुरि सकल पाञ्चालि-कुमारा,
 स्वसा-सुवन अभिमन्यु पियारा ।
 सहित सुभद्रा संग लिवायी,
 लौटे द्वारावति यदुरायी ।

श्लोकाः—प्रद्युम्नहिं सौंषे सकल, पाण्डव-सुत यदुनाथ,
 दिव्यायुध-ज्ञाता भये, रहि नित यदुजन साथ । १२६

अभि हरि द्वारावती निहारी,
 निर्मित पुनि वैसिहि मनहारी ।
 शाल्व-विमान-ध्वंस पुर-अंशा,
 यथा पूर्व लखि कीन्हि प्रशंसा ।
 वैभव-पूर्ण बहुरि पुर सारा,
 पथ-वीथिन सोइ भीर अपारा ।
 रण मणि-मण्डित इत उत धावत,
 मद-जल मत्त द्विरद वरसावत ।
 लक्ष-लक्ष प्रासाद नभोत्थित,
 हेम-खचित जनु मेरु महीभूत ।
 पुष्पित बहु उपवन आरामा,
 विहग-भृङ्ग-नादित अभिरामा ।
 वैसेहि प्रमुदित पुर नर-नारी,
 उत्सव-प्रिय, वन-शैल-बिहारी ।
 पर-सुख-सुखी सतत यदुनाथा,
 बसे ससुख पुर स्वजनन साथ ।

श्लोकाः—कूर कंस-हत सुत ब्रह्म, जननिहिं पुनि दरसाय,
 कीन्हे देवकिहिं हरि सुखी, चिर उर-दाह बुझाय । १२७

उत अर्जुन कीन्हेउ तप भारी ,
 अरु पाशुपत दीन्ह पुरारी ।
 दीन्ह दण्ड यम, पाश जलेशा ,
 प्रस्वापन निज अरु धनेशा ।
 अरु ब्रह्मशिर त्रिभुवन ख्याता ,
 दीन्हेउ दारुण आपु विधाता ।
 नेह विशेष सुरेश दिखावा ,
 स्यंदन प्रेषि स्वलोक बोलावा ।
 दै अर्धासन, करि सन्माना ,
 सिखये दिव्य अरु विधि नाना ।
 राखेउ सुरपति साम्रह पासा ,
 वर्ष पाँच तहँ पार्थ निवासा ।
 पूर्व दिशा इत पाण्डव जायी ,
 देखेउ सकल तीर्थ-समुदायी ।
 लखत उदधि-तट-देश प्रदेशा ,
 गवनेउ दक्षिण धर्म नरेशा ।

बोधा :— दक्षिण-तीर्थ विलोकि धरि, हिय हरि दर्शन आस ,
 पहुँचे पाञ्चाली सहित, पाण्डव तीर्थ प्रभास । १२८

पाण्डव-आवन सुनि यदुनाथा ,
 धाये आतुर यदुजन साथा ।
 बिरह विकल भेंटत अनुरागे ,
 सुख-पीयूष मनहुँ सब पागे ।
 मिलीं सुभद्रा द्रुपद - कुमारी ,
 भेंटीं आय अन्य यदु-नारी ।
 लखे बहुरि निज सुत पाञ्चाली—
 सकल विशालकाय, बलशाली ।
 अभिमन्युहिं भरि हृदय लगावा ,
 औरस सुवन मनहुँ पुनि पावा ।
 विधि अगणित करि प्रणयाचारा ,
 प्रकटी यदुजन प्रीति अपारा ।

धर्म नृपहु यदु-वृन्द विलोका,
जानि स्वजन बिनसेउ उर शोका ।
अगणित यदुजन जनु नभ तारा,
अमरोपम विक्रम आकारा ।

दोहा :— नृपति हर्ष-निर्भर हृदय, भाषेउ हरिहि सप्रीति—

“जासु सहाय समाज यह, ताहि नाथ ! कस भीति ?” १२६

सुनि सात्यकि नृप-गिरा उदारा,
हेरत हरि दिशि बचन उचारा—
“निरखि नाथ ! धर्मात्मज दीना,
राका-रहित मनहुँ शशि क्षीणा,
विपिन-वास, बल्कल-परिधाना,
होत हृदय उद्वेग महाना ।
बद्ध धर्म-सुत निज प्रण माहीं,
कीन्हि प्रतिज्ञा यदुजन नाहीं ।
मम मत हम गजपुर चढ़ि धावहि,
अधी निखिल कुरुवंश नसावहि ।
पालहि प्रजा कुँवर कोउ आजू,
बीते अवधि धर्म-सुत राजू ।
अब समर्थ अभिमन्यु कुमारा,
धारि सकत निज शिर सब भारा ।
जाहि न नाथ ! समर महि माहीं,
जाय अन्य गुरुजन कोउ नाहीं ।

दोहा :— देहु साथ प्रद्युम्न मम, गद अरु साम्ब कुमार,

कर्ण-द्रोण सह करि सकत, मैं कुरुकुल-संहार ।” १३०

उत्तर दीन्ह विहँसि यदुवीरा—
“तुम, कुँवरहु सब अति रणधीरा ।
राखेउ पै नहि तुम मन ध्याना,
पाण्डव-हृदय आत्म-सम्माना ।

यदुजन-विजित राज्य, धन, वैभव,
करिहैं ग्रहण न मानी पाण्डव ।
औरहु तुम यह दीन्ह बिसारी—
नहिं अभिमन्यु राज्य-अधिकारी ।
धर्मराज कर ज्येष्ठ कुमारा,
कृष्णा जाहि गर्भ निज धारा,
सो प्रतिविन्ध्य राज्य-श्री-स्वामी,
तासु सुभद्रा-सुत अनुगामी ।
पाण्डु-सुतन महीं जस अति प्रीती,
तिनके सुतन गही सोइ रीती ।
पाण्डव पैतृक-गुण अनुशासन,
शिशुहु हमहि सकत दै शिचण ।

शोभा :— जब लागि धर्म नरेश ये, बद्ध प्रतिज्ञा माहि,
तब लागि कोउ पाण्डव-शिशुहु, महि-अभिलाषी नाहि ।” १३१

लज्जा-रज सात्यकि मुख म्लाना,
बोलेउ धर्म नरेश सुजाना—
“शेष आजु जग इतनहि मम धन,
मोर सहायक यदुपति, यदुजन ।
पौरुष-योग्य समय पहिचानी,
देहैं आयसु हरि नय-खानी ।
लखेउ सुरोपम स्वजन समाजू,
मानत धन्य भाग्य निज आजू ।”
यहि विधि बसि कछु दिवस प्रभासू,
पाण्डु-सुतन पुनि कीन्ह प्रवासू ।
रेवाखण्ड, विन्ध्य करि पारा,
बहुरि उत्तरापथ पगु धारा ।
गिरि सुमेरु पुनि देखेउ जायी,
मिले धनंजय भ्रातन आयी ।
लब्ध-अन्न-यश-मान, सुखारी,
सुरपति स्यंदन गयेउ उतारी ।

दोहा :—एकादश वत्सर विगत, भ्रमत शैल कैलास,
लौटि बहुरि काम्यक विपिन, कीन्हेउ ससुख निवास । १३२

ताहि समय मुनिबर दुर्वासा,
भ्रमत महीतल चहत निवासा ।
जटाजूट जनु पावक-ज्वाला,
कुटिल भृकुटि, आनन विकराला ।
हाट, बाट, पथ, सभा, समाजू,
कहत फिरत दिशि दिशि मुनिराजू—
“देहि निवास मोहिं गृह सोई,
धैर्य-निधान जो यहि जग होई ।
लघु अपराध होत मोहिं रोषू,
देत शाप मैं, छमत न दोषू ।”
जो कोउ सुनत होत मन त्रासा,
अपि वासार्थि मिलत नहिं वासा ।
द्वाराबति मुनीश जब आये,
सुनत वृत्त यदुपति मुसकाये ।
जाय कहेउ करि विनय प्रणामा—
“पावन करहु नाथ ! मम धामा ।”

दोहा :—“अन्य मुनन सम नाहिं मैं, आजुहि दत चेताय—”
अस कहि पुनि पुनि शाप-भय, दरसायेउ मुनिराय । १३३
हरिहु कीन्हि पुनि पुनि विनय, दीन्ह लाय गृह वास,
दुर्वासहु लागे सबहिं, देन अहर्निश त्रास । १३४

कबहूँ भोजन करहिं अपारा,
थकहिं बनावत राज-सुआरा ।
कबहुँ अमित व्यञ्जन बनवावहिं,
निराहार पुनि दिवस बितावहिं ।
कबहुँ जाहिं तजि भवन परायी,
खोजत विकल फिरहिं यदुरायी ।
कबहूँ रोदन सदन मचावहिं,
गहि पद हरि विनवहिं, समुझावहिं ।

कबहुँक अट्टहास करि भारी,
करहि नृत्य-गायन दै तारी।
वसन, उपकरण कबहुँ नसावहि,
कबहुँ राजगृह अनल लगवहि।
एक दिवस निज कक्ष जरायी,
व्याकुल कहेउ हरिहि मुनिरायी—
“लुधा उदर मम लागी भारी,
अबहिं खवाबहु खीर मुरारी।”

दोहा:—पायस-पूरित पात्र प्रभु, लाय घरेउ मुनि पास,
खाय तप्त कछु, लखि हरिहि, कहेउ मुनीश सहास— १३५

“पायस यह उच्छिष्ट उठायी,
लेहु तप्त सर्वाङ्ग लगायी।”
मुनि हरि तनिक विलंब न कीन्हा,
पायस पोति अंग निज लीन्हा।
दैवयोग रुक्मिणि तहँ ठाढ़ी,
कौतुक लखत हँसी हिय गाढ़ी।
लखि हरि तन जैसेहि मुसकानी,
धाय मुनीश गही हरि-रानी।
पोती पायस, बिहल बाला,
गये कर्षि लै जहँ रथ-शाला।
“हा ! हा !” करि धाये बहु परिजन,
बरजे सेवक यदुपति सैनन।
जोरि रुक्मिणिहि स्यंदन साथी,
लाये पुरी-मध्य मुनिनाथा।
प्रेरत करि करि वेत्र प्रहारा,
जुरी राजपथ भीर अपारा।

दोहा :—धावत रथ पाछे हरिहु, पायस नख-शिख गात,
बरजत जो कोउ मुनिवरहि, तेहि हरि बरजत जात। १३६

चलत न स्यंदन रानि चलावा,
लखि विनीत हरि वचन सुनावा—

जोरहु स्यंदन मोहिं मुनिरायी !
 लेहैं दोउ हम रथहिं चलायी !”
 मुनि मधुसूदन-गिरा गतस्मय,
 व्याप्त अपार मुनिहु उर विस्मय।
 प्रीति-युक्त तजि सत्वर स्दयन,
 विह्वल भरे भुजन यदुनंदन—
 ‘लखे तात ! मैं नर, मुनि, देवा,
 तीनहु भुवन लही बहु सेवा,
 कीन्ह न अस कोउ मोर निवाहू,
 धैर्य-अवधि अस लखेउँ न काहू।
 गर्व-रहित अस विश्व न आना,
 प्रमुदित देत तुमहिं वरदाना—
 चिर रण-जयी सुयश-उजियारे,
 मृत्युहु होय अधीन तुम्हारे।

दोहा :— लेपी जहँ जहँ तात ! तुम, पायस आजु शरीर,
 होहि वज्रवत अंग सब, रहित रोग, श्रम, पीर।” १३७

बहुरि क्षमा रुक्मिणि सन माँगी,
 दीन्हे वर मुनिवर अनुरागी।
 उग्र स्वभाव त्यागि दुर्वासा,
 कीन्ह दिवस कछु और निवासा।
 गमन-समय पुनि करत बड़ाई,
 पूछेउ प्रश्न हरिहिं मुनिरायी—
 “त्रिकालज्ञ तुम त्रिभुवन-ज्ञाता,
 करत न कारण विनु कछु ताता !
 पायस तुम सर्वाङ्ग लगायी,
 एक चरण-तल दीन्ह बरायी।
 भये कुलिश सम दृढ़ सर्वस्थल,
 आयुध-भेद्य रहेउ पै पदतल।”
 भाषे वचन विहँसि भगवाना—
 “जन्म साथ मुनि ! मृत्यु-विधाना।

मर्त्य-रूप मैं महि अवतारी,
'नहिं अमरत्व कृष्ण अधिकारी ।

बोद्धा :— होय विफल नहिं भव-नियम, वृथा न आशिष जाय,
ताते मैं मुनिनाथ ! निज, पदतल दीन्ह विहाय । १२८

मुनत वचन मन मोद महाना,
माँगि विदा मुनि कीन्ह प्रयाणा ।
गत कछु दिवस सहस दस शिष्यन,
लै पहुँचे मुनि काम्यक कानन ।
प्रकटेउ धर्म नृपति अनुरागा,
जुधा-त्रस्त मुनि भोजन माँगा ।
सुरसरि-वारि निमज्जन हेतू,
गवने शिष्यन पार्थ समेतू ।
इत पाञ्चाली पतिन जेंवायी,
तजेउ पाकगृह भोजन पायी ।
रिक्त पात्र, सीथहु नहिं शेषा,
लखि काँपेउ मन धर्म नरेशा ।
विश्व-विदित मुनि-रोष महाना,
सुमिरे द्रुपद-सुता भगवाना—
“सभा-भवन जस मोहिं उवारा,
करहु नाथ ! तस पुनि उद्वारा ।”

बोद्धा :— कुटी-द्वार ठाढ़ी विकल, उड़न चहत जनु प्राण,
रथ-धर्षर श्रवणन परेउ, आय गये भगवान । १२९

परसे जस प्रभु भूपति-चरणा,
मुनिवर-वृत्त द्रौपदी बरना ।
श्रम दरसाय कहेउ घनश्यामा—
“कीन्ह मार्ग नहिं मैं विश्रामा ।
देहि सखी ! कछु मोहिं खवायी,
मुनि-हित पाक करहि पुनि जायी ।”

मुनि पाञ्चाल-मुता बिलखानी—
 “तुमहु लजावत मोहिं सुख-दानी ।
 सबहि खवाय कीन्ह मैं भोजन,
 रिक्त पात्र, नहिं भवन अन्न-करण ।”
 भाषेउ सुनत श्याम मुसकायी—
 “पात्र मोहिं दरसावहु लायी ।”
 सुनत स्त्रीमि तिय लायी भाजन,
 खोजत हरि इक लहेउ शाक-करण ।
 ललकि उठाय ताहि मुख राखा,
 “तोषहु विश्वरूप !” प्रभु भाखा ।

दोहा :—कहेउ भीम सन पुनि विहँसि, “लावहु मुनहि बोलाय,
 दश सहस्र शिष्यन सहित, भोजन पावहिं आय ।” १४०

उत मुनिजन करि सुरसरि-मज्जन,
 तजि जल धरेउ मही जस चरणन,
 लागेउ उदर अजीर्ण कराला,
 पूछत एकहिं एक विहाला—
 “अब लागि हम न फलहु इक खावा,
 उदर अजीर्ण कहाँ ते आवा ?”
 भाषेउ गुरुहिं, “छमहु अपराधा,
 उपजी नाथ ! उदर कछु बाधा ।”
 विकल आपु बोले दुर्वासा—
 “साँचहु हम नृप-भोजन नासा ।
 मोरेहु उदर अजीर्ण अकारण,
 जनु आकण्ठ कीन्ह मैं भोजन ।
 कणहु न सकत महुँ अब खायी,
 कहिहौं काह पाण्डवन जायी ?
 ये हरि-भक्त पाण्डु-मुत सारे,
 बसत सतत हरि-शरण-सहारे ।

दोहा :—अम्बरीष राजर्षि कर, जब ते लखेउँ प्रभाव,
 हरि-भक्तन ते मैं करत, अब न कबहुँ दुर्भाव । १४१

यहि मँ पुनि अपराध हमारा,
करिहै रोष नरेश अपारा।
सुम्त एकहि मोहि उपायी,
जाहि यहाँ ते अबहि परायी !”
अस कहि भागे मुनि भय भारी,
भागी भीत मण्डली सारी।
पार्थ प्रतीक्षत पथ तरु-छाया,
लखेउ पलायित विप्र-निकाया।
भीमहु आय दीख तेहि काला—
भागत मुनिजन जनु मृगमाला।
चकित बंधु दोउ रहे पुकारी,
लखेउ न भूलिहु मुनिन पछारी।
अंत हताश नृपति दिग जायी,
सकल पलायन-कथा सुनायी।
विकल सुनत सोचत नरनाहा—
कीन्ह रोष मुनि कारण काहा ?

दोहा :—मुनि सस्मित हरि-द्रौपदी, बहुरि मुनिहि बिसराय,
बिछुरे पार्थहि हरि ललकि, लीन्हैउ हृदय लगाय । १४२

शस्त्र-प्राप्ति, सुरपुर-पहुनाई,
सुनी सखा-मुख हरि हर्षायी।
तबहि सास्र दृग द्रुपद-कुमारी,
हरिहि निवेदित गिरा उचारी—
“पूर्ण नाथ ! यद्यपि वनवासू,
उर नहि लेशहु हर्ष-हुलासू।
द्वादश वर्षहु ते मोहि भारी,
यह अज्ञातवास भयकारी।
जेहि जो पाय टोह कहूँ कुरुजन,
पुनि सोइ द्वादश वर्ष विजन वन।
भारत महितल थल कहूँ नाथा !
जहँ न ज्ञात भारत-अधिनाथा ?

हम दीनन के तुमहिं सहारा ,
कवनिहु भाँति लगाबहु पारा ।”
विकल आपु सुनि कह भगवाना—
“धर्म नृपहिं तुम अजहुँ न जाना—

दोहा:—सत्य व्रती ये धर्म-सुत, करिहैं निभृत निवास ,
सकिहौं पाय न वर्ष भरि, महुँ लेश आभास ।” १४३

क्लेशस्खलित विश्वपति वाणी ,
सुनि चिर दुःखिनि तिय बिलखानी ।
हेरति हरिहिं, लखति पुनि पति तन ,
भूलत संशय-शोक-दोल मन ।
सिक्त कपोल नयन जलधारा ,
दीन्ह धैर्य हरि शोक निबारा ।
नभस्फूर्ति भरि, हृदय दृढ़ायी ,
गवने द्वारावति यदुरायी ।
पाण्डु-सुतन मिलि कीन्ह विचारा ,
तजि वन, पुर विराट पगु धारा ।
नाम नवीन, नवीनहि वेषा ,
कीन्ह अवनिपति-भवन प्रवेशा ।
सकेउ न मत्स्य-नाथ पहिचानी ,
करि सेवक राखे सन्मानी ।
नृप-अन्तःपुर द्रुपद-कुमारी ,
दासी वृत्ति जाय स्वीकारी ।

दोहा:—यहि विधि इत मत्स्येश-गृह, लहे पाण्डुसुत वास ,
उत भक्तन हित कीन्ह हरि, मिथिला पुरी प्रवास । १४४

मिथिला-पति अरु द्विज श्रुतदेवा ,
दोउ हरि-भक्त चाहत पद-सेवा ।
कीन्ही हठ दोउन सस्नेहा—
“करहु निवास नाथ ! मम गेहा ।”

लखि हरि दोउन भक्ति अनूपा,
बसे दुहुन गृह धरि दुइ रूपा ।
अर्पि धूप, दीपक, सज चंदन,
कीन्हैउ भूप सविधि, प्रभु-पूजन ।
तोय, तुलसि-दल ते करि सेवा,
तोषे श्रीपति द्विज श्रुतदेवा ।
राजभवन बहु षटरस व्यंजन,
शाक-पात द्विज रंक निकेतन ।
नृप-गृह हंस-तूल पर्यङ्का,
द्विज-गृह दभासन महि-अंका ।
निबसे प्रभु दोउ मानि समाना,
लखत भाव, नहि भव भगवाना ।

दोहा:—हरि-दर्शन हित नित जुरति, पुरजन-भीर अपार,
मिथिला लागि मानहुँ भयेउ, बहुरि राम अवतार । १४५

सोरठा:—निज-निज गृह बिलमाय, राखेउ साम्ह विप्र, नृप,
जनकपुरी यदुराय, निबसे बहु दिन भक्ति-वश ।

दिवस एक तहँ नारद आयी,
“प्रकटे पाण्डव”—कहेउ सुनायी ।
“पाण्डु-सुतन भरि वत्सर कुरुजन,
खोजेउ देश, विदेश, तीर्थ, वन ।
विफल-यत्न उपजेउ उर निश्चय—
भये पाण्डु-सुत नष्ट असंशय ।
गत मन शल्य, निखिल बल साथी,
चढ़ेउ विराट नगर कुरुनाथा ।
निबसत तहँ पाण्डव बलधामा,
छद्म वेष धृत छद्महि नामा ।
जीते अर्जुन रण सब कुरुजन,
द्रोण, कर्ण, कृप, शान्तनु-नन्दन,
मत्स्य-नृपहि वर्षान्त धनंजय,
दीन्ह प्रकटि निज आतन परिचय ।

प्रमुदित चहेउ मत्स्य नरनाहू,
सुता-संग अभिमन्यु-विवाहू।

दोहा :— निवसि यहाँ मिथिलापुरी, करत नाथ ! तुम काह ,
झायेउ उत मत्स्येश-पुर, समरस्मर - उत्साह ।” १४६ .

कीन्हेउ विहँसि मुनीश प्रयाणा ,
लौटे द्वारावति भगवाना ।
पाण्डव-दूत तहाँ हरि केरी ,
रहे बाट नित आतुर हेरी ।
सँग यदुजन, पाण्डव-सुत सारे ,
मत्स्य-पुरी यदुनाथ सिधारे ।
पुलकित मिलत, विलोचन-वर्षा ,
मनुज-मनोरथ ते बढ़ि हर्षा ।
जमु नव जन्म पाण्डु-सुत पावा ,
नयनन नीर हरिहि अन्हवावा ।
मुदित मत्स्य-पति हरि-पद वंदत ,
उदित आजु जनु-सुकृत जन्म शत ।
आयेउ सात्मज द्रुपद महीशा ,
पुनि सहदेव मगध अबनीशा ।
काशिराज नव नृपति उदारा ,
धृष्टकेतु शिशुपाल-कुमारा ।

दोहा :— विद्यमान अवनीन्द्र बहु, व्यास अपूर्व उछाह ,
कुँवरि उत्तरा सँग भयेउ, अर्जुन-सुवन विवाह । १४७

दिवस द्वितीय विराट निमन्त्रित ,
भये स भा सब नृप एकत्रित ।
एकहि चिन्ता व्यास सबन मन—
लहिहँ किमि पाण्डव निज सहि-धन ।
जदपि सकल नय-नीति-उपासी ,
पाण्डव - सुख - मृद्धि - अभिलाषी ।

बंधु-विरोध सोचि हिय सकुचत,
हरि दिशि लखत, न निज मत प्रकटत ।
द्विविधा विकल विलोकि समाजू,
कीन्हेउ भंग मौन यदुराजू—
“जुरे विवाह हेतु हम यहि थल,
पूर्ण सो भयेउ कार्य शुभ सकुशल ।
दै वर बंधुहिं असीस सनेहा,
उचित जाहिं हम निज निज गेहा ।
पै ये धर्मराज मतिमाना,
साधु-वृत्ति, गुण-शील-निधाना ।

दोहा:—नृप-कुल जिनहि वरिष्ठ गुनि, मानेउ हम सर्वेश,
आजु कपट-हृत-राज्य-श्री, निष्कासित निज देश । १४८

शैशव ते कुरुजन इन संगी,
राखेउ बैर बढ़ाय अभंगा ।
पुनि पुनि मैं निज हृदय विचारा,
कीन्ह कि कछु अघ पाण्डु-कुमारा ?
सूक्त अघ एकहिं मोहि भारी—
ये नृप-सुवन राज्य-अधिकारी ।
नृप-सुत जदपि सुयोधन नाहीं,
प्रबल राज्य-लिप्सा मन माहीं ।
शूरवीर ये पाण्डु मानी,
करि न सकत अरि बल ते हानी ।
ताते नित्य नवीन कुमन्त्रा,
विष, जतु-गेह द्यूत-षडयंत्रा ।
पाण्डव-नेही बहु नरनाहा,
लखत अनीति होत उर दाहा ।
रहत चुपाय तदपि गुनि निज मन,
उचित न बंधु-वैर-उदीपन ।

दोहा:—भीमार्जुन, माद्री-सुवन, उरहु अमर्ष अपार,
पै अमज-वर्जित सहेउ, अब लागि सब अपकार । १४९

दारुण तिय अपमानज कोधा,
 चहत लेन भीषण प्रतिशोधा।
 धर्म-सुवन पै सकल बिसारे,
 आजहु क्षमा भाव उर धारे।
 कहत—‘जो पैतृक राज्य विशाला,
 पालेउ जाहि पाण्डु महिपाला,
 राखहि निज हित सब कुररायी,
 भोगहि वैर भाव बिसरायी।
 लहेउ बहु-बल हम जो राजू,
 देहि सो फेरि हमहि कुरराजू,
 असामान्य यह पाण्डव-त्यागा,
 बंधु-सनेह, शान्ति-अनुरागा।
 मम मत लै गजपुरी सदेशा,
 पठवहि पाण्डव दूत विशेषा।
 करि निश्चय इतनहि यह आजू,
 गवनहि निज निज पुर नरराजू।

शेडा :— जान नृपति धृतराष्ट्र-मत, दुर्योधन - उद्गार,
 करिहैं हम पुनि मिल सकल, ग्रह - संधि-विचार ।” १५०

जब लगि करत रहे हरि भाषण,
 निरखत वदन विकल संकषण।
 शान्ति-वचन सुनि उर अनुरागे,
 आपहु कहन सभा सन लागे—
 पाण्डु-सुवन ये, कुरुजन सोऊ,
 सम-संबंधी हमरे दोऊ।
 उचित न बंधु-बंधु बिच रारी,
 लेहु सकल मिलि दुहुन सँभारी।
 पठवहु अस कोउ दूत सुजाना,
 करत जासु दोउ कुल सन्माना।
 कुरुजन वृद्धन-दिग शिर नायी,
 पाण्डव-बिनय सुनावहि जायी।

कहि मृदु वचन करहु निज काजू ,
जो कछु मिलहि लेहु सोइ आजू ।”
सुने वचन ये जस युयुधाना ,
लागे छर विषाक्त जनु बाणा ।

दोहा :— प्रकटी रिस निज व्यंग मिस, “देहि न अरि जो भीख ,
तौ चुपाय पाण्डव बसहि, गाह संकर्षण-साख ।” १५१

छर आवेश छम सुनि व्यंगा ,
विसरेउ रामहि समय प्रसंगा—
“सात्यकि सहजहि कलह-परायण ,
करत सतत पाण्डव-गुण-गायन ।
अक्ष-अदक्ष धर्म नरगायी ,
दिये राज्य, तिय, अनुज गँवायी ।
आपुहि राखि दाँव पुनि हारा ,
कीन्ह तबहुँ कुरुजन उपहारा ।
काटे सबन दासता-बधन ,
दीन्हेउ फेरि समस्त राज्य-धन ।
तबहुँ न तजेउ व्यसन नरराजू ,
खोयेउ खेलि बहुरि धन राजू ।
स्वेच्छा इन निज सर्वस हारा ,
गवने कानन प्रण-अनुसारा ।
देत न धर्म-नृपहि कस दोषा ?
करत सुबोधन-प्रति कत रोषा ?

दोहा :— लहे धर्म-सुत क्लेश जो, सकल धूत-परिणाम ,
त्यागहु धर्म-प्रलाप सब, लेहु न रण कर नाम ।” १५२

खिन्न श्याम सुनि वचन अशोभा ,
प्रकटेउ उत सात्यकि छर क्षोभा—
“महावीर यद्यपि बलरासा ,
समर-धीर, बल-विक्रम-धामा ,

दीन्ह विचित्र स्वभाव विधाता,
मानत विश्व-सार निज गाता !
समुक्त मोहि विरचि बनायी,
व्यर्थ विशाल सृष्टि निर्मायी !
सकल गुणन पै मम अधिकारा,
अन्य जीव केवल महि-भारा !
गनत आपु महँ जो गुण भूषण,
लागत अन्य माहि सोइ दूषण ।
सहज मिताशय जानत नाहीं—
हलधर-यश केवल कुल माहीं ।
इनते अधिक गुणन-उजियारे,
तिलक त्रिलोकी पाण्डव सारे ।

कवि :—नाहि आत्म-संभावितहि, करत विश्व-यश-गान,
शौर्य, धर्म, धृति, सत्य-बल, इन जीते भगवान । १५२

हलधर व्यर्थ बजावत गालहिं,
द्युत-व्यसन नहिं धर्म भुआलहिं ।
पिता सदृश धृतराष्ट्र नरेशा,
दीन्हेउ द्युत-हेतु आदेशा ।
खेलन हेतु विवश नृप कीन्हा,
हरि धन-धाम, वास वन दीन्हा ।
तवहूँ हलधर धर्म विहायी,
करत सुयोधन शिष्य बड़ाई ।
वरने बहु कुरुजन उपकारा,
कस पाञ्चाला-वृत्त बिसारा ?
सुजन कवन धृतराष्ट्र समाना,
बधुहिं द्युत जीतत सुख माना ।
को दुःशासन सम उपकारी,
लायेउ सभा कर्षि कुल-नारी !
को धर्मज्ञ भीष्म सम आना—
नयनन लखेउ वधू-अपमाना ।

दोहा :— कुरुपाति हलधर-शिष्य सम, को जग शील-निधान ,
समा उधारी जाँव जेहि, करि उपकार महान ! १५४

जिनके लखत कृपा करि भारी,
कर्षी दुःशासन तिय-सारी,
ते कुरु-वृद्ध अन्न-धन-दासा,
तिन्ते व्यर्थ नीति-नय-आशा ।
पठये दूत सरै नहिं काजू,
रण तजि अन्य उपाय न आजू ।
करत जो एक बार कुटिलाई,
छमत सुजन तेहि रोष विहायी ।
पद पद करत अहित जो प्राणी,
छमत ताहि केवल अज्ञानी ।
दरड-साध्य जे खल जग माहीं,
पठबब व्यर्थ दूत तिन पाहीं ॥
मृदुता ते कातरता मानत,
गुनि निर्बल औरहु हठ ठानत ।
उचित न तहाँ साम-उपचारा,
औषधि एक समूल सँदारा ।

दोहा :— जोरहु यहि थल, यहि क्षणहि, सैन्य, सुहृद, सामन्त,
कुरु-कुल पूर्णाहुति बिना, करहु न रण-क्रतु अन्त ! १५५

सोरठा :— कहै वचन युयुधान, बहेउ समा-महि वीर-रस,
रोषावेष महान, अनुमोदेउ उठि उठि नृपन ।

स्वकुल विवाद विलोकि सशोका,
वृद्ध द्रुपद दिशि हरि अवलोका ।
बोलेउ लखि पाञ्चाल भुआला,
दुहिता-दुःख-दग्ध उर ज्वाला—
“सात्यकि-गिरा मोहिं प्रिय लागी,
मिलति न प्रभुता, महि मुँह-माँगो ।

मैं पुनि कृष्णा-कशाकषण ,
सकत कि करि यहि जन्म विस्मरण ?
बिनु अरि-रक्त प्रसाधित धरणी ,
सकत कि भूलि सुयोधन-करनी ?
संधि असंभव कुरुकुल संगी ,
बहिहै शीघ्रहि शोणित-गंगा ।
आजुहि यहि थल सैन्य सजायी ,
मित्र नृपति सब लेहु बोलायी ।
दूत हेतु पै हरि-प्रस्तावा ,
समुचित सोउ मोरे मन भावा ।

बोधा :— जुरत मित्र नृप सैन्य सह, जब लागि यहि थल आय ,
दूत प्रीति-सन्देश लै, गजपुर देहु पठाय । १५६

कैमहु होय रोष उर भीषण ,
तजत न सत्पथ कबहुँ शिष्ट जन ।
रण-प्रसंग लखि दुइ दल माहीं ,
करत न्याय-निर्णय जग नाहीं ।
अघिहु जो शान्ति-वृत्ति दरसावत ,
यह जग अंध तामु गुण गावत ।
“शान्ति ! शान्ति !” सब करत पुकारा ,
धर्महु ते बढि प्राण पियारा ।
संबंधहु कछु याहि प्रकारा ,
विरहित सत्व, विवेक, विचाग ।
यद्यपि छुद्र, अहंकृति भारी ,
जियत शान्ति-प्रियता विस्तारी ।
प्रेरित स्वार्थ आचरण सारा ,
मुद्रा मनहुँ धर्म अवतारा !
कलह-परायण स्वजन बतायी ,
होत तटस्थ शान्ति-गुण गायी ।

बोधा :— सकहि न नर अस पाय मिस, सकहि न जग दै दोष ,
करहु साध-वर्चा प्रकट, रण पै राखि भरोस । १५७

सामहि मात्र न संधि-संदेशा ,
 भेदहु कर तेहि महुँ विनिवेशा ।
 दूत-गिरा सुनि अपने जिय की ,
 लगिहै द्रोण पितामहि नीकी ।
 करिहैं विदुरहु दुहुन सहायी ,
 होइहैं कुपित कर्ण, कुरायी ।
 कहिहै काहुहि कोउ दुर्वादू ,
 मचिहै रिपु-गृह कलह-विवादू ।
 लेहै जो कुरूपति समुभायी ,
 रहिहै तबहुँ कछुक बुढताई ।
 गत-सौहार्द फिरत पुनि नाहीं ,
 बसिहैं रोष द्रोण-उर माहीं ।
 होइहैं भीष्महु हृदय उदासा ,
 करिहैं रण नहि पूर्ण प्रयासा ।
 हित हमार अरि-ऐक्य नसाये ,
 दिखत लाभ बहु दूत पठाये ।

बोदा :— करिहैं वाद-विवाद उत, जब लगि ये कुरु लोग ,
 होइहै पूर्ण हमार इत, समर हेतु उद्योग ।” १५=

वृद्ध द्रुपद नृप-नीति-सयाने ,
 वचन सवन उर जाय समाने ।
 सन्मुख लखि समराग्नि प्रज्वलित ,
 कही गिरा श्रीहरि कछु चिन्तित—
 “वर्ष त्रयोदश लगि दुर्योधन ,
 कीन्हेउ नित्य समर-आयोजन ।
 सकेउँ रोक नहि गति-विधि तासू ,
 रोकत तुम्हरहु मैं न प्रयासू ।
 पै न रणेच्छा मम मन माहीं ,
 चाहत संधि मैं संगर नाहीं ।
 स्वल्पहु संधि-प्राप्त-अधिका ,
 करत सतत निज-पर उपकारा ।

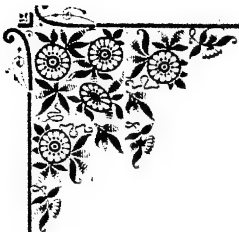
रण-उपलब्ध निखिल जम-राजू,
करत विजेतहु केर अकाजू।
पै हित-हानिहु ते बढि धर्मा,
उचित न भय-वश तजब स्वकर्मा।”

दोहा:—अस कहि नृप द्रुपदहि सकल, सौपि पाण्डुसुत-काज,
स्वजनन सँग द्वारावती, गमन कीन्ह यदुराज। १५६

इत निज कुलगुरु दूत बनाई,
दीन्हेउ गजपुर द्रुपद पठायो।
मृगति विगटहु दूत हँकारे,
चहुँ दिशि लै रण-वृत्त सिधारे।
पाण्डव-समर-निमंत्रण पायी,
लगेउ जुरन नृपन-समुदायी।
उपस्रव्य माहतल अति विभूत,
समनल, योग्य निवेश, परिष्कृत।
दीन्हे सबहि वास मत्स्येशा,
सोहे चहुँ दिशि शिविर अशेषा।
उड़ी पताका नभ बहु बरनी,
छादित बाजि, द्विरद, रथ धरणी।
बोलि धनंजय धर्म नरेशा,
“गवनहु हरि-पुर”—दीन्ह निदेशा।
“राम-विरोध-विमन यदुनाथा,
लावहु तात ! विनय करि साथा।

दोहा:—करेहु युक्ति कछु, राखि तुम, उभर्यास्थिति निज ध्यान,
यदुकुल बढाह विरोध नहि, मलाई मोहि भगवान्।” १५७

सोरठा:—अमज-आज्ञा पाय, कीन्हेउ पार्श्व प्रयाण इत,
सुयोधनहु कुरुराय, गवनेउ हारपुर ताहि दिन।



गीता काण्ड



सोरठा:—वमहूँ पार्थ-यदुनाथ, नर-नारायण रूप दोउ,
 जन्मत संतत साथ, शस्त्र-त्रस्त-महि त्राण-हित ।
 विमुख निराख कुरुराय. अर्जुन निज अभिमुख निरखि ।
 मबज जो भक्त सहाय, हरिहै पुनि जन-क्लेश सोइ ।

इन्द्र-सदन-द्युति-जित निज धामा,
 सुख-निद्रा निमग्न घनश्यामा ।
 जोवत वदन पार्थ कुरुनाथा,
 प्रार्थी आजु दोउ इक साथ ।
 नियति आपु जनु प्रेरि पठाये,
 तेन कर्म-फल निज निज आये ।
 फलगुन शान्त, विकल कुरुरायी,
 जतु-गृह, द्यूत न सकत भुलायो ।
 हुपद-नंदिनी करुणा-क्रन्दन,
 लखि हरि-मुख गूँजत जपु श्रवणन ।

कहि—‘माधव ! मोहन ! दुखहारी ,
रही अजहुँ जनु हरिहिं पुकारी ।
वाम-वसन जस विनु आद्यन्ता ,
कुरुपति उर तस ताप अनन्ता ।
उघरे सहसा कमल विलोचन ,
सखेउ सखहिं पदतल भवमोचन ।

श्रीकृष्ण :—शयन-शीर्ष निरखेउ बहुरि, कुरु-अवनीशहि श्याम ,
हरत मृदास्मत दाह उर, प्राञ्जलि कोन्ह प्रणाम । १

बोलेउ लब्ध-धैर्य दुयोधन—
“आयेउँ लै रण-लागि निमंत्रण ।
यहि गृह-कलह माहि यदुगई ,
करहु सवाहान मोरि सहायो ।
स्वजन जदपि हम दोउ तुम्हारे ,
पहुँचेउँ पूर्व तात ! मैं द्वारे ।
प्रार्थी प्रथम जो आवत पासा ,
पूजत सुजन तासु अभिलाषा ।
सुजन न तुम सम त्रिभुवन माही ,
करहु हताश तात ! माहि नाही ।
चिर उद्धत, अविनीत सुयोधन ,
भयेउ नम्र जनु शील-आयतन ।
कहेउ विहंसि मन मायानाथा—
“आये प्रथम आपु कुरुनाथा !
पै मैं प्रथम धनजय देखे ,
सम तुम दोउ अतिथि मम लेखे ।

श्रीकृष्ण :—तुम अग्रज, यह शिशु सदृश, अर्जुन अनुज तुम्हारा ,
देत ताहि ते मैं प्रथम, तोहि याचन अधिकार । २

करत बहुरि जनु भक्त-परीक्षण ,
भाषेउ अच्युत चितै पार्थ तन—

“गोप-सैन्य नारायणि नामा ,
 जानत तुम मम विक्रम-धामा ।
 समर अन्तकहु-उर भयकारी ,
 रहिहै एक पक्ष सोइ सारी ।
 सैन्य-हीन मैं शस्त्र विहायी ,
 करिहौ पक्ष द्वितीय सहायी ।
 कहहु धनंजय ! प्रश्न हृदय गुनि ,
 चाहत निरायुध मोहि कि बाहिनि !”
 चकित सुनत हरि-वचन सुयोधन ,
 कलकेउ बाहिनि-लोभ बिलोचन ।
 प्रतिपक्षिहि हेरत उर धरकनि ,
 प्रविशी श्रुति-पथ पार्थ सुधा ध्वनि—
 “सदा स्वामि-सान्निध्य उपासी ,
 भक्त न नाथ ! विभव-अभिलाषी ।

श्लोक :— नारायण-रत पाण्डु-मुन, नारायणि-रत नाहि ,
 रहेउ काह अब लहि तुमहि, लहन योग्य जग माहि !” ३

लीन्हे पार्थ निरस्त्र जनार्दन ,
 स्मृत हरि, विस्मित दुर्योधन ।
 बाहि चतुरंगिणि चमू विशाला ,
 हिय अविवेकी हर्ष-विहाला ।
 पुलकित हलधर-मन्दिर जायी ,
 हरि-बन्धुहि हरि-कथा सुनायी ।
 सुनि संकर्षण वदन उदासा ,
 त्यागी कुरुजन-जीवन आशा ।
 विनती कुमति कान्हि करजोरी—
 “कहु सहाय नाथ ! तुम मोरी ।
 करिहैं अब न समर यदुगयी ,
 सकत नाथ ! माहि सहज जितायी ।”
 सुनत कुमत उर रोष अपारा ,
 बरसे राम-वदन अंगारा ।

“विभव-भूति-पूजक, अविचारी,
वैर-वहि तुम निज कुल जारी।

श्रीकृष्ण :— मयेउ तुमहि संतोष नहि, गृह-सौहार्द नसाय,
बहत सोइ भीषण अनल, यदुकुल देन लगाय।

प्रिय महि तुमहि, न बंधु पियारे,
इन मोहन मम आँखिन तारे।
काह चराचर त्रिभुवन माहीं,
तजि जेहि सकहुँ कान्ह हित नाहीं।
महा मोह कुरुनाथ ! तुम्हारा,
बंधु-विमुख मम चहत सहारा।
सायुध होहि कि आयुध-हीना,
विजय सदा मम श्याम-अधीना।
हतेउ जयहि हरि यवनन-नाथा,
आयुध कवन गहेउ निज हाथा ?
मगध-महीपति हरि संहारा,
आयुध कवन हाथ निज धारा ?
यहि रण भीम-पार्थ बलवाना,
अस्त्र-शस्त्र हरि-हाथ महाना।
होइहै दारुण रण हरि-प्रेरे,
यथा बाण सारंग-धनु केरे।

श्रीकृष्ण :— बहत निरायुध आपु रहि, देन तिनहि यश श्याम,
लाहि वाहान फूले फिरत, तुम कुबुद्धि अब-धाम।” ५

उग्र स्वभाव समुक्ति संकर्षण,
त्यागेउ सदन सुयोधन तत्क्षण।
कृतवर्मा-निकेत पुनि जायी,
बिनती कुरूपति सोइ सुनायी।
बोलेउ चतुर भोजकुल-नायक—
“समुक्छु मोहि निज सुहृद, सहायक।

पै जाने बिनु हरि-मन काहा,
 दै नहि वचन सकहुँ कुरुनाहा !
 मैं न रंच पाण्डव-अनुरागी,
 सकहुँ न पै यदुनाथहि त्यागी ।”
 यहि विधि सब कुल-नाथक-भवनन,
 याचत फिरेउ सहाय सुधोवन ।
 कहुँ हरि प्रीत, भानि कहुँ पायी,
 कहुँ दोउ निरखि भ्रान्त कुरुपायी ।
 तर्क-वितर्क करत विधि नाना,
 कीन्हेउ हतमति स्वपुर प्रयाणा ।

दोहा :— इत यदुकुल-नाथक सकल, हरि-मत जानन काज,
 लखेउ जाय हरि-गृह-विमुख, यादव युवक समाज । ६
 रण-नदेश माँगत तरुण, मौनस्थित यदुराज,
 उकसावत सात्याक सहि, रहे राम समुक्ताय— ७

“मम मति कबहुँ न हरि-मन भायी,
 दिन प्रति पाण्डव-प्रीति बढ़ायी ।
 मानि जो मत हरि लेत हमारा,
 करतिउँ मैं मगपति-संहारा ।
 जीतत हमहि चतुर्दिक देशा,
 वशवर्ती सब हात नरेशा ।
 राजसूय मख हमहि रचावत,
 यदुजन चक्रवर्ति-पद पावत ।
 कीन्ह हमहि असुरन-संहारा,
 आर्य-संघ-नेतृत्व हमारा ।
 छीनि ताहि हम ते हरि लीन्हा,
 पाण्डव-हाथ प्रीति-वश दीन्हा ।
 धर्मराज यश यहहि कमावा,
 दौव राखि साम्राज्य गँवावा ।
 अब तेहि चहत लेन करि सारी,
 बहिहै आर्य-रुधिर-सरि भारी ।

बोधा : — बूँदहु , यादव-रक्त मैं, चहत गिरहि रण नाहि ,
रोषेउ जिन यह युद्ध-तरु, तेइ मृत्यु-फल साहि ।” ८

सुनि हलि-वचन कहेउ यदुनाथा—
“बरनी व्यथे पुरातन गाथा ।
नहि साम्राज्य-योग्य जो पाण्डव ,
औरहु तौ अयोग्य हम यादव ।
तुच्छ स्यमंतक मणि हम पायी ,
कलह निखिल यादव कुल छाया ।
लोभहि केहि न वास हिय दीन्हा ?
केहि सन्देह न केहि पै कीन्हा ?
कहत सत्य मैं, तुम सब साखी ,
जन-हित सके न हम माणि राखी ।
बल ते सकत राज्य हम पायी ,
बिनु संयम नहि सकत चलायी ।
विरटत भरतखण्ड महि-शासन ,
चलि कि सकत कहूँ बिनु अनुशासन ?
प्रिय न पाण्डु-मुत, प्रिय मोहि त्यागा ,
प्रिय मोहि शील, धर्म-अनुरागा ।

बोधा : — सत्य बुद्धि, करुणा हृदय, नय दृग, सेवा हृत् ,
धर्म-भुवन सभ कहँ भुवन, धर्म-मूर्ति नरनाथ ? ९

तात-निदेश तदपि सन्मानी ,
निवसहि यदुजन निज रजधानी ।
उचित समर नहि समरहि हेतू ,
धर्म-रहित रण पाप-निवेतू ।
धर्मराज मम श्रद्धा-भाजन ,
भरिहैं भुवन सौख्य लहि शासन ।
श्रद्धा आस जासु हिय नाहीं ,
धरहि न चरण सो यहि रण माहीं ।”
सुनत सहठ हलधर प्रतिभाषा ,
“मम उर रंच न श्रद्धा आशा ।

यदु युवकन यह आज्ञा मारा,
 बिनवहुँ सब गुरुजन कर जोरी,
 जुमहि-झीजहि पाण्डव-कुरुजन,
 जाय न रण दिग एकहु यदुजन ।”
 कह युयुधान—“अटल प्रण मोग,
 करिहौ रण पाण्डव हित-घोरा ।”

रोहा :— भाषेउ कृत —“मैं कुरुपतिहि, वचन दीन्ह निज आज,
 लेहौ-कुरुजन पक्ष जो, रोकहि नहि यदुराज ।” १०

कहेउ विहँमि हरि धीर-शीर्ष-मणि—
 “गवनहु लै सँग मम सब वाहिनि ।”
 अन्य काहु नहि वचन उचारा,
 हलि-आदेश सबन शिर धारा ।
 भयेउ तबहुँ नहि रामहि तोषा,
 प्रकटेउ सात्यकि प्रति उर रोषा ।
 कहेउ दृगाग्नि कृपहि जनु जारी—
 “अविदित नहि मोहि कुमति तुम्हारी ।
 सात्यकि प्रति हिय द्वेष अथाहा,
 लागेउ ताते प्रिय कुरुनाहा ।
 मिलत योग द्वारावति नाही,
 चहत निपातन तेहि रण माहीं ।
 लखि यह विषम बंधु-विद्वेषा,
 होत अशेष धैर्य मम शेषा !
 सत्य कहत हरि यदुजन माहीं,
 रंचहु संयम शासन नाही ।”

रोहा :— सुनेउ न एकहु बल-वचन, कृतवर्मा युयुधान,
 त्यागि समा सत्वर दुहुन, रण हित कीन्ह प्रयाण । ११

प्रतिकृति संकर्षण उर भारी,
 कीन्ह शान्त हरि शोक निवारी ।

करहु पयटन पुनि समुझावा,
हरि-मंतव्य राम-मन भावा ।
तीर्थन हलधर कीन्ह प्रयाणा,
गवने अर्जुन संग भगवाना ।
पथ प्रसन्न यदुनाथ निहारी,
व्यथित पार्थ शुचि गिरा उचारी—
“लखि यदुकुल हम लागि विवाढू,
होत नाथ ! मम उर अवसाढू ।”
हँसि कह करि—यदुवंश हमारा,
गुण-निधि, अवगुण-पारावारा ।
शाय-शील पै अति उहण्डा,
दान-शील पै लोभ प्रचण्डा ।
सत्य-शील पै भोग-बिलासी,
धर्म-शील पै मद्य-उपासी ।

दोहा :—वैभव पै संस्कृति-रहित, पठन तदपि अज्ञान,
मरे सकल कुल-गर्व ते, तदपि अनैक्य महान ।” १२

सुनि निर्लग्न वचन हरि केरे,
अर्जुन चकित सखा दिशि हेरे ।
यहि विधि करत विविध आलापा,
गवनत दोउ, न पथ श्रम व्यापा ।
विषय अनेक सरस गम्भीरा,
थकत न पूछि पार्थ मति-धीरा ।
समुझावत श्रुति-शास्त्र-निधाना,
क्रम-क्रम उपलव्य नियराना ।
नृपन-निवेशन महितल छावा,
युद्ध-वाद्य-स्वर श्रुति-पथ आवा ।
सुनि सोत्साह सुअवसर जानी,
भाषी प्राञ्जलि अर्जुन वाणी—
“चिर संचित इक मम अभिलाषा,
पूजहु आजु जानि निज दासा ।

करहु कृपा मोहि पै जगबंदन,
हाँकरहु समर-मही मम स्थंदन ।”

दोहा :— भाषेउ यदुनंदन विहँसि, “तजहु सकुच निज तात !
ज्वालित हुताशन-सारथी, होत आपुही वात ।” १३

सोरठः—अर्जुन अंग उमंग, ‘एवमस्तु’ हरि-मुख सुनत,
मखा साहित श्रीरंग, प्रविशे धर्मात्मज-शिविर !

जुरे समर-साजित नरराजा,
उठेउ समाज लखत यदुराजा ।
बद्धाञ्जलि स्वागत स्वीकारी,
दृष्टि सभा-महि यदुपति डागी—
कुल पाञ्चाल चतुर्दिक छावा,
द्रुपद-समुद्र उमहि जनु आवा ।
शोभित धृष्टद्युम्न रणधीरा,
सेनप चतुर शिखण्डी वीरा ।
सत्यजितहु सुर-बल-आकारा,
अन्य विपुल पाञ्चाल-कुमारा ।
शोभित पुत्र-प्रपौत्र घनेरे,
क्षत्रदेव आदिक नृप नेरे ।
शोभित अमित द्रुपद-सामन्ता,
युधामन्यु, रण-जयी जयन्ता ।
सोह उत्तमौजा बलवाना,
स्थगण-अग्रगण्य, धनुमाना ।

दोहा :— शोभित सभा विराट नृप, बल-विक्रम-आगार,
शोभित उत्तर, शंख दोउ, पितु संग राजकुमार । १४

शोभित लखे वीर-रस-प्रेरे—
कुँवर पाँच केकय-नृप करे ।
चेकितान तिन माहि अमर्षी,
महारथी, दारुण-शर-वर्षी ।

शोभित वृद्ध महिष रुचिमाना ,
 अश्वमेध जेहि कीन्ह महाना ।
 शोभित वाङ्मन्त्रि अवनीशा ,
 यादव कुन्तिभोज कुन्तीशा ।
 शोभित वाराणसी-भुआला—
 सेनाविन्दु समर-विकराला ।
 शोभन मनहुँ शौर्य साकारा—
 धृष्टकेतु शिशुपाल-कुमारा ।
 शोभित सहदेवहु मगधेशा ,
 सैम सेनप सामन्त अशेषा ।
 शोभित श्रेणिमान महिपाला ,
 अगणित क्षत्रिय म्लेच्छ भुआला ।

दोहा: — नृप चित्रायुध, सत्यव्रत, चन्द्रसेन, वसुदान ,
 शोभित भीमहु, माद्रिपुत्र, शूर-श्रेष्ठ युयुधान । {५

सौरठा:—धर्म महीप समीप, राजन द्रौपदि-पुत्र सकल ,
 सौमद्रहु कुल-दाप, कार्तिकेय जनु सुर-सभा ।

शिविर ताहि क्षण लिये सँदेशा—
 कीन्हेउ कौरव-सचिव प्रवेशा ।
 सूत-सुवन संजय मतिमाना ,
 सुर गुरुसम नय-नीति-निधाना ।
 प्राति धर्मनंदन प्रकटायी ,
 पूछी वंश-क्षेम-कुगलार्ई ।
 सबिनय संजय बचन सुनावी—
 “द्विज जो संजय-राज पठावा ।
 नेह, नात, नय तिन बिसरायी ,
 पुनि पुनि समर-भीति दरसायी ।
 विकल बोलि मोहि वृद्ध भुआला ,
 पठयउ दै सँदेश तत्काला ।
 द्रुपद, विराट, देवक-नंदन—
 करत नरेश सबन अभिनंदन ।

पृच्छत—अद्यत आपु यदुनाथा,
परी श्रवण मम कस रण-गाथा ?

दोहा :—पाण्डव धर्म-धुरीण सब, धैर्य-निधान, उदार,
मत्त-शान्त-व्रत धर्मसुत, अनासाक साकार । १६

करत सो आजु हीन कस कर्मा ?
त्यागत धर्म-पुत्र कस धर्मा ?
जुरे दोउ दिशि विपुल भुआला,
जरन चहनि युद्धानल ज्वाला ।
निश्चित विजय पराजय नाही,
निश्चित जन-क्षय यहि रण माही ?
ताते विन्ता नृपति सुनार्यी—
विग्रह-वार्ता देहु विहायी ।
अब लाग सदा निदेश हमारा,
धम भुआल शीश निज धाग ।
अजहूँ मोहि गुनि अघ, अभागी,
करहि अभय मम सुन मम लागी ।
दशा मोरि मोरेहि गृह माही,
जानन जगत, गोप्य कछु नाही ।
वश नहि मम दुशील सुयोधन,
चहत कुलहु निज संग विनाशन ।

दोहा :—धर्म-सुतहि ते मैं ससुन, मोहि असहाय विचारि,
काल गाल ते कुल निखिल, अबहुँ लेहु उद्धार, ।, १७

सुनत अंय पितृव्य-सँदेशा,
द्विविधा-हृत-धृति धर्म नरंशा ।
अनुजन दिशि नृप लखेउ सशोका,
सस्मित अर्जुन-वदन विलोका ।
लुब्ध अन्य बंधुहु अवलोके ।
जरत रोष-वश गात भीम के ।

गुनत परिस्थित नृप मन माहीं,
चहुँ दिश लखत, कहत कछु नाहीं ।
नृपति-धर्मसंकट पाहचानी,
संजय चतुर कही पुनि वाणी—
“रहेउ अंत जो युद्धहि कर्मा,
सहे कष्ट वन कस धरि धर्मा ?
रहेउ ध्येय जो वंश-विनाशा,
बने विराट-भवन कस दासा ?
जेहि दिन कानन कुरुजन दीन्हा,
करि रण राज्य न कस तब लीन्हा ?

दोहा :— करि भिक्षाटन वरु सुजन, धारत तन निज प्राण,
करत न पार्थिव-विभव हित, भ्रातन रक्तस्नान । १८

धर्म-नृपति सुनि, धीरज धारी,
लखि सचिवहिं शुचि गिरा उचारी—
“पैतृक महि नहिं, त्रिभुवन-राजू,
जो कछु निखिल विश्व सुख-साजू,
ब्रह्म-पदहु निज धर्म बिसारी,
सपनेहु मैं न सकहुँ स्वीकारी ।
प्रिय नहिं कछु जस धर्म पियारा,
चहत शान्ति ते मैं अधिकारा ।
मिलहि सशान्ति मोहि जो थोरा,
मिलहि अधिक करि कर्म कठारा,
करिहौ स्वल्प स-सुख स्वीकारा,
उर न तात ! मम लोभ पसारा ।
पै जो सुनी आजु मैं वाणी,
उपजेउ मन संशय, उर, ग्लानी ।
निश्चय नृपति कीन्ह मन माहीं,
रंचहु देन चहत मोहि नाहीं ।

दोहा :— रहेउँ मौन सोचत हृदय, उचित युद्ध या भीख,
विद्यमान भगवान यहँ, देहि उचित मोहि सीख । १९

हरि से अधिक नयानय-ज्ञाना ,
 संसृति माहिं आजु नहिं ताता !
 तिन समक्ष दोउ पक्ष समाना ,
 बहत क्षेम, नहिं क्षय भगवाना ।
 भार समस्त धरत तिन शीशा ,
 देहिं निदेश मोहिं जगदीशा ।”
 मुनि कह हरहिं प्रशमत संजय—
 “नास्तदु नाथ ! मोह, भय, सशय ।”
 कृत्स्नि कौशल विहँसे यदुवीरा ,
 कहत बचन पुनि वदन गँभीरा—
 “दून-कर्म संजय शिर धारा ,
 धर्माधर्म विवेक विमारा ।
 बसेउ स्वामि-हित अत मन माहीं ,
 राखेउ ज्ञान, ध्यान कछ नाहीं ।
 कहहु कवन श्रुति माहिं निदेशा ,
 केहि अघि कहाँ दीन्ह उपदेशा ,

श्लोक — धर्म-शास्त्र कहँ जो कहत, शान्ति अहिंसा काज ,
 भिक्षाटन क्षत्रिय करहि, प्रतिपक्षिन दै राज । २०

दारुण, क्रूर जदपि रण-कर्मा ,
 शास्त्र-विहित सोइ क्षत्रिय-धर्मा ।
 करि तप पावत गति जो मुनिजन ,
 लहत धर्म-रण सोइ शूराणा ।
 कर्महि माँहि निहित भव-मर्मा ,
 नहिं स्वकर्म ते बढ सद्धर्मा ।
 रवि करि कर्म उअत आकाशा ,
 लहत निखिल यह लोक प्रकाशा ।
 कर्म-प्रभाव अनल-उत्तापू ,
 बहत प्रभंजन कर्म-प्रतापू ।
 करत स्वकम व्योम घन छावत ,
 वरसत तृषित जगत सरसावत ।

इन्द्र, कुवेर, वरुण, यमराज,
करत निरालस निज निज काजू।
कर्महि सृजन-बीज, आधारा,
चलत कर्म-बल यह संसारा,

बोधा :—कर्म करत सोई जियत, अकर्मण्य निष्प्राण,
लहत कि कबहूँ कर्म बिनु, मुनिहु मोक्ष-निर्वाण ? २६

जन-संरक्षण क्षत्रिय-कर्मा,
दम्यु-दमन पाण्डव-कुल-धर्मा।
देत तिनहि संजय उपदेशू—
सौपहि दम्यु-हाथ निज देशू,
अघ-बल लहि शासन कुरु लोगू,
कहि नित्य नव वैभव भोगू।
पाण्डव-पुत्र निज धर्म विहायी,
माँगत भीख भ्रमहि जग जायी !
यह नहि धर्म, धर्म-अभिशापू,
संजय माधु सिखावत पापू !”
मुनि हरि-वचन सचिव स्कुचाना,
कहि—“धिक् दौत्य !”—हृदय पछताना।
लखत प्रभुहि पद प्रीति अगाधा,
सकत न कहि—नहि मम अपराधा।
निरखि दशा हरि कह मुसकायी—
“देहु संदेश नृपहि यह जायी—

बोधा :—चहत पाण्डुमुन स्वत्व मैं नहि जन-नाश अनर्थ,
वैग वद्ध नृप-धाम मैं, अइहौं बनि मध्यस्थ ।” २७

गजपुर संजय गये सुखारे,
निज-निज शिविरन नृपहु सिधारे।
लहि एकको हरिहि नरेशा,
प्रकटेउ हृदय संयमित क्लेशा—

“गजपुर गमन नाथ ! मन कीन्हा,
बूडत मोहि उबारि जनु लीन्हा।
वृद्ध नृ.हिं समुझाय बुझायो,
देहु काहु विधि संधि करायी।
संतत जदपि धर्म-पथ-गामो,
मंद भाग्य को मम सम स्वामी ?
मातु, भ्रान, पत्नी, सुत मारे,
मोरहि कृति हन-वित्त, दुखारे।
कहत अधर्म नाथ ! महि-त्यागा,
भीषण युद्ध-माग मोहि लागा।
शान्ति-यत्न निष्फल जो हं ई,
सकिहै रोकि समर नहिं कोई।

श्लोकाः—श्वान-रागि नृप-युद्ध भोहि लागत एक समान,
मही-खण्ड हित नृप लरत, मांस-खण्ड हिन श्वान ! २३

— श्वान हू शान्ति-प्रियामू,
नचाय चहत इक प्रासू।
ज-यत्न दशन दरशावत,
करन, भूँकत, चढ़ि धावन।
छीनि बल-विग्रहित प्रसा,
सगर्व प्रकटि उल्लासा।
सब श्वान-वृत्ति नृप माहीं,
चख दिखत कहूँ नाहीं।”
। सुनत मोह-मद-भंजन,
त तात ! नहिं आत्मप्रवंचन,
न नाहि नयानय-ज्ञाना,
निज-पर मानि संमाना।
हरन नहिं हम कुरुगजू,
स्वत्वहि माँगत तुम आजू।
जब श्वान-कुवृत्ति अराती,
सर्वस त्रासत दिन राती,

दोहा:—रहत शान्त जे नर तबहुँ, कार वचस्व बखान ,
बचक, श्वानहु ते पातत, राहत आत्म-अभिमान । २४

समर बरावन हित मैं सारे ,
कारहौ यत्न अमषे बिसारे ।
फलहि जो यह दूतत्व हमारा ,
मिलहि जो रण विनु भवत्व तुम्हारा ।
पुष्ट्य मोहि, कुरुजन-कल्याणा ,
प्रजा-नृपन-गृह मंगल नाना ।
हुलसत पै न तात ! मन मोरा ,
कुरुपति हठी, वैर उर घोरा ।
भीष्माधिक आपुहि भट मानत ,
अजुन ते बाढ़ कर्णहि जानत ।
गुनि निज जय निश्चित रण-प्रांगण ,
चहत युद्ध, नहि संधि सुयोधन ।
ताते वीर-वृत्ति अपनायी ,
हिय-द्विविधा अब देहु बिहायी ।
जोर वाजि, गज, सैनिक, स्थंदन ,
करहु पूर्ण निज रण-आयोजन ।”

दोहा:—यहि विषबोधि युधिष्ठिरहि, कहेउ बोलि युधुधान—
“राखहु साजि सशस्त्र रथ, करब प्रात प्रस्थान ।” २५

नखत रेवती, कार्तिक मासू ,
कीन्हेउ मैत्र मुहूर्त प्रवासू ।
दारुक प्रात शिविर रथ लावा ,
सात्यकि सहित हरिहि बैठावा ।
मेरु-शिखर सम शोभित स्थंदन ,
राजत सुरपति सम यदुनंदन ।
जुरे विदा हित जन, अवनीशा ।
पढ़त वेद द्विज, देत असीसा ।
सहसा मरसिज-सुराभि सोहायी ,
भरति मही-नभ तेहि थल छायी ।

शिविर आर यदुनाथ निहारा,
विलपति द्रुपद-सुता पग धारा।
कुन्तल मुक्त हस्त धृत बाला—
कुरु-कुल-क्राल-ज्याल विकराला !
बोली हरिहिं विलोकि, विहाला,
दृग-जल बहेउ बदन बनि ज्वाला—

श्लोक—“करत लगहि अरि-संग जब, संधि आपु विश्वेश,
दुःशमस-कषित प्रभो ! बिसरहिं नहि ये केश । २६

चहत न रण जो धर्म भुआला,
भूमहु मौन गही यहि काला,
भयी जो पार्श्वहिं शान्ति मियारी,
वृत्ति जो सोइ माद्रि-सुत धारी,
सोह न तुमहिं शान्ति यदुरायी,
करिहैं मम सब स्वजन सहायी।
यद्यपि वृद्ध द्रुपद महाराजा,
कुद्ध, युद्ध करिहैं मम काजा।
महारथी मम भ्राता सारे,
बसिहैं शान्त न बिनु अरि मारे।
पाँचहु पुत्र मोर अब योद्धा,
लैहैं युद्ध मातु-प्रतिशोधा।
शौर्य-राशि अभिमन्यु हमारा,
रण कटि-बद्ध, चहत प्रतिकारा।
सकहि को रोकि समर गति ताकी,
सकत नासि अरि-कुल एकाकी।

श्लोक—जब लगि दुःशामन जियत, जियत अधम कुरुगज,
तब लगि वसुधा-पृष्ठ नहि, शान्ति अहिंसा काज । २७

भाषे कृष्णा वचन अँगारे,
वीर-हृदय पल माहिं प्रजारे।

साधुवाद सुनि द्विजजन दीन्हा,
 सिंह-निनाद शूरगण कान्हा ।
 बोध-भरी हरि दृष्टि उठायी,
 द्रुत-सुता हिय-दाह मिटायी ।
 जय-अ वेश, रोष-रव छावा,
 दारुक भयंजन तबहि चलावा ।
 चक्र-कान्त मेदिनी काँपी,
 गति-ध्वनि अंतराल भरि व्यापी ।
 गवनत हरि बहु मंगल-मूला,
 बोलत उड़े विहग अनुकूना ।
 दिशा प्रशान्त, विमल आकाशा ।
 शीतल मंद बहेउ वातासा,
 पथ दुहुँ ओर अपार जुरे जन,
 बरसन सुमन, करत जय निःस्वन ।

श्लोकाः—सम्मानित प्रति पुर निगम, ग्राम-ग्राम घनश्याम,
 विरमि वृकस्थल कान्ह नाश, सात्यकि सह विश्राम ! ३८

उत गजपुर हरि करत प्रयाणा,
 अशकुन भये भयंकर नांना ।
 निज दूतत्व-वत्त सब जेहि क्षण,
 बरनत संचय नृपति निकेनन,
 करि शत-शत तरुवर उत्पटन,
 सहसा भीषण बहेउ प्रभंजन ।
 नभ अनभ्र अंभोधर गर्जन,
 तड़ित तडक, दारुण जल-वर्षण ।
 धुन्ध अध, दिशि जानि न जाहीं,
 व्याप्त निशा-तम वासर माहीं ।
 भूमि प्रकम्प, पुगी आतका,
 विकल वृद्ध नृप, उर भय श ।।
 वृत्त बहोरि गुप्तचर लाये—
 “सौम वकस्थल यदुपति आये ।”

सुनत अंध विस्तारो माया,
कहत वचन रोमाञ्चित काया.

दोहा:—“पूज्य मोग यदुगाज ये, करन चहहुँ सत्कार,
करहु वृक्षस्थल प्राम लाग, अबहि मार्ग-संस्कार। १६

मलयज चंदन वर्त्म सिंचायी,
ध्वजा-पताकन देहु सजायी।
रचहु निवास सुखद प्रति प्रामा,
पठवहु भाग वस्तु अभिगमा—
पेय सुवामित, षट् रस व्यंजन,
वसन, विभूषण, मणि-मय आमन।
पुरिहु सजावहु स्वागत हेतू,
आपण, गंधया, पंथ, निकेतू।
करहि सुवन शत मम अगवानी,
लावहि भवन अतिथि सन्मानी।
कृष्ण समर्थ, प्रभाव अनंता,
कहत कोउ-कोउ ये भगवंता!
प्रबल पाण्डुमुत इनहि सहारे,
कवहुँ न कृष्ण-वचन तिन टागे।
आवत आजु सदन यदुरायी,”
होहि प्रसन्न करहु सोइ जायी।

दोहा:—भीष्म द्रोण विहँसे सुनत, अंध नृपति-उद्धार,
कहत विदुर—‘विभु साथ नहीं, उाँचत तात ! व्यापार।’ ३८

रचहु तुमहि न प्रभु-पद-प्रीति,
विस्तारत व्यर्थहि नृप-नीती।
यहि ते अधिक काह अज्ञाना—
चहत लोभावन तुम भगवाना!
विभव-बिलास-वस्तु दरसाये,
कव केहि श्रीपति निज करि पाये?

प्रिय अति हरिहि हृदय सरलाई,
होत विरक्त लखत चतुर्गई।
करहु विचार त्यागि छल माया,
आवत शान्ति हेतु यदुगाया।
एकहि विधि श्रीहरि-सत्कारा—
पावहि पाण्डव निज आधिकारा।
यहि ते अधिक धर्म नहि दूजा,
यहि ते बढि नहि यदुपति-पूजा।
बसत न जो यह हृदय विचारा,
बिफल सकल सत्कार-प्रसारा।

बोद्धाः—कोटिन करहि प्रयत्न कोउ, त्रिभुवन विभव दिखाव,
धर्म, धर्मसुत ते कबहुँ, सकत न हरि बिलगाव ।” ११

बोलेउ सुनहि मुदित सुशोधन—
“आजुहि इन भाषी जो मम मन।
पार्थ साथ यदुनाथ मितई,
सकत न दुहुन कोउ बिलगाथी।
संधि शान्ति नहि मोर विचारा,
व्यर्थ प्रबंध, साज, सत्कारा।
बहत देन कष्टएहि तुम जो धन,
होइहैं वश तेहि बल बहु नृपगण।
पाण्डु-तनय-मातुल मद्रेशा,
रण हित चलेउ पाय सन्देशा।
करि पथ पै स्वागत सेवकाई,
लीन्ह मद्रपति मैं अपनायी।
होइहैं नहि यदुपति वश माही,
नामव उचित धान्य धन नाहीं।
जानि एक पाण्डव यदुरजू,
अइहौ नहि मैं स्वागत-कजू।”

बोद्धाः—भाषेउ सुरसरि-सुत सुनत, “धारहु उर कुछ लाज,
तुमहि भवन सन्मानि निज, ध्वजनि दीन्ह यदुराज ।” १२

मुनतहि समद सुयोधन माखा,
 वचन कुनम्र लाज तजि भाखा—
 यदुपति-कीनि विदुर बहु गायी,
 हृदय-थाह पै मैं सब पायी।
 यहि दूतत्व-सफलता लागी,
 करन हेतु मोहि निज अनुगामी,
 तटस्थता प्रकटित निज कान्हो,
 बाहिनि कुटिल कृष्ण मोहि दीन्ही।
 उघरेउ सो रहस्य सब आजू,
 आवत पाण्डव हित यदुगाजू।
 पै दृढ़ निश्चय मम मन माहीं,
 राजि जय-मृत्यु अन्य गति नाहीं।
 चाहत जो गुरुजन मम तन प्राणा,
 सोचहि जय-उपाय विधि नाना।
 युक्ति एक मैं हृदय विचारी,
 जेहि ते सहजहि विजय हमारी—

रोहता :—करिहौं बंदी यदुपतिहि, बासिहैं जब मम गेह,
 तिन विनु निश्चय शत्रु-क्षय, विराहत असुजिमि देह । ३६

क्रोधित जरे पितामह गाता—
 “कीन्ह न कस मोहि बधिर विधाता।
 हृदय-बुद्धता निज प्रकटायी,
 हरि-हिय-थाह कहत मैं पायी।
 यह कुल-काल, बुद्धि विधि-प्रेरी,
 वंश-विनाश न अब कछु देगी।
 लहि चरणोदक जाशु मुनीशा,
 धारत पुण्य बरनि निज शीशा,
 सोइ हरि अतिथि-रूप गृह पायी,
 करन चाहत पामर अधमाई।
 आततायि यह पातक-गशी,
 निज संग निखिल राज-कुल-नाशी।

उर जो राजन ! वंश-भलाई,
विष सम यह सुत देहु विहाया ।”
अस कहि विदुर द्रोण लै साथी,
गवने भीष्म त्यागि नरनाथा ।

शेहा :—समुझायेउ पितु भाँति बहु, मना न जब कुराज,
पठये भूपात अन्य सुन, यदुपति स्वागत-काज । ३४

विगत निशीथ वृकस्थल ग्रामा,
जागे उत प्रभात घनश्यामा ।
अनुचर-निकर अपार निहारे,
लागे भोग्य वस्तु अंवारे ।
मुनि नरेश धृतराष्ट्र-पठाये ।
शिष्ट शब्द कहि प्रभु लौटाये ।
पथ सर्वत्र सोइ सत्कारा,
बढ़े करत हरि अस्वीकारा ।
जैसेहि कौरव-पुर नियराना,
जनु जन-उदधि उमहि लहराना ।
सुषमा, शील, शौर्य, यश-वर्षित,
आवति चली पुगिहि जनु प्रमुदित ।
पाण्डव-प्रेमी जानि प्रजाजन,
हुलसेउ विभव-विरक्त हरिहु मन ।
तजि इक कुरुगि, कुरुजन सारे,
भेटे प्रभुहि आय पुर-द्वारे ।

शेहा :—द्रोण, कर्ण, द्रौणी, विदुर, कृप, शान्तनु-सुत साथ,
मुमन-वृष्टि, जय-ध्वनि सहित, प्रविशे पुर यदुनाथ । ३५

राजद्वार जब स्येदन आवा,
वृद्ध नृपति-पद हरि शिर नावा ।
दै उपहार महार्ह अनेकन,
नृपहु कीन्ह बहु नेह प्रदर्शन ।

अर्घ्य-पाय-जल-कलश विहाया,
फेरे सबिन्ध, सब यदुराई।
'निवसहु गृह', नृम आग्रह कीन्हा,
उत्तर समुचित यदुपति दीन्हा।
पाण्डु-सुवन-कुल-क्षेम सुनायी,
पूजा वंश प्रजा कुशलाई।
करि संभाषण हास-प्रहामा,
गये विदुर-गृह कुन्तो पासा।
परसे पितृ-स्वसा पद यदुपति,
वरुणहि पाण्डव-माता माकृति।
हरि-मुख लखति जननि अकुनानी,
बाष्प-बारि-विश्रुं बल बाणी।

बोधा—सुतम-कुशल पूछा विकल, कुन्ती शन-शन बार,
करत बधू-सुध घात बही, जनु बनि दग-जल-भार। ३६

बोधि पृथा, लै सात्यकि साथ,
गये सुयोधन-गृह यदुनाथा।
नव गृह बृहत पवताकारा,
कन्या-विहीन, विलास अपारा।
लखेउ असितमणि-माण्डित आसन,
शोभत सानुज समद सुयोधन।
शकुनि, कर्ण, प्रिय जन आसीना,
गायन-वाद्य-हास्य-रस-लोना।
उठेउ समाज लखत यदुराजू,
स्वागत आपु कीन्ह कुरुराजू।
करि बहु मिथ्या प्रणय-प्रदर्शन,
भोजन दत्त दीन्ह आमन्त्रण।
कोन्ह न जय यदुपति स्वाकारा,
वचन सुयोधन चपल उचार—
“सम्बन्धी तुम तात ! हमारे,
रहित-पक्ष मम पितृहि पित्रोई।

दोहा:—क्रीन्हेउ कब कुरुजन कहाँ, यदुवंशन अकार ?
अबहु जो नहि मम करत, यदुपति अंगोकर । ३७

सुनि वच धृष्ट दीन्ह यदुरायो,
उत्तर नीति-युक्त मुसयायी—
“दुष्कर दूत-धर्म कुरुनाहा !
होत न बिनु विरक्ति नानाहा ।
किये कार्य बिनु दूनन रीती,
करत ग्रहण नहि पूजा-रीती ।”
सुनि दुललित हृदय नहि तोषू,
पूछेउ बहुरि, व्यक्त मुख रोषू—
“विदित मोहिं तुम नीति-निधाना,
हेतु यथार्थ चहत मैं जाना !”
लखि प्रिय सत्य खलहिं नहि भावा,
प्रभु तेहि अप्रिय सत्य सुनावा—
“रुचे जो शिष्ट वचन मम नाही ।
सुनहु कहहुँ जो मम मन माहीं,
परि विपत्ति अथवा वश प्रीती—
खात परान्न सुजन जग-रीती ।

दोहा:—मोहि संग प्रीति तुम्हारि नहि, विपत्ति ग्रस्त मैं नाहि,
केहि कारण भोजन करहुँ, कस निवसहुँ यह माहि । ३८

बंधु-राज्य तुम छल ते छीना,
दे बल्कल पठये वन दीना ।
लोभिहिं प्रीति काहु ते नाही,
स्वार्थहिं इक निवसत मन माहीं ।
कूप वृणावृत दारुण जैसे,
संवृत-आशय लोभिहु तैसे ।
अव-अर्जित धन विभव तुम्हारा,
कुत्सित उर, दूषित सत्कारा ।
दूषित अन्न खलन कर खायी,
सकत न सुरह प्रभाव बरायी ।

छमहु मोहिं,”—भाषेउ यदुवीरा,
सुनि कौरव-पति चुब्ध, अधीरा।
लखि सर्वाङ्ग तासु रिस-आगी,
त्यागेउ गेह बिदा हरि माँगी।
तजि शान्तनु-सुवनहु-पहुनाई,
भोजन कीन्ह विदुर-गृह जायी।

दोहा :—तृप्त पाय निज भक्त-गृह, सरल स्वच्छ आहार,
शयन समय प्रकटे विदुर, हरिहिं हृदय-उद्गार—३६

“प्रभु दर्शन मोहिं मङ्गलदायक,
पावन भवन कीन्ह यदुनायक।
तदपि आजु कुरु-पुरी पधारे,
ध्येय जो नाथ ! हृदय निज धारे,
होइहै पूर्ण न सो यदुराजू !
गजपुर जुरेउ असाधु समाजू।
सुताधीन धृतराष्ट्र कुटिल-मन,
उद्धत, इंद्रिय-निरत सुयोधन।
आपु मान-प्रिय पर-अपमानी,
क्रूर, कृतघ्न, हठी, अभिमानी।
भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा,
कर्ण, जयद्रथ सकल सकामा।
पाप-वृत्ति सब, कुरुपति-दासा,
राखहु नाथ ! न तिन ते आशा।
जात द्रोण कछु कबहुँ रिसायी,
देत भीष्म कटु शब्द सुनायी—

दोहा :—इतनिहिं इनहिं स्वतंत्रता, दै राखी कुरुराय,
सहत सोउ धरि आस उर,—करिहैं समर सहाय। ४०

ये हू प्रीति नीति दोउ त्यागी,
करिहैं अंत समर तेहि लागी।

कर्ण पाण्डुसुत-द्वेष-पयोनिधि ,
 देहै होन न संधि काहु विधि ।
 अग्रज सम कुरुपति तेहि मानत ,
 लोक-त्रयैक-धनुर्धर जानत ।
 सँग विशाल बाहिनि अब लायी ,
 भये भुआलहु विपुल सहायी ।
 ये नरनाहहु दुर्मति सारे ,
 बढे पूर्व मगधेश-सहारे ।
 आपु, पाण्डु-सुत दोउन संग्गा ,
 खोजत नित सब वैर-प्रसंग्गा ।
 एक न अस सुनिहै जो नीती ,
 करहि न कोउ अनर्थ मोहिं भीती ।
 ताते नाथ ! कहहुँ कर जोरी ,
 जाहु न सभा बिनय सुनि मोरी ।

बोधा :— शान्ति-यत्न निष्फल सकल, निश्चित तहँ अपमान ,
 लौटि जाहु पाण्डव-शिविर, होत प्रात भगवान् !” ४१

सुनि भाषेउ धृति-धर्म-निधाना ,
 “हितू न तुम सम महि मम आना ।
 तदपि तात ! निज काज-अकाजू ,
 करि नहिँ सकत बिरत मोहिं आजू ।
 जानत मैं कुरुपति-अधमाई ,
 जानत भीष्म द्रोण असहायी ।
 जानत हृद्रत भाव कर्ण के ,
 जानत नृपतिन शाठ्यहु नीके ।
 पै यहि सब समाज महँ ताता ,
 एक न अस नहिँ जेहि सँग नाता !
 समर-समुद्यत, रक्त-पियासी ,
 दिशि दोउ जुरी आर्यजन-राशी ।
 सकहि निवारि महा क्षय जोई ,
 पुण्यश्लोक न तेहि सम कोई ।

करन हेतु बहु जन कल्याणा ,
सहिहौ सब अविनय, अपमाना ।

दोहा :— करिहै कोउ अयुक्त जो, मरिहै सात्यकि-हाथ ,
जानहु नहिँ असहाय मोहिँ”, — कहि विहँसे यदुनाथ । ४२

यहि विधि पुनि पुनि तोषि भक्त-मन ,
सोये सुख निद्वन्द्व जनार्दन ।
सुनि प्रभात वैतालिक-वाणी ,
जागे यदुपति, निशा सिरानी ।
बाजत वाद्य मनोहर नाना ,
शय्या प्रमन तजी भगवाना ।
कृत-सम्पन्न प्रात शुचि मज्जन ,
हवन द्विजोचित संव्योपासन ,
सुन्दर वसन-विभूषण धारे ,
देत द्विजन हरि दान सुखारे ।
कृतवर्मा शकुनिहिँ लै साथ ,
आयेउ ताहि समय कुरुनाथा ।
बोलेउ हठि-पितु-प्रेषित अनमन ,
प्रकट विनम्र, सव्यंग सुयोधन—
“जोहत सुरपति-पथ जिमि सुरगण ,
प्रभु-पथ रहे हेरि तिमि कुरुजन ।”

दोहा :— सुनि विहँसे हरि, गेह तजि, निकसे जैसेहि द्वार ,
निरखी तहँ जन-राशि महँ, यदुजन-भीर अपार । ४३

वाहिनि जो कुरुराजहिँ दीन्ही ,
लीन्हे शूर तासु हरि चीन्हीं ।
हेरि तिनहिँ, पुनि हरिहिँ समर्मा ,
चितयेउ सात्यकि-दिशि कृतवर्मा ।
समुक्ति रहस्य हरिहु मुसकाये—
यहँहु स्वजन मोहिँ रच्छन आये !

स्यंदन निज निवसे यदुवीरा ,
 बाजी किंकिणि, वाजि अधीरा ।
 बैठारे विदुरहु हरि साथा ,
 निज रथ वसे शकुनि कुरुनाथा ।
 यदुजन, कृतवर्मा, युयुधाना ,
 विविध यान चढ़ि कीन्ह प्रयाणा ।
 उड़ेउ गरुड़-ध्वज रथ-गति संग्गा ,
 प्रमुदित सुहृद, शत्रु-मन भंगा ।
 स्वस्ति-गिरा द्विजवृन्द उचारी ,
 वरसत सुमन, शंख-ध्वनि भारी ।

बोहा :—सभा-भवन-द्वारहु जुरेउ, प्रजा-पयोधि अपार ,
 करत जनार्दन-जय सहित, धर्मराज-जयकार । ४४

भरित भक्ति-रस शान्तनु-नंदन ,
 धाय कीन्ह यदुपति-अभिनंदन ।
 रथ अवतरित सोह यदुराजू ,
 जनु उदयाद्रि-त्यक्त द्विजराजू ।
 अभिमुख सुरसरि-सुत यदुनाथा ,
 जनु सँग उदित शुक्र शशिनाथा ।
 प्रविशत सभा निरखि घनश्यामा ,
 उठे नृपति शत करत प्रणामा ।
 वृद्ध भूप-पद प्रभु शिर नाथी ,
 लखीं दिशा दश दृष्टि उठायी ।
 निरखे नारदादि नभ मुनिजन ,
 मुदित पितामहि कहेउ जनार्दन—
 “विग्रह-संधि-विमर्श हमारा ,
 सुनन हेतु मुनिजन पगु धारा ।”
 सुनत भीष्म रत्नासन आनी ,
 बैठारे ऋषि-मुनि सन्मानी ।

बोहा :—उच्चासन सौहे सभा, बहुरि आपु यदुराज ,
 तप्त कार्तस्कर मध्य जनु, जटित नीलमणि राज । ४५

अभिनव वारिद-सुन्दर श्यामा,
 दामिनि पीत वसन अभिरामा ।
 हृदय हार मौक्तिक जल-धारा,
 चातक नृप-समाज जनु सारा ।
 गर्जन गिरा धीर गम्भीरा,
 वृद्ध नृपहिं लखि कह यदुवीरा—
 “विश्रुत भरत-वंश तुम भूषण,
 वय-विज्ञान-वृद्ध, गत-दूषण ।
 विग्रह-शमन मोर उद्देशू,
 लायेउँ सभा शान्ति-सन्देशू ।
 मिलहिं बहुरि दोउ कुरुजन पाण्डव,
 भोगहिं बद्ध-नेह महि वैभव,
 बचहिं भयावह वीर-विनाशा,
 यह मम आस, यहहि अभिलाषा ।
 यहहि धर्म, यह नीति उदारा,
 रुकहिं काहु विधि नर-संहारा ।

बोद्धा :— शौर्य, दान, विद्या, विनय, सत्य, धर्म-व्यवहार,
 भरतखण्ड दिशि दिशि विदित, भरतवंश-आचार । ४६

अछत आपु निर्मल कुल माहीं,
 होय अनीति उचित यह नाहीं ।
 प्रकटि तुमहिं, पुनि कबहुँ दुरायी,
 तनय तुम्हार करत कुटिलाई ।
 करि निमित्त तिन तुमहिं नरेशा !
 हरेउ धर्मसुत-धन, जन, देशा ।
 सहेउ सोउ तिन धर्म विचारी,
 गवने वन निदेश शिर धारी ।
 वर्ष त्रयोदश सहि दुख नाना,
 कीन्ह पूर्ण प्रण, वैर न माना ।
 करत विनय, माँगत अब राजू,
 दिये चेम, नहिं दिये अकाजू ।

रण-घन घुमड़ि देश-नभ छाये ,
गर्जत राज-प्रजहिं डरपाये ।
शोणित धरणि चहत बरसावन ,
चहत शान्ति, सुख, शौर्य नसावन ।

दोहा :— सर्वनाश रोकहु नृपति ! सुत निज लेहु सँभारि ,
सकत मृत्यु-मुख ते तुमहि, शूर-समाज उबारि । ४७

छल-बल जीति मही यह सारी ,
प्रभुता निज असुरन विस्तारी ।
आर्य-धर्म-आचार बिनासी ,
थापी असुर-नीति अध-राशी ।
कछुक मोह-वश, कछु वश भीती ,
कीन्हि नृपन असुरन संग प्रीती ।
आर्य-जनहु तजि आर्याचारा ,
सीखे हीन असुर-व्यवहारा ।
बजेउ अबाध मगधपति-डंका ,
छायेउ काल यवन आतंका ।
बचे दोइ कुल भारत माहीं ,
नत जिन कीन्ह शीश निज नाहीं ।
शान्तनुसुवन-बाहु-बल पायी ,
लीन्ह भरत कुल मान बचायी ।
यदुकुल कंस धर्म निज त्यागा ,
भयेउ मगधपति-दास अभागा ।

दोहा :— कृतवर्मा, सात्यकि तदपि, उद्धव-बुधि-बल पाय ,
कुल-गौरव स्वातंत्र्य कर, राखेउ दीप जराय । ४८

लहि मधुपुर पुनि इनहिं सहायी ,
नासेउँ कंस-त्रास मैं आयी ।
बार अष्ट-दश मगध नरेशा ,
चढ़ेउ सदल-बल माथुर देशा ।

जन्म-मही निज यदुजन त्यागी ,
 भये न तदपि असुर-अनुरागी ।
 सुनि यवनेश्वर काल-विनाशा ,
 बहुरि प्रबल भौमासुर नाशा ,
 जनु सहसा संजीवनि पायी ,
 नवस्कृति भरि भारत छायी ।
 किये व्यास ऋषि यत्न अपारा ,
 भयेउ बहुरि श्रुति-धर्म प्रचारा ।
 जागेउ उर-उर असुर-विरोधा ,
 पुर-पुर ग्राम-ग्राम प्रतिरोधा ।
 तबहि भरत-कुल कीन्हि सहायी ,
 बधेउ भीम मगधेशहि जायी ।

बोद्धा :— भरतवंश-वैशिष्ट्य हम, यदुवंशिन स्वीकारि ,
 दीन्ह तुमहिं सम्राट-पद, हृदय राष्ट्र-हित धारि । ४६

पुनि राज्यैक्य राष्ट्र निज पावा ,
 नूतन ओज आर्य-तनु छावा ।
 धर्म नरेशहिं दै सन्माना ,
 प्रतिनिधि-मात्रहि हम निज माना ।
 रचेउ भाल हम तिनके टीका ,
 जाग्रत भारतराष्ट्र-प्रतीका ।
 अभिनव भारत-जन्म-प्रदाता ,
 नहिं केवल ये पाण्डव-भ्राता ।
 आर्य नृपति, ऋषि, प्रजा समाजू ,
 जन्मेउ सबन यत्न नव राजू ।
 धर्म नृपहु ते बड़ि जन-त्राता ,
 व्यास मुनीश राष्ट्र-निर्माता ।
 नवल राष्ट्र-रक्षहु कर भारा ,
 रहेउ न पाण्डुसुतन-शिर सारा ।
 पाण्डव-कौरव-शिविरन आजू ,
 जुरेउ जो रण हित वीर-समाजू ।

दोहा :— ते नरेन्द्र, सेनप, सुभट, आर्य-राष्ट्र हड़ ढाल ,
पठवहु सबहिं न मृत्यु-मुख, चेतहु अजहुँ भुआल ! ५०

विरचि राष्ट्र नव, नासि अराती ,
भरत कुलहि सौपी हम थाती ।
नायक आपु वंश तेहि केरे ,
कुरुजन चलत तुम्हारेहि प्रेरे ।
लहि पद तात ! कीन्ह तुम काहा ?
कवन भाँति दायित्व निबाहा ?
धर्मनृपहिं लखि आज्ञाकारी ,
रचि प्रपंच निज नगर हँकारी ,
राष्ट्र समस्त आस अभिलाषा ,
कीन्ह खेलाय द्यूत तुम नाशा ।
प्रजा जनेशन करि अधिराजू ,
सौपेउ धर्म नृपहिं जो राजू ,
हरेउ सकल तुम द्यूत खेलायी ।
सौपत सुतहिं लाज नहिं आयी ,
कीन्ह न पात्र-अपात्र-विचारा ,
राष्ट्र-भविष्य भयेउ खिलवारा ।

दोहा :— आर्यजाति-कल्याण हित, पायेउ जो साम्राज्य ,
सौपेउ पुत्रहिं ताहि तुम, जनु निज पैतृक राज्य ! ५१

तुम परमार्थ, राष्ट्र-हित नासा ,
सधिहै स्वार्थ यहहु नहिं आशा ।
अनल भवन निज आपु प्रजारा ,
जारन चहत धधकि कुल सारा ।
रहे मार्ग अब दोइ भुआला !
एक शान्तिमय, अन्य कराला ।
गहे संधि-पथ कुल-कल्याणा ,
स्वार्थ साथ परमार्थ महाना ।
पैतृक राज्य पुत्र हित लेहू ,
राज्य नवीन धर्मजहिं देहू ।

करि दल दोउ आजु वश माहीं,
होहु भयेउ जस नृप जग नाहीं।
अर्जुन-कर्ण, भीम-दुर्योधन,
करिहैं मिलि तुम्हार संरक्षण।
करिहौ महुँ सदा सेवकाई,
उग्रसेन सम पद शिर नायी।

दोहा :—अन्य मार्ग—भीषण समर, राज्य-नाश, सुत-घात,
बिनवत पुनि पुनि तात ! मैं, करहु न आत्म-विघात !” ५२

सोरठा :—सुने अंध नरनाथ, दृढ़, उदात्त यदुपति-वचन,
व्यापे उर इक साथ, हरि-भय, सुत-भय, युद्ध-भय।

बोलेउ खल दौर्वल्य बखानी,
निश्छलतहि जनु बोली वाणी—
“कहहुँ काह ?—मैं परम अभागी,
सहे जो क्लेश नाथ ! मम लागी।
सत्य सकल मम पाप-कलापा,
मोहिं सुत-प्रेम भयेउ अभिशापा।
चर्म-चक्षु मोहिं विधि नहिं दीन्हे,
प्रज्ञा-चक्षु पुत्र हरि लीन्हे।
मैं असमर्थ, बुद्धि-बल-हीना,
भाँति सर्व निज सुतन अधीना।
शैशव ते अब लगि दुर्योधन,
किये न कबहुँ वचन मम पालन।
एकहि नाथ ! मोर अपराधा,
यहि सुत पै मम प्रीति अगाधा !
जानत महुँ भये संग्रामा,
जइहै उजरि नाथ ! मम धामा।

दोहा :—बिनवहुँ पुनि पुनि पाण्डु-सुत, पुत्रहु मम समुक्ताय,
कुल कौरव रण-बहि ते, यदुपति ! लेहु बचाय।” ५३

रहे मौन हरि सुनि नृप-वाणी ,
 मानस-व्यथा भीष्म पहिचानी ।
 दुर्योधनहिं कहेउ समुभायी—
 “देहु दुराग्रह वत्स ! विहायी ।
 व्यर्थ धरे भ्रम तुम मन माहीं ,
 पक्षपात श्रीहरि-हिय नाहीं ।
 धरि तनु धर्म हेतु हरि आये ,
 तोषि शिष्ट नित दुष्ट नसाये ।
 कंस, काल, भौमासुर मारे ,
 पौण्ड्रक, काशि-नरेश संहारे ।
 नासे मगधनाथ, शिशुपाला ,
 शाल्व असुर, कारुष भुआला ।
 रक्तक जदपि शम्भु भगवाना ,
 रण-महि हरेउ बाण-अभिमाना ।
 प्रजहिं जहाँ जब जेहि जेहि त्रासा ,
 शेष न एक कृष्ण हठि नासा !

बोद्धा :— ध्वंसि असुर-साम्राज्य हरि, कीन्ह धर्म-उत्थान ,
 कीन्ह तासु रक्षार्थ पुनि, राष्ट्र सुदृढ़ निर्माण । ५४

धर्म-सुवन जब भवन बोलायी ,
 हरी धरणि तुम द्यूत खेलायी ,
 दली न केवल पाण्डव-आशा ,
 दली साथ तुम हरि-अभिलाषा ।
 तजत मनस्वी धन, जन, राजू ,
 तजि नहिं सकत प्राण-प्रिय काजू ।
 छमहिं तुमहिं बरु धर्म नरेशा ,
 कीन्ह हरण तुम केवल देशा ,
 छमिहैं तुमहिं न यदुकुल-केतू ,
 करत नष्ट तुम जीवन-हेतू !
 आये भवन आपु भव-त्राता ,
 तजहु न तुम यह अवसर ताता !

अतल कबहुँ जिमि भरि नहि जायी ,
तृष्णाहु तिमि नहिं कबहुँ बुझायी ।
तजि तृष्णा हरि-मत स्वीकारी ,
करहु मोहिं, पितु, प्रजहिं सुखारी ।”

बोद्धा :— यहिविधि तेहि शान्तनु-सुवन, कही विविध हित-चाखि ,
सुनी सकल अनखाय खल, बसेउ मौन अवमानि । ५५

कृपाचार्य, द्रोणहु समुभावा ,
व्यास ऋषिहु उपदेश सुनावा ।
कान न एक सुयोधन कीन्हा ,
मूक मनहुँ विषधर डसि लीन्हा ।
गुरुजन लज्जित जुब्ध चुपाने ,
हर्षित कर्ण शकुनि मुसकाने ।
हरिहु सुयोधन सभा निहारा ,
जनु मद आपु बसेउ साकारा ।
पुनि निस्तब्ध सभा लखि सारी ,
दूत धर्म निज हृदय विचारी ,
ध्यान मान-अवमान न राखा ,
वचन आपु कुरुनाथहिं भाखा—
“धरेउ स्वजन मिलि तुम पै भारा ,
उर तुम्हरे अविचार-पहारा ।
घोर पाप-पथ तुम अपनावा ,
गहि कामार्थ धर्म विसरावा ।

बोद्धा :— गरल, लाह-गृह, द्यूत तजि, कीन्ह कवन उद्योग ?
छल ते पर-महि तुम लही, बल ते चाहत भोग ! ५६

हृदय अथाह मोह अभिमाना ,
देहौ राज्य न मैं भल जाना ।
क्रिये समर भीषण जन-नाशा ,
बसे मौन गहि, सत्य विनाशा ।

करहुँ विनय अन्तिम सब पाहीं ,
 याचहुँ तुच्छ कहहु नहिं 'नाहीं' ।
 भोगहु निखिल राज्य, धन, धामा ,
 पावहिं पाण्डव पाँचहि ग्रामा ।
 देहु तिनहिं माकन्दि, वृकस्थल ,
 पुरी वारणावती, अविस्थल ।
 पंचम ग्राम देहु कोउ एकू ,
 विनवहुँ तजहु न तात ! विवेकू ।
 स्वजन विकल मुख लखत तुम्हारा ,
 शान्ति ! शान्ति ! द्विज प्रजा पुकारा ।
 सुनिहौ जो न अजहुँ मम वाणी ,
 चलिहै युग-युग यहहि कहानी—

दोहा :— “जन्मेउ द्वापर भरत-कुल, दुर्योधन नरपाश ,
 कीन्हैउ जेहि विद्वेष-वश, निखिल वीर-कुल नाश ।” ५७

सुने जनार्दन-वचन सुयोधन ,
 आनन अनल-ज्वाल, अरुणेक्षण ।
 हेरत हरिहिं क्रुद्ध कुरुनाहा ,
 बहेउ वदन उन्माद-प्रवाहा—
 “तुम प्रगल्भ, आडंबर भारी ,
 माया विपुल सभा विस्तारी ।
 आये लेन अर्ध तुम राजू ,
 भय उपजाय कीन्ह चह काजू ।
 अचल मोहिं लखि दंभ विहायी ,
 पलटि वृत्ति अन्यहि अपनायी ।
 चहत ग्राम अब राज्य बिसारी ,
 मँगिहौ पल महँ महल अटारी ।
 नासत निज यश तुम यहि भाँती ,
 वणिक-वृत्ति नहिं मोहिं सुहाती ।
 किये प्रलाप लाभ कछु नाहीं ,
 सुनहु कहहुँ जो मम मन माहीं—

दोहा :— खने सूचिका-अग्र पै, आवत जो महि-लेश ,
देहौ सोउ न बिनु समर, कहौ ग्राम ! कहँ देश !” ५८

अस कहि शकुनि कर्ण लै साथी ,
गवनेउ त्यागि सभा कुरुनाथा ।
गये अनुज सब पाछे लागी ।
लागे रचन कुचक्र अभागी ,
कृतवर्मा, युयुधानहु धाये ।
निरखत गति-विधि दृष्टि लगाये ।
इत कुरु-गुरुजन निरखि विहाला ,
यदुपति-वदन भृकुटि विकराला ।
वंश-नाश-सूचक, भयकारी ,
जनु नभ उदित केतु लयकारी ।
परी बहुरि हरि-वाणी श्रवणन ,
“शासत खलहिं न कस तुम गुरुजन !
त्याज्य व्यक्ति कुल-हित-अवरोधी ,
त्याज्य कुलहु जो ग्राम-विरोधी ।
ग्रामहु त्याज्य राष्ट्र-हित-नासी ,
त्याज्य सुयोधन सर्व-विनासी !

दोहा :— तजहु वेगि जग-शत्रु यह, मार्ग अन्य अब नाहिं ,
नाहिंत करिहौ तुम सकल, शयन समरमहि माहिं !” ५९

सहसा सात्यकि ताही काला ,
प्रविशे सभा, वेष विकराला ।
हग अंगार, अंग रोष-तरंगा ,
भाषत वचन क्रूर भू-भंगा—
“शान्ति विचारत इत तुम गुरुजन ,
उत मदान्ध उद्धत दुर्योधन ,
प्रीति, नीति-बंधन सब तोरी ,
बाँधन चहत हरिहिं बरजोरी !
घेरि सभागृह कुरुजन लीन्हा ,
हरि-बल अबहुँ खलन नहिं चीन्हा ।

बँधति कि उपलन पावस-गंगा ,
बँधत कि तंतु मृणाल मतंगा ?
मैं, कृतवर्मा, यदुजन सारे ,
आये सभा शस्त्र निज धारे ।
देहिं जो आयसु मोहिं यदुराथी ,
विग्रह निमिषहि माहिं नसाथी ।

दोहा :— कुरु-पाण्डव-संगर करहुँ, शेष यहाँ मैं आज ,
प्रभु-प्रताप यदुजन अजय, कहा धनंजय काज ।” ६०

बंधन-वृत्त सुनेउ यदुनंदन ,
भासित प्रथम मृदुस्मित आनन ।
अट्टहास पुनि कीन्हेउ घोरा ,
जनु गिरि दीर्ण, चतुर्दिक रोरा ।
हरि दायें अर्जुन प्रकटाने ,
धनु गाण्डीव श्रवण लागि ताने ।
हल-भूसल-भूषित दिशि वामा ,
प्रकटे प्रलय-मूर्ति बलरामा ।
पृष्ठ भीम, कर गदा महाना ,
सन्मुख क्रुद्ध वीर युयुधाना ।
निरखि चमत्कृति कम्पित कुरुजन ,
जय-ध्वनि कीन्हि मुदित मन मुनिजन ।
दृश्य अशेष, शेष आतंका ,
तजि आसन हरि उठे अशंका ।
जात सभा तजि लखि यदुनाथा ,
भये द्रोण, शान्तनु-सुत साथा ।

दोहा :— विरमि द्वार चहुँ दिशि लखेउ, पूछत जनु हरि धीर—
रोधहि मम गति अस कवन, अरि-समूह महँ वीर ? ६१

तजेउ मंद गति द्वार जनार्दन ,
जनु गज-निकर निदरि पंचानन ।

श्रीहरि-तेज-अनल अरि भुलसे,
 अचल यथा-थल चित्र-लिखे-से।
 गुरुजन-वृन्द वंदि यदुरायी,
 निवसे विदुर संग रथ जायी।
 दीन्ह वृद्ध द्विज पुलकि असीसा,
 पथ दुहुँ दिशि नत पुरजन-शीशा।
 सहसा रथ-घर्घर स्वर संगी,
 उत्थित जन-जयनाद अभंगा।
 लज्जित कुरुपति मीजत हाथा,
 गवने मथि कुरुदल यदुनाथा।
 विदुर-द्वार स्यंदन विरमावा,
 पृथहिं सभा-संवाद सुनावा।
 बंधन-वृत्त सुनत क्षत्राणी,
 बोली सरुष कृष्ण सन वाणी—

बोद्धाः—“एकहि मम सन्देश अब, कहेउ सुतन हरि जाय,
 ‘नासहु सत्वर शत्रु निज, क्षात्र वृत्ति अपनाय । ६२

मुनिजन-वृत्ति देहु सुत ! त्यागी,
 करि रण होहु राज्य-यश-भागी।
 सुवन शूर तुम सम उपजायी,
 धारति तन परान्न मैं खायी।
 माहि, धन, विभव, सुयश जब नासा,
 कवन हेतु जीवन-अभिलाषा ?
 गिरतहु शूर समर-माहि माहीं,
 गिरत अरिहिं लै, छाँड़त नाहीं।
 हस्त सिंह-विषधर-मुख डारी,
 लेत शूर हठि दाँत उपारी।
 तजत प्राण वरु यत्नहि माहीं,
 साहस तजत मानिजन नाहीं।
 उचित भभकि क्षण जाब बुझायी,
 उचित जियब नहिं चिर धुँधुआयी,

केशव ! सुत मम तेज-निधाना ,
भीमार्जुन दोउ अनल समाना ।

दोहा :— बिनवति मैं बनि तात ! तुम, बेगि युगान्त बयारि ,
देहु घोर, श्वापद-प्रचुर, कौरव-कानन जारि !” ६३

सुनत वचन शुचि शूर-सुता के ,
हर्ष-प्रवाह हृदय हरि पुलके—
“वीर-वंश यदुवंश-प्रजाता ,
जाया वीर, वीरसुत-माता ।
वीरोचित तुम वचन उचारा ,
तुम्हरेहि योग्य सँदेश तुम्हारा ।
कहिहौँ सुतन निदेश सुनायी ,”
अस कहि पद वंदे यदुरायी ।
गवने विदा पृथा सन माँगी ,
लखे द्वार गुरुजन अनुरागी ।
लखे पितामह द्रोण दुखारे ,
विदुरहु हर्ष-शून्य, मन मारे ।
लक्ष्य-अलब्ध फिरत यदुचन्दन ,
गुनि जल-विन्दु पितामह-नयनन ।
द्रवित हरिहु दीन्हेउ परितोषा ,
कहि कहि—“तात ! तुम्हार न दोषा ।

दोहा :— कीन्हेउँ मैं जो धर्म मम, करहु तुमहु निज धर्म ,
रहेउ न शेष विमर्श अब, शेष शूरजन-कर्म ।” ६४

सोरठा :—अस कहि निवसे यान, बहेउ पवन अनुकूल पुनि ,
उपलव्य भगवान, गवने भरि रज अरि-पुरी ।

मुनि प्रभु-आवन पाण्डव धाये ,
आतुर सकल नृपति चलि आये ।
छुरी सभा, हरि बरनी गाथा ,
क्रोध दग्ध सेनप, नरनाथा ।

हरि-बंधन-प्रपंच सुनि सारा,
धर्म-सुतहु उर रोष अपारा।
व्याप्त वृकोदर हृदय अमर्षा,
वदन प्रदीप्त वीर रस वर्षा—
“मिलेउ आजु अवसर जेहि लागी,
काटी निशा सहस मै जागी।
मङ्गल-दिवस घरिहु शुभ आयी,
सजहु सैन्य, कत देर लगायी?
रचहु अबहि रण-यज्ञ महाना,
यज्ञाचार्य आपु भगवाना।
धर्मात्मज दीक्षित, मखकारी,
व्रत-धारिणि पाञ्चाल-कुमारी।

बोद्धा :— ऋत्विज पाण्डव, नृप अतिथि, रण-महि यज्ञस्थान,
बलि-यशु कौरव कुल निखिल, फल जय-कीर्ति महान !” ६५

सुनि प्रमुदित हरि दीन्ह निदेशा—
“सजहु ध्वजिनि अब धर्म नरेशा !
सत्य शान्ति महँ जहँ संघर्षा,
चहत सन्तजन सत्य-प्रकर्षा।
जो अघ वधे अवध्याहँ होई,
वध्य वधे बिनु लागत सोई !
आततायि धृतराष्ट्र-कुमारा,
हरहु निपाति महा महि-भारा।
उपसन्ध्य पाञ्चाल कुमारी,
राखहु सहित अन्य कुलनारी।
तजि अशक्त जन, दासी, दासा,
कुरुक्षेत्र दिशि करहु प्रवासा।”
सुनि हरि वचन कोलाहल भारी,
“सजहु ! सजहु !”—सब कहत पुकारी।
सजति सैन्य, प्रति शिविर उद्वाहु,
जय-ध्वनि महत, सचत नरनाहु।

दोहा :— सजत चिग्वरत मत्त गज, वाजि सजत हिहनाहिं ,
सजत पत्ति, जय-स्वर रहेउ, छाये भूमि नभ माहिं । ६६

वाजि अगण्य कलेंगि शिर धारे,
विविध आभरण साजि सँवारे ।
चुनि चुनि उत्तम सिंधुज घोरे,
रथ प्रति चारि-चारि लै जोरे ।
धरे शस्त्र प्रहरण विधि नाना,
गदा, शूल, पट्टिश धनु-बाणा ।
सारथि रथी युक्त रथ धाये,
सचल नगर जनु रण-हित आये ।
कीन्ह प्रमद गज-वृन्द सिँगारा,
भूमत जनु गतिमंत पहारा ।
कंकट-संवृत, आयुध धारे,
सज्जित सुभट बद्ध-कटि सारे ।
निकसेउ तजि निवेश चतुरंगा,
तट विध्वंसि बही जनु गंगा ।
गरजेउ जुरत पयोधि भयानक—
बाजे भेरि, शंख, पणवानक ।

दोहा :— कृत सुर-पूजन, स्वस्त्ययन, मंगल विविध विधान,
वँदि धर्मसुत हरि-चरण, रण-हित कीन्ह प्रयाण । ६७

चले वीर भट वार न पारा,
नमित भूमि चतुरंगिणि-भारा
तजि बाहिनि कछु कहुँ न लखायी,
भीत क्षितिज जनु गयेउ परायी ।
दिगंतराल द्विपन ढकि लीन्हा,
व्योम विलीन जात नहिं चीन्हा ।
वाजि - निकर - खुर - रज - परिधूसर,
प्रत्यावर्तित हत-प्रभ रवि-कर ।
गज-घंटा-निनाद, चिग्वारा,
किंकिणि-काण, भेरि-भाङ्कारा ।

स्यंदन-निःस्वन, हयगण-हेषा,
बधिर भुवन-त्रय शब्द अशेषा ।
अविश्रान्त यहि विधि दल धावा,
रणमहि कुरुक्षेत्र सब आवा ।
शिविर अपार धर्म नृप डारे,
शोभित महि जनु चुइ नभ तारे ।

दोहा :— शंख-नाद जय-नाद ते, भरेउ समस्त दिगंत,
व्याप्त समर-रस-मत्त स्वर, कुरुपति-पुर पर्यन्त । ६८

सोरठा :— कौरव-सैन्य अपार, साजी सुनत सुयोधनहु,
गज, रथ, अश्व-प्रसार, गजपुर ते रणभूमि लागि ।

एकादश अक्षौहिणि साथ,
पहुँचेउ कुरुक्षेत्र कुरुनाथा ।
पुनि एकादश भट सन्मानी,
कीन्दे नृप नियुक्त सेनानी—
भीष्म, द्रोण गुरु, अश्वत्थामा,
कृप, बाह्लीक, कर्ण, कृतवर्मा,
जयद्रथ, भूरिश्रवा, मद्रेशा,
सुदक्षिणहु काम्बोज-नरेशा ।
भीष्महिं कहेउ बहुरि कुरुनाथा,
बद्धाञ्जलि, नत-चरणन माथा—
“शूर-शिरोमणि तुम कुरुनायक,
होहु नाथ ! मम दल-अधिनायक ।
तुम सम अन्य न रण-विधि-ज्ञाता,
रच्छहु समर सैन्य मम ताता !
सन्मानत सब तुमहिं शूर जन,
तुम्हरोहि बल मम रण-आयोजन ।

दोहा :— कार्तिकेय सम तात ! तुम, संगर-मही अजेय,
तजिहैं अरि जय-आस सुनि, अधिनायक गाङ्गेय ।” ६९

मुनि कह शान्तनु-सुत ऋत-भाषी,
 "मैं नहिं वत्स ! समर-अभिलाषी ।
 अन्न तुम्हार दिनन बहु खावा,
 करि रण मैं ऋण चहत चुकावा ।
 करिहौ सोउ निज यश अनुसारा,
 हतिहौ नित दस सहस जुभारा ।
 पै निश्चय दृढ़ मम मन माहीं,
 बधिहौ स्वकर पाण्डु-सुत नाहीं ।
 अधिनायक-पद चहत जो दीन्हा,
 कर्णहिं कस तुम नायक कीन्हा ?
 नायक जे तुम अन्य बनाये,
 अतिरथि, महारथी मोहिं भाये ।
 सोहत नाहिं कर्ण तिन माहीं,
 अर्धरथी ते बढि यह नाहीं !
 परशुराम-शापित, कुल-हीना,
 आत्म-प्रशंसक, पिशुन प्रवीणा ।

दोहा :— प्रविशत ही यह रण-मही, मरिहै अर्जुन-हाथ,
 सूत-सुवन सँग मैं समर, करिहौ नहिं कुरुनाथ !” ७०

विकल कर्ण मुनि दारुण वचनन,
 श्वास सवेग, विपाटल आनन ।
 लोचन क्रोध-धूम्र अरुणारे,
 अधर विकम्पित, वचन उचारे—
 “जानेऊँ आजुहि मैं तुम वंचक,
 कुरुदल निवसि शत्रु-हित-चिन्तक ।
 ऋण जो चहत चुकावन करि रण—
 भे अवध्य पाण्डव केहि कारण ?
 भीमार्जुन जो देत बराये,
 रण तुम बध्नन ग्रामभृग आये !
 समर-समय रचि वैर-प्रसंगा,
 दल-उत्साह कीन्ह तुम भंगा ।

संख्या, शस्त्र, शूरता माहीं,
हम सम प्रबल शत्रु-दल नाहीं।
पै अराति सब यदुपति-शासित,
बद्ध-कच्छ कुरुवंश-नाश-हित।

दोहा :— नेह-नात विस्मृत सकल, जुझिहैं सहित उमंग,
अरि-जय-इच्छुक पै सुभट, प्रकट-गुप्त हम संग। ७१

अस जे द्रोही अरि-गुण-गायक,
शान्तनु-सुवनहि तिनके नायक।
रण-जय जो कुरुपतिहिं पियारी,
देहिं स्वदल ते इनहिं निकारी।
पै गुनि गुरुजन जो अनुरागी,
सकत पितामहिं नृप नहिं त्यागी,
तौ मैं ही रण-मही बिहायी,
बसिहौं शान्त भवन निज जायी।
रहिहैं जब लगि ये अधिनायक,
धरिहौं मैं न धनुष निज सायक।
भीष्म-अनंतर दृढ़ प्रण मोरा,
बधिहौं अर्जुन करि रण घोरा।”
सुनि प्रण भीष्म कीन्ह उपहासा—
“बढ़ी लुट्ट उर बड़ि अभिलाषा।
प्रण-मिस जात धरणि रण त्यागी,
जियहु कल्लुक दिन और अभागी।

दोहा :— लेहु काल कल्लु और करि, निज मुख निज गुण-गान,
अंत धनंजय-हाथ ते, गलित-गर्व अवसान।” ७२

सुनि राधा-सुत रोष-अधीरा,
समुभाये कुरुपति दोउ वीरा।
सहि नहिं सकेउ कर्ण अपमाना,
प्रण दोहराय कीन्ह प्रस्थाना।

विकल सुयोधन निरखि अमंगल ,
 मानस खिन्न, हतप्रभ, विह्वल ।
 चितयेउ गुरु तन नयनन वारी ,
 धैर्य-गिरा आचार्य उचारी—
 “वचन सत्य शान्तनु-सुत भाखा ,
 पाण्डव-नेह दुराय न राखा ।
 पै साथहि इन कीन्हेउ यह प्रण ,
 हति हैं वीर सहस दश नित रण ।
 शूर परशुधर सम नहिं कोऊ ,
 सके जीति रण इनहिं न सोऊ ।
 ताते तजि उर संशय ग्लानी ,
 करहु पितामहि दल सेनानी ।”

बोद्धा :— जागेउ दुर्योधन-हृदय, सुनि गुरु वचन विवेक ,
 अधिनायक-पद मन मुदित, कीन्ह भीष्म अभिषेक । ७३

सोरठा :— भयेउ भीष्म-जय-नाद, युद्ध-वाद्य बाजे सकल ,
 पहुँचेउ सब संवाद, पल लागत पाण्डव-शिविर ।

सोच युधिष्ठिर मन सुनि छावा ,
 हृदय क्षोभ यदुपतिहि सुनावा—
 “समर-मही करि सन्मुख गुरुजन ,
 कीन्हि कुटिलता बहुरि सुयोधन ।
 दारुण राज्य-प्राप्ति-पथ माहीं ,
 गुरुजन शव मोहिं नाथ ! लखाहीं ।
 हतहिं पितामहिं हम जो अभागे ,
 करिहैं द्रोण-कृपहिं शठ आगे ।
 अथवा ये अपराजित गुरुजन ,
 वधिहैं समर-मही मम अनुजन ।
 निहत-भ्रात एकहु रण माहीं ,
 सकिहौ धारि प्राण मैं नाहीं ।”
 सुने नरेश-वचन यदुरायी ,
 व्यक्त शब्द प्रति उर-कदराई ।

क्रोधित सहसा सारंगपाणी,
अरुण दृगोत्पल भाषत वाणी—

दोहा :—“उपलब्ध मत्स्येश-पुर, शान्ति-सनेह विहाय,
कुरुक्षेत्र सजि सैन्य हम, आये रण हित धाय ७४

समर-समय तुम ज्ञान बखानत,
मनहुँ सनेह तुमहि इक जानत ।
कहहुँ सुनाय तुमहि निज भीती,
अर्जुन-हृदय पितामह-प्रीती ।
तजि अर्जुन उपजेउ कोउ नाहीं,
जीति जो सकहि भीष्म रण माहीं ।
वरनि सनेह-नात, बनि विह्वल,
करहु धनंजय-हृदय न दुर्बल ।”
माँगी क्षमा सुनत नृप-नंदन,
लीन्हे बोलि बंधु सब, नृप-नाण ।
यदुपति-सम्मति पुनि सन्मानी,
किये नियुक्त सात सेनानी ।
द्रुपद, शिखण्डि, विराट नरेशा,
धृष्टद्युम्न, सात्यकि, मगधेशा,
धृष्टकेतु शिशुपाल-कुमारा,
धरेउ शीश अक्षौहिणि-भारा ।

दोहा :—पाण्डव-दल पाञ्चाल लखि, युद्ध-निष्ठ, बल-धाम,
अधिनायक हित लीन्ह हरि, धृष्टद्युम्न कर नाम । ७५

सोरठा :—आनँद-उदधि अपार, उमहेउ राज-समाज सुनि,
द्रुपदात्मज जयकार, भयेउ पाण्डु-आत्मज-शिविर ।

धृष्टद्युम्न-मति-गति पुनि जानी,
कही धनंजय सन हरि वाणी—
“सर्व-निरीक्षण हित अधिनायक,
चहत तात ! निज तुमहि सहायक !”

कह अर्जुन—“धरिहौ शिर भारा ,
 देहि जो हरि मोहि आपु सहारा ।”
 सुनत द्रुपद हँसि गिरा उचारी—
 “कवन शिविर यहि अस अविचारी ,
 समुक्त जो बिनु श्याम-सहायी ,
 क्षणहु सकत निज काज चलायी ।
 कोउ पद लेहि, लहहि यश सारा ,
 मोरे मत सब हरि-शिर भारा ।
 प्रेरक शक्ति एक यदुनन्दन ,
 देह मात्र हम, प्राण जनार्दन ।
 रहि कहूँ निभृत, कतहुँ प्रकटायी ,
 करिहैं श्रीहरि सबन सहायी ।

बोधा :—अरि-वाहिनि हम ते महत, बढ़ि सब साज-समाज ,
 पै अरि निर्बल, हम सबल, हमरे संग यदुराज ।” ७६

कहे वचन प्रिय नृप पाञ्चाला ,
 मुद-बिहल सुनि धर्म भुञ्जाला ।
 लखि हरि-हस्त सबल निज शीशा ,
 मुदित पति, सेनप, अवनीशा ।
 उर-उर समरोत्साह अपारा ,
 शिविर शिविर हरि-जय-जयकारा ।
 लखे वृष्णिपति आवत तेहि क्षण ,
 तेजपुञ्ज जनु व्यास तपोधन ।
 धाय कीन्ह केशव पद-वंदन ,
 प्रणत समस्त नृपति, नृप-नंदन ।
 बसि आसन भाषेउ मुनिनाथा—
 “रण अनिवार्य भयेउ यदुनाथा !
 पै अभिलाष एक उर माहीं ,
 आयेउँ तेहि प्रकटन प्रभु पाहीं ।
 अविदित तुमहि न धर्म-प्रदीपा ,
 सूर्यग्रहण-तिथि-दिवस समीपा ।

दोहा :— कुरुक्षेत्र यहि धर्म-महि, ग्रहण समय यदुराज !
जुरत संत, सुकृती, यती, अगणित प्रजा-समाज । ७७

अस कछु यन्न करहु भगवाना !
बाधहि समर न धर्म-विधाना ।
आर्य-युद्ध-विधि जग विख्याता,
सतत तटस्थन अभय-प्रदाता ।
तजी नीति लहि असुरन राजू,
होत समर नित प्रजा-अकाजू ।
आर्यन सोइ कुपथ अपनावा,
जन-हित समर-मही विसरावा ।
जन-रक्षहि हित जन्म तुम्हारा,
देहु प्रजहिं प्रभु ! बंढुरि सहारा ।”
मुनि जन-वत्सल मुनिवर वचनन,
निर्भर आनंद-रस यदुनंदन—
“सदा सुपथ-दर्शक मुनि-नायक !
भये आजु पुनि मोर सहायक ।
युद्धहु माहि धर्म-व्यवहारा,
यह प्राचीन आर्य-आचारा ।

दोहा :— प्रतिपालत निज सुहृद सँग, बटमारहु सौजन्य,
तजत न जे जन शील निज, अरिहु संग ते घन्य । ७८

उभय पक्ष यहि समर आर्यजन,
उचित करहि सौजन्य-प्रदर्शन ।
बाँधहि वैर-ग्रन्थि उर नाही,
युद्धहि बद्ध-नियम दिन माहीं ।
संध्या समय समर-अवसाना,
पुनि सोइ भ्रातृ-भाव, सन्मानः ।
भिरहि परस्पर सुमटहि सम-बल,
समर-मही नहिं करहि कपट-छल ।
“सावधान” ! कहि करहि ग्रहारा,
होय न जित-निरस्त्र-संहारा ।

कुञ्जर, वाजि जे आयुध लावत,
शिल्पिहु जे शस्त्रास्त्र बनावत,
सारथि जे न शस्त्र कर धारे,
रणमहि वाद्य-बजावन हारे,
बहिव्यूह औरहु जन जेते,
पावहि अभय-दान सब तेते ।

दोहा :— धर्म-युद्ध-व्यवहार यह, शास्त्र-विहित, विख्यात,
अन्यहि कछु मन्तव्य मम, सूर्य-ग्रहण हित तात ! ७६

ग्रहण-मोक्ष जब लागि नहि होई,
जब लागि क्षेत्र रहहि मुनि कोई,
तब लागि दोउ दल युद्ध विहायी,
बसहि नेह-विश्वास दृढ़ायी ।
जन, सैनिक, सेनानी, राजा,
करहि सकल मिलि मंगल काजा ।
पाण्डव धर्म-धुरीण, उदारा,
करत सहर्ष सुमत स्वीकारा ।
लेहि जो मानि सुयोधन ताता !
रणहु तो शान्ति-सदृश सुखदाता ।
कुरुराजहि समुभाय-बुभायी,
करहु काज यह मुनिवर ! जायी ।”
सुनि कृतकृत्य मुनीश सुजाना,
कीन्ह पितामह-शिविर प्रयाणा,
हर्षित भीष्महु सुनि सुविचारा,
हरिहि प्रशंसि सुमत स्वीकारा ।

दोहा :— चाहेउ करन विरोध जब, कुरुपति, सुबल-कुमार,
सरिसुत कीन्ह प्रयुक्त निज, अधिनायक-अधिकार । ८०

कृत-निश्चय लखि शान्तनु-नंदन,
भयेउ भौल मन मारि सुयोधन ।

शिविर-शिविर प्रति प्रविशी गाथा,
 सैनिक मुदित, चकित नरनाथा।
 कहि—“हरि धन्य ! धन्य मुनिरायी !”
 दीन्हे निज निज शस्त्र विहायी।
 समर-पशुहु गज-वाजि सुखारी,
 उतरे साज-भार, अंबारी।
 उपस्रव्य, गजपुर तजि सारी,
 आर्यी पाण्डव-कुरुकुल-नारी।
 तियन प्रथम मिलि नेह बढ़ावा,
 उपजेउ दोउ शिविरन सदभावा।
 मिलीं बहुरि कुन्ती-गान्धारी,
 भानुमती पाञ्चाल-कुमारी।
 परिहरि वैर-निष्ठ दुर्योधन,
 आये हरिहि मिलन सब कुरुजन।

दोहा :—मिले धर्मनृप वृद्धनृप, धृष्टद्युम्न गाङ्गेय,
 कृतवर्मा सात्यकि मिले, मिले पार्थ राधेय। ८१

हास-हुलास समर-महि छावा,
 विचरत ससुख जहाँ जेहि भावा।
 क्रम-क्रम तेहि थल आवन लागे,
 यात्रिन-वृन्द धर्म-अनुरागे।
 वधि क्षत्रिय-कुल निखिल परशुधर,
 भरे जे पञ्च, रक्त ते सरवर,
 ते स्यमन्तपञ्चक विख्याता,
 भये तीर्थ शुचि पुण्य-प्रदाता।
 ग्रहण-समय तहँ मज्जन लागी,
 उमहे गेह-नेह जन त्यागी।
 भारत-भूमि प्रान्त प्रति केरे,
 जुरे मुमुक्षु, पुण्य-कृति-प्रेरे।
 रज-कण मही, व्योम जिमि तारा,
 तिमि अगण्य जन-राशि आरा।

दोहा :— मिलेउ विशाल समाज यह, बाहिनि-द्वय सँग आय ,
कुरुक्षेत्र जनु मिलि बहे, सप्त सिन्धु हहराय । ८२

उत द्वारावति रक्षण लागी ,
प्रद्युम्नहिं अनिरुद्धहि त्यागी ,
धर्मक्षेत्र यदुवंशिहु सारे ,
नाना बाहन साजि सिधारे ।
विजित-मनोजब वाजि सोहाये ,
स्यंदन अमर-यान जनु धाये ।
वारिद मनहुँ द्विरद पथ जाता ,
यक्ष अंग-रक्षक साक्षाता ।
दिव्य साज सब, दिव्य आभरण ,
धरणि मनहुँ अवतीर्ण आभरण ।
पहुँचि धर्म-महि बिनु विश्रामा ,
उतरे निरखि कुञ्ज अभिरामा ।
पुण्य क्षेत्र बहु लखत ताहि क्षण ,
स्वजनन आय मिले संकर्षण ।
यदुजन आवत यदुपति जाना ,
प्रमुदित धाय कीन्ह सन्माना ।

दोहा :— धर्म नृपहु अनुजन सहित, जाय मिलेउ यदुवृन्द ,
लाय शिविर निज, वास दै, प्रकटेउ हृदयानंद । ८३

सोरठा :— सुने तबहिं भगवान—‘आवत ब्रजजन’—शब्द ये ,
विस्मृत रथ, पद त्राण, धाये विकल सुपर्ण-पति ।

मथुरा-पथ हेरत यदुनंदन ,
निरखे शकटन आवत ब्रजजन ।
सुन्दर इन्दु-वदन नरनारी ,
तोष-मूर्ति सब, परम सुखारी ।
वंशीधर-गिरिधर-यश गावत ,
जय-ध्वनि करत गोपजन आवत ।

मधुर कण्ठ, पुनि हरि-जयकारा,
सुनत जुरी पथ भीर अपारा ।
चकित लखत जन गोप-समाजू,
चकित विलोकि आपु ब्रजराजू ।
तजे जे ब्रजजन जीवन-हीना,
दग्ध वियोग-वह्नि, दुख-दीना,
तजीं निराश्रय जे ब्रजनारी,
तरु-विच्छिन्न लता अनुहारी,
सन्मुख ते सब स्वस्थ, सुखारे,
जनु आनंद देह बहु धारे ।

दोहा :— लखतहि यशुदा-नंद-शकट, धाये पंकजनैन,
गहे पदाम्बुज 'कान्ह' कहि, निकसे और न बैन । ८४

तजेउ नंद रथ, पुलकेउ गाता,
सकी विलोकि न श्यामहि माता ।
नामहि सुनि विह्वल महतारी,
बुझी ज्योति दृग उमहेउ वारी ।
हरि जस ललकि भुजन भरि लीन्हा,
परस पुरातन सुत निज चीन्हा !
शमि विरहज चिर उध्ण नयन-जल,
आनंद-अश्रु बहे हिम-शीतल ।
सुरसरि-जल निदाघ जनु दाहा,
बहेउ हिमालय-सलिल प्रवाहा ।
लहि दृग शक्ति विलोकेउ माता,
मूर्ति अंक निज प्राण-प्रदाता ।
चिबुक हस्त विधु-बदन विलोकति,
सिक्त कपोल सलिल दृग मोचति ।
फेरति मस्तक कर महतारी,
विह्वल श्रीहरि विश्व बिसारी ।

दोहा :— लखेउ मातु-सुत-सम्मिलन, चिन तेहि क्षण, तेहि और,
ब्रह्मानंद-निमग्न ते, भये और के और । ८५

शकट अन्य वृषभानु निहारी ,
 मिले धाय उर आनंद भारी ।
 लखी समीपहि श्याम सनेही ,
 राधा, भक्ति धरे जनु देही ।
 आनन इन्दीवर अम्लाना ,
 प्रभु-पद-दत्त दृष्टि सह प्राणा ।
 शान्ति मूर्ति, पावन अवलोकनि ,
 सावित्रिहि जनु भव-तम-मोचनि ।
 राग, रोष, मद, मोह-अबाधा ,
 साध्वि, अतीत गुणत्रय राधा ।
 लखि सच्चिदानंद निज सन्मुख ,
 हरि तन्मय, उत्कण्ठित, उन्मुख ।
 राधा-माधव मिलन अनूपा ,
 हरि राधा, राधा हरि-रूपा ।
 बिनसेउ काया-माया-भाना ,
 भेंटे मुक्त-जीव भगवाना ।

दोहा :— ललिता स्वर ताही समय, प्रविशेउ श्रुति अभिराम—

“भये भूप, अब तौ तजहु, उग-विद्या धनश्याम !” ८६

गिरा ललित सुनि श्रीहरि हेरे ,
 ठाढ़े गोप-गोपिजन घेरे ।
 जीवन-धन-सानिध्य सुखारे ,
 समाधिस्थ जनु नयन उधारे !
 पियत वदन-छवि अमिय विलोचन ,
 मानत निमि-निपात जनु वंचन ।
 भेंटत इष्टदेव तन पुलके ,
 अंगस्पर्श हर्ष दृग छलके ।
 विकसे हरि-नयनहु अभिरामा—
 सार्थक ‘पुरीकाज्ञ’ प्रभु-नामा ।
 भरे बहुरि गिरिधर-मुख फूला ,
 बतरस हरे विरह चिर शूला ।

ललितहि मिलत कहत सुखराशी—
 “दिखहु न सखि ! तुम मोहि ठगी सी !”
 कहेउ विशाखा सुनि मुसकायी—
 “ठगेउ हमहि सो अन्य कन्हई ।

दोहा :— वह न चक्र-प्रिय, युद्ध-प्रिय, नहिं वयस्क, यदुनाथ ,
 वह वंशी-प्रिय, रास-प्रिय, बालकृष्ण, ब्रजनाथ ।” ८७

सुनि हरि हँसे, हँसे सब ब्रजजन ,
 भयेउ तबहिं बलराम-आगमन ।
 पुनि सोइ मिलन, सोइ उल्लासा ,
 वरसेउ बहुरि हास-परिहासा ।
 वसुदेवहु पायेउ संवादू ,
 आये धाय हृदय आह्लादू ।
 नंद सुहृद हठि कण्ठ लगावा ,
 यशुदहिं भेंटि परम सुख पावा ।
 गोपी गोप यथोचित वंदे ,
 कुशल-प्रश्न करि सुनि आनंदे ।
 सविनय नंदहिं कह वसुदेवा—
 “चाहहुँ करन सखा ! कछु सेवा ।
 कुरुक्षेत्र-महि जब लागि वासा ,
 करहु आय मम संग निवासा ।”
 सुनि आनंद नंद प्रकटायी ,
 शूर-सुतहिं वर विनय सुनायी—

दोहा :— “मैं सेवक, अवनीश प्रभु, चाहहुँ कृपा-प्रसाद ,
 स्वीकारहुँ आतिथ्य जो, मिटहि लोक-मर्याद ।” ८८

नंद स्वभाव, आत्म-सम्माना ,
 अन्तर्यामी हरि सब जाना ।
 पितु सन वचन विनीत उचारा—
 “बसहिं तात निज रुचि अनुसार ।

देहु निदेश मोहिं पै देवा !
 बसि सँग करहुँ दिवस कछु सेवा ।
 रच्छत पलक अक्ष जेहि भाँती ,
 रच्छेउ मोहिं तात दिन राती ।
 जो कछु श्याम सो इन निर्मावा ,
 होत समर्थ काल बिलगावा ।
 लहेउँ योग बहु वत्सर माहीं ,
 खोवन आजु चहहुँ सोउ नाहीं ।”
 हुलसे ब्रजजन सुनि मनचीती ,
 वसुदेवहु पुलकित लखि प्रीती ।
 सघन महीरह-पुञ्ज निहारी ,
 दीन्हे शिविर नंद निज डारी ।

दोहा :— तजि पाण्डव-शिविरन विभव, स्वजन-नेह-सन्मान ,
 ब्रजजन सह तरु-तल बसे, जन-वत्सल भगवान । ८६

निवसत नंद सँग आनंद-धामा ,
 भयेउ पुण्य-प्रद पावन ठामा ।
 नृपन-शिविर सब शून्य लखाहीं ,
 भीर अपार नंद-थल माहीं ।
 आवत जन हरि-दर्शन काजा ,
 जुरत अनंत यती, मुनि, राजा ।
 भये सुयश-भाजन ब्रजवासी ,
 थकति न नित्य निरखि जनराशी ।
 ब्रजजन-भाव-भक्ति, हरि-ध्याना ,
 निशि दिन हरि-कीर्तन, गुण-गाना ,
 योगिहु हृदय विलोकि सिद्धाहीं—
 ये हरि माहिं, हरिहु इन माहीं ।
 आवत व्यासहु शिष्यन साथी ,
 अनुजन सहित धर्म नरनाथा ।
 विदुर, द्रोण शान्तनु-सुत संगी ,
 सुनत श्याम-शिशु-चरित प्रसंगी ।

दोहा :— कुन्ती द्रौपदि, देवकी, रुक्मिणि सब हरि रानि ,
यशुदा, राधा, गोपिकन, मिलत नित्य सुख मानि । ६०

ससुख सबन कछु काल बितावा ,
आयी अमा, ग्रहण दिन आवा ।
निर्जल, निराहार-व्रत धारी ,
सुमिरत हरिहिं सकल नर नारी ।
ग्रहण-मुक्त रवि उदित अकासा ,
लहेउ भुवन पुनि पूर्व प्रकाशा ।
करि स्यमन्तपंचक शुचि मज्जन ,
लागे देन दान जन, नृपगण ।
धान्य धेनु जो ब्रजजन संगी ,
चले देन सब भरे उमंगी ।
प्रविशे शिविरन जस ब्रजवासी ,
लखी अनंत रत्न-मणि-राशी ।
एकहिं एक दिखावहिं धायी ,
पूछहिं—“चकित कहाँ ते आयी !”
यशुमति लोचन हरि दिशि फेरे ,
हरि विहँसे, राधा तन हेरे ।

दोहा :— कहति अम्ब—“अब कान्ह ! नहिं, उपजावहु सन्देह ,
जानत ब्रज हरि-राधिका, एक प्राण, दुइ देह ।” ६१

समुक्ति कीन्ह कौतुक हरि-राधा ,
ब्रजजन उर आनंद अगाधा ।
रत्न-राशि लै लै सब धाये ,
चकित बहुरि जस बाहर आये ।
हेम-विमण्डित-शृङ्ग, सवत्सन ,
ठाढ़ी माथुर सुरभि सहस्रन ।
व्यापेउ विस्मय, हर्ष, कोलाहल ,
दीन्ह दान नैद आनंद-विह्वल ।
भरि-भरि अञ्जलि मणि-समुदाई ,
रहे द्विजन ब्रज-वृन्द लुटायी ।

याचक अस न पुण्यमहि माहीं ,
लहेउ मनोवाञ्छित जेहि नाही ।
चहुँ दिशि नंद-दान-यश-गाना ,
सुनि-सुनि राज-समाज लजाना ।
मुदित युधिष्ठिर नंद ढिग आयी ,
कीन्ह वदन निज दान बड़ाई ।

बोद्धा :— “श्रीहरि-महिमा यह सकल”, कहेउ नंद मतिमान ,
“निज माया-बल कीन्ह जिन, घोष धनेश-समान ।” ६२

दिवस एक यदु-पाण्डव-नारी ,
देवकि, रुक्मिणि, द्रुपद कुमारी ,
आयी नंद-शिविर हर्षानी ,
यशुमति प्रकटि प्रीति सन्मानी ।
जुरी सकल गोपिहु अभिरामा ,
हरि-चर्चा-निमग्न वर वामा ।
जेहि जेहि जहँ रच्छेउ ब्रजरायी ,
रही वृत्त निज नारि सुनायी ।
शिशु-लीला बरनी नंदरानी ,
बहेउ देवकी-नयनन पानी ।
कहति—“यथार्थ तुमहि हरि-माता ,
निरखे बाल-चरित सुखदाता ।”
शुचि पछितानि देखि सखि केरी ,
नंद-घरनि राधा दिशि हेरी ।
कहति—“बाल लीला सुखदायी ,
सकति राधिका तुमहिं दिखायी !”

बोद्धा :— बोली सुनि विह्वल जननि, राधहि हृदय लगाय—
“शेष यहहि उर साध मम, सकहु तौ देहु मिटाय ।” ६३

पाण्डव-शिविरन गवची रानी ,
भाभी पथ पाञ्चाली वासी—

“यह त्रैलोक्य-सुन्दरी राधा,
चरित अचिन्त्य, स्वभाव अगाधा।”
कहे वचन सुनि भीष्मक-नंदिनि—
“मानत हरि राधहि जग-वन्दनि।
हरि ब्रज तजत नियम-व्रत साधे,
बाल मुकुन्द इष्ट आराधे।
इन कीन्हे निज वश यदुरायी,
चहहि जहाँ जब लेहि बोलायी।
प्रविशत श्रुति-पुट राधा-नामा,
होत विमन सहसा घनश्यामा।
पावत जब तब हम हरि-दर्शन,
बसत सतत इन सँग मनमोहन।”
सुनत विहँसि बोली पाञ्चाली—
“जानहुँ हरि-स्वभाव मैं आली!

दोहा :— खसत चीर जब कीन्ह मैं, ‘गोपी-वल्लभ’-ध्यान,
बढ़ेउ वसन तत्काल मम, सुनी विनय भगवान्।” ६४

उत प्रति शिविर वृत्त यह छावा,
रचत गोप हरि-चरित सोहावा।
नियत समय सब काज विहायी,
जुरेउ विशाल मनुज-समुदायी।
राज, प्रजा, सैनिक, सेनानी,
जुरे साधु, मुनि, तापस, ध्यानी।
पाण्डव, कुरुजन, यदुजन सारे,
रानिन सह नैद-शिविर सिधारे।
उग्रसेन नृप, परिजन साथी,
निबसे आय आपु यदुनाथा।
लीला-थल राधा पगु धारा,
निम्न-मुखी सत-वचन उचारा—
“आजीवन मानस, वच, कर्मन,
कीन्हेउँ जो मैं हरि-आराधन;

केवल हरि-मय जो मम प्राणा ,
प्रकटहिं इष्ट देव भगवाना ।”

दोहा :— चकित लखेउ जन मंच पै, इत शोभित यदुराज ,
प्रकटे यशुमति-अंक उत, शिशु-स्वरूप ब्रजराज । ६५

बरसे सुमन मुदित नर-नारी ,
“राधा-माधव”—जय-ध्वनि भारी ।
व्योम विमुग्ध अमर अनुरागी ,
मही विमुग्ध मुनीश विरागी ।
हर्ष-उदधि उमहेउ सब ओरा ,
बहेउ भक्ति-रस, भुवन विभोरा ।
शिथिल जननि वात्सल्य बहेउ तनु ,
लहेउ वियोगिनि-धेनु बत्स जनु ।
दीन्ह अंक शिशु जस नैदधरनी ,
स्रवत पयोधर विह्वल जननी ।
लहि ब्रजजनहु हरिहिं साक्षाता ,
रचेउ जन्म-उत्सव सुखदाता ।
यहि विधि जुरति नित्य जनराशी ,
नित नब चरित रचत ब्रजवासी ।
लखत हरिहु, सोचत मन माहीं—
मैं कृतकार्य प्रिया सम नाहीं ।

दोहा :— सकेउँ न मैं उन्मूलि खल, सन्मुख समर कराल ,
पै राधा मम प्रेम-तरु, सीचि कीन्ह सुविशाल । ६६

यहि विधि सप्त दिवस लखि चरितन ,
लौटे निज-निज भवन यात्रिजन ।
तीनिहि पावन क्षेत्र कुचाली ,
हरि-यश-वृद्धि हृदय जिन साली—
दुर्योधन, दुश्शासन पापी ,
सुबल-सुवन शकुनी संतापी ।

लखि निज दलहु कृष्ण-गुण-गायन ,
 कहेउ शकुनि सन क्रुद्ध सुयोधन—
 “कुटिल कृष्ण निज सुयश पसारी ,
 भरी भीति मम वाहिनि भारी ।
 निराकरण बिनु सरहि न काजू ,
 पठवव उचित दूत कोउ आजू ,
 करि अपमानित जो मम अरि गण ,
 देहि सदर्प समर-आमंत्रण ।
 सुवन उलूक प्रगल्भ तुम्हारा ,
 सकत अभय करि काज हमारा ।”

दोहा :— सुनि, बोलाय निज सुत शकुनि, कुवचन विपुल सिखाय,
 मार्गशीर्ष दशमी सुदी, दीन्हेउ प्रात पठाय । ६७

उत नँद-थल यदुनाथ ताहि क्षण ,
 रहे विदा करि नेही ब्रजजन ।
 विकल न कोउ, न कोउ अधीरा ,
 प्रकट न विरह-जनित कहूँ पीरा ।
 सिद्धहि तजत सिद्धजन जैसे ,
 चले प्रभुहि मिलि यदुजन तैसे ।
 गवने अगणित जन-अघ धोयी ,
 गवने भक्ति-बीज उर बोयी ।
 भारत प्रान्त-प्रान्त सोइ जामा ,
 हरि-मय भयी भूमि अभिरामा ।
 ताही समय धनंजय आयी ,
 दूत-आगमन कथा सुनायी ।
 ब्रजजन-भक्ति भरे श्रीरंगा ,
 बिहँसे सुनतहि समर-प्रसंगा ।
 गवने सँग अवधान अशेषा ,
 प्रविशे धर्मनरेश-निवेशा ।

दोहा :— जाय सभाथल हरि लखी, नृप-सेनानिन-भीर ,
 लखेउ सुयोधन-दूत पुनि, भार-सँदेश अधीर । ६८

भयेउ उलूक सभा महि ठाढ़ा,
हरि दिशि चितै वचन मुख काढ़ा—
“जानत नाथ ! दूत सोइ कहहीं,
जो सँदेश निज प्रभु सन लहहीं ।
ताते जो कछु कहहुँ कठोरा,
छमहु दूत गुनि, दोष न मोरा ।
वाणी जो कुरुनाथ कहायी,
शब्दहु कहिहौँ सोइ दोहराई ।
कहेउ जो यदुपति हेतु नरेशा,
कहत सोइ मै प्रथम सँदेशा—
‘कृष्ण ! तुमहि गृह-विग्रह-मूला,
मम कुल सौम्य विपिन तुम शूला ।
समर-महीं तुम शस्त्र विहायी,
वृत्ति वर्षवर कस अपनायी ?
षंड वेष, षंडहि व्यवहारा,
इन्द्रजाल बल एक तुम्हारा ।

दोहा :— इन्द्रजाल लखि होत नहिं, विकल शस्त्र-धृत शूर,
करिहौँ रण-महि काल्हि मै, बल तुम्हार सब चूर ।’ ६६

धर्म नृपति हित कुरुपति भाखा—
‘अब रण कस विलम्ब करि राखा ?
शस्त्र स्वच्छ करि पूजे सारे,
रण हित मित्र नरेश हँकारे ।
चढ़े गरजि केहरि अनुहारी,
जम्बुक-वृत्ति आजु कस धारी ?
गवने यात्रि धर्म-महि त्यागी,
रिक्त विशाल क्षेत्र रण लागी ।
पठवत ताते युद्ध-निमंत्रण,
होत प्रात करिहौँ रण भीषण ।
बरनत नित तुम कृति मम नाना—
जतु-गृह, गरल, नारि-अपमाना ।

विलपत सहि अपमान न योद्धा,
चढ़ि रण करत वैर-प्रतिशोधा ।
पै जो करि आभीर-मिताई,
दीन्ह तुमहु कुल-धर्म विहायी,

दोहा :— तौ आजुहि निशि रण-मही, तजहु वाहिनी साथ,
दिखिहै प्रात जो पति नृप, मरिहै कुरुजन-हाथ ।’ १००

अर्जुन हित यह नृपति सँदेशा—
‘सोह न तुमहिं शूरजन-वेषा ।
वेष जो मत्स्य-नाथ गृह धारा,
सोइ स्वरूप यथार्थ तुम्हारा ।
वंश यशस्वी तुम ते नाहीं,
उपजे वृहन्नला कुल माहीं ।’
भीमहिं भूप सँदेश पठावा—
‘दर्प वृकोदर ! कहाँ गँवावा ?
कर्षित लखि निज तिय-परिधाना,
कीन्हे सभा गरजि प्रण नाना ।
करहु काल्हि रण साँच सकल प्रण,
पियहु पिशाच ! रक्त दुःशासन ।
करहु समर-महि मम उरु भंजन,
बधहु काल बनि शत मम अनुजन ।
समुझु तथापि मूढ़ ! मन माहीं,
खात जो बिपुल वीर सो नाहीं ।

दोहा :— रण-आमंत्रण देत मैं, तोहि मत्स्येश-सुआर !
आय प्रात संगर-मही, सहु मम गदा-प्रहार ।’ १०१

नृपति विराट, द्रुपद महाराजा,
पाण्डव-पक्ष अन्य जे राजा,
पठयेउ कुरुपति सबहिं सँदेशा—
‘तजि मम अरिन जाहु निज देशा,

अथवा प्रातः समर समुहायी,
यमपुर जाहु भीष्म-शर खायी ।
निहतन चहत पितामह, जाही,
सकत न रच्छि विष्णु रण ताही ।
वाहिनि मम प्रलयाब्धि समाना,
शान्तनु सुवनहि वेग महाना,
कर्ण तिमिङ्गिल, द्रोणहि ग्राहा,
दुःशासन तट-ध्वंसि-प्रवाहा,
जयद्रथ अद्रि, भँवर मद्रेषा,
ज्वार बृहद्वल अवध-नरेशा,
कृप, कृत, द्रौणी मकर कराला,
प्रबल वात भगदत्त भुआला,

बोहा :— बड़वानल काम्बोज-नृप, उद्गम शकुनि सुजान,
तजितनु अरि-कुल-मुक्तिहित, दल मम तीर्थस्थान !” १०२

सुनत दूत-मुख उद्धत वाणी,
क्षुब्ध नरेन्द्र, क्षुब्ध सेनानी ।
नयन वदन जनु ज्वलित हुताशन,
शोणित ओष्ठ विखण्डित दशनन ।
उठे भीम, अँग रोष-प्रवाहा,
मनहुँ उदधि-तजि आदि-वराहा ।
उठे कुपित अभिमन्यु कुमारा,
अरुण वदन जनु मंगलतारा ।
उठे धृष्टद्युम्नहु रण-धीरा,
उठे क्रुद्ध युयुधान अधीरा ।
उठे वृद्ध नृप द्रुपद, विराटा,
भृकुटी विकट विशाल ललाटा ।
तजि धर्मज, अर्जुन, यदुराजू,
उठेउ दृष्ट सब वीर-समाजू ।
अंगद-भूषित, चर्चित चंदन,
उठे सभा भुज-शुण्ड सहस्रन ।

दोहा :— ईगित-मात्रहि ते सबहिं, कीन्ह शान्त हरि धीर ,
बहुरि विलोकि उलूक दिशि, भाषी गिरा गँभीर— १०३

“कुरुपति-योग्यहि कुरुपति-वाणी ,
भयी न ताहि सुने कछु हानी ।
वाच्य - अवाच्य - विवेक - विहीना ,
हीनहिं वचन कहत जन हीना ।
धर्मात्मज धृति-धैर्य-निधाना ,
तिनहिं मान-अपमान समाना ।
चंदन सम सुजनन-व्यवहारा ,
काटेहु सुरभित करत कुठारा ।
सकत कि कोउ धर्मज विचलायी ?
सकत कि नभ कोउ पंक लगायी ?
पार्थ-भरोस सदा निज धनु पर ,
शब्द ते देन चाहत नहिं उत्तर ।
गर्जत केहरि सुनि घन-घोषा ,
सुनि गोमायु-हुहानि न रोषा ।
भीमहिं निज भुजबल-विश्वासा ,
करिहैं पूर्ण सुयोधन-आशा ।

दोहा :— गंग-प्रवाह समान यह, पाण्डव दल गम्भीर ,
उदधि न कुरुदल, क्षुद्र नद, क्षणिक प्रवाह अधीर । १०४

करत न पाण्डव जदपि विकल्थन ,
करिहैं पै कटि-बद्ध घोर रण ।
पाण्डव-मही हरी कुरुरायी ,
लेन हेतु तिन कीन्हि चढ़ायी ।
कुरुपति-हानि न बसे चुपायी ,
तबहुँ प्रचारत धैर्य विहायी ।
उद्धत वृत्ति सकत नहिं त्यागी ,
जरिहै शलभ सदृश रण-आगी ।
देहु सँदेश ताहि यह जायी—
‘पाण्डव-दल न स्वल्प कदराई ।

निज बल पाण्डव समर हठीले ,
परबल तुम प्रमत्त गर्वीले ।
भीष्म, द्रोण गुरुजन करि आगे ,
जियन चहत तुम समर अभागे ।
निश्चित दुहुन निधन रण माहीं ,
बचिहैं प्राण तुम्हारेहु नाहीं ।

दोहा :— तुम रणान्त प्राणान्त-भय, दुरिहौ जहँ जहँ जाय ,
मम परिचालित पार्थ-रथ, जइहै तहँ पछियाय । १०५

सोरठा :— प्रखर धनंजय-बाण, अटल वृकोदर-प्रण सकल ,
स्वीकृत रण-आह्वान, प्रकटहु पौरुष प्रात निज' ।”

कहत मनहुँ भवितव्य जनार्दन ,
उठे त्रिविक्रम सम तजि आसन ।
गँजी गिरा, सभा उत्साहा ,
रण-रस-मत्त उठे नरनाहा ।
गवनेउ कब उलूक नहिं जाना ,
तजि रण रहेउ अन्य नहिं ध्याना ।
युद्ध-वाद्य कोउ जाय बजाये ,
कोउ घाय गज रथ सजवाये ।
कौरव-शिविरहु बाजन बाजे ,
ध्वनि-प्रतिध्वनि, भट-प्रतिभट गाजे ।
सजत सैन्य लखि धर्म भुआला ,
गवनेउ केशव-वास विहाला ।
पुलकेउ नृप विलोकि यदुनंदन ,
साजत स्वकर धनंजय-स्यंदन !
वचन विनीत कहे नरनाहा—
“नाथ-हाथ अब मम निर्वाहा ।

दोहा :— बाहिनि चुद्र बहित्र मम, रिपु-दल पारावार ,
कर्णधार, रत्नवार तुम, खेय लगावहु पार ।” १०६

तेहि निशि उभय निवेशन माहीं ,
 निमिषहु सकेउ सोय कोउ नाहीं ।
 होत प्रात निज निज दल साजी ,
 चढ़े पक्ष दोउ रण-महि गाजी ।
 गज, रथ, अश्व, पदाति अपारा ,
 जनु महि केवल बसत जुभारा ।
 शोभित रत्न-कवच भट धारे ,
 उदित अगण्य मनहुँ रवि तारे ।
 स्वर्ण विभूषण-भूषित गज गण ,
 दामिनि-वेष्टित मनहुँ सघन घन ।
 मणिगण मण्डित ध्वजा उड़ाहीं ,
 अनल प्रज्वलित जनु नभ माहीं ।
 तोमर, परशु, गदा, धनु ताने ,
 विरचि व्यूह दोउ दल समुहाने ।
 निरखि रणोद्यत अरि कुरुरायी ,
 द्रोण गुरुहिँ अस गिरा सुनायी—

दोहा :— “अवलोकहु आचार्य ! वह, पाण्डव-चमू महान ,
 कीन्ह व्यूह जेहि द्रुपद-सुत, शिष्य तुम्हार सुजान । १०७

यहि महुँ शूर महा धनुधारी ,
 समर भीम-अर्जुन अनुहारी ।
 द्रुपद महारथि, मत्स्य महीशा ,
 सात्यकि, चेकितान, काशीशा ।
 धृष्टकेतु, शैव्यहु बलधामा ,
 कुन्तिभोज-नृप पुरुजित नामा ।
 युधामन्यु रण-विक्रम-शाली ,
 वीर उत्तमौजा बलशाली ।
 सौभद्रहु, द्रौपदि सुत सारे ,
 सकल महारथ रण-भट भारे ।
 मम पक्षहु महुँ सुभट अनेका ,
 बली विशिष्ट एक ते एका ।

तुम्हरे जानन-हित द्विजरायी ,
सैन्य-नायकन कहहुँ सुनायी—
आपु, पितामह, कृप जयधामा ,
कर्ण, विकर्णहु, अश्वत्थामा ,

शोहा :— सोमदत्त-सुत आदि बहु, युद्ध-विशारद वीर ,
नाना शस्त्र-प्रहार-विद, मम-हित-दत्त शरीर । १०८

भीष्म-सुरक्षित कटक हमारा ,
परत लखाय अगण्य अपारा ।
भीम-सुरक्षित रिपु-संधाता ;
दिखत मोहि मर्यादित ताता !
रहि नियुक्ति-विधि सब निज अयनन ,
चहुँ दिशि करहु पितामह-रक्षण ।”
सुनि भीष्महु कुरुवृद्ध ताहि क्षण ,
कीन्ह प्रतापी केहरि गर्जन ।
महाशब्द निज शंख बजावा ,
हर्ष सुयोधन-उर उपजावा ।
गोमुख, शंख, भेरि, पणवानक ,
बाजे सहसा शब्द भयानक ।
उत सुनि शत्रु-वाद्य-ध्वनि श्रवणन ,
दोउ सव्यसाची यदुनंदन ,
महत, श्वेत-हय-सुरथ सोहाये ,
निज निज शंख सुदिव्य बजाये ।

शोहा :— देवदत्त वादेउ विजय, पाञ्चजन्य यदुनाथ ,
महाशंख पौण्ड्रहु बजेउ, भीम भीमकृति हाथ । १०९

कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर राजा ,
शंख अनंतविजय कर बाजा ।
नकुलहु शंख सुघोष बजावा ,
मणिपुष्पक सहदेव सोहावा ।

धृष्टद्युम्न, काशीश धनुर्धर,
नृपति विराट, शिखण्ड वीरवर,
सात्यकि जे न कबहुँ रण हारे,
द्रुपद नृपति, द्रौपदि-सुत सारे।
महाबाहु अभिमन्यु—सबन इन,
वादेउ पृथक चतुर्दिक शंखन।
कौरव-दल-बल हृदय विदारी,
महि नभ भरी तुमुल ध्वनि भारी।
पुनि कौरव्य बाहिनी सारी,
अर्जुन व्यूह-निबद्ध निहारी।
गुनि समीप पुनि शस्त्रपात-क्षण,
कर उठाय गाण्डीव शरासन,

बोद्धा :—हृषीकेश हरि सन वचन, अर्जुन कहे सुनाय—

“चलहु उभय दल-मध्य लै, स्यंदन मम यदुराय । ११०
चहहुँ विलोकन सब तिनहि, जिन उर युद्ध-उमंग,
यहिरण-उद्यम माहि हरि, जुझिहैं जे मम संग । १११
लखन समागत सब चहहुँ, जे जे जूझनहार,
समर सुयोधन कुमति के, जे प्रिय-चाहनहार ।” ११२

अर्जुन-वचन सुनत पुरुषोत्तम,
थापेउ दोउ दल मध्य रथोत्तम।
भीष्म, द्रोण गुरु, राज-समाजा,
कहेउ सबन सन्मुख यदुराजा—
“करहु पृथा-सुत ! तुम अवलोकन,
एकत्रित समस्त ये कुरुजन ।”
लखे पार्थ तहैं तबहिं दुहुन दल—
बहु पितृव्य, पितामह, मातुल,
मित्र-वृन्द, आचार्यहु, भ्राता,
श्वसुर, सनेहि, पौत्र, अँगजाता।
बंधु-वर्ग सब पार्थ विलोका,
भाषे वचन स-दैन्य, सशोका—

“लखि रणेच्छु हरि ! स्वजनन ओरा ,
शिथिल गात, सूखत मुख मोरा ।
तनु प्रकम्प, रोमाञ्च अतीवा ,
खसत हाथ ते धनु गाण्डीवा ।
मानस भ्रमत, दाह अँग गाढ़ा ,
रहि नहिँ सकत नाथ ! मैं ठाढ़ा ।

दोहा :— मोहिँ निमित्त विपरीत सब, केशव ! समर लखाहिँ ,
युद्ध माहिँ हति निज स्वजन, दिखत श्रेय कछु नाहिँ । ११३

मोहिँ न कृष्ण ! विजय-आकांक्षा ,
राज्य-सुखहु हित मोहिँ न वाञ्छा ।
गोविंद ! राज्य हमहिँ कछु नाहीं ,
काह भोग, जीवनहू माहीं !
जिन हित तात ! भोग सुख साजू ,
इच्छत हम, सोइ स्वजन समाजू ,
प्राण-सम्पदा-आस विहायी ,
संगर-मही अवस्थित आयी ।
गुरु, पितु, आज्ञा, मातुल, सारे ,
श्वसुर, पौत्र, सुत नात हमारे—
ये ही सब वरु बधहिँ मोहिँ रण ,
मैं न हतेच्छु इनहिँ मधुसूदन !
करिहौ त्रिभुवन हित अस नाहीं ,
धरणि-राज्य केहि गणना माहीं !
आततायि धृतराष्ट्र-कुमारा ,
अघहि, न हित, कीन्हे संहारा ।
वध्य न बान्धव माधव ! ताते ,
लहिहौ सुख कस स्वजन नपाते !

दोहा :— लखत न ये मति लोभ-हत, कुल-क्षय-दोष महान ,
रहेउ जनादैन ! नहिँ इनहिँ, मित्र-द्रोह-अघ ज्ञान । ११४

दोहा :— होहिं हमहिं नहिं कस विमुख, जानि दोष हम आप ,
हमहिं तौ परत दिखाय हरि ! वंश-नाश-कृत पाप । ११५

कुल-क्षय ते कुल कर चिर धर्मा ,
बिनसत, कुल भरि बढ़त अधर्मा ।
बढ़े अधर्म, पतन कुल-तिय कर ,
भये पतित तिय, उपजत संकर ।
कुलघातिहिं कुल निखिल समेतू ,
पठवत संकर नरक-निकेतू ।
होत लोप पिण्डोदक केरा ,
पितरहु पावत नरक बसेरा ।
यहि विधि कुल-घातक, यदुरायी !
स्वकुल वर्ण-संकर उपजायी ,
संकर-कारक दोषन-द्वारा ,
करत जाति, कुल, धर्म-संहारा ।
वंश, धर्म हरि ! जिन कर नासा ,
सुनियत नियत नरक तिन वासा ।
अहो ! करन बड़ अघ हम आये ,
देत लोभ-वश स्वजन नसाये !

दोहा :— गहिहौं नहिं अब शस्त्र मैं, करिहौं नहिं प्रतिकार ,
बधहिं धृतास्त्र जो मोहि कुरु, तबहुँ मोर उपकार !” ११६

सोरठा :—यहि विधि वचन उचारि, अर्जुन दुख-उद्भिन्न मन ,
बाण-शरासन डारि, बसेउ स्वथल रथ रण-मही ।

श्रीहरि ताहि . सदैव निहारी ,
ग्रस्त विषाद, विकल दृग बारी ,
पूछेउ—“तोहि दारुण क्षण पायी ,
व्याप्त मोह यह कहँ ते आयी !
जे अनार्य यह तिनहिन सोहा ,
नासत सद्गति यश अस मोहा ।

तुम्हरे योग्य पार्थ ! यह नहीं,
 धरहु न क्लीव-भाव मन माहीं ।
 छुद्र हृदय-दौर्बल्य बिसारे,
 उठहु समर रिपु-त्तापन हारे !”
 सव्यसाचि सुनि वचन उचारे—
 “भीष्म द्रोण दोउ पूज्य हमारे ।
 कहहु तुमहि संगर मधुसूदन !
 करहु शरन कस इन सँग प्रति-रण ?
 उचित न बधव महात्मा गुरुजन,
 उचित जगत वरु भिक्षा-भोजन !

बोद्धा :— जदपि नाथ ! अर्थार्थि ये, तदपि निहति गुरु लोग,
 परिहैं भोगन मोहि जग, रक्त-सने सुख-भोग । ११७

विजय-पराजय दोउन माहीं,
 का श्रेयस्कर सुम्हत नाहीं ।
 जियन चहत नहिं जिनहिं सँहारे,
 सन्मुख कुरुजन सोइ हमारे ।
 दैन्य-दोष मम हतेउ स्वभावा,
 धर्म-ज्ञान मम मोह नसावा ।
 पूछहु, काह किये कल्याणा,
 निश्चित मोहि कहहु भगवाना !
 नाथ शिष्य मैं शरणहिं लीजै,
 शिच्छण मोहि मधुसूदन ! दीजै ।
 मिलहि जो एक-क्षत्र महि-शासन,
 मिलहि जो अमरपुरी इन्द्रासन,
 दिखत न पै मोहिं कछु त्रय लोका,
 हरहि जो इन्द्रिय-शोषक शोका ।”
 अस कहि, पुनिकहि-“करिहौ नहिं रण,”
 रहेउ चुपाय पार्थ रिपुसूदन ।

बोद्धा :— उभय वाहिनी मध्य तेहि, यहि विधि खिन्न निहारि,
 विहँसत-अस जनुताहि सन, वचन कहे असुरारि— ११८

“सोचि अशोच्य क्लेश तुम पावत ,
 तेहि पै पण्डितपन प्रकटावत ।
 मृत, जीवितहु हेतु जग माहीं ,
 शोच करत पण्डितजन नाहीं ।
 मैं, तुम अरु समस्त ये नृपगण ,
 रहे न भूतकाल अस नाहिन ।
 यहहु न सत्य कि भावी माहीं ,
 रहिहैं बहुरि सकल हम नाहीं ।
 शैशव, यौवन, जरा-अवस्था ,
 अथा देह महँ प्रकट व्यवस्था ,
 तथा लहत पुनि जीव शरीरा ,
 मोह न करत जानि यह धीरा ।
 इन्द्रिय-विषय-सँयोगहि, ताता !
 शीत-उष्ण, सुख-दुःख-प्रदाता ।
 गुनि क्षण-भंगुर सो संयोगा ,
 करहु सधैर्य तासु तुम भोगा ।

बोहा :— इन्द्रिय-विषय-सँयोग ते, व्यथित न जो नर वीर ,
 अमृतत्व सोई लहत, जो सुख-दुख सम-धीर । ११६

विद्यमान कर नाहिं अभावा ,
 नहिं अभाव कर संभव भावा ।
 दोउन केर अंत पहिचानी ,
 रूप निरूपेउ तत्त्वज्ञानी ।
 अविनाशी जेहि कीन्ह पसारा ,
 कोउ न अव्यय नासनहारा ।
 नित्य, अचिन्त्य कहावत जोई ,
 अविनाशिहु, तनुधारी सोई ।
 गुमि ये तासु अनित्य शरीरा ,
 करहु समर उठि तुम, रणधीरा !
 मारनहार याहि जो जानत ,
 सोऊ—याहि निहत जो मानत ,

ज्ञान न अर्जुन ! दोउन माहीं ,
मारत मरत कबहुँ यह नाहीं ।
जन्मत मरत न यह जग माहीं ,
है यह होनहार हू नाहीं ।
नित्य, अजन्मा, चिर-प्राचीना ,
बधेहु देह यह नाश-विहीना ।

बोहा :— अव्यय, अविनाशी, अजहु, नित्य जो जानत याहि ,
कस सो केहि कर बध करत, बधवावत सो काहि ? १२०
घारत वसन नवान्य जिमि, जर्जर मनुज उतारि ,
तजि तिमि आत्महु जीर्ण तनु, लेत अन्य नव धारि । १२१

छेदत शस्त्र न अनल जरावत ,
भिजवत वारि न वात सुखावत ।
छिदत, जरत, भीजत नहिं सूखत ,
थिर, पुराण, नित, अचल, सर्वगत ।
अविकारी यहि कहत ज्ञानिजन ,
जात न यहि लागि इन्द्रिय अरु मन ।
यहि विधि याहि जानि मन माहीं ,
करहु शोक अर्जुन ! तुम नाहीं ।
अथवा तुम जो सोचत निज मन—
जन्मत मरत रहत यह प्रतित्तण ,
शोक-हेतु नहिं तबहुँ, धनंजय ,
जन्मेउ जो सो मरिहै निश्चय ।
तिमि मृतकहु कर जन्म सुनिश्चित ,
शोक निरर्थक अपरिहार्य हित ।
आदि भूत अव्यक्त समस्ता ,
अन्त बहोरि होत अव्यक्ता ।

बोहा :— इन्द्रिय-गोचर होत सब, मध्य अवस्थहि माहि ,
ताते नाश शरीर कर, चिन्ता-कारण नाहि । १२२

अद्भुत-वत् आत्महि कोउ पेखत,
कोउ तस सुनत, कोउ तस बरनत ।
तदपि देखि, सुनि, बरनि अनूपा,
जानत कोउ न तासु स्वरूपा ।
यह अवध्य सब देहन माहीं,
ताते शोच्य जीव कोउ नाहीं ।
सोचहु जो मन धर्महु आपन,
तबहुँ अशोभन यह हृत्कंपन ।
भयेउ प्राप्त यह रण प्रयास बिनु,
उघरे आपुहि स्वर्ग-द्वार जनु ।
भाग्यवंत अति क्षत्रिय लोगू,
लहत जे अर्जुन ! अस रण-योगू ।
यहहु धर्म-अनुमोदित विप्रह,
तजिहौ जो गहि पार्थ ! दुराग्रह,
तौ स्वधर्म निज यशहु गँवायी,
करिहौ केवल पाप कमायी ।

दोहा :— करिहैं जन चिरकाल लागि, अयश तुम्हार बखान,
दुःखद मृत्युहु ते अधिक, संभावितहि अमान । १२३

कहिहैं महारथी-समुदायी—
‘भय-वश तजि रण गयेउ परायी !’
देत मान्यता तुमहि जो आजू,
गनिहै तुच्छ सो वीर-समाजू ।
नहिं जो कहन योग्य सोइ सारा,
कहिहै शत्रु-समूह तुम्हारा ।
करिहैं तब पौरुष-अवमाना,
दुःख कवन यहि ते बढि आना ?
मरे समर-महि स्वर्ग-सुयोगू,
लहे विजय महि-मण्डल-भोगू ।
रण-निश्चय करि ताते निज मन,
चठहु ! चठहु ! हे कुन्ती-नंदन !

सुख-दुख, लाभ-अलाभहु दोऊ ,
जय अरु अजय मानि सम सोऊ ,
करहु समर, निज हतहु अराती ,
छुइहै तुमहिं न अघ यहि भाँती ।

बोधा :— सांख्य ज्ञान यहि भाँति कहि, बरनहुँ योग-विधान ,
कटिहौ बंधन कर्म के, पाय पार्थ ! जो ज्ञान । १२४

कर्मयोग-पथ माहिं धनंजय !
होत नाहिं आरंभ केर क्षय ।
बाधा-विघ्न न पंथ अगारी ,
थोरिहु सिद्धि महाभय-हारी ।
यह कल्याण-पंथ लहि निश्चय ,
रहति बुद्धि एकाम्र धनंजय !
चित एकाम्र न जिन करि राखा ,
मति अनंत फूटहिं बहु शाखा ।
श्रुति-अक्षर-रत, काम-स्वर्ग-चित ,
कहत मूढ़ अस वाणी पुष्पित—
यहि अतिरिक्त अन्य कलु नाहीं ,
सब कर्मन-फल जन्महि माहीं ।
लहन हेतु भव-भोग अपारा ,
बरनत क्रिया-विशेष पैवारा ।
अपहृत जिनके चित याहि ते ,
रहत जो वैभव भोगहि राते ,
तिनकै बुद्धि लहति नहिं निश्चय ,
थिर न एक थल माहिं धनंजय !
त्रिगुणात्मक सब वेद-पसारा ,
जाहु पार्थ ! तुम गुण-त्रय पारा ।

बोधा :— योग-क्षेम अरु द्वन्द्व सब, अर्जुन ! देहु विहाय ,
होहु नित्य संतुल्य तुम, इक आत्महि अपनाय । १२५

जल-सावित-महि कूप व्यर्थ जिमि,
वेद ब्रह्मविद-ज्ञानि-हेतु तिमि।
कर्महि महे अधिकार तुम्हारा,
नहिँ कर्म-फल पै अधिकार।
फल-हित करहु कर्म तुम नाहीं,
नहिँ आसक्ति अकर्महु माहीं।
योगस्थित, आसक्ति विसारे,
अर्जुन ! करहु कर्म तुम सारे।
सिद्धि-असिद्धि लेहु सम मानी,
कहत योग समभावहिँ ज्ञानी।
बुद्धियोग अरु कर्मन माहीं,
बुद्धिहि श्रेष्ठ, कर्म वर नाहीं।
बुद्धिहि केर गहहु तुम आश्रय,
दीन जनहि फल चाहत धनंजय !

दोहा :— साम्य बुद्धि ते युक्त दोउ, पाप-पुण्य नहि भोग,
ताते योगाश्रय गहहु, कर्म-कौशलहि योग । १२६

ज्ञानीजन समत्व-बुधि वारे,
त्यागत कर्म-जात फल सारे।
जन्म-बंध ते देत विहायी,
लेत दुःख-विरहित पद पायी।
मोह-आवरण कहै जब फारी,
लहिहै समता बुद्धि तुम्हारी,
श्रुत श्रोतव्य-वृत्त सब त्यागी,
होइहौ तब तुम पार्थ ! विरागी।
वेदवाद-नाथा सुनि सारी,
भ्रान्त बुद्धि जो आजु तुम्हारी,
होइहै थिर सो लगे समाधी,
लहिहौ साम्य बुद्धि निर्व्याधी ।”
सुनि श्रीहरि सन अर्जुन भाषा—
“का थितप्रज्ञ केरि परिभाषा ?

समाधिस्थ, धितप्रज्ञ जो होई,
बोलत, बसत, चलत कस सोई ?”

बोद्धा :— कह हरि—“जब तजि देत सब, मनोकामना विज्ञ,
बसत आपु महँ तुष्ट जब, तबहिं पार्थ ! धितप्रज्ञ । १२७

जो उद्विग्न नाहिं दुख माहीं,
सुख महँ जाहि लालसा नाहीं !
राग, क्रोध, भय जेहि न सतावत,
सोई मुनि धितप्रज्ञ कहावत ।
सब विषयन महँ जो निःसंगा,
पाय जो नित शुभ-अशुभ प्रसंगा ।
करत न द्वेष नाहिं अभिनंदन,
थिर प्रज्ञा सोई कुन्ती-नंदन !
यथा कूर्म निज अँग-समुदायी,
लेत सर्व दिशि ते सिमिटायी ।
तिमि विषयन ते इन्द्रिय जोई,
लेत कर्षि थिरप्रज्ञा सोई ।
निराहारि हूँ विषय विहायी,
करत निबल इन्द्रिय-समुदायी ।
होत जदपि विषयन कर त्यागा,
छुटत न तदपि विषय-प्रति रागा ।

बोद्धा :— पै धितप्रज्ञहिं पार्थ ! उत, परब्रह्म दरसात,
आपुहि विषयन-रागहू, विषयन-सह छुटि जात । १२८

केतनहु ज्ञानी करहि प्रयासू,
होत न सफल दमन-अभ्यासू ।
इन्द्रिय-वेग पार्थ ! अति घोरा,
कर्षत चित्त चहत जेहि ओरा ।
जब सर्वेन्द्रिय-संयम संगी,
साधक-मन मम भक्ति-उमंगी,

होहि तबहि इन्द्रिय वश माहीं,
तब थिर प्रज्ञा, भय पुनि नाही ।
करत चिन्तवन विषय-प्रसंगा,
उपजत मनुजहि विषयासंगा ।
संग ते काम, काम ते कोहा,
क्रोध भये उपजत संमोहा ।
संमोहहु स्मृति-भ्रम उपजावत,
स्मृति-विभ्रम पुनि बुद्धि नसावत ।
अर्जुन ! नष्ट बुद्धि जेहि केरी,
बिनसत जीव, न लागति देरी ।

बोद्धा :—रहित राग अरु द्वेष ते, इन्द्रिय जासु अधीन,
जदपि सो भोगत सब विषय, पै प्रसन्न, स्वाधीन । १२६

भये प्रसन्न नष्ट सब दुस्वगण,
बुद्धिहु निश्चल होति ताहि क्षण ।
योग-युक्त अर्जुन ! जो नाही,
बुद्धि भावनहु नहि तेहि माहीं ।
लहत न शान्ति भावना-हीना,
कहँ सुख तेहि जो शान्ति-विहीना ?
जाहि विषय-संग इन्द्रिय जबहीं,
इन्द्रिय-संग जात मन तबहीं ।
मन पुनि हरत बुद्धि कहँ यह विधि,
हरत पवन जिमि नाव पयोनिधि ।
इन्द्रिय विषयन ते जेहि फेरी,
थिर प्रज्ञा अर्जुन ! तेहि केरी ।
सोचत जाहि राति सब मानी,
जागत तहाँ संयमी ज्ञानी ।
संस्मृति यह समस्त जब जागति,
सोई राति संयमिहि लागति ।
भरत जदपि जल नित तेहि माहीं,
तजत उदधि मर्यादा नाही,

दोहा :— विषय-भोग सब ताहि विधि, जेहि महुँ आय समाहि ,
लहत संयमी शान्ति सोइ, कामार्थी जन नाहि । १३०
वर्तत जो निस्पृह निवसि, काम समस्त विहाय ,
निर्मम, निरहंकार जो, लेत शान्ति सो पाय । १३१

सोरठा:—ब्राह्मी थिति यह जान, यहि लहि मोह न पार्थ ! पुनि,
लहत ब्रह्म निर्वाण, अंतकाल नर याहि गहि ।”

कहेउ पार्थ सुनि श्रीहरि-वचनन—
“कर्म ते श्रेष्ठ जो बुद्धि जनार्दन !
चहत करावन तौ यदुनाथा !
घोर कर्म तुम कस मम हाथा ?
व्यामिश्रित मोहिं वाक्य सुनायी ,
रहे मोह कस मन उपजायी ?
एकहि निश्चित करहु बखाना ,
जेहि ते होय मोर कल्याणा ।”
पार्थ-वचन सुनि कह यदुराजी—
“निष्ठा द्वय मैं प्रथम बतायी ।
सांख्य शास्त्र जिनके मन भावत ,
ज्ञानहिं ते अर्जुन ! अपनावत ।
निष्ठा योगिन मन जो भायी ,
कर्मयोग सोइ पार्थ ! कहायी ।
कार्यारंभ समस्त विहायी ,
नर नैष्कर्म्य सकत नहिं पायी ।
केवल संन्यासहि ते कोई ,
सिद्ध धनंजय ! मनुज न होई ।

दोहा :— कीन्हे बिनु कछु कर्म कोउ, सकत क्षणहु रहि नाहि ,
प्रकृति-गुणन-परतंत्र सब, करत कर्म जग माहि । १३२

जो कर्मेन्द्रिय रोकि हठाता ,
सुमिस्त इन्द्रिय-विक्षन ताता !

मिथ्याचारी अर्जुन ! सोई,
मूढात्मा तेहि सम नहि कोई।
करि मन-वश इन्द्रिय निज सारी,
सकल विषय-आसक्ति बिसारी,
कर्मन्द्रिय जो साधन मानी,
साधत योग, श्रेष्ठ सोइ ज्ञानी।
अर्जुन ! कर्महि वर अकर्म ते,
नियत स्वकर्म करहु तुम ताते।
करिहौ जो न कर्म जग माहीं,
तन-निर्वाहहु संभव नाहीं।
यज्ञ-हेतु कृत कर्म विहायी,
बंधन निखिल कर्म-समुदायी।
सकल कर्म तुम, यज्ञहु लागी,
करहु पृथा-नंदन ! रति त्यागी।

बोहा :— आदि यज्ञ सँग रचि प्रजा, भाषे वचन प्रजेश—
'होय तुमहि यह कामधुक, लहहु प्रकर्ष विशेष । १३३

तोषहु तुम सुर यज्ञन-द्वारा,
करहि सुरहु संतोष तुम्हारा।
यहि विधि करि आदान-प्रदाना,
पावहु दोउ परम कल्याणा।
यज्ञ ते पाय तोष सुर लोगू,
देहैं तुमहि यथेच्छित भोगू।' ^१
भोगत लै बिनु-दीन्हे जोई,
चोर असंशय अर्जुन ! सोई।
खात यज्ञ करि शेष सन्तजन,
सर्व अघन ते लहत विमोचन।
अपनेहि हेतु पकावत जोई,
खात पाप, नहि अन्नहि सोई।
अन्न निखिल प्राणिन उपजावत,
अन्नहु जन्म मेघ ते पावत।

यज्ञहि माहिं होत मेघोद्भव,
यज्ञहु पार्थ ! कर्म ते संभव ।

दोहा :— कर्महु प्रकृतिज, प्रकृति कहँ, पार्थ ! अक्षरज जान,
यज्ञ बसत ताते सदा, सर्वस्थित भगवान । १३४

चक्र प्रवर्तित अस जग माहीं,
याहि जो मनुज चलावत नाही,
इन्द्रिय-रत सो कुन्ती-नंदन !
पापी, तासु निरर्थक जीवन ।
आत्म-वृत्त पै जन जो होई,
आत्महिं माहिं तुष्ट जो कोई,
अर्जुन ! जो आत्महि अनुरागी,
कछु कर्तव्य नाहिं तेहि लागी ।
जो कछु कीन्ह, कीन्ह नहिं जोऊ,
अर्थ न तासु दुहुन महुँ कोऊ ।
प्राणिहु अस संसृति महुँ नाही,
आश्रित तासु अर्थ जेहि माहीं ।
करहु तुमहु आसक्ति विहायी,
निज कर्तव्य कर्म-समुदायी ।
करत रहत जो कर्म त्यागि रति,
लहत पुरुष सो पार्थ ! परम गति ।

दोहा :— लही सिद्धि जनकादि हू, कर्म-पथहि ते पार्थ !
करहु लोक-संग्रह हितहि, तुमहुँ कर्म, तजि स्वार्थ । १३५
श्रेष्ठ पुरुष जो जो करत, सोइ सकल संसार,
करत मान्य जो श्रेष्ठजन, सोइ लोक-आचार । १३६

अर्जुन ! तीनहु लोकन माहीं,
मम कर्तव्य कर्म कछु नाही,
प्राप्य अप्राप्त नाहिं कछु मोरे,
तदपि न तजत कर्म मैं भोरे ।

जो मैं तन्द्रा पार्थ ! विहायी ,
 करत रहहुँ नहिं कर्म सदाई ,
 अनुसरि मोहिं तौ सर्व प्रकारा ,
 तजिहै मनुज कर्म निज सारा ।
 जो मैं त्यागहुँ कर्म धनंजय !
 होहि क्षणहि महँ सर्व लोक-क्षय ।
 होइहौ मैं तो संकर-कर्ता ,
 प्रजावर्ग - प्राणन - अपहर्ता ।
 अर्जुन ! कर्म माहिं रति मानी ,
 करत रहत जेहि विधि अज्ञानी ,
 ताही भाँति लोक-हित लागी ,
 ज्ञानिहु करहि कर्म रति-त्यागी ।

दोहा :— निवसति अज्ञानिन-हृदय, कर्मासक्ति सुभाय ,
 नासहि ताहि न ज्ञानि जन, मन संशय उपजाय । १३७
 योग-युक्त रहि आपु सब, कर्म करहि विद्वान ,
 सबहि लगावहि कर्म महँ, आपुहि करहि प्रमाण । १३८

सत, रज, तम निज गुण त्रय द्वारा ,
 प्रकृतिहि कर्म करावति सारा ।
 अहंकार-वश मूढ़ न जानत ,
 आपुहिं कर्ता अर्जुन ! मानत ।
 पै ज्ञानी कर अस मत होई—
 मोहिं ते भिन्न कर्म, गुण दोई ।
 गुणन गुणन-सँग क्रीड़त जानी ,
 करत पार्थ ! आसक्ति न ज्ञानी ।
 प्रकृति-गुणत्रय-मुग्ध मूढ़ जन ,
 अर्जुन ! लिप्त रहत गुण-कर्मन ।
 अस अल्पज्ञ, मंदमति मनुजन ,
 भरमावहि नहिं पूर्ण ज्ञानिजन ।
 ताते योग बुद्धि अपनायी ,
 आशा ममता दोउ विहायी ।

कर्म समस्त मोहिं करि अर्पण,
शान्त, सुखी-मन करहु पार्थ ! रण ।

बोहा :— प्रतिपालत यह मोर मत, जो मत्सरता-हीन,
श्रद्धावंतहु, होत सोउ, कर्मन-बंध विहीन । १३६
मत्सर-वश मत मोर जे, पालत नहिं मतिभ्रष्ट,
सर्व-ज्ञान-विरहित तिनहिं, जानहु अर्जुन ! नष्ट । १४०

निज निज प्रकृतिहि के अनुसार,
करत सकल प्राणी व्यवहारा ।
होत किये निग्रह तहँ काहा ?
ज्ञानिहु हित सोइ प्रकृति-प्रवाहा ।
इन्द्रिय, इन्द्रिय-विषयहु सोऊ,
तिन प्रति राग द्वेष हू दोऊ,
जदपि सहज ये, बाधक जानी,
होय न इनके वश महँ ज्ञानी ।
विगुणहु, साधक श्रेय स्वधर्मा,
श्रेयद नहिं सुकरहु पर-धर्मा ।
निधनहु उचित स्वधर्म निभायी,
परजन-धर्म महा भयदायी ।”
भाषेउ अर्जुन सुनि पुनि हरि प्रति—
“पूछहुँ, कहहु बुझाय वृष्णिपति !
बिनु इच्छा, प्रेरित केहि द्वारा,
करत विवश नर पापाचारा ?”

बोहा :— “काम क्रोध”—भगवान कह, “दोउ राजस-संजात,
जानहु रिपु, पापी महा, कबहुँ न खाय अधात । १४१

जेहि विधि धूम-पुष्प अरु रज-कण,
ढाँपि लेत पाषक अरु दर्पण,
ढाँपति गर्भहिं मिझी जैसे,
काम तेँ आवृत जानहु तैसे ।

कामभूर्ति अर्जुन ! यहि केरी,
ज्ञानिब केर सतत यह बैरी।
वृत्ति-रहित यह अनल समाना,
राखेउ ढाँपि याहि सब ज्ञाना।
इन्द्रिय, मन अरु बुद्धि धनंजय !
काम-अरातिहि के दृढ़ आलय।
निवसि इनहिँ महँ, इनहिन-द्वारा,
मोहत जीव, ज्ञान हरि सारा।
कहहुँ ताहि ते कुन्ती-नंदन !
करि प्रथमहि निज इन्द्रिय-नियमन,
यह विज्ञान-ज्ञान-अपहारी,
पापी काम देहु संहारी।

श्रीकृष्णः—बाह्य परे इन्द्रिय बसत, तिनहु परे मन वास,
मनातीत बुधि, बुधि परे, निवसत आत्म-प्रकाश। १४२

सोरठाः—चीन्हि जो बुद्धिहु पार, करि निज संयम निज बलहि,
अर्जुन कामाकार, दुरासाध निज अरि बघहु।”

कह हरि—“यह जो योग धनंजय,
विवस्वतहि दीन्हेउ मैं अव्यय।
विवस्वतहि ते मनु पुनि पावा,
इदवाकुहि पुनि मनुहु बतावा।
परम्परागत याहि विधाना,
राजर्षिन पायेउ यह ज्ञाना।
बहुरि परन्तप ! काल अधीना,
महत योग यह भयेउ विलीना।
योग पुरातन यह पुनि सोई,
सर्व-रहस्यन ते बढ़ि जोई,
तुमहि सखा, भक्तहु निज जानी,
कहेउँ आजु मैं पार्थ ! बखानी।”
पूछेउ अर्जुन संशय-धेरा—
“पहिले जन्म विवस्वत केरा।

जन्म अबहिं तुम यदुपति ! लीन्हा ,
तब कस तिनहिं योग तुम दीन्हा ?”

बोद्धा :—भाषेउ हरि—“बीते बहुत, जन्म हमार तुम्हार ,
जानत तिनहिं न पार्थ ! तुम, मैं सब जाननहार । १४३

यद्यपि मैं सब प्राणिन-ईश्वर ,
आत्मा जन्म-विहीन, अनश्वर ,
तदपि प्रकृति निज मैं अपनायी ,
लेहुँ जन्म माया ते आयी ।
बढ़त अधर्म, धर्म जब छीजत ,
आपुहिं तब मैं अर्जुन ! सिरजत ।
करन हेतु सज्जन-परित्राणा ,
हरन हेतु खल पापिन-प्राणा ,
थापन हेतु धर्म संसारा ,
युग-युग लेहुँ सगुण अवतारा ।
दिव्य जन्म, कर्महु मम होई ,
जानत तत्त्व रूप जो कोई ,
तजि तनु बहुरि जन्म नहिं पावत ,
लहि मोरिहि गति मम ढिग आवत ।

बोद्धा :—अमित ज्ञान-तप-पूत जन, राग-क्रोध-भय-हीन ,
कीन्हेउ प्राप्त स्वरूप मम, मम आश्रित, मोहिं लीन । १४४

भजत मोहिं जे जौन स्वरूपा ,
भजहुँ तिनहिं मैं ताही रूपा ।
मोरहि पंथहि सर्व प्रकारा ,
मनुज-समाज चलत गहि सारा ।
कर्म-फलेच्छा ते नर प्रेरा ,
पूजन करत देवगण केरा ।
उपजति सिद्धि कर्म ते जोई ,
सत्वर प्राप्त लोक यहि होई ।

मैं ही गहि गुण-कर्म-विभाजन,
कीन्हेउँ चारिउ वर्णन-सिरजन।
यहि विधि तासु जदपि मैं कर्त्ता,
जानहु अव्यय मोहि अकर्त्ता।
नाहि फलेच्छा मम हिय माहीं,
कर्महु लिप्त होत मोहि नाहीं।
विदित रहस्य मोर यह जाही,
बाँधत कबहुँ कर्म नहिं ताही।

बोद्धा :— पूर्व मोक्ष-इच्छुक नरन, जानि मोर यह मर्म,
कीन्हेउ अर्जुन ! कर्म जस, तुमहु करहु तस कर्म । १४५

गुनत कर्म का, काह अकर्मा,
उपजत ज्ञानिजनहु मन भरमा।
कर्म तुमहि अस कहहुँ बुझायी,
ज्ञान जासु लहि अशुभ नसायी।
सम्यक् लेहु कर्म तुम जानी,
लेहु विकर्महु कहँ पहिचानी।
जानि लेहु तुम बहुरि अकर्मा,
गहन धनंजय ! कर्मन-मर्मा।
कर्म माहिं जो लखत अकर्मा,
लखत अकर्महु महुँ जो कर्मा,
सर्व-कर्म-कृत योगी सोई,
बुधजन तेहि समान नहिं कोई।
अर्जुन ! जेहि ज्ञानाग्नि प्रजारी,
दीन्हे निखिल कर्म निज जारी,
सर्वारंभ, फलेच्छा-विरहित,
कहत ताहि ज्ञानी जन पण्डित।

बोद्धा :— नित्य तृप्त, आश्रय-रहित, जो न कर्म-फल-लग्न,
करत कबहुँ कछु नाहिं सौ, कर्मन जदपि निमग्न । १४६

चित्त संयमन जेहि निज कीन्हा,
आशा ग्रहण त्यागि सब दीन्हा,

देहहि तासु कर्म-अनुरागी ,
 होत कबहुँ नहिँ सो अघ-भागी ।
 द्वन्द्व-विहीन, विमत्सर जोई ,
 लहत जो, तुष्ट ताहि महुँ होई ,
 सिद्धि-असिद्धिहु दोउ सम जाही ,
 कृत-कर्महु बाँधत नहिँ ताही ।
 ज्ञानहि महुँ जे थित चित वारे ,
 मुक्त, संग जिन सब तजि डारे ,
 करत कर्म जे यज्ञहि लागी ,
 ते नहिँ होत कर्म-फल-भागी ।
 हवि अरु हवन ब्रह्म जो मानत ,
 होता, अग्निहु ब्रह्म जो जानत ,
 जेहि सब कर्म ब्रह्ममय जाना ,
 सोई लहत ब्रह्म-निर्वाणा ।

बोद्धा:— कछुक उपासत योगिजन, सुरन यज्ञ दै भाग ,
 पूजत कछु ब्रह्माग्नि महुँ, यागहि-द्वारा याग । १४७

जो श्रोत्रादिक इन्द्रिय, सोई ,
 संयमाग्नि महुँ होमत कोई ।
 इन्द्रिय-पावक कोउ प्रजारी ,
 देत विषय शब्दादिक जप्पारी ।
 ज्ञान-शक्ति ते कोउ बड़भागी ,
 बारि आत्म-संयम-योगागी ,
 होमि प्राण-इन्द्रिय-व्यापारा ,
 देत जराय धनंजय ! सारा ।
 व्रत जिन यतिन प्रखर अति धारा ,
 करत यज्ञ ते विविध प्रकारा—
 कोउ द्रव्य, तप, योग-स्वरूपा ,
 कोऊ जप, कोउ ज्ञानहु-रूपा ।
 प्राणायाम परायण जोई ,
 प्राण अपान रोकि गति सोई ,

होम अपान वायु कोउ प्राणा,
कोउ प्राण महुँ वायु अपाना।

दोहा :— अन्यहु नियताहार कोउ, होमत प्राणन प्राण—
नष्ट सबन अघ यज्ञ ते, सबहि यज्ञ-विद्वान । १४८

यज्ञ - शिष्ट - अमृत - उपभोगी,
ब्रह्म सनातन पावत योगी।
जब बिनु यज्ञ नाहिं यह लोका,
कस तव सकत पाय परलोका ?
कहे यज्ञ ये विविध प्रकारा,
ब्रह्म-मुखहि महुँ सबन प्रसारा।
कर्म ते सिद्ध होत ये सारे,
होहु जानि ये मुक्त, सुखारे।
सिद्ध होत द्रव्यहि ते जोई,
तेहि ते श्रेष्ठ ज्ञान-मख होई।
जग महुँ कर्म जदपि विधि नाना,
ज्ञानहि माहिं सबन अवसाना।
तत्त्वदर्शि जे ज्ञान-निधाना,
देहैं पार्थ ! तुमहिं ते ज्ञाना।
करि प्रणिपात, प्रश्न, सेवकाई,
सकत ज्ञान तुम तिन ते पायी।

दोहा :— जानि जाहि लहिहौ बहुरि, मोह पार्थ अस चाहिं,
जेहि बल लखिहौ भूत सब, मोहिं महुँ, आपुहि माहि । १४९
अधिन मध्य जो होहु तुम, सब ते बढि अवकार,
ज्ञान-तरणि चढ़ि तुम तबहुँ, जइहौ सब अघ पार । १५०

जिमि अर्जुन ! ईधन-समुदायी,
देति प्रज्वलित अग्नि जरायी,
तैसेहि ज्ञान-स्वरूप हुताशन,
करत भस्म सब कर्मन-बंधन।

ताते अर्जुन ! ज्ञान समाना ,
 नहिं पुनीत कछु यहि जग आना ।
 योग-सिद्ध नर काल बितायी ,
 लेत ज्ञान आपुहि महुँ पायी ।
 संयत-इन्द्रिय, श्रद्धावाना ,
 लगन जाहि सो पावत ज्ञाना ।
 जेहि अस मिलेउ ज्ञान-अवलम्बा ,
 लहत सो परम शान्ति अविलम्बा ।
 जो नहिं बिज्ञ, न श्रद्धावाना ,
 बिनसत अस नर संशयवाना ।
 नहिं संशयी हेतु यह लोका ,
 नहिं तेहि सुखहु, नाहिं परलोका ।

दोहा:—संशय नासेउ ज्ञान ते, योग ते कर्म-फलास ,
 अस आत्मारामहिं नही, बाँधत कर्मन-पाश । १५१

सोरठा:—अज्ञानज, हृदयस्थ, संशय काटहु ज्ञान-असि ,
 संगर तुम योगस्थ, उठहु सव्यसाची ! करहु ।”

सुनि कह हरि प्रति अर्जुन मतिहत—
 “कबहुँ कर्म-संन्यास प्रशंसत ।
 योग-प्रशंसा पुनि तुम करहु ,
 एक जो श्रेय सुनिश्चित कहहु ।”
 भक्त-वचन सुनि कह भगवाना—
 “करत पंथ दोउ मोक्ष प्रदाना ।
 तदपि श्रेय नहिं कर्मन त्यागा ,
 मोहिं कर्म-योगहि बढि लागा ।
 राग-द्वेष नहिं जेहि महुँ होई ,
 जानहु नित-संन्यासी सोई ।
 एकहु द्वन्द्व पार्थ ! नहिं जाके ,
 कटत सुखेन बंध सब ताके ।
 सांख्य योग एकहि दोउ अहहीं ,
 तिनहिं भिन्न अनभिज्ञहि कहहीं ।

सम्यक् एकहि जो अपनावत,
दुहुन केर फल साधक पावत।
जेहि थल जात सांख्य-पथ-गामी,
पहुँचत तहँहि योग-अनुगामी।
सांख्य योग दोउ एकहि जानत,
सोइ यथार्थ तत्त्व पहिचानत।

दोहा :— कर्म-योग बिनु अति कठिन, लहव पार्थ ! संन्यास,
लहत शीघ्र यति ब्रह्मपद, जाहि योग-अभ्यास । १५२

योग-युक्त नर जो शुद्धात्मा,
जेहि जीतेउ इन्द्रिय निज आत्मा,
लखत जीव सब आपुहि माहीं,
कियेहु कर्म तेहि व्यापत नाहीं।
धारहि निज मन योगि तत्त्ववित—
'कबहूँ करत नाहि मैं किञ्चित्।'
देखत, सुनत, छुवत अरु खाता,
सूँघत, सोवत, आवत-जाता,
त्यागत, गहत, कहत मुख बयना,
श्वसत, उधारत—मूँदत नैना,
सतत धारणा राखहि निज मन—
'यह निज विषयन इन्द्रिय-वर्तन'।
त्यागि संग, करि ब्रह्म-समर्पण,
करत रहत जो नित प्रति कर्मत,
व्यापत ताहि पाप नहि तैसे,
जलज-दलहि अर्जुन ! जल जैसे।

दोहा :— इन्द्रिय, तन, मन, बुद्धि ते, संग समस्त बिहाय,
करत योगि जन कर्म नित, आत्म-शुद्धि अमिप्राय । १५३

तजि फल योग-युक्त जो होई,
निश्चल शान्ति अंत लह सोई।

योग-विहीन, लालसहु जाही,
स्वैर वृत्ति, बाँधत फल ताही।
मनसा कर्म अशेष विहायी,
मुखी जीति इन्द्रिय-समुदायी,
निवसत नवद्वार पुर माहीं,
नहिं कछु करत, करावत नाहीं।
मनुज-कर्म अरु कर्त्ता-भावा,
परमेश्वर नहिं इनहिं बनावा।
कर्म-फलहु-संयोग न प्रभु-कृत,
प्रकृतिहि ते यह सर्व प्रवर्तित।
पार्थ ! जो पाप-पुण्य जग माहीं,
लेत ताहि परमेश्वर नाहीं।
ढाँकि लीन्ह ज्ञानहिं अज्ञाना,
माया-मोहित जीव भुलाना।
ज्ञान ते जासु नष्ट अज्ञाना,
तेहि हित अर्जुन ! तेहि कर ज्ञाना,
करत प्रकाशित सूर्य समाना,
उज्ज्वल परब्रह्म भगवाना।

दोहा :— ब्रह्म-बुद्धि, ब्रह्मात्म जो, ब्रह्म-निष्ठ, रत जोय,
लह न जन्म पुनि, तासु अघ, जात ज्ञान-जल धोय। १५४

यहि जगती महँ ज्ञानी सोई,
समदर्शी जो अर्जुन ! होई।
तेहि हित द्विज विनयी विद्वाना,
श्वपच, श्वान, गज, धेनु समाना।
यहि विधि साम्य भाव जेहि लहेऊ,
जीवन्मुक्त मनहुँ सो भयऊ।
सम, अदोष इक ब्रह्महि होऊ,
ब्रह्मस्थिति लह ताते सोऊ।
होत प्रसन्न न जो प्रिय पायी,
लहि अप्रिय नहिं जो अकुलायी,

मोह-हीन, थिर-बुद्धिहू जोई,
 ब्रह्मभूत, ब्रह्मज्ञहू सोई।
 पार्थ ! न बाह्य परस जेहि भावत,
 आपु माहिं जो सोइ सुख पावत,
 ब्रह्म-योग-मुक्तात्मा सोई,
 अक्षय सुख अधिकारी होई।
 जे जे भोग संयोग-प्रजाता,
 ते सब अर्जुन ! दुःख-प्रदाता।
 आदि अंत हू तिनकर होई,
 रमत न तिन महँ बुधजन कोई।

बोहा :— काम-क्रोध-उद्वेग जो, सहत मृत्यु पर्यन्त,
 मनुज सोइ यहि जग सुखी, सोई योगी संत। १५५

अन्तःसुखी जो आत्मारामा,
 भासित आत्मज्योति हृद्दधामा,
 योगि सो ब्रह्म-रूप है जायी,
 लेत ब्रह्म-निर्वाणहिं पायी।
 तजि दीन्हे जिन द्वन्द्व-कलापा,
 भये नष्ट जिनके सब पापा,
 सर्व-जीव-हित निज हित जाना,
 वशी सोइ ऋषि लह निर्वाणा।
 करत जो कबहुँ न काम, न क्रोधा,
 आत्म-संयमी, जेहि निज बोधा,
 प्राप्त मुक्ति अस योगिहिं तैसे,
 मनुजहिं वस्तु धरी दिग जैसे।
 बाह्य पदार्थ-संयोग विहायी,
 दृष्टि उभय भ्रू मध्य थिरायी,
 नासाचारी प्राण अपाना,
 करि अर्जुन ! दोउ वायु समाना,

बोहा :— बुद्धि मनेन्द्रिय वश करत, क्रोध, भयेच्छा-हीन,
 मुक्त सर्वदा अस यती, मोक्षहि महँ लवलीन। १५६

सोरठा:—जान जो मोहिं जगदीश, भोक्तहु मोहिं तप यज्ञ कर ,
लहत सो शान्ति मुनीश, पार्थ!निखिल प्राणिन-सुहृद ।

करत कर्म पै नाहिं फलाशी ,
सोइ योगी, सोई संन्यासी ।
तजत जो अग्नि, कर्म जग माहीं ,
सो योगी संन्यासी नाहीं ।
जेहि संन्यास कहत सब लोगू ,
जानहु पार्थ ! ताहि तुम योगू ।
कीन्हे बिनु संकल्पन त्यागन ,
होत न योगी कोउ कुरुनंदन !
चहत जो साधक योग दृढ़ावन ,
कर्महि तासु सिद्धि हित कारण ।
योगारूढ़ होत जब सोई ,
मूल:शान्ति तब कारण होई ।
इन्द्रिय-भोग नाहिं आसक्ता ,
कर्महु माहिं न जो अनुरक्ता ,
सर्वेच्छा-संन्यासी जोई ,
योगारूढ़ कहावत सोई ।

दोहा:—आपु उबारहि आपु कहँ, पतन ते लेय बचाय ,
आपुहि आपन अरि मनुज, आपुहि बंधु सहाय । १५७

जीति लेत आपुहि जग जोई ,
आपन बंधु आपु सो होई ।
आपुहि आपु न जेहि पहिचाना ,
वर्तत निज प्रति शत्रु समाना ।
अंत:करण जीति जेहि लीन्हा ,
शान्ति प्राप्त जेहि अर्जुन ! कीन्हा ,
परमात्मा जेहि केर समाहित ,
शीत-उष्ण तेहि करत न विचलित ।
सुख-दुख आत्मा तासु समाना ,
सम तेहि हेतु मान-अपमाना ।

तृप्त जो पाय ज्ञान-विज्ञाना,
जित-इन्द्रिय, मूलहिं जेहि जाना,
प्रस्तर, लोष्ट, स्वर्ण सम जाही,
जानहु योग-सिद्ध तुम ताही।
सुहृद, बंधु, मध्यस्थ, उदासी,
मित्र, अराति, साधु, अध-राशी,
द्वेष योग्य जो—सब सम जाही,
सिद्ध विशेष गुनहु तुम ताही।

बोहा :— संयत चित्तात्मा सतत, त्यागि परिग्रह आस,
एकाकी एकान्त बसि, करहि योग अभ्यास। १५८

योगाभ्यासी शुचि थल पायी,
थिर आसन निज लेहि बनायी।
नहिं अति उच्च, न निम्न बनावहि,
कुश, मृगछाला, बसन बिछावहि।
करि चित्तेन्द्रिय-क्रिया संयमन,
मन एकाग्र निबसि तेहि आसन,
अंतःकरण विशुद्धिहि लागी,
करहि योग-अभ्यास विरागी।
करि तनु, शीश, ग्रीव सम-रेखा,
अचलस्थिर नासाग्रहिं देखा।
दृष्टि बहोरि न इत उत जायी,
शान्तात्मा, भय-भीति विहायी,
ब्रह्मचर्य व्रत करि परिपालन,
करि सब भाँति संयमित निज मन,
पार्थ ! मोहिं महुँ चित्त लगायी,
मोहिं अनुरक्त युक्त हूँ जायी।

बोहा :— करत सतत अभ्यास अस, जात स्ववश मन आय,
शान्ति मोरि निर्वाणदा, लेत योगिजन पाय। १५९

अतिभोजी या विनु आहारा,
अति सोवत, अति जागनहारा,

सधत योग दोउन ते नाही ,
 वर्जित 'अति' योगीजन माहीं ।
 नियत जासु आहार-विहारा ,
 नियमित कर्म-आचरण सारा ,
 परिमित निद्रहु जासु जागरण ,
 तेहि हित होत योग दुख-नाशन ।
 ह्वै जब मन यहि भाँति संयमित ,
 होत निजात्महिं महुँ जब थापित ,
 एकहु भोग नाहिं जब भावत ,
 योग-युक्त नर तबहिं कहावत ।
 वायु-हीन-थल दीपक-ज्योती ,
 विचलित यथा कबहुँ नहिं होती ,
 तैसेहि निश्चल मानस तासू ,
 करत जो संयत-चित अभ्यासू ।

बोधा :— योगाभ्यास-निरुद्ध चित, लहत जहाँ विश्राम ,
 आत्मा लखि आत्मा लहति, आत्म-तोष जेहि ठाम , १६०

बुद्धि-गम्य, इन्द्रिय-अग्राही ,
 सुख अत्यन्त मिलत जहँ ताही ,
 भये सो थिर जहँ एकहु बारा ,
 टरत तत्त्व ते पुनि नहिं टारा ,
 लहि जेहि अन्य लाभ नहिं भावत ,
 थिरहिं न जहँ गुरु दुख विचलावत ,
 तहाँ दुःख ते होत वियोगा ,
 कहत ताहि तेहि कारण योगा ।
 तासु साधना निश्चय कीजै ,
 चित्त उचाट होन नहिं दीजै ।
 संकल्पज वासना अनेका ,
 कीजै त्याग, रहहि नहिं एका ।
 मन-बल निखिलेन्द्रिय समुदायी ,
 सर्व दिशान ते निज वश लायी ।

बुद्धि धैर्य संयुक्त दृढ़ायी ,
क्रम-क्रम शान्त होत नित जायी ।

बोहा :— सव्यसाचि ! निज मानसहि, थापहि मानस माहि ,
आवन देय विचार पुनि, अन्य कोउ मन नाहिं । १६१

अर्जुन ! चंचल मन थिर नाहीं ,
भ्रमत जहाँ जहँ विषयन माहीं ,
तहाँ तहाँ ते ताहि फिरायी ,
राखहि योगी निज वश लायी ।
यहि विधि शान्त-चित्त, रज-हीना ,
योगी सब अघ-ओघ-विहीना ,
ब्रह्महि सो अर्जुन ! ह्वै जायी ,
होत प्राप्त उत्तम सुख आयी ।
यहि विधि सदा योग जो साधत ,
तासु पाप सब अर्जुन ! नासत ।
ब्रह्मस्पर्श लहत सो अंता ,
भोगत सानंद सुख अत्यंता ।
लहत सिद्धि योगी जन जैसेहि ,
पावत साम्य दृष्टि ते तैसेहि ।
सब प्राणिन महँ आपुहि देखत ,
आपु माहिं सब प्राणिन पेखत ।

बोहा :— लखत मोहिं सर्वत्र जो, सबहिं लखत मोहिं माहि ,
बिछुरत तेहि ते नाहिं मैं, सोऊ मोहिं ते नाहिं । १६२

जो एकत्व भाव हिय आनी ,
भजत मोहिं सर्वस्थित जानी ।
करहि सो योगि काहु थल वासा ,
एक मोहिं महँ तासु निवासा ।
'होत व्याप्त सुख-दुख मोहिं जैसे ,
व्यापत दोऊ सब कहँ तैसे'—

आत्म-उपम्य बुद्धि अस जाही ,
योगी उत्तम जानहु ताही ।”
मुनि अर्जुन संशय प्रकटावा—
“मोहिं जो प्रभु ! तुम योग सुनावा ,
सिद्ध होत जो साम्यहि द्वारा ।
रहिहै सो थिर कवन प्रकारा ?
मन अति चंचल दृढ़ बलवाना ,
मथि डारत मनुजहि भगवाना !
सकत न जस कोउ बाँधि प्रभंजन ,
तैसेहि दुष्कर मानस-नियमन ।”

बोद्धा :— भाषेउ हरि—“दुःसाध्य मन, चंचल संशय नाहि ,
पै अभ्यास विराग ते, होत सोउ वश माहि । १६३

अंतःकरण न जेहि वश माहीं ,
मम मत योग-सिद्धि तेहि नाहीं ।
करत यत्न जो मन वश लायी ,
लेत सो सिद्धि युक्ति करि पायी ।”
पृछेउ पार्थ—“कहहु भगवाना !
जो अयत्न, पै श्रद्धावाना ,
बीचहि माहिं जो होय चलित मति ,
लहिहै योग-भ्रष्ट अस का गति ?
मोह-प्रस्त जो यदुपति ! होई ,
ब्रह्म-मार्ग थिर रहेउ न जोई ,
उभय-भ्रष्ट छिन्नाभ्र समाना ,
लहत विनाश कि सो भगवाना !
यह सन्देह मोर परमेशा ,
करहु हरण तुम प्रभु ! निःशेषा ।
दिखत न मोहिं अन्य यदुरायी !
संशय जो, मम सकहि नसायी ।”

बोद्धा :— कह हरि—“लहत न नाश सो, यहँ, परलोकहु माहि ,
अर्जुन ! जो कल्याण-कृत, लहत सो दुर्गति नाहि । १६४

पुण्यवान जहँ लहत निवासा ,
करि चिर सोउ तिन लोकन वासा ,
शुचि श्रीमन्त भवन पुनि पायी ,
जन्मत योग-भ्रष्ट नर आयी ।
अथवा ज्ञानी योगिन-गेहा ,
पावत अति नर-दुर्लभ देहा ।
लहि पुनि पूर्व बुद्धि-संयोगा ,
अधिक सिद्धि हित साधत योगा ।
पूर्व जन्म अभ्यास हठाता ,
कर्षत सिद्धि ओर तेहि, ताता !
जिज्ञासहु जो राखन हारा ,
जात सो शब्द ब्रह्म के पारा ।
जो सयत्न यहि विधि उद्योगी ,
सर्व अघन ते शुद्ध जो योगी ,
लहत सिद्धि बहु जन्मन जायी ,
लेत सो अंत परम गति पायी ।

दोहा :—योगि श्रेष्ठ तपि-ज्ञानि ते, कर्मिष्ठहु ते सोउ ,
तेहि कारण कुन्ती-सुवन ! तुमहू योगी होउ । १६५

सोरठा :—पार्थ ! श्रेष्ठतम युक्त, योगि-वृन्द हू माहिं सो ,
जो श्रद्धा-संयुक्त, भजत मोहिं लवलीन है ।

मन आसक्त मोहिं महँ कीन्हे ,
साधत योग ममाश्रय लीन्हे ।
संशय-हीन पूर्ण मम ज्ञाना ,
लहिहौ जेहि विधि करहुँ बखाना ।
कहहुँ ज्ञान विज्ञान अशेषा ,
जानि जाहि कछु ज्ञेय न शेषा ।
मनुज सहस्रन महँ इक कोई ,
करत प्रयत्न सिद्धि हित जोई ।
सिद्धहु करत यत्न जे मम हित ,
जानत तत्त्व रूप मोहिं कश्चित ।

महि, जल, अनल, अकास, प्रमंजन ,
अहंकार अरु बुद्धि और मन—
प्रकृति अष्टधा यह मम जोई ,
अपरा पार्थ ! कहावति सोई ।
परा प्रकृति कर पृथक स्वरूपा ,
सो जग धारति, जीवन-रूपा ।

दोहा :— दोउ येहि कुन्ती-सुवन ! भूतन जन्मस्थान ,
जन्म-प्रदाता निखिल जग, लयकर्तहु मोहि मान । १६६

सूत्र-अथित मणि इव मोहिं माहीं ,
मोहिं ते परे कतहुँ कछु नाहीं ।
वारि माहिं मैं ही रस रूपा ,
रवि शशि महुँ मैं प्रभा स्वरूपा ।
प्रणव रूप श्रुति महुँ मम वासा ,
शब्द स्वरूप बसहुँ आकाशा ।
नर पौरुष, महि गंध स्वरूपा ,
अनल माहिं मैं तेजोरूपा ।
मोहिं तपस्विन तप तुम जानहु ,
सर्व जीव-जीवन मोहिं मानहु ।
जानहु मोहिं बीज चिर प्राणिन ,
ज्ञानिन बुद्धि, तेज तेजस्विन ।
काम-राग-विरहित बल जोई ,
मैं बलवंतन महुँ बल सोई ।
काम जो धर्म-विरोधी नाहीं ,
सोउ पार्थ ! मैं भूतन माहीं ।

दोहा :— सात्विक, राजस, तामसी, भाव जे अर्जुन ! आहिं ,
मोहिं ते सब, मोहिं माहिं सब, पै मैं तिन महुँ नाहिं । १६७

त्रिगुण पदार्थ व्याप्त संसारा ,
लोक विमोहित तिन ते सारा ।

तिन-अतीत मैं अव्यय, निर्गुण,
जानत मोहिं न कोऊ अर्जुन !
माया दैवी यह मम जोई,
गुणमयि, तरण कठिन तेहि होई ।
मोरिहि शरण गहत जो कोई,
माया पार जात जन सोई ।
माया हरेउ ज्ञान जिन केरा,
जिन उर आसुर भावहि प्रेरा,
मूढ़, नराधम, पापी जोई,
गहत शरण मम पार्थ ! न सोई ।
भजत चारि मोहिं सुकृती प्राणी,
आर्त्त, मुमुक्षु, अर्थी, ज्ञानी ।
तिन महुँ अर्जुन ! ज्ञानिहि उत्तम,
योग-युक्त नित, भक्त एक मम ।
लागत मैं अतिशय प्रिय तेही,
महुँ पार्थ ! अति तासु सनेही ।

दोहा :—सब उदार—पै मोर मत, ज्ञानी आत्महि होय,
गति सर्वोत्तम जानि मोहिं, रमत युक्त-चित सोय । १६८

जन्म-जन्म महुँ करि अभ्यासा,
आवत अंत ज्ञानि मम पासा ।
'वासुदेव सब'—जाननहारा,
दुर्लभ साधु पार्थ ! संसारा ।
विविध वासना-अपहृत ज्ञाना,
पूजत मनुज अन्य सुर नाना ।
वश निज निज स्वभाव सब होई,
पालत रहत नियम सोइ सोई ।
भक्त होत जो जेहि तनु केरा,
चाहत अर्चन श्रद्धा प्रेरा,
तेहि कर सोई श्रद्धा भावा,
महुँ ताहि महुँ अचल ददावा ।

यहि विधि श्रद्धा संयुत सो जन,
लागत सोइ स्वरूप आराधन।
लहत बहुरि सो मोरहि-निर्मित,
अर्जुन ! सोइ काम फल इच्छित।

दोहा :— लहत मंदमति जिन फलन, तिन कर शीघ्र विनाश,
जात सुरन-दिग भक्त सुर, भक्त मोर मम पास। १६६

रूप श्रेष्ठ जो मोर धनंजय !
जानत नहिं सर्वोत्तम अव्यय।
बुद्धि विहीनन अस अज्ञाना—
मैं अव्यक्त, व्यक्त मोहिं जाना।
रूप योग-मायावृत होई,
सकत न देखि मोहिं सब कोई।
जानत नाहिं मूढ़ वश भरमा,
अर्जुन ! मोहिं अविनाशि, अजन्मा।
प्राणी अहहिं, भये, जे होही,
जानत मैं, कोउ जान न मोही।
द्वन्द्व जे इच्छा-द्वेष-प्रजाता,
तिनते मुग्ध-भ्रान्त जग ताता !
पुण्य कर्म अर्जुन ! अपनायी,
दीन्हे जिन निज पाप नसायी,
द्वन्द-मोह-गत, दृढ़ व्रत धारे,
भजत मोहिं अर्जुन ! ते सारे।

दोहा :— करत यल गहि मम शरण, जन्म - मरण - मोक्षार्थ,
ब्रह्म निखिल अध्यात्म ते, कर्महु जानत पार्थ ! १७०

सोरठा :— मोहिं अधिभूत जे जान, अधिदैवहु, अधियज्ञहु,
अंतहु करत प्रयाण, मुक्त-चित्त सो जान मोहिं ।”

पूछेउ पार्थ—“काह यह ब्रह्मा ?
का अध्यात्म ? काह यह कर्मा ?

का अधिभूत ? काह अधिदैवत ?
 का अधियज्ञ ? देह को निवसत ?
 तजत निग्रही जन जब प्राणा,
 जानत कस तुम कहँ भगवाना !”
 कह श्रीहरि—“अविनाशी जोई,
 अर्जुन ! ब्रह्म कहावत सोई।
 वस्तु-मात्र कर मूल स्वभावा,
 सोइ पार्थ ! अध्यात्म कहावा।
 सर्व जीव उपजावन हारा,
 सोई कर्म सृष्टि-व्यापारा।
 नाश-शील जो अर्जुन ! होई,
 —‘क्षर’ अधिभूत कहावत सोई।
 जो चेतन सब वस्तुन छावा,
 सोइ अधिदैवत पार्थ ! कहावा।
 यहि तनु करत जो यज्ञ निवासू,
 मैं अधियज्ञ धनंजय ! तासू।

दोहा :— सुमिरत मोहि अर्जुन ! तजत, अन्त समय जो देह ,
 मोरहि लहत स्वरूप सो, नहि यहि महँ सन्देह । १७१

जेहि आजन्म भाव जो धारा,
 तजत प्राण अंतहु तेहि द्वारा।
 तेहि तेहि भाव-सदृश जो रूपा,
 पावत मम सोइ सोइ स्वरूपा।
 सुमिरहु ताते मोहि सदाई,
 रणहु करहु संशय बिसरायी।
 अर्पि मोहि मन बुद्धि धनंजय !
 मिलिहौ मोहि महँ अंत असंशय।
 योग-युक्त करि करि अभ्यासू,
 चित्त भ्रमत इत उत नहि जासू,
 करत सो परम पुरुष कर ध्याना,
 पावत अंत दिव्य भगवाना।

अंत समय जो योग-सहायी,
भृकुटिन मध्य प्राण अटकायी,
थिर करि भक्ति समन्वित निज मन,
तेहि सुमिरत जो विद्व पुरातन,

बोद्धा :— जो अनुशासक, सूक्ष्मतम, जासु अचित्य स्वरूप,
जगदाधार, अतीत-तम, जो रवि वर्ण अनूप— १७२

भजि अस ब्रह्म तजत जो प्राणा,
लहत सो दिव्य रूप भगवाना।
कहत वेद-विद चर जेहि काहीं,
यति गत-राग प्रविश जेहि माहीं,
चहत ब्रह्मचारी पद जोई,
बरनहुँ सार-रूप तोहिं सोई,
करि सब इन्द्रिय-द्वार संयमन,
करि मानस हिय महुँ अवरोधन,
समाधिस्थ, धृत मस्तक प्राणन,
करत ब्रह्म ओंकार जो जापन,
सुमिरत मोहिं तजत जो देहा,
लहत परम पद नहिं सन्देहा।
नित्य निरन्तर मोहिं जो सुमिरत,
जान न देत चित्त निज अन्यत,
योग-युक्त नित योगी जोई,
सुलभ प्राप्ति मम तेहि हित होई।

बोद्धा :— पाय महात्मा गति परम, जैसेहि मम दिग आव,
अचिर, क्लेश-आवास सो, पुनर्जन्म नहिं पाव। १७३

ब्रह्मलोक सब लोकन पायी,
लेत बहोरि जन्म नर आयी,
पै पहुँचत जब नर मोहिं पाहीं,
बहुरि तासु आवर्तन नाही।

अर्जुन ! युग-सहस्र कर फेरा ,
 सोइ दिवस इक ब्रह्मा केरा ।
 निशिहु पार्थ ! ब्रह्मा कै जोई ,
 सोऊ युग-सहस्र कै होई ।
 यहि प्रकार जो गणना मानत ,
 सोइ यथार्थ दिवस-निशि जानत ।
 होत जबहि ब्रह्मा-भिनुसारा ,
 व्यक्त होत अव्यक्तहु सारा ,
 ब्रह्मदेव निशि जैसेहि आयी ,
 जात व्यक्त अव्यक्त बिलायी ।

दोहा :— भूत-वृन्द पुनि पुनि उपजि, विवश निशा मिटि जात ,
 अर्जुन ! उपजत सोइ पुनि, जब जब होत प्रभात । १७३
 यहि अव्यक्तहु के परे, इक अव्यक्त निवास ,
 चिर, भूतन-संहार संग, होत न तामु विनाश । १७५

जो अव्यक्त अक्षरहु होई ,
 गति उत्कृष्ट कहावति जोई ,
 पुनि नहि जन्म पहुँचि जेहि ठामा ,
 अर्जुन ! सोइ परम मम धामा ।
 भूत-वृन्द थित जेहि महँ सारा ,
 जेहि कीन्हेउ यह सकल पसारा ,
 उत्तम पुरुष धनंजय ! सोई ,
 प्राप्त अनन्य भक्ति ते होई ।
 मृत जब सुक्ति योगिजन पावत ,
 बरनहुँ मृत जब पुनि महि आवत ।
 सुदी, उत्तरायण षट् मासा ,
 दिवस, ज्वाल जब उठति अकाशा ,
 मृत्यु जासु अस अवसर होई ,
 पावत ब्रह्म ब्रह्मविद् सोई ।
 बदी, उत्तरायण षट् मासा ,
 निशि, छायेउ जब धूम अकासा ,

मृत्यु जासु अस अवसर होई,
लौटत भोगि लोक-शशि सोई ।

दोहा: — कृष्ण शुक्ल यहि भाँति दुइ, शाश्वत गति जग माहिं,
गहे एक लौटन रत, अन्य ते लौटत नाहिं । १७६
मोहित होत न योगि कोउ, जानि मार्ग ये दोउ,
ताते अर्जुन ! काल सब, योग-युक्त तुम होउ । १७७

सारठा: — वेद, यज्ञ, तप दान, — इनके तजि वशिंत सुफल,
परे जो आद्यस्थान, पावत योगी जानि यह ।

पार्थ ! तुमहिं निर्मत्सर जानी,
कहहुँ गुह्यतम ज्ञान बखानी ।
कहहुँ सहित विज्ञान सुनायो,
जाने जाहि अशुभ मिटि जायी ।
राजा यह सब विद्यन माहीं,
यहि ते अधिक गूढ़ कछु नाहीं ।
पावन, उत्तम, अनुभव-गम्या,
सहज-साध्य, अविनाशी, धर्म्या,
जिनहिं नाहिं श्रद्धा यहि माहीं,
होत प्राप्त तिन कहँ मैं नाहीं ।
पुनि पुनि जन्म मृत्यु तिन केरा,
पुनि पुनि मृत्युलोक-पथ फेरा ।
निज अव्यक्त स्वरूपहि द्वारा,
व्याप्त कीन्ह मैं जग यह सारा ।
निवसत भूत सर्व मोहिं माहीं,
बसत तदपि तिन महँ मैं नाहीं ।
यहहु सत्य पुनि अर्जुन ! होई,
थित मोहिं माहिं भूत नहिं कोई ।
लखहु योग-सामर्थ्य हमारा,
सर्व भूत उपजावन हारा ।

दोहा : — आत्मा मम पालत तिनहिं, बसत पै तिन महँ नाहिं,
मोहिं बस तेइ, जिमि सर्वगत, महा पवन नभ माहि । १७८

कल्प-अन्त भूतन-समुदायी ,
 जात प्रकृति मम माहिं समायी ।
 कल्पारंभ बहुरि जब आवत ,
 मैं पुनि पार्थ ! तिनहिं उपजावत ।
 भूत-समूह प्रकृति-वश सारा ,
 रचहुँ प्रकृति-बल बारंबारा ।
 बाँधत मोहिं कर्म ये नाहीं ,
 उदासीन, नहिं रति तिन माहीं ।
 साक्षि-मात्र मैं प्रकृतिहि द्वारा ,
 रचवावत सचराचर सारा ।
 यहि कारण अर्जुन ! जग केरा ,
 चलत रहत सिरजन-लय फेरा ।
 लेत जबहिं मैं नर तनु धारी ,
 चीन्हि न सकत मूढ़ अविचारी ।
 जानत मोहिं न ईश महाना ,
 ताते करई मोर अवमाना ।

दोहा :— आसुरि, राक्षसि, मोहमयि, प्रकृति लेत अपनाय ,
 वृथा ज्ञान, आशा, कृतिहु, अष्ट चित है जाय । १७६

किन्तु महात्मा जन जे अहहीं ,
 दैव प्रकृति कर आश्रय गहहीं ।
 भूत आदि उद्गम मोहिं जानी ,
 भजत एक मोहिं अव्यय मानी ।
 यत्नशील ते सुदृढ़ व्रती जन ,
 संतत करत रहत मम कीर्तन ।
 भक्ति समेत मोहिं ते प्रणमत ,
 योग-युक्त नित मोहिं उपासत ।
 ज्ञान-यज्ञ ते मोर अन्य जन ,
 करत विविध विधि यजन उपासन ,
 मानि एक मोहि, पुनि बहु रूपा ,
 पूजत मोहिं जो विश्व-स्वरूपा ।

मैं ऋतु, यज्ञहु, अर्जुन ! मैं ही ,
स्वधा पार्थ ! मैं, औषधि मैं ही ।
मैं हो मंत्र घृताग्निहु मैं ही ,
जानहु अर्जुन ! आहुति मैं ही ।

दोहा :— जगत शितामह, मातु पितु, मैं ही जगदाधार ,
जो कछु ज्ञेय, पवित्र मैं, वेद-त्रयी ओंकार । १८०

गति, पोषक, प्रभु, साक्षी मैं ही ,
शरण, निवास, हितैषी मैं ही ।
सृजन पार्थ ! प्रलयस्थित मैं ही ,
अव्यय, बीज, निधानहु मैं ही ।
मोहिं ते जगत उष्णता पावत ,
मैं ही जल रोकत, वरसावत ।
मैं ही मृत्यु, अमृतहु मैं ही ,
जो सत असत धनंजय ! मैं ही ।
करत जे कर्म त्रिवेद-बखाना ,
पाप-विमुक्त सोम करि पाना ,
पूजत मोहिं यज्ञ के द्वारा ,
याचत सुरपुर भोग विहारा ,
पुण्य इन्द्रलोकहिं ते जायी ,
भोगत दिव्य भोग-समुदायी ।
भोगि विशाल पार्थ ! सुरलोका ,
क्षीण-पुण्य लौटत यहि लोका ।

दोहा :— विहित वेद-त्रय कर्म करि; चाहत फल उपभोग ,
लहत स्वर्ग आवागमन, ये श्रुति-पंथी लोग । १८१

भक्त अनन्य-निष्ठ जे होहीं ,
चिन्तन करत उपासत मोहीं ,
योग-युक्त नित मोहिं आराधत ,
योग-क्षेम मैं तिन कर साधत ।

अन्य भक्तहु श्रद्धावाना ,
 पूजत भजत देव जे आना ,
 यद्यपि विधि-विहीन आराधन ,
 पै पर्याय सोउ मम पूजन ।
 भोक्ता सर्व यज्ञ कर मैं ही ,
 अर्जुन ! तिन कर स्वामिहु मैं ही ।
 तदपि तत्त्वतः मोहिं न जानी ,
 गिरत रहत मानव अज्ञानी ।
 सुर-पूजक सुरलोकन जाहीं ,
 पितृ-उपासक पितरन पाहीं ,
 भूत उपासक भूतन पावत ,
 मोर उपासक मम ढिग आवत ।

दोहा :—पत्र, पुष्प फल, वारि कछु, भक्ति सहित मोहिं देत ,
 अर्पित संयत-चित्त नर, हर्ष सहित मैं लेत । १८२

करत, खात होमत जो अर्जुन ,
 देत, तपत मोहिं करहु समर्पण ।
 यहि विधि पार्थ ! सकल मोहिं दीन्हे ,
 नसिहै कर्म-बंध अस कीन्हे ।
 फल शुभ-अशुभ न व्यापहिं तोहीं ,
 मुक्त, योग-युत लहिहै मोहीं ।
 सम मैं बसत प्राणि सब माहीं ,
 प्रिय अप्रिय मोहिं कोऊ नाहीं ।
 तदपि भक्त कर मोहिं महँ वासू ,
 मोरहु भक्तन माहिं निवासू ।
 दुराचारिहु जो कोउ भारी ,
 भजहि अनन्य भाव उर धारी ,
 वर संकल्प बसत मन माहीं ,
 भयेउ साधु मानहु तेहि काहीं ।
 शाश्वत शान्ति लहत सो आश ,
 नाहिं कबहुँ मम भक्त विनाश ।

दोहा :— पाप योनि अरु शूद्रगण, वैश्य वर्ग अरु नारि ,
लहत परम गति सोउ सम, आश्रय अर्जुन ! धारि । १८३
मुहति विप्र राजर्षि हित, कथन काह भक्तार्थ ,
लोक अचिर, सुख-हीन लहि, भजहु मोहि तुम पार्थ ! १८४

सोरठा:— दत्तचित्त बनु भक्त, पूजु मोहिं , करु मोहिं नमन ,
यहि विधि हूँ अभ्यस्त, मत्पर लेहै पाय मोहिं ।

तोहिं तोष सुनि गिरा हमारी ,
सुनु पुनि वच उत्तम हितकारी ।
पार्थ ! महर्षि देवगण सारे ,
प्रभव मोर नहि जाननहारे ।
जेते सुरगण अरु महर्षिगण ,
मैं सब भाँति आदि तिन कारण ।
जेहि मोहिं आदि-रहित, अज्ञ जाना ,
लोकन सर्व महेश्वर माना ,
सोई मानव मोह-विहीना ,
होत पार्थ ! सब पापन-हीना ।
असंमोह, बुधि, क्षमा, ज्ञान, दम ,
सत्य, दुःख, सुख, भव, अभाव, शम ,
साम्य, अहिंसा, तोष भयाभय ,
दान, यशायश, तपहु, धनंजय !
भूत-भाव ये सर्व प्रकारा ,
मोहीं ते इन केर पसारा ।
पूर्वज चारि, महर्षिहु साता ,
मनुहु चतुर्दश जे विख्याता ,
मानस-जात मोर ये भावा ,
इन जग प्रजावर्य उपजावा ।

दोहा :— यह विमूति मम, योगहूँ जान तत्त्वतः जोय ,
योग-भिद्धि अर्जुन ! अचल, ताहि असंशय होय । १८५
सर्व-प्रभव मैं, मोहिं ते, सकल प्रवर्तनहार ,
भाव-युक्त बुधजन भजत, मोहि अस धारि विचार । १८६

अर्पित मोहिं माहिं मन प्राणा ,
 एकहिं एक सिखावत ज्ञाना ।
 कीर्तन मोर भक्त मम करहीं ,
 लहि आनंद तुष्ट जग रहहीं ।
 यहि विधि समाधान नित होई ,
 भजत सभक्ति रहत मोहिं जोई ;
 बुद्धि-योग मैं तासु हृदावत ,
 पाय जाहि सो मम ढिग आवत ।
 करत अनुग्रह मैं तित्त पाहीं ,
 पैठत तिन हिय-मंदिर माहीं ।
 ज्ञान-दीप ते करत उजारा ,
 नासत अज्ञानज अधियारा ।”
 मुनि कह अर्जुन, “तुम भगवाना !
 परम ब्रह्म, शुचि श्रेष्ठस्थाना ।
 देवल, असित, देव-ऋषि नारद ,
 व्यास, सर्व मुनि ज्ञान-विशारद ,

दोहा :— कहत—आदिशुर, दिव्य तुम, मिश्र, अज, पुरुष पुराण ,
 कीन्ह तुमहु प्रभु ! आजु निज, ताही भाँति बखान । १८९

मानत मैं जो कहत तुम केशव !
 जान मूल तव देव न दानव ।
 हे पुरुषोत्तम ! हे विश्वेश !
 भूत-विधाता ! हे भूतेश !
 देवदेव मैं तुम कहँ मानत ,
 आपुहि एक आपु तुम जानत ।
 प्रभु जिन दिव्य विभूतिन-द्वारा ,
 बसहु व्याप्त करि सब संसारा ,
 सुनन चहहुँ सब कृपा-निकेतू !
 कहहु बरनि विस्तार-समेतू ।
 योगिन ! धरि नित ध्यान तुम्हारा ,
 तुमहि चीन्हिहौ कवन प्रकारा ?

कवन कवन भावन कर ध्याना,
करव उचित भाषहु भगवाना !
अमृत गिरा सुनत प्रभु तोरी,
कबहूँ तूमि होति नहि मोरी ।

दोहा :— बरनि कही जो तुम अबहि, शक्ति विभूति तुम्हारि,
मम हित बरनहु नाथ ! पुनि, सोइ सकल विस्तार ।” १८८

कह हरि—“अब कहिहौं तोहि पाहीं,
मुख्य मुख्य जो इन सब माहीं ।
वर्णन नहि संभव निःशेषा,
मम विस्तार अनंत अशेषा ।
अर्जुन ! सब प्राणिन उर अन्तर,
मैं ही आत्मा बसत निरन्तर ।
भूतन आदि धनंजय ! मैं ही,
तिन कर मध्य, अंतहू मैं ही ।
विष्णु मोहि आदित्यन मानहु,
ज्योतिष्मंतन सूरज जानहु ।
जानहु मोहि मरीचि तुम मरुतन,
निशानाथ जानहु नक्षत्रन ।
वेदन महँ मोहि जानहु सामा ।
देवन माहि इन्द्र मम नामा ।
इन्द्रियगण महँ जानहु मोहि मन,
भूतन महँ मैं तत्त्व सचेतन ।

दोहा :— शंकर रुद्रन माहि मैं, राक्षस-यक्ष कुवेर,
पावक मैं वसुवृन्द महँ, शैलन माहि सुमेर । १८९

मुख्य पुरोहित मैं ही बृहस्पति,
कार्तिक मैं ही श्रेष्ठ सैन्यपति ।
सरोवरन महँ मैं ही सागर,
मध्य महर्षिन भृगु ज्ञानाकर ।

गिरा प्रणव एकाक्षर जानहु ,
 यज्ञन माहिं मोहिं जप मानहु ।
 थिरन मध्य मैं पार्थ ! हिमाचल ,
 महीरुहन महँ मैं ही पीपल ।
 सिद्ध कपिल, देवर्षिन नारद ,
 चित्रसेन गन्धर्व विशारद ।
 अमृत-मंथन ते संजाता ,
 उच्चैःश्रवस वाजि विख्याता ।
 ऐरावत मैं ही गजराजन ,
 राजा मैं ही अर्जुन ! मनुजन ।
 वज्र आयुधन महँ मोहिं जानहु ,
 कामधेनु मोहिं धेनुन मानहु ।

शेढा :— प्रजा-प्रजायक पार्थ ! मोहिं, जानहु तुम कन्दर्प ,
 मानहु सर्प-समूह महँ, मोहिं वासुकी सर्प । १६

नागन माहिं शेष मम रूपा ,
 वारिचरन मैं वरुण स्वरूपा ।
 पितरन महँ मैं पार्थ ! अर्यमा ,
 अनुशासक-वृन्दन यम नामा ।
 दैत्यन मोहिं प्रह्लादहि जानहु ,
 गणकन माहिं काल मोहिं मानहु ।
 पशुन माहिं मैं ही मृगराजा ,
 पक्षिन माहिं गरुड़ खगराजा ।
 वायु वेग-शीलन मम नामा ,
 शस्त्रधरन महँ मैं ही रामा ।
 मकर पार्थ ! जानहु मोहिं मीनन ,
 सुरसरि तुम जानहु मोहिं सरितन ।
 सृष्टिन आदि, मध्य, अवसानहु ,
 तीनहु मोहिं पार्थ ! तुम जानहु ।
 विद्यन मम अध्यात्म स्वरूपा ,
 वादिन माहिं वाद मम रूपा ।

दोहा :— द्रुद्र समामन माहि मैं, मैं अक्षरन अकार ,
काल अनश्वर, ब्रह्म मैं, बहु मुख सिरजनहार । १६१

सर्व क्षयी मृत्युहु मम नामा ,
भावी प्राणिन उद्गम-ठामा ।
नारिन महँ मैं श्री, कीर्तिस्पृति ,
मैं ही मेधा, क्षमा, वाक्, धृति ।
अर्जुन ! वृहत्साम मैं सामा ,
छंदन मम गायत्री नामा ।
मासन मार्गशीर्ष मोहिं जानहु ,
ऋतुन माहिं कुसुमाकर मानहु ।
छलिन द्यूत, तेजहु तेजस्विन ,
जय, निश्चय अरु सत्व सात्वकिन ।
वृष्णिन वासुदेव मम रूपा ,
पाण्डव महँ मैं पार्थ स्वरूपा ।
मुनिन माहिं मैं व्यास मुनीश्वर ,
कविन माहिं मैं शुक्र कवीश्वर ।
शासक दण्ड, नीति विजयैषिन ,
गुह्य मौन, ज्ञानहु मैं ज्ञानिन ।

दोहा :— नहिं सचराचर मोहिं बिनु, जीव बीज मोहिं जान ,
दिव्य विभूति अनंत मम, ये दृष्टान्त समान । १६२
जहँ जहँ वस्तुन महँ दिखत, लक्ष्मी, त्रिभव, प्रभाव ,
जानहु मम तेजांश ते, तिन कर प्रदुर्भाव । १६३

सोरठा :— यह बहु ज्ञान-प्रसार, जाने तुमहिं न लाभ कछु ,
व्यापेउँ सब संसार, केवल एकहि अंश में ।”

मुनि कह अर्जुन—“तुम यदुरायी !
कीन्हि कृपा अध्यात्म सुनायी ।
गुह्य ज्ञान मुनि मत अज्ञाना ,
रहित मोह मैं अब भगवाना !

भूत-वर्ग कर सिरजन-नासन ,
 सुनेउ सकल मैं सरसिज-लोचन !
 ताही विधि माहात्म्य तुम्हारा ,
 सुनेउ नाश्र ! मैं सह विस्तारा !
 बरनेउ जस पुरुषोत्तम ! रूपा ,
 चहुँ लखन सोइ ईश-स्वरूपा ।
 मोहि योगेश ! जो संभव दर्शन ,
 कीजै अव्यय रूप प्रदर्शन ,
 सुनत पार्थ प्रति कहेउ जनार्दन—
 “लखहु रूप शत, मोर सहस्रन ।
 दिव्य रूप ये भिन्न प्रकारा ,
 वर्ण विभिन्न, भिन्न आकारा ।

दोहा: — मरुत, रुद्र, आदित्य, वसु, दोउ अश्विनी कुमार ,
 लखहु जो अचरज बहु कबहुँ, लखेउ न दगन तुम्हार । १६४

यहाँ आजु एकत्रित सारा ,
 निरखहु सचराचर संसारा ।
 जो जो देखन इच्छा होई ,
 देखहु मम शरीर सोइ सोई ।
 चर्म विलोचन पार्थ ! तुम्हारे ,
 देखि सकत नहि रूप हमारे ।
 देत तोहि मैं दिव्य विलोचन ,
 करु मम योग विभूतिन दर्शन ।
 पार्थहे अस योगेश ! सुनावा ,
 उत्तम ईश रूप दरसावा ।
 परे दिखाय अनेकन आनन ,
 अगणित नयनहु, अद्भुत दर्शन ।
 दिव्याभरण अनेकन राजे ,
 दिव्योत्थित आयुध बहु साजे ।
 दिव्य मालयुत, दिव्य वसन धृत ,
 अनुलेपन अंग दिव्य सुगन्धित ।

देव अनंत विश्वमुख रूपा ,
भरित सर्व आश्चर्य स्वरूपा ।

दो ॥ — उदित होहिं इक संग जो, रवि-सहस्र आकाश ,
तासु महात्मा कान्ति सम, दिखहि तौ कछु कछु भास । १६५

विभु तनु मह एकस्थित सारा ,
लखि बहु विधि विभक्त संसारा ,
विस्मय पुलक पार्थ तनु छावा ,
नत शिर प्राञ्जलि वचन सुनावा—
“देव ! देह तव परत लखायो ,
सुर सब, विविध भूत-समुदायो ।
राजत प्रभु ब्रह्मा कमलासन ,
ऋषि वृन्दहु सब, दिव्य उरगगण ।
बाहु, उदर, दृग, वक्त्र न अंता ,
लखहुँ सर्व दिशि रूप अनंता ।
दिखत मोहिं नहिं कहूँ , अवसाना ,
होत न आदि, मध्य अनुमाना ।
हे विश्वेश्वर ! दिखत न पारा ,
विश्वरूप मैं लखत तुम्हारा ।
लखहुँ चतुर्दिक अंग तुम्हारे ,
गदा, किरीट, चक्र तुम धारे ।

दोहा: — तेज-पुञ्ज दुर्लभ्य तुम, जगमग ज्योति स्वरूप ,
दीप्त हुताशन, सूर्य सम, लखहुँ सर्व दिशि रूप । १८६

अन्तिम ज्ञेय, अक्षरहु तुमही ,
अन्तिम विश्वाधारहु तुमही ।
तुमही पालत धर्म सनातन ,
तुमही अव्यय पुरुष पुरातन ।
दिखत न आदि, मध्य कहूँ अंता ,
शक्ति पार नहिं, वीर्य अनंता ।

बाहु अगण्य, भानु-शशि लोचन,
 आनन मनहुँ ज्वलंत हुताशन ।
 सकल विश्व यह तुम हरिरायी !
 आत्म-तेज ते रहे तपायी ।
 महि, नभ, अन्तर, दिशि समुदायी ;
 व्याप्त एक तुम परत लखायी ।
 अद्भुत, उग्रहु रूप तुम्हारा,
 व्यथित विलोकि भुवन-त्रय सारा ।
 तुम मँह करत प्रवेश देवगण,
 करत भीत कछु विनत निवेदन ।

दोहा :— मित्र महर्षिन के परत, निरखि मोहि समुदाय,
 विपुलस्तुति सब मिलि करत, वाणी 'स्वस्ति' सुनाय । १६

वसु समस्त, आदित्य, साध्यगण,
 विश्वेदेवा, रुद्र, मरुद्गण,
 अश्विनि दोउ, यक्ष, गंधर्वा,
 राक्षस, पितृ, सिद्धगण सर्वा,
 सचकित नयनन, विस्मित भारी,
 रहे तुम्हारिहि ओर निहारी ।
 बहु मुख, उरु, भुज, चरण, विलोचन,
 उदर, दाढ़ विकराल अनेकन ।
 महत रूप यह करि अवलोकन,
 व्यथित लोक सब, व्यथित मोर मन ।
 नभस्पर्शि, बहु वर्णन वारे,
 प्रसरित विष्णु ! वदन उजियारे ।
 लोचन सकल विशाल प्रज्वलित,
 व्यथित हृदय मम शम-धृति विस्मृत ।
 वदन विलोकि दाढ़ विकराला,
 जनु लय काल हुताशन-ज्वाला,
 गत देवेश ! हर्ष, दिग्ज्ञाना,
 करहु अनुग्रह भुवन-निधाना !

दोहा :— भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र-पुत्र, कर्ण, सर्व नरनाथ,
अहो हमारेहु पक्ष के, प्रमुख सुभट तिन साथ— १८८
रहे प्रनिशि द्रुत तुव वदन, भयद दाढ़-विकराल,
कोउ कोउ दशनन विच दिखत, चूर्ण विचूर्ण - कपाल । १८९

जेहि विधि सरित प्रवाह महाना,
हठि उदधिहि दिशि करत प्रयाणा,
तिमि ज्वलंत तव बहु मुख माहीं,
ये नरलोक-प्रवीर समाहीं ।
शलभ-वृन्द जिमि बिनसन लागी,
प्रविशत आपु धाय ज्वलितागी,
तिमि विनाश हित वेग विशेष,
करत लोक तव वदन प्रवेशा ।
हे विभु ! तुमहु दीप्त निज आनन,
लीलि लोक सब चाटत जिह्वम !
व्यापि तेज ते जगती सारी,
उग्र प्रभा तपि रही तुम्हारी ।
कहहु कवन तुम उग्र रूप-धर,
प्रणमहुँ, होहु प्रसन्न देववर !
मोहिं तुम्हारि प्रवृत्ति न अवगत,
आद्य ! तुमहिं मैं जानन चाहत ।”

दोहा :— कह हरि—“काल प्रवृद्ध मैं, लोक-विनाशन हार,
आयेउँ अर्जुन ! यहि समय, करन लोक-संहार । २००
करहु चहै संग्राम तुम, करहु चहै तुम नाहिं,
मरनहार योद्धा सकल, ये दोऊ दल माहिं । २०१

ताते उठु ! करु कीर्ति उपार्जन,
भोगु समृद्ध राज्य जित-अरिगण ।
मैं पूर्वहि इन सबहि निपाता,
होहु निमित्त मात्र तुम ताता !
भीष्म, द्रोण, राधेय, जयद्रथ,
तिमि अन्यहु रण वीर महारथ—

युद्धहु ! मम-निहतन संहारहु,
जितिहौ अरि, उर व्यथा बिसारहु ।”
मुनि यहि विधि मधुसूदन-वाणी,
कम्पित नमित पार्थ भय मानी ।
रुद्ध कण्ठ प्रणमत करजोरी,
बोलेउ कृष्णहिं वचन बहोरी—
“उचितहि जो यह जगत जनार्दन !
लहत प्रीति मुद करि तव कीर्तन ।
उचित समीति निशाचर भागत,
उचितहि सिद्ध-संघ जो प्रणमत ।

दोहा :— सकत महात्मन ! त्यागि कस, ये सब नमन तुम्हार,
गुरुतमह ते गुरु तुमहि, विधिहु बनावन हार । २०२
हे अनंत ! देवेश हे ! हे संसृति-आधार !
तुम सत-असतहु, अक्षरहु, जो इन दोउन पार । २०३

आदि देव तुम पुरुष पुराणा,
तुम यहि संसृति परम निधाना ।
तुमही ज्ञेय, तुमहि पुनि ज्ञाता,
तुमहि परम पद मोक्ष-प्रदाता ।
तुमहि अनंतरूप ! यह सारा,
व्यापेउ निखिल विश्व-विस्तारा ।
अग्नि, वरुण यम, वायु, प्रजापति,
प्रपितामह तुम, तुमहि निशापति ।
करहुँ प्रणाम सहस्रन बारा,
पुनि बंदन, पुनि नमन तुम्हारा,
प्रणमहुँ सन्मुख, पाछेउ प्रणमहुँ,
सर्वस्वरूप ! सर्व दिशि बंदहुँ ।
प्रभु ! सामर्थ्य अनंत तुम्हारा,
पराक्रमहु. कर बार न पारा ।
व्याप्त तुमहि ते संसृति सारी,
ताते संज्ञा ‘सर्व’ तुम्हारी ।

दोहा :— मानि तुमहिं मैं निज सखा, यह महिमा नहिं ज्ञात ,
सखा ! कृष्ण ! यादव !—कहेउँ, प्रणय, प्रमाद-वशात् । २०४

गमन-समय वा निवसत आसन ,
अच्युत ! करत शयन वा भोजन ,
जो प्रत्यक्ष परोक्ष तुम्हारी ,
कीन्हि हूँसी सत्कार बिसारी ,
छमहु सर्व सो मम अवमाना ,
अप्रमेय महिमा को जाना ?
पिता तुमहि सचराचर जग के ,
पूज्यहु तुम, तुम गुरुहु गुरुन ते ।
तुल्यहु जब न लोक-त्रय आना ,
कहँ तब तुम ते बड़ि भगवाना !
हे अनुपम-प्रभाव ! तेहि कारण ,
बंदहुँ शीश चरण करि धारण ।
तुम ईश्वर, शासक, योग्यस्तुति ,
होहु प्रसन्न कृपैषी मम प्रति ।
छमत सुतहिं पितु, सखहिं सखा जिमि ,
प्रियहु प्रिया, मोहिं छमहु देव ! तिमि ।

दोहा :— हर्षित, भीत अदृष्ट लखि, रीझहु जगदाधार !
दरसावहु देवेश ! मोहिं, पूर्व स्वरूप तुम्हार । २०५

“धारे गदा किरीट पूर्ववत् ,
चहहुँ लखन पुनि हस्त चक्र धृत ।
हे सहस्रभुज ! विश्व-स्वरूपा ,
प्रकटहु बहुरि चतुर्भुज रूपा ।”
सुनत वचन भगवान उचारा—
“यह निज रूप योग-बल द्वारा ,
प्रकटेउँ जो मैं श्रेष्ठ, तेजमय ,
आद्य, अनंत, समग्र धनंजय ,
सो नहिं पूर्व कोउ लखि पावा ,
हूँ प्रसन्न मैं तुमहिं दिखावा ।

घोखे वेद, कियेहू कर्मन,
कीन्हे अर्जुन ! यजन, अध्ययन,
दीन्हे दान, किये तप घोरा,
संभव मनुजहिं दरस न मोरा।
तजि तोहिं नहिं नरलोक कोउ क्षम,
सकहि जो मोहिं लखि यहि स्वरूपमम।

दोहा :— होहु न व्यथित, विमूढ़ तुम, निरखि रूपमम घोर,
अवलोकहु गत-भय, मुदित, रूप पूर्व यह मोर।” २०६

यहि विधि अच्युत वचन सुनावा,
वासुदेव निज रूप दिखावा।
कीन्ह सौम्य तनु भवपति धारण,
दीन्ह भीत पार्थहिं आश्वासन।
बोलेउ अर्जुन—“निरखि मनुज तन,
यह तुम्हार पुनि सौम्य जनार्दन !
मैं प्रसन्न अब नाथ ! बहोरी,
भयी स्वस्थ प्रकृतिहु पुनि मोरी।”
कह हरि—“लखेउ जो कुन्ती-नन्दन !
रूप मोर तुम सो दुर्दर्शन।
सर्व काल सुरलोकहु वासी,
यह स्वरूप दर्शन-अभिलाषी।
लखेउ मोहिं तुम जाहि प्रकारा,
संभव सो न वेद, तप द्वारा।
किये दान, यज्ञहु जग माहीं,
शक्य भाँति यहि दर्शन नाहीं।

दोहा :— अर्जुन ! भक्ति अनन्य बिनु, संभव यहि विधि नाहिं,
दरस, ज्ञान मम तत्त्वतः, अंत मिलन मोहिं माहि। २०७

सोरठा :— करत कर्म मम लागि, संग-रहित निर्वैर जो,
मोहिं माहि अनुरागि, लहत पार्थ ! मोहिं भक्तमम।”

पूछेउ अर्जुन—“यहि विधि संतत,
भक्त मुक्त जो तुमहिं उपासत,
अन्य जो ध्यावत निर्गुण, अक्षर,
उभय माहिं को श्रेष्ठ योगिवर !”
कह हरि—“मोहिं करि चित्त समर्पण,
युक्त जे नित मम करत उपासन,
ते अर्जुन ! अति श्रद्धावाना,
योगी श्रेष्ठ तिनहिं मैं माना ।
तेउ जे नियमित इन्द्रिय सारी,
साम्य बुद्धिहू निज उर धारी,
सेवत ब्रह्म जो बिनु निर्देशा,
रुद्ध कतहुं नहिं जासु प्रवेशा,
जो ध्रुव, अचल, अचित्य, अगोचर,
सर्व-सृजन-मूलस्थित, अक्षर,
निरत जे सर्व-प्राणि-हित रहहीं,
मोहिं असंशय अर्जुन ! लहहीं ।

टोहा :—रोपि चित्त अव्यक्त पै, क्लेश अधिक लह भक्त,
देहवन्त हित पार्थ ! यह, कष्ट-साध्य अव्यक्त । २०८

पै जे अर्पि कर्म मोहिं सारे,
मोरहि भाव रहत उर धारे,
गहत योग-एकान्तिक आश्रय,
ध्यावत, पूजत मोहिं धनंजय !
मोहिं आसक्त बुद्धि जिन केरी,
तनिकहु करहुं न तिन हित देरी—
काढ़ि मृत्यु-भव पारावारा,
मैं कौन्तेय ! करहुं उद्दारा ।
ताते मन मोहिं माहिं लगावहु,
मोहिं महँ अर्जुन ! बुद्धि दृढ़ावहु ।
भयै शरीर-पात मोहिं माहीं,
कसिहौ यहि महँ संशय नाही ।

कीन्हेउ मैं अब लागि जिमि वर्णन,
तिमि थिर होत न मोहिं महँ जो मन,
तौ अभ्यास-योग कर आश्रय,
गहि इच्छहु मोहिं लहन धनंजय !

दोहा :— करहु कर्म मम हेतु, यदि, अभ्यासहु असमर्थ,
प्राप्त सिद्धि होइहै तुमहिं, करत कर्म मम अर्थ । २०६
कर्मयोग आश्रय गहहु, शक्य न यहहु जो लाग,
रोधि चित्त कम-कम करहु, सर्व कर्म-फल त्याग । २१०

बढ़ि अभ्यास ते अर्जुन ! ज्ञाना,
ज्ञानहु ते श्रेयस्कर ध्याना ।
ध्यान ते श्रेष्ठ कर्म-फल त्यागन,
त्याग ते लहत शान्ति नर तत्क्षण ।
द्वेष-हीन सब प्राणिन माहीं,
सर्व-मित्र, ममता जेहि नाहीं,
क्षमी, कृपालु, नाहिं अभिमाना,
योगी सुख-दुख जाहि समाना ।
सतत तुष्ट, संयत, दृढ़ निश्चय,
अर्पित बुधि-मन मोहिं भक्त प्रिय ।
जो न क्लेश काहुहिं उपजावत,
काहू ते न क्लेश जो पावत,
प्रिय मोहिं भक्त, रोष नहिं हर्षा,
भय, विषाद नहिं, नाहिं अमर्षा,
उदासीन जो व्यथा-विहीना,
जो निरपेक्ष, पवित्र, प्रवीणा,
सर्वारंभन त्यागन हारा,
अस भक्तहि मोहिं पार्थ ! पियारा ।

दोहा :— जेहि नहिं इच्छा, द्वेष नहि, हर्ष, शोक नहिं होहि,
तजत शुभाशुभ, भक्तियुत, भक्त सोइ प्रिय मोहि । २११
शत्रु-मित्र प्रिय जासु दिग, सम मानहु अपमान,
संग-रहित, सुख-दुःख जेहि, शीतल-उष्ण समान, २१२

दोहा :— निदास्तुति सम, मौनि जो, तुष्ट जो पावत थोर ,
थिर मति, थल बिनु, भक्तियुत, मनुज सोइ प्रिय मोर । २१३

सोरठा :— सेवत श्रद्धावंत, धर्म सुधा-सम मम कथित ,
मोहिं माहि आसक्त, प्रिय अत्यंत सो भक्त मोहिं ।

कुंती-तनय ! देह यह जोई ,
जानहु क्षेत्र कहावति सोई ।
यहि क्षेत्रहिं अर्जुन ! जो जानत ,
तेहि 'क्षेत्रज्ञ' विज्ञजन मानत ।
क्षेत्रज्ञहु जो बस सब क्षेत्रन ,
जानहु सो मोहिं कुन्ती-नंदन ।
यहहु क्षेत्र-क्षेत्रज्ञहु-ज्ञाना ,
मोरहि ज्ञान विज्ञ तेहि माना ।
क्षेत्र काह ? का तासु प्रकारा ?
कवन कवन तेहि माहिं विकारा ?
केहि ते काह होत तहँ रहही ?
क्षेत्रज्ञहु यह को तहँ अहही ?
उपजावत सो कवन प्रभावा ?—
सुनु ! थोरेहि महँ चहहुँ सुनावा ।
अपिन विषय यह विविध प्रकारा ,
पृथक पृथक बहु छंदन द्वारा ,
कीन्ह ब्रह्म-सूत्रन महँ वर्णन ,
निश्चय-पूर्वक, सहित प्रमाणन ।

दोहा :— महाभूत महि आदि जे, अहंकार, बुधि पार्थ !
अव्यक्तहु, इन्द्रिय, मनहु, जे पंचेन्द्रिय अर्थ , २१४

राग, द्वेष, सुख, दुख, संघाता ,
धृति चेतना-तत्त्व जे ताता ,
सोइ 'क्षेत्र सविकार' कहावा ,
थोरेहि महँ मैं तुमहिं सुनावा ।

मान-हीनता, दंभ-अभावा ,
 क्षमा, अहिंसा, सरल स्वभावा ,
 थिरता अरु आचार्य-उपासन ,
 अनासक्ति, शुचिता, मन-नियमन ,
 अहंकार हू मानस नाही ,
 सतत विराग ' विषय सब माहीं ,
 मृत्यु, जरा, जन्महु, दुख, व्याधी—
 लागत जेहि ये सकल उपाधी ,
 अर्जुन ! दारा-पुत्रन-गेहू ,
 स्वल्प न माया समता नेहू ,
 इष्ट अनिष्टन दोउन माहीं ,
 एकहि वृत्ति, चलित चित नाही ,

दोहा :— एकान्तिक निश्चल करति, भक्ति मोरि मन वास ,
 रुचत मनुज-समुदाय नहि, भावत विजन निवास , २१५

नित्य ज्ञान अध्यात्महि जानन ,
 तत्त्वज्ञान अर्थन परिशीलन—
 यहै सकल कुन्तीसुत ! ज्ञाना ,
 यहि विपरीत सकल अज्ञाना ।
 लहत मोक्ष जेहि जाने प्राणी ,
 सोइ ज्ञेय, तेहि कहहु बखानी ।
 सब ते परे अनादिहु जोई ,
 अर्जुन ! ब्रह्म कहावत सोई ।
 'सत' नहि ब्रह्म कहावत ताता !
 असतहु पार्थ ! न सो विख्याता ।
 सर्व ओर ताके मुख, काना ,
 कर, पद, शीश, दृगहु दिशि नाना ।
 सोइ व्याप्त यहि संसृति माहीं ,
 नहि थल जहाँ ब्रह्म सो नाही ।
 सब इन्द्रिय गुण तेहि महु भासा ,
 इन्द्रिय पै न एक तेहि पासा ।

दोहा :— सब ते रहित अलिप्त सो, पै सब धारनहार ,
सकल गुणन ते हीन पै, सकल गुणन-भोक्ता । २१६

सो भूतन बाहर हू भीतर ,
यद्यपि सो गतिमंत तदपि थिर ,
सूक्ष्म तत्त्व, ताते अज्ञाता ,
दूरि तथापि बसत ढिग ताता !
अविभक्तहु, पै खण्ड लखाहीं ,
पृथक् दिखत सब भूतन माहीं ।
ज्ञेय सोइ सब कर कर्तारा ,
प्राणिन-पालक, नासनहारा ।
तम-अतीत तेहि केर निवासा ,
सोई सर्व-प्रकाश-प्रकाशा ।
ज्ञानगम्य सो ज्ञेयहु सोई ,
ज्ञानहु सोइ, सर्व उर होई ।
यहि विधि चेत, ज्ञेय अरु ज्ञाना ,
संचेपहि मैं कीन्ह बखाना ।
जानि सकल यहु तार्विक रूपा ,
लहत भक्त मम मोर स्वरूपा ।

दोहा :— जानहु पार्थ ! अनादि तुम, प्रकृति पुरुष ये दोय ,
सर्व विकारन गुणन कर, जन्म प्रकृति ते होय । २१७

देहेन्द्रिय कर्तृत्व जो सारा ,
प्रकृतिहि तहँ कारण कर्तारा ।
दोउ दुःख सुख भोगनहारा ,
पुरुषहि, जदपि न सो कर्तारा ।
प्रकृतिस्थित पुरुषहि यह ताता ,
भोगत गुणन प्रकृति-संजाता ।
उपजत गुणन-संयोगहि पायी ,
पुरुष शुभाशुभ-योनिन जायी ।
परम पुरुष देहस्थित जोई ,
साक्षी, अनुमति-दाता सोई ।

भर्ता, भोक्ता सोइ महेश्वर,
परमात्मा यह नाम ताहि कर।
जो यहि विधि पुरुषहिं पहिचानत,
गुणमयि प्रकृति गुणन सह जानत।
वर्तन करहि काहु विधि सोई,
पुनर्जन्म तेहि कर नहिं होई।

दोहा :— कोऊ अपनेहि आपु महुँ, लख आत्मा धरि ध्यान,
कर्मयोग ते, साख्य ते, कोऊ ताहि पहिचान। ११८

जे नहिं सकत आपु लहि ज्ञाना,
भजत अन्य ते सुनि भगवाना।
श्रद्धावंत जो येउ धनंजय !
गवनत मृत्यु-पार नहिं संशय।
उपजत जगत चराचर जेते,
प्रकृति-पुरुष-संयोगज तेते।
थित सब भूतन एक समाना,
अर्जुन ! परमात्मा भगवाना।
जात सर्व जब भूत विनासी,
बिनसत सो न तबहुँ अविनाशी।
यहि प्रकार जो तेहि कहैं जानत,
तत्त्व यथार्थ सोइ पहिचानत।
अर्जुन ! जेहि लागत भगवाना,
व्याप्त सर्वथल एक समाना,

दोहा :— परमात्मा तेहि ताहि ते, आपुहि माहिं लखाय,
करत न आत्म-विघात सो, लेत परमपद पाय। ११९

जानत जो नित प्रकृतिहि द्वारा,
होत कैर्म सब, सर्व प्रकारा,
जान जो आत्मा नहिं कर्तारा,
सो यथार्थ सब जाननहारा।

पृथक् भाव जे भूतन माहीं,
 एकस्थित जब नरहि दिखाहीं,
 विस्तारहु तेहि माहिं लखायी,
 ब्रह्मस्थिति सोइ पार्थ ! कहायी ।
 बसत देह महुँ आत्मा अर्जुन !
 पै अव्यय, अनादि अरु निर्गुण ।
 ताते करत धरत कछु नाहीं,
 लिप्त होत नहिं काहू माहीं ।
 यथा सूक्ष्मता ते आकाशा,
 लिप्त न, जदपि सर्वथल वासा ।
 तिमि तनु बसत अंग सब माहीं,
 आत्मा लिप्त होत कहूँ नाहीं ।

दोहा :— करत निखिल संसार जिमि, एकहि भानु प्रकाश,
 तिमि एकहि क्षेत्री करत, निखिल क्षेत्र महुँ भास । २२०

सोरठा :— जीव-प्रकृति-निर्वाण, भेद क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ कर,
 ज्ञान-दृगन जे जान, लहत परमगति पार्थ ! ते ।

सब ज्ञानन ते उत्तम ज्ञाना,
 सुनहु धनंजय ! करहुँ बखाना,
 जानि जाहि मुनिजन समुदायी,
 परम सिद्धि यहि जग महुँ पायी ।
 यहि कर अर्जुन ! आश्रय लीन्हे,
 एक-रूपता मोहिं सँग कीन्हे,
 जन्मत पुनि नहिं सृजनहु माहीं,
 लहत व्यथा लय-कालहु नाहीं ।
 प्रकृति योनि मम कुन्तीनंदन !
 करहुँ बीज मैं तेहि महुँ थापन ।
 ताही ते अर्जुन ! यह सारा,
 उपजत सर्व जीव-विस्तारा ।
 प्रकृतिहि सर्व चराचर-माता,
 पिता पार्थ ! मैं बीज-प्रदाता ।

सत्त्व, रजस, तामस जे त्रय गुण ,
प्रकृतिहिं ते उपजत ये अर्जुन !
आत्मा जदपि विकार-विहीना ,
बाँधि देह ये करत अधीना ।

बोहा :— निर्मल, अतः प्रकाश-प्रद, दोषहु तेहि महुँ नाहिं ,
बाँधि लेत अस सत्त्व गुण, जीव ज्ञान-सुख माहिं । २२१

रागात्मक इन माहिं रजोगुण ,
वृष्णा, रति उपजावत अर्जुन !
कर्मासक्ति ताहि ते होई ,
बाँधत जीवन कर्महिं सोई ।
तामस गुण अज्ञान-प्रजाता ,
डारत सबहिं मोह महुँ ताता !
निद्रालस, प्रमाद उपजायी ,
करत निबद्ध जीव-समुदायी ।
होत सत्त्व ते सुख महुँ रागा ,
रज ते कर्म माहिं अनुरागा ।
करत तमोगुण ज्ञानाच्छादन ,
होत पार्थ ! कर्तव्य विस्मरण ।
पराभूत करि रज तम दोउ गुण ,
पावत वृद्धि सत्त्व गुण अर्जुन !
विजित-सत्त्व-तम रज अधिकायी ,
जीति सत्त्व-रज तम बढ़ि जायी ।

बोहा :— देह-द्वार इन इन्द्रियन, उपज विमल जब ज्ञान ,
बढ़ेउ सत्त्व गुण मनुज-महुँ, पार्थ ! होत अनुमान । २२२

अर्जुन ! वृद्धि जबहिं रज पावत ,
कर्म-प्रवृत्ति, लोभ उपजावत ।
इच्छा अरु अतृप्ति मन माहीं ,
रहि सो सकत कर्म बिनु नाहीं ।

जैसेहि तमहु जीव महुँ बाढ़ा,
 उपजत हिय अधियार प्रगाढ़ा ।
 अप्रवृत्ति, मोहहु अधिकायी,
 देत जीव कर्तव्य भुलायी ।
 लहत वृद्धि जेहि काल सत्त्वगुण,
 तजत देह तेहि समय जो अर्जुन !
 पावत जीव धनंजय ! ते थल,
 जात जहाँ ज्ञानी जे निर्मल ।
 मरण समय जो रज अधिकायी,
 जन्मत कर्मासक्त जायी ।
 बाढ़े तम जो तजत जीव तन,
 पावत जन्म सो योनिन मूढ़न ।

दोहा :— पुण्य कर्म कर पार्थ ! फल, सात्विक, निर्मल जान,
 दुःख रजोगुण केर फल, तम कर फल अज्ञान । २२६

पार्थ ! ज्ञान, गुण सत्त्व-प्रजाता,
 लोभ रजोगुण ते संजाता ।
 उपजावत दुर्लक्ष तमोगुण,
 मूढत्वहु, अज्ञानहु अर्जुन !
 करत ऊर्ध्व सत्त्वस्थ प्रयाणा,
 रजोगुणी बस मध्यस्थाना ।
 तम गुण जे अर्जुन ! अपनावत,
 तेइ जघन्य अधोगति पावत ।
 उदासीन मानव-मन जेहि ज्ञान,
 होत ज्ञान अस कुन्तीनंदन !
 'तजि ये तीनहु गुण संसारा,
 अन्य न कतहु कोउ कर्तार ।'
 गुणातीत निगुण पहिचानी,
 सोर भाव तब पावत ज्ञानी ।

दोहा :— मनुज जो देहज तीनि गुण, पार्थ ! पार करि जात,
 लहत मुक्ति तजि जन्म-दुख, मृत्यु जरहु संजात । २२७

पूछेउ पार्थ—“जो त्रिगुणन पारा,
 काह तासु लक्षण आचारा ?
 कहहु मोहि सब नाथ ! बुझायी,
 त्रय गुण पारसो केहि विधि जायी ?”
 पार्थ-वचन सुनि कह यदुरायी—
 “ज्ञान, प्रवृत्ति, मोह जो पायी,
 करत द्वेष नहिं निज मन माहीं,
 जो न मिलत ये, इच्छहु नाही,
 उदासीन-वत् गुणन अक्लिप्त,
 ‘कर्म करत गुण’—गुनिजो अविश्रुत,
 स्वस्थ, धीर, सुख-दुख सम जाना,
 माटी, पाथर, स्वर्ण समाना,
 तुल्य जाहि प्रिय-अप्रिय लागा,
 निंदा संस्तुति दुहुन विरागा,
 जेहि हित तुल्य मान-अपमाना,
 शत्रु-मित्र जेहि सम करि जाना,
 जेहि एकहु आरंभ न भावा,
 गुणातीत सोइ पार्थ ! कहावा ।

दोहा :—गहि एकान्तिक भक्ति जे, सेवत अर्जुन ! मोहि,
 त्रिगुणातीत, समर्थ ते, ब्रह्मस्थिति हित होहि । २२५

सोरठा :—ब्रह्म अमर, अविकार, शाश्वत धर्महु पार्थ ! जो,
 मैं तिनकर आधार, आनंदहु एकान्त कर ।

वर्णन अस अश्वत्थ वृक्ष कर,
 मूल ऊर्ध्व, शाखा अभ्यंतर ।
 पल्लव जासु वेद, जो अव्यय,
 जान जो तेहि देवज्ञ धनंजय !
 शाखा ऊपर-नीचे प्रसारित,
 तीनहु गुण-बरोह ते वर्धित ।
 विषयाङ्कुर जड़ कर्म कहायी,
 बड़ि नरलोक जो नीचे छायी ।

पै यहि भाँति लोक यहि माहीं ,
दिखत स्वरूप तासु सो नाहीं ।
लखि नहिं परत आदि-अवसाना ,
दिखत नाहिं आधारस्थाना ।
अस अश्वत्थ रूढ़-जड़ जोई ,
काटि विराग खड्ग ते सोई ,
खोजि लेय पुनि पार्थ ! निकेतन ,
जहाँ गये पुनि नाहिं निवर्तन ।

दोहा :— गुनहि—“प्रवृत्ति पुराण यह, जेहि ते सब संजात ,
आदि पुरुष परमात्म जो, ताही दिशि मैं जात ।” २२६

जाहि न मान-मोह ते प्रीत ।
संग-दोष जेहि लीन्हेउ जीती ,
रहत सतत जो आत्मारामा ,
भयेउ धनंजय ! जो निष्कामा ,
सुख-दुख-द्वन्द्व-मुक्त जो प्राणी ,
अव्यय पद पावत सो ज्ञानी ।
नाहिं जहाँ शशि-सूर्य-प्रकाशा ,
करत न जहाँ हुताशन भासा ,
विनिवर्तन जहँ जाय न होई ,
अर्जुन ! परमधाम मम सोई ।
मोरहि अंश सनातन जायी ,
जीव लोक महुँ जीव कहायी ।
प्रकृतिस्थित पंचेन्द्रिय अरु मन ,
कर्षि लेत पुनि कुन्तीनंदन !
जब शरीर जीवात्मा त्यागत ,
अथवा नव तनु प्रविशन लागत ,

दोहा :— सुमनादिक ते जिमि पवन, गंधहि लेत उड़ाय ,
तैसेहि सो इन्द्रिय मनहु, अपने सँग लै जाय । २२७

श्रुति, जिह्वा, दृग, त्वचा, नाक, मन ,
इनहिन-कृत सेवत सो विषयन ।

यह जो अर्जुन ! निकसत, निवसत ,
गुणन-युक्त जो विषयन भोगत ,
ईश-अंश सो मूढ़ न जाना ,
योगी ज्ञान-नयन पहिचाना ।
योगिहु याही भाँति यत्न-रत ,
आत्मस्थित आत्महिं पहिचानत ।
जन जिन आत्म-शुद्धि नहिं कीन्ही ,
यत्नहु ते न सकत मोहिं चीन्ही ।
तेज बसत जो भानु मँभारा ,
जेहिते भासित जग यह सारा ,
शशि, अग्निहु महुँ जासु निवासा ,
जानहु सब मम तेज प्रकाशा ।

दोहा :— धारत प्राणिन ओज बनि, मैं महि माहिं समाय ,
बनि शशि पोषत सर्व मैं, औषधि रस उपजाय । १२८

वैश्वानरहु अग्नि मोहिं जानहु ,
वास सकल प्राणिन-तनु मानहु ।
पान अपान पवन दोउ द्वारा ,
अन्न चतुर्विध पचवहुँ सारा ।
पार्थ ! सर्व हृदयन मैं निवसत ,
ज्ञानस्मृति मैं देत बिनासत ।
वेद-ज्ञेय मैं वेदन-ज्ञाता ,
वेदान्तहु कर मैं ही कर्ता ।
पुरुष दोय जो ये क्षर अक्षर ,
जानहु तिन महुँ भूत सर्व क्षर ।
राशि-स्वरूप जीव महुँ जोई ,
अक्षर सोइ धनंजय ! होई ।
अर्जुन ! भिन्न दुहुन ते जोई ,
परमात्मा पुरुषोत्तम सोई ।
प्रविशि ईश अव्यय तिहुँ लोकन ,
करत रहत सो सब कर पोषण ।

दोहा :— उत्तम अक्षर पुरुष ते, बसहुँ पुरुष क्षर पार ,
ताते पुरुषोत्तम कहत, मोहिं वेद संसार । २२६
मोह-रहित यहि भाँति जो, पुरुषोत्तम मोहिं जान ,
सर्व भाव ते मोहिं भजत, सो सर्वज्ञ सुजान । २२७

सोरठा :— मैं यह कहेउँ बखानि, शास्त्र धनंजय ! गुह्यतम ,
होहिं मनुज यह जानि, बुद्धिमान कृतकृत्यहू ।

दान सत्त्व शुद्धिहु, अभयस्थिति ,
ज्ञान-योग कै पार्थ ! व्यवस्थिति ,
दम, स्वाध्याय, यज्ञ, सरलाई ,
सत्य, अक्रोध, लाज, मृदुताई ,
शान्ति, अहिंसा, भोग-विरागा ,
जीव-दया, तप तृष्णा-त्यागा ,
अचपलता, मर्यादा-पालन ,
सुदृढ भावना कर परित्यागन ,
तेज, अद्रोह, शौच, धृति, अर्जुन ,
क्षमा, निरभमानहु—ये सब गुण ,
ताही महुँ सब परहिं दिखायी ,
जन्मत दैवि भाव जो पायी ।
दंभ, दर्प, क्रोधहु, अतिमाना ,
अर्जुन ! पारुष्यहु, अज्ञाना ,
तिन महुँ ये सब दोष लखाहीं ,
उपजत आसुर भावहि माहीं ।

दोहा :— दैवी भावहि मोक्षप्रद, आसुर बाँधनहार ,
अर्जुन ! त्यागहु शोच तुम, दैवी जन्म तुम्हार । २२९

दैवी आसुर दोखहु, भाँती ,
पार्थ ! जगत महुँ भूतन जाती ।
बरनेउँ विस्तृत दैवी लक्षण ,
सुनहु करहुँ अब आसुर वर्णन ।

अमित पार्थ ! असुर अज्ञाना,
 ते न प्रवृत्ति-निवृत्तिहिं जाना ।
 जानत नाहिं शौच, अचारा,
 विदित न तिनहिं सत्य-व्यवहारा ।
 जग असत्य यह, बिनु आधारा,
 नहिं कोउ ईश बनावनहारा,
 प्रेरित काम नारि-नर द्वारा,
 उपजेउ यह समस्त संसारा,
 ताते भुवन निखिल यहि माहीं,
 काम विहाय अन्य कछु नाहीं—
 सोचत असुर-वृत्ति यहि भाँती,
 नष्टात्मा, मति अल्प, अराती ।
 होत क्रूर कर्मन-अनुरागी,
 जन्मत जगत विनाशहि लागी ।

बोद्धा :—गहि दुर्भर ये काम सब, दम्भ, मान, मद-मत्त,
 दुराग्रही ये मोहवश, पातक होत प्रवृत्त । २३२

चिन्ता जिनकै पार्थ ! अनन्ता,
 अन्त न जासु मृत्यु-पर्यन्ता,
 निज सर्वस्व काम जिन जाना,
 कबहुँ न तिन भोगन-अवसाना ।
 काम-क्रोध-रत, शत शत आशा,
 बाँधे रहति जिनहिं निज पाशा,
 विषय-भोग-हिदु ये अध-राशी,
 अनय ते द्रव्य-लाभ-अभिलाषी ।
 पूर्ण मनोरथ यह मम आजू,
 करिहौ पूर्ण काल्हि वह काजू,
 आजु संपदा एतक मोरी,
 लेहौ एतक काल्हि बटोरी,
 आजु शत्रु निज यह मैं मारा,
 करिहौ काल्हि अन्य संहारा,

मैं ही स्वामि, सिद्ध, बलवाना ,
सुखी, भोगि मैं, मैं श्रीमाना ,

दोहा :— मैं कुलीन, नहिं मोहिं सम, यहि जग कोऊ आन ,
करिहौं मख यह, मोद वह, देहौं मैं अस दान । २२३

मानस भ्रान्त अनेकन तर्कन ,
आवृत दिशि दिशि मोह-आवरण ,
काम, भोग-आसक्त पार्थ ! जन ,
अंत जात सब नरक अपावन ।
जिन महुँ ऐंठ, आत्म-संभावित ,
अर्जुन ! जे धन-मान-मदान्वित ,
नाम-मात्र जे यज्ञ रचावत ,
विधि-विधान बिनु, दंभहि भावत ,
दर्प, घमंड, बलहि अपनावत ,
काम-क्रोध महुँ जे मुख पावत ,
बसत जो मैं इन महुँ, सब माहीं ,
करत द्वेष ये मोरहु पाहीं ।
महुँ पार्थ ! इन द्वेषी, क्रूरन ,
निरत-अशुभ-कमन नर अधमन ,
आसुरि योनि जे यहि संसारा ,
डारहुँ तिन महुँ बारम्बारा ।

दोहा :— असुर-योनि लहि जन्म प्रति, पाय सकत मोहिं नाहि ,
मूढ़ उत्तरोत्तर परत, अधिक अधोगति माहि । २२४

आत्मा-नासनहार धनंजय !
जानहु नरक-द्वार तुम विधि त्रय ।
काम, क्रोध, ये लोभ कहाये ,
उचित चलब ये तीनि बराये ।
तमोद्वार त्रय जब नर त्यागत ,
आपुहि चलै पंथ शुभ लागत ।

निज कल्याण-वृत्ति अधिकायी,
 लेत परम गति अर्जुन! पायी।
 जो त्यागत शास्त्रोक्त विधाना,
 लागत करन कर्म मनमाना,
 सिद्धि कबहुँ नहिं सो नर पावत,
 सद्गति, सुखहु न तेहि ढिग आवत।
 काह कर्म ? का पार्थ ! अकर्मा,
 उपजहि जब तुम्हरे मन भरमा,

सोरठाः—करत जो शास्त्र-बखान, जानि धनंजय ! ताहि तुम,
 तेहि कर्तव्य-प्रमाण, मानि कर्म निज तुम कारहु ।”

पूछेउ अर्जुन—“जे तजि शास्त्रन,
 करत सश्रद्धा पूजन अर्चन।
 निष्ठा काह नाथ ! तिन केरी,
 राजस, सत्त्व कि तम गुण-प्रेरी ?”
 सुनत प्रश्न हरि वचन उचारा—
 “अर्जुन ! श्रद्धा तीनि प्रकारा।
 सोऊ नर स्वभाव अनुरूपा,
 सात्त्विक, राजस, तामस रूपा।
 अर्जुन ! जेहि विधि मनुज-स्वभावा,
 तैसेहि तेह महुँ श्रद्धा-भावा।
 जीव पार्थ ! श्रद्धामय होऊ,
 जेहि विधि श्रद्धा तैसेहि सोऊ।
 सात्त्विक मनुज उपासत सुरगण,
 राजस पूजत यक्ष राक्षसन।
 तामस वृत्ति लोग जग जेते,
 भूत प्रेतगण पूजत ते ते।

दोहा :— प्रेरित कामासक्ति ते, भरे दंभ अभिमान,
 करत घोर तप जे मनुज, तजि शास्त्रीय विधान । २२५

अस तप ते पावत अति पीरा,
 पंचभूत जे बसत शरीरा।

महूँ करत जो सब महूँ वामू,
 अस मनुजन ते पावहुँ त्रासू।
 इनहिं पार्थ ! अविवेकी जानहु,
 वृत्ति आसुरी इनकै मानहु।
 नरन भाँति त्रय प्रिय अहारा,
 यज्ञ, तपहु त्रय भाँति पियाग।
 तैसेहि तीन भाँति कर दाना,
 सुनहु पार्थ ! सब करहुँ बखाना—
 आयु, सत्त्व, बल, स्वाम्ध्य-विवर्धन,
 सुख-प्रद, रुचिकर, चिकण भोजन।
 रसमय, पौष्टिक, आनंद-दाता,
 सात्त्विक-जन-प्रिय भोजन ताता !
 कट्वा, रूखा, रुष्टा, खारा,
 तक्षणा, उष्ण अति दाहनहारा,

बोद्धः— दुःख, शोक अरु रोगहू, जो उपजावनहार,
 राजस जन कहूँ प्रिय सदा, ता अजुन ! आहार। २३६

शीतल, बासी, निरस अपावन,
 दुर्गन्धित, लच्छिष्टहु भोजन,
 जिन कर तामस पार्थ ! स्वभावा,
 अस आहार तिनहिं अति भावा।
 यज्ञ जौन फल-च्छा-हीना,
 करत सविधि जेहि मन करि लीना,
 करत जाहि कत्तव्यहि जानी,
 सात्त्विक यज्ञ कहत तेहि ज्ञानी।
 फलहि हेनु जेहि कर आरंभा,
 राजस यज्ञ, भरेउ बहु दंभा।
 विधि-विहीन, बिनु अन्नात्पादन,
 रहित दक्षिणा जा बिनु मंत्रन,
 भट्टा-शून्य यज्ञ जो होई,
 तामस यज्ञ कहावत सोई।

अजुन ! ब्राह्मण सुरगण पूजन,
गुरुजन ज्ञानी जनकर अचन,

श्रीकृष्ण :- जहाँ अहिंसा, स्वच्छता, सूधा सरल स्वभाव,
वैराग्य—सोई तप, कायिक पार्थ ! कहाव । २३७

धर्म-ग्रन्थ-अभ्यास धनंजय !
वचन सत्य, हितकारी अरु प्रिय,
मुनि उद्वेग न जो उपजावत,
सोई वाचिक तप पार्थ ! कहावत ।
मौन, सौम्यता, आत्म-संयमन,
सर्व काल जो रह प्रसन्न मन,
शुद्ध भावना जेहि मई होई,
तप मानस कुन्तीसुत ! सोई ।
युक्त, परम श्रद्धा उर धारी,
कर्म-फल-शा सर्व बिसारी,
करत जबहि प्राणी ये तप त्रय,
सात्त्विक सोई कहाव धनंजय !
हेतु यहै जेहि तप कर सारा—
मिलहि मान, पूजा, सत्कारा,
दंभ-प्रसार जहाँ अति होई,
चंचल, अस्थिर, राजस सोई ।

श्रीकृष्ण :- सहित दुःखग्रह तप करत, कष्ट अनेक उठाव,
जासु हेतु पर-घात ही, तामस सोई कहाव । २३८
ब्रह्म न प्रत्युत्कार जो, गुनि कर्तव्य जो दान,
सात्त्विक सोई पार्थ ! जहँ, पात्र, काल, थल ध्यान । २३९

हृदय माहि धरि फल-अभिलाषा,
प्रत्युत्कारहुँ कै करि आशा,
कष्ट सहित जो करत प्रदाना,
सोई कहावत राजस दाना ।

बिना देश अरु कालहि जाने ।
पात्रहु पार्थ ! बिना पहिचाने ,
देत तिरस्कृत करि, बिनु माना ,
जानहु सोई तामस दाना ।
'ओं तत्सत्'—त्रय शब्द विशेषा ,
तिन महँ पार्थ ! ब्रह्म-निर्देशा ।
तेहि निर्देशहि के अनुभारा ,
वेद, यज्ञ, ब्राह्मण विस्तारा ।
ताते, अर्जुन ! ब्रह्मवादिजन ,
करि 'ओंकार' प्रथम उच्चारण ।
आरंभत तब मख, तप, दाना ,
कर्म-वृन्द जो शास्त्र बखाना ।
तिमि मुमुक्षु फल-आस न राखी ,
करत दान, मख, तप, 'तत्' भाखी ।

दोहा :— साधु-भाव, सद्भाव महँ 'सत्' कर होत प्रयोग ,
कर्म प्रशस्तहु माहि तस, पार्थ ! तासु उपयोग । २४०
अर्जुन ! मख, तप, दान महँ, थिर भावहु 'सत' होय ,
करत जो कर्म निमित्त इन, सतहि कहावत सोय । २४१

सोरठा :— पार्थ ! जो श्रद्धा नाहि, हवन, दान, तप व्यर्थ सब ,
यहँ परलोकहु माहि, हितकारी नहि कर्म अस ।”

कहे वचन सुनि कुन्तीनन्दन—
“महाबाहु हे ! केशि-निषूदन !
मैं यथार्थ संन्यास स्वरूपा ,
ताहि भाँति त्यागहु कर रूपा ,
जानन चहहुँ, कहहु यदुरायी !
पृथक पृथक दोउ मोहिं बुझाई ।”
कह हरि—“कान्य कर्म कर त्यागन ,
कहत ताहि संन्यास ज्ञानिजन ।
सकल कर्म-फल त्यागत जोई ,
त्याग कहावत अर्जुन ! सोई ।

कर्म सदोष सर्वथा अहर्ही,
ताते त्याज्य ज्ञानि कछु कहर्ही ।
कर्म यज्ञ, तप, दान समाना,
त्याज्य नाहि—कछु अन्यन माना ।

श्रीकृष्ण :— सुनहु त्याग सम्बन्ध महँ, निर्णय तात ! हमार—
बरने त्यागहु विज्ञजन, अर्जुन ! तीनि प्रकार । २४२

उचित न यज्ञ, दान तप-त्यागन,
ये करणीय सकल कुरुनंदन ।
करत यज्ञ, तप, दानहु—ये त्रय !
ज्ञानिहु होत पवित्र धनंजय !
ये कर्तव्य कर्म कुरुसत्तम,
अस मत मोर सुनिश्चित, उत्तम ।
तजि आसक्ति, फलहु करि त्यागन,
करव उचित अर्जुन ! इन कर्मन ।
विहित स्वधर्म कर्म जो जासू,
उचित पार्थ ! संन्यास न तासू ।
तजत तिनहि जो मोहवशाता,
तामस त्याग कहत तेहि ताता !
धर्म दुख-कारक जो जानी,
अथवा काय-क्लेश-भय मानी,

श्रीकृष्ण :— त्यागत जो निज कर्म सोइ, राजस त्याग कहाव,
अर्जुन ! अस निज त्याग कर, त्यागी फल नहि पाव । २४३

निधत कर्म कर्तव्यहि गुनि मन,
त्यागि फलाशा करत जाहि जन,
नहि तेहि महँ आसक्ति बढ़ावत,
सात्त्विक . सोई त्याग कहावत ।
हितकर कर्म माहि नहि रागा,
अहित कर्म तजि जो नहि भागा,

सत्त्वशील, मेधावी सोई,
त्यागा संशय-विरहित होई।
कबहुँ न त्यागि सकत कुरुनन्दन !
तनुधारो अशेष निज कर्मेन।
पै त्यागत कर्मन-फल जोई,
त्यागी सोइ धनंजय ! होई।
इष्ट, अनिष्ट, मिश्र—असविधि त्रय,
कर्मन कर फल होत धनंजय।
लहत सो त्याग-विहीन फलाशी,
लहत न फल-त्यागी संन्यासी।

श्रीकृष्ण :— सख्यन मत, प्रति कर्म दिन कारण पाँचहिं होहि,
कुन्तीनन्दन ! ते सुनहु, सकल बतावहुँ तोहि । २४४

कर्त्ता, अधिष्ठान कुरुनन्दन !
तिसरे विविध भाँति के साधन,
चौथे क्रिया पृथक् विधि नाना,
पंचम अर्जुन ! दैव बखाना।
जो कछु कर्म देह ते होई,
प्राणी वा मानस ते जोई,
न्याय-युक्त अथवा प्रतिकृता,
ये पाँचहुँ तिन कर्मन मूला।
अस विधान महँ जो कोउ प्राणी,
'मैं ही कर्त्ता'—कहत बखानी,
बुद्धि परिष्कृत नहिं तेहि माहीं,
सो दुर्मति कछु समुझन नाहीं।
भाव न जेहि अस—'मैं ही कर्त्ता',
जासु बुद्धि महँ नाहिं लिप्तता,
बधेउ लोक ये सब कुरुनन्दन !
बधत न सो, नहिं बद्ध सो बंधन।

श्रीकृष्ण :— ज्ञाता, ज्ञेयहु, ज्ञान ये, कर्म-बीज त्रय जान,
क्रिया, कर्म कर्तव्य हू, कर्म-अंग त्रय मान । २४५

गुण-विभेद ते तानि प्रकारा,
 ज्ञान, कर्म कर्त्ता-विस्तारा।
 बरनेउ जेहि विधि गुण-तत्त्वज्ञान,
 सुनहु, कहहुँ सोई कु-तानंदन।
 जेहि बल प्राणिन माहि धनंजय !
 परत दिखाय भाव इक अव्यय,
 भिन्नहु महुँ अविभक्त दिखत इक,
 ज्ञान धनंजय ! सोई सात्त्विक।
 भिन्न भिन्न सब भूतन माहीं,
 भिन्नहि देख परत जेहि काहीं,
 जेहि ते होत भिन्नता भाना,
 अर्जुन ! सोई राजस ज्ञाना।
 जो अर्जुन ! तत्त्वार्थ न जानी,
 एकहि वस्तु माहि सब माना,
 निष्कारण अनुराग बढ़ावत,
 तामस सो लघु ज्ञान बहावत।

बोधा :— फल-इच्छा, आसक्ति नहि, राग द्वेष नहि होय,
 करत नियत निज कर्म जो, सात्त्विक अर्जुन ! सोय। २४६

भोगेच्छा जो मन महुँ राखत,
 'मैं ही कर्त्ता'—सोचत, भावत,
 क्लेश-परिश्रम सह जो होई,
 राजस कर्म कहावत सोई।
 क्षय, हिसा, निदान विनु जाने,
 बिना शक्ति निज जो पहिचाने,
 करत कर्म मोहहि ते प्रेरा,
 तामस कर्म नाम तेहि करा।
 अहंकार, रागहुँ जेहि नाहीं,
 धृति, उन्माह पार्थ ! जेहि माहीं,
 मिद्धि न हर्ष, असिद्धि न शोका,
 कर्त्ता सात्त्विक सो यहि लोका।

कम-फलेच्छु, मलिन, जो रागी ,
लोभी अरु हिंसा-अनुरागी ।
हर्ष शोक ते व्याकुल जोई ,
राजस कर्त्ता अर्जुन ! सोई ।

बोद्धा :— दीर्घसूत्रि, गविष्ठ, शठ, अस्थिर प्राकृत जोय ,
घातक, खिन्नहु, आलसी, कर्त्ता तामस सोय । २४७

अर्जुन तीनि गुणन अनुसार ,
बुद्धिहु धृतिहु तीनि प्रकार ,
पृथक् पृथक् मै सब कर वर्णन ,
करत अशेष सुनहु कुरुनंदन !
बुद्धि प्रवृत्तिहि जो पहिचानति ,
पार्थ ! निवृत्तिहु कहँ जो जानति ,
कार्य-अकार्य केर जेहि ज्ञाना ,
विदित जाहि भय-अभयस्थाना ,
बंध-मोक्ष ज्ञानहु जेहि होई ,
सात्त्विक बुद्धि धनंजय ! सोई ।
कार्य-अकार्यहु, धर्म-अधर्मा ,
इन महुँ होत पार्थ ! जेहि भरमा ,
निर्णय जासु यथार्थ न होई ,
राजस बुद्धि कहावति सोई ।
धर्महु महुँ अधम जो देखति ,
सर्व अर्थ विपरीतहि पेलति ,
अंधकार-आवृत जो होई ,
बुद्धि तामसी अर्जुन ! सोई ।

बोद्धा :— प्राणेन्द्रिय - मानस - क्रिया, जाही धृति ते होय ,
जो समत्व महुँ थिर रहति, पार्थ ! सात्त्विकी सोय । ८२४

फल-इच्छुक प्रसंग अनुसार ,
धर्म, अर्थ, पावत जेहि द्वारा ,

कामहु सिद्ध जाहि ते होई,
धृति राजसि कुन्तीसुत ! सोई।
जो दुर्बुद्धि-प्रमाद प्रदाता,
जेहि ते निद्रा, भय संजाता,
शोक, विषाद देति उपजायी,
तामसि धृति सोइ पार्थ ! कहायी—
सुख हू त्रय विधि अनुसरि त्रय गुण,
बरनहुं सुनहु सोउ तुम अर्जुन !
जहँ अभ्यासहि ते मन लागत,
पावत जाहि दुःख सब भागत,
जेहि कर आदि गरल सम होई,
लागत अंत सुधा सम जोई,
आत्म - ज्ञान - आनंद - प्रजाता,
कहत ताहि सात्त्विक सुख ताता !

दोहा :—इन्द्रिय-विषय-संयोग ते, सुख जो अर्जन ! होय,
आदि सुधा सम, अंत विष, जानहु राजस सोय । २४६

सुख जो आदि मोह उपजावत,
परिणामहु महुँ मोह बढ़ावत,
निद्रालस ते उपजत जोई,
दुलचहु ते, तामस सोई।
मंही, व्योम वा सुरपुर माही,
बिनु प्रकृतिज गुण त्रय कछु नाही।
ब्राह्मण आदि जो वश-विभाजन,
तहुँहु स्वभाव-जन्य गुण कारण।
पार्थ ! सरलता, क्षमा, शौच, दम,
तप, श्रद्धा-विश्वासहु अरु शम,
ब्रह्म-ज्ञान, विज्ञानहु ताता !
ब्राह्मण-कर्म स्वभाव-संजाता।
तेजस्विता, दक्षता, दाना,
धीरज, समर नाहि अंगदाना,

अर्जुन ! शौर्यहु, स्वामी-भावा,
प्रकृतिज क्षत्रिय-कर्म कहावा।

शेडाः—कृषि, गोरक्षा, अरु बनिज, सहज वैश्यजन-कर्म,
पार्थ ! शुद्ध हित एक ही, प्रकृतिज सेवा-धर्म । २५०

निज निज कर्म करत सब प्राणी,
लहत सिद्धि जस कहहुँ बखानी—
प्राणि-प्रवृत्ति होती जेहि द्वारा,
जेहि ते व्याप्त सकल संसारा,
करि निज कर्म भजत तेहि जोई,
अर्जुन ! लहत सिद्धि नर सोई।
सुकहु, तदपि, न वर पर-कर्मा,
मङ्गल-प्रद विगुणहु निज धर्मा।
नियत जो कर्म स्वभावहि-द्वारा,
कान्हे तेहि न पाप संसारा।
कर्म जो सहज सदोषहु होई,
तवहुँ त्याज्य न अर्जुन ! सोई।
यथा अग्नि नहि धूम-बिहोना,
तिमि उद्योग न दोषन-हीना।
जेहि आत्मा निज वश महुँ लायी,
सर्वासक्ति दीन्ह बिसरायी,

शेडाः—बसति न एकहु कामना, पार्थ ! जासु द्विज-धाम,
लहत सोई संन्यास ते, परम सिद्धि निष्काम । २५१

ज्ञान-पराकाष्ठा जो होई,
अर्जुन ! ब्रह्म कहावत सोई।
तेहि लहि सिद्धि पाव कस ज्ञानी,
थोरेहि महुँ तोहि कहहुँ बखानी—
शुद्ध बुद्धि ते युक्त पार्थ ! जन,
कीन्ह सधृति जेहि आत्म-संयमन,

शब्दादिक विषयन नहिं प्रीती,
राग, द्वेष जेहि लीन्हे जीती,
अल्पाहारि, बसत एकाकी,
मन, वाचा, काया वश जाकी,
ध्यानयोग महुँ जो संलग्ना,
रहत सदा वैराग्य-निमग्ना,
अहंकार, बल दर्प-विहीना,
कामहु, क्रोध, परिग्रह-हीना,
तजि ममता जो शान्त स्वभावा,
ब्रह्म-भाव अस योगी पावा।

बोधाः—महामृत, आनंद-मय, प्राणि-मात्र सम भाव,
शोच, वासना-हीन सो, परम भक्ति मम पाव। २५२

लहत भक्ति ते तात्त्विक ज्ञाना,
ज्ञानत को मैं, का परिमाण,
तत्त्वरूप मोहि यहि विधि जानी,
प्रविशत मोहि महुँ अंत सो प्राणी।
गहि सो मोरहि शरण-सहारा,
करत सदा कर्मन-व्यापारा।
शाश्वत, अविनाशी पद जोई,
मोरि कृपा ते पावत सोई।
अर्जुन ! तुमहु सबे निज कर्मन,
करहु बुद्धि ते मोहि समर्पण।
मत्पर, बुद्धि-योग अपनायी,
देहु मोहि महुँ चित्त लगायी।
चित्त मोहि महुँ अर्जुन ! धारे,
मोरि कृपा तरिहौ दुख सारे।

बोधाः—सध्यसाचि । जो नाहि तुम, सुनिहो यह मत मोर,
होइहै निश्चय । नाश तो, अहंकार वश तोर। २५३
अहंकारवश तुम जो निज मन,
रहे सोचि—नहिं करिहौ मैं रण,

मिथ्या यह तुम्हारे आयोजन,
करिहौ तुम निज प्रकृति-विवश रण।
कर्म तुम्हारे प्रकृति-संजाता,
तुमहु निबद्ध ताहि महुँ ताता!
कहत न करन मोह वश जाही,
करिहौ अवश धनंजय ! ताही।
बसि सब प्राणिन-हृदय मँझारा,
परमेश्वर निज माया द्वाग,
रहत भ्रमावत जीव हठाता,
यंत्रस्थित मानहुँ सब ताता!
ताही केर गहहु तुम आश्रय,
सर्व भाव तेहि भजहु धनंजय !
पइहौ अर्जुन ! तासु कृपा-बल,
परम शान्तिमय तुम नित्यस्थल।

बोधा :—ज्ञान गुह्यतम मैं तुमहि, यह विधि कीन्ह बखान,
गुनि सो सब अब तुम करहु, जो तुम्हारे मन मान । २५४

बहुरि कहहुँ तोहिं सर्व गुह्यतम,
सुनहु धनंजय ! वचन परम मम।
तुम अस्यन्त मोहिं प्रिय ताता !
ताते तुमहिं कहहुँ हित-बाता—
मोहिं महुँ पार्थ ! लगावहु निज मन,
भक्ति मोरि, मम पूजन, वंदन।
प्रिय तुम, ताते कहहुँ सत्य ! प्रण,
मिलिहौ मोहिं अंत कुरुनंदन !
सर्व धर्म तुम त्यागि धनंजय !
लेहु एक गहि मोरहि आश्रय
करहु शोच नहिं अर्जुन ! निज मन
करिहौ तब सब पाप-विमोचन।
जो न करत तप, भक्तहु नाहीं,
नाहिं सुनन इच्छा जेहि माहीं,

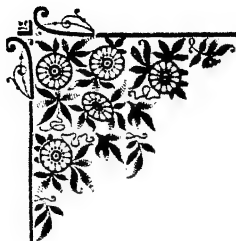
करत जो मम निदा, अवमाना,
ताहि सुनायेउ नहि यह ज्ञाना।

बोद्धा :— मम भक्तन प्रति गुह्यतम, कहिहै जो यह ज्ञान,
परम भाक्त सो पाय मम, मिलिहै मोहि निदान। २५५

सब मनुजन महुँ तेहि सम कोई,
मम प्रिय-करनहार नहि हार्ई।
अर्जुन ! महितल तासु समाना,
मोहिहु प्रिय न होय कोउ आना।
पार्थ ! धर्म-संवाद हमारा,
करिहै जो सुनि मनन विचारा,
ज्ञान-यज्ञ ते तेहि मम अर्चन,
कीन्हेउ अस मम मत कुहनंदन !
तैसेहि तजि जो छिद्रान्वेषण,
सुनिहै यहि धरि श्रद्धा निज मन,
लहिहै सोउ शुभ लोकन-वासा,
करत पुण्य जन जहाँ निवासा।
कहेउ पार्थ ! मैं जो तुव पाहीं,
मन-एकाम्र सुनेउ या नाही ?

बोद्धा :— भयउ उदित अज्ञान ते, मोह जो हृदयाकाश,
भयउ तासु अथवा नहीं, पार्थ ! सर्वथा नाश !” २५६

सोरदा :— कह अर्जुन !— “प्रभु-छोड़, आत्मस्मृति अब मोहि भयी,
थित, गत-संशय-मोह, करिहौ नाश-नदेश मैं ।”



जय काण्ड



नतित उर अगण्य तिन सगा,
 जय-ध्वनि, युद्धोन्माद, उमंगा।
 सुनत अगति-समर-आमंत्रण,
 गरजे पाण्डव-बलहु वीरगण।
 सुभट उदायुध उभय सैन्य के,
 निर्मम धर्मराज अवलोके।
 साहस साकति, विस्मृत निज तन,
 मत्त शौर्य-रस, एकनिष्ठ-मन।
 सीमित भव प्रति रोम विहायी,
 चहत असीम मिलन जनु धायी।
 दमकत वदन सच्चिदानंदा,
 अँग अँग सबत शक्ति-निष्पंदा।

दोहा :—मनुज वाजि, गज नृग लखे, संसृति त्यक्त समस्त,
 व्यक्त विश्व चमकेउ मनहुँ, वीर-रूप अभ्यक्त। २

परम-शान्ति संघर्ष-परम क्षण,
 चाकित समान विलोकि नृपति-मन।
 आशिक सत्य समुक्ति सब ज्ञाना,
 लहेउ ज्ञान विगलित-अभिमाना।
 वृत्ति संकुचित तर्जा नरेशा,
 उपजेउ हृदय क्षात्र-आवेशा।
 जस कटि-बद्ध धनुष कर धारा,
 सन्मुख भीष्महिं भूप निहारा।
 रण-प्राङ्गणहु धर्म उर जागा,
 धनु पैवारि नृप स्यंदन त्यागा।
 पार्थन, आयुध बर्म विहायी,
 प्रविशेउ शत्रु-सैन्य नररायी।
 विकल स्व-सैन्य अनुज यहि ओरा,
 उत्थित कुरु-दल हर्ष-हिलोरा।
 “तात ! तात” इत अनुज पुकारत,
 उत्तरीय उत शत्रु उछारत।

दोहा :—कह दुःशासन —“भीरु नृप, प्रतिबल प्रबल निहारि ,
आवत मम अग्रज-शरण, रण-बिनु विजय हमारि ।” ३

अरि-दल आनंद-ज्वार निहारी ,
लज्जित पाण्डव-वाहिनि सारी ।
माद्री-सुवन, भीम, युयुधाना ,
द्रुपद, विराट, मित्र नृप नाना ।
स्यंदन निज निज सकल विहायी ,
घेरि हरिहिं उर-व्यथा सुनायी ।
धर्मराज-मन जानन हारे ,
वचन विहँसि यदुराज उचारे —
“वृथा त्रस्त तुम सब मन माहीं ,
धर्म-सुतहिं अरि-दल भय नाहीं ।
रचेउ न अब लागि शर चतुरानन ,
हरि जो सकत धर्मसुत-प्राणन ।
पुण्यश्लोक युधिष्ठिर राजा ,
करत सदा धर्मोचित काजा ।
भवन, विजन, रणभूमिहु माहीं ,
त्यागत धर्म धर्मसुत नाहीं ।

दोहा :—धर्म-युद्ध हित बद्ध-कटि, धर्म-निधान नरेश ,
गुरुजन ढिग गवने लहन, आशिष, समर-निदेश ।” ४

उत उदारमति शान्तनु-नंदन ,
चर्चेउ आवत धर्मसुवन-मन ।
दूरहि ते लखि स्यंदन त्यागा ,
गत रण-राग, दृगन अनुरागा ।
क्षितितल-विनिहित-मौलि भुआला ,
परसत पद लखि नेह-विहाला ।
विनय-विनम्र पौत्र सरिनंदन ,
भरि भुज कौन्ध सुचिर आलिङ्गन ।
विगत निमेष, विलोचन निश्चल ,
विस्मृत क्षण रण-क्षेत्र, सैन्य दल ।

उर कर्तव्य-भाव पुनि व्यापा ,
लज्जित सरिसुत, उर अनुतापा ।
द्विविधा-विकल पितामह जानी ,
निर्भर-नेह कही नृप वाणी—
“साकृति क्षात्र-धर्म तुम पावन ,
आयेउँ मैं न मोह उपजावन ।

दोहा :— कीन्हे यदुपति यल बहु, टरेउ नाहि भवितव्य ,
लहहुँ जो तात-निदेश अब, पालहुँ निज कर्तव्य । ५
करहु तात ! कृतकृत्य मोहि, दै निज कृपा-प्रसाद ,
निवसति विजय, विभूति श्री, गुरुजन-आशिर्वाद ।” ६

मुग्ध चरित-माधुर्य निहारी ,
गिरा सधृति गाङ्गेय उचारी—
“जानहुँ तान ! स्वभाव उदारा ,
नेह-आर्द्र मृदु हृदय तुम्हारा ।
स्वल्प पुण्य-भाजन कुल माहीं ,
उपजत तुम समान सुत नाहीं ।
पलहु तुम्हार समागम पायी ,
सौख्य-सिन्धु मन लेत नहायी ।
लज्जित मानव आत्म-बुद्धता ,
ढाँकत वैभव-व्याज नग्नता ।
सर्व गुणन-भूषित तुम सोहत ,
विभव-विभूति न मानस मोहत ।
बसत विश्व जे विभव विहायी ,
तिनहिं समीप जात सोउ धायी ।
पूर्णकाम तुम, मैं जन पर-भृत ,
देय काह जो रण-रत्न प्रभु-हित !

दोहा :— रोम रोम ते तात ! पै, बरसति यहहि असीस ,
विजय, राज्य, यश, सम्पदा, देहि तुमहि जगदीश ।” ७

सोरठा:— गद्गद सुनत नरेश, गवनेउ गुरु, मातुल दिगहु ,
द्रोण, कृपहु, मद्रेश, भाषे शुभ आशिष-वचन ।

लहि यहि विधि आशिष, आदेशू,
 धैर्य-विवेक-निकेत नरेशू,
 लखि क्षणैक अरि-बाहिनि वीरा,
 कहे पुकारि वचन गम्भीरा—
 'गिरा वितथ मैं कबहुँ न भाखी,
 कहहुँ यथार्थ अबहुँ हरि साखी—
 सत्य धर्म हित मैं रण ठाना,
 मम हिय राज-प्रजा-कल्याणा।
 होय कोउ जो कुरु-दल माहीं,
 जाहि अधर्म-युद्ध प्रिय नाहीं,
 सकत पक्ष मम अबहुँ सो आयी,
 रखिहौ पूर्व वृत्त बिसरायी।'
 सुनत गिरा जनु जलधर-गर्जन,
 शिथिल शत्रु-दल, क्रुद्ध सुयोधन।
 जस दुर्वचन कहन कछु चाहा,
 लखेउ सविस्मय कुरु-नरनाहा—

द्वोहा :— तजि ध्वजिनी, सब वंश जन, करि अराति-जयकार,
 धर्मराज आदिश जात निज, अनुज युयुत्सु कुमार। ८
 जबलंगि व्यथित बढ़ाय रथ, सकहि रोक कुरुनाथ,
 धरेउ समाक्त युयुत्सु इत, धर्मतनय-पद माथ। ९

जस धर्मज अरि भरेउ भुजान्तर,
 गँजेउ रणमहि-पाण्डव-जय-स्वर।
 रिपु-पद-प्रणत अनुज अबलोकी,
 सकेउ रोष नहिं कुरुपति रोकी।
 करत कठोर बन्धु निर्भर्त्सन,
 भाषे कलुषित वचन सुयोधन—
 "कायर, कुमति, कुमातु-प्रजाता,
 पाण्डव-दलहि योय्य यह आता।
 औरहु क्लीब जो कुरुदल कोऊ,
 पाण्डव-पक्ष जाहि द्रुत सोऊ!

सहेउँ सधैर्य विपुल मैं दम्भा ,
 लखहु होत अब समरारम्भा !”
 मुनि गरजे बल-प्रतिबल साथी ,
 प्रविशेउ स्वदल धर्म नरनाथा ।
 दोउ दिशि भट रोमाञ्च-उदञ्चित ,
 अचल चरण, पै चलित प्राण-चित ।

दोहा :— दीन्हैउ ताही क्षण क्षुभित , कुरुपति युद्ध-निदेश ,
 कीन्हैउ दुःशासन गरजि, पाण्डव-सैन्य प्रवेश । १०

सोरठा :—गर्जन व्यापि दिगंत, भीमहु बढे सदर्प इत ,
 वदन लयाग्नि-ज्वलंत, दष्ट ओष्ठ, आभील भ्रू ।

शंख असंख्य बजे इक संगी ,
 गोमुख, भेरी, मुरज, मृदंगा ।
 पत्ति-पाद-निःस्वन महि काँपी ,
 दिशि-दिशि तोत्र-सृणिन-ध्वनि व्यापी ।
 लक्ष-लक्ष हयगण हिह्नाने ,
 स्यंदन अयुत-अयुत घहराने ।
 दिग्दीर्घित अगण्य गज-वृंहण ,
 धावन-स्वन, घंटा-रव भीषण ।
 हत-तलत्र-ज्या-शब्द कठोरा ,
 गरजे क्रूर धनुष चहुँ ओरा ।
 शूरन-किलकिल, सिंह-निनादा ,
 बधिर श्रवण प्रतिगर्जन-नादा ।
 त्रिभुवन भरित समर-स्वर-भैरव ,
 धँसी धरणि जनु दीर्ण व्योम-रव ।
 बढे दोउ दल समर-समुद्यत ,
 वारिधि जनु युगान्ते-वातोद्धत ।

दोहा :— भयउ मध्य संघट्ट-जस, तुमुल घोर निषोष ,
 टकराने हिमशैल सह, जनु कुलशैल सरोष । ११

सोरठाः—बढ़ेउ वृकोदर-नाद, क्रम-क्रम जित-रण-रव सकल ,
दारुण युद्धोन्माद, उद्यत जनु रिपु-कुल-प्रलय ।

महिधर-शृंग शरीर विराटा ,
उत्तमांग पृथु, तुंग ललाटा ।
वज्र शैलहिम-शिला विशाला ,
उत्थित वाम हस्त तरु शाला
कर दक्षिण षट-कोण-भयंकर ,
गदा उदग्र अशनि-प्रलयंकर ।
वर्म लोहमय कण्ठत्राणा ,
कटि-तट क्रूर कराल कृपाणा ।
सजग भाल भीषण त्रय रेखा ,
अंकित मणिवँध धनु-किण-लेखा ।
द्विरद-दर्प, मृगराज-पराक्रम ,
व्याघ्र-क्रूरता, खगपति-गतिक्रम ।
निरखि भीम यम-वपु, सुनि गर्जन ,
शिथिल, विव्रस्त शत्रु हृत्कंपन ;
कुरुदल धँसे वृकोदर गाजी ,
बिनसे गदाघात गज, बाजी ।

बोहा :—हति रथि-सारथि, चूर्ण रथ, वेग प्रहार नृशंस ,
करत दक्ष-क्रतु कुद्ध जनु, वीरभद्र विध्वंस । १२
मदित अरि-बल-व्यूह-मुख, पाण्डव दल आह्लाद ,
धँसे सैन्य—सह शूरगण, करत भीम-जय नाद । १३

सोरठाः—लखि धाये रणधीर, कुद्ध धार्तराष्ट्रहु सकल ,
क्रम-क्रम सर्व प्रवीर, जुरे स्वपक्ष सहाय हित ।

सम-बल निज निज सुभटन पायी ,
रोपेउ द्वन्द्व युद्ध भयदायी ।
पार्थहिं पाय भीष्म ललकारा ,
धृष्टद्युम्न गुरु द्रोण प्रचारा ।

भिरे वीर सात्यकि-कृतवर्मा ,
 चेकितान-त्रिगतेश सुशर्मा ।
 धष्टकेतु-वाह्नीक महीशा ,
 सौभद्रहु-कोशल अवनीशा ।
 युद्धत नकुल संग दुश्शासन ,
 भूरिश्रवा-शंख रण भीषण ।
 सहदेवहु-दुर्मुख संग्रामा ,
 शूर शिखण्डी-अश्वत्थामा ।
 उत्तर-वीरबाहु समुहाने ,
 कुन्तिभोज-अनुविंद अरुभाने ।
 वीर अलंबुष राक्षस-नाथा ,
 संगर उग्र घटोत्कच साथा ।

दोहा :—भिरे भीम-कुरुपति कुपित, धर्मराज - मद्रेश ,
 बृहत्क्षत्र-आचार्य कृप, मगदत्तहु - मत्स्येश । १४
 श्रुतकर्मा-काम्बोजपति, जयद्रथ - नृप पाञ्चाल ,
 इरावान अर्जुन सुवन, बली कलिङ्ग भुञ्जाल । १५

सौरठा :—भिरे पदाति-पदाति, वाजि-वाजि, गज-गज भिरे ,
 लहि समशक्ति अरात, रोपेउ दारुण द्रन्द रण ।
 बढेउ समर-उन्माद, क्रम क्रम बढ़ी करालता ,
 त्यक्त सर्व मर्याद, बधेउ जाहि जेहि जहँ लहेउ ।

पुत्र पितुहिं, पितु पुत्रहिं मारा ,
 बन्धु बन्धु पै कीन्ह प्रहारा ।
 पौत्र पितामहिं नहिं पहिचाना ,
 सुहृदहिं रहेउ सुहृद नहिं ध्याना ।
 विस्मृत सर्व मधुर सम्बन्धा ,
 भयेउ युद्ध विध्वंसक, अन्धा ।
 भिरे रथन सँग रथ कहँ आयी ,
 पथ अवरुद्ध, सकत नहिं जायी ।
 युद्धत कहँ मत्त मातंगा ,
 दंत-प्रहार छिन्न अंग-अंगा ।

हयारोहि कहुँ रथहि प्रचारहि ,
 धाय सवेग शूल हनि मारहि ।
 रथिहु बरसि शर सैन्य-प्रमाथी ,
 नासत रथ, पदाति, हय, हाथी ।
 धारि परश्वध पत्ति-वरूथा ,
 फिरत वधत रथि, हयगण यूथा ।

श्लोकाः—शक्ति, गदा, तोमर चलत, गिरत पदाति, सवार ,
 कातर हाहाकार कहुँ, कतहुँ महत जयकार । १६

गजारोहि निज गजहि प्रचारत ,
 बढि ढिग शत्रु मुशल हनि मारत ।
 मत्त द्विरद कहुँ दन्त बढ़ायी ,
 अश्वावारहि साश्व उठायी ।
 देहि पैवारि, गरजि पुनि धावहि ,
 पद विमर्दि, करि चूर्ण नसावहि ।
 कहुँ एकहि रण-दुर्मद वारण ,
 करत रथी रथ, सारथि मर्दन ।
 रथिहु देखि धावत मद वारण ,
 करत बरसि शर वार-निवारण ।
 सकहि न सहि गज बाण-प्रहारा ,
 भागत करत तीक्ष्ण चीत्कारा ।
 रौदत पदतल जाहि पदाती ,
 व्यथित लखहि नहि मीत अराती ।
 पतित कतहुँ गजपाल सतोमर ,
 कतहुँ सध्वज, सह-योद्धा कुंजर ।

श्लोकाः—उद्धरत सहसा त्यागि गज, कतहुँ कोउ हस्तीश ,
 गहि कच, खड्ग-प्रहार करि, छिन्न करत अरि-शीश । १७

हत-रथि-सारथि कहुँ कहुँ हयगण ,
 आहत, अस्त-व्यस्त लै स्यंदन ,

धावत अनियंत्रित समुहायी ,
चूर्ण विचूर्ण होत टकरायी ।
विरथ रथी कहुँ खड्ग उठायी ,
लुब्ध, बढ़त वारण-समुहायी ।
चढ़त द्विरद-रद कोउ रण-माता ,
गिरत काँपि तोमर-आघाता ।
भग्न-हृदय द्विप-दंत-प्रहारा ,
बमत रक्त कहुँ पतित जुभारा ।
धृत-उग्रायुध, युद्ध-मदोद्धत ,
धावत कतहुँ पत्ति वध-उद्यत ।
कतहुँ गतायुध, तबहुँ सक्रोधा ,
युद्धत केवल भुज-बल योद्धा ,
हनत जानु, पद करतल घोरा ,
करत मुष्टिकाघात कठोरा ।

दोहा :—गहि कच कर्षत एक इक, करि करि केहरि-घोष ,
युद्धत नख-दंतन मनुज, श्वापद मनहुँ सरोष ! १८
पहुँचे दिनपति मध्य-नभ, होत समर अविराम ,
धँसे तबहिं पाण्डव-अनी, सरिसुत विक्रम-धाम । १९

सोरठा :—सित तनुत्र धृत अंग, उच्चमाङ्ग उष्णीष सित ,
स्यंदन सितहि तुरङ्ग, उदित दिवाकर जनु अपर ।

रथ-संघात महीतल अवनत ,
धावत मनहुँ पराक्रम-पर्वत ।
बादत शंख, निनाद विभीषण ,
गरजे जनु शत केहरि कानन ।
नेमि-निनाद, धनुष-टंकारा ,
घन जनु नभ सबअ भंकारा ।
बरसे तीव्र तड़ित-गति बाणा ,
प्रसरित वसुधा-व्योम विताना ।
बिनसे विपुल वीर, नृप-नंदन ,
हस्ती, पत्ति, तुरङ्गम, स्यंदन ।

बद्धत जो पुरुषसिंह - समुहायी ,
शर-संपात होत महिशायी ।
आहत विशिख तीक्ष्ण अनियारे ,
क्षत्रिय रक्त समुक्षित सारे ।
अयुत काश्य, पाञ्चाल, चैद्यगण ,
जरे भीष्म शर-जाल-हुताशन ।

शोहा :— एकहि एक पुकारि, मिलि, धावत सरिसुत ओर ,
गिरत धनुष कहूँ, शूर कहूँ, निहत अशनि-शरघोर । २०

सोरठा :— निरखि स्वदल अभिमन्यु, विकल पितामह-शर-अनल ,
सहज विवर्धित मन्यु, बड़े रथस्थित, हस्त-धनु ।

लखेउ सविस्मय शान्तनु-नंदन ,
आवत कर्णिकार-ध्वज स्यंदन ।
वर्ष षष्ठ-दश पार्थ-कुमारा ,
तबहुँ प्रांशु तनु हरि-आकारा ।
श्याम देह-द्युति, दृग रतनारे ,
हलधर-दत्त धनुष कर धारे ।
यदु-भारत दोउ वंश-प्रजाता ,
महि जनु क्षात्र-तेज साक्षाता ।
लखि निज सन्मुख वीर-प्रवाला ,
कुल-गौरव गाङ्गेय विहाला ।
महाशंख उत कुँवर बजावा ,
मही-व्योम मौर्वी-रव छावा ।
प्रेरे त्वरित धनुष विस्फारी ,
शर त्रय आशीविष-अनुहारी ।
सके निवारि न कुरुकुल-नायक ,
लागे भाल शिला-शित सायक ।

शोहा :— बंधुर विद्ध कुमार-शर, तुझ पितामह-भाल ,
शोभित मनहुँ त्रिशूळ-धृत, स्वर्ण सुमेरु विशाल । २१

सोरठा:—अचल भीष्म धनुमान, अधर प्रस्फुरित हात-रिस ,
धरे शरासन बाण, जनु ज्वलंत पावक-प्रभा ।

तजे धनुष ते कर्षि कर्ण तक ,
धाये अन्तराल जनु अन्तक ।
आवत उग्र भीष्म-इषु देखे ,
तृण-समान फाल्गुन-सुत लेखे ।
जुर सपक्ष पल लागत प्रेरे ,
कटे मध्य शर सरिसुत केरे ।
लखत अदृश्य अमर आयोधन ,
गँजेउ 'साधु ! साधु !' नभ निःस्वन ।
विस्मित कौरव-वाहिनि सारी ,
पाण्डव-ध्वजनि हर्ष-ध्वनि भारी ।
जानि महारथि-संग निज संगर ,
लज्जित भीष्महु, रोष तीव्रतर ।
करत पौत्र-आत्मज पै धावा ,
शर-वर्षण शिशु-स्यंदन छावा ।
लखि सरिसुवन-सत्व उत्कर्षा ,
बढ़ेउ मृगेश-किशोर-अमर्षा ।

दोहा :— लहरत लखि गाङ्गेय-ध्वज, कौरव-दर्प प्रतीक ,
तजेउ आज्ञालिक तीव्रतम, पार्थ-पुत्र निर्भीक । २२

सोरठा:—पञ्च - ताल - आकार, छिन्न ताल-तरु-चिह्न ध्वज ,
कुरुदल ह्यहाकार, हत अतिरथि जनु कोउ रण ।
तेहि क्षण इत मत्स्येश, सहित श्वेत उत्तर सुवन ,
उत शल्यहु मद्रेश, धाये सह सुत रुक्मरथ ।

जात पितामह दिशि , अवलोका ,
शल्य मत्स्य-महिपति पथ रोका ।
पाटल पुष्प-वर्ण नृप हय-गण ,
भेदे मद्रनाथ नाराचन ।

उत्तर कुँवर रुद्ध लखि पितु-गति,
प्रेरेउ गज निज मद्रप-रथ प्रति ।
अंकुश-आहत धायेउ कुञ्जर,
जनु सपत्त ज्या-मुक्त जवन शर ।
आवत निरखि नगेन्द्र समाना,
हने अगण्य मद्रपति बाणा ।
करि नहिँ सके करीन्द्र निवारण,
पहुँचेउ निकट विकट रण-वारण ।
धरि उद्धत पद सहसा स्यंदन,
लागेउ करन तुरंगम मर्दन ।
तबहुँ अकातर मद्र-नृपाला,
गही हस्त निज शक्ति कराला ।

दोहा :—त्रिपताका वक्रित भृकुटि, हग संरक्त अँगार,
त्यागी तड़पत मद्रपति, ताकि विराट-कुमार । २३
तजि घन निकसी जनु ताड़त, दारण गिरिहु समर्थ,
लागी उत्तर-अँग प्रबल, महाशक्ति अव्यर्थ । २४

सोरठा :—दीर्घ लोह तनुत्राण, सृणि, तोमर कर ते खसे,
गिरेउ कुँवर निष्प्राण, अशनि-भग्न जनु द्रुम तरुण ।

पाण्डव-दल उत कातर निखन,
उद्धरे मद्रप इत तजि स्यंदन ।
खड्ग-हस्त हुँकरत प्रचण्डा,
हनि द्विप-शुण्ड क्रीन्दि युग खण्डा ।
पूर्वहि शर-सहस्र तनु निकृत,
गिरेउ भूमि गज मनहुँ महीभूत ।
मृत द्विपेन्द्र इत करत आर्त्त स्वन,
चढ़े शल्य उत आत्मज-स्यंदन ।
उत्तर-अग्रज श्वेत कुमारा,
शयित समर महि अनुज निहारा ।
सुखासीन पुनि अरि अवलोका,
नख-शिख गात रोष, गत शोका ।

महाबाहु, अोजस्वि, मनस्वी,
 अगणित युद्ध-विदग्ध, यशस्वी,
 शक्रायुधसम कार्मुक कर्षी,
 बड़ेउ वीर मद्रेश-वधैषी ।

दोहा :—लखि पितु-रक्तक रुक्मरथ, हनेउ श्वेत शर घोर,
 छिन्न उरश्छद, भिन्न अंग, मूर्छित मद्र-किशोर । २५

सोरठा :—प्रेषी उल्का-कल्प, शूल शल्य रिस-प्रज्वलित,
 लाघव प्रकटि अनल्प, काटी पथहि विराट-मुत ।
 भट बहु बड़े सदाप, मद्रप संकट-प्रस्त लखि,
 काटि सबन शर चाप, समर-विमुख कीन्हें कुँवर ।

लखे पितामह मद्र-अधीश्वर,
 दारुण मृत्यु-दंष्ट्र अभ्यन्तर ।
 दूरहि ते अमोघ शर प्रेरी,
 काटी मौर्वि श्वेत-धनु केरी ।
 धाय बहुरि श्वेतहि समुहायी,
 लीन्ह मद्रपति ससुत बचायी ।
 कुँवरहु अन्य धनुष कर धारा,
 प्रेषे सरुष विशिख दुर्वारा ।
 बरसे भीष्महु बाण प्रज्वलित,
 तेज-पुञ्ज महि-व्योम पिञ्जरित ।
 विस्मित लखेउ उभय दल योद्धन,
 सरिसुत-श्वेत क्रूर आयोधन ।
 उद्धत दोउ महा द्विरदोपम,
 क्रोधित, हिंसा-हृदय व्याघ्र सम ।
 उद्धत वासव-वृत्र समाना,
 रुधिर-प्रदिग्ध, विद्ध अंग बाणा ।

दोहा :—भयेउ श्वेत जस जस प्रबल, बड़ेउ भीष्म हत्ताप,
 लखि यश-क्षय रण हीन-सँग, प्रकटेउ पूर्ण प्रताप । २६

दोहा :—वेगवंत बरसेउ विपुल, विमल भल्ल शर-जाल ,
वधे श्वेत-हय, सारथी, ध्वंसी ग्वजा विशाल । २७

सोरठा :—तजि स्यंदन अव्यय, कूदेउ बली विराट-सुत ,
धत कर शक्ति उदय, अचल निदरि अरिदल निखिल ।

भाषेउ शान्तनु-सुतहिं प्रचारी—
“प्रकटहु पौरुष यश-अनुहारी !”
अस कहि घोर, काल-दण्डोपम ,
तजी मत्स्य-सुत शक्ति सविक्रम ।
गवनी अंतराल विकराला ,
कुरुदल सकल बिलोकि विहाला ।
काल कराल सबहिं निज लागी ,
धृति नहि एक देवव्रत त्यागी ।
धारि अष्ट शर चाप प्रचण्डा ,
आवति शक्ति कीन्हि अठ खण्डा ।
प्रमुदित लखि विपत्ति विनिवारण ,
उत्थित कुरुदल आनंद निःश्वन ।
क्रोध-अंध इत मत्स्य-किशोरा ,
लै निज हस्त गदा अति घोरा ।
धारि शिक्य रणघोर चलायी ,
वज्र-भयंकर गर्जत धायी ।

दोहा :—कूदे रथ ते भीष्म लखि, आवत आयुध क्रूर ,
गदाघात स्यंदन सहित, अश्व, सारथी चूर । २८-

करत पार्थ-संग द्रोण घोर रण ,
विरथ बिलोके शान्तनु-नंदन ।
वायु-वेग गुरु रथ दौड़ावा ,
स्यन्दन निज सरिसुत बैठावा ।
प्रेरेउ तेहि दिशि हरिहु पार्थ-रथ ,
रोधेउ पै पथ द्रोण, जयद्रथ ।

लज्जित भीष्महु क्रोध-विहाला ,
व्याप्त रौद्र-रस वपु विकराला ।
वृत्ताकार शरासन धारे ,
बरसत भीषण बाण-अंगारे ।
बढ़त करन जो श्वेत-सहायी ,
होत विमुख शर दारुण खायी ।
छिन्न-भिन्न रथि, पत्ति-वरूथा ,
केहरि-क्रान्त मनहुँ करि-यूथा ।
रहेउ क्षेत्र इक श्वेत वीरवर ,
मनहुँ स्वयूथ-भ्रष्ट वन-कुञ्जर ।

दोहा :—गदा, शक्ति, स्यंदन-रहित, तनु क्षत-रक्त कराल ,
बढ़ेउ कुँवर गहि काल सम, हस्त शेष करवाल । २६
भीष्म पितामहु ताहि क्षण, शित ब्रह्मास्त्र समान ,
अभिमंत्रित त्यागेउ प्रबल, अन्तर्भेदी बाण । २७

सोरठा :—डगमग वीर-वरिष्ठ, दीर्घ हृदय तनुत्राण सह ,
गिरेउ मेदिनी-पृष्ठ, भीष्म-प्रतापानल-शालभ ।

क्षुब्ध पार्थ यदुनाथ दुखारे ,
बाजे कुरुदल शंख नगारे ।
कीन्ह भीष्म-जय-नाद सुयोधन ,
नाचेउ हर्ष-मत्त दुश्शासन ,
शंख तृतीय विराट कुमारा ,
श्वेत समान शौर्य-आगारा ।
बढ़ेउ भीष्म दिशि जस धनु तानी ,
भाषी शल्य विहँसि विष-वाणी—
“नव विराट-पाण्डव सम्बंधा ,
होत प्रणय नव संतत अंधा ।
उचित तदपि नहिँ प्रथमहि दिन रण ,
करव समूल वंश उच्छेदन !”
सुनि, निज शोकावेग सँभारी ,
गिरा सदर्प विराट उचारी—

“स्वार्थ-निरत तुम नीच मद्रजन ,
करहु न नेह-नाम उच्चारण ।

दोहा :—सकत जानि सो का प्रणय, जियत जो द्रव्य उपासि ,
दीन्ही पाण्डुहि तुम भगिनि, लै अपार धन-राशि । ३१

प्रणय-हेतु नहिं परिणय जैसे ,
युद्धहु धर्म-हेतु नहिं तैसे ।
युद्ध-जीव, निष्ठुर, हत्यारे ,
भरत उदर तुम शस्त्र-सहारे ।
देत अधिक धन तुम तेहि लागी ,
युद्धत धर्म, नीति नय त्यागी ।
गुनि निज मातुल धर्मनरेशा ,
पठयेउ रण हित तुमहि सँदेश ।
पाय सुयोधन-धन पथ माहीं ,
लाजे तजत स्वजन निज नाहीं ।
करि तुम सोइ पुत्र अवसादा ,
सिखवत मोहिं प्रेम-मर्यादा ।
जानत रण परिणय-परचाता ,
जोरेउ हम पाण्डव-सँग नाता ।
मोहि न सुवन-निधन पछितावा ,
यश तिन अमर समर-महि पावा ।

दोहा :—शोच्य न मम सुत, शोच्य तुम, समर शृगाल समान ,
गाह शान्तनु-नंदन शरण, रच्छे पामर प्राण ।” ३२

सुनी मद्रपति दारुण बाणी ,
रोष-तरंगिणि तनु लहरानी ।
गरजी शिञ्जिनि दर्प-विमर्दित ,
सिहनाद •रण-मही निनादित ।
देत विराटहि रण-आमंत्रण ,
धाये शल्य करत शर-वर्षण ।

मत्स्य-नरेशदु शर धनु जोरा ,
 भयेउ युद्ध द्वैरथ अति घोरा ।
 उत करि विरथ शंख सरिनंदन ,
 बधत फिरत पाञ्चाल, चैद्यगण ।
 शोभित धनुष मण्डलाकारा ,
 बरसत बाण प्रलय-जल-धारा ।
 फाल्गुन पुनि पुनि तेहि दिशि धावत ,
 रोधत द्रौणि बढन नहिं पावत ।
 गुरु-आभिज-वध-भीरु धनंजय ,
 सकुचत, करत प्रहार न निर्दय ।

बोद्धा :—सखा-हृदय पहिचानि हरि, लखि पुनि संध्याकाल ,
 फेरी रण ते सैन्य निज, विकल भीष्म-शर-जाल । ३३

सोरठा :—करि जनु शोणित-पान, शोण वर्ण पश्चिम दिशा ,
 भयेउ दिवस-अवसान, रण-अवसानहु ताहिच्छण ।
 पाण्डव सैन्य विषाद, उत्तर श्वेत कुमार हित ,
 नभ-भेदी जयनाद, गूजेउ कौरव-बाहिनी ।

लै पुनि साथ रणाहत वीरन ,
 प्रविशे दोउ दल निज निज शिविरन ।
 कीन्ह चिकित्सकगण उपचारा ,
 भे विशल्य गज, वाजि, जुम्भारा ।
 तैल-प्रसिक्त क्षौम-पट जारी ,
 भरी भस्म ब्रण-पूरनहारी ।
 बहुरि निमज्जन, भोजन-पाना ,
 स्वस्ति-पाठ, द्विज-वृन्दन दाना ।
 मिलन, समर-हत-शूर-संस्मरण ,
 मागध, बंदी, सूत-संस्तवन ।
 ऋतु हेमन्त, यामिनी शीतल ,
 सैनिक बारि काष्ठ-क्षुण तरुतल ,
 निवसि चतुर्दिक स्वस्थ, सदापा ,
 करत बरनि रण वीरालापा ।

रक्त सोष्म, उत्साह-तरंगा ,
रचत स्वाँग बहु विधि रस-रंगा ।

दोहा :—नृत्य, गीत, वादित्र-ध्वनि, कौरव शिविर हुलास ,
पाण्डव शिविरन शोक कहूँ, कतहुँ रोष उच्छ्वास । ३४

फिरत प्रशान्त वदन यदुनन्दन ,
वितरत शिविर-शिविर आश्वासन ।
सुधा-स्त्रावि वदनेन्दु निहारी ,
आहत व्यथा बिसारि सुखारी ।
सुनि हरि-मुख मृत सुन-रण-वक्रम ,
विरमत गर्वित मातु-अश्रु-क्रम ।
दै कहूँ धैर्य, कतहुँ दै ज्ञाना ,
कहुँ अनुराग, कतहुँ सन्माना ,
नेहस्निग्ध कतहुँ दै चितवनि ,
भरत मुमूर्षु प्राण संजीवनि ।
यहि विधि बरसत हर्ष शिविर प्रति ,
गवने भीम-निवेश वृष्णिपति ।
दूरहि ते निरखे यदुरायी ,
विमन वृकोदर शय्याशायी ।
श्वास तीव्र, दृग अरुण, प्रजागर ,
भृकुटि कोप वक्रित, रुधिराधर ,

दोहा :—बसत कबहुँ उन्मत्त जनु, जानु-उभय शिर धारि ,
उठत कबहुँ भीजित करन, कुरुपति-नाम पुकारि । ३५

स्वाभिमान वीरेन्द्र अधीरा ,
तन मन व्याप्त पराभव-पीरा ।
रोषानल-हिम गुनि जल बाणी ,
प्रविशे शिविर न सारंगपाणी ।
तजि धधकत आग्नेय पहारा ,
विहँसत निज निवेश पगु धारा ।

विधु एकादशि व्योम विलोका ,
 रजतोज्ज्वल, शीतल आलोका ।
 लै प्रोत्फुल्ल सुमन दल परिमल ,
 भ्रमत प्रभत्त अनिल वन शीतल ।
 विमल हिरण्यवती सरि तीरा ,
 प्रविशे यदुपति निभूत कुटीरा ।
 दीप सुगंधित हेमाधारा ,
 करत सुवास, प्रकाश प्रसारा ।
 हंस-तूल-शय्या सुख-धामा ;
 शयित श्याम त्रिभुवन-विश्रामा

दोहा :—कुरु-शिविरन जय ध्वनि जबहिं, प्रविशत श्रुति पथ आय ,
 शयितहु हरि विद्रुम अधर, उठत कछुक मुसकाय । ३६

सोरठा :—उदित व्योम पुनि भानु, निहत शरांशु अराति-न्तम ,
 भीषण ज्वलित कृशानु, कुरुक्षेत्र रण-महि बहुरि ।

निशि धूमायित ज्वाला अन्तर ,
 फूटी भभकि प्रभात भयंकर ।
 समरारंभ-पटह जस बाजे ,
 धँसि रिपु-सैन्य वृकोदर गाजे ।
 हति अगणित रथ, हय, पादाता ,
 नृपति केतुमत समर निपाता ।
 पुनि कलिङ्ग-युवराज भानुमत ,
 बधेउ सबंधु भीम युद्धोद्धत ।
 कुपित श्रुतायु कलिङ्ग-मुआला ,
 घेरेउ लै द्विप-दल विकराला ।
 चुब्ध भीम तजि कार्मुक, स्यंदन ,
 कूदे खड्ग-पाणि रण-प्राङ्गण ।
 काटे कुंभ, शुण्ड, पद, दंता ,
 व्याप्त द्विरद-चिग्घातु दिगन्ता ।
 कीन्ह भीम सुर-दुष्कर करनी ,
 कीर्ण हताहत वारण धरणी ।

दोहा :— द्विरद - रुधिर - मेदा - वसा, दिग्ध देह विकराल ,
लखत निखिल कुरुदल बधेउ, बली कलिङ्ग भुआल । ३७
भीम-बाह-पंजर परेउ, समर-मही जो कोय ,
रोषानल-ज्वाला जरेउ, फिरेउ शिविर नहि सोय । ३८

सोरठा :— यहि विधि नित्य प्रभात, कौरव पाण्डव दोउ दल ,
करत घात-प्रतिघात, प्रेरित प्रतिहिंसा प्रबल ।
बधेउ द्रोण सक्रोध, जबहिं शंख मत्स्येन्द्र-सुत ,
लीन्ह भीम प्रतिशोध, धार्तराष्ट्र वधि पञ्च-दश ।

दिवस अष्ट युद्धत जब कुरुपति ,
खोये समर अनुज द्वय-विशति ।
विगत गीत, गोष्ठी परिहासा ,
हृदय विषण्ण, शिथिल जय-आशा ।
सकेउ न धारि हृदय दुख-भारा ,
कर्ण सुहृद निशि शिविर हँकारा ।
बाष्प-वारि-परिस्त्रावित लोचन ,
समर-वृत्त सब कहेउ सुयोधन ।
वक्रित ओष्ठ सुनत वैकर्तन ,
कीन्हेउ पुनि सोइ निष्ठुर जल्पन—
“आजीवन तुम मोहिं सन्माना ,
सदा शौर्य मम स्वमुख बखाना ।
पै जब सहस मनोरथ-प्रार्थित ,
अरि-वध अवसर भयेउ उपस्थित ।
वज्र-पात तुम मम शिर कीन्हा ,
अधिनोयक-पद भीष्महिं दीन्हा ।

दोहा :— शीश पलित, साहस गलित, लुप्त सत्त्व, कर्तृत्व ,
संधि-उपासक-हस्त • तुम, सौपेउ रण-नेतृत्व । ३९

सहेउँ सोउ, प्रकटेउँ नहिं रोषा ,
भयेउ तबहुं नहिं भीष्महिं तोषा ।

निखिल शूर, सेनानिन-सन्मुख,
 कहे अवाच्य अनेकन दुर्मुख ।
 तुम अकाण्ड-ताण्डव तेहि माना,
 मैं सरिसुवन-हृदय पहिचाना ।
 जदपि प्रकट अब सबहि कुनीती,
 समुक्त एक न तुम वश प्रीती ।
 वृत्ति न शान्तनु-सुत निज त्यागी,
 रण-मिस अबहुँ संधि-अनुरागी ।
 धर सोइ उर भाव धनंजय,
 दोड मिलि रचत नित्य रण-अभिनय ।
 पै कुरु-शोणित-वृषित वृकोदर,
 नासत नित्य तुम्हार सहोदर ।
 हत वैराट, न पाण्डव आकुल,
 हत कुरु-बान्धव, क्रन्दन कुरुकुल ।

बोद्धाः — सोचत शान्तनु-सुत हृदय, अनुजन रच्छन काज,
 अंत संधि करिहै विवश, तजि आयध कुरुराज । ५०

क्लीब-भाव यह तुमहि न भावा,
 ताते रण हित मोहि बोलावा ।
 पै जब लगि सरिसुत अधिनायक,
 धरिहौ व्यर्थ न मैं धनु सायक ।
 नृप हित मुनिन नीति यह भाखी,
 चलाहि प्रतीति एक पै राखी ।
 प्रिय-अप्रिय नहिं काहुहि मानहि,
 साधहि ध्येय जो तेहि सन्मानहि ।
 संधि बसति जो उर कुरुनंदन !
 सकत साधि सरिसुतहि प्रयोजन ।
 पै जो चहत शत्रु-संहारा,
 धरहु समस्त शीश मम भारा ।
 निष्ठुर समर-कर्म अति ताता !
 गणय तहाँ नहिं नेह, न नाता ।

क्षमा-दया-अविषय समरस्थल ,
मिलत तहाँ तत्काल चूक-फल ।

दोहा :—दड़ करि ताते निज हृदय, अबहि भीष्म दिग जाय ,
करहु तिनहि रण ते विरत, काहु भाँति समुझाय । ४१
विरमेउ कुरु-कुल-तरु-परशु, दंभ-दिग्ध राधेय ,
सुने सुयोधन जनु वचन, सुधा श्रवण-पुट-पेय । ४२

सोरठा :—अविवेकी कुरुराज, कृत-निश्चय ताही समय ,
परिवृत स्वजन समाज, गवनेउ भीष्म-निवेश दिशि ।

गवने सँग-सँग रक्षण-लागी ,
अनुज-वृन्द, क्षितिपहु अनुरागी ।
धारि प्रज्वलित उल्का हाथा ,
गवने शत-शत भृत्यहु साथी ।
परिवेष्टित परिखा, प्राकारा ,
योजन पञ्च निवेश-प्रसारा ।
महा शिविर जनु दुर्ग महाना ,
बिच बिच हाट, बाट, उद्याना ।
सैनिक नाना देश-निवासी ,
विविध वेष, बहु भाषा-भाषी ।
बहु शिल्पी, रथकार, चिकित्सक ,
वणिक्, गुप्तचर, वार्ता-वाहक ,
मागध, बंदो, सूत, विप्रजन ,
दर्शक, भिक्षुक, सेवक-परिजन ।
गवन्त पथ विलोकि कुरुनंदन ,
जुरत, करत मिलि जय-ध्वनि, बंदन ।

दोहा :—स्वीकारत कुरुपति नमन, जय-रव सुनत अशेष ,
पद-पद वधित मृद सहज, प्रविशेउ भीष्म-निवेश । ४३

अवलोके सरि-सुवन सुयोधन ,
मृत द्रोण गुरु-सँग संभाषण ।

बक्ष बाहु अगणित ब्रण-रेखा,
 जनु तनु लिखित राम-रण-लेखा !
 परिणत वयसहु वपु मन-भावन,
 गिरा अमर-सरि-धारा पावन ।
 हृदय दया-द्रव-पारावारा,
 भाद्र-वारिधर हस्त उदारा ।
 निखिल शास्त्र-अवगाह-विमल मन,
 शौर्य, धैर्य, गाम्भीर्य-निकेतन ।
 जित कामार्थ, परार्थ-उपासी,
 मृत्युहु बसति जासु बनि दासी ।
 लखि सन्मुख जनु नर-तनु दिनमणि,
 हत-प्रभ कुरुपति क्षुद्र कीटमणि ।
 व्यापेउ उर अनुभाव-प्रभावा,
 गत क्षणैक-उच्छृंखल भावा ।

दोहा :—बंदि भीष्म, गुरु-पद बसेउ, हेमासन कुरुराज,
 पूछेउ शंकित सरि-सुवन, निशि नृप-आवन-काज । ४४

भरि उर साहस, ललित विलोचन,
 कहे वचन दुर्वृत्त सुयोधन—
 “जीते समर परशुधर आपू,
 व्याप्त भुवन-त्रय तात-प्रतःपू ।
 चहहु तौ सकहु नाथ ! करि शर-बल,
 धरा पयोधि, पयोधि, मरुस्थल !
 समर तुम्हार बाहु-बल पायी,
 सकहुँ सवासव सुरहु हरायी ।
 तूल-सदृश पाण्डव, पाञ्चाला,
 सकत कि सहि प्रभु-विक्रम ज्वाला ?
 तोहि पै एकादश अक्षौहिणि,
 दारुण मम बाहिनि लय-कारिणि ।
 अछत नाथ, समरहु-संभारा,
 छीजत नित कुरुवंश हमारा !

गर्जत धंसि मम सैन्य वृकोदर,
अभय निपातत नित्य सहोदर ।
यह असह्य, विनवत अब दासा,
रच्छहु कुरुकुल करि झरिनाशा ।

दोहा :—पै जो पाण्डव-प्रीति-वश, उठत हाथ नहि तात !
कर्ण-शीश रण-भार तौ, आपुहि धरहु प्रभात ।” ४५

नाटक कपट, मधुर प्रस्तावन,
भरत-वाक्य सुनि भीष्म भयावन ।
लोक-हृदय-विद् मन निज जाना,
भीषण होन चहत अपमाना ।
मंद बुद्धि, राधेय-पठावा,
मम पद हरण हेतु शठ आवा ।
वाक्य-शल्य मर्मस्थल लागा,
मन्यु-कृशानु घोर उर जागा ।
कम्पित तनु जनु शैल समूला,
शिथिल शीश उष्णीष-दुकूला ।
पृथुल ललाट भृकुटि विकराला,
आनन प्रकट स्वेद-कण-जाला ।
शोण दृगन उवलिताग्नि विभासा,
जनु मरु-मरुत तप्त निःश्वासा ।
दष्ट रदच्छद शोणित-शीकर,
विकृत आकृति प्रकृति-मनोहर ।

दोहा :—क्रोध-दग्ध सर्वाङ्ग पै, शान्तनु-सुत गम्भीर,
रहे मौन धृति-धैर्य-मति, प्रियत मनहुँ उर पीर । ४६

लखे द्रोण, सरिसुत अपमानित,
शून्य, सुप्त, मैनु छलित, विलक्षित ।
भयेउ असह्य मान्य-अपमाना,
हृदय जुब्ध, संवृति अवसाना ।

लोचन-ज्वाल खलहिं जनु जारी ,
गिरा क्रुद्ध आचार्य उचारी—
“जदपि आजु तुम जन-धन-स्वामी ,
हम आश्रित, सेवक, अनुगामी ,
तदपि नृपोचित तजि आचारा ,
सकत न करि तुम स्वेच्छाचारा ।
बिसरेउ तुमहिं लहत नृप-महिमा ,
निज क्षुद्रत्व, पितामह-गरिमा ।
हरन हेतु तुम जो सिंहासन ,
करत रहत अघ नित्य अनेकन ,
सोइ प्रकटि पितु-पद-अनुरागा ,
भीष्म विमातु-तनय-हित त्यागा ।

दोहा :—ब्रह्मचर्य नहिं जो गहत, जन्मत नहिं धृतराष्ट्र ,
जन्मत नहिं दुर्योधनहु, कहाँ तासु महि-राष्ट्र ! ४७

लहि उच्छिष्ट जासु नरनाहा ,
ताहि नृपत्व बतावत काहा ?
धरि तुम शीश चरण, करि कदन ,
कीन्हे अधिनायक सरि-नंदन ,
सोइ तुम धृष्ट आजु अस आयी ।
चहत हरन पद लाज विहायी ।
कहहु भये तुम रण-पट्ट कबते ?
कब-कब, कहाँ-कहाँ रण जीते ?
कहँ उपजेउ यह बुद्धि-विकारा ,
लागे तूल जो पाण्डु-कुमारा ?
कहहुँ प्रीति, भीतिहु उर नाहीं—
‘जेय न पार्थ द्विरथ-रण माहीं ।’
पै लघु सैन्यहि पाण्डव-पासा ,
करत सयत्न तासु हर्म नाशा ।
बधत बरसि सरि-सुत शर-धारा ,
शूर सहस दस प्रण-अनुसारा ।

दोहा :— छीजत जइहैं नित्य जो, जन-वाहन यहि भाँति ,
एक दिवस तजिहैं समर, विरहित-सैन्य अराति । ४८

यहि विधि जब तुम्हारि जय-लागी ,
दत्तचित्त सरि-सुत अनुरागी ।
तुम कृतघ्न राधेय-सिखाये ,
करि अपमान हरन पद आये ।
बाल-बुद्धि जो दुर्जन-चेरा ,
कहत करत संतत पर-प्रेरा ,
चित्तवृत्ति नहि निश्चत जासू—
भय-प्रद सदा प्रसादहु तासू ।
राखहु समुझि तदपि मन माहीं ,
अर्थ-दास द्विज-सुत मैं नाहीं ।
लहि गुण-ग्राहक भीष्म-सनेहा ,
निबसेउँ सत्कृत कुरुजन-गेहा ।
पै राधेय-अधीन रणाङ्गण ,
करिहैं द्रोण न एक क्षणहु रण ।
कृपाचार्य अरु अश्वत्थामा ,
तजिहैं दोउ मम सँग संग्रामा ।

दोहा :— दुर्नय-पद नहि सुकि सकत, भरद्वाज-सुत माथ ,
जहँ सरिसुत तहँ द्रोण-कुल, समुझू मूढ़ कुरुनाथ !” ४९

कही द्रोण गुरु दारुण वाणी ,
सुनी उपेक्षि प्रथम अभिमानी ।
बहुरि रोष, पुनि संशय व्यापा ,
अन्तिम वाक्य सुनत उर काँपा ।
टूटेउ मनेहुँ विपत्ति-पहारा ,
ढहेउ समर-आयोजन सारा ।
सर्वनाश-भय, मिथ्याचारी ,
पलटि अन्य माया विस्तारी ।
असफल निज विलोकि आघाता ,
करत सतत दुर्जन प्रणिपाता ।

गहे पितामह-पद बिलखायी—

“छमहु बाल गुनि मोरि ठिठायी ।
बंधु-निधन-दुख-दग्ध हृदय चित ,
भाषे वचन अशोभन अनुचित ।
समुक्ति दोष मन शोक-प्रजाता ,
रोष बिहाय द्रवहु पुनि ताता !

दोहा :— प्रसूत-प्रसूयि, आश्रित-दयित, मृदु उर, विगत विकार,
लखन चहत यह दास पुनि, वदन प्रसन्न तुम्हार !” ५०

यहि विधि कुरुपति विविध विधाना ,
ताने प्रस्तुति-शब्द-प्रताना ।
कीन्हेउ पुनि पुनि आत्म-समर्पण ,
लहेउ न तोष तदपि सरि-नंदन ।
जस जस बुझी विषम रिस-आगी ,
हृदय-वेदना दारुण जागी ।
सुनि सुनि अनृत श्रवण उकताने ,
कैतव लखि लखि दृग पथराने ।
सञ्चित कुरुपति-पाप-कलापा ,
बनि विष आजुहि जनु तनु व्यापा ।
मस्तक महि नत, लोचन निश्चल ,
जीवन मनहुँ भार, महि मरुथल ।
शोकित, श्रान्त, परास्त, हताशा ,
जनु तजि मृत्यु न उर अभिलाषा ।
सिक्त प्रीति-रस द्रोणहु-बाणी ,
सकी न भरि मुद, हरि उर-ग्लानी ।

दोहा :— एकहि बार उठाय दृग, कहेउ कुरुपतिहि-“तात !
चहत जौन विधितुम समर, लखिहौ होत प्रभात !” ५१
चकित सुसोधन सुनि गिरा , गवनेउ शिविर प्रसन्न ,
गवने गुरुहु निवेश निज, निदती मन पर-अन्न । ५२

सोरठा :— शान्तनु-सुत उच्चिद्र, यापी यामिनि काहु विधि ,
विरचेउ प्रात अच्चिद्र, व्यूह स तोभद्र रण ।

बाजे जस पाण्डव-पणवानक,
 बाजेउ सरिसुत-शंख भयानक ।
 मनहुँ युगान्त वज्र शत कड़के,
 हय-गाय सभय, धीर-हिय धरके ।
 क्लान्त शत्रु-दल, वदन मलीना,
 शूर, शिथिल-भुज, सत्त्व-विहीना ।
 विकल चित्त, दृग-तल अँधियारा,
 भ्रमत मनहुँ महि, विटप, पहारा ।
 नव बल कौरव-कण्ठन पावा,
 जय-रव उर्वी व्योम-कँपावा ।
 बढेउ भीष्म-रथ अरि-दल ओरा,
 मुखर अश्व-खुर, प्रधि-स्वर घोरा ।
 हेमदण्ड-ध्वज नभ लहराना,
 चल जनु शृङ्ग सुमेरु महाना ।
 गरजेउ धनु अन्तक-आकारा,
 जनु लय-काल जलधि-हुँकारा ।

टोका :— बही शरासन ते बहुरि, शर-धारा लहराय,
 ढहेउ व्यूह, सहसा बहे, वैरि-वर्ग असहाय । ५३

पाण्डव-दलहि नित्य चढ़ि धावत,
 नित्य भीम कुरु-व्यूह नसावत ।
 ध्वस्त विपक्ष-व्यूह लखि आजू,
 मोद-मग्न कुरुजन, कुरुराजू ।
 हुलसेउ एक न द्रोण गुरुहि-मन,
 चिन्तित पुनि पुनि लखत सुहृद-तन ।
 निरखेउ गुरु-न रोष, निशि-शोका,
 अंग उमंग वदन आलोक ।
 निरपेक्षित निज-पर तन-प्राणा,
 नहिँ उर विजय-पराजय-ध्याना ।
 युद्ध-नीति कौशल विसराये,
 समर मरन-मारन ये आये !

समुष्मि मर्म गुरु द्रोण दुखारे ,
 दोउ कृप द्रौणि समीप हँकारे ।
 कहि—‘सयल रच्छहु सरि-नंदन ,
 अनुहरि सुहृद बढ़ायेहु स्यंदन ।

दोहा :— उत बरसाये सरि-सुवन, बाण प्रदीप्त अगण्य ,
 दावानल जनु प्रज्वलित, पाण्डव-सैन्य अरण्य । ५४

अंकित भीष्म-नाम स्वर्णाक्षर ,
 भरे अनवरत हेम-पुङ्ख शर !
 ज्योतिर्मय पाण्डव - चतुरंगा ,
 विद्युत-खचित मनहुँ रण-रंगा ,
 मोह-ग्रस्त प्रतिपन्न शूरगण ,
 चितवत कहूँ न दिखत सरिनंदन ।
 नेत्र उठाय लखत जेहि ओरा ,
 परत दृष्टि शर-जाल कठोरा ।
 वृन्त-विभिन्न प्रसून समाना ,
 होत छिन्न शिर लागत बाणा ।
 तजि गज गजारोहि, गजपाला ।
 गिरे शराहत, शिथिल, विहाला ।
 चेतन-विरहित सारथि आहत ,
 शोणित-परिलुत रथी कराहत ।
 नष्ट त्रिवेणु, अक्ष, युग, चाका ,
 कीर्ण किङ्किणी, ध्वस्त पताका ।

दोहा :— अविश्रान्त सरिसुत समर, मोघ न एकहु बाण ,
 हत हस्ती, पत्ती पतित, रथि; सादी निष्प्राण । ५५

मागध, चैद्य, काश्य, पाञ्चाला ,
 रथी, महारथि सकल विहाला ।
 तिल-तिल विद्ध शरन अनियारे ,
 श्रान्त भीम रथदण्ड-सहारे ।

क्षत-विक्षत आर्जुनि हत-चेतन,
 थित गहि हेम-परिष्कृत केतन ।
 आहत धृष्टद्युम्न अधिनायक,
 स्वस्त हस्त ते कामुक सायक ।
 शूर शिखण्डि, माद्रि-अंगजाता,
 दीर्ण मर्मथल, रक्तस्नाता ।
 खण्डित-चाप विराट भुआला,
 कवच-विहीन द्रुपद पाञ्चाला ।
 विरथ उत्तमौजा धनुधारी,
 हत-हय चेकितान पदचारी ।
 पञ्च दौपदी-सुत धनुमाना,
 मूर्छित मनहुँ कीन्ह विष-पाना ।

दोहा :— युद्धत काहू विधि अबहुँ, दुराधर्ष युयुधान,
 सरिसुत-विक्रम-वारिनिधि, अविचल द्वीप समान । ५६

परिचालत रण फाल्गुन-स्यंदन,
 पाण्डव-सैन्य लखी यदुनंदन ।
 महामत्स्य ते जनु टकरायी,
 भग्न वहित्र उदधि असहायी ।
 साभिप्राय अर्जुन-तन हेरा,
 स्यंदन त्वरित भीष्म-दिशि प्रेरा ।
 भयउ घोर रव जस रथ हाँका,
 उड़ी व्योम कपिराज पताका ।
 प्रविशे श्वेत अश्व दल माँहीं,
 उड़ि मानस जिजि हंस समाहीं ।
 रोधहि जब लंगि द्रोण धाय पथ,
 पहुँचेउ भीष्म-समीप पार्श्व रथ ।
 हुलसे सैनिक निरखत स्यंदन,
 शीत-प्रस्त जून जिमि रवि-दर्शन ।
 हरि-अर्जुन रण-अजिर विराजे,
 संध्या सँग रवि-शशि जनु राजे ।

दोहा — सम्मुख समरेच्छुक निरखि, कीर्तिमंत कौन्तेय,
द्योतित विक्रम-रस वदन, बरसे शर गाङ्गाय । ५७

बाण-वृष्टि पुनि सोइ घन-घोरा,
पावस-भरनि पार्थ-रव बोरा ।
छिपेउ स-वाजि, स-सारथि स्यंदन,
क्षण अदृश्य रण कुन्ती-नंदन ।
बिनु उद्वेग तबहुँ यदुरायी,
रहे काहु विधि वाजि-चलायी ।
रण-महि असहन-शील प्रहारा,
पार्थहु लुब्ध धनुष कर धारा ।
कर्षत शिखिनि शब्द भयंकर,
गरजे जनु पुष्कर प्रलयंकर ।
बरसे वज्र बाण विकराला,
बही व्योम कालानल ज्वाला ।
द्योतित पुनि समराङ्गण सारा,
रुद्ध सरितसुत-शर-संचारा ।
दिखेउ बहुरि यदुनाथ-वदन वर,
जलधर-रोध मुक्त जनु शशधर ।

दोहा :— भ्रान्त, भीत कुरुदल सकल, विरमेउ विजय-प्रलाप,
भयेउ न स्वल्पहु मंद पै, शान्तनु-सुवन प्रताप । ५८

अवलोकैउ पुनि बढ़त वीरवह,
तजे बाण सरि-सुवन भयावह ।
लागे कछु छुर विशिख सपत्ता,
वर्म-अरक्षित श्रीहरि-वत्ता ।
रक्त-सिक्त घनश्याम कलेवर,
औषस-राग-रक्त जनु जलधर ।
लखि अर्जुन-उर रोष प्रगाढ़ा,
भीषण बाण तूण ते काढ़ा ।
कर्णोपान्त कर्षि, तकि त्यागा,
स्मरत शिरस्त्र, शीश शर लागा ।

शोणित-परिस्फुट लखि सित कुंतल,
व्याकुल फाल्गुन, सलिल हृगंचल।
नाना बाल्यस्मृति मन कर्षा,
व्याप्त मोह, गत समर-अमर्षा।
'धिक ! धिक क्षात्र धर्म !' कहि निज मन,
लागे सहसा करन मृदुल रण।

श्लोकाः — उत ताडित शान्तनु-सुवन, भये अधिक विकराल,
अन्तराल घाये विशिख, मनहुँ फुफ्फरत व्याल । ५६

शिथिल पार्थ यदुनाथ निहारे,
हृदय क्रोध. हृगदल रतनारे।
तबहुँ संयमित रोष नरोत्तम,
हाँके नाना गतिन हयोत्तम।
केवल सारथि-कर्म सहारे,
सरित-सुवन-शर श्याम निवारे।
सारथि-रक्षित रथी निहारी,
झली सुयोधन, छिद्र-प्रहारी।
तै संग म्लेच्छ अनी अति घोरा,
घेरेउ हरि-पार्थहिं चहुँ ओरा।
अभिभावित लखि समर धनंजय,
पूर्ण पितामह-बाहु-बलोदय।
प्रमुख चैद्य पाञ्चाल प्रचारी,
बधे सुभट चुनि, नाम उचारी।
भीत पलायित निखिल बरूथा,
सुनि केहरि-स्वर जनु मृग-यूथा।

श्लोकाः — धिक्कारत, टेरत जदपि, सत्य-शौर्य युयुधान,
टिकेउ न सरिसुत-शर-परिधि, पै एकहु धनुमान । ६०

सोरठाः — इत निज रथ पै भीर, स्वदल पलायित उत लखेउ,
यदुपति क्रोध-अधीर, कूदे सहसा त्यागि रथ।

गर्जन-कम्पित शूर अशेषा,
 उठि गरजेउ जनु सुप्र मृगेशा।
 तनु श्यामल जनु विमल सरोवर,
 बाहु विशाल मृणाल मनोहर।
 रोष-दिनेश-रश्मि जनु पायी,
 विकसेउ चक्र-कमल कर आयी।
 विद्युत-सहस समर-महि द्योतित,
 लोल अनल जनु ज्वलित मण्डलित।
 निरखि क्षुरान्त-तीक्ष्ण दुर्दर्शन,
 काल-दूत सम चक्र सुदर्शन।
 भागे भीत म्लेच्छ अघ-राशी,
 जनु लखि सहस रश्मि तमराशी।
 विचलित सकल पलायित कुरुजन,
 अचल एक रण शान्तनु-नंदन।
 तिन दिशि रौद्र-वदन यदुरायी,
 बढे क्रद्ध पद धरणि कँपायी।

दोहा:— विद्युत-द्युति पट पल्लवित, नीरद-द्युति तनु श्याम,
 भरित पितामह भक्ति रस, भाषेउ करत प्रणाम— ६१
 ‘आवहु ! आवहु ! चक्रधर ! व्यक्त विभो ! भगवान !
 बघहु स्वकर भव-क्लेश-हर ! देहु मुक्ति, यश-दान ।’ ६२

चकित, भीति इत पार्थ अधीरा,
 तजि रथ धाय गहे यदुवीरा।
 करि बल पुनि पुनि रोकन चाहा,
 रुके न पै हरि, रोष अथाहा।
 कर्षेत पृथा-सुतहु निज साथी,
 बढे भीष्म दिशि हठि यदुनाथा।
 विकल विजय तब बाहु विहायी,
 विनय-वाणि पद प्रणत सुनायी—
 ‘छमहु ! छमहु ! मम मोह अशोभा,
 रोकहु जग-क्षय-क्षम यह क्षोभा।

बिनसहिं वरु पाण्डव रण माहीं ,
 उचित नाथ-प्रण-विलव नाहीं ।
 नव दिन प्रभु ! मोरेहि अपराधा ,
 हती पितामह सैन्य अबाधा ।
 प्रभु-पद शपथ करत प्रण घोरा ,
 करि हौं अब नित समर कठोरा ।

दोहा :—सकत निखिल अवसादि मै, अरि-कुल नाथ-प्रसाद ,
 विरमहु, रच्छहु मोर यश, निज वचनन-मर्याद ।” ६३

लखि प्रिय सुहृद प्रणत निज चरणा ,
 विनय-द्रवित हरि-अन्तःकरणा ।
 शपथ सुनत पुनि उर आश्वासन ,
 गलित रोष, मन प्रीत जनार्दन ।
 निरखि निवर्तित उत भगवाना ,
 सरिसुत-बदन-कमल कुँभिलाना ।
 अमृत-पात्र अधर लागि लायी ,
 पियत गयेउ जनु विधि ढरकायी !
 ज्वलित भीष्म-उर शोक-कृशानू ,
 दिशि पश्चिम अस्तोन्मुख भानू ।
 इत कुरुपति, उत धर्मनरेशा ,
 रोकेउ समर निरखि दिन शेषा ।
 विजयी कुरुजन जदपि आजु रण ,
 कुण्ठित कण्ठ, न कहूँ जय-निःस्वन ।
 हरि-भय नष्ट आत्म-विश्वासा ,
 रणहि शेष जनु गत जय आशा ।

दोहा :—गवने यहि विधि निज शिविर, कुरुजन साहस-हीन ,
 धर्म नृपहु दिन-वृत्त लखि, इत धृति-रहित, मलीन । ६४

सेनप अनुमन साथ नरेशा ,
 गवनेउ निशि यदुनाथ-निवेशा ।

सरिसुत-शौर्य बरनि सोच्छ्वासा ,
 प्रकटी हरि प्रति हृदय-दुराशा ।
 क्षोभ वृकोदर-उर सुनि छावा ,
 उपचित कोप सभा प्रकटावा—
 “गाय पितामह-यश नरनाथा ,
 -बरनीं आजु कवनि नव गाथा ?
 समर-पूर्व निज दूत पठायी ,
 कथा सोइ कुरुपति कहवायी ।
 करि तब हम फाल्गुन-बल-वर्णन ,
 दीन्ह कुरुपतिहि रण-आमंत्रण ।
 शोच्य न स्वल्पहु भीष्म-शुराई ,
 शोच्य समर अर्जुन-कदराई ।
 तजि प्रण कीन्ह चक्र हरि धारण ,
 सोइ यथार्थ धर्मज-दुख-कारण ।

दोहा:— रच्छत निज सारथ रथी, विश्रुत समर-विधान ,
 रच्छे अर्जुन आजु रण, धारि चक्र भगवान । ६५

अब रिपु भीष्म, पितामह नाही ,
 द्रोणहु गुरु न, शत्रु रण माहीं ।
 गुरुजन-नौरव इन निज त्यागा ,
 हृदय न करुणा-कण, अनुरागा ।
 करत नित्य उठि रण ये निर्दय ,
 तदापि दुहुन प्रति सदय धनंजय ।
 उठत प्रहार हेतु नहि हाथा ,
 छीजति वाहिनि नित्य अनाथा ।
 दै वसुधा, धन, धान्य-प्रलोभन ,
 जोरी सैन्य सहाय सुयोधन ।
 पै योद्धा जे यहि दल माहीं ,
 आयुध-जीवि, क्रीत कोउ नाही ।
 हरि, धर्मज-गुणगण अनुरागी ,
 युद्धत धर्म सनेहहि लागी ।

रच्छत तिनहिं न अर्जुन करि रण ,
रच्छत दुर्मति, शत्रु-क्रीत जन ।

दोहा :—हितू जो पर, कुरुजन स्वजन, तजहि पार्थ संग्राम ,
त्यागि नृपहु सब रण-मही, गवनहिं निज निज धाम । ६६
कौरव-वध प्रणवद्ध मैं, भीषण मम उर रोष ,
करिहौं एकाकी समर, मोहिं मम भुजन-भरोस ।” ६७

सुनि उत्तेजित द्रुपद-कुमारा ,
सुभट शिखण्डी वचन उचारा—
“युद्धहिं अर्जुन अथवा नाही ,
भीमहु समर त्यागि बरु जाहीं ,
पै पाञ्चालि-पराभव-ज्वाला ,
किये शान्त बिनु हम पाञ्चाला ,
दीन्हे बिनु कौरव क्रव्यादन ,
सकत न करि रण-प्राङ्गण-त्यागन ।
पाण्डव जो राज्यहि-अभिलाषी ,
सकत समर तजि त्याग उपासी ।
मानहि हित हम समर-प्रणेत ,
हतिहैं शत्रु कि रहिहैं खेता ।
जदपि पितामह विश्रुत वीरा ,
निर्मित अस्थिहि मांस शरीरा ।
नयनन दिखल, अदृश्यहु नाही ,
उड़त न व्योम, चलत महि माहीं ।

दोहा :—शस्त्र-छेद्य तनु, मर्त्य ते, कीन्ह न अमृत-पान ,
मूढ़ सदा अति-वृद्ध हित, गढ़त वितथ आस्थान । ६८

सोरठा :—सत्य वचन यह मोर, लखिहौ रण-माहि प्रात तुम ,
करि मैं ही रण घोर, हतिहौं शान्तनु-मुत समर ।”

वचन कुपितं, पाञ्चाल उचारे ,
सभा ओर यदुनाथ निहारे—

कहुँ न पूर्व सौहार्द विलोका,
क्रोधित कोउ, काहु उर शोका ।
भाषी गिरा समय अनुकूला,
झरे विनोद-वचन जनु फूला—
“कहे अजुनहिं वचन वृकोदर,
रिस-रस-कटुक, रुत प्रति अक्षर ।
पै यह सहज अग्रजन-रीती,
मुख कटुता, अन्तस्तल प्रीती ।
सहज यहहु अनुजन-व्यवहारा,
धरत सर्व अग्रज-शिर भारा ।
जानत मैं पार्थहि-अपराधा,
हती पिथामह सैन्य अवाधा ।
त्यागहिं तदपि भीम उर-अनुशय,
नहिं उपचार-अभूमि धनंजय ।

दोहा :—तोषे त्रिपुर-अराति जेहि, करि संगर अविराम,
लखिहैं भुजबल तामु अरि, कालिह प्रात संग्राम । ६६

पै सुनि द्रुपद-सुवन वर वचनन,
उपजेउ अन्यहि भाव मोर मन ।
प्रकटि कालिह निज भुज-बल-वैभव,
करहिं शिखण्डिहि भीष्म-पराभव ।
भीम धनंजय दोउ प्रभाता,
रच्छहिं सजग द्रुपद-अंगजाता ।
करन हेतु सरिसुत-संरक्षण,
धावहिं जे द्रोणादि रथीगण,
रोकहिं अर्जुन करि रण घोरा,
सकहिं न बढि द्रुपदात्मज ओरा ।
शेष समस्त शूर-समुदायी,
करहि साथ रहि सार्थ-सहायी ।
शाश्वत विजय वीर ते पावत,
कृत-निश्चय जे रण-महि आवत ।

निरपेक्षित तनु करहु उग्र रण ,
मृत्युहिं मानि मुक्ति, व्रण भूषण ।

दोहा :— युद्धहु रक्षित पार्थ सब, उर कार्पण्य विहाय ,
लहिहौ निश्चय तुम विजय, सरिसुत समर सोवाय ।” ७०

सोरठा :— भरित प्रीति-रस, ओज, युक्ति-युक्त सुनि हरि-गिरा ,
विकसित वदन-सरोज, नवस्फूर्ति प्रति वीर-उर ।
गहे एक इक हाथ, प्रकटत पूर्व प्रतीति पथ,
लौटे भट, नरनाथ, सुख सोये निज निज शिविर ।

विगत निशा, प्राची दिशि सरवर ,
उदित सहस्रपत्र दिवसेश्वर ।
सज्जित हरि-शासन-अनुसारा ,
व्यूह-वद्ध पाण्डव-दल सारा ।
मस्तक रथी, अंग मातंगा ,
उदर पदातिक. पंख तुरंगा ।
नखर शिखण्डो, चञ्चु धनंजय ,
बढ़ेउ गरुड़-बल रण-महि निर्भय ।
अभिमुख भोष्म जनार्दन-प्रेरे ,
उड़े श्वेत हय अर्जुन केरे ।
प्रसरित कपि-ध्वज-प्रभा नभस्तल ,
द्योतित जनु बड़वाग्नि उदधि-जल ।
फहरत वात केतु, रव घोरा ,
किलकत प्रेत मनहुँ चहुँ ओरा ।
समर उल्लाह विजय-उर छावा ,
देवदत्त धरि अधर बजावा ।

दोहा :— कम्पित सहसा वसुमती, भग्न मनहुँ व्योमान्त ,
संधि-बंध-दीर्घित दिशू, होत मनहुँ कल्पान्त । ७१

सोरठा :— व्याप्त घोर आतंक, विकल वीर, वाहन सकल ,
द्रोणाचार्य सशंक, भावे कुरुपति सन वचन—

“रण-विधि नृपति ! तुमहिं जो भायी ,
 सो कछु काल्हि भाष्म दरसायी ।
 आजु विलोकहु पूर्ण प्रदर्शन ,
 करत धनंजय आपु आक्रमण ।
 दुर्नय-तरु जो काल्हि लगावा ,
 सन्मुख लखहु तासु फल आवा !”
 कहि जब लागि कछु सकहि सुयोधन ,
 कुरुदल धँसेउ धनंजय-स्यंदन ।
 घर्घर, किंकिणि-काण कराळा ,
 रथ जनु रिपु-क्षय-प्रण वाचाला ।
 सुदृढ़ मुष्टि-आकृष्ट-मौर्वि-रव ,
 भरि कौरव-दल व्यापेउ भैरव ।
 बरसी बाणावलि लय-कारी ,
 शूरवीर धृति धीरज-हारी ।
 भग्न व्यूह-मुख शर-संपाता ,
 शैल-माल जनु वज्राघाता ।

दोहा :— उमहि बही पाण्डव-अनी, मनहुँ महानद धार ,
 दीर्घ अद्रि-अवरोध करि, प्रविशी पारावार । ७२

कौरव-अब्धि क्षुब्ध उद्वेलित ,
 प्रतिहत, फेनिल, कम्पित, तरलित ।
 पार्थ-शरासन-निःसृत सायक ,
 सकेउ न सहि एकहु कुरु-नायक ।
 प्रति पद भट शत समर बिनासे ,
 सहित मनोरथ रिपु-रथ नासे ।
 विशिर मनुष्य, विपाद तुरंगा ,
 रथ बिनु चक्र, विशुण्ड मतंगा ।
 गिरे सशब्द लोह तनु-त्राणा ,
 शैल-स्रस्त जनु शिला महाना ।
 कटि कटि गिरे हस्त, पद, अंगा ,
 महि जनु कोटर-स्रस्त विहंगा ।

भागे पत्ति त्यागि निज प्रहरण ,
गजारोहि तजि रण निज बारण ।
कूदे रथ ते रथी विषादी ,
त्यागि तुरंगम भागे सादी ।

दोहा :—प्रहर पूर्व जे रण चढ़े, गर्जत जनु मृगराज ,
जर्जर अर्जुन-अञ्जलिक, भागे भट तजि लाज । ७३

सोरठा :—जरे अमित शर-आगि, परे अमित आहत मही ,
प्रमुख कछुक भट भागि, भीष्म द्रोण पाछे दुरे ।

लै सँग साह्यकि प्रभृति धनुर्धर ,
भयेउ शिखण्डी समर अग्रसर ।
सकेउ न पै भीष्महि समुहायी ,
रोधेउ मार्ग द्रोण गुरु धायी ।
तिन दिशि पार्थहि बढत विलोकी ,
बढ़ि गति आपु सरित-सुत रोकी ।
कोमल वृत्ति तजी दोउ वीरन ,
कीन्हेउ क्रुद्ध, रौद्र आयोधन ।
हनि निज शर पुनि प्रतिशर वारत ,
'सजग होहु'—कहि बहुरि प्रचारत ।
प्रेषे सरुष भीष्म शर जेते ,
किये विफल फाल्गुन हठि तेते ।
तैसेहि एकहु अर्जुन-तीरा ,
सकेउ परसि नहि भीष्म-शरीरा ।
निरखि निर्विवर घोर दुहुन रण ,
प्रीत प्रशंसत आपु जनार्दन—

दोहा :—“अनुपम धनु-आधान यह, अनुपम शर-संधान ,
अनुपम लाघव लङ्घ्य यह, अनुपम ये शित बाण ।” ७४

सोरठा :—निरखि भीष्म दुस्तर, बृद्ध तथापि अश्रान्त रण ,
सव्यसाचि सामर्ष, कीन्ह सकौशल छिन्न धनु ।

लब्ध-संधि कौन्तेय घनेरे,
 मर्म-विदारक कर्णिक प्रेरे।
 रक्तोक्षित नख-शिख सरिनंदन,
 स्रवत गेरु जनु शैल प्रस्रवण।
 कुपित प्रपीडित पार्थ-प्रहारा,
 धनुष अन्य सरिसुत कर धारा।
 क्षिप्र-पाणि पुनि पार्थ सदापा,
 काटेउ शर क्षुरप्र सोड चापा।
 लखि गुरु द्रोण सुहृद-अनुरागी,
 बढे भीष्म-दिशि द्रौपद त्यागी।
 धाय सक्रोध सुभद्रा-नंदन,
 रोधेउ पथ द्रोण गुरु-स्यंदन।
 धृष्टद्युम्न युयुधानहु धाये,
 एकहु पग न बढन गुरु पाये।
 पै अविचल इत शान्तनु-नंदन,
 धारेउ हस्त तृतीय शरासन।

बोद्धाः— तोत्र-विद्ध सिन्धुर सदृश, रण-दुर्मद गाङ्गेय,
 ज्वलन-जाल बरसेउ समर, मनुहुँ शैल आग्नेय । ७५

सोरठाः— स्यंदन तबहि बढाय, मुक्त द्रोण-शर-पाश ते,
 सरि-नंदन समुहाय, बढेउ शिखण्डी कुद्ध रण ।

गर्जत द्रौपद कर कोदण्डा,
 बेधे सरिसुत शरन प्रचण्डा।
 लखेउ न पै तेहि दिशि सरिनंदन,
 धाये पुनि तकि अर्जुन-स्यंदन।
 रोधेउ पथ बढि द्रुपद-कुमारा,
 वचन परुष शर बरसि उचारा—
 अब लागि कीन्ह समर तुम हीना,
 हते दिवस नव सैनिक दीना।
 धर्म-युद्ध-नियमन स्वीकारी,
 बधे सारथिहु तुम अविचारी।

विरिहत वर्म जदपि हरि-गाता,
कीन्ह तिनहु पै तुम शर-पाता ।
नहिं अधर्म जो मिलि सब योद्धा,
तुमहिं निपाति लेहिं प्रतिशोधा ।
तदपि धरहु नहिं उर भय भीती,
तजिहै नहिं धर्मज-दल नीती ।

दोहा:—एकाकी हतिहौं तुमहिं, करि मैं ही रण घोर,
जात निदरि यहि भाँति मोहिं, कहाँ धनंजय-ओर ?” ७६

सुनत देवव्रत द्रौपद-वचनन,
दृग संरक्त, वदन दुर्दर्शन ।
उत्तर दर्प-विदीपित दीन्हा—
“दुर्मति ! मोहिं न अब लागि चीन्हा ।
पौरुष मम सर्वस संसारा,
गनत शत्रुता मैं उपहारा ।
विग्रह मोहिं अनुग्रह लागत,
अरि-बाहुल्य भाग्य मम जागत ।
रण-आह्वान मोहिं वरदाना,
रिपु-दर्शन निधि-दर्शन माना ।
शस्त्र-निपात प्रसून-प्रवर्षण,
व्रण आभरण रक्त अनुलेपन ।
समर-महिहि रँग-महि जेहि लागी,
डरपावत तेहि काह अभागी !
सुरासुरहु सब जुरि इक साथी,
सकत हराय न मोहिं धनु-हाथी ।

दोहा:—पै युद्धत नहि नारि सँग, ब्रह्मचर्य व्रत धारि,
तिनहु संग नहि रणकरत, रहे पूर्व जे नारि ! ७७
जन्म-वृत्त शठ ! तोर अब, महितल सर्व प्रसिद्ध,
तब सँग रण-चर्चा कहा ?—दरसहु मोहिं निषिद्ध !” ७८

सोरठा:—अस कहि अर्जुन ओर, तीक्ष्ण विशिख घेरे बहुरि,
पार्थहु तजि शर घोर, काटेउ सोउ सकोप धनु ।
कुद्ध द्रुपद-अँगजात, बरसे शर पुनि प्राण-हर,
बेधत सरिसुत-गात, भाषे मर्मस्पर्शि वच—

“जिये जदपि तुम अधम ! काल चिर,
रहे विमूढहि, वृथहि पलित शिर ।
अमरोचित वर्तन, अनुभावा,
पै पर-सेवा जन्म बितावा ।
कहत जगत सिंहासन त्यागी ।
युद्धत पै निज उदरहि लागी ।
पारुष्यहि पौरुष तुम जाना,
ब्रह्मचर्य नारी-अपमाना ।
का अचरज निरखेउ निज नयनन,
कर्षत बधू-वसन दुःशासन !
रहेउ कहाँ तब दर्प तुम्हारा ?
बरसे अश्रुहि, नहि शर-धारा !
कीन्ह न जेहि कुल-तिय-संरक्षण,
करत सो आजु पूर्व-तिय-रक्षण !
मुद्रित दृग मिथ्या अभिमाना,
जीवन विडम्बना नहि जाना ।

दोहा:—बरनत गर्वित चित्त निशि, शिविर निवसि तुम धर्म,
शात समर-महि शस्त्र-धृत, रक्षत नित्य अधर्म ! ७६
धिक मिथ्या माहात्म्य तव ! धिक गाथा परमार्थ !
ब्रह्मचर्य धिक ! त्याग धिक ! धिक भुजबल, पुरुषार्थ ! ८०

सोरठा:—बुझिहै प्राण-अदीप, निश्चय मम कर आजु तव,
मृत्यु-मुहूर्त समीप, लेहु निरखि जग भरि नयन ।”

बाणहु ते शिततर सुनि बाणी,
मर्म-विद्ध सरिनंदन * ज्ञानी ।

पूर्व आत्म-गौरव मन व्यापा,
 सुमिरि वृत्त पाछिल उर काँपा।
 सोचत—सत्यहि शत्रु-विडम्बन,
 देह-वहन-मात्रहि अब जीवन।
 अस्तंगत मम महिमा-भानू,
 भस्म प्रताप-प्रभाव-कृशानू।
 वरसि सुकृत-वारिद अब रीते,
 सुयश-प्रदीप बुझे दिन बीते।
 महा त्याग मम गौरव-धामा,
 दास्यहि आजु तामु परिणामा।
 कीन्ह काल-गति पुण्यहु पापा,
 जीवन दीर्घ भयेउ अभिशापा!
 श्रीहरि-हस्त मृत्यु मैं माँगी,
 लही सोउ नहि काल्हि अभागी।

दोहा :—पै परिचालत रथ अबहुँ, सन्मुख मम भगवान,
 तजिहौं निरखत हरि-वदन, पार्थ-शरन निज प्राण। ८१
 धारेउ हस्त चतुर्थ धनु, मरण हृदय निज ठानि,
 प्रेरे मृदु शर पार्थ प्रति, द्रुपद-सुतहि अबमानि। ८२

सोरठा :—याचत द्वैरथ-युद्ध, दग्ध अनादर-अग्नि उर,
 द्रुपद-नंदनहु क्रुद्ध, बेधे पुनि सरिसुत शरन।
 अगणित नद-नदि धार, ग्रहण महोदधि जिमि करत,
 द्रौपद-शर अविकार, सहे सरित-सुत तिमि सकल।

पार्थहिं बहुरि प्रचारन लागी,
 महाशक्ति सरिनंदन त्यागी।
 हनि अर्जुन नाराच प्रचण्डा,
 बीचहि शक्ति कीन्हि शत खण्डा।
 लुब्ध बढ़ाय बहुरि रथ अभिमुख,
 हने अगण्य लुरप्र, शिलीमुख।
 प्रावृट-घन 'किरीटि-धनु' लागा,
 पूर्ण बाण-जल भीष्म-तड़ागा।

आहत अश्व, भिन्न रथ-चाका,
मूर्च्छित सारथि, छिन्न पताका।
दीर्ण शिरस्त्र, व्यस्त शिर बाणा,
शकलित देह, स्रस्त तनुत्राणा।
तिल-तिल विद्ध पितामह-गाता,
इन्द्रगोप-द्युति रक्तस्नाता।
सहि न सकत निर्वैर प्रहारा,
प्रकटत कीटहु कृपण विकारा,

दोहा:— पै विरहित विद्वेष-विष, सरिसुत तेजोधाम,
सहे पार्थ-द्रौपद-विशिख, निर्विकार, निष्काम। ८३
श्याम-नाम रसना जपत, ध्यानहु श्यामहि ध्येय,
श्याम-रूप-अमृत पियत, दृग मूँदे गाङ्गयेय। ८४
'विरमहु ! विरमहु' !-पार्थप्रति, भाषेउ उत जगदीश,
रथ ते इत सरिसुत पतित, पूर्व दिशा कृत शीश। ८५

सोरठा:— शित इषु-जाल अनल्प, रोम रोम प्रति विद्ध तनु,
शौर्योचित शर-तल्प, लहेउ भीष्म अस्पृष्ट-महि।

विजय-वाद्य पाण्डव-दल बाजे,
सृञ्जय चैद्य शूर रण गाजे।
अभिनन्दत कोउ द्रुपद-कुमारा,
करत कोउ अर्जुन - जयकारा।
'हा ! हा !' रव कौरव-दल घोरा,
क्रन्दत नभस्पर्शि चहुँ ओरा।
अश्रुत हर्ष-शोक यदुनन्दन,
प्रेरेउ द्रुत सरिसुत दिशि स्यन्दन।
विपद सधैर्य, समृद्धि अनुद्धत,
सर्वकाल यदुनाथ शील-रत।
सद्गुण-क्रीत, सुञ्जन-अनुरागी,
उतरे भक्त-दयित रथ त्यागी।
लखे समीप सरित-सेत जायी,
रक्त-सिक्त, शर-शय्या-शायी।

गति वीरोचित निरखि पुलक तन ,
भलके लोचन-नलिन अश्रु-कण ।

दोहा :— परसत मस्तक क्लेश-हर, शशि-कर शीतल हाथ ,
भाषे संजीवन वचन, उद्बोधत यदुनाथ— ८६

सोरठा :— “निजाधीन अवसान, तात ! जितेन्द्रिय, धैर्य-निधि ,
तजन चहत कस प्राण, रहत मानु दक्षिण अयन ?
सुधा-स्नावि सुनि बैन, पुलकेउ तनु शर-उन्मथित ,
उधरे सरिसुत-नैन, इष्टदेव-दर्शन-विकल ।

निरखत निज सन्मुख श्रीरंगा ,
अम्बुज-वदन विलोचन-भृंगा ।
आनन्द-जल अन्तस्तल छलकेउ ,
लोचन पूर, कपोलन ढरकेउ ।
रहित ताप लहि अमृत राशी ।
गिरा भक्तिरस-स्नावित भाषी—
“देत मुक्ति तुम जेहि भगवाना !
तेहि हित दोउ रवि-अयन समाना ।
उर मम अब न आस अभिलाषा ,
निधनहि सहज जियन आयासा ।
दुर्विभाव्य पै नाथ-मनोगति ,
समुक्ति सकत नहि मनुज स्वल्प-मति ।
गुनि मन रहेउ काज कछु शेषा ,
करिहौ पालन प्रभु-आदेशा ।
तुमहु करेहु मोहि नाथ ! न विस्मृत ,
चित्त अतृप्त समागम-अमृत ।

दोहा :— दारुण भव-मरु-दग्धये, प्रेम-तृषातुर प्राण ,
प्रभु-दर्शन पाथेय बिनु, चहत न करन प्रयाण ।” ८७

सोरठा :— आर्द्र हरिहु दृग-कोर, तोषि भक्त भाषे वचन—
“लखहु तात ! चहुँ आर, दर्शनेच्छु दोउ दल सुभट ।”

सुनत नयन सरिनंदन फेरे,
 निरखे स्वजन शूर सब नेरे ।
 शोभित चहुँ दिशि पूरि रणाङ्गण,
 मनहुँ प्रजापति धेरि अमरगण ।
 संग-संग धर्म नरेश-सुयोधन,
 जयद्रथ-पार्थ भीम-दुःशासन ।
 द्रोणाचार्यहु-द्रुपद नरेशा,
 कृत-शैनेय शल्य-मत्स्येशा ।
 संग-संग धृष्टद्युम्न-द्रौणायन,
 सौभद्रहु - दुःशासन - नंदन ।
 लक्ष्मण दुर्योधन-अंगजाता,
 धर्मज-सुत प्रतिविंध्य सभ्राता ।
 औरहु सब भुज सन भुज जोरे,
 विद्यमान शोकार्णव बोरे ।
 जन्मजात जनु वैर विहायी,
 विलंब जुरेउ जीव-समुदायी ।

दोहा :— कहि सरिसुत स्वागत-गिरा, हरेउ शोक सन्मानि,
 भाषी कुरुपति दिशि निरखि, प्रीति-युक्त स्वर वाणि— ८८

सोरठा :— “निरवलम्ब मम शीश, विद्ध भाल शर-जाल नहि,
 दै मोहिं उचित उसीस, करहु सुस्थ शिर तात ! मम ।”

सुनत सुयोधन दास बोलाये,
 शिविर लेन उपधान पठाये ।
 औरहु बहु सेनप, अवनीशा,
 लावन चले निवेश उसीसा ।
 ताल-वृन्त कोउ निज्जकर धारी,
 धायेउ करन सप्रीति बयारी ।
 कोउ घनसार-क्षोद, कोउ चंदन,
 चहत करन कोउ हिम-लव-लेपन ।
 बिहँसि पितामह सद्धि निवारा,
 अर्जुन दिशि सस्नेह निहारा ।

बोली पार्श्व, गुण शौर्य बखानी,
हरी पार्थ अन्तस्तल ग्लानी ।
भाषेउ पुनि फेरत कर शीशा—
“देहु तात ! मम योग्य उसीसा ।”
सजल बिलोचन सुनत धनंजय,
धारे तदपि शरासन शर त्रय ।

दोहा :— हने ललाट विपाठ खर, भेदि टिके महि जाय,
निकसी आशिष भीष्म-मुख, सुख शीर्षासन पाय । ८६

मिलि पुनि दोउ धर्मज कुरुरायी,
परिखा तहँ चहुँ दिशि निर्मायी ।
अरुण प्रतीची मुख तेहि काला,
लागेउ अथवत रवि वेताला ।
किरण-जाल जनु जिह्वा लोलित,
महि लगि फैलि पियति रण-शोणित ।
क्रम-क्रम निशा निशाचरि आयी,
केश-राशि महि नभ छिटकायी ।
घन तम, शिवा-शब्द चहुँ ओरा,
भयी भयद रण-धरणी घोरा ।
तब लगि सेवक-वृन्द प्रज्वलित,
लाये हेम-प्रदीप सुगंधित ।
धरे साजि शरशय्या पासां,
दीपित सरित-सुवन तनु भासा ।
जनु असंख्य तारावलि साथा,
शोभित अंतरिक्ष निशिनाथा ।

दोहा :— रक्षक अमित नियोजि, करि, प्रदक्षिणा त्रय बार,
लौटे शिविरन शूर सब, नमित हृदय दुख-भार । ८७

सोरठा :— लहि अवसर तेहि काल, पूर्व वृत्त सुमिरत क्षुभित,
प्रणमेउ कर्ण विहाल, जाय पितामह-पद-कमल ।

निर्मम, वैर-रहित सरिनन्दन,
द्रवित निरखि नत-शिर वैकर्तन ।
स्वल्पहु विनय विलोकत तोषा,
चिरस्थायि नहि सज्जन-रोषा ।
उदित पितामह-उर सद्भावा,
प्रकटि नेह नव वचन सुनावा—
“कीन्ह वत्स ! मैं अगणित बारा,
सभा समर अपमान तुम्हारा ।
कारण कछुक रहेउ तेहि माहीं,
कहिहौ अब राव कछु नाहीं ।
गुनि मन तुमहि पार्थ-प्रतियोधा,
रचेउ सुयोधन बंधु-विरोधा ।
नासन हेतु तासु उत्साहा,
बारण हेतु विषय गृह-दाहा ।
करन हेतु निज कुल संरक्षण,
कहे तुमहि मैं जब तव कुवचन ।

दोहा :— तेज-निधान, वदान्य तुम, शौर्य भुवन विख्यात,
पौत्र कुरुपतिहि सम तुमहु, छमहु आजु मोहि तात ! ६१
विनवहुँ औरहु—सर्व हित, सुयोधनहि समुझाय,
अबहुँ वत्स ! मम निघन संग, देहु रणाग्नि बुझाय । ६२

अन्य रहस्यहु व्यास-बतावा,
चहत आजु मैं तुमहि सुनावा ।
उपजे तुम न सूत-कुल ताता !
तुम कानीन पृथा-अँगजाता ।
धर्मस्मृति-विधान अनुसारा,
तुमहि ज्येष्ठ पुनि पाण्डु-कुमारा ।
जेहि महि हित कुरु पाण्डव रारी,
तुमही तासु विहित अधिकारी ।
कुरुपति संग तुम्हारे दृढ़ नाता,
तजहु वैर गुनि पाण्डव आता ।

अनुमति जो तुम्हारि मैं पावहुँ,
धर्म-सुतहि यह वृत्त सुनावहुँ।
धर्मज सदा धर्म-पथ-गामी,
करिहैं तुमहि राज्य-धन-स्वामी।
सुयोधनहु लखि सुहृद-अभ्युदय,
लहिहै तोष हृदय गुनि निज जय।

शेढा :—रोकहु यहि विधि वत्स ! यह, वीर-विनासी रारि,
क्षत्र जाति रच्छहु निखिल, विनय मोरि स्वीकारि । १६३

सुनी कर्ण सरिनंदन-वाणी,
व्यापे विपुल भाव उर मानी।
लज्जित जन्म-वृत्त उल्लेखन,
लिखत नखाग्र धरणि नत-लोचन।
करत महीतल पुनि पुनि रेखा,
छँकन चहत मनहुँ विधि-लेखा !
आयेउ क्षण समष्टि-हित ध्याना,
जागेउ अंत आत्म-सम्माना।
कृत निश्चय सरिसुतहिं निहारी,
वाणी दृढ़ स्वर कर्ण उचारी—
“वृत्त तात अविदित मोहिं नाहीं,
उपजति ग्लानि सुनत मन माहीं।
पै न जननि प्रति मम उर रोषा,
देत सदा मैं भाग्यहिं दोषा।
प्रकटत पूर्वहि वृत्त जो सारा,
बाल्य काल मोहिं मिलत सहारा।

शेढा :—करत न जग कहि सूत-सुत, प्रति पद मम अपमान,
जीवन अमृत होत त्रहिं, मम हित गरल समान । ६४

अधिरथ सूत्र रिच्छ मम प्राणा,
पोषेउ मोहिं निज सुवन समाना।

जानत कुन्तिहिं मैं न अभागी,
 राधहि अब अम्बा मम लागी।
 पाण्डु-सुतन संग मोहिं न काजू,
 अधिरथ सुतहि भ्रात मम आजू।
 सूत-सुता गृह-सौख्य-प्रदाता,
 पुत्रहु सूतसुता-संजाता।
 क्षत्रिय वंश जन्म मम दूषण,
 सूत-समाज गनत मोहिं भूषण।
 मम सर्वस्व सूत जग माहीं,
 तजिहौं तिनहिं राज्य-हित नाहीं।
 थमहि कि होय घोर संप्रामा,
 मोहिं न क्षत्रिय कुल सन कामा।
 कीन्ह सदा जिन मम अपकारा,
 नहिं मम शिर तिन रच्छन भारा।

दोहा :—प्रिय मोहि प्राणहु ते अधिक, एक सुयोधन त्यागि,
 बिनसहि कुल-मद-मत्त यह, क्षत्र जाति गृह-आगि । ६५

जन्म-वृत्तहु मम प्रकटाई,
 करि न सकत तुम वंश-भलाई।
 तजिहौं जो धर्मज अधिकारा,
 करिहौं तेहि न आपु स्वीकारा।
 मैं कुरुपति-सहचर, अनुगामी,
 करिहौं तिनहिं निखिल महि स्वामी।
 होइहै यहि विधि मम ऋण-शोधन,
 रुकिहै पै नहिं यह आयोधन।
 तुम शूरोचित शय्या-शायी,
 देहु द्विजोचित वृत्ति विहायी।
 नियम, विधान न राज्य-विधायक,
 असि-धारहि अन्तिम निर्णायक।
 करि दश दिवस घोर संप्रामा,
 भये भुवन त्रय तुम यश-धामा।

मन प्रमुदित अब देहु निदेशा,
करहुँ महुँ रण-सिन्धु प्रवेशा।

दोहा :—बाल-सुलभ चापल्य-वश, कहीं जो मैं कटु वाणि,
छमहु दशा मम गुनि विषम, पौत्र-सखहु निज जानि ।” ६६

सोरठा :—धृति-सागर गाङ्गेय, भाषी शुभ आशिष गिरा,
वंदत पद राधेय, गवनेउ कुरुपति-शिविर दिशि।

शोकित उत निवेश दुर्योधन,
हस्त ललाट, निमीलित लोचन।
वदन दर्प बिनु, दृग-तल भाँई,
गलित अधर ताम्बूल-ललाई।
शिर किरीट, भुज अंगद शिथिलित,
देह निशीथ-प्रसाधन-विरहित।
पार्थ-भीति व्याकुल नरनाथा,
सुमिरत कर्ण श्वास प्रति साथा।
राखि वयस्य-शीश सब भारा,
चहत जान रण-सागर पारा।
चिन्तित सोचि द्रोण गुरु-वाणी,
सकत न मानी द्विज अवमानी।
प्रविशि ताहि क्षण नृपति-निवेशा,
दीन्हेउ शकुनि विषम सन्देशा—
“कोशलेश, त्रैगर्त सुशर्मा,
विंद अनुविन्द, शल्य, कृतवर्मा।

दोहा :—नृपति सुदक्षिण आदि जे, औरहु दल सेनानि,
अधिनायक द्रोणहि चहत, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ भट जानि ।” ६७

सोरठा :—सुनि कुरुपति उर क्रोध, भयेउ हृदय कछु बोध अब,
करत जे स्वजन-विरोध, गहन परत पर-पद तिनहिं।

शोक, क्रोध, मोहान्ध सुआला,
प्रविशेउ शिविर कर्ण तेहि काला।

धाय सुहृद नृप हृदय लगावा,
 दृग सवाष्प दुष्टुत्त सुनावा।
 पै न कर्ण वर पूर्व विकारा,
 भीष्म-समागम हृदय उदारा।
 सोचत मन—अभिजन ये नायक,
 करिहैं कस सूतहि अधिनायक।
 जानि वयस्य विवश, असहायी,
 वाणी वर वसुषेण सुनायी—
 “प्रीति-क्रीत मैं दास तुम्हारा,
 मोहि यथेष्ट चेष्टित सत्कारा।
 वर्धित यहि क्षण अरि-बल-गौरव,
 करन चाहत ते उर्वि अकौरव।
 उचित न नासब निज दल एका,
 करहु सहर्ष द्रोण-अभिषेका।

दोहा :—गनिहौं निज शिर भार मैं, करिहौं द्रोण सहाय,
 लखिहौ युद्धत प्रात तुम, मोहिं अराति समुहाय ।” ६८

सुनि आनंदित, प्रीत सुयोधन,
 थकत न करत सुहृद अभिनंदन।
 उतरेउ अर्जुन-ज्वर, भय बीता,
 जनु राधेय अबहि रण जीता।
 कुटिल सौबलहु वचन सुनावा,
 कलश हलाहल जनु ढरकावा—
 “जूझे भीष्म जदपि सावेशा,
 रहेउ समर सब बिनु उद्देशा।
 करिहैं द्रोणहु युद्ध भयंकर,
 बधिहैं तदपि न पाण्डव निजकर।
 ताते मम मत, तिनहि रिक्तायी.
 माँगहि यह वर कुरूपति जायी—
 अरि बहाय शर शर-सरित-प्रवाहा,
 बंदी करहि धर्म नरनाहा।

यहि विधि सहजहि शत्रु-पराभव ,
सकत न त्यागि अग्रजहि पाण्डव ।

दोहा :— करिहैं धर्मज मुक्त हम, तजिहैं जब अधिकार ,
बसिहैं कानन जाय पुनि , निर्जित पाण्डु-कुमार ।” ६६

उदासीन सुनि राधा-नंदन ,
मज्जित मोद-पयोधि सुयोधन ।
नृप सेनप निज शिविर बोलाये ,
गुरुहि प्रशंसत वचन सुनाये—
“बाहिनि मम जेते सेनानी ,
सकल बुद्धि, बल, विक्रम-खानी ।
पै आचार्य ज्येष्ठ सब माहीं ,
शस्त्रधरहु कोउ तिन सम नाहीं ।
सब शस्त्रास्त्र प्रयोग-समेतू ,
जानत गुरु रण-वारिधि-सेतू ।
धनुर्वेद चितितल साक्षाता ,
अग्रगामि रण, बाहिनि-त्राता ।
सुहृदन संतत अभय प्रदायक ,
सर्व पूज्य, सहजहि अधिनायक ।
देहि जो अनुमति निखिल नरेशा ,
करहुँ अबहि अभिषिक्त द्विजेशा ।”

दोहा :— गँजेउ सुनतहि भरि शिविर, गुरुवर विजय-निनाद ,
हर्षित सुभट, विनष्ट जनु, भीष्म-पतन-असवाद । १००

सोरठा:— कीन्ह द्रोण अभिषेक, भक्तिमंत उर कुरुपतिहु ,
बाजे वाद्य अनेक, कुरुक्षेत्र नादित निखिल ।

द्विज-दुर्लभ प्रद द्रोणहु पावा ,
सिद्ध-सिन्धु जनु जियत नहावा ।
प्रिय न कहि पूजा सन्माना ,
को न मुग्ध सुनि निज गुण गाना ?

चरण प्रणत कुरुपतिहिं विलोकी ,
 कीन्ह विप्र उर लाय विशोकी ।
 अनवधि आनंद, धैर्य भुलाना ,
 माँगन कहेउ खलहिं वरदाना ।
 पाठ जो मातुल पूर्व रटावा ,
 शुक्र सम सोइ कुरुनाथ सुनावा ।
 विस्मित द्विजवर सुनि अभिलाषा ,
 पद-रहस्य हृत्पट सब भासा ।
 दै वर पै न सकत लौटायी ,
 गिरा सधृति आचार्य सुनायी ।
 “रहेउ तात ! मम हृदय विचारा ,
 करिहौ रण निज मत अनुसारा ।

बोद्धा :— रन्धि स्वदल, हति शत्रु-दल, रहेउ विजय मम ध्येय ,
 कृत-प्रण करिहौं यल पै, गहन हेतु कौन्तेय ।” १०१

लब्ध-रंध्र सुनतहि गुरु-बाणी ,
 सौबल कुटिल युक्ति पुनि ठानी ।
 द्रोण-प्रतिज्ञा दृढ़वन हेतू ,
 पठये चर प्रति सैन्य-निकेतू ।
 दिशि-दिशि घोषित वृत्त करावा ,
 सुनि उल्लास निखिल दल छावा ।
 बाजे शंख असंख्य निवेशा ,
 सिंहनाद, जयनाद अशेषा ।
 उत धर्मज जब अर्जुन साथी ,
 हरि-मुख सुनत भीष्म-यश-गाथा ।
 लायेउ बंधन-वृत्त गुप्तचर ,
 अट्टहास सुनि कीन्ह वृकोदर—
 “दै सरिसुत-आहुति दुर्योधन ,
 चहत रणाग्नि गुरुहिं अन होमन ।
 अछत भीम समराङ्गण माहीं ,
 सकत कि छुइ कोउ अग्रज-छाहीं ।

दोहा :— सकल कि परसि कुरंग-सुत, कबहुँ सिंह-सुत केश ,
सकत कि बंदी भेक करि, कबहुँ काल भुजगेश !” १०२

कहि निष्फल कुरुनाथ प्रयासू ,
कीन्ह सव्यसाचिहु उपहासू ।
पै न उपेक्षेउ वृत्त वृष्णिपति ,
चिन्तित भाषे वचन पार्थ प्रति—
“जानत मै, तुम रच्छत जाही ,
गहि नहिँ सकत यमहु रण ताही ,
उपजत मन मम अन्यहि संशय ,
होइहै अब जन-क्षय, रण निर्दय ।
चापाचार्य द्रोण विख्याता ,
शास्त्रहु ते बढि शस्त्रन-ज्ञाता ।
यद्यपि विप्र, तपस्वी, ज्ञानी ,
नृप ते बढि तेजस्वी, मानी ।
गहत त्यागि निज जे पर धर्मा ,
निर्मर्याद सदा तिन कर्मा ।
रहत सतत गुरु उर यह ध्याना ,
करहि न कोउ कहि द्विज अवमाना ।

दोहा :— समर-शौरडता, कूरता, तामु अशुभ परिणाम ,
लखिहौ प्रातहि निज दगन, तुम अभूत संग्राम ।” १०३

सोरठा :— करि यहिभाँति सचेत, बहुरि हृदय उत्साह भरि ,
गवने कृपा-निकेत, निज निवेश लहि नृप-विदा ।

हरि कथनहि अनुहार प्रभाता ,
संगर भयेउ वीर-भय-दाता ।
चाप, कमण्डलु वेदी-अंकित ,
दिखेउ द्रोण-ध्वज व्योम तरंगित ।
अपर्याप्त आपुहिँ गुनि शापा ,
समर समुद्यत जनु धृत-चापा !

शास्त्र-विधान-विनिर्मित स्यंदन ,
सज्जित नाना आयुध, प्रहरण ।
सिन्धुज, शोण, सुवर्ण-सुकल्पित ,
धावत हय जनु अनल प्रज्वलित ।
शोभित प्रक्षालत आकाशा ,
छत्र द्रोण-शिर जनु यश-हासा ।
रक्षित नख-शिख तनु बहु वेष्टन ,
ताल-प्रमाण हस्त बाणासन ।
यद्यपि वृद्ध, तरुण-बल-धारी ,
प्रविशे दल भट प्रमुख प्रचारी ।

दोहा: — बढे धर्मजहि लक्ष करि, ध्वंसत पाण्डव-व्यूह ,
मर्दत दारुण बाण-बल, सर्व मार्ग-प्रत्यूह । १०४

सोरठा:—चहेउ धनंजय धाय, रोधन जैसेहि द्रोण-मथ ,
लखे कर्ण समुहाय, आवत जंगम मेरु जनु ।

लहि प्रतिभट चिर दिन पश्चाता ,
शौर्य-प्रवाह किरीटी-गाता ।
फरकेउ कर गाण्डीव अधीरा ,
निकसे बाण त्याग तूणीरा ।
पै सहसा तेहि क्षण यदुनंदन ,
प्रेरेउ धर्मराज दिशि स्यंदन ।
निरखेउ पार्थ—समर करि घोरा ,
बढ़त द्रोण गुरु अग्रज-ओरा ।
बाण-विद्ध, मर्माहत, दीना ,
धृष्टद्युम्न रथ संज्ञा-हीना ।
सहित स्वर्ण कुण्डल, उष्णीषा ,
गुरु-शर छिन्न युगंधर-शीशा ।
कीन्ह सिंहसेनहु महि-शायी ,
बधेउ व्याघ्रदत्तहि पुनि धायी ।
विचरत द्विज जनु यम रण-प्राङ्गण ,
बरसत शर नहि, मृत्यु शरासन ।

दोहा :—निहत चक्र-रक्षक निरखि, लखि गुरु-द्रोण समीप ,
बद्ध-कक्ष, संनद्ध रण, धृत-धनु धर्म महीप । १०५

पै आचार्य न अवसर दीन्हा ,
हनि शर छिन्न धर्म-धनु कीन्हा ।
लीन्ह अवनिपति अन्य शरासन ,
कीन्ह वेध-पटु द्विज सोड भंजन ।
लीन्ह युधिष्ठिर कर धनु जोई ,
काटेउ सहठ द्रोण सोइ सोई ।
पाय धर्म अवनीश निराश्रय ,
गरजे द्रोण सदर्प दुराशय ।
सिंह-निनाद रणाङ्गण व्यापा ,
भीत भ्रान्त पाण्डव-दल काँपा ।
उत्थित कुरुदल जय-रव, जल्पन ,
बढ़े करन गुरु दोण पूर्ण प्रण ।
तड़केउ ताही क्षण गाण्डीवा ,
बरसी तहँ इषु-धार असीवा ।
गुरु-अग्रज-अभ्यन्तर माहीं ,
व्याप्त पार्थ-शर, थल तिल नाहीं ।

दोहा :—रोके कर्ण विराट उत, भीम, सात्यकिहु धाय ,
प्रजवित यदुपति वाजि निज, गये गुरुहि समुहाय । १०६

सोरठा :—विजय - बाण - उल्लास, छादित दिशि दश द्रोण-रथ ,
बद्ध मर्कटक-पाश, विवश क्षुद्र जनु मत्तिका ।
लज्जित गुरु रण घोर, कीन्ह क्रुद्ध निज शिष्य सँग ,
एकहु पद नृप ओर, सके न धरि पै भरि दिवस ।
कुरुपति क्षुब्ध उदास, रोकेउ रण दिवसान्त लखि ,
निशि अधिनायक पास गवनेउ सह सेनप सुहृद ।

मंद मनोरथ, गुरु मन माखे ,
व्रीडित वचन नृपति सन भाखे—

“अर्जुन जदपि शिष्य मम ताता !
 मोहिं ते बृद्धि अब रण-निष्णाता ।
 रुद्र, इन्द्र वरुणादि रिभायी,
 लहेउ विशेष अस्त्र-समुदायी ।
 कृतो, तरुण, तेजस्वी, धीरा,
 दिव्य चाप, अक्षय तूणीरा ।
 एकाकिहि कालहिं भयदायी,
 तेहि पै यदुपति तासु सहायी ।
 धावत मिलि जनु अनल प्रभंजन,
 जारत कुरदल मनहुँ शुष्क वन ।
 अचल विन्ध्य-हिमशैल समाना,
 गरुड़-अरुण सम तेज निधाना ।
 अछत सव्यसाची-यदुनंदन,
 संभव समर न धर्मज-बंधन ।

दोहा :— रण-हित पार्थ प्रचारि जो, अनत कोउ लै जाय,
 पलहि माहिं गहिहौं नृपहिं, अरि-दल निखिल हराय ।” १०७

सोरठा:— सुनि निस्तब्ध समाज, गिरी सभा-महि गाज जनु,
 लखत जाहि कुरुराज, दृष्टि बरावत वीर सोइ !

निरखि तजेउ भटगण भट-धर्मा,
 उठेउ सभा हठि सुभट सुशर्मा ।
 नृप त्रिगर्त, संशप्तक-स्वामी,
 पार्थ पूर्व-वैरी रण-कामी ।
 शैल-निवासी, शैल-विशाला,
 हिंजुल वदन, विलोचन ज्वाला ।
 बृहदाकर पट्ट . उष्णीषा,
 शाल विटप जनु हिमगिरि-शीशा ।
 रोमाञ्चित रस शौर्य शरीरा,
 गिरा दुंदुभी-घोष . गौंभीरा—
 “अर्जुन वीर-ब्रंश-अवतंसा,
 कीन्दि सत्य गुरु तासु प्रशंसा ।

हमहु शूर पै शूरहि-जाये,
जूमन यहँ शूरहि सँग आये !
फिरत न वधत मृगहि मृगनाथा,
युद्धत समद द्विपेन्द्रहु साथा ।

दोहा :—गवनत जे संशत रण, संशतक घनुमान,
अयुत रथी मम, प्रिय जिनहि, प्राणहु ते बदि आत । १०८

सोरठा:—तिन सँग कुरुपति कार्य, करिहौं पार्थ प्रचारि रण,
पूर्ण करहि आचार्य, इत निज प्रण गहि धर्म नृप ।”
“साधु ! साधु !”—कुरुराय, भाषेउ सुनि प्रस्थल-पतिहि,
गयेउ शिविर हर्षाय, करत मनोरथ मार्ग शत ।

प्रात प्रबोध-माङ्गलिक-वाणी,
सुनि जागे भट, निशा सिरानी ।
स्यंदन साजि अयुत संशतक,
निकसे तजि निवेश जनु अन्तक ।
काया प्रांशु, समुन्नत कंधर,
पुष्ट प्रकोष्ठ, वक्ष-भुज पीवर ।
धृत-कुश-चीर मौञ्जि कटि बाँधे,
कवच शरीर, शरासन काँधे ।
पृथक पृथक कृत होम-विधाना,
दै धन, धान्य, धेनु, मणि दाना,
अग्निहिं साखी करि व्रत लीन्हा,
अर्जुन-निधन हेतु प्रण कीन्हा—
“वधिहैं पार्थ कि तजिहैं प्राणा,”
गवने दक्षिण दिशि प्रणवाना ।
क्रान्त अयुत रथ धरणी काँपी,
दिनमणि मलिन, धूलि नभ व्यापी ।

दोहा :—अंतरिक्ष भरि शस्त्र-स्वर, ज्या-रव, सिंह-निनाद,
जाय प्रचारे पार्थ रण, कहत विविध दुर्वाद । १०९

सोरठाः—सुनतहि रोष अपार, प्रकटे विजय निवेश तजि,
प्रकटेउ कन्दर-द्वार, जनु मुगेन्द्र धन-नाद सुनि।

सारथि-वेष, सुसज्जित स्यंदन,
पहुँचे ताहि समय यदुनंदन।
कृत-वंदन अर्जुन अरि-हेरी,
भाषी गिरा गर्व रस प्रेरी—
“लखहु नाथ ! ये रथि त्रिगर्तगण,
आये रण मिस मृत्यु निमंत्रण।
मृगयार्थी-ढिग मृग-समुदायी,
जुरेउ विपिन स्वेच्छा जनु आयी !
जानत मम प्रण तुम भगवाना !
करत न अस्वीकृत आह्वाना।”
भाषेउ सुनत प्रपञ्च-विधाता—
“दुरभिसंधि कछु यहि महुँ ताता !
तुमहिं स्ववाहिनि ते बिलगायी,
बाँधन चहत नृपहिं असहायी।
वीरोचित तुम्हारि यह टेकू,
उचित तदपि नहिं तजब विवेकू।

दोहा :—धर्मज-रक्षण भार जो, सकहु काहु शिर धारि,
तौ त्रिगर्त-आह्वान तुम, लेहु समुद स्वीकारि।” ११०

सोरठाः—सुनि पाञ्चाल कनिष्ठ, सत्यजितहि सुमिरेउ विजय,
धारेउ वीर-वरिष्ठ, भार स्वशिर सन्मान गुनि।
धृष्टद्युम्न उत व्यूढ, रोपेउ रण गुरु द्रोण संग,
इत स्यंदन आरूढ, बढे त्रिगर्तन दिशि विजय।

सम महि अर्धचंद्र आकारा,
पार्थ शत्रु-रथ-व्यूह निहारा।
पुरुषाकार शरासन धारे,
दीक्षित-मृत्यु वीर बरियारे।

विजय-उरहु उत्साह-तरंगा ,
 शोणित उष्ण बहेउ प्रत्यंगा ।
 हेम-परिष्कृत, अशनि-निनादी ,
 वादेउ शंख सुरहु-अवसादी ।
 कर्षी कार्मुक-मौर्वि हठाता ,
 रव जनु वज्र-विन्ध्य-संघाता ।
 जङ्गीभूत संशप्तक-अंगा ,
 दृग विविक्त, निस्तब्ध तुरंगा ।
 मूर्च्छा विगत विलक्षित योधा ,
 बहे उग्र संरब्ध, सक्रोधा ।
 घेरत अर्जुन रथ पै दूटे ,
 चाप अयुत शर लाखन छूटे ।

दोहा :—मँडरानी हरि-पार्थ पै, बाणावाला याह भाँति ,
 पुष्पित तरु पै जनु धिरी, मंघु ऋतु अमरन-पाँति । १११-

सोरठा :—आहत पार्थहु क्रुद्ध, रोधे अरि-शर प्रतिशरन ,
 रोधति जलनिधि लुब्ध, अनायास जिमि तट-धरणि ।

वारिद-पटल प्रकटि आकाशा ,
 भरति तडित जिमि भुवन प्रकाशा ।
 जगमग तिमि गाण्डीव-शरासन ,
 द्योतित विभा निखिल रण-प्राङ्गण ।
 क्षिप्र-हस्त शर पै शर धावत ,
 ज्या-मिस मनहुँ धनुष यश गावत ।
 छादित दिशा प्रज्वलित बाणन ,
 दमकत मनहुँ कीटमणि अनगन ।
 संगर घोर प्रवीर-विनाशन ,
 छिन्न उररछद, छत्र, शरासन ।
 हत हय सायुधि, स्यंदन ध्वंसा ,
 पतित स्त्री मुख करत प्रशंसा ।
 भूषित मणि-कुण्डल-उष्णीषा ,
 कटि कटि गिरे त्रिगर्तन-शीशा ।

मनहुँ चढ़ाय पार्थ शतपत्रन,
करत प्रमन रणचण्डी-पूजन ।

दोहा :—विचलित कल्लुक त्रिगर्त जब, कुरुपति ताही काल,
पठयी नारायण अनी, हरि-प्रदत्त विकराल । ११२

हरि-दिशि हरि-शिखित चतुरंगिणि,
बढ़ी उदधि दिशि मनहुँ तरंगिणि ।
दीर्घ काल लहि शस्त्रन-शिखा,
देन चहत जनु आजु परीक्षा ।
तृण समान गनि फाल्गुन-बाणा,
बढ़े गोप बरसत शर नाना ।
बाण-वितान पार्थ-रथ छावा,
घिरि जनु दिवस नैश तम आवा ।
सहित ध्वजा, अजुन, यदुनंदन,
बूढ़ेउ शर-समुद्र जनु स्यंदन ।
जानि जनार्दन-विजय-विनाशा,
अरि-दल जय-निनाद, उल्लासा ।
बाजे शंख, मृदंग, नगारे,
उत्तरीय उन्मत्त उछारे ।
इत प्रस्वेद-सिक्त सब गाता,
ठेरेउ सखहि श्रमित श्रम-त्राता ।

दोहा :—संधानेउ वायव्य शर, सव्यसाचि तत्काल,
चक्रवात उपजेउ प्रबल, छिन्न शत्रु-शर-जाल । ११३
गुनि निज मन—सामान्य शर, गोप-वृन्द दुर्जेय,
अप्रज-हित चिन्तित तजेउ, त्वाष्ट्र अस्त्र कौन्तेय । ११४

सोरठा :—प्रकट पार्थ यदुनाथ, अगणित संहसा रण-मही,
जूमि एक इक साथ, बिनसू मोहोपेत रिपु ।

उत गुरु द्रोण-दर्प उद्दामा,
धन्वि प्रधान बधे संग्रामा ।

हरि दृढसेन, क्षेम नृप-प्राणा,
हतेउ समर अतिरथि वसुदाना।
पुनि समुहाय मत्स्य नृप-भ्राता,
शतानीक रथ ध्वंसि निपाता।
निरखेउ बहुरि शिखण्डी-नंदन,
क्षत्रदेव रोधत निज स्यंदन।
क्षुद्र कीट सम सुभटहिं लेखी,
एकहि बाण बधेउ गुरु तेखी।
बढ़े धर्म दिशि गरजि द्विजेशा,
गज-यूथप दिशि मनहुं मृगेशा।
आपु-नृपति विच निरखि सत्यजित,
समरेच्छुक, शर-कार्मुक-सज्जित,
द्रोण अधीर, असह्य विरोधा,
चहेउ गहन नृप बधि सोउ योद्धा।

दोहा :—तजे शिला-शित शर अमित, विषम एक ते एक,
सत्य-पराक्रम सत्यजित, काटे सकल सटेक। ११५
निज विशखन बेधे बहुरि, सारथि, ध्वजा, तुरंग,
होत भंग रथ द्रोण लाख, अंग-अंग रोष-तरंग। ११६

सोरठा:—गुरु बल-कौशल-सीव, अर्धचंद्र त्यागेउ प्रबल,
छिन्न सत्याजित-ग्रीव, गिरेउ वीर निजीवि महि।

द्रोण - पराक्रम - पारावारा,
उमहेउ निर्मर्याद, अपारा।
सृज्जय, चेदि, मत्स्य-समुदायी,
बहे वहित्र अवश, असहायी।
बूडत धर्म . भुआल-जहाजू,
समुष्मि विहाल हर्ष कुरुराजू।
तेहि क्षण गद उदग्र वृकोदर,
धाये जनु सशृंग गिरि मन्दर।
रुकी द्रोण-गति जनु सरि-धारा,
रुद्ध, लुब्ध टकराय पहारा!

व्याप्त भीति निर्भीक गुरुहु मन—
 चहत गदा हनि यह रथ भंजन।
 वृत्ति आक्रमक तजि निज रक्षा,
 कीन्हि विप्र तजि विशिख सपत्ता।
 दीप्त शरन-विच पाण्डव अविचल,
 वलयित जनु विंध्याद्रि दवानल।

दोहा :—सात्यकि, सौभद्रहु तबहि, धृष्टद्युम्न सह धाय,
 घेरत गुरु-स्यंदन बड़े, धर्मज, भीम-सहाय। ११७

सोरठा :—अर्जुन-शंख-निनाद, परेउ श्रवण-पथ दूरि जनु,
 कुरुपति उर अवसाद, होत विफल लखि सोउ दिवस।

निरुखि धैर्य भगदत्त बंधावा,
 गज निज धर्मज ओर बढ़ावा।
 करि न सके जो द्रोणहु काजा,
 बड़ेउ करन कैवतेन-राजा !
 शक्र समान नरेन्द्र धनुर्धर,
 ऐरावत सम अंकुशदुर्धर—
 शिर, श्रुति, नेत्र गण्ड मद-धारा,
 स्रवत सप्तधा मनहुँ पहारा।
 वेष्टन-रक्षित गज-प्रत्यंगा,
 पद-रक्षक सहस्र भट संग।
 तोत्र-विताडित बड़ेउ सरोषा,
 फहरेउ केतन, घन्टा-घोष।
 पूरित इभ-मद-नांध समीरण,
 भास्वर धरणी रत्न-आभरण
 आवत लखि सिन्धुर सामर्षा,
 पाण्डव-भटन कीन्हि शर-वर्षा।

दोहा :—बिनसे पद-रक्षक विपुल, खिरमेउ पै न गजेन्द्र,
 रक्त-सिक्त जंगम मनहुँ, स्रवत गेरु शैलेन्द्र। ११८

लखि द्विरदस्थ दशार्ण-नरेशा,
 प्रेरेउ निज द्विरदहिं सावेशा ।
 करि वृंहण अम्बुद-ध्वनि वारण,
 भिरि कीन्हेउ इक-एक निवारण ।
 पुनि टकराने दोउ रण-दत्ता,
 युद्धत जनु गिरि सद्रुम, सपत्ता ।
 शुण्ड भँवाय रौष-रस-राते,
 धावत जनु प्रवात मद्माते ।
 लब्ध-योग भगदत्त-मर्तंगा,
 भेदे रद दशार्ण-द्विप अंगा ।
 दीर्ण पार्श्व, चिग्वार महाना,
 गिरेउ धरणि सिन्धुर निष्प्राणा ।
 चलितासन दशार्ण नरनाहा,
 उछरि द्विरद जस त्यागन चाहा,
 करि तोमर भगदत्त प्रहारा,
 द्विरदस्थहि अराति संहारा ।

दोहा :— अंकुश, पद-अंगुष्ठ पुनि, प्रेरेउ गज भगदत्त,
 धायेउ द्रुत युयुधान दिशि, द्विरद रौद्र, मदमत्त । ११६

गहि रथ निज कर सर्पाकारा,
 कंदुक सदृश उठाय पँवारा ।
 निष्फल जानि शरासन बाणा,
 रच्छे उछरि प्राण युयुधाना ।
 बहुरि प्रचारित शुण्ड भँवायी,
 बढेउ युयुत्सु-ओर गजरायी ।
 तजेउ ससंभ्रम रथ कुरुनंदन,
 मर्दे गज हय, सारथि, स्यंदन ।
 भागी भीत, चमू चहुँ ओरा,
 बढेउ भीम दिशि मदकल घोरा ।
 कीन्हें गदा प्रहार वृकोदर,
 डिगेउ न तिलहु तदपि रण-कुंजर ।

गहेउ प्रचण्ड शुण्ड निज वारण ,
कीन्ह भीम पै निपुचि निवारण ।
चढ़त भीम लखि रथ दन्तावल ,
धायेउ गड़गड़ात रिस-विह्वल ।

दोहा:— निज दिश बढ़त विलोकि गज, मानहुँ चल गिरि-शृंग ,
रोके रुके न, रथ सहित, भागे भीत तुरंग । १२०

सोरठा:—केतु युगान्त संमान, अंतरिक्ष पथ ताहि क्षण ,
कपि-केतन लहरान, मूर्तिमंत जनु क्षय महा ।

पाण्डव-दल प्रत्यागत प्राणा ,
तकि भगदत्त बड़े भगवाना ।
पथ जेहि जहाँ चहेउ बिलमावा ,
कुपित पार्थ यम-सदन पठावा ।
पै अभीत भगदत्त महीपा ,
प्रेरेउ द्विप यदुनाथ-प्रतीपा ।
निखिल तृणीकृत पार्थ-शिलीमुख ,
पहुँचेउ क्रद्ध द्विरद हरि-सन्मुख ।
सारथि-कर्म-कुशल यदुनंदन ,
दक्षिण पार्श्व कीन्ह द्रुत स्यंदन ।
पुनि सवेग निर्दय द्विप धावा ,
हरि स्यंदन दिशि वाम हटावा ।
लखि समुहात हरिहिं पुनि कुञ्जर ,
हने धनंजय लब्ध-लक्ष्य शर ।
हेम-परिष्कृत वर्म विशाला ,
गिरेउ तडित जनु तजि घन-माला ।

दोहा:— वेधेउ अर्जुन मर्म-विद, बहुरि कुंभ शर घोर ,
गिरेउ रदन-भर भरि द्विरद, रण-महि दारुण रोर । १२१

प्रेरे तोमर पै तबहुँ, प्रबल प्राच्य अवनशीश ,
करत विफल काटेउ विजय, अर्धचन्द्र शर शीश । १२२

उत ताही क्षण अश्वत्थामा ,
 हतेउ अनूप नृपति संग्रामा ।
 बधि तब वृहत्क्षत्र सक्रोधा ,
 लीन्हेउ धृष्टद्युम्न प्रतिशोधा ।
 कुपित कर्ण सृञ्जय संहारे ,
 धनंजयहु कर्णानुज मारे ।
 कृति-प्रतिकृति प्रतिपल रण घोरा ,
 गिरे हताहत भट चहुँ ओरा ।
 थमेउ जबहिं दिवसान्त महारण ,
 सहमे शूरहु लखि क्षय भीषण ।
 रक्तस्नात वाहिनी दोऊ ,
 अक्षत अंग वीर नहिं कोऊ ।
 पै न पूर्ण कुरुपति अभिलाषा ,
 गत गुरु-कौशल-बल-विश्वासा ।
 गुरुहु जात लखि सुयश उजागर ,
 यापी निखिल निशीथ प्रजागर ।

दोहा :— विज्ञोचित मर्याद तजि, रञ्छेउ केवल मान ,
 कीन्हेउ क्रुद्ध प्रभात उठि, चक्रव्यूह निर्माण । १२३

सोरठा :— जोरे पुनि कुरुराय, मालव, गोप, त्रिगर्त गण ,
 हरि पार्थहिं बिलगाय, गवने दक्षिण दिशि बहुरि ।
 पहुँची पाण्डव-सैन्य, इत रण-महि संनद्ध जब ,
 व्याप्त दुराशा दैन्य, दिखेउ न काहुहि पथ कतहुँ ।

गदा-हस्त दुर्धर्ष वृकोदर ,
 हठि जब चहेउ धँसन अभ्यंतर ,
 सहसा रोकि अनुज निज टेकी ,
 भाषे धर्मज वचन विवेकी—
 “सन्मुख रण करि भीषण जन-क्षय ,
 सके न गहि मोहिं द्रोण दिवस द्वय ।
 खीम्नि, विशेष व्यूह रचि आजू ,
 छल ते करन चाहत द्विज काजू ।

तजि यहि भाँति आर्य-मर्यादा ,
 करत न विज्ञ अज्ञ-अवसादा ।
 लहत राम ते जनु रण-शिक्षा ,
 लही द्रोण क्षत्रिय-क्षय-दीक्षा ।
 चक्रव्यूह यह रचेउ दुरभिभव ,
 दोउ प्रवेश-निकास असंभव ।
 तजि यदुपति, प्रद्युम्न, धनंजय ,
 भेदि न सकत व्यूह कोउ दुर्जय ।

दोहा :— निष्फल बल आयुष सकल, व्यूह-ज्ञान जो नाहिं ,
 मृत्यु पराजय दोइ मोहि, रण-महि आजु दिखाहि ।” १२४

सोरठा :— व्याकुल धर्म-नरेन्द्र, तजि संताप न जनु सुहृद ,
 लखि भाषे वीरेन्द्र, वचन सुभद्रा-सुत नृपहि ।

“वृथहि शोक-उद्विग्न तात-मन ,
 करि मैं सकत व्यूह-विध्वंसन ।
 शैशव जो पितु मोहि सिखावा ,
 व्यूह-प्रवेश-ज्ञान मैं पावा ।
 गवने तबहि आपु सब कानन ,
 सकेउँ सीखि नहिं मैं विनिवर्तन ।
 मातुल जदपि अनुग्रह-राशी ,
 सिखयेउ स्वपुर न, नित्य-प्रवासी ।
 चहेउ जबहि प्रद्युम्न सिखावन ,
 पहुँचे मत्स्य-पुरी ते धावन ।
 यहि विधि रहेउ ज्ञान सम आधा ,
 पै न व्यूह-भंजन महँ बाधा ।
 शत्रु-सैन्य नहिं दुर्ग-समाश्रित ,
 वाहन-मनुजन व्यूह विनिर्मित ।
 बारैक लहि हमी व्यूह प्रवेशा ,
 बधिहैं हय, गय, वीर अशेषा ।

दोहा :— निहत निखिल वाहन मनुज, व्यूहहि जब कहूँ नाहि ,
 रहिहैं बाधा तब कवनि, प्रत्यावर्तन माहि । १२५

दोहा :— लखहु करत मैं पथ अबहि, चक्रव्यूह करि मंग ,
करहि अनुगमन मम रथी, पत्ति, गजेन्द्र, तुरंग ।” १२६

मुदित जदपि सुनि धर्म नरेशा ,
लखि वय सकुचें देत निदेशा ।
द्विविधा-वश पितृव्य निहारी ,
गिरा विहंसि पुनि कुँवर उचारी—
“दोष दिखात काह मोहिं माहीं ,
देत निदेश तात ! जो नाहीं ।
विकल विलोकि जो लघु वय मोरा ,
बिसरत कस मैं सिंह-किशोरा !
समुझत जो मोहिं निर्बल निज मन ,
यह न न्याय बिनु किये परीक्षण ।
देत पितुहिं मम तुम नित सेवा ,
कन विरक्ति यह मम प्रति देवा !
पितुहिं सहश मैं भृत्य तुम्हारा ,
तिन प्रति पक्षपात कस धारा ?
हरिण-हृदय कौरवदल सारा ,
तेहि हित व्यर्थ सिंह-संभारा !

दोहा :— सिन्धु सप्त वलयित मही, जनक दिग्विजय काज ,
जीतन देहु नगराय मोहिं, कुरुक्षेत्र-रण आज ।” १२७

सोरठा :— सुनि वात्सल्य-प्रवाह, प्रीत धर्मनंदन-हृदय ,
गद्गद स्वर नरनाह, आशिष दीन्हि निदेश सह ।
लहि पितृव्य-प्रसाद, दीप्त सुभद्रा-सुत वदन ,
विक्रम-रस उन्माद, फरके भुज, गर्जें उ धनुष ।
बढ़ें कुमार प्रहृष्ट, सिंहनाद करि व्यूह-दिशि ,
श्रीहरि - हस्त - विस्मृष्ट, दीप्त सुदर्शन चक्र जनु ।

सैन्य-सहित भीमादि सुभट-गण ,
कीन्हेउ शस्त्र-उदग्र अनुसरण ।

फहरे केतन, घहरे स्यंदन,
 कुण्ठित क्षण दृग-श्रवण धूलि-स्वन ।
 प्रत्यासन्न सुभट-संधाता,
 भीषण दोउ दिशि आयुध-पाता ।
 रोधी पाण्डव ध्वजिनि जयद्रथ,
 सकेउ न पै अवरोधि कुँवर-रथ ।
 बरसी विषम विशिख-परिपाटी,
 मृत गज वाजि पत्ति महि पाटी ।
 बाणाहत बहु रथि निष्प्राणा,
 दीन्हेउ बहु पथ-सँग अँगदाना ।
 प्रमुख भटहु तजि समर पराने,
 जीर्ण पर्ण जनु अनिल उड़ाने ।
 शोभित अरि-अनि मथत वीरवर,
 अंबुधि-भँवर मनहुँ गिरि-मंदर ।

दोहा :— दुरवगाह मद-सिन्धुरहु, सिन्धुनाथ - चतुरंग,
 अछत द्रोण सौभद्र-शर, सैकत-गृह सम भंग । १२८

सोरठा :— पै तजि जैसोहि द्वार, अंतरंग प्रविशेउ कुँवर,
 निरखेउ चक्राकार, व्यूह घोर कान्तार जनु ।
 पत्ति विकट तरु-जाल, आयुध उत्कट कण्टकित,
 रथ, गजाश्व गिरि-माल, प्रतिपद भट-श्वापद प्रचुर ।

बढ़त विलोकि कुँवर-रण-बंका,
 जनु अरण्य मृगयार्थि अशंका,
 “धावहु ! गहहु !”—कोलाहल घोरा,
 रथ-घर्घर ज्या-रव चहुँ ओरा ।
 दारुण विस्फारित-धनु आनन,
 झपटे जनु अग्रण्य पंचानन ।
 शत-शत नृपति-सुतन रथ घेरी,
 बाणावलि सहस्र सँग प्रेरी ।
 लुभित किरीटि-सुतहु अरि हेरे,
 काल-कटाक्ष सहित शर प्रेरे ।

अश्मक-नृपति गिरेउ खसि रथ ते ,
 जनु मृगयार्थि-निहत शिखि तरु ते ।
 हतेउ वसातिहिं बहुरि सकौशल ,
 छिन्न शीश जनु पक ताल-फल ।
 पुनि द्विरस्थ क्राथ-सुत मारा ,
 वमत रक्त महि पतित जुझारा ।

दोहा :—शल्यानुज हति, रुक्मरथ, शल्य-सुतहिं संहारि ,
 कीन्हु विद्ध शल्यहु शरन, सन्मुख समर प्रचारि । ११६

सोरठा :—शत नरपति-सुत शीश, चुने सुमन सम पार्थ-सुत ,
 विद्धत शेष महीश, शुष्क वदन, प्रस्वेद तन ।

निज दल दशा विलोकी लक्ष्मण ,
 दुर्योधन-नन्दन, प्रिय-दर्शन ।
 सुख-संवर्धित, अतिशय मानी ,
 वदेउ पार्थ-सुत दिशि धनु-पाणी ।
 प्रेरित सुवन-सनेह सुयोधन ,
 धायेउ आप करन संरक्षण ।
 गवनत नृप अवलोकि लजाने ,
 भट-रण-विरत बहुरि समुहाने ।
 कृप, कृत, कर्णहु धाये विह्वल ,
 द्रोण, द्रौणि, अवधेश वृहद्वल ।
 घिरे घोर घनगण जनु श्रावण ,
 शर-भरि चहेउ कुँवर-रथ बोरन ।
 बरसे सौभद्रहु शर नाना ,
 वेगवंत लय-वात समाना ।
 प्रमथित भटगण बहुरि पराने ,
 छँटि जनु वारिद-पटल उड़ाने ।

दोहा :—पै न हटेउ लक्ष्मण हठी, कातर समुक्ति स्वपक्ष ,
 वेधेउ विशिख सपक्ष तजि, सव्यसाचि-सुत-वक्ष । ११७

सोरठाः—पीडित घृष्ट प्रहार, रक्त वक्ष, आरक्त मुख,
क्रोधित घरेउ कुमार, यम-किङ्कर सम शर धनुष ।
जनु फुफकरत अहीश, छूटेउ धनु ते भल्ल शर,
छिन्न सकुण्डल शीश, शशि जनु तारक-युग सहित ।
कुरुदल हाहाकार, वादेउ शंख किरीटि-सुत,
सुनि उत द्वार प्रहार, कीन्ह वृकोदर पुनि गरजि ।

काँपेउ सुत-वध निरखि सुयोधन,
जनु सहस्रधा हृदयरफोटन ।
सौभद्रहिं पुनि नृपति विलोका,
रोषावेग-शमित क्षण शोका ।
सुनि पुनि द्वार वृकोदर-गर्जन,
भाषेउ सिन्धुपतिहिं दुर्योधन—
“रोधहु व्यूह द्वार तुम ताता !
लहहिं प्रवेश न पाण्डव आता ।
घेरि अन्य भट इत यह बालक,
बधहिं आततायी सुत-घालक ।”
विनशत व्यूह-ध्येय निज जानी,
कही द्रोण गुरु नृप सन बाणी—
“एकहि चक्रव्यूह उद्देशा—
गहन चहत मै धर्म नरेशा ।”
करहिं सुभट सौभद्र-पराभव,
प्रविशन देहु व्यूह पै पाण्डव ।

दोहा :—सकिहै पाण्डव एक नहि, पार्थ-पुत्र ढिग आय,
व्यूह-ज्ञान-विरहित नृपहिं, गहिहौं मै भरमाय ।” १३१

सोरठाः—सुनि अभिमन्यु-वधेच्छु, संशयालु कुरुनाथ मन,
द्विज यह शत्रु-हितेच्छु, चाहत रच्छन शिष्य-सुत ।

रिस-उच्छ्वास द्रोण जनु जारी,
साधिकार नृप गिरा उचारी—

“सकत न शत्रु-शिशुहु जे जीती ,
 मोहिं न अब तिन वचन प्रतीती !
 वृथा सर्व यह रण--संभारा ,
 निर्विष अहि-हित जिमि फण-भारा ।
 अछत अगण्य रथी, नरनाथा ,
 निहत सुवन मम मनहुँ अनाथा ।
 हते बिना निज सुत हन्तारा ,
 अर्थ-हीन मम हित रण सारा ।
 करन जो चहत मोर प्रिय योद्धा ,
 लेहिं प्रथम मम सुत-प्रतिशोधा ।
 प्रविशन देहिं व्यूह तब अरि-गण ,
 गुरुहु सकहिं तो करहिं पूर्ण-प्रण ।
 जस लक्ष्मण मम आँखिन तारा ,
 तस पार्थहिं सौभद्र पियारा ।

दोहा :— पाण्डु, मत्स्य, यदु तिहुँकुलन, प्रिय यह बाल समान ,
 बघहु महारथि ! मिलि सकल, लहहि न कहूँ निर्याण ।” १३२

सोरठा:— सुनी द्रोण नृप-वाणि, सही जानि सुत-शोकवश ,
 शमत बहुरि उर ग्लानि, सन्मानेउ शासन विषम ।
 करत व्यूह विध्वंस, गवनेउ जेहि पथ पार्थ-सुत ,
 जयद्रथ पुनि सो अंश, पूरेउ रथी गजाश्व भरि ।
 युद्धत इत निरुपाय, पाण्डव पथ-दर्शक-रहित ,
 उत सुभटन समुदाय, बढेउ किरीटि-कुमार दिशि ।

आवत निरखे कुँवर वीरवह ,
 भरे क्रोध प्रतिशोध भयावह ।
 साहस-मात्रहि गनि निज सहचर ,
 धरे धनुष इषु प्रखर, प्राण हर ।
 दमके दीप्त शरन अरि-स्यंदन ,
 मनहुँ महोरुह निशि खद्योतन ।
 जिमि समुद्भय पयोधि अथाहा ,
 विरमत सहसा सरित-प्रवाहा ।

तिमि प्रतिहत आर्जुनि-भुज-विक्रम ,
 सहसा रुद्ध अरातिन-गतिक्रम ।
 पुनि कर-पाश शमन-अनुहारी ,
 रिपु-दल धँसेउ आपु धनुधारी ।
 प्रेषी बाण-अवलि यम-दूती ,
 बिनसी अरि-शस्त्रास्त्र-विभूती ।
 भंजेउ अरि-दल निखिल वीरवर ,
 भंजत नलिनि-जाल जिमि कुञ्जर ,

दोहा :— सादि, निषादि, पदाति, रथि, समर असंख्य सोवाय ,
 बरसे शर जुन घोर घन, कुरु-प्रवीर समुहाय । १३३

हनि प्रचण्ड शर शैल-विदारक ,
 हतेउ प्रचारि वीर वृन्दारक ।
 पुनि कोशल-अधिराज वृहद्वल ,
 बधेउ सवर्म बेधि वत्तस्थल ।
 निरखि पलायित नृपति-कुमारा ,
 गुरुजन दिशि तब कुँवर निहारा ।
 संहारेउ कृत-सारथि गाजी ,
 मारे सोमदत्त-रथ-वाजी ।
 भेदे कृपाचार्य रथ-चाका ,
 पातित भारद्वाज-पताका ।
 काटेउ भूरिश्रवा-शरासन ,
 मूर्च्छित छिन्न-देह दुःशासन ।
 विरथ द्रोण-सुत विचरत पाँयन ,
 आहत सौबल कीन्ह पलायन ।
 मर्माहत कुरुपति अँग अंगा ,
 भागे लै रथ भीत तुरंगा ।

दोहा :— पहुँचि कर्ण दिगपुनि कुँवर, प्रेरे कर्णिक बाण ,
 कम्पित गिरि भूकम्प जुन, छिन्न देह तनु त्राण । १३४

सोरठा :— मति सारथी साश्व, गिरी ध्वस्त क्षितितल ध्वजा ,
 हत सब रक्षक पार्श्व, विकल विरथ राधा सुवन ।

सोरठाः— निरखि द्रोण गुरु ओर, भाषेउ कर्ण विवर्ण मुख—
“बालक यह अति घोर, घालक कौरव-दल निखिल ।

जीते मैं रण अमित वीरवर,
लखेउँ न यहि सम अन्य धनुर्धर ।
मर्मस्थल मम मथित शिलीमुख,
लज्जहि वश मैं अबहुँ रणोन्मुख ।
गनत किरीटहि मैं निज प्रतिभट,
पै यह बाल पितुहु ते उद्भट ।
करत प्रभातहि ते संग्रामा,
निमिषहु लहेउ न यहि विश्रामा ।
धनु-मण्डलहि सकत लखि लोचन,
दिखत न शर-संधान, विमोचन ।
लखन न देत रिपुहिं निज रंभ्रन,
लखेहु करत पल महँ संरक्षण ।
आपु सर्व अरि-छिद्रन-ज्ञाता,
विद्युत-वेग करत आघाता ।
भट जेते यहि आजु संहारे,
मिलिहु न हम अब लागि रण मारे ।

दोहाः — करिहैं हम जो वेगि नहि, कछु उपाय आचार्य !
तौ निश्चय शिशु शित शरन, सबन निधन अनिवार्य ।” १३५

सोरठाः— सुनि भाषी गुरु-वाणि, गलित गर्व वसुषेण लखि—
“जब लागि धनु शिशु-पाणि, सकत न विष्णुहु याहि बधि।”

सुनि तजि पौरुष-पथ, यश, माना,
मन अधर्म, वैकर्तन ठाना ।
अभय-वचन कहि भट लौटाये,
मिलि सब बहुरि कुँवर दिशि धाये ।
युद्धत जेहि, क्षण भरित उमंगा,
शिशु असंख्य प्रतपक्षिन् संग ।

कर्ण पार्श्व ते दृष्टि निवारी ,
काटेउ कार्मुक विशिख प्रहारी ।
लखि भट अभय हनत नाराचा ,
बढ़े नीच मिलि मनहुँ पिशाचा ।
संयत, एकीभूत आक्रमण ,
चेरेउ सिंह-शाव जनु द्विरदन ।
कीन्हेउ कृपाचार्य ध्वज भंगा ,
अश्वत्थामा हते तुरंगा ।
कृतवर्मा सारथि संहारा ,
मिलि पुनि शिशु-तनु कीन्ह प्रहारा ।

बोहा :— ताडित अगणित बाण पै, खसेउ न तनु ते त्राण ,
कूदे तजि सौमद्र रथ, क्रुद्ध खगेश समान । १३६

हस्त गृहीत चर्म-निस्त्रिंशा ,
उमही अंग अंग प्रतिहिंसा ।
मथेउ निखिल दल गर्जत घोरा ,
चमकी असि-लेखा चहुँ ओरा ।
जनु दिशि-दिशि घन-मण्डल-गामिनि,
दमकी व्यापि व्योम सौदामिनि ।
पतित निहत पुनि शत्रु समाहित ,
उष्ण रुधिर रण धरणि प्रवाहित ।
ग्रसे कुँवर भट समर-प्रवीणा ,
जिमि सरि महामत्स्य लघु मीना ।
विचलित लखेउ द्रोण दल सारा ,
अस्त-प्राय पुनि रविहु निहारा ।
प्रण-हित व्यग्र उग्र तजि बाणा ,
काटेउ गुरु शिशु-हस्त कृपाणा ।
चर्महु मणिमय तारक-मण्डित ,
गिरेउ धरणि वसुषेण-द्विखण्डित ।

बोहा :— बढ़े बहुरि कायर सकल, जानि अरक्षित बाल ,
गहेउ कुँवर तत्क्षण कुपित, हस्त चक्र विकराल । १३७

दोहा :— कमल नयन, श्यामल वदन, काया शाल प्रमाण ,
चक्रपाण शोभित कुँवर, मनहुँ प्रकट भगवान । १३८

शोणित स्रवत सिक्त तनुत्राणा ,
नख-शिख अरुण सुतनु परिधाना ।
पुलकित सकल रोम जनु प्रासा ,
भृकुटि कुटिल जनु यम अधिवासा ।
हृगन अनल, श्वासोष्ण प्रवाहा ,
धरणि प्रदीपित जनु दिग्दाहा ।
दमकत दक्षिण हस्त रथाङ्गा ,
समुदित मनहुँ प्रताप-पतङ्गा ।
क्षुभित सवेग द्रोण दिशि धाये ,
कुन्तल लहरि भाल लहराये ।
द्रोणहु हृदय निरखि उद्वेगा ,
अर्धचन्द्र सर तजे सवेगा ।
धाये पितु रच्छन द्रौणायन ,
वसुषेणहु, कृप, कृत एकायन ।
दुःशासनहु लब्ध पुनि चेतन ,
अन्य रथस्थ क्रुद्ध दुर्योधन ।

दोहा :— बरसेउ शिशु पर शर सवन, घेरि मनहुँ यम-भृत्य ,
गिरेउ चक्र महि छिन्न जनु, व्योम-सस्त आदित्य । १३९

सोरठा :— शर सर्वाङ्ग विपन्न, शल्लकि सम अति घोर तनु ,
तबहुँ कुँवर अविषयण, गही हस्त गुर्वी गदा ।

अश्वत्थामहि • सन्मुख पायी ,
बढेउ पार्थ-सुत, गदा भँवायी ।
लखि हृत्कम्पन, स्वेद निखिल तन ,
रच्छे प्राण • द्रौणि तजि स्यंदन ।
दुःशासन-पुत्रहु तेहि काला ,
धायेउ गहि कर गदा कराला ।

चंदन-चंचित, हेम-विमण्डित,
उठीं गदा जनु मेरु महीभूत ।
अरि-आघात निवारि कुमारा,
बढ़ेउ आपु जस करन प्रहारा ।
तीक्ष्ण विशिख पुनि कर्ण चलावा,
मर्माहत शिशु, दृग तम छावा ।
गिरतहु सहठ गदा निज घोरा,
प्रेरी दुःशासन-सुत ओरा ।
सकेउ न शत्रु प्रहार बरायी,
आहत सोउ संग महि-शायी ।

दोहा :— दुःशासन-सुत पुनि उठेउ, उठि नहिं सकेउ कुमार,
कुलाङ्गार कीन्हेउ उठत, शिशु-शिर गदा प्रहार । १४०

सोरठा :— बढ़ेउ शिशुहिं बहु शूर, मिलि एकाकि निरख करि,
बधत व्याध जिमि क्रूर, घेरि अरयय गजेन्द्र-सुत ।
शान्त कुमार-कृशानु, अरि-वन निखिल जराय इत,
अस्त अरुण उत भानु, लखि अव जनु लज्जित वदन ।
कुरुदल विजय निनाद, बिलखे पाण्डव वृत्त सुनि,
फिरे शिविर सविषाद, सींचत पथ दृग वाष्प-जल ।

उत श्रीहरि अर्जुन यश-राशी,
संशप्तक गोपादि विनासी ।
अथवत रवि विलोकि, तजि स्यंदन,
कीन्ह समर-महि संध्या-वंदन ।
गवनत बहुरि निवेश श्रान्त-तन,
सुनेउ अश्रान्त शत्रु-जय-निःस्वन ।
पुनि कछु दूरि युयुत्सु विलोका,
धिक्कारत कुरुजनहिं सशोका—
“गहि अधर्म-पथ शिशु संहारी—
जय-रव करत काह अविचारी !
क्षणिकहि यह तुम्हार उल्लासा,
काल्हि पार्थ-शर प्राण-विनाशा ।

विष, जतु-गृह, तिय-केशाकर्षण,
चिर दिन सहेउ विजय, यदुनंदन ।
सहिहैं पल न पाप यह घोरा,
मिलिहैं प्रातहि दण्ड कठोरा ।

दोहा :— इन्द्र-वज्र, यम-दण्ड ते, सकत रच्छि वरु प्राण,
अर्जुन-धनु, हरि-चक्र ते, त्रिभुवन कतहुँ न त्राण । १४१

सोरठा :—प्रविशे अर्जुन-कर्ण, शब्द भयंकर बाण सम,
हृग जल, वदन विवर्ण, कम्पित अशुभ-विशंकि उर ।

परेउ युयुत्स न बहुरि लखायी,
गत रथ, धूलि-पटल पथ छायी ।
पुनि अरि-अट्टहास, उपहासा,
व्यापेउ भरि दिगन्त आकाशा ।
चितये पार्थ अधीर सखा-तन,
लखे यदुपतिहु खिन्न अन्यमन ।
भरेउ हृदय, धृति शेष सिरानी,
भाषी अशु विमिश्रित वाणी—
“नाथ ! युयुत्स-वचन विकराला,
सुनि मम तन, मन, प्राण विहाला ।
को यह शिशु जेहि समर सँहारी,
हास-हुलास शत्रु-दल भारी ।
सदा समर-अग्रग, अरि-गंजन,
कुशल तौ तात ! सुभद्रा-नंदन ?
हाँकहु रथ सवेग यदुरायी !
सुत-हित रहे प्राण अकुलायी ।”

दोहा :—सुनि गेरे हरि क्लान्त हय, शिविर-प्रान्त निबरान,
निरखे दुहुन निवेश सब, निरानन्द निष्प्राण । १४२

शान्त महानृक, तूर्य अस्तमित,
एकहु शिविर न जय-स्वर-मुखरित

चतुष्पथहु कहुँ सैनिक . नाहीं ,
 विपणि-वर्त्म सब शून्य लखाहीं ।
 मगध-निवेश सकल श्री-हीना ,
 बाजत कहुँ न मुरज मधु वीणा ।
 शिवस्तवन श्रवणन-सुखदायी ,
 परत न काशि-निवेश सुनायी ।
 सुञ्जय-शिविर जहाँ नित चारण ,
 बरनत निशि रचि गीत दिवस-रण ।
 जुरत सूत बंदी जहँ नाना ,
 मूक आजु सब मनहुँ मसाना ।
 पाण्डव-शिविर लखे पुनि सन्मुख ,
 सिसकत द्वार भृत्यगण नत-मुख ।
 भ्रातन सहित सुभद्रा-नंदन .
 कीन्ह न धाय आजु अभिनंदन ।

बोद्धा :—प्रविशे स्थंदन द्वार तजि, शिविर पार्थ, यदुराय ,
 लखेउ निखिल नृप-कुल विकल, शोक-ग्रस्त, मृतप्राय । १४३

वृद्ध द्रुपद गाम्भीर्य-निकेतन ,
 विलखत सहित अमात्य, आप्रजन ।
 निशि अनु मुद्रित कमल विलोकी ,
 व्याकुल चंचरीक-कुल शोकी ।
 हत-पूर्वहि सब सुत संग्रामा .
 गत-चेतन विराट धृति-धामा ।
 जलनिधि निरखि निमज्जित तरणी ,
 मूर्च्छित मनहुँ वणिक तट-धरणी ।
 दृग-जल-आर्द्र माद्रि-सुत विह्वल ,
 पतित पंक जनु रत्न समुज्ज्वल ।
 वाचा विरल, तप्त अभ्यंतर ,
 श्वसत भीम जनु भुजग भयंकर ।
 मूर्ति विषाद, निहत धृति-मति-गति ,
 लिखित मही जनु धर्म महीपति ।

ग्लानि वदन, उर दाह अपारा,
‘हा! सुत!’—अधर, दृगन जल-धारा।

दोहा :—अंतःपुर हू ते उठत, रहि रहि हाहाकार—
“हा! विधु-आनन! प्राण-धन! हा अभिमन्यु कुमार!” १४४

सोरठा :—सके न शोक सँभारि, गिरे धराण अर्जुन विकल,
बाहु सवेग पसार, भरेउ सुहृद हरि धृति-अवधि।

पोंछत उत्तरीय दृग-वारी,
शोक-हरनि हरि गिरा उचारी—
“सहजहि सुत-सनेह दुर्वारा,
तेहि पै मृदुल स्वभाव तुम्हारा।
उचित तथापि न करव विस्मरण।
वीर-कुलज तुम, यह समराङ्गण।
याचत सदा शूर यश-धामा,
शस्त्र-मृत्यु अभिमुख संग्रामा,
लही सो आजु सुभद्रा नंदन,
उचित कि तात! तासु हित क्रन्दन।
धृति-अभाव प्राकृतजन-लक्षण,
करत न यहि विधि विज्ञ आचरण।
होत प्रवात महीरुह-भंगा,
डिगत कि कबहुँ महीधर-शृंगा?
तुम सत्वस्थ भुवन-विख्याता,
सबहि अभय-अवलंब-प्रदाता।

दोहा :—होहु न मोह-विलास वश, उठहु क्षोभ तजि तात।
करहु विशोकी ये सकल, विकल स्वजन, सुत, आत।” १४५

सोरठा :—भलकेउ गीता-ज्ञान, कहत वचन भगवान-दृग,
बोध, धैर्य, अवधान, प्रविशे क्रमशः पार्थ-मन।

बहुरि प्रबोधि धर्म नरनाथा,
पूछेउ समर-वृत्त यदुनाथा।

बरनि सर्व दुःखान्त कहानी,
गद्गद कण्ठ कही नृप-वर्णी—
“कीन्ह जो कर्म कुँवर एकाकी,
तात ! भुवन समता नहिं ताकी ।
शब्दन सकत कथा को बरनी,
लिखित सो हताहतन रण-धरणी ।
शेष न व्यूह, न गुरु-अभिमाना,
चक्रव्यूह-महि घोर मसाना ।
अंत भात रण-नाति विहायी,
बधेउ खलन मिलि शिशु असहायी ।
ग्लानि तात ! मम हृदय महाना,
रच्छेउ बत्स मोहिं तजि प्राणा ।
धिक पौरुष, रण-ज्ञान हमारा,
दीन्ह न स्वल्पहु शिशुहिं सहारा ।

बोधा :— रोघत पथ जो द्वार नहिं, जयद्रथ मिन्धु-महीप,
वस्सन न असमय तात ! तौ, भारतवंश-प्रदीप । १४६

जस जस सुनी पार्थ सुत-गाथा,
तस तस गर्व-समुन्नत माथा ।
नष्ट शोक, नख-शिख रिस-आगी,
प्रतिहिंसा भीषण उर जागी ।
दर्प-स्वेद सिञ्चित तनु सारा,
प्रणमत हरि-पद वचन उचारा—
“गुनि मन बान्धव-विग्रह यह रण,
कीन्ह नित्य मैं आत्म-संवरण ।
निमिषहु द्वेष न मम उर जागा,
समर-महिहु अनुराग न त्यागा ।
यत्न अनेक नाथ ! तुम कीन्दे,
नित इंगित उपदेशहु दीन्दे ।
गहि कर चक्र प्रणु निज तोरा,
बिनसेउ तबहुँ मोह नहिं भोरा ।

दैं न सके जो तुम प्रभु ! ज्ञाना ,
दीन्ह सुवन करि निज बलिदाना ।

बोहा :—समुकेउ आजुहि तात ! मैं, व्यर्थ जन्म-गत नात ,
सहज बंधु नहिं कोउ जगत, सुजनहि सुजनन-आत । १४७

मिलि कि सकत अनुराग खलन ते ,
सलिल अनल ते, आस उपल ते ?
पापी कुरुजन भये अहेरी ,
सुत मम बधेउ व्यूह-वन घेरी ।
बिनु कीन्हे खल-कुत्त-उन्मूलन ,
लहि नहिं सकत शांति अब मम मन ।
सुत सँग जिन जिन कीन्ह अधर्मा ,
बधिहौं समर क्रूर करि कर्मा ।
रण साधारण काल्हि न ताता !
दण्ड हेतु यात्रा मम प्राता ।
व्यूह-द्वार अवरोधन हारा ,
सैन्धव प्रमुख सुवन-हत्यारा ।
जाय न जो तजि समर परायी ,
आवहि जो न नाथ-शरनाई ,
बधिहौं निश्चय ताहि काल्हि रण ,
प्रभु-पद परसि करत प्रण भीषण ।

बोहा :—अवलोकत तेहिरण जियत, अथवहि काल्हि जो भानु ,
तजिहौं मैं ही प्राण निशि, प्रविश ज्वलत कृशानु ।” १४८

अस कहि करं गाण्डीव उठावा ,
अकस्मात हठि पार्थ चढ़ावा ।
अभिभावित प्रण शब्द कठोरा ,
गूँजेउ कुरुक्षेत्र रव घोरा ।
सुयश-हास सैम विशद सोहावा ,
देवदत्त पुनि विजय बजावा ।

सखा-ओज लखि मुदित हृदय, मन ,
वादेउ पाञ्चजन्य यदुर्नन्दन ।
व्याप्त दशहु दिशि शब्द महाना ,
जनु विचुब्ध शौर्य-निधि-ध्वाना ।
सुप्त शोक-विष भट-समुदायी ,
जागेउ जनु संजीवनि पायी ।
हृत साहस-रस शोक अपारा ,
जनु रवि-रश्मि नैश नीहारा ।
शिविर शिविर प्रति बाजे तत्क्षण ,
शंख, समर-वादित्र सहस्रन ।

दोहा :—दमकी असि तजि कोष कहूँ, कहूँ प्रचण्ड ज्या-नाद ,
उमहेउ प्रतिहिंसा-उदधि, माजित शोक विषाद । १४६

सोरठा:—कुरुजन द्रोण-निवेश, करत मंत्र जब प्रीत मन ,
अर्जुन - प्रण - सन्देश, दीन्ह दूत कौरव-पतिहि ।
चिन्तातुर सुनि द्रोण, सिन्धुनाथ अवसन्न-तनु ,
दुर्योधन-दृग शोण, भाषे वचन सदर्प नृप—

“प्रकटत सुभट समर निज भुजबल ,
दुर्बल-बल संकल्पहि केवल ।
जब जब कह्यु दुख देत विधाता ,
करत सदा प्रभु पाण्डव भ्राता ।
तोषत यहि विधि ये रनिवासू ,
लहत धैर्य तिय, विरमत आंसू ।
निरखि द्यूत-महि कठिन निबाहू ,
किये भीम प्रण उत्थित-बाहू ।
वर्ष त्रयोदश गतं प्रण रीते ,
समरहु दिवस ० त्रयोदश बीते ।
भयेउ न अब लागि मम० उरु भङ्गा ,
अबहुँ रक्त दुःशासन-अङ्गा ।
गुनि सुत-वध-ज्वर-जनित विकल्थन ,
भीमहि सदृश उपेक्ष्य पार्थ-प्रण ।

एकाकी सैन्धव चतुरंगा,
करिहै समर पार्थ-मद-भंगा ।

दोहा :—सहस्र षष्ठितम सादि-गण, दस सहस्र द्विरदेन्द्र,
लक्ष रथिन सह सिन्धुपति, रण-महि आपु महेन्द्र । १५०

खोरठा :—पूरा मोर उद्देश, सफल भयेउ सौभद्र-वध,
लखिहौं अनल प्रवेश, कालिह दगन निज शत्रु कर ।

निरखि सुयोधन करत प्रलापा,
प्रकटेउ सिन्धुनाथ उर-तापा—
“मोहि आपु निज पौरुष-ज्ञाना,
कौरव-बलहु सकल मैं जाना ।
पै यहि विधि पाण्डव अवमानी,
मिथ्या निज माहात्म्य बखानी ।
करि न सकत तुम निज कल्याणा,
दै न सकत काहुहि अवधाना ।
केवल प्रण-प्रगल्भ नहि पाण्डव,
प्रकट पराक्रम भीष्म-पराभव ।
निज दल ते बिलगाय धनंजय,
कीन्ह आत्म-रक्षण तुम दिन द्वय ।
यदुपति सहित पार्थ सोइ प्राता,
करिहै रण सुत-वध रिस-राता ।
प्रिय मोहि जदपि पलायन नाही,
धँसन न चाहहुँ मृत्यु-मुख माहीं ।

दोहा :—देहैं वचन जो द्रोण नहि, रच्छन हित मम प्राण,
तौ रातिहि तजि रण-भेही, करिहौं स्वपुर प्रयाण ।” १५१

लखि राखत सब अनज शर भारा,
वचन धीर आचार्य उचारा—
“रचिहौं व्यूह प्रभात विशेषा,
लहिहै पार्थहु जहँ न प्रवेशा ।

करि पूर्वार्ध शकट-आकारा ,
 रखिहौ तेहि महुँ सैन्य अपारा ।
 पश्चिमार्ध पद्माकृति-अन्तर ,
 रचिहौ सूची-व्यूह भयंकर ।
 तासु मध्य षट अतिरथि-रक्षित ,
 रहिहौ तुम निज वाहिनि-परिवृत ।
 शकट व्यूह-मुख-रक्षण-भारा ,
 अबहीं ते मैं निज शिर धारा ।
 सकिहै जो रण मोहिं पछारी ,
 सकिहै जो मथि सेना सारी ,
 सकिहै जो अतिरथिन हराथी ,
 सकिहै सोइ तुमहिं नियरायी ।

दोहा :— यहि ते अधिक न करि सकत, संरक्षण मैं तात !
 तजहु हृदय-कारण्य तुम, वीर-वंश-संजात !” १५२

सोरठा:— सुनि त्यागेउ उर दैन्य, लज्जा-नत-शिर सिन्धुपति ,
 बाजे कौरव सैन्य, बाघ ओज-वर्धक विपुल ।

उत प्रवीण निज दूत पठायी ,
 रिपु-दल-वृत्त लहेउ यदुरायी ।
 दारुक सारथि भक्त, सुजाना ,
 बोलि वचन भाषे भगवाना—
 “काल्हि वधन-हित जयद्रथ दुर्जय ,
 कीन्ह महाप्रण क्रुद्ध धनंजय ।
 उत गुरु द्रोण, समस्त सुभटगण ,
 करिहैं रण सैन्धव-संरक्षण ।
 जानत तुम सुत, बान्धव, दारा ,
 प्रिय न मोहिं जस पार्थ पियारा ।
 कुन्ती-सुत विरहित जग मांहीं ,
 निमिषहु जियत चहत मैं नाहीं ।
 विग्रह जो वसु-वसुधा लागी ,
 ताही हित मैं आयुध-त्यागी ।

पार्थ-प्राण हित काल्हि घोर रण ,
लायेउ रथ प्रभात समराङ्गण ।

दोहा :— सकिहैं जो नहि हति रिपुहि, पार्थ रहत दिन शेष ,
करिहौ पूर्ण वयस्य-प्राण, बाध मै सिन्धु-नरेश । १५३
बाजहि जेहि क्षण स्वरऋषभ, पाञ्चजन्य यह घोर ,
हाँकेउ सुनतहि तात ! तुम, रथ सवेग मम ओर । १५४

सोरठा :—स्वामी - प्रेम - पिपासु, सुनि गवनेउ दारुक मुदित ,
इत पाण्डव-रनिवासु, प्रविशे करुणाकंद हरि ।
लखीसकलतिथ दीन, धैर्य-विलीन मलीन तनु ,
मनहुँ अमरतरु-हीन, निरानंद नंदन विपिन ।

सतत शोकिता कुन्ती माता ,
निष्प्राणित जनु नव आघाता ।
सहि भरि दिवस प्रवात-प्रहारा ,
हत दिनान्त जनु लता तुषारा ।
प्राकृत प्रमदा सम सुकुमारी ,
मोचति द्रुपद-सुता दृग वारी ।
पतित उत्तरा मूर्छित धरणी ,
शर विष-दिग्ध विद्ध जनु हरिणी ।
हाहाकार-गेह रनिवासू ,
एक सुभद्रहि-दृगन न आँसू ।
पीर गँभीर नारि नहि रोयी ,
उर शोकाब्धि, विलोचन दोई !
निरखि हरिहि जनु सागर ज्वारा ,
सहसा बहे वदन उद्गारा—
“अछत वृष्णिपत्नि, चक्र सुदर्शन ,
अछत पार्थ, गाण्डीव शरासन ,

दोहा :— अछत वृकोदर-कर, गदा, अद्रि-विदारिणि घोर ,
अछत सिंह त्रय कोहि हतेउ, रण-हरिणेश-किशोर ? १५५

अन्तर्बाष्प भगिनि हरि जानी ,
 शमत शोक भाषी शुचि वाणी—
 “तुम वीरजा, वीर-पति-गृहिणी ,
 वीर-जननि, वीरद्वय भगिनी ।
 कहँ यह गौरव ! कहँ यह मोहा !
 शोक कि शुभे ! तुमहिँ अस सोहा ?
 करि अभिमन्यु जासु पय पाना ,
 भयेउ सर्व-विजयी धनुमाना ,
 तेहि न दैन्य दुख ते कछु काजू ,
 गर्वहि उचित तासु उर आजू ।
 तजि अनित्य तनु तनय प्रवीरा ,
 अमर आजु लहि सुयश-शरीरा ।
 कीन्हे कुँवर कृतार्थ उभय कुल ,
 मम मन गर्व तासु मैं मातुल !
 तुमहु कुलोचित धीरज धारी ,
 करहु विशोक बधू सुकुमारी ।

दोहा: — शिशु-जीवन-कलिका दली, तजि विवेक जेहि आज ,
 जरिहै अर्जुन शर-ज्वलन, काल्हि सो राज-समाज ।” १५६

सोरठा:—दीन्ह स्वसहि आशवास, बहुरि प्रबोधीं तिय सकल ,
 तजि पाण्डव-रनिवास, गवने श्रीहरि निज शिविर ।
 तेहि निशि धर्म-नरेश, विकल बन्धु-कलथाण-हित ,
 लही न नीद निमेष, यापी यामिनि हरि-सुमिरि ।

प्रात प्रसन्न-चदन यदुनंदन ,
 लाये द्वार साजि जब स्यंदन ।
 मोचत लोचन सलिल-प्रवाहा ,
 सौपेउ अनुज हरिहिँ नरनाहा—
 “जानत तुम मम मन भगवाना !
 अनुजन माहिँ वसत मम-प्राणा ।
 खोय समर-महि एवहुँ भ्राता ।
 सकत न धारि प्राण मैं ताता !

दग्ध हृदय सुत-शोक-हुताशन ,
तेहि पै वज्र-निपात पार्थ-प्रण ।
गिरत कूप जो घट यदुनाथा !
तजत कि कोउ रज्जु तेहि साथी ?
यह अनर्थमय प्रण मम लागी ,
सकेउँ निवारि न तदपि अभागी ।
तुमहि नाथ ! अब रच्छन हारे ,
सौपत अर्जुन हाथ तुम्हारे ।

दोहा :—कीन्हि जो मैं कछु पुरय कृति, जप-नप जग यदुनाथ !
फलहि आजु सब पार्थ-हित, रच्छहि रहि रथ-साथ ।” १५७

सुनि नृप-समाधान प्रभु कीन्हा ,
आपु धनंजय धीरज दीन्हा ।
पुनि संनद्ध, सवेग प्रवाहिनि ,
बढ़ी रणोन्मुख पाण्डव-वाहिनि ।
लखेउ समर-महि पहुँचि धनंजय ,
द्रोण विनिर्मित व्यूह दुरत्यय ।
जेहि जेहि ओर करत दगपाता ,
परत दृष्टि कुरुदल-संघाता ।
जनु प्रति पल चतुरंग शस्त्र-धृत ,
रही उगिलि महि, व्योमहु बरसत ।
दर्प-विदीपित अर्जुन-आनन ,
जनु मृग-यूथ निरखि पंचानन ,
बोलि समीप वीर युयुधाना ,
शौर्य प्रशंसि शिष्य सन्माना ।
धरि शिर अभ्रज-रक्षण-भारा ,
लखि हरि दिशि कर धनुष सँभारा ।

दोहा :— हाँके हय हरि, धूल नभ, दीर्ण कर्ण व्या-रोर ,
लखि सन्मुख गज-रुद्ध पथ, तजे पार्थ शर घोर । १५८

सोरठा —कौरव-दलहु सरोष, दुःशासन-प्रेरित बढेउ ,
घोर शंख निर्घोष, गज-घंटा-तृहण-निनद ।

शान्त कछुक जस विषम विरावा,
कीन्हेउ दुर्मद द्विरदन धावा ।
मनहुँ महार्णव क्षुब्ध प्रभञ्जन,
उत्थित तुङ्ग महोर्मि सहस्रन ।
घेरेउ श्रीहरि-अर्जुन-स्यन्दन,
जिमि नभ अरुण विरोचन घनगण ।
तजे अभीत धनञ्जय बाणा,
प्रसरित रण रवि-किरण समाना ।
हेम-पुङ्ख शर विद्ध मतङ्गा,
उल्का दीप्त मनहुँ गिरि-शृङ्गा ।
गिरे निषादि सहित अम्बारी,
छिन्न-कवच, शोणित उद्गारी ।
छादित धरणि हताहत द्विरदन,
कटे कुंभ, कट, दन्त, निवेष्टन ।
विपुल पलायित बाण-बिहाला,
गड़गड़ात, चिघरत कराला ।

दोहा :— लखि दुःशासन दंति हत, भग्न निखिल दल-अप्र,
भागि द्रोण पाछे दुरेउ, आन्त-चित्त, त्रण-व्यग्र । १५६

सोरठा :— कुद्ध हृदय आचार्य, रोषेउ पथ लखि रथ बढ़त,
जानि समर अनिवार्य, घरे अर्जुनहु शर धनुष ।

दोउ अजेय श्रेष्ठ धनुमाना,
दुहुन दिव्य शस्त्रास्त्रन-ज्ञाना ।
दोउ प्रण-बद्ध, रोष दुहुँ ओरा,
भयेउ घरिक आयोधन घोरा ।
द्विज-शर-विक्षत हरि-हय प्रेरत,
अंतरिक्ष पुनि प्रतिक्रण हेरत ।
चढ़त दिवसपति निरखि अधीरा,
भाषे सखहि वचन यदुबोरा—
“बढ़ेउ तात ! रवि-रथ, नभ माहीं,
प्रविशे अबहुँ व्यूह तुम नाहीं ।

उमहत घेरत जदपि घोर घन,
विरमत व्योम न दिनपति-स्यंदन ।
तैसेहि तुमहु करत संग्रामा,
बढ़त चलहु प्रति पल अविरामा ।
केतनहु होय रोष उर माहीं,
बधिहौ गुरुहिं स्वकर तुम नाहीं ।

दोहा :— बिनु वध द्रोणहि तात ! तुम, सकत न समर हराय ,
ताते अनुमति देहु मोहिं, बढ़िहौं गुरुहि बराय ।” १६०

अस भाषत तत्क्षण यदुनंदन,
हाँकेउ मण्डल-गति निज स्यंदन ।
करत मनहुँ गुरु द्रोण-प्रदक्षिण,
क्रम क्रम तदपि बढ़े दिशि दक्षिण ।
सचकित द्रोण भेद जब जाना,
त्यागे व्यंग वचन सह बाणा—
“रही तुम्हारि पार्थ ! जग ख्याती,
तजत न रण अविजित-आराती ।
लहेउ अयश तजि समर जनार्दन,
करत तुमहुँ रणछोड़-अनुकरण ।”
मुनि कीन्हेउ अर्जुन प्रतिभाषण—
“सतत अनुकरण-योग्य महत जन ।
पुनि गुरु सन्मुख तजि संग्रामा,
शिष्यहिं काह लाज ते कामा ?
चहत करन जो शिष्य-परीक्षण,
राखहु अन्यहि दिवस कतहुँ रण !”

दोहा :— असकहि गुरु-पद बाण तजि, अर्जुन कीन्हे प्रणाम,
मुदित युगान्त-प्रवात-गति, रथ हाँकेउ घनश्याम । १६१

सोरठा :— शकट व्यूह विनिवेश, कीन्हेउ जैसेहि पार्थ हरि,
सादि समूह अशेष, उमहेउ पारावार सम ।

मद्र, यवन, काम्बोज, उशीनर,
 शक, अम्बष्ठ, बसाति वीरवर ।
 प्रास, कुन्त-धृत अश्वारूढा,
 बढे युद्ध-दुर्मद सब व्यूढा ।
 सके न पै हरि-रथ नियराथी,
 बरसे अर्जुन शर-समुदायी ।
 महि, नभ, दिशि, विदिशा दुर्दर्शन,
 एकीभूत सर्व शर-वर्षण ।
 विशिख-जाल-विक्षत अंग-अंगा,
 गिरे विचेतन श्वेत तुरंगा ।
 पावस ऋतु हिमशैल मराला,
 पतित मही जनु वृष्टि-विहाला ।
 गान्धारज, बाह्लीकज, सिंधुज,
 आरट्टज, पारस्य, वनायुज ।
 बहु देशज हय रण महि आहत,
 जिह्वा-स्रस्त सकष्ट कराहत ।

बोद्धा :— सस्वर अश्ववार-शिर, गिरे छिन्न चहुँ ओर,
 पक ताल फल जनु भरत, भँभानिल भकभोर । १६२

दाहत सादि अश्व शर-ज्वाला,
 बधेउ पार्थ अम्बष्ठ भुआला ।
 निरखि बढत पुनि हस्त शस्त्रधर,
 शूर श्रेष्ठ काम्बोज-अधीश्वर,
 हनेउ सुतीक्ष्ण विशिख वक्षस्थल,
 गिरेउ सुदक्षिण विद्ध धरणितल ।
 भ्रष्ट किरीट, नष्ट तनुत्राणा,
 कीर्ण आभरण भट निष्प्राणा ।
 जिमि समुहाय जलधि इक बारा,
 सकति न लौटि बहुरि सरि-धारा ।
 तिमि अर्जुन-रथ जो समुहाना,
 मज्जित शौर्य-सिन्धु अवसाना ।

भग्न अनी, जनु वात-विघाता,
छिन्न-भिन्न नभ वारिदन्नाता ।
तोत्र, कशा हुंकार, शरासन—
प्रेरत अश्व तजेउ रण रिपुगण ।

शेढा :— धायेउ हरि-स्यंदन बहुरि, शकट व्यूह करि पार,
सन्मुख कृतवर्महि लखेउ, पद्म व्यूह-रखवार । १६३

धायेउ कृत संनद्ध रणाङ्गण,
मद-श्री-शोभित जनु ऐरावण ।
साहस-शील, समर-अनुरागी,
कीन्ह क्रूर रण कुरुपति लागी ।
लखि विलम्ब भाषेउ यदुरायी—
“रहे तात ! तुम शत्रु खेलायी ।
हृदिक-सुतहि संबंधि विचारी,
कोमल वृत्ति बहुरि उर धारी ।
प्रिय मोहिं येहू जिमि युयुधाना,
पै न समर महि नेहस्थाना ।
आहुति लहत अनल गृह माहीं,
पूजत तेहि मसान कोउ नाहीं !
गुनि मन जयद्रथ-सम कृतवर्मा,
करहु विक्रमोचित रण-कर्मा ।”
मुनि अर्जुन निज पौरुष साँचा,
प्रकटेउ धारि धनुष नाराचा ।

शेढा :— भग्न ध्वजा, सूताश्व हत, विद्ध वज्र, भुज भाल,
पतित विमूर्च्छित भोजपति, स्यंदन व्यथा-विहाल । १६४

सोरठा :— हाँकेउ रथ श्रीरंग, लहि पथ गवने दूरि कछु,
सहसा लखे तुरंग, श्रान्त, पिपासु, शरात-तनु ।

यदुपति जस स्यंदन विरमावा,
वाञ्छित अवसर कुरुपति पावा ।

गवनेउ द्रोण समीप सत्तोभा,
 कहेउ वचन आविवेकि अशोभा—
 “मथि मम महा चमू, करि जन-क्षय,
 प्रविशेउ सरसिज व्यूह धनंजय ।
 नृप अम्बष्ठ पठै यम-धामा,
 हति काम्बोज-पतिहिं संग्रामा ।
 करि अवपाशित कृत शर-पाशा,
 पहुँचन चहत सिन्धुपति पासा ।
 तुम विश्वास-घात अति कीन्हा,
 प्रविशन व्यूह धनंजय दीन्हा ।
 लहत वृत्ति तुम, निवसत मम घर,
 मम विप्रिय-रत रहत निरंतर ।
 मधु-प्रदिग्ध छुर सम तुम भीषण,
 छलत मोहिं करि नूतन नित प्रण ।

बोद्धा :— देत राज-आदेश मै, तजि यह थल यहि काल,
 गवनहु सूची व्यूह तुम, रच्छहु सिन्धु मुआल ।” १६५

सोरठा :— शोण द्रोण गुरु-नैन, सुनि पावक मानी हृदय,
 भाषे दारुण बैन, भरित अवज्ञा शब्द प्रति—

“तुम कुबुद्धि, स्वच्छंद, प्रवादी,
 दुराग्रही, सुहृदन-अवसादी ।
 आप्रह तुम सरिसुत-सँग कीन्हा,
 पठै अकाल काल-मुख दीन्हा ।
 काल्हि नृपत्व मोहिं दरसावा,
 धैरि अबोध बाल बधवावा ।
 करि हठ तुम पार्थहिं उकसावत,
 परि विपत्ति कटु वचन सुनावत ।
 युद्धत मै निज शक्ति-प्रमाणा,
 करत तदपि तुम, मम अपमाना ।
 भरत पुरातन रण-व्रण नाही,
 होत नवीन नित्य तनु माहीं ।

आजहु कीन्ह समर मैं घोरा,
क्षत विशिखन तिल-तिल तनु मोरा।
पै प्रवीण सारथि यदुरायी,
धँसे व्यूह मम बाण बरायी।

दोहा :— रोके मैं यहि थल निखिल, पाण्डव अनी अजेय,
रोकहि उत मिलि षट रथी, एकाकी कौन्तेय । १६६

कहाँ आजु बल्लभ वैकर्तन ?
करत न कस सैन्धव संरक्षण ?
शिष्यन मैं लहि वृत्ति पढ़ावा,
सेंति तुम्हार अन्न नहि खावा।
मद-गोष्ठी, पैशुन्य विहायी,
करत काह सूतज सेवकाई ?
जेहि तुम दीन्ह अंग-महि राजू,
पठवत तेहि न समर कस आजू ?
नृप तुम निवसत जब सिंहासन,
समर-मही अधिनायक-शासन !
देत निदेश तुमहि मैं यहि क्षण,
जाहु, धनंजय साथ करहु रण-!
देहौ तजि पद पहुँचि निवेशा,
पालहु रण-महि मोर निदेशा।
मिथ्या द्यूत तुमहि तब भावा,
अब रण-द्यूत देखि भय छावा।

दोहा :— द्विरद-दन्त पाँसा तबहि, अब पाँसा शित बाण,
वसु-वसुधा बाजी तबहि, अब बाजी तन-प्राण ! १६७
तब हित मैं नत दन्ति मम, कीन्ह स्वतनु सोपान,
युद्धहु अब आपुहि स्वहित, मोहि असह्य अपमान ।” १६८

लखि गुरु, रौद्र रूप नृप काँपा,
क्रम क्रम आत्म-ज्ञान मन व्यापा।

जानि हठी द्विज वचनन-तत्पर ,
 भयेउ दीन नृप विगत दर्प-ज्वर ।
 एकहि भाँति होत वश गुरुजन ,
 तजि विवाद पद आत्म-समर्पण ।
 गहे चरण नृप दंभ-प्रवीणा ,
 भाषत वचन कंठ-स्वर क्षीणा—
 “अरि-विक्रान्त, भ्रान्त मन मोरा ,
 छमहु कहे जो वचन कठोरा ।
 सके रोकि आपुहि नहि जाही ,
 सकिहौ जीति न मैं रण ताही ।
 तदपि शीश धरि वचन तुम्हारा ,
 मरणहु रण मोहि अंगीकारा ।
 लहि तुम्हार अंगुलि-निर्देशा ,
 ज्वलित अनल करि सकहुँ प्रवेशा !”

दोहा :— अस कहि समरोद्यत बड़ेउ, कुरुपति कपट-सयान ,
 उपजी करुणा द्विज-हृदय, बिनसेउ रोष महान । १६६

सोरठा :— निज ढिग बहुरि बोलाय, रण स्फूर्ति भरि, शोक हरि ,
 पठयेउ अँग पहिराय, सर्व-अस्त्र-वारण कवच ।
 हृदय समर-उत्साह, दिव्य कवच-माहात्म्य सुनि ,
 गीन्ह गमन नरनाह, अर्जुन-प्रतिभट आपु गुनि ।

पाञ्चजन्य-रव ताही काला ,
 भयेउ भुवन-व्यापी विकराला ।
 सुनि उत धर्मज-मुख कुँभिलाना ,
 उर आतंक, शुष्क जनु प्राणा ।
 धैर्याब्धि हु उर धैर्य विहायी ,
 बोलेउ नृप युयुधान बोलायी—
 “निरखहु उठत व्यूह प्रलयंकर ,
 मृत्यु-जिह्व शस्त्रास्त्र भयंकर ।
 उड़त बाण नभ मनहुँ विषानन ,
 शमनहि करत मनहुँ रण-क्रीडन ।

पाञ्चजन्य यदुराज बजावत ,
 देवदत्त-स्वर श्रुति नहि आवत ।
 बादि अनुज धिनु विभव, राज्य, जय ,
 बादि जियन मम धिना धनंजय ।
 व्यूह विपत्ति-प्रस्त मम भ्राता ,
 लावहु जाय वृत्त तुम ताता !”

दोहा :— गुनि नृप-रक्षा-भार शिर, सकुचे मन युयुधान ,
 सुनी न एकहु पै नृपति, विधुर धनंजय-ध्यान । १७०

बढ़ेउ व्यूह दिशि शिनि-सुत योद्धा ,
 कीन्ह न द्रोण गुरुहु प्रतिरोधा ।
 आगे लीन्ह सैन्य जब घेरी ,
 दृष्टि द्रोण धर्मज-दिशि फेरी ।
 नृपहि अरक्षित रण-माहि पावा ,
 विद्युत-वेग कीन्ह गुरु धावा ।
 बढ़ेउ निरखि शिशुपाल कुमारा ,
 धृष्टकेतु अतिरथी जुभारा ।
 पै गुरु शरन ढाँपि तेहि दीन्हा ,
 तूणहि निखिल रिक्त जनु कीन्हा ।
 पल महँ हरे चेदिपति प्राणा ,
 कवचहि भयेउ मृतक-परिधाना ।
 पुनि मगपति सहदेवहि पावा ,
 बधेउ मृगेश मनहुँ मृग-शावा ।
 बहुरि वीर पाञ्चाल प्रचारे ,
 पञ्च द्रुपद-सुत द्रोण सँहारे ।

दोहा :— बंधु-निधन लखि निज हगम, घृष्टधुम्न विकराल ,
 जीवन-तृष्णा तजि बढ़े, मूर्तिमन्त जनु काल । १७१

हति अगणित गुरु-रथ-अनुगामी ,
 समुहाने द्रोणहि वध-कामी ।

विषस्पर्श-शर शत शत त्यागे ,
 सके निवारि न गुरु, उर लागे ।
 रुधिर-प्रदिग्ध विद्ध वक्षस्थल ,
 मूर्च्छित वयोवृद्ध द्विज विह्वल ।
 लब्ध-सुयोग क्रोध उर गाढ़ा ,
 तीक्ष्ण कृपाण द्रुपद-सुत काढ़ा ।
 चढ़ि रथ बढेउ बधन जस योद्धा ,
 भरद्वाज-सुत लहेउ प्रबोधा ।
 रण-विद्ध, अद्वितीय धनुमाना ,
 धरे धनुष वैतस्तिक बाणा ,
 निकटवर्ति रिपु वेधन हारे ,
 शर विशेष आचार्य पँवारे ।
 पीडित धृष्टद्युम्न तजि स्यंदन ,
 आरंभेउ द्वैरथ-आयोधन ।

बोद्धा :— उत्थित ताही क्षण बहुरि, पाञ्जजन्य-स्वर घोर ,
 लौटे शैल्य न वृत्त लै, धर्मज शोक-विभोर । १७२

पठयेउ भीमहिं सहठ नरेशा ,
 कीन्ह वृकोदर व्यूह प्रवेशा ।
 लखेउ द्रोण रथ बद्धत समीपा ,
 जंगम मनहुँ अहंकृति-द्वीपा ।
 करत विनोद वचन गुरु भाखा—
 “सात्यकि पार्थ मान मम राखा ।
 जानि अजेय मोहिं संग्रामा ,
 गये व्यूह करि विनय-प्रणामा ।
 मिथ्या दर्प तुमहुँ बिनु त्यागे ,
 एकहु पग न सकत धरि आगे ।”
 सुनत वृकोदर हस्य अरुणारे ,
 अट्टहास सह वचन उचारे—
 “तुम निरस्त्र सौभद्र निपाता ,
 बंदी करन चाहत मम भ्राता

शिष्य न अब मैं, गुरु तुम नाहीं,
लेहु जो मिलत समर-महि माहीं ।”

दोहा :— अस भाषत फेंकी गरा, अशनि-सदृश अनिवार्य,
विनशे सारथि, रथ, तुरग, उछरि बचे आचार्य । १७३

सोरठा :— मथि अरि-अब्धि महान, घातैराष्ट्र पथ अष्ट बधि,
लखे भीम युयुधान, करत हृदिक-सुत-सँग समर ।

उत विरमाय विटप-तल स्यंदन,
क्रिये विशल्य अश्व यदुनंदन ।
औषधि लेपि व्यथा-अपहारी,
रहे पियाय जबहि हरि बारी,
लब्ध-संधि लै रथ-संघाता,
बढ़े विन्द अनुविंद दोउ भ्राता ।
घर्घर-स्वर चहुँ ओर अपारा,
उमहेउ जनु रथ-पारावारा ।
घेरे दोउ पार्थ यदुनाथा,
सान्ध्य मेघ जनु रवि शशि साथा ।
शस्त्र-रहित हरि शंख उठावा,
पाञ्चजन्य भरि ओज बजावा ।
भरित भुवन-त्रय घोर प्रणादा,
कम्पित सचराचर सविषादा ।
मूर्च्छित निज निज रथ भट नाना,
निश्चल बाहन जनु पाषाणा ।

दोहा :— जागहिं जब लागि शत्रु-रथि, धरि अर्जुन धनु बाण,
हरि चहुँ दिशि तत्क्षण रचेउ, दीपत बाण-वितान । १७४

जिमि पावस ऋतु सेतु ढहावन,
उमहत सरि जल-ओघ भयावन,
तिमि पार्थहिं शस्त्रास्त्र-प्रवाहा,
विंद अनुविन्द बहावन चाहा ।

पै कौन्तेय-अचल टकरायी,
रुद्ध वीर-वाहिनि निरुपायी ।
दीर्घग पृथु, सुपर्व, अरि-प्राप्ती,
वरसे शर प्रतिशस्त्र-विनाशी ।
गिरे छिन्न शर शीश मनोहर,
व्योम-स्रस्त जनु पूर्ण कलाधर ।
शव-परिपूर्ण जदपि समराङ्गण,
कीन्ह न मालवगण रण-त्यागन ।
युद्धत रण-उन्माद महाना,
कब कटि शीश गिरेउ नहि जाना ।
धावत रण कबन्ध उठि नाना,
कछु धृत-खड्ग कछुक धनु-बाणा ।

दोहा :— जदपि अर्ध-मृत महि परे, छिन्न-भिन्न अंग-अंग,
रहे माँगि शर-धनु तबहुँ, मिटी न समर-उमंग । {७३}

सोरठा :— वधे विन्द अनुविन्द, अगणित रथि-सह पार्थ इत,
उत स्पंदन गोविन्द, योजे विराहत-क्लान्ति हय ।

हत-नायक पै मालव योद्धा,
कीन्ह युद्ध पद पद प्रतिरोधा ।
शर-बल पंथ पार्थ निर्मावत,
विविध गतिन हरि रथहि चलावत ।
बढ़त जात क्रम-क्रम श्रीरङ्गा,
चीरि मकर जिमि जलधि-तरङ्गा ।
निकसेउ रथ रथि-पाश निवारी,
राहु-विमुक्त मनहुँ दिनचारी ।
जैसेहि सूचि व्यूह नियराना,
वादेउ पाञ्चजन्य भगवाना ।
सहसा कीन्हेउ धार सुयोधन,
सूची व्यूह-द्वार-अवरोधन ।
द्वन्द्व युद्ध हित पार्थ-प्रचारी,
गर्व गिरा कुरुनाथ उचारी—

“मैं एकाकी, तुम-यदुराजू,
मिलि प्रकटहु निज विक्रम आजू।

बोहा :— लहे दोउ शस्त्रास्त्र जे, पार्थिव दिव्य अपार,
करहु सुदर्शन चक्र सह, आजु समस्त प्रहार।” १७६

अस कहि विशिख प्रखर बहु प्रेरे,
बेधे अँग-अँग अर्जुन केरे।
हरिहु-हृदय-भुज करत प्रहारा,
काटि हस्तप्राजन महि डारा।
क्रोधित पार्थ शरावलि त्यागी,
निष्फल सकल कवच-तल लागी।
हने बहुरि अभिमंत्रित बाणा,
सके न सोउ भेदि तनुत्राणा।
अर्जुन चकित भेद अनुमानी,
कही विहँसि श्रीहरि सन वाणी—
“कवच जो मोहि आचार्य बतावा,
आजु सोइ यहि गुरु ते पावा।
जे धन्वी, दिव्यास्त्रन-ज्ञाता,
तिनहिन हित तनुत्र यह ताता।
सकत कवच दै काहुहि गुरुजन,
श्वानहिं करि न सकत पंचानन।

बोहा :— बधि न सकत मैं आजु यहि, इतनहि कवच-प्रभाव,
करत अबहिं पै रण-विमुख, निरखहु नाथ उपाव।” १७७

अस कहि रोष-अमर्ष-समन्वित,
धरेउ धनुष शर भल्ल शिला-शित।
कर्षि श्रवण-लगि, ध्वज तकि, त्यागा,
पतित छिन्न मणि-निर्मित नागा।
अकस्मात तजि वारिद-ब्राता,
समर अवनि जनु तड़ित-निपाता।

बहुरि छत्र शिर शुभ्र विलोका,
जनु कौरव-कुल-श्री-आलोका ।
त्यागि तीक्ष्ण नालीक गिरावा,
शकलित शशि जनु महि तल आवा ।
भंजि धनुष पुनि बधे तुरंगा,
निहत सारथी, स्यंदन भंग्ग ।
कवच-सुरक्षित तजि तनु सारा,
कीन्ह पार्थ पुनि पाणि प्रहारा ।
छिन्न-भिन्न करि अंगुलि-वेष्टन,
कीन्ह मांस-नख-अन्तर वेधन ।

बोद्धा :— मर्मस्थल-पीडित, व्यथित, नष्ट राजसी साज ,
पद-चारी, रण-महि तजी, गलित-गर्व कुरुराज । १७८

गवनेउ कर्ण ओर कुरुनंदन,
प्रविशे सूचि व्यूह यदुनंदन ।
अवलोकेउ परसत आकाशा,
जयद्रथ-ध्वज अरुणार्क-प्रकाशा ।
माला-भूषित, हेम-परिष्कृत,
मध्य वराह रत्न-मणि निर्मित ।
चहेउ बढन जैसेहि तेहि ओरा,
सुनेउ भीम-गर्जन-रव घोरा ।
निरखे आवत सात्यकि साथी,
जनु वैश्वानर सह सुरनाथा,
सात्यकि श्रान्त, उग्र अति भीमा,
लखि अनुजहि हिय हर्ष असीमा ।
वृषित पथिक जनु मरु करि पारा,
लखी समीप विमल जल-धारा ।
अंकमाल दै एकहि एका,
मिले सकल आनंद अतिरेका ।

बोद्धा :— अग्रज चिन्तिन पार्थ सुनि, देवदत्त लै हाथ,
बादेउ,—उत निघोष सुनि, मुदित धर्म नरनाथ । १७९

पाण्डव-दल प्रहृष्ट सब जेहि क्षण,
बिलखेउ कर्ण समीप सुयोधन—
“बाँधि बाल जिमि सूत्र विहङ्गा,
करत क्रूर क्रोडन तेहि सङ्गा,
तिमि रथ भंजि, ध्वंसि सब साजू,
दुर्गति पार्थ कीन्ह मम आजू।
सहि अरि-हाथ घोर अपमाना,
एकहि आस रहे तनु प्राणा—
रच्छि आजु समराङ्गण सैन्धव,
करिहौ तुम उर्वी निष्पाण्डव।
रच्छे जयद्रथ पार्थ वितथ-प्रण,
करिहै निशा प्रवेश हुताशन।
मृत अर्जुन तजिहै नृप प्राणा,
नृप सँग सब अनुजन अवसाना।
लहिहैं हम नहि पुनि अस अवसर,
होहु समर हित तात ! अप्रसर।

बोद्धा :— स्वल्पहि दिन अवशेष अब, शरन समर-महि छाँय,
दरसावहु भुज-अस्त्र-बल, सैन्धव लेहु बचाय।” १८०
भाषे इत कुरुर्पात वचन, उत कपि-ध्वज लहरान,
कृत-निश्चय राधा-सुवन, रण-हित कीन्ह प्रयाण। १८१

सोरठा :— लखि गवनत वसुषेण, अश्वत्थामा, शल्य, शल,
कृपाचार्य, वृषसेन, बड़े समर भूरिश्रवा।

घाये अर्जुन दिशि करि गर्जन,
ताकि गजहिं जनु व्याघ्र अनेकन।
भार किरीटी-शिर अति जाना,
प्रविशे समर भीम, युयुधाना।
रोकेउ कर्णहिं धाय वृकोदर,
रोधत वायु-वेग जिमि भूधर।
विघ्न विलोकि कुपित दुर्योधन,
जनु प्रथमहिं अनिष्ट-संदर्शन।

बोली अलंबुष राक्षस-नाथा ,
 पठयेउ भीम ओर कुरुनाथा ।
 गवनत यातुधान अवलोका ,
 बड़ि युयुधान बीच पथ रोका ।
 भिरे वर्म नख-शिख दोउ धारे ,
 जनु नभ नैश जलद कजरारे ।
 प्रेषी राक्षस शक्ति महाना ,
 देह प्रविद्ध व्यथित युयुधाना ।

दोहा :— सहसा कषिं शरीरं ते, घोर शक्ति शैनेय ,
 तर्जत ताही ते हतेउ, यातुधान दुर्जेय । १८२

शिथिल जबहि सत्यकि तनु सारा ,
 रण हित भूरिश्रवा प्रचारा ।
 गुनि मन प्राणहु ते बड़ि माना ,
 स्वीकारेउ यादव आह्वाना ।
 भयेउ प्रथम द्वैरथ रण दारुण ,
 पुनि रथ त्यागि भिरे रक्ताहण ।
 लै असि-ढाल बहुरि समुहाने ,
 खण्डित सोउ गदा कर ताने ,
 चूर्ण-विचूर्ण भयीं जब सोऊ ,
 कीन्हेउ बाहु-युद्ध पुनि दोऊ ।
 मनहुँ प्रमद दन्तावल कानन ,
 युद्धत दारुण शुण्ड-विषाणन ।
 भये श्रान्त अति सात्याक क्रम-क्रम ,
 प्रकटेउ भूरिश्रवा पराक्रम ।
 अधर उठाय भँवाय पछारा ,
 गहि कच कीन्हेउ पाद प्रहारा ।

दोहा :— चहेउ करन जस छिन्न शिर, काढ़ि कराल कृपाण ,
 शिष्य-दर्यात अर्जुन तजेउ, ताहीं क्षण क्षुर बाण । १८३

सोरठा :— गिरेउ सहित करवाल, साङ्गद कूट भुज भूमितल ,
 उठि सात्यकि तत्काल, हतेउ अरिहि गहि खड्ग सोइ ।

सोरठा—युद्धत सैन्धव ओर, बड़े धनंजय उत बहुरि,
इत संगर अति घोर, कीन्ह भीम वसुषेण संग ।

लहि अनिमित्त-पिशुन, विद्वेषी,
क्रुद्ध भीम राधेय-वधैषी,
कोन्ह छिन्न अरि-बाणन-व्यूहा,
चक्रवात जिमि शलभ-समूहा ।
वेधत बहुरि कर्ण-अंग सारा,
बधि तुरंग सारथि संहारा ।
स्यंदन अन्य कर्ण चढ़ि धावा,
गदाघात सोउ भीम नसावा ।
निरखि विपत्ति-ग्रस्त वैकर्तन,
धार्तराष्ट्र रण बड़े अनेकन ।
भीमहु भिरे रोष-रस-राते,
तीसक कुरुपति-अनुज निपाते ।
लब्ध सुअवसर राधानंदन,
काटेउ कर्मक करि गुरु गर्जन ।
त्यागी बहुरि उग्र शर-माला,
शीर्ण तनुत्र, देह ब्रण-जाला ।

बोहा :— लखेउ आधिरथि ताहि क्षण, विकल पार्थ-शर-जाल ,
भागत कौरवदल निखिल, तजिरण सिन्धु-भुआल । १८४

भागत बंधुहु बंधु विहायी,
करत न पितु निज सुतहु सहायी ।
विकवच, बाहन-विरहित, निर्जित,
दीर्ण-देह, ब्रण रक्त प्रवाहित ।
मुक्त-केश, मुख करुणा-क्रन्दन,
सत्त्व विहीन, हस्त पथ प्रहरण ।
मृत्युहि अर्जुन-शर बनि आयी,
रही शूर जनु रण पड़ियायी ।
समुकुट छिन्न काहु शिर रुरा,
काहु भुजा के युधिष्ठिर ।

तोमर-युक्त दन्ति-पति-हाथा ,
 हयारोहि-भुज पट्टिश साथा ।
 कशा-सुशोभित सारथि-बाहू ,
 सहित चर्म-असि पत्ति प्रबाहू ।
 द्विरद-विषाण-शुण्ड हय-शीशा ,
 स्यंदन-चक्र, अक्ष, युग, ईषा ।

दोहा :— भागत जीवित जे अबहुँ, नर-वाहन टकरात ,
 गिरत धरणि-तल श्रान्त कछु, शव-समूह दुरि जात । १८५

सोरठा :— लखे बहुरि वसुषेण, मूर्छित, मद्रप, कृप रथन ,
 द्रोण-पुत्र, वृषसेन, युद्धत अर्जुन सँग अबहुँ ।
 ताही क्षण कौन्तेय, कीन्हेउ वृषसेनहि विरथ ,
 तजि भीमहि राधेय, घायेउ सत्वर पार्थ-दिशि ।

पाछे करत समर-आह्वाना ,
 बढे सवेग भीम, युयुधाना ।
 सकहि पहुँचि जब लगि वैकर्तन ,
 आहत द्रौणिहु अर्जुन-बाणन ।
 कर्णहि इत किरीटि समुहाये ,
 सात्यकि भीमहु शर बरसाये ।
 अस्तोन्मुख रवि हरि-दरसावा ,
 शौर्य अभूत पार्थ प्रकटावा ।
 निहति सारथी भंजेउ चापा ,
 बाण अगण्य कर्ण-रथ व्यापा ।
 जर्जर भीम-शरन तनु सारा ,
 सकेउ न सहि राधेय प्रहारा ।
 छिन्न तनुत्र प्रदीपित बाणन ,
 मनहुँ दिवसपति-रश्मि महा घन ।
 पतित विचेतन अधिरथ-नंदन ,
 भागे आहत हय लै स्यंदन ।

दोहा :— कीन्हेउ यहि विधि पार्थ हरि, अगम व्यूह त्रय पार ,
 व्याघ्र-सिंह-आकीर्ण जनु, लाँघेउ पाँथक पहार । १८६

सोरठाः—अस्तप्राय पतंग, घायेउ सैन्धव-ओर रथ ,
 भूपटेउ श्येन विहंग आमिष-पिण्ड विलोकि जनु ,
 विशिख आत्म-रक्षार्थ, तजे सिन्धु-अवनीश जे ,
 निष्कल करि सब पार्थ, घरेउ शरासन घोर शर ।
 छूटेउ तजि कोदण्ड, जनु अमोघ वासव-अशनि ,
 लागत ग्रीव प्रचण्ड, छिन्न शीश जनु मृदु सुमन ।

विशद शंख जनु यश-तरु कंदा ,
 वादेउ सव्यसाचि सानंदा ।
 कीन्हेउ हर्ष-निनाद वृकोदर ,
 भरित भुवन पुनि पाञ्चजन्य स्वर ।
 जयद्रथ-निधन युधिष्ठिर जाना ,
 बाजे वाद्य धर्म-दल नाना ,
 पहुँचि द्रोण-ढिग तेहि क्षण कुरुपति ,
 कहे अवाच्य अनेकन गुरु-प्रति ।
 लज्जित भारद्वाज कीन्ह प्रण—
 “बिनु अरि नाश, न तजिहौं दंशन !”
 सैन्य बहुरि आचार्य सँभारी ,
 समर-हेतु अरि-अनी प्रचारी ।
 लौटेउ पाण्डव-दलहु सहर्षा ,
 विजयोजित भुज-शौर्य प्रकर्षा ।
 भिरि दोउ बढीं, बहुरि चतुरंगिणि ,
 मिलि जनु सुरसरि जमुन तरंगिणि ।

दोहा :— अस्त दिवाकर रण-मही, छायेउ घन अंधियार ,
 लखत न, लै लै नाम भट, करत प्रचारि प्रहार । १८७

सोरठाः—पत्तिन धर्म महीप; दीन्ही आज्ञा ताहि क्षण ,
 अगणित उल्का दीप, सहसा पाण्डव-दल जरे ।
 कौरव-दलहु पक्षति, दुर्योधन निर्देश लहि ,
 वारि विदीपन-पाति, राजे चहुँ दिशि रण-अजिर ।

कोरक जनु, निशि-कर्णपूर के ,
 दीप सहस्र चतुर्दिक दमके ।

स्यंदन-स्यंदन उल्का शोभित ,
 मन्दिर जनु दीपावलि द्योतित ।
 द्विरद-द्विरद बहु उल्का ज्वाला ,
 विद्युत-जगमग जनु घन-माला ।
 दमके केतन विद्रुम-चित्रित ,
 छत्र-दण्ड मणि-हेम-विमण्डित ।
 जातरूप-मय वाजि-आभरण ,
 कुञ्जर-भालर रत्न-निवेष्टन ।
 सुभटन-वर्म, विभूषण भासे ,
 नीलोत्पल करवाल प्रकाशे ।
 प्रतिभासित नर-वाह-निकाया ,
 समर-मही जनु काञ्चन-छाया ।
 मनोहरण भाषण उजियारा ,
 जनु निशि दाव-दीप्त वन सारा ।

बोहा :— धावत रण-महि वीर वर, करत घोर अविघात ,
 दमकत मुख, सरसिज-विपिन, कम्पित मनहुँ प्रवात । १८८

सोरठा :— हते समर शैनेय, सोमदत्त, वाह्मीक दोउ ,
 उत क्रोधित राधेय, वधेउ घटोत्कच भीम-सुत ।

बधन चहत द्रोणहि पाञ्चाला ,
 भ्रमत गुरुहु रण-महि जनु काला ।
 क्रोधित, क्रूर, घोर आयोधन ,
 भयी निशिहु प्रति पल अति भीषण ,
 क्रम-क्रम श्रान्त निखिल नर-वाहन ,
 युद्धत सुभट खसत कर-प्रहरण ।
 करत स्वधर्महि वंश संग्रामा ,
 याम-सहस्रा लागि त्रियामा ।
 रक्त-नयन कछु नैदि-बिगोये ,
 विवश, विचेष्ट, विमोहित सोये ।
 प्रतिभट सुमिरि पूर्व अपकारा ,
 निरखि श्रान्त सोवत संहारा ।

सोवत सपने लखि अरि कोई,
चौकत, बधत मिलत जहँ जोई।
सब निद्रान्ध, न रण-उत्साहू,
निज-पर-ज्ञान रहेउ नहिँ काहू।

दोहा :— श्रीहरि-सम्मति मानि तब, थमेउ घरिक संग्राम,
मिलेउ जाह अवसर जहाँ, कीन्ह सबन विश्राम । १८६

कोउ हय गय, कोउ स्यंदन ऊपर,
रहेउ सवर्म सोय कोउ भू-पर।
गदा-पाणि कहुँ, कहुँ धनु हाथी,
सोवत कहुँ स-खड्ग नरनाथा।
हेम-योत्र जोरे निज स्यंदन,
सोवत दिशि दिशि अश्व सहस्रन।
रहि रहि निज खुराप्र क्षिति खनहीं,
सम महि विषम, विषम सम करहीं।
धरे पीठ केतन अंबारी,
अस्थिर-शुण्ड युक्त भयकारी।
श्वसत महागज अगणित निद्रित,
शैल-पंक्ति जनु भुजग-समन्वित।
यहि विधि दोउ दल निद्रा-प्रेरे,
शयित मनहुँ पट लिखे चितेरे।
वीती क्रम-क्रम और त्रियामा,
भयेउ क्षितिज सहसा अभिरामा।

दोहा :— तजि प्राचीदिशि-कन्दरा, केसर-किरण पसारि,
प्रकटेउ इन्दु मृगेन्द्र-जनु, वारण-तिमिरि विदारि । १८७

दर्शित मृथम व्योम अरुणाई,
जनु वधु रोहिणि-अधर-ललाई।
उदित पाण्डु-द्युति पुनि मनहारी,
कुल-कामिनि-कपोल अनुहारी।

क्रमशः प्रकटित सितकर-रूपा,
विशद नवल-वधु हास-स्वरूपा ।
शोभित श्रवत सुधा-निष्यंदा,
सिहरी निखिल प्रकृति सानंदा ।
लुब्ध विलोकि विधुहिं जिमि जलनिधि,
क्षोभित तिमि युग पक्ष सैन्य-निधि ।
जागे इन्दु-उदय सब योद्धा,
कुमुद-विपिन जनु लहेउ प्रबोधा ।
वर्म-संयमित शस्त्र सँभारे,
वादे शस्त्र, अराति प्रचारे ।
आरंभेउ पुनि सोइ भयकारी,
रण क्रोधान्ध, शूर-संहारी ।

बोद्धा :— प्रकटेउ रौद्र स्वरूप निज, अरि-दल द्रोण विदारि,
सके न सज्जय, चेदिगण, गुरु-आक्रमण निवारि । १६१

सोरठा :— युद्धत उदित दिनेश, करि परास्त शशधर-प्रभा,
तजि रण पति नरेश, भये भानु-अभिमुख सकल ।

वंदि रविहिं करि संध्योपासन,
गहेउ बहुरि गुरु हस्त शरासन ।
दण्ड-पाणि मानहुँ यमराजा,
हतेउ प्रचारि द्रुपद-महराजा ।
करि पुनि मत्स्य-महिष आह्वाना,
हतेउ कुपित गुरु एकहि बाणा ।
प्रसे सूर्य-शशि मानहुँ राहू,
बिलखे विकल धर्म-नरनाहू ।
सेनप, सैनिक सकल उदासा,
जयद्रथ-बध-आनंद विनासा ।
धृष्टद्युम्न-स्यंदन विध्वंसा,
द्रुपद-पौत्र त्रय बधे नृशंसा ।

बोद्धा :— प्रकट परशुधर अन्य जनु, क्षत्रिय-क्षय-प्रणवान,
पुनि स्यमन्त-पञ्चक चहत, करन मनहुँ निर्माण । १६२

सोरठा:—भीमहु कार रण घोर, सके निवारि न जब गुरुहि ।
भाषे वचन कठोर, जारत द्विज जनु दग-ज्वलन—

“द्विजजन आर्यजाति-उन्नायक,
सकरुण प्राणिन-अभय-प्रदायक ।
जदपि सर्व शस्त्रास्त्रन-आश्रय,
करत कबहुँ नहि विद्या-विक्रय ।
परशुधरहु नहि रण-अनुरागी,
गहेउ शस्त्र प्रतिकारहि लागी ।
बाधि अधर्म-रत क्षत्रिय योद्धा,
कीन्ह स्वपितु-हत्या प्रतिशोधा ।
कीन्ह तुम्हारि न हम कछु हानी,
बिनत सतत, पूजेउ सन्मानी ।
पै तुम केवल द्रव्य-उपासी,
करत आचरण जनु पिशिताशी ।
तजि स्वकर्म तुम करत अधर्मा,
धर्म-निष्ठ हम रत निज कर्मा ।
धिक् ! तुम्हार विप्रत्व-बखाना,
शुक-पाठहि धर्मस्मृति-ज्ञाना ।

दोहा:— दिव्य अस्त्र-अनभिज्ञ जन, दिव्यास्त्रन बाधि आज,
कीन्ह मलिन ऋषि-वंश-यश, तबहुँ हृदय नहि लाज । १६३
शिविर जाय निरखहु मुकुर, मुख निज विप्र । कराल,
भरद्वाज-अंगजात तुम, अथवा अधि चारुडाल । १६४

सोरठा:—विषम वृकोदर-वाणि, अक्षर-अक्षर मर्म-भिद,
उपजी भीषण ग्लानि, ज्ञान-स्वान आचार्य-उर ।

नख-शिखरान्त तनु अनुशय-आकुल,
प्रकटेउ अन्तर्लोचन ऋषि-कुल ।
गौतम, अत्रि, वशिष्ठ मुनीश्वर,
कहत मनहुँ—“स्यागहु तनु नश्वर ।

तोरि शस्त्र-अस्त्रन संग नाता,
लहहु मृत्यु विप्रोचित ताता !”
भयेउ गुरुहि इत समर-विस्मरण,
धृष्टद्युम्न उत कीन्ह आक्रमण ।
चढ़ेउ धाय द्रुपदात्मज स्यंदन,
तजे द्रोण गुरु बाण-शरासन ।
निर्विकार, विरहित-भव-माया,
अक्षर-ध्यान-मग्न द्विजराया ।
लखेउ न धृष्टद्युम्न परिवर्तन,
क्रोध-पिशाच करत दृग नर्तन ।
शराघात गत-चेतन जाना,
काढ़ेउ कहि दुर्वचन कृपाणा ।

दोहा:— तजे प्राण आचार्य इत, जपत मंत्र ओंकार,
कीन्ह छिन्न पाञ्चाल्य शिर, करि उत क्रूर प्रहार । १६५
सुनि गुरु-वध, अरि-हर्ष-रव, घोर भीम-जयनाद,
कृप, वसुषेण, सुयोधनहु, तजेउ समर सविषाद । १६६

सोरठा:— पै रण अचल अभीत, द्रोणि भरित प्रतिशोध उर,
कर गृहीत उपवीत, कीन्हेउ प्रण संबोधि अरि—

“सबहि सुनाय करत प्रण घोरा,
बधेउ व्रतस्थ जनक जेहि मोरा,
साक्षिहु जे यहि क्रूर कर्म के,
बधिहौ तिनहि, वंशजहु तिनके ।
शिशुहु सवय, गर्भस्थहु जेऊ,
जरिहौ अस्त्र-अग्नि सब तेऊ ।
करि महि निःसोमक निष्पाण्डव,
बधिहौ केशव सह सब यादव ।
यह सोइ पुण्य अवनि जेहँ व्रतधर,
कीन्ह क्षत्र-क्षय कुपित परशुधर ।
मृग-सहचर, मृदु-मन, वन-वासी,
कीन्ह राम जो वैर-उपासी,

अस्त्र-निधान, समर-अनुरागी,
सहज सो सकल कर्म मम लागी ।
बधेउ अशस्त्र पितुहिं संग्रामा,
जियत अबहुँ पै अश्वत्थामा ।

दोहा :— समर-मही गुरु द्रोण मृत, जीवित द्रोण-कुमार,
सुस जदपि रण-शौर्यता, जाग्रत पै प्रतिकार ।” १६७

अस कहि तजेउ द्रौणि प्रलयंकर,
रण नारायण-अस्त्र भयंकर ।
प्रगटे दोष बाण नभ अनगन,
चक्र, शतघ्नी, नाना प्रहरण ।
पूरित शस्त्र-अस्त्र आकाशा,
मंद मुहूर्त दिनेश-प्रकाशा ।
बिनसत पाण्डव सैन्य निहारी,
भाषेउ श्रीहरि सबहिं पुकारी—
“तजहु ! तजहु ! सैनिक ! नृप-नंदन !
सत्वर निज निज आयुध स्पंदन !
हरि-निदेश सुनि, अस्त्र विहायी,
गत-महि निखिल वीर-समुदायी ।
तजेउ न एक भीम निज स्पंदन,
बढ़े गदा गहि तकि द्रौणायन ।
प्रकटेउ तत्क्षण अस्त्र-प्रभावा,
आयुध-वृन्द शोश घिरि आवा ।

दोहा :— ज्वाला-बलयित भीम-तनु, लखि घाये यदुराय,
गदा छीनि कीन्हेउ विरथ, संतत भक्त सहाय । १६८

चोरठा :— लक्ष्य-हीन लखि सैन्य, भयेउ शान्त दिव्यास्त्र नभ,
व्याप्त द्रौणि उर दैव, तजेउ समर कुरुवन सहित ।

चलेउ शिविर कौरव्य-वरूथा,
यूथप खोय • मनहुँ गज-यूथा ।

प्रस्त, मूक सब अवनत आनन,
करत न कोउ काहु सन भाषण ।
निरखि भीत सामन्त सहायी,
गयेउ शिविर निज लै कुराये ।
शौर्य प्रशंसि, करत आश्वासन,
भाषेउ ओज-वचन कुरुनंदन—
“बढ़ि रण निधन विजय दुइ त्यागी,
गति नहि अन्य वीरजन लागी ।
शेष अबहुँ मम सैन्य अपाग,
अरि ते अधिष्ठ साज-संभारा ।
कृप, कृत, द्रौणि, शल्य, वैकर्तन,
एक ते एक बली मम भटगण ।
होहि जो सहमत सब मम नायक,
कर्णहि करहुँ सैन्य-अधिनायक ।”

दोहा— अस कहि आशा-मुग्ध नृप, कीन्ह सुहृद-गुण-गान,
कीन्हेउ काहु विरोध नहि, लहेउ कर्ण सम्मान । १६६

सोरठा— जदपि प्रात अंगनाथ, प्रकटेउ विक्रम पूर्ण निज,
कीन्ह विफल सब पार्थ, बधि कौरव वाहनि विपुल ।
निशि शोकार्त, विवर्ण, लौटे जब कुरुवन शिविर,
लज्जित आपहु कर्ण, कहे सुशोधन सन वचन—

“बधि मम अछत सैन्य मम आजू,
कीन्ह कीर्तिकर अर्जुन काजू ।
तदपि अबहुँ मम मन यह निश्चय,
नहि रण मम समकक्ष धनंजय ।
हम दोउ सम दिव्यास्त्र निधाना,
विक्रम दोउन बाहु समाना ।
पै तेहि ते बढ़ि मम विज्ञाना,
अस्त्र प्रयोग, प्रयोजन-ज्ञाना ।
सौष्ठव, अस्त्र-लाघवहु माहीं,
पाण्डु-सुवन यह मम सम नाहीं ।

गाण्डीवहु ते श्रेष्ठ धनुष मम ,
 राम-प्रदत्त, सुरासुर-क्षय-क्षम ।
 कहूँ सोउ जस श्रेष्ठ धनंजय ,
 दिव्य तामु ज्या, तूणहु अक्षय ।
 पै यथार्थ यह पार्थ-बड़ाई ,
 सारथि तामु आपु यदुरायी ।

दोहा :— हमरे दल महँ कृष्ण सम, रथनागर मद्रेश ,
 जीतहुँ अर्जुन जो लहहुँ, सारथि शल्य नरेश ।” २००

सौरथः— सुनि प्रहृष्ट कुरुनाथ, बहुरि अंकुरित आस उर ,
 अनुज, सुबल-सुत साथ, गवनेउ द्रुत मद्रप-शिविर ।
 प्राञ्जलि, विनत विशेष, प्रकटेउ उर-अभिप्राय नृप ,
 सुनत क्रुद्ध मद्रेश, वक्रित-भ्रू, भाषे वचन—

“नृप-कुल श्रेष्ठ जन्म तुम पावा ,
 तदपि कुलोचित शील भुलावा ।
 वल्लभ निज अविनायक कीन्हा ,
 सूतहि तुम क्षत्रिय-पद दीन्हा ।
 हम अविरोध सही अनरीती ,
 रहे मौन केवल वश प्रीती ।
 तुष्ट तबहुँ नहि हृदय तुम्हारा ,
 करन चाहत अब नृप रथकारा ।
 कहत वयस्य तुमहि सोइ भावा ,
 जानत तुम नहि कर्ण-स्वभावा ।
 सालत हीन जन्म उर माहीं ,
 सकत बिसारि वंश निज नाहीं ।
 करि अभिजात नरन-अपमाना ,
 लहन चाहत गौरव, सन्माना ।
 जय-उद सारथि स्यंदन नाहीं ,
 निवसति विजय शूर-भुज माहीं ।

दोहा :— करि दिनैक रण जो लही, स्वबल-थाह राधेय ,
 उचित प्रकट निज पैद तर्जाह, कहि अजेय कौन्नेय ।” २०१

सुनि विनष्ट कुरुपति-अभिलाषा ,
 तजी न सुबल-सुवन पै आशा ।
 नीच, नीच-मन जानन हाथ ,
 अर्थ-दिग्ध मृदु वचन उचारा—
 “पितु सम तुमहिं सुयोधन जाना ,
 सपनेहु करि न सकत अपमाना ।
 मानि कृष्ण ते बड़ि हय-ज्ञाता ,
 कहे वचन आदर दै ताता !
 सारथि तुम समान जो पायी ,
 सकिहै कर्ण न पार्थ हरायी ,
 लहिहै व्याज अन्य पुनि नाहीं ,
 होइहै लाञ्छित दोउ दल माहीं ।
 नहिं कोउ अन्य कर्ण पश्चाता ,
 होइहौ अधिनायक तुम ताता !
 जोहत मुख तुम्हार कुरुराजू ,
 करहु हताश तिनहिं नहिं आजू ।

दोहा :—आये कुरुपति पक्ष तुम, अनुजा-सुत निज त्यागि ,
 करत विमुख अब कस तिनहिं, तुम स्वभक्त-अनुरागि ?” २०२

सोरठा:—पुनि पुनि कीन्ह नरेश, नत-मस्तक अनुरोध जब ,
 स्वीकारेउ मद्रेश, नायक-पद-हित लहि वचन ।

सुनेउ कर्ण जब सुख-संवादू ,
 प्रकटेउ सखहिं हृदय आह्लादू—
 “दुष्कर कीन्ह तात ! तुम कामा ,
 लखिहौ सुफल कालिह . संप्रामा ।
 दाहत जिमि वन शुष्क अनल दव ,
 दहिहौ निज शरान्नि तिमि पाण्डव ।
 बधि समराङ्गण प्राणी धनंजय ,
 देहौ तुमहिं राज्य जेय निश्चय !”
 सुनि सुइहहिं निज हृदय लगायी ,
 भीत सुयोधन गिरा सुनायी—

“रहिहैं काल्हि संग समराङ्गण ,
भरित शस्त्र शर शकट सहस्रन ।
दुःशासन सह मम सब भ्राता ,
वृषसेनहु तुम्हार अँगजाता ,
औरहु बहु अतिरथि बलधारी ,
करिहैं रण तुम्हारि रखवारी ।

बोहा :—पार्थहि करिहौं श्रान्त मै, म्लेच्छन प्रथम पठाय ,
बधेउ अराति प्रचारि तुम, जबहि सुयोग लखाय ।” २०३

सोरठा :—वैकर्तन कुरुनाथ, करि प्रलाप यहि विधि विपुल ,
सहस मनोरथ साथ, सोये शिविरन तेहि निशा ।

प्रात ससैन्य धनंजय सङ्गा ,
पहुँचे जस रण-महि श्रीरङ्गा ,
वैकर्तन-रथ शल्य निहारी ,
गुनि रहस्य मन गिरा उचारी—
“वसुधैवकुटुम्बकम्” उत लखहु धनंजय !
आयेउ आजु समर कृत-निश्चय ।
सारथि नव, नवीन रथ साजू ,
विजय-पराजय-निर्णय आजू ।
प्रतिभट यह तुम्हार विख्याता ,
जानत यहि कर प्रण तुम ताता !—
“ब्रधे धनंजय विनु समराङ्गण ,
करिहौं नहिं निज पद प्रचालन ।”
अन्तक-प्रतिमा यह रण माहीं ,
पार्थ ! उपेक्ष्य शूर यह नाहीं ।
धर्म नृपति बहि भीति-विगोये ,
वर्ष त्रयोदश सुख नहिं सोये ।

बोहा :—रथि वरिष्ठ, दर्पी, कृती, तेजस्वी दुर्जेय ,
बधहु सयत्न अराति निज, आजु समर कौन्तेय । २०४

भीष्महिं, द्रोणहिं आदर दीन्हा,
 मृदु रण तुम दोउन सँग कीन्हा ।
 गुरु कृप, गुरु-सुत अश्वत्थामा,
 बधिहौ तुम न दुहुन संग्रामा ।
 मातुल शल्य तुमहि प्रिय लागा,
 कृतवर्महु प्रति उर अनुरागा ।
 पै न कर्ण-हित कोमल भावा,
 प्रकटहु पूर्ण निजास्त्र-प्रभावा ।
 तुमहि सकत बधि यहि रण माहीं,
 कर्ण-निधन विनु रण-जय नाहीं ।
 यह दुर्बुद्धि पाण्डु-कुल-शुला,
 द्वेषी, बान्धव-विग्रह-मूला ।
 सदा कुपथ कुरुपतिहिं चलावा,
 नित विद्वेष-अनल घृत नावा ।
 केवल यहि भुजबल दुर्योधन,
 रोपेउ यह दारुण आयोधन ।

बोद्धा:— करत अकारण वैर यह, यहि कारण जन-नाश,
 नासहु बधि वसुधेश रण, कुरुपति-राज्य-जयाश ।” २०५

सोरठा:— अस भाषत यदुनाथ, प्रेरेंउ रथ जस कर्ण-दिशि,
 विविधायुध घृत हाथ, रोघेउ पथ धिरि स्तेच्छगण ।
 दरसायेउ कुरुराज, प्रमुदित कर्ण सुयोग लहि,
 ताकि धर्म नरराज, बढेंउ मथत पाञ्चाल-दल ।

विगत-शृंखला गज मद-माता,
 धँसेउ विपणि-पथ जनु रिस-राता ।
 छादित कर्ण-बाण रण-प्राङ्गण,
 गत रवि-आभा, रूद्ध समीरण ।
 बिनसे अश्व, सारथी, स्थंदन,
 छिन्न तनुत्र, छत्र, धनु, केतन ।
 निहत महागज विपुलाकारा,
 ध्वंसित द्रुम जनु परशु-प्रहारा ।

गिरे सुभट-शिर कटि शर-जाला ,
महि विकीर्ण जनु सरसिज-माला ।
दुर्निवार वसुषेण-प्रहारा ,
व्यथित चेदि-सृञ्जय-दल सारा ।
वात-क्षुब्ध जनु वारिधि-वारी ,
त्रस्त समीत निखल जल-चारी ।
प्रेत-पुरी सम रण दुर्दर्शन ,
आनन्द-मग्न विलोकि सुयोधन ।

श्लोकाः— पाण्डव-दल कर्णास्त्र-बल, बिनसेउ स्वल्प प्रयास ,
कहेउ धर्मजहिं लखि स्ववश, वचन करत परिहास— २०६

अद्रि-अरण्य जन्म तुम पावा ,
जीवन हू गिरि-विपिन बितावा ।
मृग, मुनि, वनमानुष-सहवासी ,
तनु प्रसून-सुकुमार, फलाशी ।
तैसेहि मृदुल स्वभाव तुम्हारा ,
कृत्य द्विजोचित तुमहिं पियारा ।
तुम जप, योग, हवन-अधिकारी ,
यह संग्राम-मही भयकारी ।
सकत अबहुँ तुम तजि आयोधन ,
करिहौ मैं न मार्ग-अवरोधन ।
मुनि असह्य भूपहिं अपमानू ,
लोचन उत्तर देत कृशानू—
“सूत-पुत्र निज कर्महिं त्यागी ,
जब ते भये समर-अनुरागी ।
उपजेउ तब ते हृदय विरागा ,
पूजा-पाठ मोहिं प्रिय लागा ।

श्लोकाः— तदपि नृपति-श्रृंगारत मैं, मोहि शस्त्रास्त्रन ज्ञान ,
करहु सूत । दृढ़ निज हृदय, सहहु, तजत मैं बाण ।” २०७

रंजित मुख, कपोल रिस-रागा ,
श्रुति पर्यन्त कषिं इषु त्यागा ।

निकसेउ वाम-पार्श्व शर फोरी ,
 शोणित अंग-अवनिपति बोरी ।
 डसेउ मनहुँ विकराल भुजंगा ,
 दृग तम अंध, शिथिल प्रत्यंगा ।
 कतहुँ किरिट, तूण कहुँ चापा ,
 रथ वसुषेण गिरेउ गत-दापा ।
 हा ! हा ! ध्वनि कौरव-दल छायी ,
 बढेउ क्रुद्ध रण-हित कुरुरायी ।
 कुपित रिपुहिं लखि धर्म भुआला ,
 तजी कराल शक्ति जनु उवाला ।
 लागि अमोघ, दीर्घ संनाहा ,
 पतित विचेतन रथ कुरुनाहा ।
 अश्वत्थामा धाय सँभारा ,
 सिंह-प्रस्त जनु मृगहिं उवारा ।

बोहाः — लहि प्रबोध तब लागि बढेउ, बहुरि कर्ण नृप ओर ,
 कुपित वृकोदर शिवय धरि, तजी गदा निज घोर । २०८

सोरठाः—मूर्च्छित अंग-नरेश, रच्छेउ मद्रप तजि समर ,
 कुरुदल छिन्न अशेष, भग्न-सेतु जनु सरि-सलिल ।
 बिनसेउ विधि-वश बोध, तजेउ न दुःशासन समर ,
 बढे लेन प्रतिशोध, सुमिरि भीम निज भीम प्रण ।

उत बाह्लीक, यवन, शक, तंगण ,
 शवर, किरात, दरद, खस अन्नगन ,
 बर्बर, ग्लेच्छ, विदेशी पारद ,
 कलह-जीवि, बहु शस्त्र-विशारद ,
 मुण्डित, अर्ध-मुण्ड जाटलानन ,
 अशुचि देह-भन, विकृत-दर्शन ,
 बढे पार्थ दिशि जनु जिल-राशी ,
 तिन सँग अगणित दक्षिण-वासी ।
 अंजन-वर्ण शरीर, विशाला ,
 दृग आरक्त दीर्घ, रद लाला ।

गंध-क्षोद अनुलेपित अंगा ,
वसन सूक्ष्म, शोभन, बहु-रंगा ।
कल्पित विपुल केश घुंघरारे ,
नख-शिखान्त मणि भूषण धारे ।
दमकत देह हेम-संनाहा ,
तिमिर ज्वलंत मनहुँ हविवाहा !

बोहा :— निरपेक्षित-तनु, हस्त धृत, नाना प्रहरण घोर ,
संरन्धित धाये सकल, कृष्णार्जुन रथ और । २०६

पार्थहु कुसमय मेघ समाना ,
बरसाये उपलोपम बाणा ।
नष्ट सस्य सम सुभट सहस्रन ,
तजेउ न म्लेच्छन तबहुँ रणाङ्गण ।
बिनसत हठि जिमि शलभ अभागी ,
जरेउ धिरत, त्यागत नहि आगी ।
धँसे कछुक रथ-तरे नराधम ,
ध्वंसन चहत रथाङ्ग, तुरंगम ।
घेरि बधन हित कुन्ती-नंदन ,
चढ़े साहसिक कछु बड़ि स्यंदन ।
लपटे कछु अति धृष्ट कृष्ण-तन ,
चहत अभीषु, प्रतोदन छीनन ।
पटकत गजपहिं जिमि गजराथी ,
भटकि गिराये महि यदुराथी ।
हनि पार्थहु वैतस्तिक बाणा ,
बधे रथस्थ म्लेच्छगण नाना ।

बोहा :— हाँकेउ थदुपति ताहि क्षण, रथहि मण्डलाकार ,
बिनसे हय-पै चक्र-तल, बर्बर यवन अपार । २१७

तजेउ जदुपि म्लेच्छन हरि-स्यंदन ,
कीन्ह दूरि ते शिला-प्रवर्षण ।

प्रस्तर-वृष्टि तुमुल चहुँ ओरा ,
 आहत हय आघात कठोरा ।
 क्रुद्ध पार्थ तजि बाण प्रचण्डा ,
 कीन्हे उपल शिला शत खण्डा ।
 गिरे म्लेच्छ-दल खण्ड अनेकन ,
 पीड़ित जनु भ्रमरावलि दंशन ।
 भागे तजि तजि खल कर-उपलन ,
 अश्म-चूर्ण आकीर्ण रणाङ्गण ।
 शान्त म्लेच्छ बहु अर्जुन-बाणा ,
 जल-प्रवाह जनु अनल मसाना ।
 छँटेउ दाक्षिणात्यहु दल सारा ,
 मारुत-छिन्न मनहुँ नीहारा ।
 वात-वेग यदुपति रथ हाँका ,
 उड़त, मनहुँ महि छुवत न चाका ।

बोद्धा :— खोजत वसुषेणहि बढे, उत्तर दिशि हरि-पार्थ ,
 जात जलाशय दिशि मनहुँ, हरिणाधिप हरिणार्थ । २११

सोरठा :— उत दुःशासन संग, करत वृकोदर घोर रख ,
 जस जस पूर्व प्रसंग, सुमिरत, उमहत रोष उर ।

गुनि जनु आजु निधन निज निश्चय ,
 युद्धत कुरुपति-अनुजहु निर्भय ।
 त्यागेउ शूल विपुल, अनलोज्ज्वल ,
 विद्ध वाम भुज, भीमहु विह्वल ।
 प्रेषी बहुरि शक्ति तकि माथा ,
 गद्दी उछरि पाण्डव निज हाथा ।
 क्रुद्ध जघन धरि, तोरि, बहायी ,
 तजि कार्मुक, कर गदा उठायी ।
 कीन्हेउ व्योम-विदारक गर्जन ,
 चलित मही जनु सहित शैल-वन ।
 रौद्र त्रिपुर-वैरी जनु, शङ्कर ,
 फेंकी गिरि-गुरु गदा भयंकर ।

चूर्णं तुरंग, सारथी, स्यंदन,
पतित धरणि आहत कुरुनंदन।
ध्वस्त उरश्छद, शीर्ष-आवरण,
अंशुक स्रस्त विकीर्ण आभरण।

दोहा:—भरेउ विजय-स्वर भूमि नभ, गरजि गरजि पाञ्चाल,
बढ़े वृकोदर त्यागि रथ, हस्त खड्ग धाराल। २१२

जाय समीप, कण्ठ पद राखी,
दारुण गिरा वृकोदर भाखी—
“राजसूय अवभृथ-जल-पावन,
द्रुपद-आत्मजा-केश सोहावन,
कर्षे जेहि कर तैं अभिमानी,
भंजत आजु भीम सोइ पाणी!
संवृत एक वसन, सुकुमारी,
रजस्वला कुल-बाला-सारी,
कर्षी जेहि कर तैं अभिमानी,
भंजत आजु भीम सोइ पाणी!”
अस भाषत भभवी दृग ब्वाला,
गहि अरि दक्षिण बाहु विशाला,
झपटि उपाटी भीम प्रचण्डा,
जनु मद कुञ्जर सरसिज-दण्डा।
करत वत्त पुनि पाद प्रहारा,
कुरुदल निखिल भीम ललकारा—

दोहा:—“बधि दुःशासन रण चहत, करन क्षतज मै पान,
होय जो कुरुदल वीर फोउ, रञ्जहि पापी-प्राण।” २१३

सोरठा:—परेउ सुनाय सुदूर, सहसा कुरुपति-कर्ण-स्वर,
“विरमु! विरमु! रे कूर, कुरुदल वीर-विहीन नहि।”

सुनेउ न भीम अमर्ष-अधीरा,
प्रविशेउ मनहुँ पिशाच शरीरा।

करि शिर छिन्न कृपाण-प्रहारा,
 तीक्ष्ण नखन अरि-वक्ष-विदारा !
 गरजि हृष्ट शार्दूल समाना,
 पियेउ उष्ण शोणित प्रणवाना !
 अट्टहास उठि कीन्ह भयंकर,
 रक्त-सिक्त, बीभत्स वृकोदर !
 चपु विरूप, पद-गति विशृंखल,
 मँदे दृग कुरुदल भय विह्वल !
 गिरे आर्त कल्लु महितल मूर्च्छित,
 रण प्रहरण तजि अन्य पलायित !
 पहुँचि कर्ण कुरुपति तेहि काला,
 लखेउ वृकोदर वपु विकराला !
 दुशासन-शव बहुरि विलोका,
 धृति मति नष्ट, हृदय भय शोका !

बोहा :— हत-चेतन—“हा/वत्स कहि”, निज स्यंदन कुरुराज,
 खसे हस्त ते बाण धनु, शिथिल अंग अंगराज । २१४

सोरठा :—स्वामि विलोकि विहाल, कुरुपति-सारथि रण तजेउ,
 भाषे मद्र-भुआल, व्यंग वचन वसुधेण प्रति—

“सोहत तुमहि न कर्ण ! विषादा,
 गत कहँ अहंकार-उन्मादा ?
 बसि रथ निर्विष अहि अनुहारी,
 श्वसत काह तुम समर बिसारी ?
 कुल्या तुल्यहि गनि तुम पाण्डव,
 आये करन किरीटि-पराभव !
 बूझत पै तुम यहि क्षण विह्वल,
 गोपद-जल सम भीम-बाहु-बल !
 करत सुयोधन-संग मर्मा पाना,
 कीन्हे तुम प्रलाप प्रण नाना !
 निज मुख निज गुण निज तुम गावा,
 छल करि अधिनायक पद पावा ।

लखि रण, गत क्षत्रोचित क्षमता ,
उपजी सूत-मुलभ कातरता ।
शिखा, श्रेष्ठ संगतिहु पायी ,
नीच कि सकत स्वभाव विहायी ?

दोहा :— कशा, रश्मि निज कर गहहु, हाँकहु रथ राधेय !
देहु शरासन बाण मोहि, बधिहौं मैं कौन्तेय ।” २१५

सोरठा :— सुनत कर्ण उर बोध, निवसेउ स्वस्थ उपस्थ उठि ,
प्रेरित लज्जा क्रोध, भाषी गिरा तरेरि दग—

“निहति अरक्षित कुँवर वृकोदर ,
कीन्ह कर्म रण कवन यशस्कर ?
तुच्छ वृकहु लहि वन असहायी ,
सकत निपाति बली मृगरायी ।
रहेउ कुँवर संतत मम साथी ,
प्रिय मोहि सोउ यथा कुरुनाथी ।
निरखि निधन शोकित वश प्रीती ,
व्यापति कर्ण-हृदय नहिं भीती ।
गदा कुवेर, अंतकहु-दण्डा ,
वरुण देवता पाश प्रचण्डा ,
त्वष्टा-पर्वत, कार्मुक धाता ,
सुर-सेनापति-शक्तिहु ख्याता ,
वासव-वज्रहु ते भय नाहीं ,
भीम-गदा केहि लेखे माहीं ?
वधन हेतु अर्जुन यदुराजू ,
आयेउँ कृत-प्रण, मैं रण आजू ।

दोहा :— अमरहु सकत न सद्धि समर, मम शस्त्रास्त्र कठोर ,
गहहु शल्य ! हेय-रश्मि दढ़, हाँकहु रथ अरि ओर ।” २१६

सोरठा :— तेहि क्षण परेउ दिखाय, उड़त पार्थ-ध्वज व्योम-पथ ,
वसुप्रेषहिं दरसाय, भाषेउ त्रिहंसत मद्रपति—

अवलोकहु वह दक्षिण ओरा ,
 लहरत वानर-केतन घोरा ,
 काँपत चक्राघात धरणि-तल ,
 परसति उडि पथ-रेणु नभस्तल ।
 देवदत्त-स्वर परत सुनायी ,
 वादत पाञ्चजन्य यदुरायी ।
 सुनहु होत अर्जुन-धनु-निस्वन ,
 करत सहस्र क्रौञ्च जनु कूजन ।
 अवलोकहु प्रदीप्त शर-जाला ,
 रचित व्योम जनु काञ्चन माला ।
 भीत, पलायित कुरुदल सारा ,
 नियरानेउ स्यंदन दुर्बारा ।
 आये वधन जिनहिं तुम आजू ,
 सम्मुख लखहु पार्थ यदुराजू ।
 हरिहु तुम्हारिहि दिशि रथ हाँका ,
 बढेउ मूर्त जनु कर्म-विपाका !

श्लोकाः— गही हस्त मै रश्मि दृढ, गहहु धनुष दृढ हाथ ,
 लखन चहत मै सूत कस, वधत पार्थ यदुनाथ ।” २१७

चोरठाः— सुनत कुपित वसुषेण, भाषे आपहु कटु वचन ,
 तब लागि बढि वृषसेन, अवरोधेउ हठि पार्थ-पथ ।
 अभय कर्ण-अंगजात, प्रेरे शर तकि यदुरतिहिं ,
 क्षत-विक्षत हरि-गात, शोणित-रञ्जित पीत पट ।

निरखि धनंजय-दृग अंगारा ,
 सुमरेउ पुनि अभिमन्यु कुमारा ।
 वक्र भृकुटि, वसुषेण निहारी ,
 भाषेउ अधिरथ-सुतहिं प्रचारी—
 “करि सुत मम निरख असहायी ,
 हतेउ संग लै भट-समुदायी ।
 पै सायुध वृषसेन कुमारा ,
 संग चतुरंगिणि सैन्य अपारा ।

विद्यमान तुम पितुः समीपा,
तदपि बुभुक्षु सुत-प्राण-प्रदीपा ।
तजत विशिख जीवन-अपहारी,
रञ्जहु सुवन कर्ण ! धनुधारी ।”
अस कहि पार्थ शरन रथ पाटा,
कार्मुक भंजि कुँवर शिर काटा ।
सुत-विनाश निज नयनन-दर्शी,
बढ़ेउ समर-हित कर्ण अमर्षी ।

दोहा :— उत यदुपति इत मद्रपति, लाये रथन बढ़ाय,
लखेउ एक-इक रक्त दृग, कर्णार्जुन समुहाय । २१८

सोरठा :— दोउ निज सैन्य-शरण्य, समर-शास्त्र-मर्मज्ञ दोउ,
दोउ मानिन-मूर्धन्य, दोउ शौर्य-शालिन-नुला ।

महा काय दोउ मानहुँ महिधर,
महाशाल-भुज, केहरि कंधर ।
शोभन दर्शन दोउ अमरोपम,
देह देव-बल, देव-पराक्रम ।
श्वेत अश्व-युत रथ दोउ राजत,
दुहुन हस्त धनु दिव्य विराजत ।
वर्म-विभूषित दोउन अंगा,
खड्ग दुहुन-कटि, पृष्ठ निषंगा ।
दिन-रण-श्रान्त तदपि दोउ दर्पित,
दिशि-विदिशा धनु-शब्द निनादित ।
मत्त द्विरद सम दोउ तरस्वी,
धिरे दोउ निज दलन यशस्वी ।
व्योम युगान्त समय जनु समुदित,
युग सहस्रकर तारक-परिवृत ।
क्रोधित गारजि व्याघ्र जनु उद्धत,
तजे शिलीमुख दुहुन बधोद्यत ।

दोहा :— फहरि उठीं दोउन ध्वजा, उठे अश्व हिहनाय ।
गिरे छिन्न दोउन विशिख, अंतराल टकराय । २१९

भये उभय दिशि बहुार प्रहारा ,
 वरसे शर, पै शर दुर्वारा ।
 गत-प्रत्यागत शर-संपाता ,
 निज रक्षण, अरि-शस्त्र-विघाता ।
 वीर-विमोहन, रहित-रंध रण ,
 निरखि चकित महि भट, नभ सुरगण ।
 बधिर श्रवण अति घोर मौर्वि-स्वर ,
 गिरत अजस्र वज्र जनु महिवर ।
 मही छिन्न-बाणन-अंबारा ,
 व्याप्त बाण नभ घन अधियारा ।
 क्रम-क्रम तम प्रगाढ़ भयकारी ,
 गिरे अंध महि खग नभ-चारी ।
 अर्जुन अग्नि-अस्त्र प्रकटावा ,
 सहसा अनल-ज्वाल रण छावा ।
 जदपि छिन्न तम दारुण आगी ,
 अरि-अनि त्रस्त समर तजि भागी ।

बोद्धा: — वरुण-अस्त्र वसुषेण तजि, दये मेघ नभ छाये ,
 वरसे धाराधर सलिल, ज्वाला-जाल बुझाय । २२०

सोरठा:— शित वैकर्तन-बाण, प्रविशे पाण्डव-दल बहुरि ,
 पतित धराणि निष्प्राण, अगणित सृज्य, चेदिगण ।
 प्रकुपित पार्थ अतीव, तजन चहेउ जस दिव्य शर ,
 अति-कर्षित गायडीव, सहसा भंजित शिञ्जनी ।

लब्ध-सुअवसर चंदन-चर्चित ,
 शर चिर पार्थ-वधार्थ-सुरक्षित ,
 सन्नत-पर्व, निशित, सर्पानन ,
 धरेउ काढ़ि धनु । राधा-नंदन ।
 हठि आकर्ण पूर्ण पंक्षित ,
 तजेउ किरीटी-कण्ठ सुलक्षित ।
 उड़ेउ उग्र जनु उरग कराला ,
 काँपे विकल चेदि, पाञ्चाला ।

निरखेउ हरि अवधान अतीवा,
आवत शर तकि अर्जुन-प्रीवा ।
प्रत्युत्पन्न-बुद्धि यदुनंदन,
दावेउ पद-बल तत्त्वण स्यंदन ।
गिरे जानु-भर हय निष्पेषित,
धँसेउ रथाङ्गहु धरणी किञ्चित ।
धावत अर्जुन-प्रीवा-उन्मुख,
लक्ष्य भ्रष्ट वसुषेण-शिलीमुख ।

दोहा :— रक्षित रथ-सँग निम्न-गत, पार्थ-शीश हरि-यल,
कटेउ किरीट, विकीर्ण महि, तड़ित प्रभा मणि-रल । २२१

सोरठा :— नभ-महि हरि-जय-घोष, 'साधु! साधु!' भाषेउ अरिहु,
सव्यसाचि उर रोष, जोरी शिञ्जिनि अन्य धनु ।
सहसा जनु विधि-योग, धँसेउ कर्ण-रथ-चक्र महि,
पार्थहु पाय सुयोग, मथेउ शत्रु-तनु शित शरन ।

उत्तरि उठावत जेहि क्षण चाका,
ध्वंसी अर्जुन कर्ण-पताका ।
शर क्षुरप्र पुनि तीक्ष्ण पँवारे,
कुण्डल मुकुट काटि महि डारे ।
तजि नाराच बहुरि अति उत्कट—
काटे शीश-निवेष्टन कंकट ।
उठत न चक्र प्रसेउ जनु धरणी,
बूडति अरि-शराब्धि असु-तरणी ।
रिस-अतिरेक-हृदय, दग वारी,
भाषेउ पार्थहि कर्ण पुकारी—
“विरमहु ! विरमहु ! पृथा-कुमारा !
उचित न यहि क्षण शस्त्र-प्रहारा ।
तुम शुचि भरत वंश-संजाता,
शील-निधान, धर्म-रण-ज्ञाता ।

विरमहु ! निमिष वीर-व्रत-धारी !
लेत अबहिं मैं चक्र निकारी ।

दोहा :— विरथ, विवर्म, अशस्त्र पै, त्यागत शर नहिं शूर ,
कहत तुमहिं सब शूरतम, करत कर्म कस कूर । २२२

सोरठा :— सुनि सुत-वध-वृत्तान्त, सजग पार्थ-मानस-पटल ,
क्रोधित मनहुँ कृतान्त, भाषे मर्मान्तक वचन—

“याह दे बढ़ि का धर्म-बढ़ाई,
कर्णहिं आजु धर्म-सुधि आयी ।
लाक्षा-गोह जबहिं निर्मावा,
पाण्डव चहेउ समातु जरावा,
कपट-द्यूत जब हरि धन, देशा,
कर्षे सभा द्रौपदी-केशा,
पठये वन बल्कल पहिरायी,
तब नहिं तुमहिं धर्म-सुधि आयी ?
हास्य धर्म तुम्हरे मुख तैसे,
करुणा-कथा बधिक मुख जैसे !
तबहुँ पूर्व गाथा यह सारी,
देत विनय सुनि आजु बिसारी ।
जात न पै सुत-निधन बिसारा,
तुम निरख सौभद्र संहारा ।
सभा-गृहहिं नहिं त्यागेउ धर्मा,
समर-महिहु तुम कीन्ह कुकर्मा ।

दोहा :— सकत विरमि नहिं छमि तिनहिं, लीन्हे जिन सुत प्राण ,
सँभरहु सूतात्मज ! तजत, मैं जीवान्तक बाण !” २२३
लज्जा-नत उत्तर-रहित, इत विपन्न राधेय,
अभिमंत्रित शर अञ्जलिक, त्यागेउ उत कौन्तेय । २२४

सोरठा :— मृत्यु-हित भयकारि, दीप्त, प्रखर, हरि-चक्र जनु ,
सकेन कर्ण निवारि, लागेउ कण्ठ अमोघ शर ।

सोरठा:—महि वैकर्तन-शीश, गिरेउ छिन्न शोणित स्रवत,
रक्त-विम्ब ज्योतीश, प्रविशत अन्धि दिनान्त जिमि ।

निरखि समर वैकर्तन-अंता,
जय-ध्वनि पाण्डव-अनी अनंता ।
वादत शंख, पणव, जयमंगल,
आलिङ्गत इक एकहिं विह्वल ।
उत भय-विकल पलायित कुरुजन,
रक्त-रहित धेनु जुनु वृक-वन ।
भीम - गदा - आघात - विदारे,
अर्जुन - उग्र - शरानल - जारे,
भागै सैनिक करत विलापा,
क्रन्दन करुण चतुर्दिक व्यापा ।
गजारोहि, रथि, सादिन-यूथा,
मर्दत जात पदाति-वरूथा ।
भागत दिग्भ्रम भीति असीमा,
दिखत चतुर्दिक अर्जुन-भीमा ।
नष्ट विजय, धन, धरणी-ध्याना,
रच्छन चहत काहु विधि प्राणा ।

दोहा:— गुनि निशि पाण्डव-आक्रमण, लौटे बहु न निवेश,
भागै भीत स्वदेश दिशि, बिनु यूथप-आदेश । २२५

सोरठा:—कृप, कृत, मद्र-भुआल, शकुनि, सुशर्मा कुरुपतिहु,
पाण्डव-त्रास-विहाल, गवने हिमगिरि-प्रस्थ दिशि ।
निरखि वेदना-दग्ध, रहित-चेतना कुरुपतिहिं,
भाषे वृद्ध, विदग्ध, कृपाचार्य नृप सन वचन—

“निहत स्वजन, निर्जित हम आजू,
तदपि न उचित शोक कुराजू !
परि आपत्ति-अन्धि गम्भीरा,
होत पार केवल नर धीरा ।

सोचहु तजि विषाद नरनाहा !
 हित हमार अब कीन्हे काहा ?
 जदपि वृद्ध मै, तनु प्रिय नाही ,
 दिखत न मोहि लाभ रण माहीं ।
 शान्तनु-सुवन, द्रोण, वैकर्तन ,
 सके न जीति जिनहि रण-प्राङ्गण ,
 तिनहि मिलिहु हम जे हत-शेषा ,
 सकत हराय न समर नरेशा !
 सुनि दूरिहि ते पाञ्चजन्य-स्वन ,
 लखि फहरत नभ वानर केतन ,
 तजति समर कुरु-सेना सारी ,
 सँभरति तात ! न काहु सँभारी ।

दोहा :— तजी अंगपति साथ हम, आजु समर जय-आस ,
 कीन्हे बहुरि प्रभात रण, केवल आत्म-विनाश । २२६

मम मत ,अब करि रण अवसाना ,
 रच्छहु साम नीति गहि प्राणा ।
 लखि आपुहि निर्बल नरनाथा ,
 करत जे संधि सबल रिपु साथी ,
 होत न तिन कर कबहुँ पराभव ,
 भोगत चिर निज धरणी वैभव ।
 करि विनती प्रणिपातहु आजू ,
 रच्छहु प्राण राज्य कुरुराजू !
 नवत विजातिहु-प्रति नय-ज्ञाता ,
 प्रीति-पात्र ये पाण्डव भ्राता ।
 करत संधि इन सँग कुरुरायी !
 नहिँ कछु लाज , न जगत हँसाई ।
 गुरु-जन-निष्ठित धर्म नरेशा ,
 टरिहैं नहिँ पितृव्य-निदेशा ।
 सतत सनेह-व्रती यदुरायी ,
 करिहैं सुनत तुम्हारि सहायी ।

दोहा :— सकुचत जो निज मुख कहत, देहु मोहि आदेश ,
लखिहौ होत प्रभात तुम, रक्षित निज घन, देश ।” २२७

सोरठा:— यत्न-संयमित वारि, बहेउ उमहि कुरुपति-दगन ,
बंधु वयस्य पुकारि, कीन्हेउ करुण विलाप चिर ।
लोचन-जल निर्वृष्ट, लहि क्लेशित उर धैर्य कछु ,
बरनत मनहुँ अदृष्ट, भाषे कौरव-पति वचन—

“मम-हित-प्रेरित वचन तात के ,
लागे तदपि मोहि नहि नीके ।
वंश क्रमागत लहि सिंहासन ,
करि बहु काल नृपन पै शासन ,
भोगि देव-दुर्लभ सुख-वैभव ,
अब रिपु-पद-प्रणिपात असंभव !
समुझहु यहहु तात ! मन माहीं ,
संधि-साध्य अब पाण्डव नाहीं ।
करिहैं धर्मज पुनि न प्रतीती ,
जदपि साधु जानत नय नीती ।
रोष माद्वि-पुत्रन उर भारी ,
सकत न सुत-वध पार्थ बिसारी ।
अपमानित कृष्ण कृत-दासी ,
सोवति निशि महि वैर उपासी ।
सभा-भवन अपकृत यदुरायी ,
सकत न करि अब मोरि सहायी ।

दोहा :— पै ये हू सब जो द्रवित, रचिहैं संधि-प्रबंध ,
बधिहैं अवसर पाय मोहि, क्रूर भीम रिस-अंध । २२८

निज नयननै तुम आजु निहारा ,
बधेउ अनुज जेहि विधि हत्यारा ।
वैसेहि उरु मम भंजि पिशाचा ,
करिहैं निश्चय निज प्रण साँचा ।

अग्रज, अनुज, आपु यदुरायी,
सकत न कोउ पशुहि समुभायी ।
अटल मरण जो मम तेहि हाथा,
कस न मरहुँ करि रण खल साथी ?
एकहि तात-वचन मैं माना,
भयेउ आजु संगर अवसाना ।
जेहि बल मानि जगत ठण सारा,
पाण्डु-सुतन रण-हेतु प्रचारा,
सुहृद सो आजु समर-महि नासा,
बिनसी तेहि सँग मम जय-आशा ।
विपिन-निवास, मरण रण त्यागी,
गति नहि अन्य आजु मम लागी ।

दोहा :— चहत समर जो आपु सब, प्रिय न मोहि निज प्राण,
जान चहत जो गेह निज, करिहौं विपिन प्रयाण ।” २२६

भीरु-हृदय-निःसृत गुनि वाणी,
भाषेउ शूर सुशर्मा मानी—
“संधि-वृत्त यह कस रिपु सङ्गा ?
उपजेउ कस वन-गमन-प्रसङ्गा ?
नष्ट न अब लगि कुरुदल सारा,
मद्रपतिहु सँग विपुल जुभारा ।
शेष अबहुँ संशप्तक वीरा,
बहु गोपालगणहु रण-धीरा ।
शकुनिहु सँग बहु अश्वावारा,
त्रय अक्षौहिणि यह दल सारा ।
नष्ट समर पाण्डव चतुरङ्गिणि,
शेष आजु एकहि अक्षौहिणि ।
तबहुँ जाहि जो हम रण त्यागी,
हम सम को जग भीरु अभागी ?
जाय गेह निज चहत जो जाना,
करहि कुरुपतिहु विपिन प्रयाणा,

दोहा :— एकहु संशसक जियत, जब तक महितल माहिं ,
अरि-विनाश-प्रण-बद्ध हम, तजिहैं संगर नाहिं ।” २३०

सोरठा :— सुनि वीरोचित वाणि, प्रकटेउ मुद कृत, द्रौणि दोउ ,
बिनसी मानस-म्लानि, मातुल दिशि कुरुपति लखेउ ।

सदा कुमति-रत कुटिलाचारी ,
पाप-पिटारी शकुनि उधारी—
“रुचेउ न कबहुँ मोहिं रण-रंगा ,
बुद्धि-साध्य सब जगत-प्रसंगा ।
जब जब तुम सम्मति मम मानी ,
लहेउ इष्ट बितु जन-धन-हानी ।
जदपि लाह-गृह तुम निर्मायी ,
सके न पाण्डव अनल जरायी ,
सरेउ तुम्हार तबहुँ सब काजू ,
त्यागेउ अंत अर्थ तिन राजू ।
भये सार्वभौमहु जब पाण्डव ,
सके द्यूत ते तुम हरि वैभव ।
अजहुँ समर जो कछु तुम हारा ,
छल ते सहज तासु उद्धारा ।
सब विधि रिपु-विनाश नृप-कर्मा ,
आत्म-विनाश न क्षत्रिय-धर्मा ।

दोहा :— देहहि महँ निवसत सकल, जेते जगत-प्रसङ्ग ,
बिनसत जैसेहि पात्र यह, ढरकत सब तेहि सङ्ग । २३१

धारि मुनिन-व्रत, स्वाँग बनायी ,
निवसहु कछुक दिनन बन जायी ।
जाहिं हमहुँ निज निज गृह आजू ,
लहहि युधिष्ठिर धन, जन, राजू ।
सम्बन्धी निज मोहिं विचारी ,
देहैं क्रम-क्रम वैर बिसारी ।

पाय सुअवसर, करि सेवकाई,
लेहौ प्रीति प्रतीत बढ़ायी।
लहि प्रवेश तिन बिच इक बारा,
करिहौ कपट प्रपंच पसारा।
घुलि-मिलि नसिहौ अरि मैं छल-बल,
तोरत नर नवाय जिमि तरु-फल।
सके जिनहिं तुम रण नहिं नासी,
मरिहैं मम कर ते विश्वासी।
भेद नीति, विष पावक द्वारा,
संभव सहजहि अरि संहारा।

दोहा :— प्रकटेहु निरखि सुयोग तुम, लहेहु बहुरि निज राज ,
तजि मायामय नीति यह, अन्य युक्ति नहिं आज ।” २३२

क्रोधित सुनि त्रिगर्त नररायी,
कृपहु खलहिं कटु गिरा सुनायी।
सुनि मत अगणित वैर-परायण,
प्रकटेउ मनस्ताप द्रौणायन—
“वाद-विवाद व्यर्थ यह सारा,
उचित सर्व विधि रिपु-अपकारा।
अरि-विनाश हित मैं प्रणवाना,
रण-संग अब न वैर-अवसाना।
भीम-प्रणहु ते मम प्रण घोरा,
अरि-कुल निखिल नाश व्रत मोरा।
पशु सम करि पाञ्चाल वंश बलि,
देहौ जनकहिं मैं रक्ताञ्जलि !
जब लगि हय, गय, सैनिक, स्यंदन,
करहु शत्रु-प्रतिरोध रणाङ्गण।
रहिहैं जब नहिं आयुध योद्धा,
लेहै अन्य भाँति प्रतिशोधा।

दोहा :— सेनप निज करि मद्रपाति, बधहु शत्रु रण माहि ,
करिहैं अन्य उपाय हम, लहिहैं जय जो नाहि ।” २३३

द्रौणि-वचन सुनि कुरु नरनाहा ,
 लहेउ धैर्य, उर नव उत्साहा ।
 पूर्व वचन पुनि निज सन्मानी ,
 चहेउ करन मद्रप सेनानी ।
 बोलेउ शंकित शल्य सयाना—
 “तुम सब हृदय पलायन ठाना ।
 पार्थ न केवल कर्ण संहारा ,
 मनहू कीन्ह परास्त तुम्हारा ।
 जानत तुम, जेहि करत सैन्यपति ,
 हठि बधवावत ताहि वृष्णिपति ।
 सेनप-पद करि मोहिं प्रदाना ,
 चहत जो केवल मम बलिदाना ,
 सकिहौं मैं न ताहि स्वीकारी ,
 जदपि वृद्ध, मोहिं प्राण न भारी !
 दीन्ह तुमहिं मैं सदा सहारा ,
 उचित न मम सँग यह खेलवारा ।

दोहा :— चहत युद्ध पै आपु जो, बद्ध-कक्ष तजि भीति ,
 सकत अबहुँ मैं कृष्ण सह, पाण्डु-सुतन रण जीति ।” २३४

रहित प्रपंच मद्रपति-वाणी ,
 मुदित त्रिगर्त-नाथ सन्मानी ।
 मौन सुबल-सुत मन मुसकायी ,
 लज्जित कुरुपति गिरा सुनायी—
 “देहु विहाय तात ! मन-शंका ,
 मम उर रंच न अरि-आतंका ।
 लखि रण सुहृद-अनुज-वध घोरा ,
 केवल शोक-ग्रस्त मन मोरा ।
 समुझहु तूहि क्षणिक मन-मोहा ,
 उर सोइ साहस, सोइ अरि-द्रोहा ।
 एकाकी निज गदा-प्रहारा ,
 सकत नासि मैं अरि-दल सारा ।

तदपि प्रात अतिरथि मिलि सारे ,
रहिहैं रक्षक समर तुम्हारे ।
करिहैं सब इक-एक सहायी ,
जइहै कोउ न काहु विहायी ।

दोहा :— नासन हित संशय सकल, लेहु शपथ तुम तात !
पञ्च महापातक लगहि, तजहि सँगाति जो प्रात ! २३५

सोरठा :— लखि रणोच्छु कुरुराय, उपजी हृदय प्रतीति पुनि ,
सबते शपथ कराय, स्वीकारेउ पद मद्रपति ।
यंहि विधि भट प्रण-बद्ध, हिमगिरि-प्रस्थ बिताय निशि,
प्रात शस्त्र-संनद्ध, गवने सज्जित सैन्य रण ।

पाण्डु-सुतहु उत सब प्रणवाना ,
'करिहैं आजु समर अवसाना ।'
पहुँचेउ जैसेहि रण दल सारा ,
श्रीहरि कौरवन्यूह निहारा ।
लखि एकत्रित शूर प्रधाना ,
शत्रु रहस्य हृदय अनुमाना ।
स्वदल चमूपति निकट हँकारे ,
अरि दरसावत वचन उचारे—
“जुरेउ एक थल भट समुदायी ,
भ्रान्त भीत मोहिं परत लखायी ।
मनहुँ सकल अन्योन्य-विशङ्की ,
युद्धन चहत न कोउ एकाकी ।
तुमहु सकल मिलि मद्रप ओरा ,
करहु ससैन्य आक्रमण घोरा ।
प्रथम एक ते इक बिलगायी ,
जीतहु सबन पृथक, असहायी ।

दोहा :— मृत्यु-भीति जिन उर बसति, सहजहि ते रण जेय ,
उत्पाटहु किल्बिष विटप, लहहु आजु निज ध्येय ।” २३६

सोरठा:—अस भाषत भगवान, पार्थहि लै तेहि दिशि बढे ,
इन्द्रहि यज्ञस्थान, लिये जात मानहुँ मरुत ।

बाजे निशि-प्रसुप्त पणवानक ,
रणारंभ, आक्रमण भयानक ।
बिनसेउ बाणन शत्रु-द्विरद-दल ,
छिन्न प्रवात मनहुँ घन-मण्डल ।
ध्वंसित रथ अगण्य संग्रामा ,
अनल-दग्ध जनु धनिकन-धामा ।
उमहि धर्म-दल बहेउ अपारा ,
जनु कल्पान्तक पारावारा ।
रिपु प्रधान इत-उत बिलगाने ,
युद्धत द्वीप समान लखाने ।
प्रकटेउ विक्रम धर्म नरेशा ,
लहि एकाकि बधेउ मद्रेशा ।
पार्थ-धनुष जनु ग्रीष्म विवस्वत ,
अरि-दल शुष्क शरांशु वापि वत ।
संशप्तक गोपालहु सारे ,
सहित सुशर्मा समर संहारे ।

दोहा :—भीम सर्व कुरुपति-अनुज, बधे खोजि सावेश ,
नकुल निपातेउ कर्ण-कुल, जल-दातहु नहि शेष । २३७

धृष्टद्युम्न लहि रण दुर्याधन ,
हति हय-सारथि भंजेउ स्यंदन ।
रथ-विहीन, विकवच, असहायी ,
तजेउ सभीत समर कुरुरायी ।
जाय दूरि निरखेउ संग्रामा—
युद्धत कृप, कृत, अश्वत्थामा ।
चहेउ जान जैसेहि तिन ओरा ,
सुनेउ वृंकोदर-गर्जन घोरा ।
विकल, प्लावित, उर-उत्कंपन ,
मृग जनु सुनि केहरि-रव कानन ।

भागत चहुँ दिशि लखत सशोका,
 शकुनिहिँ दक्षिण ओर विलोका ।
 क्षत-विक्षत सहदेव-शिलीमुख,
 शकुनिहु लखे सुयोधन सन्मुख ।
 लहि अवलंब पलायन-बिहल,
 धायेउ दुर्योधन दिशि सौबल ।

दोहा:— रोधेउ पथ पै माद्रि-सुत, तजे बाण पै बाण,
 कपट-घूत-पटु काटि कर, हरे कुटिल-मति प्राण । २३८

सोरठा:— अर्जुन सात्यकि साथ, युद्धत कृप, कृत, द्रौणि उत,
 लखे न कहूँ कुरुनाथ, त्यागी तीनहु रण-मही ।
 पाण्डव दल जय-घोष, विजय-वाद्य शत-शत बजे,
 भीमहि एक सरोष, गर्जत खोजत कुरुपतिहि ।

काँपत मुनि मुनि स्वर कुहनाथा,
 सैन्य न स्वजन, न वाहन साथा ।
 एकादश अक्षौहिणि-स्वामी,
 भृत्य-विहीन, दीन, पद-गामी ।
 सुप्त हृदय सहसा सब भावा,
 सजग एक भय मानस छावा ।
 जस जस भीम-नाद नियराना,
 तस तस अधिक भये प्रिय प्राणा ।
 दृगन गाढ़ तम, सलिल-प्रवाहा,
 सूक्ष्म पथ न, विकल नरनाहा ।
 श्रान्त शरीर, सवेर्ग उसासा,
 कर्षति चरण जिर्यन-अभिलाषा ।
 गिरत-परत मृतकन चढ़ि धावत,
 शव-तल दुरत लखत कोउ आवत ।
 व्यूह-पार काहू विधि जायी,
 रण-महि लखी घूमि कुरुरायी ।

दोहा :— बूढ़त नर जिमि तट पहुँचि, मुरि निरखत जल ओर ,
निरखेउ कुरुपति तिमि अगम, रण-सागर अति घोर । २३६

गिरि-नद सम कुरुनाथ-शुराई ,
बहत बोरि तट हिम-जल पायी ।
धावत घहरि प्रवाह बिनासी ,
ध्वंसत सस्य, विटप, तट-वासी ।
भये क्षीण हिम, पुनि सोउ क्षीणा ,
सहसा उग्र प्रवाह विलीना ।
रहत सलिल नहिं बूँदहु शेषा ,
केवल पंथ ध्वंस-अवशेषा ।
तिमि पर-पोषित, अब असहायी ,
निरखेउ कुरुक्षेत्र कुरुरायी ।
आपुहि चकित निरखि निज करनी ,
पाटित शव-समूह रण-धरणी ।
नाना-आकृति मृत भयदायी ,
जनु विभीषिका तनु धरि आयी !
दिशि दिशि दारुण मुण्डन-ढेरी ,
करि परिहास रहीं जनु हेरी !

दोहा :— पंकिल महि शोणित वसा, अस्थि केश अंबार ,
सुख सोवत निष्प्राण भट, आहत हाहाकार । २४०

शीर्ण शीश कोउ परिघाघाता ,
कोउ विदीर्णित गदा-निपाता ।
परशु-छिन्न कोउ अँग-प्रत्यंगा ,
मर्दित कोउ रथ तुरग मर्तगा ।
बाण-विद्ध कोउ निखिल शरीरा ,
घूर्णित लोचन व्यथा-अधीरा ,
उठि उठि व्याकुल गिरत अभागी ,
याचत मृत्यु, मिलति नहिं माँगी ।
कोउ निरायुध, रहित परिच्छद ,
अबहुँ क्रोध उर, दष्ट रदच्छद ,

बद्ध मुष्टि युग, तीव्र उसासा,
निंदत विधिहिं, लखत आकाशा !
कोउ अधोमुख कर-पद-विरहित,
श्वसत मुमूर्षु रक्त निज मज्जित ।
छटपटात कहूँ हय गय विह्वल,
दिशि दिशि हिंसक पशु कोलाहल ।

दोहा :— उड़त श्येन बहु घेरि शव, गिद्ध काक मँडरात,
धावत श्वान शृगाल लरि, कर्षि अर्ध-मृत खात ! २४१
बरनत जे अगणित नरक, पापिन हेतु पुराण,
तिन ते भीषण दृश्य लखि, सिहरे कुरुपति-प्राण । २४२

सोरठा:— अकस्मात तेहि काल, निकसे तेहि पथ व्याध कछु,
कज्जल-असित कराल, पाश-हस्त यम-भृत्य जनु ।
प्रेरित जनु भवितव्य, शंकित तरु गुल्मन दुरत,
धँसेउ भीत कौरव्य, द्वैपायन-हत-दिग निरखि ।

ठिठके व्याधहु नृपहिं निहारी,
चकित विलोकि धँसत हृद-वारी ।
लखि पुनि दिवसहि रण-अवसाना,
नृप-अपयान वृत्त अनुमाना ।
अनुहरि वृत्तिहि मनुज स्वभावा,
लोभ लुब्धकन हृदय समावा ।
प्रविशि विजेता-शिविरन निर्भय,
दीन्हेउ भीमहिं कुरुपति-प्रत्यय ।
रहेउ जो निमिष पूर्व नृप-नाथा,
बेचेउ व्याधन तेहि अरि-हाथा !
हर्ष-हिलोर लहत संवादू,
उत्थित अवस्कंद जय-नादू ।
लै श्रीहरि, सात्यकि, पाञ्चाला,
धायेउ सानुज धर्म भुआला ।
रथ-घर्घर, कोलाहल घोरा,
घेरेउ सर विशाल चहुँ ओरा ।

दोहा :— तुमुल शब्द कुरुपति सुनेउ, गुप्त दीर्घिका-गेह ,
विस्मित, उद्वेजित हृदय, कम्पित नख-शिख देह । २४३

सोरठा :— कलरव, स्यंदन-ध्यान, भये मंद कम-कम सकल ,
मंदर-नाद समान, गूँजेउ मथि हृद भीम-स्वर—

“रे रे कुमति ! विषान्न-प्रदाता !
पामर ! लाह-गेह-निर्माता !
कुलाङ्गार ! बान्धव-अपकारी !
द्यूत-प्रबंधि राज्य-अपहारी !
धन, धरणी, यौवन-अभिमानी !
सभा-भवन कुल-तिय अपमानी !
श्रीहरि - बंध - प्रपंच - विधाता !
सूचिकाग्र-महि-लेश न दाता !
समरानल सुलगावन हारा ,
भीरु ! सुभद्रा-सुत-हत्यारा !
संतत निज-भुज-शौर्य-प्रलापी !
लाज न पंक दुरत अब, पापी !
रण करवाय वंश अवसाना ,
भये तोहिं प्रिय पापी प्राणा ।
पै रण-सिन्धु कीन्ह जिन पारा ,
दुरि सर तिनते अब न उबारा !

दोहा :— धँसिहै अतलहु जो अधम, करिहौं तहँहु प्रवेश ,
मोहि भंजे बिनु तव जघन, वृथा राज्य, जय, देश । २४४
कीन्ह कलंकत कुल विमल, धिका/धिका/शत-शत बार ,
शेष जो पौरुष, त्यागि हृद, सहु मम गदा ग्रहार !” २४५

सोरठा :— जदपि आपदा-ग्रस्त, पराभूत, सर्वस्व हत ,
मानस्तुति अभ्यस्त, सकेउ न सहि नृप अरि-गिरा ।
सुनि आह्वान कराल, नष्ट भीति जीवन-नृषा ,
उर मानानल-ज्वाल, भरसे अंगारक वदन—

“भीत न मैं, नहिं प्राणन-मोहू,
अब लगि रोम रोम विद्रोहू।
आयेउँ लहन स्वल्प विश्रामा,
करत प्रभात बहुरि संग्रामा।
पै मम-कृत अपमान-कहानी,
निज मुख जो तजि लाज बखानी,
बंदी-बाणी सम सोइ लागी,
जाग्रत मैं श्रम तंद्रा त्यागी।
विजित न जब लगि समर सुयोधन,
असमय तब लगि विजय-विकथन।
पूछत पै मैं कृष्णहिं आजू,
धर्म तुम्हार कहाँ यदुराजू!
केहि रण-नीति-नियम अनुसारा,
सब मिलि एकहिं चहत सँहारा?
युद्धहिं एक एक जो आयी,
सकत सबहिं मैं समर सोवायी।

दोहा :— पाँचहु पाण्डव, शिनि-सुवन, सृजय, तुम यदुनाथ !
चहत जान यम-धाम जो, करहिं समर मम साथ !” २४६

सोरठा :— कोध-विहाल भुआल, अस भाषत गहि कर गदा,
प्रकटेउ मानहुँ ब्याल, फुफकारत तजि हृद-सलिल ।

शोणित-सलिल-प्रसिक्त नरेशा,
पंकिल वसन, विश्रुंखल केशा।
लखि कुवेष सोमक-समुदायी,
करि करतल-ध्वनि हँसे ठठाई।
अपमानित नृप कहत कुवाणी,
तिन दिशि बढेउ गदा कर तानी।
धाय, बाहु गहि, नृपहिं निवारी,
भाषेउ हरि समीप बैठारी—
“जदपि भवन, रण-भूमिहु माहीं,
पालेउ कबहुँ धर्म तुम नाहीं।

क्षमी तथापि धर्म नरनाथा ,
तजत न धर्म अधमिहु साथा ।
करिहैं आर्योचित आचारा—
नृप-सँग नृपति-योग्य व्यवहारा ।
निरखहु ! देत धर्म नरनाहा ,
तुमहिं शिरस्य हेम संनाहा ।

दोहा :— धारहु वर्म नवीन अँग, गहहु गदा निज हाथ ,
युद्धहु तजि उर भीति श्रम, एक वृकोदर साथ ।” २४७

सोरठा :— मुख लज्जा ताम्राभ, धारेउ कुरुपति वर्म तनु ,
तेहि क्षण हिमशैलाभ, पहुँचे हलधर ताहि थल ।
सुनि सब विमह-गाथ, निरखि रणोद्यत शिष्य दोउ ,
गवने लै निज साथ, थल स्यमंत-पञ्चक सर्बाह ।
सरस्वती सरि-तीर, स्वर्ग-द्वार सम तीर्थ शुचि ,
गुरुपद वंदि प्रवीर, भीम सुयोधन रण बढे ।

गदा हस्त दोउ तनु उत्तुङ्गा ,
शोभित जनु नग युग सह शृङ्गा ।
लखि एकैक वक्रभ्र, गर्जन ,
रोष अनल उर, उवाला नयनन ।
अधरस्फुरण, कण्ठ कटु वाणी ,
रहे मौन पै गुरु सन्मानी ।
उत्थित गदा गुर्वि, गिरि-सारा ,
आरंभेउ समुहाय प्रहारा ।
मनहुँ द्विरंद-द्वय दंताघाता ,
चहत क्रुद्ध अन्योन्य निपाता ।
गत-प्रत्यामत, मण्डल-विचरण ,
महा रौद्र रण लोम-प्रहर्षण ।
मही चरण-निर्घात प्रचण्डा ,
दमकत अंतराल भुज-दण्डा ।

पुनि पुनि घोर गदा-संघर्षण ,
भुवन-व्यापि जनु वेणुस्फोटन ।

दोहा :— अग्नि-कणन परिवृत सुभट, शोभित दोउ विशाल ,
उड़त ज्योतिरिङ्गण मनहुँ, घोर महातरु शाल । २४८

शत शत निर्दय करत आक्रमण ,
रक्त-सिक्त दोउ नख-शिख भीषण ।
धावत क्षत-विक्षत अङ्ग अंगा ,
रुधिर-गंध जनु मत्त मतंगा ।
शोणित-परिस्सुत गदा भँवायी ,
हनत गरजि अरि-छिद्रहिं पायी ।
मूर्त सत्व दुर्योधन भीमा ,
बल अगाध, अभ्यास असीमा ।
जानत गति-विधि दोउ अनन्ता ,
दुराधर्ष, दुर्जेय, दुरन्ता ।
प्रकटत कौशल, भुज-बल-वैभव ,
सकत न करि इक-एक पराभव ।
युद्धत वध-प्रण-वद्ध वृकोदर ,
क्रुद्ध, रौद्र मानहुँ यम-सहचर ।
जानि परीकृत रण निज प्राणा ,
युद्धत कुरुपति करि छल नाना ।

दोहा :— बढ़ति, बुझत जिमि दीप-द्युति, तिमि सतेज कुरुनाह ,
लब्ध-संधि ध्वंसेउ गरजि, पाण्डु-सुवन-संनाह । २४९

सोरठा :— कपट-कुशल समुहाय, कर-लावव प्रकटाय पुनि ,
भीम-दगन चौधाय, हनी घोर सहसा गदा ।

लागेउ वनस्थल आघाता ,
शैल-शृङ्ग जनु अशनि-निपाता ।
अविचल तबहु भीम बलवाना ,
रक्त-विपाटल तहु-परिधाना ।

स्वरस-प्रसिक्त मनहुँ अति लाला ,
रक्त भद्रश्री-चिटप विशाला ।
आपुहि सधृति कीन्ह पुनि धावा ,
सुरि कुरुपति-आक्रमण बरावा ।
क्रोधित भीम भैरवाकारा ,
कर्षेउ बाहु देह-बल सारा ।
बढ़त अरिहिं लखि कुरु नरनाहा ,
बसि महि दाँव बरावन चाहा ।
गुनि दुर्योधन-युक्ति भीम मन ,
कीन्हेउ चितथ प्रहार-प्रदर्शन ।
बसि महि उछरेउ कुरुपति जैसे ,
हनी गदा उरु पाण्डव तैसे !

बोहा :—अंतराल दमकी निर्मिष, लागी कुलिश कराल ,
भग्न जघन, नृप महि पतित, छिन्न-मूल जनु शाल । २५०

सोरठा :—भरित-रोष-प्रतिकार, सके न संयम भीम करि ,
कीन्हेउ चरण-प्रहार, महिशायी अवनीश-शिर ।

व्याकुल लखि अभद्र व्यवहारा ,
धाय धर्म नृप अनुज निचारा ।
हलधर सदा सुयोधन-वत्सल ,
छलकेउ दशा बिलोकि नयन जल ।
पद-ताड़ित पुनि लखेउ भुआला ,
सहज अमर्षि, हृदय रिस-ज्वाला ।
आनन अरुण स्वेद कण झलके ,
औषसि नभ तारक जनु चमके ।
भाषेउ हरि प्रति धृति मति त्यागी ,
बरसी तुहिनशैली जनु आगी—
“युद्ध-नियम . खल भीम बिसारा ,
कीन्ह नाभि-तल नीच प्रहारा ।
तोषेउ तबहुँ न यह मदमाता ,
कीन्ह पतित-शिर पद-आघाता ।

दीन्हे बिनु यहि दण्ड कठोरा,
लहिहै शान्ति हृदय नहि मोरा ।”

बोहा:—अस कहि विस्मित भीम दिशि, गहि हल हस्त कराल,
बढ़े हलायुध उग्र-वपु, मूर्त कुपित जनु काल । २५१

सोरठा:—लखि धाये यदुनाथ, भरेउ भुजन हठि अमर्जहि,
सानुराग गहि हाथ, विनयान्वित भाषी गिरा—

“पतित, प्रताड़ित सह-अनुभूती,
संतत संतन-हृदय-बिभूती ।
हि पै पद-प्रहार करि भीमा,
जी धर्म मर्यादा सीमा ।
हित यह कुकृत्य, अविचारा,
अनुचित रंच न रोष तुम्हारा ।
तनु-पीड़हु ते बढ़ि ताता !
रुण अन्तस्थल-आघाता ।
रुपति सभा कषि पाञ्चाली,
हि दासी जो कीन्हि कुचाली,
खि अमर्षि, असहाय विषादी,
अम-क्रम भीम भये उन्मादी ।
जेउ जघन प्रणहि अनुसारा,
नित अमर्षहि चरण-प्रहारा ।
ह-वेदना-पीड़ित आजू,
या-पात्र जिमि कौरव राजू,

बोहा:—क्षमा-पात्र तिमि पाण्डु-सुत, अन्तर्दग्ध विषाद,
चिर वंचित निज स्वस्व महि, याचत तात-प्रसाद ।” २५२

सोरठा:—उग्र निसर्ग-स्वभाव, लहेउ न-हलधर तोष सुनि
हिय पाण्डव-दुर्भाव, गवने द्वारावति कुपित
उत तनु रोष-तरङ्ग, कुहनिन-भर कुरुपति उठेउ,
जनु विच्छिन्न भुजङ्ग, भाषे हरि-प्रति विष-वचन—

“कंस-दास-सुत, तुम कुल-हीना,
रहित राज्य-पद, कपट प्रवीणा।
धर्म-व्याज निज मान बढ़ावत,
फिरत सबहि उपदेश सुनावत।
दीन पाण्डु-सुत तुम भरमाये,
निज वश पै न मोहिं करि पाये।
जे यहि जग श्री-हीन, अभागी,
गहत धर्म धन-अर्जन लागी,
कल्पित परलोकहिं नित बरनी,
हरत आढ्य-मूढन धन-धरणी।
मैं नृप-सुन, महि-विभव-समन्वित,
मूढ़हु नहिं, जानत हित-अनहित।
नहिं श्रुति-हित मम उर सन्माना,
पंथ अन्य मम, शास्त्रहु आना।
जे चार्वाक मार्ग-अनुगामी,
धर्म-भीरु नहिं, ते सुख-कामी।

दाहा :— याचत नहिं करुणा-दया, करत न शोक-विलाप,
अजहुँ मुँदत दग मम हृदय, स्वल्प न पश्चात्ताप ! २५३

मानत जो मैं धर्म तुम्हारा,
लहत अराति राज्य-अधिकारा।
होत युधिष्ठिर धन-जन-स्वामी,
मैं कर-बद्ध चरण-अनुगामी।
सेवत तेहि, लखि जाहि जरत मन,
जीवन नट-वत् परत बितावन।
सिखवत धर्म जो अस व्यवहारा,
अधमहि करत भ्ताहि स्वीकारा !
मोहिं मनस्विन-मार्गहि भावा,
गहि तेहि मही-मान मैं पावा।
करि अरि पराभूत, हरि शासन,
वर्ष त्रयोदश * बसेउँ सिंहासन।

सुर-दुर्लभ मैं कीन्ह विलासा,
एकहु शेष न उर अभिलाषा।
जदपि कण्ठ-गत अब मम प्राणा,
न्यून न मम महिमा, अभिमाना।

शेढा :— सकिहैं कबहुँ न शत्रु ये, तिय-अपमान बिसारि,
सोइ अनश्वर मम विजय, यह मम हारि, न हारि ! २५४

सोरठा :— जब लागि ज्ञानि-गरिष्ठ, जीवित गुरु चार्वाक मम,
तब लागि वसुधा-पृष्ठ, सकत न सुख बसि पाण्डु-मुत ।”
प्रलपत यहि विधि क्लान्त, परेउ अवनि तल नृप बहुरि,
लखि मुमूर्ष, उद्भ्रान्त, भाषेउ हरि कर शीश धरि—

“विजय-पराजय-वाद न आजू,
व्यर्थहि लहत व्यथा कुरुराजू !
थित तुम यहि क्षण मृत्यु-दुआरे,
उधरि रहे परलोक-किंवारे।
तनु सँग होत न तत्त्व विनाशा,
लहिहौ निमिष माहिं तुम भासा।
इतनहि तात ! सुनहु धरि ध्याना,
उचित न अंत समय अभिमाना।
आर्य-हृदय अस होत न मोहा,
यह दानव-मद तुमहिं न सोहा।
संयम सदृश न साधन आना,
क्षोभ विहाय तजहु तुम प्राणा।
सके न जिन पै रण जय पायी,
सकत नेह ते अबहुँ हरायी।
अमृत प्रेम, द्वेष विष जानी,
नव पथ पथिक होहु नव प्राणी।

बोढा :— जिये मरे तुम आपु हित, भयेउ नरक संसार,
गहहु क्षमा-अनुराग-मथ, उधरहि स्वर्ग-किवार ।” २५५

दोहा :— बरसेउ हरि लोचन सलिल, दया-द्रवित भगवान् ,
विगत ताप प्रभु-मुख लखत, त्यागे कुरुपति प्राण । २५६

सोरठा :— धर्म नृपहु हग नीर, हर्ष-हीन भीमहु हृदय ,
नत-आनन, गम्भीर, फिरे विषरण निवेश सब ।

पाँचहु पाण्डव सात्यकि साथ ,
गवने कुरु शिविरन यदुनाथ ।
लखे भीम-भय दासी दासा ,
सकल पलायित तजि रनिवासा ।
क्रन्दत कौरव-तिय हत-नाथा ,
चहत जान पुर भीत, अनाथा ।
पंथ अपरिचित, अनुचर-हीना ,
भटकत इत-उत दीन, मलीना ।
रविहु-अदृष्टपूर्व जे बाला ,
पूछत ग्वालन मार्ग विहाला ।
व्याकुल पाण्डव दृश्य विलोका ,
नेहस्निग्ध हरेउ भय शोका ।
धन-मणि-राशिहु बहुरि सँभारी ,
सौपी सकल युयुत्सु हँकारी ।
दै कुँवरहिं वाहन नृप ज्ञानी ,
पठयीं कुल-तिय पुर सन्मानी ।

दोहा :— लिये संग आता सकल, शनि-नंदन, यदुनाथ,
ओधवती सरि लागि गयेउ, तियन-साथ नरनाथ । २५७

चिरमि तहाँ लखि श्रीहरि ओरा ,
कह नृप—“नाथ ! विकल मन मोरा ।
हत शत सुवन समर महि माहीं ,
वंशजनहु जीवित कोउ नाहीं ।
मज्जित शोक-समुद्र अथाहा ,
बिनु आधर वृद्ध नरनाहा ।

देहु नाथ ! जो मोहिं निदेशा ,
करहुँ अबहिं मैं पुरी प्रवेशा ।
अथवा आपु जाय यदुरावी !
तोषहु मम पितृव्य बुभायी ।
पतिव्रता गान्धारिहु अंबा ,
वस्त्रावृत दृग, बिन अवलंबा ।
सींचि शान्ति-वाणी वर वारी ,
तुमहिं सकत प्रभु दोउ सँभारी ।
होइहैं तहँ व्यासहु मुनिरायी ,
करिहैं तात ! तुम्हारि सहायी ।

दोहा :— सुमिरि सुमिरि गान्धारि-मुख, सुत-वियोग-दुख-दग्ध ,
लागति लक्ष्मी मोहिं गरल, बंधु-नाश-उपलब्ध ।” २५८

सोरठा :— सुनि चिन्तित भगवान, गुनि अयुक्त नृप पुर-गमन ,
गजपुर कीन्ह प्रयाण, आपुहिं सरि-तट तजि नृपहि ।

लखे दूरि कछु यदुपति जायी ,
गवनत पुरी व्यास मुनिरायी ।
तजि रथ प्रभु मुनिपद शिर नावा ,
मिलि सप्रीति स्यंदन बैठावा ।
पथ सुनि श्रीहरि-मुख रण-गाथा ,
भाषे विषद वचन मुनिनाथा—
“दुर्विद लीला नाथ ! तुम्हारी ,
सकत को समुक्ति मर्म तनुधारी ।
चुद्र ज्ञान-विज्ञान-प्रसारा ,
स्वल्पहि दृष्ट, अदृष्ट अपारा !
रण सम नहिं कछु घोर अमंगल ,
साधत जन-मंगल तुम तेहि बल !
रक्तारुण भीषण महि आजू ,
लहिहैं शक्ति, सुशान्ति, सुराजू ।
निर्दाता जिमि कत्त उखारी ,
करत सयत्न धान्य रखवारी ।

बोद्धा :— खल गण तिमि निर्मल तुम, रच्छे पाण्डव-भक्त ,
कीन्ह सुदृढ़ निर्माण तुम, आर्य-राष्ट्र अविभक्त ।” २५६

सोरठा :— सुनि सस्मित विश्वेश, पूछेउ मुनिहि अजान जनु—
“को अब भारत शेष, धर्मज-राज्य न जाहि प्रिय ?”

मर्म प्रश्न सुनि मुनिमन शोचू,
उत्तर देत हृदय संकोचू—
“अब लागि नाथ ! द्रौणि-उर क्रोधा,
लै न सकत पै रण प्रतिशोधा ।
तजि यदुजन कोउ शेष न आजू,
सकहि विनासि जो धर्मज-राजू ।
यदुवंशिहि स्ववृद्धि-अभिलाषी,
अबहुँ सकल साम्राज्य-उपासी ।
पाण्डव-द्वेष सबन उर माहीं,
पै प्रभु-भय प्रकटत कोउ नाहीं ।
मम मत इक शिनि-नंदन त्यागी,
एकहु नहिं धर्मज-अनुरागी ।
जानत तुम सो सब यदुरायी !
काहे मम मुख रहे कहायी ?”
अस कहि गही मौन मुनि धीरा,
मौन आपु हरि, वदन गँभीरा ।

बोद्धा :— प्रविशि पुरी निरखेउ दुहुन, नृप-प्रासाद प्रशस्त ,
शोकित जनु नंदन विपिन, यातुघात्र - विध्वस्त । २६०

लखे अंध अवनिप गान्धारी,
मनहुँ शोक करुणा तनु-धारी ।
दाहे सुवन-विनाश विषम ज्वर,
विदुरहु क्षीरज-वचन-अगोचर ।
द्वैपायन-आगमन जनायी,
वंदे पद हरि, नाम सुनायी ।

प्रविशे श्रुति जस दोउ अभिधाना ,
 नृप निर्जीव लहे जनु प्राणा ।
 मुनि-हरि दुहुन चरण अकुलायी ,
 बिलखत गहे दीन नररायी ।
 सकरुण हरि बोधेउ गहि पाणी ,
 कही मुनिहु समयोचित बाणी—
 “जल-बुदबुद् वत् सुत धन गोहा ,
 उचित असीम न तिन प्रति नेहा ।
 दुर्नय-उदधि स्वकर निर्मायी ,
 बूडे शत सुत सहित सहायी ।

बोद्धा :— हरि, नारद, विदुरहु, महुँ, दीन्ह तुमहिं बहु ज्ञाय ,
 कीन्हे तुम महि-लोभ-वश, काहु वचन नहिं कान । २६१

एक बार हालाहल खायी ,
 विनशत नहिं प्रभाव पछितायी ।
 कीन्हें शोक न अब निर्वाहा ,
 बहत विषाद न अश्रु-प्रवाहा ।
 ज्ञानहि औषधि तेहि हित एकू ,
 गहहु धैर्य, नहिं तजहु विवेकू ।
 सकत बराय न बाडव सागर ,
 क्षय नहिं सकत निवारि क्षपाकर ।
 राहु अवार्य भानु हित जैसे ,
 मृत्यु अवार्य मर्त्य हित तैसे ।
 चय परिणाम क्षयहि जग माहीं ,
 कहँ प्रकर्ष अवनति जहँ नाहीं ?
 जहाँ लाभ तहँ अन्तहु हानी ,
 सकल तात ! दुःखान्त कहानी ।
 मिलन जहाँ तहँ अंत विछोहू ,
 अस गुनि संत हृदय नहिं मोहू ।

बोद्धा :— ममतहि मूल विषाद-तरु, ताहि विरक्ति-उपारि ,
 यापहु जीवन शेष तुम, तथा प्रपंच बिसारि । २६२

सुनि मुनिवर्य विशद वर वचनन,
भाषेउ विलपि अम्बिका-नंदन—
“कहेउ सत्य सब तुम मुनिरायी !
सकत न पै मैं सुत बिसरायी ।
मैं अनेत्र निज पुत्र न देखे,
प्राणाधिक जन्महि सुनि लेखे !
सुनि बहोरि आत्मज कल भाषण,
वरसेउ अमृत जनु मम श्रवणन ।
परमानंद जो वेद बतावा,
सुत बैठाय अंक मैं पावा ।
सुनि सुनि शिशु-क्रीडन, रस रंगा,
उडत प्रण मम जनु तिन संग्गा !
एकहि सुरतरु सुरपति-कानन,
बिलसे शत मम मन्दिर प्राङ्गण !
नष्ट आजु ते शत इक साथी,
केहि विधि धैर्य धरहुँ मुनिनाथा !

दोहा :— निष्ठुर, अशनिहु ते कठिन, तात ! दग्ध ये प्राण,
सुनि भीषण संवाद जो, करत न अधी प्रयाण ।” २६३

सोरठा :— सुनि पति आर्त विलाप, पतिव्रता गान्धारजा,
भरित हृदय संताप, कुपित वचन हरि प्रति कहे—

“तुम मम गृह-सुख-उपवन-शूला,
निखिल भरत कुल तुम निर्मूला ।
निज दल तुम मम सुवनहि दीन्हा,
पाण्डु-सुतन नेरुत्वहु कीन्हा ।
कुरुक्षेत्र-रण तुमहि प्रणेता,
जयी न पाण्डव, तुम रण जेता ।
तजि कृतवर्मा सात्यकि दोई,
युद्धेउ आय न यदुजन कोई ।
रच्छे सोऊ तुम रण माहीं,
रच्छेउ एकहु सुत मम नाहीं ।

निज कुल-वृद्धि हेतु तुम सारा ,
रचि रण कौरव-कुल संहारा ।”
अस कहि हरिहि रोष जनु जारी ,
दारुण शाप दीन्ह गान्धारी—
“जस गृह-कलह भरतकुल-नाशा ,
तैसेहि यदुकुल लहहि विनाशा ।

दोहा :— पुत्र, पौत्र, आता, स्वजन, बचहि वंश नहि कोय ,
एकाकी, निर्जन विपिन, अंत तुम्हारहु होय ।” २६४

विस्मित मुनि मुनि हरि दिशि हेरा ,
वदन सौम्य सोइ शान्ति बसेरा ।
भाषेउ तापित तपोनिधाना—
“कीन्ह काह तुम यह भगवाना !
कहे वचन जो मैं पथ माहीं ,
तथ्य अतथ्य विदित मोहिं नाहीं ।”
मुनि मुनिवरहिं श्याम समुभावा ,
निज मुख यदुजन-अनय सुनावा ।
मर्म-युक्त हरि-मुनि-संवादू ,
मुनि अभिनव नृप-हृदय विषादू ।
गान्धारिहु उर उपजी ग्लानी ,
सुमिरि सुमिरि निज शाप लजानी ।
भाषेउ पाद प्रणत घनश्यामा—
“मातु ! यशस्विनि तुम तप-धामा ।
सती-शिरोमणि तुम कुल-नारी ,
लेत शाप मैं निज शिर धारी ।

दोहा :— याचत इतनहि वद्ध-कर, त्यागहु रोष अपार ,
पाण्डु-सुवन गुनि पुत्रवत्, करहु प्रीतिव्यवहार ।” २६५

अस कहि शोक-निवारण लागी ,
मुनिहि वृद्ध दम्पति तिग त्यागी ।

माँगि विदा गवने यदुरायी ,
 लखे पाण्डु-सुत सरि-तट जायी ।
 धर्मज व्यथित वृत्त सुनि सारा ,
 निर्विकार हरि शोक निवारा ।
 पुनि प्रसन्न लखि निर्मल नीरा ,
 भाषेउ नृपहिं वचन यदुवीरा—
 “गत निशि अर्ध, मोर मन माहीं ,
 गवनहिं अब निवेश हम नाहीं ।
 सरि पुनीत यह, सकल सुपासा ,
 मंगलेच्छु निशि करहिं निवासा ।”
 विपिन जन्म, तीर्थन-अनुरागी ,
 श्रीहरि-गिरा नृपहिं प्रिय लागी ।
 सुनि सब दिन-श्रम-श्रान्त शरीरा ,
 सोये निशा ओघवति-तीरा ।

दोहा :— कृप, कृत-रक्षित द्रौणि उत, करि निशि शिविर प्रवेश ,
 हते सुप्त सोमक सकल, द्रौपदि-सुतहु अशेष । २६६

फिरे प्रात हरि-सह जब पाण्डव ,
 लखेउ निवेश दग्ध जनु खाण्डव ।
 निहत सहृद, सम्बन्धी सारे ,
 निर्मूलित निज शिशुहु निहारे ।
 पितु, भ्राता सुत-सर्व-वियोगिनि ,
 पतित, विचेतन द्रौपदि मेदिनि ।
 कहि—“जीतिहु मैं रण यह हारा” ,
 धर्मज दृगन बही जल-धारा ।
 सव्यसाचि-उर भीषण क्रोधा ,
 जागेउ निशिहि-सुप्त प्रतिशोधा ।
 निरखत अरि-रथ रेख जनार्दन ,
 हाँकेउ बहुरि धनंजय-म्यंदन ।
 उत दौणिहु भागीरथि-तीरा ,
 आवत लखे पार्थ यदुवीरा ।

सोरठाः—सहसा करुणा-वारि, बहेउ द्रुपद-नंदिनि दगन,
विलपति पतिहि निवारि, दया-आर्द्र भाषे वचन—

“छमहु नाथ ! यह दासि अभागी,
याचति प्राण-दान द्विज लागी।
विष-पादपहु रोपि निज आँगन,
करत न कोउ स्वकर उत्पादन।
ये तौ गुरु-सुत, पावन नाता,
पूज्य गुरुहि-सम गुरु-अँगजाता।
कीन्हे गुरु जे अस्त्र-प्रदाना,
रच्छे तिन तुम्हार रण प्राणा।
तिनहि सहाय शत्रु संहारी,
आजु राज्य जय तुम अधिकारी।
लहेउ यहहि गुरु प्रत्युपकारा,
रण नित सहे तुम्हार प्रहारा।
पितु-वध-क्रोधित, विस्मृत-नाता,
धृष्टद्युम्न गुरु स्वकर निपाता।
करि इन रात्रि तासु प्रतिकारा,
निखिल पितृकुल मम सहारा।

दोहा :—समर-मही तजि अब शिविर, प्रविशेउ यह प्रतिशोध
बिनसत शय्या सुप्त नर, शिशु विश्वस्त, अबोध। २६६

बिनसेउ दोष न करि प्रतिदोषा,
भयेउ रोष ते शान्त न रोषा।
द्विजहु-हृदय करुणा नहि जागी,
कीन्हि क्षमा-जल शान्त न आगी।
निर्बल कबहुँ न होत उदारा,
तुम बलशील तेजहु प्रतिकारा।
धारहु क्षमा-भाव हृद्धामा,
वैर-चक्र यह लहहि विरामा।
बधेउ इनहि निज सुत, पितु, भाई,
सकति न नाथ ! बहुरि मैं पायी।

दैव-विहित यह दुख मम लागी ,
 करहु न अब गुरु-तियहिँ अभागी ।
 हत-पति आर्या कृपी दुखारी ,
 जीवित इक सुत-वदन निहारी ।
 तजिहैं तनु सुनि सुत अवसाना ,
 निष्ठुर तासु न मम सम प्राणा ।

दोहा :— गुरुनिपाति, अब सुत निहित, करहु न निखिल कुलान्त ,
 धारि नृपोचित उर क्षमा, करहु नाथ ! वैरान्त !” २७०

सोरठा :— श्रीहरि करुणावत, सुनि उदात्त नारी-गिरा ,
 सजल नेत्र-पर्यन्त, कहे पुरय भीमाहि वचन—

“सन्मानहु द्रौपदि-अनुरोधा ,
 त्यागहु तात ! क्रोध प्रतिशोधा ।
 गुण-निधान साध्वी गान्धारी ,
 सकी न सोउ उर रोष सँभारी ।
 पै निज संयम-बल पाञ्चाली ,
 कीन्ह नारि-कुल गौरव-शाली ।
 अपकृत कृष्णा सम जग माहीं ,
 जन्मी कबहुँ अन्य तिय नाहीं ।
 लहेउ न भरि जीवन सुख भासू ,
 रही विपत्तिहि संपति तासू ।
 हारेउ पति जेहि द्यूत परीकृत ,
 अरि-कृत जासु वसन कच कर्षित ।
 सहि वन दुख पुनि बैर उपासी ,
 रही विराट भूवन जो दासी ।
 कृपावती सोइ आजु उदारा ,
 छमति भ्रात, पितु, सुत-हत्यारा !

दोहा :— जो दानव खल-दल-दलनि, चण्डी-मूर्ति रणादि ,
 - दया-मूर्ति अब अम्बिका, सोइ शत्रु अवसादि । २७१

दोहा :— तजहु तुमहुँ विग्रह-जनित, दूषति मनोविकार ,
जागहि जग मानव-दया, सोवहि दनु प्रतिकार । २७२
करहि क्षमा ते पाण्डु-सुत, शासन निज प्रारंभ ,
चिरस्थायि साम्राज्य जो, आश्रित प्रेमस्तंभ ।” २७३

सोरठा :— हरि - नियोग - अभ्यस्त, तजी भीम असि रोष-सह ,
अचल चित्र जनु व्यस्त, चकित द्रौणि परित्राण लहि ।
धिरि जनु विष-घन घोर, अकस्मात बरसे सुधा ,
गवनेउ कानन ओर, दै चूड़ामणि द्रौपदिहि ।



आरोहण काण्ड



सोरठा:—गीता-वाणि प्रमाण, कीन्हेउ खल-दल गंजि जेहि ,
 युग-युग जन-परित्राण, प्रणमहुँ सोउ व्रत-पाल हरि ।
 प्रकटेउ सुधा-सुराज, मथि अथाह जेहि रण-उदधि ,
 द्रवत न कस सो आज, खल-पदतल लखि जन्म-महि ?

दोहा :—समर-जयी श्रीहरि कृपा, लहि श्रीहरि-आदेश ,
 प्रविशेउ सह श्रीहरि अनुज, गजपुर धर्म नरेश । ?

व्यास-निदेश. शीश निज धारी ,
 धृतराष्ट्रहु कुरुपुरी सँवारी ।
 निरखि प्रबुद्ध वृद्ध नरनाहा ,
 संजय विदुरहु उर उत्साहा ।

धर्मज-राज्य सतत अभिलाषी,
मज्जित जनु सुख-निधि पुरवासी ।
सुनि नरपति-सह श्रीपति-आवन,
हर्ष-प्रकर्ष विभोर पौर-मन ।
श्रीहरि-पाण्डव-चरित विचित्रन,
प्रकटत प्रीति द्वार लिखि चित्रन !
उमहत दिशि दिशि आनन्द-संभव,
धाम धाम मंगल विपुलोत्सव ।
वीथि वीथि मलयज-जल-धारा,
उत्पल-दल प्रकीर्ण पुर सारा ।
सौध सौध केतन पट फहरत,
माल्य वितान पण्य-पथ लहरत ।

दोहा :— बाजत वीणा वेणु मधु, कलरव-कल दिग्भाग,
मुखरित शंख असंख्य पुर, चिर प्रसुप्त जनु जाग । २

अनुसृत गज तुरंग रथ अनगन,
पहुँचेउ नगर निकट नृप स्यंदन ।
राज-लक्ष्म शुभ छत्र सोहावा,
प्रथम शुभ्र जन-दृग-पथ आवा ।
नव रवि करि अरि तिमिर विनाशा,
उदित मनहुँ भारत-आकाशा ।
श्री-मण्डप जनु व्योम-विहारी,
सुयश-पटल मानहुँ मनहारी ।
अर्जुन आतपत्र कर धारे,
राज्यतंत्र जनु शौर्य-सहारे ।
शरच्चंद्रिका छवि छिटकावत,
चँवर माद्रिसुत दुगल डोलावत ।
अर्थ काम जनु नर तनु धारी,
सेवत धर्मराज अधिकारी ।
द्विरद-दन्त-द्युति तुरंग सदा ॥
हाँकत समुद्र वृकोदर आप ।

दोहा :— निहत शत्रु-कुल, पूर्ण प्रण, अँग अँग हर्ष प्रवाह ,
शोभित अश्व-अभीषु धृत, साकृति जनु उत्साह । ३

भ्रातन परिवृत शोभित राजा ,
शिखरन सहित मेरु जनु भ्राजा ।
नृपति, तदपि यति संयमवाना ,
ब्रह्म-तेज-सम्पन्न, सुजाना ।
सत्य-निधान, दयामय, दाता ,
धर्म-प्रमाण, धर्म साक्षाता ।
प्रायश्चित्त राज्य-दुश्चरितन ,
पुण्यश्लोक, दिव्य सच्चरितन ।
निरखेउ जन स्वरूप भरि लोचन ,
नृप जनु राष्ट्र आपु दुख-मोचन ।
मुकुट मनोहर हिम-गिरि सोहत ,
आनन सप्तसिंधु मन मोहत ।
मध्यदेश जनु हृदय विशाला ,
कटि तट मनहुँ विन्ध्यगिरिमाला ।
पूर्व प्रान्त पश्चिम दिग्बंडा ,
जनु आजानु बाहु बरबंडा ।

दोहा :— लहरत पट जनु वारिनिधि, चरन युगल तट देश ,
लखि विमुग्ध गजपुर-प्रजा, राष्ट्र-मूर्ति नृप-वेश । ४

गवन्त नरपति-स्यंदन धेरे ,
बंदी मागध सूत घनेरे ।
यश-प्रशस्ति कल कण्ठन गावत ,
हर्ष-हिलोर हृदय उपजावत ।
नृप पाछे यानन सजि साजू ,
शोभित अभिजन, स्वजन-समाजू ।
पुनि युयुत्सु सँग कुल-तिय-वृन्दू ,
गिरा-अतीत पृथा-आनंदू ।
विस्मृत जनु जीवन दुख-गाथा ,
गवन्त नयन तनय-रथ साथा ।

सोहति सासु-साथ पाञ्चाली,
 रूप-राशि, गुण-गौरव-शाली,
 निरखि विजित रण रिपु-संघाता,
 आपुहि मनहुँ विजय साक्षाता।
 बहुरि सुभद्रा रति-मद-हारिणि,
 जनु हरि-भक्ति निखिल कुल-तारिणि।

दोहा :— मूर्तिमंत आशा मनहुँ, तियन उत्तरा सोह,
 कुल-संजीवनि गर्भ घृत, भारत वंश-प्ररोह । ५

यहि विधि निखिल राज-परिवारा,
 प्रमुदित गजपुर प्रजा निहारा।
 तबहुँ न नयन चकोर अघाने,
 खोजत कृष्णचंद्र अकुलाने।
 सहसा शोभित मागध स्यंदन,
 निरखे सात्यकि सह यदुनंदन।
 मनहुँ कलाधर जलधि निहारा,
 उत्थित कर-कल्लोल अपारा।
 स्वागत-स्वर उन्मत्त, अधीरा—
 'जयतु अधर्म दलन यदुवीरा !'
 व्योम विलोकि मनहुँ घन श्यामा,
 मत्त मयूर-ध्वान अभिरामा।
 पुनि जस श्याम मूर्ति नियरानी,
 नयन निबद्ध, शिथिल जन-वाणी।
 लहेउ निरखि क्षण छवि अभिरामा,
 जन्म अनंत पुण्य परिणामा।

दोहा :— अपलक अवलोकत वदर्भ, जनु प्रसन्न मधुमास,
 उपजावत अनुराग उर, नवोत्साह, नव आस । ६

जात न समय प्रजाजन जाना,
 क्रम-क्रम नगर-द्वार नियराना।

आपु वृद्ध नृप स्वागत-हेतू,
विद्यमान द्विज सचिव समेतू।
निरखि युधिष्ठिर, स्यंदन त्यागी,
गहि पितृव्य चरण अनुरागी,
कहे विनीत वचन नरनाहा—
“यहि विधि तात ! न मोर निबाहा।
मैं शिशु सेवक नाथ ! तुम्हारा,
मम हित कस स्वागत सत्कारा ?
नामहि मात्र जनक मैं जाना,
आशैशव तातहि पितु माना।
हरि-पद शपथ कहहुँ पुनि आजू,
नाथ ! तुम्हार धान्य, धन, राजू।
पिता तुमहि, स्वामी तुम ताता !
पद-सेवक हम पाँचहु भ्राता।

दोहा :— धरा, धाम, धन ते अधिक, मोहि पितृव्य-प्रसाद,
तेहि बिनु मम हित घोर वन, त्रिदशपतिहु-प्रासाद ।”७

विनय वचन सुनि नयनन नीरा,
अंध वृद्ध धृतराष्ट्र अधीरा।
प्रकटत शब्द शब्द उर-ग्लानी,
भाषी वदन अवनमित वाणी—
“दिव्य स्वभाव वत्स ! तुम पावा,
संपति विपति रहत सम भावा।
हृदय तुम्हार उदधि गम्भीरा,
होत न यातायात अधीरा।
हरिहु कहे मैं तुमहि न जाना,
सुत शत खोयः आजु पहिचाना।
जिमि तरु-शिखर चढ़त मधु लागी,
कुमति किमंत पतन-भय त्यागी,
तिमि अविवेकी, राज्य-विमूढ़ा,
भये सुवन. मम रण आरूढ़ा।

मैं कुबुद्धि नहीं तिनहिं बरावा ,
चहेउँ छीनि महि तुमहिं नसावा ।

बोद्धा :— याचत तबहुँ प्रसाद मम, तुम बिसारि अपकार ,
को जषन्य मम सम जगत, तुम सम कवन उदार !”८

सुनि धर्मज-धृतराष्ट्र-वचन वर ,
उभय पक्ष आनँद-रस-निर्भर ।
सौख्य शान्ति सूचक वर वाणी ,
गुनि निज क्षेम प्रजहु हर्षानी ।
लखि पितृव्यहिं निज अनुकूला ,
मुदित धर्म नृप, गत उर शूला ।
बिनसेउ भय विषाद समुदायी ,
आजुहि साँच विजय जनु पायी ।
लखि विदुरहिं आनँद अधिकाना ,
प्रणमत पद विह्वल तन प्राणा ।
कृपाचार्य पुनि नृपति निहारे ,
लज्जा-रज-धूसर, मनमारे ।
प्रणमि चरण मृदु वचन उचारी ,
हरेउ सँकोच शोच उर भारी ।
संजय सचिवहिं हृदय लगायी ,
प्रविशेउ राजमार्ग नररायी ।

बोद्धा :— समादिष्ट धृतराष्ट्र सब, पहुँचि राज-प्रासाद ,
तजेउ यान सहरण-जनित, श्रम, भ्रम, भेद, विषाद । ९

लहि कछु काल तहाँ विश्रामा ,
गवने सभा-भवन् छवि-धामा ।
विद्यमान पुर प्रमुख निवासी ,
स्वजन, राजजन, जनपद-वासी ।
नारदादि ऋषि शिष्यन-साथा ,
शोभित सभा व्यास मुनिनाथा ।

सुरदु अलक्षित लखत उछाहू ,
 छुयेउ हेम, मणि, महि नरनाहू ।
 गोरस, घृत, दधि, मधु घट नाना ,
 हवन-काष्ठ जस वेद बखाना ,
 हेम विमण्डित शंख सोहावन ,
 मौक्तिक, लाज, रत्न मनभावन—
 राखी वस्तु धौम्य सब लायी ,
 सविधि वेदिका स्वकर बनायी ।
 बाघंबर आसन नरराजा ,
 द्रुपद-आत्मजा सहित विराजा ।

बोहा :—आहुति दीन्ही धौम्य जस, प्रकटि हर्ष अतिरेक ,
 सर्व प्रथम हरि आपु उठि, कीन्ह राज्य-अभिषेक । १०

सोरठा :—गहि पुनि निज कर कम्बु, धृतराष्ट्रहु प्रमुदित हृदय ,
 सींचि शीर्ष शुचि अम्बु, कीन्ह पाण्डु-नंदन तिलक ।

सलिल पुनीत संकलित तीर्थन ,
 लै अभिषेक कीन्ह द्विज, मुनिजन ।
 सुरसरि-जल लै प्रजा-प्रधाना ,
 सींचि कीन्ह अधिकार-प्रदाना ।
 बसेउ हेम सिंहासन राजा ,
 शुभ्र मेघ जनु मेरु विराजा ।
 हरि प्रेरित पुनि नृप मतिमाना ,
 कीन्ह अमात्य-समिति निर्माणा ।
 पद युवराज भीम कहँ दीन्हा ,
 सेनाध्यक्ष धनंजय कीन्हा ।
 संधि-वैप्रहिक विदुर बनावा ,
 अर्थ-सचिव पद संजय पावा ।
 धौम्यहिं द्वीन्हि देव-द्विज-सेवा ,
 कीन्ह अंग-रक्षक सहदेवा ।
 पद आचार्य कृपहि पुनि दीन्हा ,
 नकुलहि पार्थ-सहायक कीन्हा ।

दोहा :— संजय, विदुर, युयुत्सु सन, कहेउ बहुरि नरराज—

“जानि पूर्व पितृव्य-मत, करहु सर्व जन-काज ।” ११

निरखि कृतिहु वाणी सम निश्कल,
निर्मूलित सब संशय कश्मल ।
नष्ट अशेष जयी-जित-भावा,
विस्मृत रण, प्रति उर सद्भावा ।
निज शीलहि-बल नृपति उदारा,
रचेउ निमिष महँ नव संसारा ।
तजि सिंहासन पुनि हरि साथा,
गवनेउ सभा-द्वार नरनाथा ।
धिरे अपार नगर-नर-नारी,
शंख-निनाद, विजय-ध्वनि भारी ।
ध्वनित दुंदुभी पटह अमन्दा,
गावत यश चारण सानंदा ।
गोधन, हेम, रत्न, परिधाना,
कीन्हे मुक्तहस्त नृप दाना ।
‘स्वस्ति’-वचन बरसे चहुँ ओरा,
हर्ष-पयोधि मनहुँ नृप बोरा ।

दोहा :— सहसा विप्र-समाज ते, प्रकटि कुटिल चार्वाक,
व्यंग गिरा नृप सन कही, करि क्षण सबहि अवाक—१२

“मैं प्रसन्न तुम पै अवनीशा !
आयेउँ आजु देन आसीसा ।
गवने जब तुम वन तजि राजू,
कीन्ह स्वकर निज महत अकाजू ।
सुख-भोगहि भव-उपवन-फूला,
मिथ्या श्रुति अनुभव-प्रतिकूला ।
पृथ्वी, चारि, हुताशन, वाता,
इनते निर्मित यह तनु ताता !
भूत चारि ये तजि भव माहीं,
पंचम तत्त्व कतहुँ कछु नाही ।

मन बुद्धिहु नहिं तत्त्व नवीना,
इन संयोगज, इनहि अधीना ।
लेत जीव जब अन्तिम श्वासा,
तन-सँग मानस बुद्धि विनाशा ।
भूमि तत्त्व पुनि भूमि समायी,
सलिल माहिं पुनि सलिल विलायी ।

दोहा :— पावक महँ पावक मिलत, मिलत समीर समीर,
रहत शेष नहिं कछु कतहुँ, बिनसत जबहि शरीर । १३

असंबद्ध, बिनु ध्येय प्रबंधा,
कार्य समस्त प्रकृति कर अंधा ।
परिवर्तन मय वस्तु अशेषा,
उपजत बिनसत बिनु उद्देशा ।
आत्मा कर श्रुति करति बखाना,
कव, केहि, कहाँ लखेउ, कस जाना !
इन्द्रिय-ग्राह्य वस्तु जो नाहीं,
नहिं अस्तित्व तासु भव माहीं ।
कहुँ न ईश, नहिं कतहुँ विधाता,
जन्मत पुनि न जीव मृत ताता !
जरत चिता पै जो जनु होरी,
सकत कि लौटि सो जीव बहोरी !
मिथ्या पुनर्जन्म, परलोका,
यह तनु सत्य, सत्य यह लोका !
यहि लोकहु महँ जो बलधारी,
सोइ स्वामी, सोइ सुख-अधिकारी ।

दोहा :— पै निबलहि जग महँ बिपुल, स्वल्प सबल; श्रीमान,
बाँधत सबलन गूढ़ि निबल, अगणित धर्म-विधान । १४

नग्न-ग्राम जिमि द्वेष्य अंशुकी,
जगत दशा तिमि आढ्य मनुज की !

पौरुष-रहित, अकिंचन; दीना,
 विप्र चाट-पटु, कपट-प्रवीणा,
 जग प्रत्यक्ष असत्य बतायी,
 वंचत धनिन स्वर्ग-गुण गायी।
 हरि धन तासु करावत अनशन,
 आपु पचावत षट रस व्यंजन!
 नित्य ग्रन्थ नव पंथ बनावत,
 सुर-पूजा मिस आपु पुजावत।
 श्रुति पाखंडहि, नाहिं प्रमाणा,
 धूर्तन-वार्ता शास्त्र पुराणा।
 हितकर देह हेतु जो ज्ञाना,
 सोई ज्ञान, शेष अज्ञाना!
 देह विहाय न कछु कहूँ साँचा,
 देहहि माहिं चतुर-मन राँचा।

दोहा :— निज अनिष्ट सम नहिं कुकृत, सुकृत न स्वार्थ समान,
 जीवन-ध्येय न सुख सदृश, आपुहि आपु प्रमाणा ! १५

तुम्हरेउ हृदय स्वार्थ सुख जागे,
 ताते आजु मोहिं प्रिय लागे।
 जदपि शिष्य मम नृपति अनेका,
 कर कराला एक ते एका।
 पै तुम सम मम तत्त्व-उपासक,
 भयेउ न भरतखण्ड कोउ शासक!
 कंस, सुयोधन, मगध-नरेशा,
 सके त्यागि नहिं दया अशेषा।
 कारागेह कंस पितु डारा,
 कीन्ह कुबुद्धि न तासु संहारा।
 बधी देवकिहु नहिं अज्ञानी,
 सही अंत निज प्राणन हानी।
 तैसेहि जरासंध अविचारी,
 लहि गृह भीम, विजय, कंसारी,

धैरि सैनिकन नहि बधवाये ,
धर्म-युद्ध करि प्राण गँवाये ।
धर्म-भीरु ये धर्म उपासत ,
धर्म-राज तुम धर्महिं शासत !

दोहा :— सुयोधनहु सानुज तुमहि, जीति धूत, करि दास ,
अविवेकी पठयेउ विपिन, कीन्ह सयुक्ति न नास । १६

सिद्ध-हस्त तुम मर्महिं जाना ,
उर मम शिक्षा, मुख श्रुति गाना !
जदपि पितामह भीष्म तुम्हारे ,
जिये सतत तुम तिनहिं सहारे ,
पै छेदत शस्त्रन तिन काया ,
उपजी स्वल्पहु उर नहिं दाया ।
द्रोणहु गुरु तुम्हार विख्याता ,
श्रुति-अनुसार पूज्य अति नाता ।
अथ न ब्रह्म-हत्या सम आना ,
हरे तबहुँ तुम निज गुरु प्राणा ।
रच्छे जब गुरु आजा नाहीं ,
अन्य स्वजन के गणना माहीं !
निज पितृव्य-सुतहु तुम सारे ,
एक एक करि समर सँहारे ।

दोहा :— जानत तुम मम तरब यह, मिथ्या नाता, नेह ,
जन्मत बिनसत यहि जगत, एकाकी यह देह ! १७

प्रकृति-विरुद्ध भात सब जानी ,
निवसत आत्म-वृत्त सब ज्ञानी ।
पत्नी, पुत्र, मातु, पितु, आता ,
मूढ़हि हेतु सर्व ये नाता ।
पर-सुख-हेतु आत्म-सुख त्यागी ,
जन्म अकारण करत अभागी ।

पै तुम सम को भुवन सयाना,
निज हित कीन्ह सबहिं बलिदाना ।
कहँ कुल सहित द्रुपद-पाञ्चाला ?
कहाँ सुतन सह मत्स्य-भुञ्जाला ?
गवनेउ कुन्तिभोज केहि देशा ?
कहँ अगण्य संबंधि नरेशा ?
कहँ प्रतिविध्यहु तनय तुम्हारा ?
कहँ सौभद्र पार्थ-दृग-तारा ?
अरिन सहित तुम नेहिहु अनगन,
जारे स्वार्थ-यज्ञ जनु ईधन !

दोहा :— धन्य ! धन्य ! तुम धर्म-सुत, धन्य शिष्य आदर्श,
गवनत आशिष दै तुमहिं, लहहु नित्य उत्कर्ष !” १८

यहि विधि भाषि वचन अविनीता,
दुरेउ भीर चार्वाक समीता ।
सुनत कर्ण-कटु वर्ण-कलापा,
नख-शिख धर्मप्राण नृप काँपा ।
पूर्वहि ते मन रुढ़ विचारा,
स्वार्थ-मूढ़ मैं वंश सँहारा ।
लागि गिरा गर्हित सब साँची,
मृतजन-मूर्ति दृगन-तल नाची ।
इत हरि नृपति सँभारेउ बिह्वल,
उत जन-राशि, विषम कोलाहल—
‘धावहु ! धरहु !’ उग्र ध्वनि छायाी,
गहेउ सहठ जन शठ पछियायी ।
मुनि-मण्डलिहु कोप अति व्यापा,
तरलित पिंगल जटा-कलापा ।
तजि भुज खसे अर्जिन चहुँ ओरा,
मुद्रा रुद्र, शाप स्वर घोरा ।

दोहा :— जब लगि सकहि उदार हरि, रोष अपार निवारि,
कीन्हेउ मुनिजन छार खलै, तप-ज्वाला निज जारि । १९

क्रम-क्रम शान्त रोष-उच्छ्वासा ,
 पुनि दिशि-दिशि सोइ हर्ष हुलासा ।
 क्लान्त एक नृप, शान्त न क्षोभा ,
 हत नीहार मनहुँ दिन-शोभा ।
 सुनत वाट वीथिन जयनादा ,
 प्रविशेउ विमन राज-प्रासादा ।
 अमर-सदा सम पैतृक धामा ,
 विभव-विलास-भवन अभिरामा ।
 कंचुक, कनक-वेत्र जहँ धारे ,
 राजत प्रतीहार बहु हारे ।
 जहँ सेविका मनहुँ सुर-नारी ,
 लिये हेम-घट कुंकुम-वारी ,
 सजि घनसार सुमन मणि-पात्रन ।
 शोभित मज्जन-मही सहस्रन ,
 मलयज शीतल माल-सजायी ,
 जहाँ विलेपन-भूमि सोहायी ।

दोहा :— शयन-सदन, भोजन-भवन, जहँ सुर-अर्चन-धाम ,
 कला, केलि, कौतुक-निलय, नंदन सम आराम । २०

सोरठा :— भोग विलास अशेष, निरखत जेहि दिशि जात दग ,
 नृप-मन हर्ष न लेश, लब्ध बंधु-वध गुनि विभव ।

सुख सुर-दुर्लभ संचित आगे ,
 नयन विरक्त जात जनु भागे !
 राज्य रोग जनु, श्री जनु शापा ,
 मही नरक, जीवन जनु पापा ।
 भोग भुजङ्ग, हार जनु भारा ,
 मलयज अनल, गरल आहारा ।
 विकल विभव बिच नृप निज धामा ,
 जनु अलि कमल-निलीन त्रियामा !
 मौनी, चेष्टा-विरहित, दुर्मन ,
 जनु विक्रीत, नीच-कुल अभिजन ।

सोचत को मैं ? का धन धामा ?
अंत काह विषयन-परिणामा ?
अथवा कतहुँ न चिर कल्याणा,
व्यर्थ स्वार्थ-परमार्थ समाना,
निरालोक नृप-उर भव-भीती,
मन विमुग्ध, गत आत्म-प्रतीती ।

दोहा :—संशय-भार असह्य अति, दग मुँदे नरनाथ,
सहसा शिर मन-ज्वर-शमन, धरेउ हाथ यदुनाथ । २१

निरखे नृप उन्मीलित-लोचन,
ज्ञानमूर्ति हरि विपति-विमोचन ।
करुणा-धाम देत अवधाना,
गिरा भव्य भाषी भगवाना—
“आजु भुवन-विजयी तुम ताता !
तदपि न विषय भोग मन राता ।
विपिन विपिन जिमि विटप अनेका,
नंदनवनहु * कल्पतरु एका ।
तिमि थल थल नृप इन्द्रिय-दासा,
विरलहि कहुँ कोउ विषय-उदासा ।
प्रजाजनहि वसु-वसुधा-ईशा,
अभिभावक मात्रहि अवनीशा ।
कीन्ह न जिन जिन तन मन-शासन,
सकत कि करि ते जनु-अनुशासन ?
नहिँ आसक्ति राज्य महँ जासू,
सोइ सुयोग्य अधिकारी तासू ।

दोहा :—अभिषेकहु-वासर निरखि, राज्य-विमुख नरराज,
रहित समर-संशय-श्रमहु, पूर्णकाम मैं आज । २२

सोरठा :—तत्त्वहीन ते तात ! कहे वचन चार्वाक जे,
अज्ञानिन-अज्ञात, देह-परै औरहु कछुक !

विश्व अनंत, प्रसार अपारा ,
 जनु असीम वारिधि-विस्तारा ।
 वस्तु विपुल जलनिधि तल माहीं ,
 मानव-नयन लखीं सब नाहीं ।
 उमहि निजेच्छा जलधि-तरङ्गा ,
 तट धरि जाति वस्तु बहुतरङ्गा ।
 थल-वासी असंख्य नरनारी ,
 शुक्ति शंख लहि होत सुखारी ।
 स्वल्पहि वृत्त यथा ये प्राणी ,
 तथा तात ! चार्वाक-कहानी ।
 निज रहस्य जो भव प्रकटावत ,
 सोइ सर्वस्व मानि सुख पावत ।
 पै अपरहु कछु नरवर धीरा ,
 जे न सुखी बसि वारिधि-तीरा ।
 जलधि-रहस्य निखिल बिनु जाने ,
 निवसत नहि ते भोग-भुलाने ।

दोहा :— अवमानत निज तुच्छ तनु, प्रविशत उदधि अगाध ,
 पावत नूतन रत्न नित, बिनसति तबहुँ न साध । २३

विश्व-रहस्यहु ताहि प्रकारा ,
 तेहि प्रति प्रकट जो खोजनहारा ।
 साँचहु महि, जल, अनल, समीरा ,
 व्योम-विनिर्मित मनुज-शरीरा ।
 तदपि चेतना जो तेहि माहीं ,
 महाभूत-निर्मित सो नाहीं ।
 जे जड़, जड़सा जिनहिँ पियारी ,
 वृत्त जगत जड़-दृगन निहारी ।
 देत ज्ञान, पंचेन्द्रिय जेतिक ,
 विश्व ससीम मूढ़ हित तेतिक ।
 जड़ प्रति विरति उपज हिय जिनके ,
 उधरि जात मति-लोचन तिनके ।

विश्व अपरिमित परत लखायी,
इन्द्रिय जड़ जहँ सकत न जायी ।
सीमित इन्द्रिय-पहुँच अतीवा,
मति-गति तात ! अबाध, असीवा ।

दोहा :— बसत जदपि तन-यंत्र मन, तदपि न तासु अधीन,
सर्वग सो आकाश-सम, यद्यपि आकृति-हीन । २४

मन-रत्नहिँ योगिन पहिचाना,
जड़-मति तासु प्रभाव न जाना ।
तेहिँ सम अन्य शक्ति नहिँ ताता !
जीवहिँ सोइ सर्व फल-दाता ।
विषयिन कर वह विषय दड़ावत,
योगिहिँ परम तत्त्व दरसावत ।
जब लगि भौतिक सुख अनुरागा,
तब लगि मनहु ताहिँ महुँ पागा ।
सूत्र-निबद्ध विहग अनुहारी,
उड़ि न सकत मन पंख पसारी ।
जस जस जकड़त विषयन-पाशा,
तस तस घटत उड़न-अभ्यासा ।
जो यहिँ दशा माहिँ तनु-हानी,
जन्मत निम्न योनि लहिँ प्राणी ।
क्रम-क्रम निज मन-गति अवसादी,
जड़वत् होत अंत जड़वादी !

दोहा :— विकसित मन हित जलनिधिहु, गोपद-सलिल समान,
समुक्त जड़ जो नर मनहिँ, जड़ तेहिँ सम नहिँ आन । २५

सोरठा :— भाषे वचन अधीर, धर्मज सुनि श्रीहरि-गिरा—
“हरहु नाथ ! भव-पार, विभव-पंक ते काढ़ि मोहि ।

भक्त तुम्हार, तुमहिँ मैं ध्यावत,
कस मोहिँ कलुषित पंथ लगावत ?

उचित कि मदिरा मुनिहिं पियावन ?
 सद्भृत्यहिं प्रभु-द्रोह सिखावन ?
 उचित कि डारब सुजन कुसंगा ?
 रचब विरत हित मोह-प्रसंगा ?
 स्वल्पहु विषय-भोग-संयोगू,
 बढ़ि नासत धृति, तनु जिमि रोगू ।
 भ्रमर, मीन, मृग, द्विरद, कुरंगा,
 बिनसत इक इक विषय-प्रसंगा ।
 नर महँ सब अनर्थ इक साथी,
 अकथ नरेश-कथा यदुनाथा !
 राज्य सर्व विषयन-भण्डारा,
 परि तेहि माँहिं न बहुरि उबारा ।
 बिनसत मोह कि भजे एषणा ?
 मिटति कि लवण-पान ते तृष्णा ?

दोहा :— शान्त होति नहिं कामना, किये काम-उपभोग,
 बढ़ति लालसा भोग-सँग, ज्वाला जिमि घृत-योग । २६

मित धन-धान्य द्विजन-गृह माहीं,
 लोभ-प्रसंगहु जीवन नाहीं ।
 स्वल्प विषय, नहिं विभव अशेषा,
 नहिं असीम ईर्ष्या विद्वेषा ।
 भव-भय पै विप्रन-मन माहीं,
 तजि निकेत निज कानन जाहीं ।
 भूप-अवस्था प्रभु ! अति घोरा,
 नख-शिख रहत विषय-रस बोरा ।
 राग द्वेष धक्कत जनु आगी,
 बचत विहाय जात जो भागी ।
 ताते सुनि • मम विनय विशेषा,
 देहु समोद मोहिं आदेशा—
 लेहिं अनुज धन राज्य सँभारी,
 होहु महँ बसि विपिन सुखारी—

जहँ फल मूल सुलभ आहारा ,
निर्भर निर्भर जहँ जल-धारा ,

दोहा :— हम्य जहाँ गिरि-गह्वरहि, धर्म-कथा संलाप ,
तरुन अपरय सनेह जहँ, सुहृद मृगहि निष्पाप । २७

सोरठा :— नृप-पद प्रेयस्थान, श्रेय-प्राप्ति प्रभु ! तहँ कहाँ ?
खनि वसुधा अनिधान, लहि कि सकत निधि-अर्थि निधि !”

विहँसे विनय-वाणि मुनि श्रीपति ,
भाषे बोध वचन पुनि नृप प्रति—
“भवन विशेष न विषय-निवासू ,
विपिनहु महुँ अभाव नहिं तासू ।
बसत तात ! सो मनुजहि माहीं ,
रहत साथ जिमि तनु परिछाहीं ।
जात मनुज जब कानन भागी ,
रहत न सोउ, जात सँग लागी ।
मित तुम रंकन-राग बखाने ,
ईष्या द्वेषहु लघु करि माने ।
नृपति-विषय-द्वेषहु बड़ जाना ,
पै यह तात ! भ्रान्त अनुमाना ।
रंकन माहिं वस्तु लघु लागी ,
धधकत राग द्वेष बनि आगी ।
रहत न स्वल्प-अनल्प-विचारा ,
होत कुटुम्ब ग्राम जरि छारा ।

दोहा :— वनहु माँहि मुनि-मण्डली, निवसति नहिं निष्पाप ,
दण्ड कमण्डलु हित लरत, देत परस्पर शाप । २८

विषय-निवास निजहि महुँ जानी ,
इत उत भ्रमत फिरत तहिं ज्ञानी ।
गुनि औषधिहू आपुहि माहीं ,
तजत काम ते, धामहिं नाहीं ।

विषयन-साथ निरखि मन जाता ,
 रोकत निग्रहवन्त हठाता ।
 जस जस बढ़त जात अभ्यासा ,
 तस तस छिन्न वासना-पाशा ।
 जड़-विमुक्त मन-विहग उड़ायी ,
 धावत चेतन दिशि हर्षायी ।
 लहि तेहि जात अनत पुनि नाहीं ,
 मन थिर होत काम मिटि जाहीं ।
 बसत न तात ! मोक्ष आकाशा ,
 नहिं भूतल पातालहु वासा ।
 विमल मानसहि मोक्ष कहावा ,
 आपुहि माहिं मनुज तेहि पावा ।

दोहा :— व्यापत आत्माराम-मन, नहिं भव-भोगन-जाल ,
 पावस-वारि प्रसिक्त वन, दहति न जिमि दव-ज्वाल । २६

पै यह आत्म-लाभ, कल्याणा ,
 जीवन-पथ अन्तिम सोपाना ।
 प्रथम परिग्रह, पुनि जग त्यागा ,
 पूर्व राग रति, अंत विरागा ।
 बिनु प्रवृत्ति नहिं तात ! निवृत्ती ,
 अनासक्ति कहँ बिनु आसक्ती ?
 कहँ बिनु प्रेय, श्रेय संसारा ?
 बिनु संचार न प्रति संचारा ।
 ईहा बिना कहाँ उपरामा ?
 कहँ बिनु काम-वृत्ति निष्कामा ?
 तृष्णा बिना कहाँ निर्वाणा ?
 कहाँ निरोध बिना व्युत्थाना ?
 सर्ग बिना उपसर्ग न संभव ,
 सुखहु न पूर्ण बिना दुख-अनुभव !
 बंध-वेदना जेहि नहिं जानी ,
 सकत कि चाहिं मुक्ति सो प्राणी ?

दोहा:— जब लगि भोग-निदाघ ते, व्याकुल तन मन नाहि ,
खोजत नहि तब लगि मनुज, मोक्ष-महीरुह-झाहि । ३०

सोरठा:— धर्म-युक्त कामार्थ, ताते बरनति तात ! श्रुति ,
लहत न कोउ परमार्थ, लहे बिना पुरुषार्थ त्रय ।

औरहु निज मन करहु बिचारा,
नर न स्वतंत्र, शीश ऋण-भारा ।
शैशव बालक स्वबल-विहीना,
जीवन जननी-जनक-अधीना ।
विपुल जीव अन्यहु हितकारी,
पोषक, अभिभावक, भयहारी ।
भये वयस्क लहत जो ज्ञाना,
सोउ पर-अर्जित, ऋषिन-निधाना ।
यौवन भोगत भोग सोहाये,
सोउ समाज-कृत, निज न, पराये ।
जन्म-मृत्यु-बिच क्षण नहिं ताता,
जब न समाज होत सुखदाता ।
ऋण यहि विधि नर शीश अनेकन,
विश्रुत देव-पितृ-ऋषि-ऋणगण ।
कहत सर्व श्रुति शास्त्र पुकारी,
नाहिं अनृत्य मोक्ष-अधिकारी ।

दोहा:— कीन्ह ऋषिन ऋण-शोध हित, आश्रम-धर्म विधमन ,
चारिहु जीवन-फल लहत, गहि जेहि आर्यसुजान । ३१

जेहि न संतुलित जीवन भावा,
भ्रमत सो आपु, जगहिं भरमावा ।
अहंभाव अस मनुजन माहीं,
मन उच्छृंखल, धीरज नाहीं ।
नहिं विदग्धता, जीवन काँचा,
हृदय न ज्ञान विरागहु साँचा ।

कबहुँ तिनहिं जो दैव वशाता ,
विषयन-संग होत पुनि ताता !
जात सर्व वैराग्य परायी ,
तृण जिमि भ्रंभावात उड़ायी ।
निरखि कष्ट-कारक ये धर्मा ,
तजत विराग-व्याज निज कर्मा ।
ये नहिं साधु मोक्ष अभिलाषी ,
भरत उदर 'शिव ! शिव !' मुख भाखी ।
त्याग सर्व ऋण-वंचन लागी ,
लहत अधोगति अन्त अभागी ।

दोहा :— गवनत वन ये तजि भवन, सुनि इत-उत कहु ज्ञान ,
रति-विरतिहु-अनुभव-रहित, पावत नहिं कल्याण । ३२

जीवन-अग्नि जरेउ नहिं जोई ,
सो न विदग्ध विरागी होई ।
परखत हेम डारि जिमि आगी ,
परखिय विषयन डारि विरागी ।
स्वानुभूति बिनु उपज न ज्ञाना ,
कानन नहिं अनुभूतिस्थाना ।
रै पालत जे विहित स्वधर्मा ,
तजत न असमय जे निज कर्मा ,
गहत संयमित जीवन-सरनी ,
होत भवान्धिहि तिन हित तरनी ।
जीवन भरि जो जेहि ते पावत ,
करि सतगुण निज ऋणहिं चुकावत ।
करत ते शैशव विद्याभ्यासा ,
यौवन परिमित भोग विलासा ।
वय तृतीय ते होत विरागी ,
योग ते देत अंत तनु त्यागी ।

दोहा :— धर्महि-हेतु गृहस्थ ते, सन्तति-हेतु विवाह ,
ग्रहण त्याग-हित, त्याग महँ, रचहु नहिं यश-चाह । ३३

ये आदर्श गृहस्थ कहाये,
विश्व-विभूषण मोहिं अति भाये ।
पालत इतर आश्रमन निज श्रम,
ताते सब ते श्रेष्ठ गृहाश्रम ।
पंथ जो तात ! गृही-प्रतिकूला,
करत सो छिन्न धर्म-तरु-मूला ।
एक यहहि आश्रम अपनायी,
मुक्ति पूर्व जनकादिक पायी ।
संसक्तिहु द्विविधा जग माहीं,
बंधा बंधा तात ! कहाहीं ।
देहादिक महुँ उपजति जोई,
बंधासक्ति कहावति सोई ।
लहि तेहि भोगहि महुँ मन लागा,
लुब्ध गृद्ध जिमि पिशितहि पागा ।
आत्मज्ञान ते उपजति बंधा,
मम विभूति सो सदा अनिद्या ।

दोहा :— स्वार्थ-शून्य संसक्ति यह, सदा परार्थहि लागि,
सुखी जगत जे यहि गहत, लहत मुक्ति तनुत्यागि । ३४

बंधा संसक्तिहि ते ताता !
सिरजत भुवन समस्त विधाता ।
तेहि प्रताप चक्रादिक धारी,
पालत विष्णु सृष्टि यह सारी ।
गहि तेहि शिवासक्त शिवशंकर,
भव-भय-हरण अंत प्रलयंकर ।
यह बंधा संसक्ति उपासी,
दिनमणि नित नर्थ-मार्ग-प्रवासी ।
लोकपालगण, सिद्धहु, सारे,
करत लोक-हित याहि सहारे ।
ध्रुव, प्रह्लाद, विदेह महीपा,
बहु राजर्षि नृपनकुल-दीपा ।

नारदादि मुनिवरहु उदासी ,
नित वंधा संसक्ति-उपासी ।
परहेतुहि इन जीवन धारा ,
याही हित मोरहु अबतारा ।

दोहा :— उपजी तुम्हरेहु उर विरति, दृढ़बहु करि अभ्यास ,
नृप विदेह सम राज्य करि, काटहु निज-पर-पाश । ३५
यह वंधा संसक्ति उर, सदा बसहि निष्काम ,
होहु तात ! तुम याहि बल, धर्म-मोष सुख-धाम । ३६

सोरठा :— सत-रवि भासित आपु, शीत-उष्ण सुख-दुख परे ,
निबसि हरहु जग-ताप, धर्म-वारि निशि-दिन बरसि ।”

मुनि हरि-गिरा नृपति मन हर्षा ,
मृत तनु पै जनु अमृत-वर्षा ।
रहित-शोक-संशय थिर नृप-मन ,
शान्त प्रवात भये जनु नभ घन ।
हरिहु प्रसन्न नृपहिं लखि अविकल ,
भाषे बहुरि वचन जन-वत्सल—
“शान्तनु-सुत शर-शय्या-शायी ,
निशि दिन तात ! रहे मोहिं ध्यायी ।
नहिं जग बहुश्रुत भीष्म समाना ,
शस्त्रहि सम शास्त्रहु कर ज्ञाना ।
शोच्य न मृत्यु माहिं तन-नाशा ,
शोच्य जो तन-सँग ज्ञान-विनाशा ।
पुण्य समाज अर्वा-तल सोई ,
राखत गुरुजन-ज्ञान सँजोयी ।
तुम पै अमित पितामह-प्रीती ,
तुमहि सकत लहि निधि मनचीती ।

दोहा :— सरिसुत-दर्शन हेतु मैं, करिहौं गमन प्रभात ,
तुमहु स्वजन अनुजन सहित, चलहु संग मम तात ।” ३७

सोरठाः—सुनि पुलकित नरराय, अनुमोदे श्रीहरि-वचन,
गमन कीन्ह यदुराय, लखि सायं-संध्या-समय

बीती क्षणदा क्षणहि समाना,
सुमिरे प्रभु प्रभात युयुधाना।
आयेउ नृपहु सहित परिवारा,
सब मिलि कुरुक्षेत्र पगु धारा।
लखेउ दूरि ते मुनिन-समाजू,
जनु रण-क्षेत्र ज्ञान-महि आजू।
शर-शय्या शान्तनु-सुत देखा,
मनहुँ सांध्य रवि अन्तिम रेखा।
आतुर तजि स्यंदन घनश्यामा,
कीन्ह सश्रद्धा पाद प्रणामा।
मूर्च्छा-मीलित भक्त-विलोचन,
लखि कर भाल धरेउ भव-मोचन।
लहि मृणाल-अंगुलि शीतलता,
बिनसी अन्तर्तम विह्वलता।
पाय रश्मि-शीकर नख-शशि के,
चंद्रकान्तमणि-प्राणहु पुलके।

बोहा :—प्रत्युज्जीवन-क्षम परस, लहि जागे गाङ्गेय,
सन्मुख निरखी दिव्य छवि, भवहर, संसृति-श्रेय। ३८

भीष्महिं श्यामल तनु अस भासा,
पुञ्जीभूत मनहुँ आकाशा।
चंचल पट शरीर-संलग्ना,
दामिनि जनु चिर व्योम-निमग्ना।
मोर-मुकुट जनु कान्तिन-सारा,
मज्जत दृग रँग-पारावारा।
नील वक्ष द्योतित वनमाला,
पुहुप मनहुँ ग्रह लोक विशाला।
हस्त सुदर्शन चक्र सदन्ता,
कालचक्र जनु सयुग अनन्ता।

वीर गंभीर सलय आलापू,
प्रकटत नाद-ब्रह्म जनु आपू।
विश्व-सार हरि भीष्म निहारा,
सन्मुख निराकार साकार।
लहे न तदपि पदाम्बुज-दर्शन,
उठत न शीश विद्ध शित बाणन।

दोहा :— लाख हरि शय्या पद घरेउ, भीष्म चरण-रज लीन्हि,
फूटी बाणी कण्ठ ते, भक्त प्रभुस्तुति कीन्हि—३६

“सिरजत प्रथम विश्व तुम स्वामी !
तुमहिं विधाता-रूप नमामी।
पालत बहुरि तुमहिं भव नाथा,
वंदहुं विष्णु-रूप नत-माथा।
प्रकटि, पालि पुनि करत संहारा,
वंदहुं शंभु-स्वरूप तुम्हारा।
बरसत घन जिमि एकहि वारी,
होत मही-अनुहरि मधु खारी,
तिमि तुम नाथ ! जदपि अविकारा,
होत त्रिविध त्रिगुणन अनुसार।
जग प्रमेय तुम्हरे हित सारा,
अप्रमेय पै तुम जग-द्वारा।
कामद आपु, जदपि गत-कामा,
अविजित आपु, तदपि जय-धामा।
जदपि व्यक्त संसृति कर कारण,
आपु स्वयं अव्यक्त, अकारण।

दोहा :— हृदयस्थित पै दूरि तुम, तपी तदपि निष्काम,
अदुखी पै पर-दुःख-हर, अजर, पुरातन नाम। ४०

तुम सर्वज्ञ, सबहिं-अज्ञाता,
आपु स्वयंभू सर्व-विधाता।

आपु अनीश्वर, पै सर्वेशा ,
 एक, तदपि सब रूप प्रवेशा ।
 अस तथापि तुम जन्महिं धारत ,
 जदपि निरीह, शत्रु संहारत ।
 सोवतहू तुम जागनहारे ,
 सकत जानि को चरित तुम्हारे ?
 एक जन्म महँ जप-तप-योगा ,
 अन्य जन्म भोगत बहु भोगा ।
 कबहुँ असुर बधि प्रजा उबारा ,
 कबहुँक उदासीन व्यवहारा ।
 तुमहिं मुक्ति-हित मुनि अभ्यासी ,
 ध्यावत ज्योति-रूप उर-वासी ।
 पथ प्रभु ! मुक्ति-प्राप्ति-हित नाना ,
 पृथक पृथक श्रुति शास्त्र बखाना ।

दोहा :— जिमि सुरसरि-धारा विविध, पारावार समाहिं ,
 तिमि तुम्हरेहि प्रति पंथ सब, अंत भक्त लै जाहिं । ४१

चित्त निवेशित तुम्हरेहि चरणन ,
 कर्म सर्व करि तुमहिं समर्पण ।
 तजत मुक्ति हित विषयन साथा ,
 तिनकै एक तुमहिं गति नाथा ।
 सुमिरतहू जब पाप नसाहीं ,
 दरस-परस-फल किमि कहि जाहीं ?
 तुमहिं न कछु अलब्ध विश्वेशा !
 लभ्यहु कछु न रहेउ कहुँ शेषा ।
 करत तबहुँ तुम जन्म जो धारण ,
 लोक-अनुग्रह केवल कारण ।
 कर्महु करत जो तुम, सर्वेशा !
 एक लोक-संग्रह उद्देशा ।
 प्रभु-विरचित प्रत्यक्ष पसारा ,
 सोउ न ज्ञान-गम्य अब सारा ।

श्रुति, अनुमानहि जहाँ प्रमाणा,
सकत को जानि तुमहिं भगवाना !

दोहा :— प्रभु-गुण-चरित अनंत सब, बरनि सकेउ कब कौन ?
निज अशक्ति ही ते सदा, धारति वाणी मौन !”४२

सोरठा :— विरमी वाणी हारि, बद्ध भीष्म-द्वग पै वदन,
मनहुँ सुमन गुञ्जारि, पियत मधुप निःशब्द मधु !

सुनि शान्तनुसुत-गिरा-कलापा,
हर्ष अपार मुनिन-उर व्यापा ।
गूँजेउ ‘साधु’-शब्द, जय-निःस्वन,
वात-स्वरित जनु मधुर वेणु-वन ।
हरिहु विनय-मय बैन सुनाये—
“तात ! दरस-हित पाण्डव आये ।
गुरुजन-निधन-ग्लानि मन माहीं,
धर्म-सुवन समुहात लजाहीं ।”
कहेउ पितामह—“तुम भगवाना !
धर्म-अधर्म-मर्म सब जाना ।
शास्त्र-विहित रण क्षत्रिय-कर्मा,
किये सुकृत, नहिं किये अधर्मा ।
पितु आचार्य, पितामह, भ्राता,
सायुध जो अधर्म-रण-माता,
उचित बधव तेहि बिनु संकोचू,
करत व्यर्थ धर्मज उर शोचू ।

दोहा :— शशि महँ जिमि उष्मा नहीं, शोष न यथा जलेश,
तिमि धर्मज महँ नहिं सकत, निवसि अधर्महु लेश !”४३

सोरठा :— फेरेउ मस्तक हाथ, अस कहि बोलि समीप नृप,
लाहि अवसर यदुनाथ, प्रकटेउ उर-गत-भाव निज—

“जब लागि दक्षिण-अयन दिवसपति,
तब लागि तात-समागम-संगति ।

छप्पन दिवस शेष महि-वासू ,
 परमधाम पुनि नियत निवासू ।
 तजि पर-हित तुम स्वार्थ न जाना ,
 अबहुँ करहु जग-जन-कल्याणा ।
 देहु हमहिं निज मुख उपदेशा ,
 राजधर्म सब कहहु अशेषा ।
 ज्ञान-कोष, विज्ञान-विभूती ,
 तुम सम केहि लोकहु-अनुभूती ।
 लहिहैं हम न सुयोग बहोरी ,
 ताते तात ! विनय यह मोरी ।
 मुनिन-समाजहु सोइ जिज्ञासा ,
 धर्मज-हृदय सोइ अभिलाषा ।
 लहि संततिहु ज्ञान-भण्डारा ,
 युग-युग गइहै सुयश तुम्हारा ।”

दोहा :— विहँसि कहेउ सुनि हरि-गिरा, शान्तनु-सुत हरि-दास ,
 “अछत नाथ उपदेश मम, करत काह परिहास ! ४४

सोरठा :— दीप दिखाये तात ! बढ़ति कि कहूँ पावक-प्रभा ?
 प्रजवित अँझावात, होत डोलाये कहूँ व्यजन ?

सुरपति-ढिग सुरलोक-बखाना ,
 तिमि प्रभु अछत धर्म-आख्याना ।
 जेहि धर्मार्थ काम उपजाये ,
 पावत मोक्ष जाहि नर ध्याये ,
 सन्मुख सोइ जगद्गुरु राजत ,
 एकहु शब्द कहत मन लाजत ।
 नहिं कछु अचरज जो भगवाना !
 चीन्हत नर नहिं तुमहिं अयाना
 लघुहिं महत नहिं महत लखाहीं ,
 मुकुर माहिं जिमि गिरि-परिछाहीं !
 परब्रह्मतहु जो बिसरायी ,
 मनुजहि मानि लखैहुँ यदुरायी ।

समता-योग्य -तबहुँ की नाथा !
सकल अलौकिक जीवन-गाथा ।
श्रुति वेदाङ्ग शास्त्र जग जेते ,
सप्रयोग जानत तुम तेते ।

दोहा :— सर्व-व्यापिनी, सर्व-विद, सर्व-उपाय प्रवीण ,
तदपि प्रेममयि नाथ-मति, सतत परार्थहि लीन । ४५

प्रेम-व्रती तुम प्रेम-स्वरूपा ,
प्रेम-पूर्ण सब चरित अनूपा !
शैशव प्रेमहि माहिं बितावा ,
ब्रज बसि प्रेमामृत बरसावा ।
गोप, गोपिका, बत्सहु, गाई ,
तोषे नेह-सरित अन्हवायी ।
प्रेम यदुजनहु-प्रति प्रकटावा ,
सौख्य उमहि द्वारावति आवा ।
जदपि प्रेममय नाथ-स्वभाऊ ,
तजत धर्म देखेउँ नहिं काऊ ।
नेइ जहाँ जब धर्महि बाधत ,
तुम तजि नेह धर्म आराधत ।
नात जो पृथा-सुतन सह ताता ,
सोइ शिशुपाल चैद्य सँग नाता ।
भगिनि जो नाथ ! अर्जुनहिं दीन्ही ,
कुरुपति-दुहिता सुत-हित लीन्ही ।

दोहा :— नाथे कुरुपति, चेदिपति, गही पाण्डु-सुत-बाँह ,
कारण कछु नहिं अन्य तहँ केवल धर्म-निबाह । ४६

धर्म-हेतु तुम कंस विनासा ,
जरासंध धर्महि हित नासा ।
पौण्ड्रक, भौमासुर संहारे ,
काल, शाल्व धर्महि हित मारे ।

रक्त-पात पै तुमहिं न भावा,
जहँ जहँ संभव नाथ बरावा।
राजनीति का कहहुँ बखानी ?
तुम अशेष नय-नीतिन-खानी।
काल यवन भारत-आराती,
नासेउ प्रभु ! तुम तेहि जेहि भाँती,
अबहुँ सो कौतुक सुमिरि मुरारे !
हर्ष-विभोर होत जन सारे।
कूटयुद्ध-पटु यवन निकाया,
सके न सोउ समुझि प्रभु-माया।
नासेउ गिरि भ्रमाय यवनेशा,
रच्छेउ यवन-त्रास ते देशा।

दोहा :— अस्त्र-शस्त्र-विद वीरजन, उपजे बहु जग माहि,
तुम समान संतत जयी, लखेउँ सुनेउँ कहुँ नाहि । ४७

लघु बल ते बहु अरि-बल नासी,
नव रण-पटुता नाथ प्रकाशी।
बार अष्ट-दशयें मगधेशा,
चढ़ेउ जबहिँ लै विपुल नरेशा,
मथुरापुरी अरच्या जानी,
त्यागी तुम जस सारँगपानी,
दुर्ग द्वारका जस निर्मावा,
जरासंध जस अंत नसावा,
सो सब रण-चातुर्य-कहानी,
अजहुँ भवन प्रति जाति बखानी।
सैन्य, शस्त्र महँ जय-बल नाहीं,
बसति विजय सेनानिहि माहीं।
यह रण-तत्त्व नाथ ! तुम चीन्हीं,
दुर्योधनहिँ सैन्य निज दीन्हीं।
अस्त्र शस्त्र पुनि सकल विहायी,
आये कुरुक्षेत्र यदुरायी।

दोहा :— रण-संचालन कीन्ह तुम, रथ-संचालन साथ,
सेनानी महिमा तहँहु, पुनि प्रकटी यदुनाथ ! ४८

कहँ लागि बरनहुँ प्रभु-गुण-ग्रामा,
तुम पुरुषोत्तम, सार्थक नामा।
नासि असुर सब सहित सहायक,
आजु जयी तुम यदुकुल-नायक !
धर्म-सुतहिँ बैठाय सिँहासन,
चहत धर्म-संयुत तुम शासन।
तेहि हित मोहिँ उपदेश-निदेशा,
मैं असमर्थ, बुद्धि नहिँ लेशा।
शराघात-पीड़ित अँग अंगा,
मानस व्यथित, मर्म-थल भंगा।
गिरि, तरु, भूमि, दिशा आकाशा,
मन विभ्रान्त एक सब भासा।
अस्थिर असु, गत वाणी, बोधा,
अबुध आपु केहि करहुँ प्रबोधा ?
एतिक दिनन तुम्हारिहि दाया,
जियेउँ नाथ ! बिनसी नहिँ काया।

दोहा :— उपदेशहु तुम धर्मसुत, करहुँ विनय भगवान !
पियत अंत लागि स्वर-सुधा, निकसहिँ तनु ते प्राण !” ४९

सुनि निर्मल सुरसरिसुत-वाणी,
भाषेउ प्रीति भक्त वरदानी—
“निश्छल तात ! स्वभाव तुम्हारा,
संतत विनयी, वचन उदारा।
देहुँ तुमहिँ वर, होहु सुखारी,
बिनसहिँ तन-मन-दुख-भ्रम भारी।
मृच्छा दाह, मिटहिँ पल माहीं,
लुधा-पिपासा . व्यापहिँ नाहीं।
रज-वम बिनसहिँ, सत गुण भासहिँ,
शशि अनभ्र सम बुद्धि प्रकासहिँ।

होहु तत्त्वदर्शी, मतिमान्ना,
जागहि हृदय ज्ञान विज्ञाना।
माया-जनित आवरण फारी,
त्रिकालज्ञ मति होय तुम्हारी।
दिव्य दृष्टि लहि मोरि विशेषा,
देहु धर्मपुत्रहि उपदेशा।”

दोहा :— निकस तमुख ते वर वचन, शान्तनु-सुत गत-क्लेश,
रवि अथवत लखिलहि विदा, गवने पुर विश्वेश। ५०

बहुरि प्रभात पाण्डु-सुत साधा,
आये सरिसुत दिग यदुनाथा।
दिवस भीष्म वचनामृत-पाना,
निशा बहोरि नगर प्रस्थाना।
नित्य यहहि क्रम हरि अपनावा,
नव उत्साह धर्म-सुत पावा।
जेहि थल भीषण नर संहारा,
होत तहाँ अब शास्त्र विचारा।
यह हरि-कीर्ति विश्व-विख्याता,
सिरजत सतत प्रलय-पश्चाता।
धृतराष्ट्रहु मुनिजन सब आवत,
सुनत भीष्म-वाणी सुख पावत।
अमरहु सर्व सहित-आखण्डल,
सुनत विमान बसे नभ-मण्डल।
श्रोता मुख्य युधिष्ठिर रायी,
पूछत प्रश्न नित्य नव आयी।

दोहा :— प्रभु-प्रसाद सरिसुत-वदन, बही ज्ञान-रस-धार,
सागर किमि गागर भरहुँ, बरनहुँ स्वल्पहि सार। ५१

प्रभु-पद-पद्म बंदि अभिरामा,
कीन्ह भीष्म पुनि मुनिन प्रणामा।

जानि धर्ममति नृप-अभिलाषा ।
 कीन्ही प्रथम धर्म परिभाषा—
 “धारण करत सृष्टि जो सारी,
 सोई धर्म सर्व-हितकारी ।
 मानत द्विविधि तात ! तेहि ज्ञानी,
 पृथक पृथक दोउ कहहु बखानी ।
 सत्य, अहिंसा, इन्द्रिय-संयम,
 शौचास्तेय पंच धर्मोत्तम ।
 नित्य इनहिं तुम जानहु ताता !
 सर्व काल, सब कहँ सुख-दाता ।
 पुनि अनित्य बहु धर्माचारा,
 प्रचलित देश काल अनुसार ।
 गुनि मन माहिं लोक-हित-हानी,
 ग्रहण करत, त्यागत तेहि ज्ञानी ।

दोहा:— वेदस्मृति शास्त्रहु कहत, बहु प्रकार युग-धर्म,
 अज्ञानिहि हठि आचरत, मुजन समुझि तिन मर्म । ५२

कृतयुग प्रचलित जो आचारा,
 त्रेता पुनि न तासु व्यवहारा ।
 जो त्रेता सो रहेउ न आजू,
 धर्महु अनुहरि चलत समाजू ।
 आदि काल सब नर स्वाधीना,
 नहिं कोउ राज्य-कुटुम्ब अधीना ।
 नहिं विवाह-बंधन तेहि काला,
 सब स्वच्छंद-विहारिणि बाला ।
 श्वेतकेतु लखि प्रजा-विषादा,
 बाँधी यह विवाह-मर्यादा ।
 पति-पत्नी-अमृत्य बँधि बंधन,
 उपजायेउ कौटुम्बिक जीवन ।
 कुल कुटुम्ब ते, कुल ते जाती,
 बाढ़ेउ जन-समाज बहु भाँती ।

बसे ग्राम, पुर निमगदु नाना,
क्रम क्रम भयेउ राष्ट्र-निर्माणा ।

दोहा:—सँग कुटुम्ब, कुल, जाति के, उपजे जे व्यवहार,
सोइ धर्म तेहि काल के, सोइ मान्य आचार । ५३

पालत स्वेच्छा तिनहि समाजा,
कतहुँ न कोउ नियामक राजा ।
मानत जे न धर्म-अनुशासन,
करत समाज आपु तिन-शासन ।
अन्य जाति कुल जब चढ़ि आवत,
मिलि युद्धत, इक एक बचावत ।
सबहि सर्व-कर्मन-कर्तारा,
आपु पुरोहित, वणिक, जुभारा ।
अस समाज 'गण' तात ! कहाये,
शास्त्रन विविध गणन-गुण गाये ।
जब लागि नित्य धर्म, सद्भावा,
नहिं समष्टि-हित व्यक्ति नसावा,
तब लागि बढ़त गयेउ बल-वैभव,
करि न सकेउ कोउ गणन-पराभव ।
पै क्रम क्रम गुण छीजन लागे,
अलस अनैक्य गणन महँ जागे ।

दोहा:—पागे निज निज स्वार्थ नर, सबहि सर्व-हित भार,
विलव व्यापेउ भूमितल, नष्ट जाति आचार । ५४

तेहि अशान्ति ते उपजेउ राजा,
दस्यु बिनासि, सार्ध जन काजा ।
'विरजा' नाम वंश विख्याता,
प्रथम राज-कुल क्षेम-प्रदाता ।
उपजे विपुल नृपति जन-वत्सल,
आपे नित्यधर्म दलि खल-दल ।

सुखी समृद्ध निखिल जब देशा ,
 उपजेउ तेहि कुल वेन नरेशा ।
 लहेउ सिंहासन क्रूर, कुचाली ,
 तजि नृप-धर्म प्रजा खल घाली ।
 रहे अराजकता-दुख जेते ,
 उपजे वेन-राज्य पुनि तेते ।
 लखि मुनिजन-उर क्षोभ-अपारा ,
 गहि कुश मंत्र-भूत संहारा ।
 वेनहि सदृश ज्येष्ठ सुत तासू ,
 नाम निषाद, कुमति, नर-पाशू ।

दोहा :— निरखि क्रूर, नृप-गुण-रहित, पितु-सम इन्द्रिय-दास ,
 जानि प्रजा-मत तेहि मुनिन, दीन्ह देश-निर्वास । ५५

वेन द्वितीय तनय 'पृथु' नामी ,
 विनय-निधान, धर्म-अनुगामी ।
 सौपत तेहि पैतृक सिंहासन ,
 दीन्ह मुनीशान अस अनुशासन—
 'चहत जो निज पितु-राज्य विशाला ,
 होहु प्रतिज्ञा-बद्ध भुआला ।
 राजा सोइ करत जन-रंजन ,
 क्षत्रिय, अक्षत जासु प्रजाजन ।
 नित्य धर्म, जातिहु आचारा ,
 औरहु जे हितकर व्यवहारा ,
 तुम्हरे हेतु सर्व करि संचित ,
 करिहैं धर्मशास्त्र हम विरचित ,
 पालहु प्रजा ताहि अनुसारा ,
 करहु सबन सँगा सम व्यवहारा ।
 जे समाज-त्रासक, उड़ण्डा ,
 देहु तिनहि न्यायोचित दण्डा ।

दोहा :— काम, क्रोध, मत्सर तजहु, लोभ, मोह, मद, मान ,
 मनसा - वाचा - कर्माणा, करहु लोक-कल्याण ।' ५६

सोरठाः—शुकनीति नृप-काज, विरची शुकाचार्य तब,
भयेउ सबहि पृथु-राज, चारि फलद, त्रय ताप-हर ।

यहि विधि मुनिन यन्न करि नाना,
कीन्ह निरंकुशता अवसाना ।
भयेउ राज-पद धर्म-नियंत्रित,
निखिल नृपति-जीवन नय-नियमित ।
पै नहि अब नृपतिहि जन-पालक,
सचिव यथार्थ राज्य-संचालक ।
जन-विश्वास-पात्र, तद्देशी,
विग्रह-संधि-प्रवीण विशेषी,
जेहि धर्मार्थ काम कर ज्ञाना,
लखि लक्षण जेहि नर पहिचाना,
निरहंकारी, मत्सर-हीना,
जो नित नृपति-प्रजा-हित लीना,
मृदु-भाषी, कृतज्ञ, गुण-दर्शी,
सतत क्षमी नहि सतत अमर्षी,
चित्तस्थिर, जित-इन्द्रिय जोई,
सचिव सुयोग्य नीति कह सोई ।

बोद्धाः—अन्य अनुचरहु याहि विधि, सदा परखि पहिचानि,
रहत नियोजत जो नृपति, होति नाहि हित-हानि । ५७

सचिव अनुचरहु समुचित पायी,
रहहि सतर्क सतत नररायी ।
दुष्कर त्यागव स्वार्थ समूला,
दुर्लभ मनुज सदा-अनुकूला ।
सचिव, सभासद, सुहृद, सजाती,
घेरे रहत नृपति दिन राती ।
एक न अस जेहि इच्छा नाहीं,
रहहि भूप मोरेहि वश माहीं ।
ताते नीति-निपुण नरनाथा,
राखत राज्य-सूत्र निज हाथा ।

काहू पै न पूर्ण विश्वासा,
पै सब प्रति प्रतीति-आभासा ।
भृत्य आदरहि सुहृद समाना,
सुहृद सहोदर सम सन्माना ।
सोदर संग करहि व्यवहारा,
राजपाट जनु तिन कर सारा ।

दोहा :— प्रतिनिधि मात्राहि आपु कहँ, चतुर नृपति दरसाय ,
आस, सचिव, सामन्त, जन, लेय सबहि अपनाय । ५८

अति शंका, अतिशय विश्वासा,
होत उभय ते नृप-हित-नाशा ।
अति प्रतीति संतत गर फाँसी,
मरत अकाल-मृत्यु विश्वासी ।
जेहि विश्वास काहु पै नाहीं,
जियतहु मृतवत सोउ जग माहीं ।
ताते 'अति' दुहुँ ओर विहायो,
गहत मध्य-पथ नृप सुखदायी ।
बहु-संख्यक मनुजन कहँ त्यागी,
उचित न होब एक-अनुरागी ।
तदपि एक जो गुणन-निकेतू,
त्यागहि अगणित नर तेहि हेतू ।
आपन रिपु-सँग जिन कै प्रीती,
मृदु भाषहि, नहि करहि प्रतीती ।
कबहुँ जासु धन-मान बिनासा,
उचित न बहुरि तासु विश्वासा ।

दोहा :— होत पात्र-सम जल पैथा, तिमि नृप घरहि स्वरूप ,
मृदुरहि सरहि न काज जब, प्रकटहि निज यम-रूप ! ५९

नृप केतनहु मृदुता-आवासू,
दण्डहि अतिम आश्रय तासू ।

देव न, मनुजहि तात ! नरेशा ,
 दण्डहि तेहि ढिग एक विशेषा ।
 सोइ आदर्श राज्य, सोइ राजा ,
 अभय करत जो प्रजा-समाजा ।
 धर्म जदपि जग-धारणहारा ,
 टिकेउ सोउ लै दण्ड-सहारा ।
 तदपि दण्डहू नहि स्वाधीना ,
 तासु प्रयोगहु धर्म-अधीना ।
 लौकिक, शास्त्र-विहित व्यवहारा ,
 सोई दण्डनीति-आधारा ।
 प्रिय अप्रिय सब ताहि समाना ,
 समतहि राजदण्ड कर प्राणा ।
 माता, पिता, गुरुहु किन होई ,
 दण्डनीय अपराधी जोई ।

दोहा :— दण्ड विनाशक काल-सम, विधि-सम अटल विधान ,
 जागरूक शंकर सदृश, रक्षक विष्णु समान । ६०

थापव शान्ति राज्य निज माहीं ,
 कठिन काज मोरे मत नाहीं ।
 राजा, राज्य, समाज-विनासी ,
 बाह्य रिपुहि जन-सर्वस नासी ।
 दण्डहि युद्ध-रूप पुनि धारी ,
 रक्षत राष्ट्र शत्रु-संहारी ।
 तदपि तात ! मोहि नृप सोइ भावत ,
 करि उपाय जो समर बरावत ।
 केतनहु कोउ नृप बली, प्रवीणा ,
 युद्ध माहि जय . दैव-अधीना ।
 नाहि दैव पर जासु भरोसा ,
 देत परिस्थिति कहँ सो दोषा ।
 विषमस्थिति या दैव-वशाता ,
 रण-परिणाम न निश्चित ताता !

ताते साम, भेद अरु दाना,
अपनावत नृप नीति-निधाना ।

दोहा :— बोलि विविध खग-शब्द जिमि, गहत किरात विहंग,
करत स्ववश नृप शत्रु तिमि, रँगि आपुहि तिनरङ्ग । ६१

सखा सुहृद बनि हित प्रकटायी,
देत रिपुहि दुर्व्यसन सिखायी ।
मृगया, द्यूत, मद्य अरु नारी,
समय-सुयश-धन-बल अपहारी ।
देत अरिहिं इन माहिं लगायी,
आपु बसत संयम अपनायी ।
भव्य भवन, मनहर उद्याना,
करवावत अरि ते निर्माणा ।
तासु कोष यहि भाँति नसावत,
निज धन क्रम-क्रम आपु बढ़ावत ।
भाग्य बरनि तेहि सिखवत तोषा,
आपु करत पुरुषार्थ-भरोसा ।
जब धनहीन क्लेश रिपु पावत,
साधु-विप्र-धन-हरण सिखावत ।
प्रायश्चित्तहु बहुरि बतावत,
यति बनाय तेहि विपिन पठावत ।

दोहा :— यद्यपि गहिंत पंथ यह, कहेउँ तथापि बखानि,
राजनीति मायामयी, उचित लेब सब जानि । ६२

जब लगि सबहु शत्रु नरनाथा !
आत्म-घात संगर तेहि साथी ।
बहति जबहिं सुरसरि घहरायी,
बचत वेत्र • लघु शीश नवायी ।
वृहदाकारहु तरु प्रतिकूला,
नष्ट होत • अविनीत समूला ।

तिमि आपन-पर-बल पहिचानी ,
 अवसर परखि आचरहि ज्ञानी ।
 रिपु प्रकृतिहि नित परखत रहही ,
 जस रुचि सोइ करहि, सोइ कहही ।
 मानी देखि करहि सन्माना ,
 लोभि विलोकि देहि धन दाना ।
 प्रकट चकित रहि हरिण-समाना ,
 गुप्त सतर्क सजग जिमि श्वाना ।
 इंगितज्ञ रहि काक स्वरूपा ,
 काटि देय दुर्दिन निज भूपा ।

दोहा :— धारहि घट सम शीश निज, जब लागि शत्रु प्रचण्ड ,
 लखि अवसर प्रस्तर पटक, फोरि करहि शत खण्ड । ६२

यद्यपि साम दान फल-दायक ,
 भेदहि नीति-वृन्द महुँ नायक ।
 कर्म-प्रधान युद्ध-व्यापारा ,
 बुद्धि-प्रधान नीति-व्यवहारा ।
 भेद विशुद्ध बुद्धि-खेलवारा ,
 ताते सोइ सब नीतिन-सारा ।
 नृप जो साम दाम पहिचाना ,
 सोऊ करत भेद-सन्माना ।
 आपु सबल सँग करत मिताई ,
 देत अरिहि तेहि संग जुभायी ।
 रण-भूमिहु महुँ भेद सहारे ,
 सहजहि जात शत्रु संहारे ।
 कीन्ह प्रथम मै 'गणन' बखाना ,
 ऐक्यहि तिन कर जीवन प्राणा ।
 केतनहु बली होय कोड राजा ,
 करि न सकत रण गणन-अकाजा ।

दोहा :— एक भेद तजि और नहि, तिनके जय हित नीति ,
 नासत प्रथम मतैक्य जो, सकल सोइ गण जीति । ६४

नीति-त्रयी मैं बरनि सुनायी,
गहि जेहि पूर्व नृपन श्री पायी ।
तदपि गौण यह नीति पसारा,
युद्धहि अंत राज्य-आधारा ।
वर्ण-व्यवस्था, आश्रम धर्मा,
ज्ञान, ध्यान, यज्ञादिक कर्मा,
कृषि-गोधन वणिगन-व्यापारा,
विविध शिल्प, बहु कला-प्रसारा,
वैवाहिक जीवन, सुत, जन, धन,
औरहु जे सामाजिक बंधन—
रक्षण सब कर रण-महि माहीं,
समर-विजय विनु कछु कहूँ नाहीं !
उपवन-रक्षक कण्टक जैसे,
युद्ध मनुजता रक्षक तैसे !
वसत विहग जिमि वृक्ष सुखारे,
तैसेहि संस्कृति शूर-सहारे ।

दोहा :— भोगत सबलहि धन-विभव, अर्जित निबल-प्रयास,
जिमि पिपीलिका-श्रम-रचित, डीह करत अहि वास ! ६५

सोरठा :— श्रुति, इतिहास, पुराण, सतत प्रशंसत अध्वरहिं,
मोरे मत नहि आन, यज्ञ तात ! रण-यज्ञ सम ।

शूर नरेश यज्ञ यजमाना,
अश्व-निकर अध्वर्यु समाना ।
मत्त मतंगहि ऋत्विज ताता !
दुंदुभि-वृन्द यज्ञ-उद्गाता ।
व्यूह-विधान त्रयाग्नि सोहायी,
बलि-पशु निखिल शत्रु-कटकाई ।
तोमर, शक्ति, खड्ग स्रुक सारे,
सुवहि कराल बाण अनियारे ।
उभय सैन्य-बिच रिक्तस्थाना,
यज्ञ-वेदिका • सोइ महाना ।

‘मारु ! काटु !’ ध्वनि रण जो होई ,
 साम-गान जानहु तुम सोई ।
 गज-चिगधार धनुष-टंकारा ,
 वषटकार रव सोई अपारा ।
 रुधिर-धार पूर्णाहुति-दाना ,
 विजय पूर्ण क्रतु-अंतस्नाना !

दोहा :— त्यागहि तप कर सार जो, रण ते बढि तप नाहिं ,
 देत शरीरहु त्यागि निज, शूर समर-महि माहि । ६६

होय आपु जब नृप दृढ़-मूला ,
 सैनिक तुष्ट, प्रजा अनुकूला ।
 समर-निपुण गज, अश्व, पदाती ,
 प्रचुर यंत्र, आयुध बहु भाँती ।
 रचि प्रसंग कछु, वाद बढ़ायी ,
 जाय सवेग शत्रु-पुर धायी ।
 शान्ति-व्यसन जेहि नृप मँहँ होई ,
 करत न कबहुँ आक्रमण सोई ।
 आत्म-रक्षणहि सर्वस मानत ,
 चढ़त आपु अरि तब रण ठानत ।
 नीति आक्रमक द्रुत जय-दायी ,
 रक्षहु कर सोई श्रेष्ठ उपायी ।
 तड़कि तड़ित जिमि एक निमेषा ,
 गिरति जहाँ कछु रहत न शेषा ।
 तैसेहि शूरहु प्रथम-प्रहारी ,
 रिपु-मर्मस्थल देत विदारी ।

दोहा :— यहि विधि अरि-सैनिक, सुहृद, प्रजा माहि भरि भीति ,
 थोरैहि बल ते रिपु प्रबल, सकत कुशल नृप जीति । ६७

जब नहिं विपुल शक्ति निज पासा ,
 समर माहि नहिं जय-विश्वासा ,

निष्फल सामहु, दामहु, भेदू,
 तबहुँ करहि नहि नृप मन खेदू।
 सबल रिपुहि लखि करत चढ़ाई,
 लेय दुर्ग महुँ आश्रय धायी।
 जनपद-प्रतिनिधि, धनिक प्रजाजन,
 सचिव, पुरोहित, सुहृद, राजजन,
 तजहि न इनहि चतुर नरनाथा,
 राखहि दुर्ग माहि निज साथा।
 क्षेत्रन ते द्रुम अन्न मँगायी,
 राखहि सकल दुर्ग महुँ लायी।
 सकहि न जेतिक धान्य सँभारी,
 जेहि थल तहुँहि देय सब जारी।
 सकल सरित-सेतुन कहँ तोरी,
 देय तड़ाग सरोवर फोरी।

दोहा :— कूप-वारि जो नहि सकहि, नृपति बहाय सुखाय,
 विष मिलाय दूषित करहि, सकहि न अरि सोउ पाय ! ६८

जिमि रस लेत मधुप बिनु तरु-क्षति,
 लेय प्रजा ते कर तिमि नरपति।
 तदपि करहि जब सबल चढ़ायी,
 दुर्दिन-घटा धिरहि जब आयी।
 धनिकन ते धन याचि उधारा,
 करै नृपति बाहिनि विस्तारा।
 लोभ-निरत, निज स्वार्थहि पागे,
 देहि धनिक जो धन नहि माँगे,
 तजि संकोच हरहि धन राजा,
 होन देय नहि राज्य-अकाजा।
 रक्षत प्रजहि नृपति सब काला,
 रक्षहि प्रजहु विपति भूपाला।
 विज्ञ प्रजहि कर्तव्य बतावहि,
 धनिक देहि, नृप-कोष बढ़ावहि।

शिल्पी करहिं शस्त्र निर्माणा,
सब मिलि करहिं राज्य-कल्याणा।

दोहा :— परहि विपति जब देश पै, सकल भेद बिसराय,
चारि वर्ण, योगी-यतिहु, आयुध लेहि उठाय। ६६

विप्र, वैश्य, शूद्रहु किन होई,
जन-रक्षक जो, क्षत्रिय सोई।
दै न सकत जो प्रजहिं सहारा,
मृतक श्वान सम सो भू-भारा।
सो जल-विरहित जलद समाना,
काष्ठ मर्तग-सदृश निष्प्राणा।
अन्य सकल नृप चर्म-मृगेशा,
प्रजहिं उबारत सोइ नरेशा।
निज क्षेमहि जो चाहनहारा,
क्षत्र-कलंक ताहि धिक्कारा!
निहति दस्यु जो प्रजहिं बचावा,
शास्त्र, पुराण तासु यश गावा।
रुधिर-धार अश्रंग नहायी,
देत शूर सब पाप बहायी।
युद्ध समान पुण्य यश-दाता,
नहिं कोउ धर्म विश्व महँ ताता!”

दोहा :— समर-प्रशंसा भीष्म-मुख, सुनि यहि भाँति अशेष,
चकित-चित्त भाषे वचन, शान्ति-निधान नरेश— ७०

सोरठा :— “कीन्ह अहिंसा-गान, नित्य धर्म तेहि कहि प्रथम,
अब प्रभु ! करत बखान, कस अस हिंसा-मय समर ?”

प्रश्न समर्म सुनत नृप, केरा,
विहँसे सरिसुत, हरि-दिशि हेरा।
प्रभु-मन जानि, हृदय सुख मानी,
कहेउ नृपहि अधिकारी जानी—

‘नित्यधर्म जे प्रथम गनाये,
 ते श्रुति-सम्मत, शास्त्रन-गाये ।
 कहत सुनत सब सरल लखाहीं,
 पै आचरत मुनिहु भय खाहीं ।
 सुजनहि बसत जो यहि जग माहीं,
 करत कुकर्म अधम जो नाहीं,
 होत प्रशस्त धर्म-पथ ताता ।
 संशय-रहित, नित्य सुखदाता,
 खल जब करत प्रजा-अवसादा,
 उपजत धर्महु महुँ अपवादा ।
 तजि तब सुजन विहित-व्यवहारा,
 आपद्धर्म करत स्वीकारा ।

दोहा :— राजधर्म कहँ तात ! मैं, मानत आपद्धर्म,
 प्राकृत जन हित जो कुकृत, नृप-हित सोइ सुकर्म । ७१

तैसेहि एक देश कर धर्मा,
 अन्य देश महुँ होत अधर्मा ।
 आजु जाहि सब धर्म बखाना,
 काल्हि होत सोइ पाप महाना ।
 अगणित सूक्ष्म प्रसंग बखानी,
 आपद्धर्म सिखावत ज्ञानी ।
 सर्प-यज्ञ अति क्रूर भयावन,
 मे उत्तङ्क ताहि करि पावन ।
 राक्षस यज्ञहु क्रूर कहावा,
 करि तेहि स्वर्ग पराशर पावा ।
 अधिक सदृश प्रापी नहि आना,
 नहि अभोज्य कछु जस मृत श्वाना ?
 विश्वामित्र . तपी मुनिरायी,
 परि दुष्काल श्वपच गृह जायी,
 बरजेउ अधिक तबहुँ नहि माना,
 भक्ति श्वान * मृत रच्छे प्राणा !”

दोहा :— कीन्ह प्रश्न सुनि धर्म नृप, “जो प्राणहिं सर्वस्व,
रहेउ कहाँ तब तात ! जग, नित्यधर्म-वर्चस्व ? ७२

मुनिजन निज निज मत-अनुसारा,
बरनत धर्म अनेक प्रकारा ।
रही श्रुतिहु जब नाहिं प्रमाणा,
केहि विधि होय धर्म कर ज्ञाना ?
बढ़त जात मन संशय-भारा,
बरनहु तात ! सहित विस्तारा ।”
कहेउ पितामह—“मम मत ताता !
सिरजेउ जन-हित धर्म विधाता ।
सर्व-लोक-हितकर सोइ धर्मा,
जन-हित-नाशक सोइ अधर्मा ।
संत आचरत लखि हित-हानी,
अक्षर पकरि चलत अज्ञानी ।
सर्व-भूत-हित कर जो कारण,
सोई सत्य, न शब्दोच्चारण ।
प्राणिन देत अभय जो दाना,
सोइ अहिंसा धर्म महाना ।

दोहा :— घेरि हरत, दुर्जन जबहि, मुजनन कर धन प्राण,
रहति अहिंसा मौन जो, हिंसा सोइ महान ! ७३

बाह्य आचरण धर्म न होई,
बसत मनुज-मानस महुँ सोई ।
मन ही सब कर्मन-आधारा,
मन-संजात आचरण सारा ।
शुद्ध अशुद्ध होत मन जैसा,
तैसिहि वाणी, कर्महु तैसा ।
परहिं धर्म-संकट जब प्राणी,
निरखहि प्रथम शास्त्र श्रुति-वाणी ।
तर्कहु-सम्मत शास्त्र जो होई,
पालहि तेहि सब संशय खोयी ।

करहि तर्क जो शास्त्र-विरोधू,
लेहि मनुज निज मानस शोधू।
पर-हित-रत जब बुद्धिहि पावहि,
करहि सोइ जो तर्क बतावहि।
शास्त्र तर्क दोउन सन्मानी,
रहत आचरत संतत-ज्ञानी।”

बोहा :— कहे भीष्म निश्छल वचन, अनुमोदें सब व्यास,
उपजेउ धर्म नरेश हिय, नवस्फूर्ति, विश्वास । ७४

बोलेउ हेरि पितामह ओरा—
“एकहि प्रश्न तात ! अब मोरा।
नित्य अहिंसा आदिक धर्मा,
काल-बिबश जो होत अधर्मा;
तैसेहि हिंसा आदि कुकर्मा,
होत समय-बश जो सत्कर्मा,
तौ कालहि यहि जग बलवाना,
मिथ्या सब पुरुषार्थ-बखाना।
कार्य मनुज, कालहि जो कारण,
संभव तात ! न तासु निवारण।”
सुनत अवनिपति-प्रश्न गँभीरा,
भाषेउ बहुरि भीष्म मति-धीरा—
“प्रश्न तुम्हार मोहिं अति भावा,
काल बली, बहु तासु प्रभावा।
मनुज तथापि अधिक बलवता,
बुद्धि असीम, प्रभाव अनन्ता।

तोहा :— काल कार्य, कारण मनुज, पुरुषार्थहि बलवान,
पुरुषोत्तम संतत करत, युग नवीन निर्माण । ७५

कृत, त्रेता, द्वापर, कलिकाला,
चारि युगन महेँ कलिहि कराला।

आवत तात ! सो जब जेहि देशा ,
 करत प्रजा महे नहि प्रवेशा ।
 राज्य-सूत्र जिन मनुजन हाथा ,
 प्रजा-प्रमुख अथवा नरनाथा ,
 प्रविशत तिनहि माहि हठ ठानी ,
 हरत विवेक, करत अभिमानी ।
 अहंकार-संग स्वार्थ-प्रवेशा ,
 जहाँ स्वार्थ तहँ शील न लेशा ।
 नष्ट-शील द्रुत धर्म-विनाशा ,
 सत्यास्तेय शौच कर नासा ।
 इन्द्रिय-दमन रहत नहि शेषा ,
 हिसक सब जन-पंच, नरेशा ।
 यहि विधि सब नृप, नायक सारे ,
 होत स्वार्थ-रत शील बिसारे ।

बोद्धा :— प्रजा-समाजहु लखि तिनहि, देत धर्म-पथ त्यागि ,
 व्याप्त पूर्ण कलिकाल तहँ, जात शक्ति सुख भागि । ७६

परत सुजन जो कतहुँ लखायी ,
 देत प्रबल खल तिनहि नसायी ।
 जहँ समाज यहि भाँति मलीना ,
 धर्महु होत प्रभाव-विहीना ।
 उपजत महापुरुष तब आयी ,
 देत अहिंसा शान्ति विहायी ।
 गहि हिंसा-मय आपद्धर्मा ,
 करत कठोर कुटिल नित कर्मा ।
 धर्म-उदधि लहरत उर माहीं ,
 तदपि कार्य विपरीत लखाहीं !
 क्रम-क्रम दुर्जन-वृन्द प्रचारत ,
 करि छल-बल समूल संहारत ।
 कलिहु-प्रभाव रहत नहि शेषा ,
 प्रकटत नव युग पुनि तेहि देशा ।

करत जे यहि विधि युग-निर्माणा ,
कहत तिनहिं युग-पुरुष पुराणा ।

दोहा :— होत तात ! युग-व्यक्ति महँ, जेतिक धर्म-विशेष ,
कृत, त्रेता, द्वापर तथा, होत प्रकट तेहि देश । ७७

क्षत्रिय-धर्म वेद जो गावत ,
सोइ युग-पुरुष सतत अपनावत ।
ताते क्षात्र-धर्म सम ताता !
अन्य धर्म नहिं अभय-प्रदाता ।
रच्छत जन जो हरि-पथ शूला ,
मम मत सोइ सब धर्मन-मूला ।
अन्य धर्म वरु संशयकारी ,
यह प्रत्यक्ष सर्व-हितकारी !
ताते धरि शिर हरि-आदेशा ,
राजधर्म मैं कहेउँ विशेषा ।
धर्म-तनय तुम धर्म सदेहा ,
त्यागहु निखिल हृदय-संदेहा ।
जप-तप, यजन-भजन फल जेते ,
लहिहौ प्रजहिं पालि तुम तेते ।
अंत समय मम तात ! असीसा—
जन-प्रिय हरि-प्रिय होहु महीशा !”

दोहा :— भये पितामह मौन दै, शुचि आशिष, उपदेश ,
भये उत्तरायण तबहि, वसुधा-नयन दिनेश । ७८

हरि, मुनिजन, पुरजन कुरुलोगू ,
विकल होत लखि भीष्म-वियोगू ।
शोभित घेहि पितामहिं सारे ,
जिमि शशधरहिं प्रात नभ तारे ।
भीष्महु सबहिं सनेह बिलोका ,
भाषेउ लखि धृतराष्ट्र सशोका—

“सहज अपत्य-नेह नर माहीं ,
उचित विवेक तजब पै नाहीं ।
एक आत्मजहि पुत्र न ताता !
सुवन सोइ जो सौख्य-प्रदाता ।
श्रद्धा, विनय, नेह उर धारे ,
धर्म-निष्ठ, कुरुकुल-उजियारे ,
सुत अस तुम्हरे पाण्डव पाँचा ,
साक्षी शास्त्र, वचन मम साँचा ।
गुनि पाण्डव निज, शोकहु त्यागी ,
होहु बहुरि सुतवंत सभागी ।”

दोहा :— अवनत पद धृतराष्ट्र उत, धारेउ शीश निदेश ,
फिरी पितामह-दृष्टि इत, लखे समीप भवेश । ७८

नाविक जिमि परि उदधि अपारा ,
निरखत अथक गगन ध्रुव तारा ,
तैसिहि वृत्ति पितामह केरी ,
लोचन सजल रहे हरि हेरी ।
भक्ति-सिंधु मानहुँ अवगाहा ,
बहेउ कपोलन अश्रु-प्रवाहा—
“चहहुँ करन अब तनु-अवसाना ,
आयसु देहु, चलहुँ भगवाना !”
निरखि भक्त-अनुरक्ति प्रगाढ़ा ,
गत-धृति हरिहु, दृगन जल बाढ़ा—
“तुम निष्पाप, सुयश-आवासू ,
जाहु, करहु वसुलोक निवासू ।”
अन्तिम बार रूप-भव-मोचन ,
लखि मूँदे सखि-नंदन लोचन ।
वशीभूत-मन, धरि हरि ध्याना ,
कर्षे ऊर्ध्व पितामह प्राणा ।

दोहा :— निकसेउ तजि तजि अंग अँग, जस जस प्राण-समीर ,
खसे शरहु तस तस सकल, कैरि क्षत-रहित शरीर ! ८०

लखत निखिल मुनिजन, भगवाना ,
 निकसे ब्रह्मरंध्र-पथ प्राणा ।
 व्योम अमरगण वाद्य बजाये ,
 मुदित बहुरि निज निधि जनु पाये ।
 उत सुरपुर-बीथिन जल-चंदन ,
 अश्रु-सिक्त महि इत जन क्रन्दन ।
 उत स्वागत नर्तत सुर-बाला ,
 नाचति भीष्म-चिता इत ज्वाला ।
 उत वसु करत भीष्म-सन्माना ,
 भरतवंश-कृत इत जल-दाना ।
 शोक-विकल नृप, प्रजा-समाजू ,
 कहत—“अनाथ भये हम आजू ।
 क्षात्र-धर्म क्षोणीतल क्षीणा ,
 ब्रह्मचर्य, विनु आश्रय, दीना ।
 महापुरुषता, ऋजुता नासी ,
 विक्रम-रस परलोक-प्रवासी !”

दोहा :— सुरसरि-सुत अंत्येष्टि करि, सुरसरि-तट सविधान ,
 लौटे कुरु-पाण्डव पुरी, मृत-गुण करत बखान । ८१

सोरठा :— प्रकटी बनि अनुराग, भीष्म - निधन - समवेदना ,
 नव प्रतीति उर जाग, भये एक कुरु-पाण्डु-कुल ।
 प्रजा, वृद्ध नरराज, पाण्डु-सुतहु सब लखि सुखी ,
 “एक दिवस यदुराज, कहे धर्म नृप सन वचन—

कुरुक्षेत्र समरानल-ज्वाला ,
 बिनसे अगणित वीर भुआला ।
 तेहि हित मोहिं विषाद नहिं ताता !
 करत सर्व क्षति पूर्ति विधाता ।
 अपत तरुहु • पुनि फूलहिं फरही ,
 ग्रीष्म-शुष्क सैरि पावस भरही ।
 गत विसारि जो भावी ध्यावत ,
 सोइ समृद्धि सौख्य जग पावत ।

एकहि चिन्ता मम मन राता,
लघु-वय मृत-नृपतिन-अँगजाता ।
कहुँ कहुँ शोकित विधवा नारी,
रहीं काहु विधि राज्य सँभारी ।
मोहिं भीति सीमान्त-प्रदेशन,
करहि न कछु उत्पात म्लेच्छगण ।
ताते अश्वमेध करि ताता !
होहु सबहिं नव शक्ति-प्रदाता ।

दोहा :— अर्जुन अनुसरि यज्ञ-हय, जीति देश प्रति खण्ड,
करि विलव-अवसान पुनि, थापहि राष्ट्र अखण्ड ।” ८२

सोरठा :— देश-काल-अनुरूप, सुनि विवेक-युत प्रभु-वचन,
भक्ति-भाव-मय भूप, प्रकटे उर-उद्गार निज—

“लोक-शरण्य नाथ-अभिधाना,
हृदय कृपा-कारण्य-निधाना ।
मति निःस्वार्थ, अनागत-दर्शी,
गिरा सार-गर्भित, मधुवर्षी ।
श्रुति-सम सदा निदेश तुम्हारा,
मैं आजीवन निज शिर धारा ।
तदपि आजु बिनवहुँ कर जोरी,
पुरवहु इक अभिलाषा मोरी ।
जदपि मनोरथ मम चिर-संचित,
सकुचति गिरा सुभाषित-वंचित ।
कहहुँ जो—‘यह महि नाथ ! तुम्हारी’,
तौ त्रिभुवन-पति लघिमा भारी ।
‘स्वीकारहु श्री’—कहहुँ जो प्रभु-प्रति,
सोउ सदोष, सतर्ह तुम श्री-पति ।
‘रच्छहु प्रजा’—कहहुँ जो ताता !
तौ पुनरुक्ति, अबहुँ तुम त्राता ।

दोहा :— कहत यहहि—‘नहि नाथ ! मैं, सार्वभौम पद योग्य,
जोहि रच्छी भारत-अवनि, ताही ते सो भोग्य’ ।” ८३

चकित सुनत वचनन यदुवीरा ,
 क्रम क्रम वारिज-वदन गँभीरा ।
 विहँसि, बहुरि अवनीश निहारी ,
 ज्ञान-सार हरि गिरा उचारी—
 “वचन तुम्हार प्रीति-रस-बोरा ,
 हुलसेउ पै न हृदय सुनि मोरा ।
 त्याग-परिग्रह दुहुन उदासी ,
 मैं केवल कर्तव्य-उपासी ।
 पर-हित-रत जो स्वार्थ-विरागी ,
 सम कर्तव्य सर्व तेहि लागी ।
 तेहि हित, जेहि सम मान-अमाना ,
 सहज-प्राप्त सोइ उचितस्थाना ।
 लहत जो धर्म-कर्म अनचाहा ,
 करत सुचारु तासु निर्वाहा ।
 जन्मत जो मैं नृप-अँगजाता ,
 पालत विहित धर्म निज तता !

दोहा :—जन सामान्य-सँजात मैं, तुम अवनीश-कुमार ,
 हरि न सकत अधिकार मैं, तजि न सकत तुम भार । ८४

हरत जो स्वार्थ-हेतु पर-राजू ,
 करत सो अधी समाज-अकाजू ।
 त्यागहु करत दम्भ ते जोई ,
 सद्गति तासु तात ! नहिं होई !
 निज वैयक्तिक धन तुम ताता !
 सकत मोहिं दै प्रीति वशाता ।
 निहित राज्य महाँ जन-कल्याणा ,
 होत न तासु दान-प्रतिदाना ।
 लीन्ह तुम्हार पक्ष मैं यहि रण ,
 तहँहु तात ! अनुराग न कारण ।
 जन-हितकर गुनि राज्य तुम्हारा ,
 तजि प्रण धक्रहु मैं कर धारा

ताते प्रजा-धरोहरि जानी ,
रच्छहु राज्य धर्म पहिचानी ।
गुनि निज प्रजा-मात्र मोहि देवा !
लागहि उचित लेहु सोइ सेवा ।

बोद्धा :— जब लागि क्रतु-हित उपकरण, जुरहियहाँ सब आय ,
तब लागि आयसु देहु मोहि, बसहुँ पुरी निज जाय ।” ८५

लज्जित अवनिनाथ सुनि वचनन ,
निरखत अपलक हरिहिं गुनत मन—
जीवन-मुक्त कहति श्रुति जाही ,
लखत नयन मम निशि-दिन ताही ।
रहेउ ध्यान प्रभु-शब्दहि माहीं ,
सीखेउँ निरखि चरित कछु नाहीं ।
अनासक्त ये, बिना विकारा ,
लीलहि इन हित सब संसारा ।
आत्म-वृत्त ये, आत्मारामा ,
रिक्त सर्व हम रंक, सकामा ।
ये आनंदधन बरसि सुखारी ,
हम सर शुष्क भरत लहि वारी ।
मोहिं सम मूढ़ भुवन नहि आना ,
दातहिं देन चहेउँ जो दाना ।
बसेउ एक-रस जो ब्रज ग्रामा ,
द्वारावती, पुरंदर-धामा ,

बोद्धा :— गो-चारण, आरोह गज, छत्र, पिच्छ सम जाहि ,
सम गोपाल भुआल जेहि, मोहत राज्य कि ताहि ? ८६

सोचत अस मन नृप पृष्ठिताना ,
सुमिरि गमन पुनि उर बिलखाना ।
भक्तिमत् नृप दृग जल छावा ,
संयम-बद्ध बहन नहि पावा ।

व्यथा विलोकि धैर्य हरि दीन्हा ,
 गमन अंध अवनिप-गृह कीन्हा ।
 प्रणमे दम्पति-पद अनुरागी ,
 विदा विनीत वृष्णिपति माँगी ।
 विनय-वाणि सुनि, गुनि निज शापा ,
 शोक सुबल-तनया उर व्यापा ।
 धृतराष्ट्रहु प्रकटेउ पछितावा ,
 मृदु बैनन प्रभु ताप मिटावा ।
 पृथा, द्रौपदिहिं भेंटि सनेहा ,
 कीन्हेउ गमन सुभद्रा-गेहा ।
 तोषी अनुजा बधू-समेतू ,
 गवने संजय, विदुर-निकेतू ।

झोहा :— भेंटि सबहिं, लै संग निज, चिर सहचर युयुधान ,
 सजल-नयन गजपुर निखिल, तजि गवने भगवान । ८७

सोरठा :— बरनत पथ पुर, ग्राम, सात्यकि-प्रति गिरि, सरि, तरुहु ,
 विरमत मनहर ठाम, निरखेउ हरि गिरि रैवतक ।

अथवत रवि पहुँचेउ रथ पासा ,
 लखेउ चतुर्दिक विशद प्रकाशा ।
 होत महोत्सव गिरि पै जाना ,
 विहँसि सात्यकिहिं कह भगवाना—
 “कुरुक्षेत्र रण प्रलयकारी ,
 शोकमयी भारत महि सारी ।
 पै यदुजन सुख-मग्न दिवस-निशि ,
 समुदित षोडश कला विभव-शशि ।
 शिखर-शिखर मणि रत्नन-राजी ,
 लखि जनु छिपेउ जलधि रवि लाजी ।
 गुहा-गुहा प्रति निर्भर पासा ,
 वितरत तरु-प्रदीप द्युति-हासा ।
 तरु-तरु हेम सुमन मनहारी ,
 श्री-हत निक्षिपति - प्रभा निहारी ।

देव-द्रुमन सह शैल सोहावा ,
नंदन उतरि मनहुँ महि आवा ।

दोहा :— निरखहु सात्यकि ! ओर चहुँ, ध्वज, पताक फहराय ,
मद-मन्मथ-उन्मत्त स्वर, रहे नारि-नर गाय ।” ८८

चढ़ेउ अद्रि पै तेहि क्षण स्यंदन ,
निरखे स्वजन-वृन्द यदुनंदन ।
स्वरित वल्लकी, वेणु, मृदंगा ,
विहरत बिपिन नारि-नर संग ।
गायन, नर्तन, कौतुक नाना ,
सरस विलास, हास, मधु-पाना ।
शंख श्वेत हरि हाथन धारा ,
परसत अधर भयेउ रतनारा ।
जनु रक्तोत्पल हंस विराजा ,
अधर-सुधा लहि मधु स्वर बाजा ।
दिशि दिशि हरि-आगमन जनायी ,
पाञ्चजन्य ध्वनि गिरि वन छायी ।
परत शब्द श्रुति भोग-बिसारी ,
धाये दरस-वृषित नरनारी ।
जय-स्वर प्रकटत उर-उल्लासा ,
पहुँचे आतुर श्रीहरि पासा ।

दोहा :— घेरि रथहि हर्षे सकल, बरसे सुमन अपार ,
उमहेउ हरि-वदनेन्दु लखि, यदुजन - पारावार । ८९

सोरठा :— हरिहु भरेउ भुज काहु, पूछी काह ते कुशल ,
हरेउ काहु उर-दाहु, मन्दस्मित-अमृत बरसि ।

स्वजन संग निशि शैल बितायी ,
प्रविशे गेह प्राते यदुरायी ।
प्रणमत सुत वसुदेव विलोकी ,
उर उल्लास सके - नहिं रोकी ।

प्रेमस्निग्ध कीन्ह आलिंगन ,
 दग्ध निदाघ अद्रि जिमि नव घन ।
 मिलत प्रीत दोउ शोभित कैसे ,
 निशि-अवसान जलज रवि जैसे ।
 धाय देवकिहु गोद उठाये ,
 राखि सुचिर उर प्राण जुड़ाये ।
 खोजति रण-व्रण वत्स-शरीरा ,
 हौरे परसि हरति जनु पीरा !
 गवने अन्तःपुर घनश्यामा ,
 भयेउ महोत्सव जनु प्रति धामा ।
 परिजन उरहु प्रहर्ष उमङ्गा ,
 मनहुँ प्रभात प्रबुद्ध विहंगा ।

बोहा :— शोभित निज अन्तःपुरी, रानिन सह भगवान ,
 वल्ली-वलयित कल्पतरु, जनु नंदन उद्यान । ६७

सोरठा :— द्वावावती - अधीश, निवसे द्वावावति बहुरि ,
 मज्जित सुख-वारीश, इष्टदेव निज लहि प्रजा ।

उग्रसेन नृप, उद्धव साथ ,
 गवन्त नित्य सभा यदुनाथा ।
 कुरुक्षेत्र संग्राम-प्रसंगा ,
 पूछत नृपति, कहत श्रीरङ्गा ।
 शूर सुभद्रा-सुत रण-करनी ,
 अमर, रोमहर्षण हरि बरनी ।
 बरनेउ सजल-नयन अवसाना ,
 मिलि जिमि रथिन हरे शिशु-प्राणा ।
 शोकित शौरि, उग्र नरनाहू ,
 तरुण अरुण-दृग, फरकत बाहू ।
 सुमिरि सुमिरि शिशु पौरुष-धामा ,
 पूछत क्रुद्ध अधर्मिन-नासा ।
 गुनि मन कृतवर्मा तिन माहीं ,
 लीन्हे रथिन-नाम हरि नाहीं ।

सात्यकि पै न अमर्ष सँभारा,
प्रकट भोजपति-नाम उचारा।

बोहा :— प्रैकुपित कृतवर्महु कहे, शिनि-सुवनहिं दुर्वाद,
भोज-वृष्णि-वंशन बढेउ, सहसा विषम विवाद। ६१

लखि विद्वेष विकल यदुरायी,
निज प्रभाव-बल कलह बरायी।
गवने गृह अंतस्तल शोका,
अनाचार नित नवल त्रिलोका।
कतहुँ न पुरी पूर्व मख, दाना,
श्रुति-चिन्तबन, साधु-सन्माना।
शून्य समस्त चैत्य, देवालय,
धिलसत जन-संकुल मदिरालय।
कुल-आचार-विचार बिसारे,
मत्त वित्त-मद यदुजन सारे।
जियत उदात्त वृत्ति सब त्यागी,
भृगया-मात्रहि श्रम तिन लागी।
द्यूत विनोद, होड़ मदपाना,
तिय पुरुषार्थ, मुखरता ज्ञाना,
मान्य-विमानन महा सत्त्वता,
स्वेच्छाचार, दुराग्रह प्रभुता।

बोहा :— निवसत जब यहि भाँति पुर, अच्युत व्याकुल चित्त,
अकस्मात यदुकुल घटेउ, अन्यहु इक दुर्वृत्त। ६२

कृष्ण-पौत्र अनिरुद्ध कुमारा,
युद्ध-अरुद्ध, रूप-उजियारा।
रुक्मि-पौत्रि तेहि लही स्वयंवर,
गवने लग्न लागि हरि हलधर।
कुरुक्षेत्र रण-महि हत-शेषा,
जुरे भोजकट नगर नरेशा।

लखि संपन्न कृत्य शुभ सारा ,
 दुर्मति नृपतिन हृदय विचारा—
 यदुजन-लागि रुक्मि-विद्वेषा ,
 क्रम-क्रम होत जात अब शेषा ;
 आजु सुअवसर, रचहि प्रसंगा ,
 करहि विवाह-रंग महुँ भंगा ।
 रचि प्रपंच यहि विधि अविचारी ,
 जाय रुक्मि-प्रति गिरा उचारी—
 “शस्त्र-समर दुर्जय बलरामा ,
 जीतहु इनहि द्यूत-संग्रामा ।

बोद्धा :—जदपि अक्ष-अनभिज्ञ ये, लक्ष्मी-गर्व महान ,
 व्यसनिहु, करिहैं नहि कबहुँ, अस्वीकृत आह्वान ।” ८३

सोरठा :—सुनि रुक्मिहु अनुकूल, जाप्रत वैर प्रसुप्त उर ,
 द्यूत आपदा-मूल, आरंभेउ खल बोलि हलि ।

निष्क सहस बलभद्र लगाये ,
 जीति दाँव रुक्मी अपनाये ।
 अक्ष-अदक्ष बहुरि बलरामा ,
 हारे लक्ष द्यूत-संग्रामा ।
 प्रमुदित हलिहि रदन दरसायी ,
 हँसे कुमति कछु नृपति ठठायी ।
 भाषेउ रुक्मिहु जय-मद-माता—
 “होत न घोष द्यूत-निष्णाता !”
 रोषावेश राम-मति भोरी ,
 धरे दाँव पुनि निष्क करोरी ।
 लखि विशाल निधि कैतव कीन्हा ,
 उत्तर प्रकट न रुक्मी दीन्हा ।
 पाँसा पै • तेहि पण हित डारे ,
 सस्वर हलि निज विजय पुकारे ।
 भाषेउ रुक्मि—“न मैं कछु हारा ,
 पण तुम्हार मैं कब स्वीकारा ?”

दोहा :— अस कहि नृपतिन तन लखेउ, अनुमोदे तिन बैन ,
कोप-प्रकंपित राम तनु, बरसे शोणित नैन । ६४

सबल हस्त करि अक्षाघाता,
रुक्मी तत्क्षण हली निपाता !
भागो नृप 'हा ! हन्त !' पुकारा,
कलभस्तंभ राम कर धारा—
“हैंसे मोहिं जे रद दरसायी,
तिन-सह सकत स्वदेश न जायी !”
अस कहि धाय गहे, महि डारे,
हलि अमर्षि हठि रदन उपारे !
कोउ शिर चूर्ण, काहु कर टूटे,
शोणित स्रवत काहु अँग फूटे ।
घोर राजगृह हाहाकारा,
विलपत विकल रुक्मि-परिवारा ।
करुणाधाम बंधु-अनुरागिणि,
स्रवति अजस्र अश्रु-जल रुक्मिणि ।
इत तिय-दुख, उत अग्रज-रोषा,
सके न हरि दै काहुहि दोषा ।

दोहा :— जस-तस करि संपन्न प्रभु, जो विवाह-विधि शेष ,
पटै स्वजन द्वारावती, आपु गये कुरुदेश । ६५

यज्ञ-द्रव्य उत लावन-काजा,
गवनेउ हिमगिरि सानुज राजा ।
पहुँचि गजपुरिहु लीलाधामा,
लहेउ न एकहु पल विश्रामा ।
दुःखद वृत्त तजत रथ पावा—
'सुत विराटजा मृत जन्मावा !'
पृथा, सुभद्रा, द्रौपदि-क्रन्दन,
सकरुण सुनेउ द्वारू यदुनंदन ।
लखी जाय गृह पाण्डव-नारी,
जनु कारुण्य-किंकरी सारी ।

प्रथमहि द्रौणी सैन्य-निवेशा,
संहारे सुत सुप्त अशेषा ।
यहि शिशु-संग कुल-अंकुर नासा,
उर न काहु जीवन-अभिलाषा ।
लखत हरिहिं धायीं सब रानी,
बिलखत विकल चरण लपटानी ।

बोधा :— मृदुल कुमुद-सम हरि-हृदय, आकुल करुणाकंद,
प्रविशेउ श्रुति-पथ ताहि क्षण, मत्स्य-सुता-आकन्द । ६६

निराधार,
कलपति विकल बियोगिनि नारी—
“विधि ! पूर्वहि मैं निहत, अभागी,
अब यह वज्रपात केहि लागी !
छीनि प्राणपति, तातहु, भ्राता,
हरत शिशुहु कस दस्यु ! विधाता ।
गवनत नाथ लीन्हि नहिं साथी,
तजी दासि असहाय, अनाथा ।
मंद-बुद्धि मैं यहि शिशु-लागी,
धारे प्राण प्रणय-व्रत त्यागी ।
सोउ कामना दैव न पूरी,
नष्ट आजु मम जीवन-मूरी ।
जन-संकुल जगती-तल सारा,
मम-हित आजु विजन कान्तारा ।
व्याप्त तमिस्र विषम चहुँ ओरा,
सुनहि अरण्य-रुदन को मोरा ?

बोधा :— काह करहुँ, कहँ जाहुँ-मैं, कहाँ सँजीवनि मूरि,
सकत दुःख हरि एक हरि, बसे जाय सोउ दूरि !” ६७

सुनि विह्वल हरि मूर्त सनेहा,
प्रविशे भाय सुतिका-गेहा ।

लखी अवनितल मत्स्य-कुमारी,
निपतित मनहुँ नलिन बिनु वारी।
ज्ञाम वाम-तनु कान्ति-विहीना,
भये स्रोत-क्षय जनु सरि क्षीणा।
अस्तव्यस्त विभूषण-भूषा,
मलिन दीप-द्युति जनु प्रत्यूषा।
गत सुत-संग विधवा-एकाशा,
कर्षत प्राण विषोष्ण उसासा।
रहति मूक, क्रन्दति पुनि कैसे,
हूकति चक्रवाकि निशि जैसे।
मुनतहि परिचित हरि-पद-चापा,
मनहुँ प्राण-रस नव तनु व्यापा।
धाय, उठाय गहेउ शिशु अंका,
जनु प्रतीचि दिक् प्रात मयंका।

दोहा :— लटपटाय यदुराय-पद, लाय, डारि मृत बाल,
प्राञ्चलि दीनदयालु प्रति, बोली वाम विहाल— ६८

“शरण-प्रपन्न जानि निज चेरी,
करुणा-दृष्टि देव ! तुम फेरी।
भाषत व्यास आदि सब मुनिजन,
निष्फल नाथ ! तुम्हार न दर्शन।
रच्छीं प्रभु संतत तिय दीना,
पै को मो सम भाग्य-विहीना ?
पति, पितु, भ्रात, विधातहु-त्यागी,
गति तुम एक नाथ ! मम लागी।
जदपि अनुग्रह-निग्रह-आलय,
नाथ-विरुद्ध ‘करुणा-वरुणालय’।
द्रवहु अभागिनि-प्रति भगवाना,
करहु सुतहि प्रण-प्रदाना।
सुयश सुवन त्रय भरि अस छावा,
प्रसु गुरुपत्नी-सुवन जियावा।

यमहु-संयमन करि तुम नाथा !
लाये जिमि गुरु-सुत निज साथा ,

दोहा :— मृत्यु-पाश ते मुक्त तिमि, करहु सुवन मम स्वामि !
जानत मम उर-वेदना, तुम विमु अन्तर्यामि । ६६

सोरठा :— नृप-पद जाहि स्वहस्त, कीन्ह काल्हि अभिषिक्त तुम ,
वंश तासु विध्वस्त, होत विलोकत नाथ ! कस ?”

दीन बैन सुनि जननी केरे ,
शिशु दिशि दीनबंधु दृग फेरे ।
भूति वैष्णवी भरति जो त्रिभुवन ,
भयी प्रकट सहसा विभु-आनन ।
स्रवत शान्त, शीतल आलोका ,
अनिमिष दृष्टि शिशुहिं अवलोका ।
निजस्नेह दै यदुकुल-दीपा ,
कीन्ह सजग जनु प्राण-प्रदीपा ।
मनहुँ अमिय-रस-धारा वरसी ,
चेतनता शिशु-अँग-अँग सरसी ।
उषःकाल रवि-कर जनु पायी ,
विलसेउ कमल-मुकुल हुलसायी ।
तनु सजीव जनु सोवत जागा ,
क्रम-क्रम श्वास लेन शिशु लागा ।
श्वास-श्वास मुख-द्युति अधिकानी ,
हर्ष-विभोर विलोकहिं रानी ।

दोहा :— ‘हरे कृष्ण ! केशव हरे ! हरे श्याम ! यदुवीर’ !
भरी सूतिका-वेश्म ध्वनि, आनँद कण्ठ अधीर । १००

सोरठा :— पुलकी सुता विराट, दीन्ह शिशुहिं हरि अंक जस ,
चूमि कपील, ललाट, ललकि भरेउ हिय-धन हृदय ।

लीन्हे यज्ञ-द्रव्य तेहि काला ,
लौटेउ सानुज धर्मभुआला ।

वृत्त अशुभ पुर प्रविशत पावा ,
 बहुरि द्वार—‘हरि शिशुहिं जियावा’ ।
 धाय सबन यदुपति-पद परसे ,
 हर्ष-बाष्प-जल लोचन बरसे ।
 खोय तरुहु लखि अंकुर अँगुसत ,
 को छायाथि न उर जो हुलसत ?
 दीन्हेउ सचिवन बोलि नरेशा ,
 पौत्र-जन्म-उत्सव आदेशा ।
 धाये इत-उत जन मुद-विह्वल ,
 पद-आघात चलित जनु महितल ।
 पटह निनाद चतुर्दिक समुदित ,
 जनु कृत अट्टहास पुर प्रमुदित ।
 दिशि-दिशि नगर हर्षध्वनि छाथी ,
 जनु मथि सिंधु सुधा सुर पायी ।

दोहा :— कहत पौर इक एक सन, ‘करि शिशु जीवन-दान ,
 रच्छे दोउ राजा-प्रजा, आजु सदैव भगवान ।’ १०१

दिवस षष्ठ मत्स्येश-कुमारी ,
 तजेउ सूतिका-सद्व सुखारी ।
 दिवस दशम शुभ घरी सोहायी ,
 कीन्हेउ नामकरण यदुरायी—
 ‘जब परिद्धीण भयेउ कुल सारा ,
 जन्मेउ बाल वंश-उजियारा ।
 राजा-प्रजा मनोरथ-धामा ,
 ताते होय परीक्षित नामा ।’
 धर्मनृपहु शिशु-वदन निहारा ,
 निर्भर रस सनेह तनु सारा ।
 लीन्ह भुआल बाल निज अंका ,
 जनु राका-संजात मयंका ।
 धारत पुनि पुनि हृदय समीपा ,
 निरखत शिशु तन, गुनत महीपा—

अभिनन्दन हित पाण्डव-शासन,
रुढ़न हेतु वंश सिंहासन,

दोहा :—समर-जनित अवसाद हू, हरन हेतु यदुराय,
अभिमन्युहि जनु स्वर्ग ते, दीन्ह आजु मोहि लाय । १०२

यहि विधि मोद-मग्न महाराजा,
आरंभे हय-अध्वर काजा ।
मख-साधन लखि संचित सारे,
अश्व-पारखी भूप हँकारे ।
बाजि सुलक्षण तिन पहिचानी,
कृष्णशार दीन्हेउ शुभ आनी ।
शुभ मुहूर्त लखि व्यास मुनीशा,
कीन्ह यज्ञ-दीक्षित अवनीशा ।
बोलि बहुरि अर्जुन धनुमाना,
कहे वचन नृप करि सन्माना—
“धन्वी तुम सम शशि-कुल माहीं,
भयेउ न, होनहारहू नाहीं ।
पूजी सब तुम मम अभिलाषा,
जिमि सुकाल-घन कृषकन-आशा ।
रच्छहु बाजि जहाँ जहँ जायी,
फिरेहु सवेग विजय-श्री पायी ।”

दोहा :—नव उमंग अर्जुन-हृदय, सुनि अप्रज वर वाशि,
समयोचित तेहि क्षण गिरा, भाषी सारंगपानि— १०३

“हय-संरक्षण भार कठोरा,
संभव यत्र-तत्र रण घोरा ।
तदपि तात ! यह मम उपदेशा—
करेहु न पदाक्रान्त कोउ देशा ।
महि-मणि भारतवर्ष महाना,
वर्ण, कुटुम्ब, जाति, कुल नाना ।

युग-युग ते निज-निज सहि वासी ,
 सब स्वतंत्र, सब शौर्य-उपासी ।
 प्रिय अति सबहिं निजहि आचारा ,
 शासित सब स्ववंश-नृप-द्वारा ।
 उपजे पूर्व काल बहु जेता ,
 शूर-श्रेष्ठ, साम्राज्य-प्रणेता ।
 तजि इक जरासंध नृप-पाशा ,
 पूर्व वंश-क्रम काहु न नासा ।
 चले जाहि गहि रघु, मान्धाता ,
 सार्वभौमता-पथ सोइ ताता !

दोहा :— जहँ जहँ संभव तुम विजय, लहेउ शान्ति अपनाय ,
 बधेउ जाहि रण तासु सुत, आयेहु राज्य बसाय । १०४

सोरठा :— करेहु प्रजा-परित्राण, अवनि पर्यटत वाजि सँग ,
 निखिल भरतमहि-ज्ञान, लायेहु जय सँग तात ! तुम ।”

ताही समय करत श्रुति-गायन ,
 अध्वर-वाजि तजेउ द्वैपायन ।
 यायावर-अनुसारि धनु-हाथा ,
 गवने पार्थ वाहिनी-साथा ।
 अक्षत, अंकुर, सुमनन-राशी ,
 बरसत दिशि-दिशि गजपुर-वासी ।
 अश्वहु-उर जुनु गौरव व्यापा ,
 गवन्त उत्थित ग्रीव सदापा ।
 मुरि पार्थहिं लखि, नेह जनायी ,
 खनि महि खुरन चलत हिहनायी !
 उच्चैःश्रवा मनहुँ अवतारी ,
 योजन-मात्र गनत महि सारी ।
 पुलकित पुरजन वचन उचारे—
 “बिनसहिं हय ! पथ-निघ्न तुम्हारे ।
 जय सर्वत्र, क्लेश नहिं लेशा ,
 फिरेहु पुरी लहि सुयश अशेषा ।”

दोहा :— यहि विधि उर-अमिलाष जुनु, अर्जुन-संग पठाय ,
नगर-द्वार लागि दै विदा, लौटेउ जन-समुदाय । १०५

सोरठा :— पार्थ-सुरक्षित वाजि, गवनेउ उत्तर ओर उत ,
इत मणि-रस्नन साजि, रची भीम शुचि मख-मही ।

हरि-निदेश सहदेवहु पावा ,
यज्ञ-निमंत्रण-वृत्त पठावा ।
विप्र अनेक पत्र लै धाये ,
देश देश नृप न्यौति बोलाये ।
द्वारावतिहु निमंत्रण आवा ,
बाँचत उग्रसेन सुख पावा ।
बलरामहिं नृप दीन्ह निदेशा—
“लै उपहार जाहु कुरुदेशा ।
जाहिं संग कृतवर्मा, सारण ,
गद, सात्यकि, प्रद्युम्न आदि जन ।”
हलधर सुनि प्रमोद प्रकटावा ,
कृतवर्महिं क्रतु-वृत्त न भावा ।
कुरुपति पूर्व नेह प्रतिपाली ,
करन चहत कछु अबहुँ कुचाली ।
नृपति-निदेश टारि नहिं जायी ,
गवनेउ स्वजनन कुमति सिखायी—

दोहा :— “आवहि जब आनर्त महि, अर्जुन संग क्रतु-अश्व ,
करेहु प्रदर्शित बाँधि तेहि, तुम यदुकुल-वर्चस्व ।” १०६

करि यहि विधि प्रपंच, अपकर्मा ,
गवनेउ गजपुर दिशि कृतवर्मा ।
उत अनुसरि मख-वाजि धनंजय ,
कीन्ह उत्तरापथ सब निर्भय ।
जाय मेरु-पर्यन्त रणाङ्गण ,
जीते हूण, शकादि, म्लेच्छगण ।

सिंधुज-कैसर-रंजित वाजी ,
विचरत वंलु-द्राक्ष-वनराजी ,
भ्रमत विपुल हिम-भूषित गिरि, वन ,
करत अलकनंदा-अवगाहन ,
मुरेउ प्राचि दिशि इच्छाचारी ,
मही पूर्वतम पार्थ निहारी ।
जीते सर्व किरात नरेशा ,
स्वर्णभूमि, मणिमान प्रदेशा ।
गंगासागर हय अन्हवायी ,
लखे महेन्द्र, मलय गिरि जायी ।

दोहा :— करत दक्षिणापथ अभय, जीतत हठी नरेश ,
विन्ध्य नाँधि अर्जुन लखेउ, यदुजन-शासित देश । १०७

सोचत—यह हरि-महि अभिरामा ,
शत्रु-शून्य, नहिँ कहूँ संग्रामा ।
उग्रसेन वसुदेव पूज्यजन ,
मिलिहैं प्रकटि प्रीति सब यदुजन ।
पार्थ-हृदय अति दरस-उमंगा ,
प्रविशेउ बढि आनर्त तुरंगा ।
भ्रमत जबहिँ गोकर्ण, प्रभासा ,
पहुँचेउ अश्व रैवतक पासा ,
लखे पार्थ यदु बाल अनेकन ,
मृगया-निरत, भ्रमत गिरि-कानन ।
जदपि अल्प-वय तेज-निधाना ,
बल विशाल, बाहु बलवाना ।
सज्जित शस्त्र, समर-बरियारे ,
जनु बहु कार्तिकेय वपु धारे ।
लखि रैवतक चढ़त मख-वाजी ,
धाये बाल बाण धनु साजी ।

दोहा :— बरजहि जब लागि पाण्डु-मुत, पकरेउ घेरि तुरंग ,
बहुरि प्रचारेउ युद्ध हित, गरजि, तरजि, करि व्यंग । १०८

गुनि दुस्साहस भ्रम-वश कीन्हा,
 विहँसि नाम निज अर्जुन लीन्हा।
 सुनत बाल सब हँसे ठठायी—
 “विदित हमहिं कुल, नाम, बड़ाई।
 धर्मराज हय-मेध रचावा,
 तुमहिं दिग्विजय हेतु पठावा।
 देश-देश मख-अश्व फिरायी,
 धूमत थापत कुल-प्रभुताई।
 यह हय प्रकट समर-आह्वाना,
 गहि तेहि हमहु देत रण-दाना।
 उपजति पै जो उर कदराई,
 गवनहु गजपुर वाजि विहायी।
 कुंकुम पोंछि, भंजि मख-माला,
 बँधिहैं अश्व हमहु हय-शाला।”
 अस कहि अट्टहास करि घोरा,
 हय लै चले बाल पुर ओरा।

दोहा :— निरखत पार्थहि त्रस्त हय, बार बार हिहनाय,
 तजी न पै उर-भृति विजय, बड़े शिशुन पछियाय । १०६

कर्षत अश्व, करत परिहासा,
 पहुँचे बालक गोपुर पासा।
 आवत जात पंथ जन जेते,
 जुरत, लखत सब कौतुक तेते।
 भयी भीर गोपुर ढिग भारा,
 हँसत नारि-नर, बाजत तारी।
 सहसा तेहि पथ वज्र कुमारा,
 निकसेउ यदुपति-पौत्र पियारा।
 सुनत कुवृत्त पार्थ ढिग जायी,
 प्रणमेउ सौंदर नाम सुनायी।
 हटकेउ शिशुन, सुनेउ तिन नाहीं,
 उपजेउ रोष वज्र उर माहीं।

गहेउ समीप अश्व जब जायी,
छीनेउ शिशुन बहुरि बरियायी।
सुनेउ वृष्णि-वंशिन संवादू,
धाये करत वज्र-जय-नादू।

दोहा :— भोज-वंशि, अंधककुलज, जुरे आय इक ओर,
दिशि द्वितीय बहु वृष्णिजन, भाषत वचन कठोर। ११०

रण-उन्मत्त पक्ष दोउ जानी,
कही पार्थ वृष्णिन सन वाणी—
“मख-हय-रक्षण कर सब भारा,
हरि-निदेश ते मैं शिर धारा।
करि विभक्त अब सकत न ताही,
सकत स्वबल कर्तव्य निवाही।
शिशु, पुनि स्वजन-संततिहु जानी,
सहेउँ अश्व-अपमान, कुवाणी।
पै जो अंधक, भोजवंश जन,
करन चहत हरि-नगर रणाङ्गण,
देहिं बाल सब पुर पहुँचायी,
गहहिं अश्व पुनि सन्मुख आयी।
समर-विमुख होइहौ मैं नाहीं,
धनु गाण्डीव अबहुँ कर माहीं।
बधे स्वजन मैं हरि-उपदेशा,
बधत न यदुजन मोहि अँदेसा।”

दोहा :— घाये भोजान्धक सुनत, उमहेउ रोष अथाह,
नगर-द्वार तेहि क्षण दिखे, उग्रसेन नरनाह। १११

सोरठा :— रोकेउ बेगि विवाद, तोषेउ नृप कुन्ती-सुतहि,
लहि अनल्प उपहार, बढे पार्थ सौवीर-दिशि।

उत गजपुरी शिल्पि-समुदायी,
रत्नस्थी मख-महि निर्मायी।

रचे अगण्य अतिथि-आवासा,
जनु अमरावति सुरन-निवासा।
मणिगण-मण्डित, मन-अभिरामा,
हेमस्तंभ-पंक्ति प्रति धामा।
जन-मन-रंजन हेतु सजायी,
कौतुक-मही विचित्र बनायी।
जलचर, थलचर, नभचर प्राणी,
राखे अद्भुत अगणित आनी।
भोजन-महि बहु वृहदाकारा,
दिशि दिशि विविध अन्न-अंबारा।
लखि घृत होत सरोवर भाना,
बहत दूध-दधि सरित समाना।
द्रव्य-राशि चहुँ ओर लखायी,
जनु कुवेर-निधि मखमहि आयी।

दोहा :—क्रम-क्रम आये मुनि सकल, प्रजा-यंच, नरनाथ,
अक्षत-तनु पार्थहु फिरे, दिग्विजयी हय-साथ । ११२

चैत्र पूर्णिमा दिवस सोहावा,
व्यास यज्ञ आरंभ करावा।
मख-महि निखिल महर्षि विराजत,
नारदादि देवर्षिहु राजत।
जटाजूट मस्तक सब धारी,
कपिल कान्ति वितरति उजियारी।
बल्कल देह, कक्ष मृगछाला,
हस्त कमण्डलु, अक्षत माला।
वदन विपाटल आभा-मण्डल,
जनु रवि-अबलि अवतरित महितल।
मध्य सुशोभित व्यास मुनीश्वर,
तारक-राशि श्याम जनु जलधर।
मरकत मणिस्तंभ कृत छाया,
शोभित सुभा नरेश-निकाया।

मनहुँ नलिनि-वन छाया श्यामा ,
विलसत राजहंस अभिरामा ।

दोहा :— जित मरकत-द्युति कान्ति निज, राजत तहँ भगवान ,
यज्ञ-मही जगमग निखिल, कौस्तुभ-प्रभा-वितान । ११३

शोभित श्रीहरि-सँग संकर्षण ,
गद, प्रद्युम्न आदि सब यदुजन ।
सुत युयुत्सु-सह हरिहिं समीपा ,
रत्नासन धृतराष्ट्र महीपा ।
दिशि दिशि प्रजा-समाज सोहावा ,
व्योमहु अमर विमानन छावा ।
मंगल-तूर्य, शंख-ध्वनि छायी ,
श्रुति-ध्वनि पुण्य, श्रवण-मुखदायी ।
बाजत कहूँ मृदंग, कहूँ वीणा ,
कतहुँ वेणु-स्वर नर तल्लीना ।
शेष न कतहुँ भ्रान्ति, भय, शोका ,
मर्त्यलोक जनु अमरन-लोका ।
व्योम निर्जरहु वाय बजावत ,
हर्ष-निमग्न सुमन बरसावत ,
यहि विधि नित प्रति जुरत समाजू ,
अध्वर-कृत्य करत नरराजू ।

दोहा :— गुनि शुभ दिन पुनि व्यास मुनि, पुण्य घरी सविधान ,
अश्व-मेध करि नरपतिहिं, दीन्हेउ मज्जा-प्राण । ११४

भयेउ पूर्ण जस आहुति-काजा ,
परसे व्यास-पद्मम्बुज राजा ।
आनंद-निर्भर उर, दृग वारी ,
गिरा विनीत नरेन्द्र उचारी—
“देव ! दक्षिणा वेद-विधाना ,
उर-मम सकुच करहुँ का दाना ?

मही, स्वर्ग, पातालहु माहीं,
मुनिवर-योग्य वस्तु कछु नाही।
तदपि उदधि लगि भारत सारा,
असुर ध्वंसि जेहि हरि उद्धारा,
दीन्ह मोहिं पुनि जो भगवाना,
करत प्रभुहिं मैं सोइ प्रदाना।
यज्ञ-दक्षिणा तेहि निज मानी,
स्वीकारहु मोहिं सेवक जानी।
दास और का भेद चढ़ावहि,
कृष्ण दीन्ह सो कृष्णहि पावहि !

दोहा :— जदपि तुच्छ उपहार यह, स्वीकारहु मुनिनाथ !”

अस भाषत नरपति गहेउ, वारि-पात्र निज हाथ । ११५

लखि दाक्षिण्य चकित सब राजा,
चकित निखिल मुनि द्विजन समाजा।
चकित प्रजाजन, चकित अमरगण,
पुलकत, करत सुमनदल-वर्षण।
कण्ठ कोटि स्वर एक उचारा—
‘धन्य भूप ! धनि-दान तुम्हारा।’
शान्त चित्त दै नृपहिं असीसा,
कहे वचन शुचि व्यास मुनीशा—
“त्याग मूर्त तुम धर्मभुआला !
दानहु हृदय-समान विशाला।
तदपि गुनहु नृप ! निज मन माहीं,
जन-शासन हित मुनिजन नाही।
जन-मन पै स्वामित्व हमारा,
जन-तन पै अधिकार तुम्हारा।
परुष वृत्ति आश्रित तन-शासन,
मृदुता ते, शासत हम जन-मन।

दोहा :— सिरजे जन-तन-राज्य हित, विधि आयुध धनु बाण ,

मनोराज हित हम लहे, श्रुति, साहित्य, पुराण । ११६

सहसा तजि न सकहुँ निज धर्मा ,
 नहिँ अपनाय सकहुँ पर-कर्मा ।
 लेत जाहि हरि-मति सकुचानी ,
 तेहि मै लेहुँ न अस अज्ञानी !
 हरि ते अधिक कवन मतिमाना ,
 करि जो सकत पात्र-पहिचाना ।
 राज-दण्ड दै तुम्हरे हाथा ,
 मोहिँ मुनि-दण्ड दीन्ह भवनाथा ।
 पालहिँ हम दोउ निज निज धर्मन ,
 सुफल करहिँ हरि-चरण समर्पण ।
 हरिहिँ सदा प्रिय जन-कल्याणा ,
 हरि-पूजा न तेहि सम आना ।
 ताते मै यह महि लौटारी ,
 भाषत आशिष-गिरा सुखारी—
 होहु तात ! आदर्श नरेशा ,
 सुयश अमर जब लगि महि शेषा ।”

बोद्धा :— निरखि शिष्य-गुरु-त्याग सुर, कहत—“धन्य यह देश ,
 धर्म नृपति सम नृप जहाँ, व्यास समान द्विजेश ।” ११७

धरि शिर व्यास-निदेश, असीसा ,
 स्वर्ण-दक्षिणा दीन्हि महीशा ।
 मुद्रा दश अर्बुद मँगवायी ,
 दीन्ही द्विज-वृन्दन नररायी ।
 बहुरि मनोवाञ्छित दै दाना ,
 निखिल याचकन नृप सन्माना ।
 हेम-विमण्डित तोरण अनगन ,
 यूपस्तंभ, पात्र, आभूषण ,
 मख-हित रचित साज-संभारा ,
 दीन्हेउ अर्थिन क्षितिपति सारा ।
 व्यास आपु जो संपति पायी ,
 दीन्ही कुन्ती वधुहिँ बोलायी ।

आशिष समुक्ति पृथा तेहि लीन्हा ,
व्यय धर्मार्थ अर्थ सब कीन्हा ।
भयेउ सशान्ति यज्ञ-अवसाना ,
कीन्ह नृपति क्रतु-अंतस्नाना ।

दोहा :— सन्माने नृप माण्डलिक, दै वाञ्छित बल, कोष ,
गवनेनिज निज पुर सकल, लहि नव शक्ति, भरोस । ११८

गवन्त द्वारावति बलरामा ,
कह हठि—“चलहु संग घनश्यामा !”
युधिष्ठिरहु तैसेहि हठ ठाना ,
लोचन सजल, देत नहि जाना ।”
निरखि धर्म-संकट यदुरायी ,
रामहिं कहेउ सप्रेम बुभायी—
“धर्मराज अब भारत-स्वामी ,
हम यदुवंशि करद, अनुगामी ।
प्रथमहि इनहि, निरखि गुण अनुपम ,
धारेउँ उर मैं कौस्तुभ मणि सम ।
अब ये सार्वभौम अवनशीशा ,
शिरोधार्य जिमि शशि शिव-शीशा ।
इनहि निजेच्छा दै उच्चासन ,
उचित सतत पालव अनुशासन ।
ताते मानि नृपेश-निदेशा ,
बसहु तुमहु कछु दिन कुरुदेशा ।”

दोहा :— सस्मित संकर्षण-वदन, सुनि मायामयि वाणि ,
रहे आपु, प्रेये स्वजन, हरि-इच्छा सन्मानि । ११९

सोरठा :— बसे जाय बलरामे, वृद्ध नृपति धृतराष्ट्र-गृह ,
सुखी आपु घनश्याम, सखा सव्यसाची-भवन ।

कुरुक्षेत्र रण-मही अशेषा ,
बिनसे ममहुँ कलह, विद्वेषा ।

धृतराष्ट्रहिं पाण्डव सन्मानी,
 पूजत जनकहु ते बड़ि जानी ।
 द्रौपदि आदिक पाण्डव-नारी,
 सेवत कुन्तिहि सम गान्धारी ।
 पाय प्रथम पितृव्य-निदेशा,
 राज-काज सब करत नरेशा ।
 उठत प्रात वंदत पद जायी,
 सोवत निशिहु पूछि कुशलार्ई ।
 पाण्डु-सुवन लखि आज्ञाकारी,
 विनय-विवेक-निरत, प्रियकारी,
 सुखी दम्पतिहु गत विसरायी,
 प्रथमहि बार शान्ति उर पायी ।
 लोभ, मोह, भय, शोक-विहीना,
 मन गोविन्द-पदाम्बुज लीना ।

दोहा :— गुनत विदुर लखि वृद्ध नृप, श्रीहरि-प्रीति-विभोर—
 उपजति भक्तिहु नाहि उर, बिनु प्रभु-करुणा-कोर । १२०

निखिल राजकुल-नेह निहारी,
 निवसत गजपुर हरिहु सुखारी ।
 कबहुँ सखा प्रिय अर्जुन साथी,
 बिहरत गिरि, वन, सरि यदुनाथा ।
 कबहुँ व्यास ऋषि-दर्शन लागी,
 गवनत आश्रम हरि अनुरागी ।
 जात धर्म अवनीशहु संगी,
 सुनत शास्त्र श्रुति सूक्ष्म प्रसंगा ।
 कबहुँ अन्तःपुर प्रगु धारहिं,
 धारहिं रानी कीज बिसारहिं ।
 परीक्षितहु लखतहि यदुरायी,
 धावत धात्रि-गोद विसरायी ।
 किलकत पुलकि अंक हरि पाये,
 जात न जननिहु निकट बोलाये ।

विफल प्रयास हँसहि सब रानी ,
शिशुहि हँसाय हँसहि सुखदानी ।

दोहा :—गेह-गेह यहि भाँति हरि, नेह-सुधा बरसाय ,
गमन हेतु आयसु बहुरि, माँगी नृप ढिग जाः ॥ १२१

व्याकुल सुनत भुआल बहोरी ;
बोलेउ विनय वचन कर जोरी—
‘नाम-प्रभावहि सुनि सुनि सारे ,
भजत तुमहि सर्वस्व बिसारे ।
हम नयनन निरखे भगवाना ,
सँग निशि-दिन शयनाशन, पाना ।
तजि प्रभु अन्य न गति मै जानी ,
‘कृष्ण’ नाम इतनिहि मम वाणी ।
रोम रोम अनुराग अथाहू ,
कहि मुख नाथ ! कहहुँ तुम जाहू ?
गवने दुस्सह हमहि वियोगू ,
रहे, विहाल विरह यदु-लोगू ।
विरमे करि मम प्रेम-निबाहू ,
केहि मुख बहुरि कहहुँ नहि जाहू ?
पै मोरहु इक प्रण भगवाना !
प्रभु महि तजत तजहुँ निज प्राणा ।”

दोहा :—अस भाषत हरि, तन लखेउ, रुद्ध करउ, मन मोह ,
स्रवत दगन मौक्तिक विमल, बाष्प - विन्दु - संदोह । ॥ १२२

सोरठा :—श्याम-गमन संवाद, पठयेउ अंतःपुर नृपति ,
छायेउ विरह-विषाद, निखिल भरत कुल तेहि निशा ।
होत प्रात प्रति धाम, जाय लही यदुपति विदा ,
आपु सजल-दग श्याम, राम-साथ स्यंदन चढ़त ।

सानुज धर्मज, वृद्ध नरेशा ,
सुहृद, सचिव, पुर-प्रजा अशेषा ,

सींचत हरि-पथ नयनन-वारी ,
 गवने स्यंदन-सँग पदचारी ।
 पुर बाहर जैसेहि रथ आवा ,
 बरबस सबहि राम विरमावा ।
 विरमे पद पै, नयन न हारे ,
 गोविंद-वदन बद्ध जनु तारे ।
 धायेउ दारुक-प्रेरित याना ,
 प्रति पल विलग भये भगवाना !
 छिपेउ नितिज पुनि यानहु दूरी ,
 गत यदुनाथ, शेष पथ धूरी ।
 विकल पाण्डु-सुत लौटे धामा ,
 जनु वन विजन बिना घनश्यामा ।
 जे जे थल हरि-पद-रज परसे ,
 लखि लखि तिनहि उमहि दृग बरसे ।

दोहा :— दरसावत इक एक कहूँ, पुनि पुनि पावन ठाम,—

“करत निमज्जन दैव यहँ, यहँ भोजन, विश्राम !” १२३

सोरठा :— तापित भक्त-वियोग, पहुँचे यदुपति उत पुरी ,
 मग्न मद्य, सुख-भोग, लखेउ बहुरि यदुकुल सकल ।

बसे अलिप्त तहाँ हरि तैसे ,
 मीन-विलोचन जल महँ जैसे ।
 जदपि हृदय सोइ यदुजन-प्रीती ,
 अप्रिय दिन प्रति भयी अनीली ।
 आर्योचित आचार विहायी ,
 पतित निखिल यादव समुदायी ।
 तजि कुल-शील, धर्म अवसादी ,
 करत आचरण जनु उन्मादी ।
 अहंकार-विष-दूषित वाणी ,
 चलत उग्रसेनहु अवमानी ।
 संयम-शून्य, सकोच बिसारे ,
 पिबत सुरा नृप-सर्न्मुख सारे ।

होत विवाद कलह दिन राती,
लखि लखि धधकति उद्धव-छाती ।
हरि ढिग आवत, अश्रु बहावत,
सुनत हरिहु, समुझाय पठावत ।

दोहा :— खंडत खल, मंडत मही, रंजत प्रजा-समाज,
निवसे पुर स्वजनन सहित, कछु वत्सर यदुराज । १२४

एक दिवस धृत-कर वर वीणा,
गावत हरि-यश रस-तल्लीना,
हृग प्रेमाश्रु, पुलक तनु छाये,
मुनि नारद द्वारावति आये ।
अंकमाल, आसन सन्मानी,
भाषी हास-सरस हरि वाणी—
“अँग अँग आनंद मुनिवर ! छावा,
मानहुँ कछु नवीन कहूँ पावा ।
होय न गोपनीय जो गाथा,
जन निज जानि कहहु मुनिनाथा !”
मुनि कह नारद—“तुम अखिलेशा,
अवगत विश्व रहस्य अशेषा ।
महूँ तुम्हारिहि माया-प्रेरा,
करत रहत नित लोकन-फेरा ।
देखत सोइ जो तुम दरसावत,
सुनन चहहु सोइ आय सुनावत ।

दोहा :— भ्रमत अवनितल आजु मैं, लखेउँ युधिष्ठिर-राज,
सागर ते गिरि मेरु लागि, शान्ति, शक्ति, सुख-साज । १२५

लहि रसाल-फल जिमि नरनारी,
देत मंजरी-विभव बिसारी,
पाय आजु तिमि धर्म नरेशा,
विस्मृत पूर्व नृपन-यश देशा ।

धर्मराज दृढव्रत, धर्मज्ञा,
वेदस्मृति - पुराण - तत्त्वज्ञा,
जन-हित-निरत, विचक्षण, त्यागी,
विजित क्रोध, सज्जन-अनुरागी,
सत्यसंध, धृति धैर्य अगाधू,
प्रिय-दर्शन, लोकप्रिय, साधू।
अरि-तम-रवि, जन-कैरव-हिमकर,
अर्थि-कल्पतरु, गुण-रत्नाकर।
जलनिधि सम मर्यादा-पालक,
अनल समान दोष-वृण-घालक।
साम वशीकृत सकल महीशा,
विनय वशीकृत मान्य, मुनीशा।

दोहा :— अर्जत धन, निलोभ पै, भोगी, पै रति-हीन,
पालत धर्म, मुमुक्षु पै, निर्भय, रक्षण-लीन। १२६

शिष्ट रिपुहु भूपति सन्माना,
जिमि कटु औषधि लेत मुजाना।
खल जो प्रियहु नृपति उत्पाटत,
जिमि अहि-दष्ट अंग जन काटत।
प्रतिपालत सब भाँति प्रजाजन,
करि पोषण, शिक्षण, संरक्षण।
पितु अब केवल जन्म-प्रदाता,
नृपतिहि प्रजा-पिता साक्षाता!
लेत जो षष्ठ अंश 'कर' राजा,
सोउ प्रजा-उत्कर्षहि काजा।
रवि सम कर्षि स्वल्प धन-वारी,
बरसि सहस गुण करत सुखारी।
चतुरंगिणि नृप-सैन्य सोहायी,
केवल स्लेच्छ खलन भयदायी।
जन-हित छत्र-रूप सुखकारिणि,
आतप-वर्षा-शत्रु निवारिणि।

दोहा :— शासत नृप जनु लघु नगर, भारतमहि - विस्तार ,
सलिलनिधिहि परिखा मनहुँ, तटमहि जनु प्राकार । १२७

पंच महाभूतहु प्राचीना ,
नृप-प्रभाव जनु भये नवीना ।
नव क्षिति, नवलहि लागत वारी ,
नवलहि विभा हुताशन धारी ।
नवल पवन, नवलहि आकाशा ,
धृत अपूर्व गुण नव सब भासा ।
वस्तु वस्तु नव सत्त्व विकासू ,
देति धान्य महि स्वल्प प्रयासू ।
सहज स्वभाव लता तरु धारा ,
फूलि फलहि सब ऋतु अनुसारा ।
गोधन विपुल, देत पय गाई ,
जात सकल ब्रज, ग्राम नहायी ।
पुर, जनपद धन-धान्य-निधाना ,
प्रजा धर्म-प्रिय, नित मख दाना ।
आधि-व्याधि बिनु मनुज निरोगी ,
दृष्ट समस्त सहज सुख भोगी ।

दोहा :— अनल, वात, जल-भीति नहि, परत न कहूँ दुष्काल ,
नर इन्द्रिय-निग्रह-निरत, कतहुँ न मृत्यु अकाल । १२८

दिखत पाण्डु-सुत पंच कलेवर ,
व्याप्त सबन महँ तुमहिं भवेश्वर !
समझेउँ अब प्रभु ! चरित तुम्हारे ,
तुमहिं पाँच पाण्डव वपु धारे ।
धर्म-शील जो नाथ ! तुम्हारा ,
धर्म नरेश : सोइ साकारा ।
बल जेतिक प्रभु-अंगन माहीं ,
सोई भीम अन्य कोउ नाहीं ।
समर-कुशलता प्रभु कै सारी ,
सोइ संव्यसाची अवतारी ।

नकुल नाथ-तन-सुषमा गेहा ,
 शास्त्र-ज्ञान सहदेव सदेहा ।
 रुचत न तुमहिं भक्त निष्कर्मा ,
 चहहु भक्ति-सँग निज गुण-धर्मा ।
 पाण्डु-सुतन महुँ गुणगण जागे ,
 दुख-दारिद्र्य त्यागि महि भागे ।

दोहा :— धर्मराज थापेउ बहुरि, धर्म-राज्य यहि देश ,
 द्वापर कीन्हेउ सत्ययुग, कतहुँ अधर्म न लेश । १२६

लीन्ह नाथ ! जब तुम अवतारा ,
 कम्पित निखिल मही अव-भारा ।
 स्वार्थहि अर्थशास्त्र नर जाना ,
 मत्स्य-न्याय तजि न्याय न आना ।
 वंचन कौशल, कैतव नीती ,
 कला युद्ध, कामुकता प्रीती ।
 बिनसे सदाचार, सत्कर्मा ,
 क्वचितहि शेष रहेउ कहुँ धर्मा ।
 नाथ-कृपा ते सोइ महि आजू ,
 भयी स्वर्ग लहि शान्ति, सुराजू ।
 आजु पूर्ण भूतल उद्धारा ,
 पूर्ण सकल प्रभु ! काज तुम्हारा ।
 किये जदपि तुम विपुल प्रयासा ,
 पूजी पै न एक अभिलाषा ।
 धर्मस्थापन-यशहु तुम्हारा ,
 चाहेउ देन पाण्डवन सारा ।

दोहा :— गुनि मन लहिहैं पाण्डु-सुत, तुम्हरे अद्धत न श्रेय ,
 गवनत तुम नहि गजपुरी, बसत यहाँ अज्ञेय ! १२७

जग समस्त तबहुँ यह जाना ,
 धर्म-ज-राज्य-मूल भगवाना ।

शैशव ते ह्य-मख पर्यन्ता,
कीन्दे जे तुम चरित अनन्ता,
कवन ग्राम पुर भारत माहीं,
वरनत तिनहिं जहाँ नर नाहीं ।
खेतन करत शालि रखवारी,
गावति प्रभु-यश कृषक-कुमारी ।
किलकि पालने बाल अबोला,
लेत प्रथम हरि-नाम अमोला !
प्रभु-लीला-मय मनुज-विनोदा,
मंगल गायन, नृत्य, प्रमोदा ।
नाथ-मूर्ति-मय भारत भासा,
तेहि-गत निखिल कला-अभ्यासा ।
हरि-मय भारत, भारतवासी,
स्वप्रभु प्रभु-दर्शन अभिलाषी !

बोद्धा :— विज्ञ नरन कै का कथा, शुक सारिकहु विहंग,
गेह-गेह गावत मुदित, हरि-अवतार-प्रसंग । १३१

लखेउँ नाथ ! जो सकल सुनावा,
एकहि वृत्त समुक्ति नहिं पावा ।
जात उत्तरापथ नहिं नाथा,
सुखी निवासि नहिं यदुजन साथा ;
सफल सकल संकल्प तुम्हारे,
कस अब लगि मानव वपु धारे ?
कहहु जो, त्यागत मही तुम्हारे,
तजिहैं पाण्डव राज्य दुखारे ।
तबहुँ नाथ नहिं प्रजा-अकाजू,
विज्ञ, वयस्कं परीक्षित आजू ।
भूषित पैतृक-गुणन कुमारा,
सहजहि धारि सकत शिर भारा ।
अमरहु चहत फिरहिं अब स्वामी,
विदित तुमहिं सो अन्तर्यामी ।

राखि महीतल सुयश अशेषा,
करहु नाथ ! अब लीला शेषा ।”

बोद्धा :— ‘एवमस्तु’—प्रभु हँसि कहैउ, बाजी पुनि मुनि-बीन,
गवने नारद व्योम-पथ, महि हरि चिन्तन-लीन । १३२

सोचत पुनि पुनि मन यदुराजू,
शेष कि कहूँ कछु लघु-बड़ काजू ?
रहेउ कि कहूँ कोउ नेही, दासू,
हरि विपत्ति न अब लगि जासू ?
अकस्मात जाग्रत हृद्धामा,
शैशव-सुहृद सुदामा नामा ।
सुमिरत ही पुलके भगवाना,
देखी सखा-दशा धरि ध्याना ।
निरखेउ द्विज—निज पद अनुरागी,
आत्मतत्त्व-रत, भोग-विरागी ।
तनु दारिद्र्य-दग्ध, अति क्षीणा,
वसन एक सोउ जीर्ण मलीना ।
दीन-दुखी तिमि द्विजवर-जाया,
अन्न-विहीन गेह, कृश काया ।
बिनवति नित पति—‘हरि-दिग’ जाहू,
सकुचत विप्र, न उर उत्साहू ।

बोद्धा :— दशा निरखि श्रीपति विकल, सिक्त कमल दग-कोर,
प्रेरेउ सत्वर द्विज-हृदय, चलेउ द्वारका-ओर । १३३

दिवस एक श्री-रुक्मिणि-धामा,
हरि मध्याह्न लहत विश्रामा ।
सुरभित अगारु, प्रसून-सुवासू,
रम्य हर्म्य जनु रमा-निवासू ।
बाह्य व्यजन कर कमल डोलायी,
रुक्मिणि करति कंत सेवकाई ।

हास-विलास, सरस, आकर्षण,
रंजति प्रणयिनि नारि हृदय-धन ।
प्रविशि गेह सहसा प्रतिहारी,
सस्मित आनन गिरा उचारी—
“नाथ ! अवस्थित द्विज इक द्वारे,
जनु रंक्त्व आपु वपु धारे ।
तनु नहि उत्तरीय, उष्णीषा,
जर्जर अधोवसन जगदीशा !
धूलि-धूसरित, बिनु पद-त्राणा,
लुधा-क्षीण द्विज जनु म्रियमाणा ।

बोधा :— टारे टरत न द्वार ते, चकित लखत धन-धाम,
कहत-‘सखा यदुनाथ मम, विप्र सुदामा नाम’ ।” १३४

सुनत पुलक अंकुर तन छाये,
आतुर द्वार ओर हरि धाये ।
लखि वयस्य अनुराग-विहाला,
भरेउ बाहु युग दीनदयाला ।
नयन सनीर नेह बरसावत,
रुद्ध कण्ठ, मुख बैन न आवत ।
भौचक लखत दास अरु दासी,
पृच्छति द्वार जुरी जन-राशी—
‘को यह निर्धन, भाग्य-निधाना ?
भेंटत जेहि यहि विधि भगवाना ।’
गहि कर नेह-निहाल सुदामा,
लाये श्रीहरि रुक्मिणि-धामा ।
चकित प्रिया सन वचन उचारे—
“बालसखा . के प्राणपियारे ।
बसे संग हम गुरु कुल तैसे,
जननी-गर्भ युग्म मिलि जैसे ।

बोधा :— उज्जयिनी नगरी रहे, मुनि सान्दीपनि-गेह,
नेह-बद्ध हम दोउ भये, एक प्राण दुइ देह ।” १३५

अस भाषत पर्यङ्क सोहावा ,
 लाय सखहि सादर बैठावा ।
 आपुहि आतिथेय लै सारे ,
 द्विज-पद निज कर-कमल पखारे ।
 चरणोदक रनिवास सिचावा ,
 मृगमद मलयज अंग लगावा ।
 धूप, दीप, पूजन सन्मानी ,
 राखे पटरस व्यंजन आनी ।
 भोजन-पान तृप्त द्विज कीन्हा ,
 लै ताम्बूल हाथ निज दीन्हा ।
 लखि हरि-नेह, जानि द्विजदेवा ,
 कीन्दि आपु रुक्मिणि अति सेवा ।
 व्यजन फेन-शुचि कर निज धारी ,
 लागी सादर करन वयारी ।
 कबहुँ विलोकति दीन सुदामा ,
 मलिन वसन, अँग अँग छुत्तामा ।

बोधा :— कबहुँ लखति यदुनाथ तन, सोचति मन मुस्काय ,
 'दीनबंधु विनु दीन अस, सकत सखा को पाय' ! १३६

गुरुकुल-वृत्त विपुल अभिरामा ,
 पूछति रुक्मिणि, कहत सुदामा ।
 विहँसत, सुनत, गुनत भगवाना—
 विषय-विरत यह विप्र सुजाना ।
 गृहिणी मम ढिग सहठ पठावा ,
 सक्कुचत अबहुँ माँगि नहि आवा ।
 तण्डुल-भेंट जो मम हित लाये ,
 लाजत, देत न, लेत दुराये ।
 सोचत अस मन कौतुक-खानी ,
 भाषी विहँसि विप्र सर वाणी—
 "गुरु-गृह मम प्रति सखा ! तुम्हारा ,
 रहैष सतत अनुराग अपारा ।

मुनि-पत्नी ते जो कछु पावा ,
मोहिं खवाय आपु तब खावा ।
निज गृह ते आये यहि बारा ,
लाये काह प्रीति-उपहारा ?”

दोहा :— लक्ष्मी-पतिहिं न दै सकत, द्विज तण्डुल-उपहार ,
सकत असत्य न भाखि मुख, टूटेउ विपति पहार ! १३७

तेहि क्षण चीर-बँधे हरि चाउर ,
अइँचे, भयेउ विप्र भय-बाउर ।
परसत ही काँपे अँग सारे ,
बहे देह ते स्वेद पनारे ।
कह हरि मंद मंद मुसकायी—
“देहु सखा ! हिय-सकुच विहायी ।
केवल पत्र, पुष्प, फल, वारी ,
अर्पत जो सभक्ति नर नारी ।
करत ग्रहण मैं नवनिधि मानी ,
कस सकुचत तुम अक्षत-दानी !”
अस कहि भरि मूठी यदुरायी ,
लीन्हे चाउर विहँसि चबायी ।
वरनत स्वाद, कहत—“अति मीठे ,
मिलत भवन नित तण्डुल सीठे !”
मूठी हरि जस भरी बहोरी ,
गहि कर रुक्मिणि कहेउ निहोरी—

दोहा :— “लहेउ विश्व-ऐश्वर्य द्विज, एकाहि मूठी माहि ,
केवल कमला त्यागि अब, शेष नाथ । कछु नाहि । १३८

तेहि निशि राखि सुदामहि धामा ,
सब विधि सुखी कीन्ह घनश्यामा ।
होत प्रात पहुँचावन काजू ,
गवने पुरउपान्त यदुराजू ।

प्रणमे सजल नयन हरिरायी ,
 दीन्हि विदा बहु विनय सुनार्या ।
 माँगेउ विप्र न कछु प्रभु पाहीं ,
 दीन्हेउ हरिहु हाथ धन नाहीं ।
 श्याम-सनेह शिथिल सब गाता ,
 सोचत विप्रहु मन पथ-जाता—
 चरण जासु चारिहु फल-दायक ,
 परसे मम पद तिन जग-नायक ,
 सेवत जाहि ऋद्धि-सिधि सारी ,
 तेहि रुक्मिणि मोहि कीन्हि बयारी ।
 धिक ! धिक ! नर अस प्रभु विसरायी ,
 देत भोग परि जन्म गँवायी ।

बोधा :— कीन्ह न भल जो मै मिलेउँ, धरि उर धन-अभिलाष ,
 कीन्ह परम उपकार प्रभु, पूजी जो नहि आस । १३६

यहि विधि सोचत भक्त सुदामा ,
 प्रीति-पूर्ण पहुँचेउ निज ग्रामा ।
 निरखि चतुर्दिक रंक अधीरा ,
 दृग-पथ परी न पर्ण-कुटीरा ।
 निरखी महल-अबलि तेहि ठामा ,
 हेम, रत्न, मणि-मय अभिरामा ।
 दिशि-दिशि मनहर उपवन नाना ,
 रम्य महीरुह, लता, विताना ।
 विहरत खग-कुल पादप शाखा ,
 मधुलिह सुमन-सुमन मधु चाखा ।
 विमल सरोवर बारि-पसारा ।
 कूजत वरट फुल कल्लारा ,
 रत्न-विभूषित घर " नर-नारी ,
 आवत जात द्वार रव भारी ।
 विभव विलोकि विभीत सुदामा ,
 पूछत फिरत—'कहाँ मम ग्रामा ?'

दोहा :— सहसा निरखी नारि निज, रमा-रूप अभिराम ,
कहति-“सखहि हरि दीन्ह सब, धान्य, धरा, धन, धाम ।” १४०

यहि विधि गमन-पूर्व भगवाना ,
कीन्ह सखहि निज सर्वस दाना ।
अद्धि सिद्धि यदुवंशिन केरी ,
गवनी द्विज-गृह श्रीहरि-प्रेरी ।
बढ़ी सुदामा-पुरी दिवस-निशि ,
अस्त द्वारकापुरी विभव-शशि ।
लागे अशकुन होन कराला ,
प्रविशहि पूजा-भवन शृंगाला ।
बोलहि निशि उलूक भयकारी ,
चलति अहर्निशि प्रबल बयारी ।
गुनि मन गमन-समय नियराना ,
यदुजन बोलि कहेउ भगवाना—
“अशुभ दिवस-निशि पुरी लखाहीं ,
उचित वास द्वारावति नाही ।
रवि-उपराग तिथिहु अब पासा ,
निवसहि हम सब जाय प्रभासा ।”

दोहा :— यहि विधि स्वजन बुझाय हरि, गये प्रभास लिवाय ,
सह कुटुम्ब यदुजन निखिल, बसे जलधि-तट जाय । १४१

निवसे हरिहु कुटी निर्मायी ,
मन प्रसन्न शुचि क्षेत्र नहायी ।
उग्रसेन, पितु, अग्रज साथ ,
मंगल-कृत्य-मग्न यदुनाथा ।
जननि देवकी, सब पटरानी ,
हरिहि अनुहरहि उर सुख मानी ।
होत होम, मख, पूजा, दाना ,
मुनत पुराण, धर्म-आख्याना ।
पढ़त मंत्र श्रुति द्विज मुनि नाना ,
व्याप्त दशहु दिशि पावन गाना ।

जलनिधि-जल, शुचि यज्ञ-हुताशन ,
महि, आकाश, प्रचण्ड प्रभंजन ।
सस्वर जनु श्रुति-गिरा सोहायी ,
रहे सलय पुनि पुनि दोहरायी ।
जदपि धर्म-मय तीर्थ प्रभासा ,
तजेउ न यदुजन विषय-विलासा ।

बोहा :— द्वारावति ते नित विपुल, लहि विलास-सुख-साज ,
नख-शिख बूड़े भोग-रस, तजि हरि-गुरुजन-लाज । १४२

क्षेत्र पवित्रहु विषय कराला ,
मदिरा, आमिष, असती बाला ।
जुरेउ नर्तकी नटन समाजू ,
विसरेउ धर्म, कर्म, जन-काजू ।
सागर-तट, वन, विपिन, पहारा ,
करत फिरत निशि-दिषस विहारा ।
पियहिं मद्य सब होइ लगायी ,
गावहिं हँसहिं गवाय हँसायी ।
नाचहिं मिलि तनु-दशा बिसारी ,
गिरि महि उठहिं, बजावहिं तारी ।
वनत द्विजन-हित लखि पकवाना ,
छीनि उपद्रव विरचहिं नाना ।
मैरेयक मिष्टान्न मिलायी ,
देहिं कौतुकी कपिन खवायी ।
विप्र-रोष लखि करि उपहासा ,
स्वाँग बनाय देहिं बहु त्रासा ।

बोहा :— व्याकुल देखि कुहृत्य सब, उद्भव अति मतिमान ,
गहि पद पूछेउ-“काह अब, करन चाहत भगवान । १४३

दिशि-दिशि छाय रहेउ यह जनरव ,
द्वारावति कर सब धन-वैभव ,

यदुजन निरखि पाप-पथ-गामी ,
 दीन्ह सुदामा विप्रहिं स्वामी ।
 दीन्ह सुबल-तनया जो शापा ,
 तासु प्रभाव वंश भरि व्यापा ।
 सकहु नाथ ! तुम अशुभ मिटायी ,
 बिनवहुँ करहु दया यदुरायी !
 पापिहु जो ये यदुजन सारे ,
 तुम इनके, ये नाथ ! तुम्हारे ।
 रच्छे तुमहि नेह करि वर्षण ,
 आजहु तुमहि सकत करि रक्षण ।
 पै जो कछु औरहि मन ठाना ,
 मैं चिर दास चहत सोउ जाना ।
 मोरहु धर्म कहहु मोहिं पाहीं ,
 तजि स्वामिहिं सेवक-गति नाहीं ।”

दोहा :— लखि जन-दुख, पुनि मन सुमिरि, आजीवन अनुराग ,
 भाषेउ हरि, उद्धव-हृदय, प्रकटत ज्ञान विराग—१४४

“त्यागहु उद्धव ! उर-पछितावा ,
 तुम मम भक्त, न मोहिं दुरावा ।
 पाय धर्म साक्षात नरेशा ,
 आजु धर्म-मय मही अशेषा ।
 उदित देश-नभ धर्म-मर्यादा ,
 तेहि महुँ यह यदुवंश कलंका ।
 जरासंध-सम ये अभिमानी ,
 दुर्योधन-सम खल, अज्ञानी ।
 भौमासुर सम ये सब क्रूरा ,
 प्राणि-विनाशन हेतुहि शूरा ।
 चेदिनाथ-सम कुमति, अभागी ,
 बुद्धि छिद्र-अन्वेषण लागी ।
 कालयवन-सम पर-धन-भूखे ,
 शाल्व-सदृश नेहिहु सँग रूखे ।

अब लगि जे मैं शठ संहारे,
तिन ते अधिक अधी ये सारे !

बोद्धा :— गही आसुरी वृत्ति इन, रहेउ विश्व भय खाय,
रखहुँ जो मैं गुनि स्वजन, मम समभाव नसाय ! १४५

औरहु कहहुँ रहस्य अनूपा,
ये यदुजन सुर मनुज-स्वरूपा ।
अमरन-सुकृत होत जब क्षीणा,
जन्मत महि मम मायाधीना ।
कर्मभूमि यह देश विचारी,
हृदय मुसुख-भावना धारी,
जन्मे मम सँग ये सब सुरगण,
कीन्ह न तदपि पुण्य नव अर्जन ।
सहजहि अमर विषय-अनुरागी,
सके स्वभाव यहहुँ नहिँ त्यागी ।
अवनि जन्म निज व्यर्थ गँवायी,
बसिहैं अमरावति पछितायी ।
इन देवन ते नर वे नीके,
सम सुख दुःख रहत उर जिनके ।
तिनहिँ माहिँ मम भक्त सुदामा,
अन्नहु-हीन तबहुँ निष्कामा ।

बोद्धा :— लहिँ जो द्वारावति-विभव, सुरहु भये अनुरक्त,
निर्विकार भोगत सकल, सोइ सुदामा भक्त ! १४६

बिनसत जिमि संघर्ष वेणु-वन,
नसिहैं तिमि गृह-विग्रह यदुजन ।
पुरिहु, एक - मम रोह विहायी,
लहिहैं शयन जलधि-तल जायी ।
गवने गोपहु सब मम धामा,
मोरहु अब न अवनि-तल कामा ।

पूछत तात ! धर्म निज काहा,
 भरि जीवन तुम जाहि निबाहा ।
 एकहि अन्तिम मम आदेशा,
 तजहु अबहि आनर्त प्रदेशा ।
 'बदरी' नाम धाम मम पावन,
 तुहिन-शैल थित, सहज सोहावन ।
 तहाँ जाय, आश्रम निर्मायी,
 भजहु तात ! मोहिं चित्त दृढ़ायी ।
 अंत त्यागि तनु तुम निष्कामा,
 मिलिहौ आय मोहिं मम धामा ।”

दोहा :— सुने सुमति उद्धव वचन, शून्य सकल जग लाग ,
 वारि-धार नयनन बही, रोम रोम अनुराग । १४७

गहि पदाब्ज उद्धव अकुलायी,
 पुनि पुनि बिलखत विनय सुनायी—
 “तुम विभु, सर्व-सहाय, शुभंकर,
 कस असहाय तजत अस किंकर ?
 करहु न दर्शन-वंचित देवा !
 याचत दास अंत लगि सेवा ।”
 सुनि विनती हरि-हृदय विहाला,
 तजेउ न आग्रह तबहुँ कृपाला ।
 चहत शाप ते भक्त बचावा,
 लखि प्रभु-हठ सेवक शिर नावा ।
 कीन्ह सचित्र उत्तर प्रस्थाना,
 इत यदुजन पापहु अधिकाना ।
 लागे करन आश्रमन धावा,
 रचि नव कौतुक मुनिन खिभावा ।
 रोष अपार ऋषिन उर व्यापा,
 दीन्हेउ वंश-विनाशन शापा ।

दोहा :— विकल शाप-संवाद सुनि, उग्रसेन महिपाल ,
 विहँसे लीलाधाम मून, लखि नर्तत शिर काल । १४८

आयेउ ग्रहण-दिवस भय-दायक ,
 क्रम-क्रम असेउ राहु दिननायक ।
 उमहे पुरजन, जनपद-वासी ,
 जुरी प्रभास विपुल जन-राशी ।
 भोजन-पान मनुज विसराये ,
 लखत व्योम दिशि दृष्टि लगाये ।
 जनु निज सुहृदहिं कोउ पछारी ,
 रहेउ क्रूर हठि प्राण निकारी ।
 करुणा-विकल समाज सशंका ,
 उर अव्यक्त व्याप्त आशंका ।
 भयेउ पूर्ण जेहि क्षण खग्रासा ,
 तम-मय क्षिति, वारिधि, आकाशा ।
 व्याकुल निखिल प्राणि-समुदायी ,
 जलनिधि लुब्ध उठेउ घहरायी !
 दिवसहु तारक गंगन दिखाने ,
 लखि संध्या खग नीड़ छिपाने ।

दोहा :— मयेउ दृश्य औरहि बहुरि, लहेउ सुयोग दिनेश ,
 क्रम-क्रम मण्डल पुनि विमल, वसुधहु विरहित क्लेश । १४६

शुचिस्नान पुनि प्रमुदित जन-मन ,
 कीन्हेउ हरिहु वारिनिधि मज्जन ।
 दै द्विज-याचक-वृन्दन दाना ,
 प्रविशे निज कुटीर भगवाना ।
 इत यदुजनहु निवृत्त निमज्जन ,
 तरु-तल जुरे करत मिलि भोजन ।
 खाये षटरस व्यंजन नाना ,
 मैरेयक-मिश्रित पकवाना ,
 तीर्थ-तिथिहु-मर्याद विहायी ,
 जुरेउ पान हित पुनि समुदायी ।
 पियत चषक अगणित मनचीते ,
 भये पान-भाजन बहु रीते ।

व्यापेड अँग अँग मद्य-विकारा ,
पाटल वदन, लोल दृग तारा ।
अवयव शिथिल, विश्रुखल वाणी ,
स्रस्त आभरण, संवृति हानी ।

बोद्धा :— प्रथम हास, उपहास पुनि, व्यंग बहुरि आरोप ,
प्रथम शिशुन, पुनि वृद्धजन, कीन्ह विवाद सकोप । १५०

वरनत निज निज शौर्य अभागे ,
एकहिं एक प्रचारन लागे ।
कुरुक्षेत्र रण-महि निज करनी ,
खड्ग-हस्त कृतवर्मा वरनी ।
सहि न सकेउ सुनि साम्ब कुमारा ,
कहि 'अभिमन्यु-वधिक' धिक्कारा ।
काँपि सुनि कृतवर्मा-गाता ,
कीन्ह कुँवर पै असि-आघाता ।
लखि धाये युयुधान अमर्षण ,
सायुध कीन्ह साम्ब-संरक्षण ।
चिर अरि निज भोजेश निहारा ,
कण्ठ मदश्लथ वचन उचारा—
“तुम रण सोमदत्त-अँगजाता ,
द्विज-हस्त, रण-विरत निपाता ।
लागत अघ लखि मुखहु तुम्हारा ,
होहु न मम सन्मुख हत्यारा !”

बोद्धा :— असि निस्कोषी सात्यकिहु, अक्षर सुनत कठोर ,
“विरमु! विरमु! धर्मज्ञ !” कहि, बढे हृदिक-सुत ओर— १५१

“किये कुरुत्य नित्य नव पापी !
कबहुँ न लाज हृदय तव व्यापी ।
लोभ स्यमंतक मणि उर धारी ,
शतधन्वा निज बंधु हँकारी ,

सत्राजितहिं नीच ! बधवावा ,
हरिहु-चरित्र कलंक लगावा ।
बनि पुनि दुर्मति ! कुरुपति-दासा ,
पामर ! यदुकुल-ऐक्य विनासा ।
कुरुक्षेत्र-महि धर्म विहायी ,
लीन्ह अधर्म-पक्ष खल ! जायी ।
स्वजन-शिशुहु अभिमन्यु कुमारा ,
तजि रण-नीति निरख सँहारा ।
पाण्डव-शिविर दस्यु ! निशि जारे ,
शिशु अबोध निद्रित संहारे ।
अघ-घट भरेउ आजु शठ ! तोरा ,
सँभरु अधम ! लखु भुज-बल मोरा !”

दोहा :— गर्जेउ कृतवर्माहु समद, बहेउ सात्यकी-हाथ ,
पतित कतहुँ तनु, कहूँ पतित, छिन्न भोजपति-माथ । १५२

लखि कृतवर्मा-निधन कराला ,
धधकी भोजवंश रिस-ज्वाला ।
लै अंधकवंशिन-समुदायी ,
घेरेउ सब युयुधानहि धायी ।
बढ़ि दीन्हेउ प्रद्युम्न सहारा ,
वृष्णिजनहु कर शस्त्र सँभारा ।
अगणित खड्ग उठे इक साथ ,
दिशि दिशि गिरे छिन्न भट-माथा ।
विषधर-जव शस्त्रास्त्र भयंकर ,
बरसे मृत्यु-जिह्व प्रलयंकर ।
भोजान्धक संरब्ध आक्रमण ,
सके सँभारि न स्वल्प वृष्णिजन ।
पतित निहत महितल युयुधाना ,
गद, प्रद्युम्न, साम्ब-अवसाना !
माधव - हलधर - पुत्र - पौत्रगण ,
एक एक सब गिरे रणाङ्गण ।

दोहा :— पुनि रामहिं घेरेउ अधिन, सुनि आये हरि आप ,
साम्य वदन, अतरल नयन, अंतस्तल निस्ताप । १५३

कहि मृदु वचन चहेउ समुभावन—
“उचित न वंश समूल नसावन ।
कीन्ह न कछु संकर्षण दोष ,
करत व्यर्थ कत इन पै रोष ?”
सुनेउ न अधमन मद-मतवारे ,
रक्त-पिपासु मनहुँ वृक सारे ।
काल-पक्क, गुनि हरिहुँ अराती ,
बढ़े उदायुध आत्म-विघाती ।
अब लागि समर-विरत संकर्षण ,
लखेउ होत हरि पै शर-वर्षण ।
लागी रोम रोम रिस-आगी ,
सोवत सिंह उठेउ जनु जागी ।
कर्षि कर्षि हल मुसल-प्रहारा ,
लहेउ जहाँ जेहि तहँ संहारा ।
श्यामहु सती-शाप सन्माना ,
सोहे कमल-करन धनु-बाणा ।

दोहा :— निमिषहि भहँ बिनसेउ निखिल, आततायि-समुदाय ,
शेष न नर यदुवंश कोउ, हरि, हलि, वज्र विहाय । १५४

तजे विरक्त शस्त्र भगवाना ,
दारुक आय चरण लपटाना ।
सिक्त वसन दृग-सलिल प्रवाहा ,
क्रन्दत—“नाथ ! कीन्ह यह काहा ?
कुरुक्षेत्रहु ते भयदायी ,
यह यदुक्षेत्र निरखि नहिं जायी !”
पोंछत स्वफर दास-दृग-वारी ,
थिर स्वर श्रीहेरि गिरा उचारी—
“आत्म-द्रोह करि बिनसेउ यदुकुल ,
होइ तात ! नहिं तेहि हित व्याकुल ।

लीला शेष होति मम आजू,
सौपत तुमहिं जो अन्तिम काजू।
गजपुर ओर तात ! तुम धावहु,
पाण्डु-सुतन संवाद सुनावहु।
द्वारावती धनंजय आयी,
जाहिं वज्र-सह तियन लेवायी।

दोहा :— कहेउ धर्मजहिं तात ! यह, करहिं न मम-हित शोक,
पूर्ण सकल संकल्प मम, गवनेत समुद स्वलोक ।” १५५

सौम्य वदन हरि वचन सुनावा,
दारुक-शिर जनु वज्र गिरावा।
आजीवन संकेतहि पायी,
कीन्हीं धाय स्वामि-सेवकाई।
निश्चित आज्ञा, गुरुतम काजू,
परत न पद गजपुर-पथ आजू।
गलितस्मृति जनु मृत्यु-अधीना,
जनु अहि-दष्ट, विवेक-विहोना।
सेवक-दशा स्वामि पहिचानी,
भाषी भ्रान्ति-विनाशन वाणी—
“व्यापेउ तुमहिं कबहुँ नहिं मोहा,
आजहुँ तात ! अघैर्य न सोहा।
करहु काज सत्वर मम जायी,
तजि तनु मिलेहु लोक मम आयी।”
सुनि हरि-गिरा संयमित-पीरा,
गवनेउ सींचत पथ दृग-नीरा।

दोहा :— इत प्रभु खोजत अग्रजहि, पहुँचे जलनिधि-तीर,
अवलोकै तरु-मूल हलि, पद्मासन गम्भीर । १५६

लखि आवत निज दिशि घनश्यामा,
उठे भक्ति-विह्वल बलरामा।

अग्रज-उचित तजेउ आचारा,
 गिरे चरण-तल-तनु न सँभारा—
 “भक्त-दयिक प्रकटहु प्रभु ! दाया,
 हरहु वेगि दुस्तर निज माया।
 नर-तनु-सह दीन्हैउ मद माना,
 भरेउ हृदय मम कुल-अभिमाना।
 धर्मनृपहिं नहिं मैं पहिचाना,
 परि नित निज-पर-फेर भुलाना।
 आजुहि समुझि सकेउँ विश्वेशा !
 कृष्ण-जन्म-लीला, उद्देशा।
 धर्मराज-पथ यदुजन शूला,
 नासे तुम सोउ आजु समूला।

बोद्धा :— ‘त्यागे बिनु सर्वस्वकोउ, करि न सकत जन-काज’—

थापेउ उच्चादर्श तुम, जन-सेविन हित आज। १५७

सगर दीन्ह निज सुतहिं विहायी,
 राम प्रिया निज विपिन पठायी।
 परम त्याग जन-हेतु तुम्हारा,
 निज कुल निखिल स्वकर संहारा।
 दीन्ह नाथ-पद मैं बहु बाधा,
 गुनि जन आजु छमहु अपराधा।
 आत्म-प्रतीति मोहिं अब नाहीं,
 ताते करत विनय प्रभु पाहीं—
 जन्महुँ बहुरि जो महि प्रभु-साथा,
 होहुँ कबहुँ नहिं अग्रज नाथा !
 अनुजहि पद सोहत मोहिं स्वामी !
 रहन चहहुँ नित पद-अनुगामी।
 शेष भयेउ मम काज महीतल,
 आयसु देहु, बसहुँ पुनि निज थल।”
 विहँसत हरिहु दीन्ह अनुशासन,
 निबसे बहुरि राम पद्मासन।

दोहा :— ध्यान-मग्न मूँदत दृगन्, करि महि-अभिनय शेष ,
निमिषहिं महँ नर-मूर्ति तजि, कीन्ह स्वमूर्ति प्रवेश । १५८

यहि विधि बंधु पठै निज धामा ,
प्रविशे गहन विपिन घनश्यामा ।
जो जग आश्रय, रमा-निकेतन ,
विचरत वन-वन मनहुँ अकेतन ।
भटकत सुमिरि शाप श्रीरंगा ,
जनु नभ नीड़-विहीन विहंगा !
निरखि निकुञ्ज-पुञ्ज घन छाया ,
निवसे विटप-मूल तजि माया ।
जनु 'इति' करत कृष्ण-अवतारा ,
रूप चतुर्भुज प्रभु निज धारा ।
गदा-पद्म युग हस्त विराजत ,
सरसिज-शंख युगल कर राजत ।
नव वारिद-द्युति सुन्दर तनु की ,
चकृत होत चित्त अवलोकी ।
तेहि पै पीताम्बर-छवि छायी ,
मनहुँ नीलमणि हेम जड़ायी ।

दोहा :— शीश मुकुट, कुरङ्गल श्रवण, गर कौस्तुभ, उर माल ,
अलक सुशोभित शशि-वदन, हरत विश्व-तम-जाल । १५९

आनँद-मज्जित, धीर विलोचन ,
स्रवत सुधा भव-ताप विमोचन ।
वितरत मुखहिं मनोहरताई ,
मृदु मधुरस्मित अधर सोहायी ।
दक्षिण जानु वाम पद धारे ,
शयित श्याम अति 'शान्त' सुखारे ,
कानन शान्त, शान्त ज्ञान-प्राणी ,
विहगहु शान्त, शान्त हरि जानी ,
शान्त व्योम महि, शान्त बयारी ,
आनँद-शान्त सृष्टि जनु सारी !

सहसा वन मर्मर-स्वर छावा ,
दलत शुष्क पत्रन कोउ आवा ।
लखी दूरि कछु दीनदयाला ,
व्याध-मूर्ति जनु काल कराला ।
मृगयार्थी, हाथन धनु-बाणा ,
रहेउ निरखि पद-तल धरि ध्याना ।

बोद्धा :— कौतुक ही कीन्हैउ चपल, पाद-पद्म द्युतिमान ,
उपजायेउ लुब्धक-दृगन, मृग-विभ्रम भगवान । १६०

धारे धनुष व्याध शर त्यागा ,
धाय तड़ित गति पदतल लागा ।
लब्ध-लक्ष्य मन आनँद छावा ,
धाय व्याध श्रीहरि ढिग आवा ।
निरखि चतुर्भुज-नर भय माना ,
लखि पट पीत प्रभुहिं पहिचाना ।
उपजेउ हृदय विषाद अगाधा ,
परेउ चरणतल बिलखत व्याधा ।
बरसत दृगन बाष्पजल-धारा ,
“पाहि ! पाहि !” कहि प्रभुहिं पुकारा ।
निर्विकार हरि वधिक उठावा ,
“होहु अभय”—कहि कंठ लगावा ।
“तजन चहेहुँ मैं आजु शरीरा ,
तुम निमित्त, कत शोक-अधीरा ?”
वर्धित सुनत व्याध-उर तापा ,
रोम-रोम शोकानल व्यापा ।

बोद्धा :— त्यागेउ तत्क्षण व्याध तनु, प्रकटेउ दिव्य विमान ,
दीन्है स्वर्ग प्रमुदित हृदय, निज वधिकहि भगवान । १६१

निरखे हरि उद्धव तेहि काला ,
निज दिशि धावत विकल विहाला ।

जदपि बाण-आघात कराला ,
 रक्तस्त्राव महीतल लाला ।
 गुनि मन, भक्त निदेश न माना ,
 करि मृदु व्यंग हँसे भगवाना—
 “स्वेच्छाचारी यदुजन सारे ,
 उद्धव हू मम वचन विसारे !”
 सुनि परिहास सचिव अकुलाना ,
 चरणन गिरेउ, लखेउ नहिं बाणा—
 “छमहु अवज्ञा अन्तर्यामी !
 रहि न सकेउ सेवक बिनु स्वामी ।
 पितु वसुदेव नाथ-अनुरागी ,
 गवने विरह-विकल तनु त्यागी ।
 त्यागे उग्रसेन नृप प्राणा ,
 वचेउँ अधम मैं पाप-निधाना ।

दोहा :— बिनसेउ हरि-कुल हरि-अछत, महितल आजु समूल ,
 जाहुँ कहाँ ? केहि सन कहहुँ ? कहँ दुख-वारिधि-कूल ?” १६२

सोरठा :— अकस्मात खर बाण, विद्ध चरण उद्धव लखेउ—
 “चले तुमहु भगवान” ! कहत पतित महि भक्त वर !

दीन्ह धैर्य हरि, भक्त उठावा ,
 दुर्वासा-वर कहि समुभावा—
 “पायस मिस मोहिं देत असीसा ,
 चहेउ करन मोहिं अमर मुनीशा ।
 चरु मैं निज सर्वाङ्ग लगायी ,
 केवल पदतल दीन्ह विहायी ।
 परि पर्यङ्क घृणित अवसाना ,
 समर-मरण सम अन्त न आना ।
 मैं अजेय, तेहि सकेउँ न पायी ,
 कीन्ही आय किरात सहायी !
 लही मृत्यु मैं शित शर घोरा ,
 पुलक-प्रफुल्ल लखहु तनु मोरा !

उपजेउ तुमहिं मोह कस भारी ?
आपु दुखी, मोहिं करत दुखारी ।
तुमहिं तात ! अस मोह असोहन ,
जहँ अवतरण, तहाँ आरोहण !

दोहा :— मम लीला-आरंभ जिमि, निभृत कारागार ,
होत तासु अवसान तिमि, एकाकी कान्तर ।” १६३

सोरठा:—समुझावत अज्ञेय, निज गति भक्तहिं हरि जबहि ,
तपोमूर्ति मैत्रेय, निरखे आवत ताहि क्षण ।

बाण-प्रविद्ध तदपि जगवंदन ,
कीन्हेउ सादर मुनि अभिनंदन ।
गिरा मधुर धृति-धाम उचारी ,
हंस-मुखर जनु सुरसरि-वारी—
“गुनि मम अंत तपोबल-द्वारा ,
कीन्हि कृपा मुनिवर ! पगु धारा ।
तुम नाना विज्ञान-उजागर ,
सरि सहस्र पावन जिमि सागर ।
करुणाकर, प्रसाद-प्रासादा ,
दर्शन-मात्र हरत अवसादा ।”
सकुचे सुनि मुनि वचन उचारा—
“तुम विभु, मैं प्रभु ! भक्त तुम्हारा ।
करहु न माया-वश विश्वेशा !
आयेउँ सुनन स्वस्ति संदेशा ।
पै भव-मोहति मूर्ति तुम्हारी ,
निरखि शिथिल मम मति-गति सारी ।

दोहा :— अपर्याप्त गुनि नेत्र द्वय, निज व्यापार बिसारि ,
इन्द्रिय, मन, प्रति रोम मंस, रहेउ स्वरूप निहारि । १६४

श्रुति, बाणिहु गत लोचन साथा ,
पूछहि, सुनहि कवन अब नाथा !
प्रक्षानंद-मग्न मम प्राणा ,
सहसा सब संशय-अवसाना ।

तबहुँ अवहुँ जग संशय-शीला ,
 तुम करि रहे संवरण लीला ।
 भव-भय, भ्रान्ति, भेद-अपहारी ,
 होति तिरोहित मूर्ति तुम्हारी ।
 केवल नाथ-चरित, उपदेशा ,
 रहिहै वसुमति-तल अव शेषा ।
 संचित सोइ वर भक्तन-द्वारा ,
 हरिहै मनुज-हृदय-अधियारा ।
 चहत महुँ प्रभु ! पावन ज्ञाना ,
 वंचित करहु न मोहिं भगवाना !”
 सुनि विहँसे, भाषेउ भव-भोचन—
 “सुनहु सँदेश मँदि मुनि ! लोचन ।”

बोद्धा :—दृग-अलि कपि मुखान्ज ते, मूँदे मुनिहु हठात ,
 सुधा-शब्द प्रविशे श्रवण, भव-त्राता, अवदात— १६५

“संचय जेते जग मुनिनाथा ,
 छीजत सर्व काल-गति-साथा ।
 तनु-अनुराग मोहिं नहिं जैसे ,
 राग न वाचिक ज्ञानहु तैसे ।
 जेहि जेहि दिव्य दीन्ह मै ज्ञाना ,
 समुभेउ तेहि निज भाव समाना ।
 मम पाछेहु निज रुचि-अनुसारा ,
 करिहैं नर मम ज्ञान प्रसारा ।
 गिरि महितल जिमि सुरसरि-धारा ,
 होति मलिन लहि मही-विकारा ,
 ज्ञानहु तिमि परि मानव-श्रवणन ,
 करत सतत मानवता धारण ।
 शुद्ध ज्ञान इक ईशाहि माहीं ,
 लै-दै सकत ताहि नर नाहीं ।
 दूरि न, पै ईश्वर अति पासा ,
 उर उर मुनिवर ! तासु निवासा ।

दोहा :—मम पाछेहु जे मोहिं भजि, करिहैं अनुसंधान,
लहिहैं निज हिय माहिं मोहिं, मम सँग मम सब ज्ञान । १६६

भव-अतीत मम नित्य विभूती,
लहत न नर तेहि बिनु अनुभूती ।
भाव अर्चित्य मुनीश्वर ! जेते,
उचित न साधव तिनहिं तर्क ते ।
सकत न खग नभ-परे उड़ायी,
मतिहु न व्यक्त-परे तिमि जायी ।
सीमित नर, नर-बुद्धिहु-सीमा,
बुद्धि-परे मैं वसत असीमा ।
खोजत निज उर जे न अभागी,
मैं अज्ञेय तात ! तिन लागी ।
ध्यान-धारणा जिन हित व्याधी,
मानत जे पाखण्ड समाधी ।
स्वकर दिव्य दृग ते निज फोरी,
गवन्त भव-पथ लकुट टटोरी !
भटकत बोधचंचु भव माहीं,
उन्मुख कबहुँ होत मोहिं नाहीं ।

दोहा :—मन-इन्द्रिय-बल लहि सकत, जेतिक नर मम ज्ञान,
लहेउ तर्क-बल सब ऋपिन, प्रथमहि सृष्टि-विहान । १६७

इन्द्रिय-ग्राह्य निखिल संसारा,
तिन परिवर्तन-शील निहारा ।
चंचल सर्व वस्तु-व्यवहारा,
प्रतिपल भिन्न नाम-आकारा ।
जगत नाम-रूपहि-समुदायी,
परत नित्य नहिं कतहुँ लखायी ।
वै ज़िमि कंकण-नामाकारा,
संभव बिनु न स्वर्ण-आधारा,
नाम-रूप-मय तिमि समस्त भव,
बिनु सत्ता-साधन्य न संभव ।

मूल स्वरूप तासु अविकारी,
नाना रूप सकति पै धारी।
सोइ कहूँ घट, कहूँ पट-आकारा,
तत्त्व एक, बहु रूप पसारा।
मानिं चरहिं यहि भाँति प्रमाणा,
अक्षर तत्त्व ऋषिन अनुमाना।

बोधा:— गुनी जदपि निज तर्क-बल, तिन सत्ता अविकार,
सके न लहि प्रत्यक्ष पै, कहूँ तेहि रहित विकार। १६८

व्याप्त जदपि सो संसृति माहीं,
बिनु अपाय-आगम कहूँ नाहीं।
आविर्भाव-उपकरण जेते,
तिरोभाव-साधनहूँ तेते !
सृष्टि चराचर जब सब छानी,
सके न मूल बीज ऋषि जानी,
त्यागि बाह्य तब वस्तु-निकाया,
खोजी तिन सजीव निज काया।
आपुहि मँहँ तिन 'मैं' जो पावा,
गुनेउ तर्क-बल तासु स्वभावा।
जानि दशेन्द्रिय मन-अनुगामी,
समुक्तेउ मनहि प्रथम तनु-स्वामी।
पुनि सुषुप्त तनु माहिं निहारा,
मनहु श्रान्त, विरहित-व्यापारा।
गुनि 'मैं' तबहुँ सजग, सज्ञाना,
मन ते भिन्न ताहि अनुमाना।

बोधा:— करत देह-मानस-क्रिया, 'मैं' ही एकाकार,
पल-पल बदलत देह मन, 'मैं' ही इक अविकार। १६९

देह-क्षेत्र संचालक ये ही,
'मैं' क्षेत्रज्ञ, क्षेत्रपति, देही।

जगत दृश्य, 'मैं' देखनहारा,
 ज्ञाता यहहि, ज्ञेय संसारा ।
 'मैं'—हित व्यर्थ तर्क, अनुमाना,
 स्वयंसिद्ध, साक्षात् प्रमाणा ।
 तजि यह 'मैं' यहि संसृति माहीं,
 अनुभव-गम्य ब्रह्म कहूँ नाहीं ।
 यहि विधि आपुहि महुँ 'मैं' रूपा,
 चीन्हेउ ऋषिन चिदात्म स्वरूपा ।
 ब्रह्माण्डहु महुँ पिण्ड समाना,
 तिन सर्वत्र ताहि पहिचाना ।
 निरखेउ जेहि दिशि दृष्टि उठायी,
 प्रकृति निखिल तेहि-मय तिन पायी ।
 गाढ़ आवरण छादित भावा,
 पै न जड़हु महुँ तासु अभावा ।

श्लोकाः—अयसहु महुँ संवेदना, कर्षण चुंबक माहि,
 विरहित संवेद वस्तु कहूँ, यहि संसृति महुँ नाहि । १७०

विकसत बनि रस औषधि सोई,
 जंगम माहि प्राण सोई होई ।
 अंध-प्रतीतिहि पै इन पासा,
 आत्म-रक्षणहि इक अभिलाषा ।
 नहि विज्ञात लखत ये प्राणी,
 बोलत ये विज्ञात न वाणी ।
 मनुजहि माहि विशेष विकासा,
 स्वयंवेद्य प्रज्ञा तेहि पासा ।
 बोलत, श्वसत, लखत विज्ञाता,
 प्रज्ञा-बल निज भाग्य-विधाता ।
 सुप्त जो सत्ता जड़ महुँ होई,
 जाग्रत कछु औषधि महुँ जोई ।
 पशु महुँ जो चर, पै अविचारी,
 नर महुँ आपुहि चीन्हनहारी ।

एकहि ध्येय मनहुँ भव तासू—
बुद्धि स्वयंसंवेद्य विकासू ।

दोहा :— पूर्ण स्वयंसंवेद्यता, पै मनुजहु महुँ नाहि ,
निम्न योनि-अनुभव अबहुँ, लिपटे तन-मन माहि । १७१

जदपि जड़ात्मक तम गुण स्वल्पा ,
नर महुँ पशु-गुण रजहि अनल्पा ।
बिनसेउ जस जस तम-अज्ञाना ,
बाढ़ेउ रज-सँग राग महाना ।
तिर्यक महुँ जो जुधा-पिपासा ,
बढ़ि नर महुँ सोइ भोग-विलासा ।
स्वयंवेद्य प्रज्ञा तेहि केरी ,
त्यागि चिदात्म वासना-चेरी ।
मति अशुद्ध निज गुनि यहि भाँती ,
समुक्ति वासनहि ज्ञान-अराती ,
त्यागे ऋषिन तर्क, अनुमाना ,
शोधी बुद्धि पंथ गहि नाना ।
भव-निबद्ध निज आत्मा जानी ,
मुक्तिहि चरम सिद्धि तिन मानी ।
उपजी प्रबल नित्य-जिज्ञासा ,
भूले भंगुर भोग-विलासा ।

दोहा :— खोजत स्वाती-बूँद जो, रटि रटि निशि-दिन पीव ,
होत कि चातक तृप्त सो, लहि जल-धार असीव ? १७२

निग्रह-पंथ ऋषिन अपनावा ,
ताहि परम पुरुषार्थ बतावा ।
इन्द्रिय-वेग निरखि अग्नि घोरा ,
साधे तिन व्रत-नियम कठोरा ।
जस जस विषयन मन भरमावा ,
हठि तिन सबन समूल सुखावा ।

पुनि परिपंथि भवहि लखि सारा ,
मानि त्याज्य तिन ताहि बिसारा ।
साग्रह इन्द्रिय जीतन लागी ,
बसे गहन वन स्वजनन त्यागी ।
अंतःकरण विराग प्रभावा ,
भयेउं विमल लहि सत गुण भावा ।
आत्म-ज्योति हृत्पद्म प्रकासी ,
लहेउ ऋषिन मोहि अन्तर्वासी ।
जल ते विलग वीचि जिमि नाहीं ,
लखेउ भवहु तिन तिमि मोहि माहीं ।

दोहा :— अनुभव निज बरने बहुरि, ऋषिन अनेक प्रकार ,
सोइ श्रुति, आस-प्रमाण सोइ, सोई ब्रह्म-विचार । १७३

पै मुनीश ! मैं भाष्य-अतीता ,
सकत न ऋषिहु गाय मम गीता !
गुनि मोहि बाँधि सकति नहि वाणी ,
धारत मौन 'नेति' कहि ज्ञानी ।
आंशिक सत्यहि शास्त्रन माहीं ,
प्रवचन-लभ्य तात ! मैं नाहीं ।
ताते सब श्रुति, शास्त्र, पुराणा ,
स्वल्प सहाय प्रदीप समाना ।
स्वानुभूति आदित्य-प्रकाशा ,
तेहि बिनु नहि भ्रम-तिमिर बिनासा ।
स्वप्नहु जो मुनीश ! संसारा ,
तेहि-हित सत्य जो देखनहारा ।
दूटत जागे निजहि स्वप्न-क्रम ,
पर-प्रबोध बिनसत नहि विभ्रम !
निज यत्नहि निज-हित फल-दायक ,
आत्म-प्रतीतिहि मोक्ष-प्रदायक ।

दोहा :— श्रेयद पूर्णहु सत्य नहि, जो केवल उपदिष्ट ,
निज अनुभव-उपलब्ध-जो, सत्य-अंश ह इष्ट ! १७४

अन्तिम निष्ठा निर्गुण-ज्ञाना ,
 लहि तेहि लहत मनुज निर्वाणा ।
 पै सहसा भव हर्य विहायी ,
 सकत न नर अलखहि अपनायी ।
 निर्मम मानव-उर मुनि ! नाहीं ,
 बुद्धिहु दिग्ध हृदय-द्रव माहीं ।
 कामहि यह मानव साकारा ,
 रंगे कामना सर्व विचारा ।
 निखिल मानुषिक ज्ञान सकामा ,
 श्रद्धहु तीव्र कामना-नामा ।
 हृदय-कामना नहिं जेहि माहीं ,
 उपजति श्रद्धा तेहि महुं नाहीं ।
 मतहि-मात्र मुनिवर ! नहिं ज्ञाना ,
 प्रविशत सो नर-तन-मन-प्राणा ।
 जब लागि हृदय न. उत्कट एषण ,
 करत न मानव मम अन्वेषण ।

बोद्धा :— आरंभहि ते गहि अलख, सके कछुहि मोहिं पाय ,
 बढ़त अमित नर ध्येय दिशि, निज प्रकृतिहिं अपनाय । १७५

बिनु आधार कामनहु नाहीं ,
 सो मम माया, बस मोहिं माहीं ।
 सृजन-पूर्व एकत्व विहायी ,
 चहहुं होन मैं बहु मुनिरायी !
 यह मम आदिकामना जोई ,
 जीव-कामना-उद्गम सोई ।
 मोरहि अंश जीव यह जैसे ,
 मोरिहि तासु कामनहु तैसे ।
 लीलहि-हित यह मम अभिलाषा ,
 आपु बँधहुं निज माया-पाशा ।
 पै इतनिहि मम लीला नाहीं ,
 बंध-संग मुक्तिहु तेहि माहीं ।

करि आपुहि भव माहिं अनेका ,
चहँ बहोरि होन मैं एका ।
बाँधति मोहिं जो मम अभिलाषा ,
सोई करति छिन्न पुनि पाशा ।

बोद्धा :— होति मुनीश्वर ! बंध सँग, निहित मुक्ति जो नाहि ,
महँ सच्चिदानंद तौ, रहत जड़हि भव माहि । १७६

बंधहि हेतु जगत जिन माना ,
तिन लीला-रहस्य नहि जाना ।
पतन-हेतु नहि सृष्टि-कहानी ,
उपजत उत्थानहि-हित प्राणी ।
हर्ष-हुलास जो अचिर लखाहीं ,
दुख-अवसादहु तौ चिर नाहीं ।
निरवधि होत जो दुख-विस्तारा ,
जियन चहत को यहि संसारा ?
होत असीम जो विषयानंदा ,
चहत जीव को ब्रह्मानंदा ?
होत असीमित दोउ पथ-बाधक ,
सीमित दोउ परम हित-साधक ।
जो कछु जगत अपूर्ण लखायी ,
रहेउ पूर्णता-दिशि सब जायी ।
होत दृष्टिगत योनि जो नाना ,
सकल पूर्णता-पथ-सोपाना ।

बोद्धा :— अधकारिणि नहि कामना, अधकर मार्ग-विराम ,
लहि वस्तुहि भोगन चहत, सोइ यथार्थ सकाम ! १७७

नाहि कामना महँ अध-बासा ,
अध तहँ जहाँ भोग-अभिलाषा ।
सदा कामना नरहि बढ़ावति ,
भोग-भावना पथ बिरमावति ।

भोगत जे कछु पाय सुखारी,
 देत अचिर-हित चिरहि बिसारी,
 करत ते सीमित नर निज एषण,
 थमत तहँहि मोरहु अन्वेषण ।
 बिनसति वस्तु रुके जेहि लागी,
 धधकति हृदय वियोगज आगी ।
 शोकानल-विशुद्ध मम ओरी,
 भोग-भार बिनु बढ़त बहोरी ।
 यहिविधि गिरि-उठि, सुख-दुख पायी,
 मम दिशि जात जीव—समुदायी ।
 नृप ययाति सम थिरहु जासु सुख,
 ऊबि होत सोऊ मम उन्मुख ।

श्लोका :— प्रेरति पुनि तेहि कामना, आपु जीव उकताय,
 तजि चर्वित-चर्वण विरस, बढ़त मुक्ति-पथ धाय । १७८

बिनसत विषय, कामना रहई,
 अमर सो जब लागि मोहि नहि लहई ।
 जेहि मुनि ! समुक्ति मर्म यह पावा,
 करि तप सो नहि ताहि सुखावा ।
 सूखत तनु, इन्द्रिय मुरझाहीं,
 विषयन भोगि सकहि ते नाहीं ।
 रूढ़ कामना पै मुनिनाथा !
 सूखत नहि तन-इन्द्रिय-साथा ।
 रोधब हठ इन्द्रिय-समुदायी,
 प्राण-त्याग ते बढ़ि दुखदायी ।
 निग्रह-पथ मुनीश ! कठोरा,
 लागत प्राकृत मनुजहि धोरा ।
 प्रेयहि दिशि मानव-मन धावत,
 संतत करि प्रयत्न तेहि पावत ।
 श्रेयहु जबहि प्रेय सम भासत,
 नर सकास तेहि तबहि उपासत ।

बोद्धा :— होत सत्य जब सुन्दरहु, शिवहु देत आनंद,
बिनु उपदेशहि तब तिनाह, ध्यावत मानव-वृंद । १७६

मैं मुनीश ! जिमि जलनिधि-नीरा,
कतहुँ स्वल्प, कहुँ अति गंभीरा ।
कहुँ जल-जीवहु थाह न पायी,
क्रीड़त कतहुँ बाल-समुदायी ।
तिमि निर्गुण-ज्ञानिहु-हित दुर्गम,
ग्राह्य-विमूढ़हु सगुण भूति मम ।
आरंभत जैसेहि मैं सिरजन,
होत सगुण मैं आपु ताहि क्षण ।
'कर्त्ता'-गुण मैं लहत मुनीशा !
उपजत जगत-संग जगदीशा ।
बंधत प्रथम मैं आपु विधाता,
विरचत जीव-बंध पश्चाता !
विश्रुत यह मम आदि विसर्गा,
याही ते उपजत सब सर्गा ।
सृजन-यज्ञ यह मोर कहावा,
'पुरुष-सूक्त' महँ श्रुति जेहि गावा ।

बोद्धा :— भिन्न नाहि निसंद ते, यथा पवन सस्पंद,
निर्गुण ते तिमि भिन्न नहि, सगुण सच्चिदानंद । १८०

सगुण-समष्टि कहावत ईश्वर,
तासु व्यष्टि ही जीव मुनीश्वर !
जब लागि अहंकार अभिमाना,
निज ईशत्व जीव नहि जाना ।
अब्धि असीमित विहरनहारी,
जाल-बद्ध जिमि मीन दुखारी,
तिमि यह जीव सच्चिदानंद,
आपु निबद्ध अहंकृति-फंदा ।
श्रेष्ठ मुक्ति-पथ सोइ मुनिरायी !
सकहि जो 'अह' समूल नसायी ।

जे संन्यास-मार्ग अनुसरहीं ,
सर्वस जदपि त्याग निज करहीं ,
सर्व-त्याग कर कर्ता जोई ,
तजि नहिं जाति अहंकृति सोई ।
पै जो भक्ति-पंथ पगु धारत ,
आरंभहि ते 'अहं' बिसारत ।

दोहा :— आत्म-नुवृत्ता तूत जो, आपुहि महँ अनुरक्त ,
होत मुनीश ! न अस मनुज, कबहुँ काहु कर भक्त । १८२

ताहि अभावहु जो निज भासा ,
द्वेषत तेहि जेहि माहिं विकासा ।
सकत न वितथ अहम्मति त्यागी ,
नीच न कबहुँ काहु अनुरागी !
जहाँ 'अहं' तहँ भक्ति-अभावा ,
सकत न रहि इक सँग दोउ भावा ।
पै विलोकि-सुनि अन्य-विभूती ,
करत जो उर आनँद-अनुभूती ,
प्रगति-शील सोइ 'अहं' विद्वयी ,
सहत आपु तेहि आढ्य-रिभायी ।
होत ताहि सम सोउ तेहि पाये ,
भक्त उपास्य एक श्रुति गाये ।
घटाकाश तजि घट मुनिरायी !
महाकाश जिमि जात समायी ।
मम भक्तहु तिमि 'अहं'-विहीना ,
निश्चित होत अंत मोहिं लीना ।

दोहा :— जीवहि बंदीगेह यह, अहमेवाहि भयकार ,
देति मुक्ति मम भक्ति ही, काराद्वार उधार । १८३

प्रकटि काष्ठ ते जिमि अंगारा ,
करत जराय काठ सोइ छारा ।

राग-प्रसूत तथा मम भक्ती,
 नासति सर्व राग-आसक्ती।
 तप-क्लेशहिं मम भक्त न जाना,
 शोषत देह न रोधत प्राणा।
 लहि रसनिधि मोहिं इन्द्रिय सारी,
 निज निज विषय बिसारि सुखारी।
 जिमि अलि कल्पवलि-रस पायी,
 अन्य प्रसून-समीप न जायी,
 भक्ति-सुधा तैसेहि लहि मोरी,
 जात विषय ढिग मन न बहोरी।
 शोभित नर-जीवन मोहिं पायी,
 शशि-भासित जिमि धरणि सोहायी।
 जिमि तिय करति धान्य-रखवारी,
 सस्वर गाय बजावति तारी,

दोहा :— विहग उड़ावति, संग सँग, लहति गीत-आनंद,
 लहत भक्त तिमि प्रेय-सँग, श्रेय सच्चिदानंद ! १८३

सर्व-सुलभ मुनिवर ! यह साधन,
 करत तिर्यकहु मम आराधन।
 विश्रुत लै मम नाम उदारा,
 ग्राह-ग्रस्त गज मोहिं पुकारा।
 जदपि अबूझ भक्ति तेहि केरी,
 सुनी विनय मैं कीन्हि न देरी।
 आर्त भक्त ये जानहु मोरे,
 नर-योनिहु महुँ अस नहिं थोरे।
 तमोगुणहिं जिन माहिं विशेषा,
 सुमिरत ते न परे बिनु क्लेशा।
 तदपि नरन • महुँ रजहि प्रधाना,
 अर्थी भक्तहि • तिन महुँ नाना।
 लहत सत्व जेहि माहिं विकासू,
 होत भक्त मम सोइ जिज्ञासू।

ज्ञानहु लहि जो तजत न पूजा ,
ज्ञानि भक्त सो, तस नहि दूजा ।

बोद्धा :— बरने यद्यपि भक्त निज, मैं मुनिवर विधि चारि ,
ज्ञानहु तितनेहि भेद पै, जितने जग नर नारि । १८४

मति-विभेद जिमि जगत अपारा ,
तिमि अनंत मम भक्त-प्रकारा ।
संतत निज-निज मत अनुरूपा ,
पूजत मनुज मोहिं बहु रूपा ।
एकहु वस्तु व्योम महि नाही ,
नर न निरूपत मोहिं जेहि माहीं ।
नाना विधि मम पूजन ध्याना ,
देश-देश युग-युग महँ आना ।
शब्दन निर्गुण मोहिं बखानी ,
लेत समुक्ति आपुहिं जे ज्ञानी ,
मम अनुभूति-रहित मति जिनकी ,
निदरत तेइ अस भक्ति कुतरकी ।
प्रवचन-मात्र न जिन मोहिं जाना ,
जिन हित मैं सुख, शम, कल्याणा ,
अनुभूतिहि जे मानत साधन ,
ते आदरत सर्व आराधन ।

बोद्धा :— सर्व वस्तु महँ व्यास मुनि ! मैं आकाश समान ,
ताते पूजत भक्त मोहि, पूजत हू पाषाण । १८५

एक अनल : उद्गम-अनुहारी ,
होत यथा ज्वाला, चिनगारी ,
तिमि अनुहरि नर-धृति-विषमता ,
मोहिं उपास्य महँ दिखति विविधता ।
जिमि दृग ग्रहत दुग्ध-धवलार्ई ,
त्वक् शैत्य, रसना मधुरार्ई ,

तिमि नर सर्व विभिन्न स्वभावा ,
लखत एक मोहिं महँ बहु भावा ।
महँ प्रतीक गौण करि माना ,
रहत भावनहि माहिं लोभाना ।
मम-हित मुनि ! नहिं ठाम कुठामा ,
भक्त बोलावत तहँ मम धामा ।
जबहिं हिरण्यकशिपु नरनाहा ,
अवसादन प्रह्लादहिं चाहा ,
खंभहिं मुनि भक्त-पुकारा ,
प्रकटि दैत्यपति संहारा ।

बोधा :— लघु ते लघुहु प्रतीक महँ, निहित सदा जगदीश ,
छिपेउ सिन्धु जल-विन्दु महँ, रज-कण माहि गिरीश । १८६

जिमि लै काँकर आकृति नाना ,
शिशुहिं करावत अक्षर-ज्ञाना ,
करन हेतु तिमि मम अभ्यासू ,
ये प्रतीक आरंभ-प्रयासू ।
मैं सर्वत्र, प्रतीकहु माहीं ,
ताते असत सोउ मुनि ! नाहीं ।
वै समुक्त जो अस मुनिरायी !
मैं नहिं अनत प्रतीक-विहायी ,
मोहिं प्रतीक-मात्र जो माना ,
सोइ तेहि माहिं असत, अज्ञाना ।
वै अस भक्तहु चिर मोहिं राँचा ,
क्रम-क्रम लहत ज्ञान मम साँचा ।
सत्य अंध-भक्तिहु कल्याणी ,
यहि पथ पाखण्डहिं सहँ हानी ।
पूजा जासु बाह्य आडंबर ,
सोई प्रगति-शील नहिं मुनिवर !

बोधा :— होत दंभ तं औरह, घनीभूत अज्ञान ,
शीत-अधिकता ते सैलिल, जिमि जमि हिम-पाषाण । १८७

पै उर जासु भक्ति मम निश्चल ,
 अहं-रहित, जेहि केवल मम बल ,
 होत सो ज्ञान-पात्र नर तैसे ,
 बीज-योग्य मृदु धरणी जैसे ।
 करति भक्ति मम विमल तासु बुधि ,
 जिमि जल कलुष निर्मली औषधि ,
 स्वर्णकार लै अनगढ़ सुबरन ,
 निर्मावत जिमि सुभग आभरण ,
 करि तिमि अंध भक्ति परिशोधा ,
 भक्तहि देहु प्रदीपित बोधा ।
 बाहर ते नहि मैं कछु लावत ,
 जो तेहि माहि सोइ विकसावत ।
 असतहु जो कछु तेहि महुँ होऊ ,
 लहि मम परस होत सत सोऊ ।
 मल-आवरण भक्त मन जेते ,
 नासहुँ एक-एक करि तेते ।

दोहा:— परति विमल जलनिधि-सलिल, आपुहि जिमि रवि-ज्योति ,
 भक्ति-विमल उर तिमि उदित, आपु ज्ञान-श्री होति । १८८
 प्रथम प्रतीकहि माँहि जेहि, समुझेउ निज भगवान ,
 करत अंत सोइ भक्त मम, विश्व-रूप कर ध्यान । १८९

‘अहं’ काढ़ि यहि भाँति पँवारा ,
 जिमि वैवधिक शीश ते भारा ।
 मम-मय विश्व भक्त जस जाना ,
 निज स्वरूप तेहि तस पहिचाना ।
 लखत हृदय निज मम आलोका ,
 भव समस्त महुँ आपु विलोका ।
 जस जस भीजत उर अस ज्ञाना ,
 तस तस लहत भक्त निर्वाणा ।
 अचल जासु मुनि ! अस अनुभूती ,
 मनुज-रूप सो मोरि विभूती ।

अंत द्वैत-भावहु अवसाना ,
 होत अभिन्न भक्त-भगवाना !
 जागे यथा स्वप्न-अवशेषा ,
 नष्ट दृश्य सब, द्रष्टृहि शेषा ,
 तिमि आत्मिक जागरणहु माहीं ,
 आत्मा त्यागि शेष कछु नाही ।

बोद्धा :— अमृत जीव जो मोहि मुनि, भिव आपु ते जान ,
 लहत समुक्ति एकत्व सोई, अमृतत्व ! कल्याण । १६०

नहि अस ज्ञान बुद्धि-संजाता ,
 सत-दर्शन सो मुनि ! साक्षाता ।
 प्रत्यक्षहि यह अनुभव होई ,
 जानत सोई लहत तेहि जोई ।
 आत्महि आत्मा आपु निहारा ,
 नहि तहँ तर्क-गिरा-पैठारा ।
 सकत कि कोउ अंधहि समुभायी ,
 उषा-हास, शशि शरद-जुन्हाई ।
 जेते मानव-तर्क-प्रयासू ,
 'नेति, नेति' इक उत्तर तासू ।
 ज्ञान-प्राप्ति-साधन जग जेते ,
 कुण्ठित तहाँ, न पहुँचत तेते ।
 जो विपरीत विशेषण द्वारा ,
 वर्णन होत तासु संसारा ,
 जानहु मुनि ! अपूर्ण सब सोई ,
 ब्रह्म नकार-ज्ञेय नहि होई !

बोद्धा :— लहहि चहै सम्राट-पद, अमरपुरिहु कर राज ,
 अस अनुभव बिनु सोनि कोउ, लहिन सकत मुनिराज । १६१

यह पुरुषार्थ-अवधि मुनिरायी !
 ब्रह्महि ब्रह्मविदहु है जायी ।

सो न अनित्य-‘अहं’ पर निर्भर,
प्रश्रय नित्यतत्त्व ही तेहि कर।
सचराचर जो मैं निर्मावा,
सर्व विविधता महुँ मम भावा।
मैं ही करत व्यष्टि महुँ वासू,
‘अहं’-साथ नहिं तासु बिनासू।
लहि ईशत्व जीव मुनिराजू !
सकहि न करि जो पुनि भव-काजू,
तौ असमर्थ ब्रह्म अनुदारा,
सकत महुँ नहिं लै अवतारा !

दोहा :— ब्रह्म न केवल सत्य ही, शिवहु तासु अभिधान,
भक्त सतत भगवान सम, करत भुवन-कल्याण । १६५

उपजत ज्ञान जबहिं तेहि माहीं,
तजत फलहि सो, कर्मन नाहीं।
प्रश्न प्रवृत्ति-निवृत्तिहु केरे,
सापेक्षिक सब, मोहहि-प्रेरे।
‘करत कर्म मैं’—जेहि अस भावा,
सोइ विमूढ़ कर्म-फल पावा।
मन-निदेश तन पालनहारा,
मन यथार्थ कर्मन-कर्तारा।
ताते तन ते करतहु कर्मन,
परत न बंध, विरक्त जासु मन।
भोग-बुद्धि बिनु जो आस्वादा,
नहिं तेहि माहिं बंध-अवसादा।
अज्ञ भवन सुख-शय्या-शायी,
सपने गिरत कूप दुख पायी।
विज्ञ परत जो साँचहु कूपा,
लहत न शोक, सो आनँद-रूपा !

दोहा :— जिमि रस-शाली पारदहि, सकत न अनल जराय,
ज्ञान-विदग्धहि कर्म तिमि, बाँधत नहिं मुनिराय । १६६

भये लुभित जल-रवि-प्रतिबिम्बा,
 लुब्ध न यथा नभस्थित बिम्बा,
 तिमि मुक्तहु सविकार लखायी,
 बाह्य वृत्ति ही ते मुनिरायी !
 नहिं देहादि धर्म तेहि माहीं,
 देह-धर्म महुँ सोऊ नाहीं ।
 करत धर्म सो धर्महि-लागी,
 नहिं बाणिज्य-वृत्ति मति पागी ।
 जग-व्यवहारहु महुँ रहि तत्पर,
 सुप्त सो तेहि महुँ, जागत अन्तर ।
 लोक-दृष्टि ही ते विमुक्त जन,
 दिखत, उठत, बैठत, रत-कर्मन ।
 आत्म-दृष्टि ते यहि भव माहीं,
 करत कबहुँ ज्ञानी कछु नाहीं ।
 ताते तिनहिं न बँध संसारा,
 कुण्ठित उपल यथा असि-धारा ।

दोहा :—उपादेय लहि जो सुखी, दुखी पाय जो हेय,
 तेहि हित बंध, न तासु हित, लीलाँह जेहि कर ध्येय ! १६७

भये बिना मनुजत्व-विनाशा,
 मुक्त माहिं ईशत्व-विकासा ।
 अछतहु देह सो होत विदेहा,
 भव-लीला उद्देशहु येहा ।
 जो अव्यक्त, अगुण, बिनु शीला,
 करि सो सकत मुनीश ! न लीला ।
 जीवात्मा सम माया-चेरा,
 पूर्ण न कला-यत्न पर-प्रेरा ।
 मुक्तहि केरि केलि स्वच्छंदा,
 लहहुँ ताहि ते लीलानंदा !
 मणि-प्रदीप सम सो यहि लोका,
 विषय-धूम-विरहित आलोका ।

यहि समस्त भव-नाटक माहीं ,
तेहिते श्रेष्ठ कोउ कहूँ नाहीं ।
मम कामना-पूर्ति साकारा ,
मूर्ति सो मम, महि मम अवतारा !

बोहा :— सोइ भव-नाट्य-रहस्य सब, सम्यक मुनिवर ! जान ,
निज इच्छा ते ताहि महँ, करत योग निज दान । १६८

व्यर्थहि सो मुनीश ! मम सुमिरन ,
जो न सिखावत मोर अनुकरण !
ज्ञानहु सो यथार्थ नहि होई ,
रकटत नहि शुभ कर्मन जोई ।
प्रिय मोहिं सोइ ज्ञानी मुनिनायक !
जो मम सम भव-श्रेय-विधायक ।
मथम प्रकृति जो अवश करावा ,
अब तेहि करि सो आनँद पावा ।
पूर्व अनर्थ ताहि जो भासा ,
तोइ सार्थ लहि ज्ञान-प्रकाशा ।
हु कर्तव्य पूर्व जेहि जाना ,
अब सो मुदमय अमृत-पाना ।
मंगल-मयी वृत्ति तेहि केरी ,
कृतिहु तासु अनुचरी, चेरी ।
इहाहि-सम सो भव-अधिराजू ,
इश-समान करत भव-काजू ।

बोहा :— निज समान-धर्मा गनहुँ, मैं अस भक्त मुनीश !
होत ईश ते मैं मनुज, भक्त मनुज ते ईश ! १६९

वाणी यह पुराण जो भाषी—
एक-रूप वैकुण्ठ-निवासी ,
सबहि चतुर्भुज वपु अभिरामा ,
सबहि पीत पटधर, घनश्यामा ,
नाहि कल्पनहि सो मुनिरायी !
होत जो मम सम सोइ तहँ जायी ।

निवसत लहि सब पूर्ण विकासा ,
 पै नहि तहँहु बहुत्व-विमरशा ।
 चहत न नासन भक्त विभक्तहि ,
 चीन्हत तेहि महुँ मोहिँ अविभक्तहि ।
 जब महि निखिल जीव-समुदायी ,
 लेहै दिव्य दृष्टि यह पायी ,
 सर्व-हितहि जब निज हित जाना ,
 तबहिँ वैर-विग्रह-अवसाना ।
 होइहैं तब नर प्रकृति-अधीश्वर ,
 धरणिहु यह वैकुण्ठ मुनीश्वर !

बोहा :— लीला-उद्देशहु यहहि, अवतारहु यहि काज ,
 होय मही मम धाम सम, मोहिँ सम मनुज-समाज ! २००

प्रथम भारतहि महुँ मुनिरायी !
 दिव्य दृष्टि मम भक्तन पायी ।
 जो कछु अनत सो भारत माहीं ,
 जो नहिँ यहाँ, कतहुँ सो नाहीं ।
 यह समस्त संसृति कर सारा ,
 वैकुण्ठहिँ सम मोहिँ पियारा ।
 ज्ञान आजु जो मैं मुख भाखा ,
 यहि महि-पृष्ठ प्रकृति लिखि राखा !
 जदपि अशेष विविधता-धामा ,
 देश अखण्ड एकत्व अभिरामा ।
 यहँ एकत्व भिन्नता-अन्तर ,
 सकत निरखि मम भक्त निरन्तर ।
 वारिधि ते हिमाद्रि पर्यन्ता ,
 वर्ण जाति जे बसत अनन्ता ,
 तिन सब कहँ एँकहिँ जेहिँ जाना ,
 तेहिँ सम • को उदार, मतिमाना !

बोहा :—जिन बहु रूपन माहि ये, पूजत निज भगवान ,
 तिनसब महुँ जो मोहिँ लखत, भक्त को मम तस आन !” २०१

जे अनुदार हृदय, अति दीना,
सदा विभक्तहि महँ ते लीना ।
ते यदुवंशिन सदृश अभागी,
कुलहि-मात्र भारत तिन लागी ।
अन्यहु कछुक अहंकृति-दासा,
चहत करन विविधत्व-विनाशा ।
जरासंध-सम रक्त-पियासे,
नाना राज्यवंश जेहि नासे ।
दोड भारत-विकास-पथ बाधा,
नासि दुहुन मै महि-हित साधा ।
उद्धव यदुकुल-नाश-हताशा,
कहत आजु मै हरि-कुल नासा ।
मम मत, समदर्शी मति जिनकी,
सकत जे बहु महँ एक विलोकी,
हरि-वंशी तेइ भारतवासी—
नृपति, प्रजा अथवा संन्यासी ।

दोहा :—हरिहि सदृश अस हरि-कुलहु, अविनाशी मुनिनाथ !
युग-युग तासु विकास नव, युग-युग मै तेहि साथ ।” २०२
भये मौन प्रभु कहि वचन, निखिल भुवन-परित्राण,
खोले उत मैत्रेय दृग, मुँदे इत भगवान ! २०३

सोरठा :—छायी ज्योति अपार, धरा-गगन एकहि भये,
हरि जन-भय, भू-भार, स्वर्गारोहण कीन्ह प्रभु ।
भयेउ व्योम जय-नाद, भयी अमरतरु-सुमन फरि,
भूतल विरह-विषाद, मिलन-बाध सुरपुर बजे ।
अद्भुत हरि-अवतार, अद्भुत तिमि आरोहणहु,
अद्भुत चरित अपार, सकेउ बखानि अशेष को ?
तेहि जो कला-अतीत, सकति बाँधि नहि कवि-कला,
वाणिहि करत पुनीत, सुमिरि काव्य-मिस तेहि सुकवि ।
अगणित बाद-विवाद, विविध ज्ञान-विज्ञान महि,
मिटत न भव-अवसाद, प्रभु-दर्शित पथ बिनु गहे ।